श्रीगणेशाय नमः ॥

अथ पारसभागप्रारम्भः ॥

प्रथमं प्रकरणम् ॥

दो० । भक्तिभक्त भगवन्त गुरु, चतुर नाम वपु एक ।
तिनके पद वन्दनकिये, नाशत विघ्न अनेक ॥ १ ॥

प्रथम मङ्गलाचरण स्तुति और शुक्र एक उसी महाराज के लिये आकाश के तारे और मेघकी बूंदें और वनस्पतियों की पत्ती और पृथ्वीके रेणु के समान हैं कि जिसका ऐश्वर्य और उसकी पूर्णताई और सामर्थ्यताई को कोई जीव पहिंचान नहीं सक्ता पुनः उसके सम्पूर्ण पहिंचानने के मार्ग को कोई नहीं पासक्ताहै और उस महाराज की सृष्टि के विषे किसी और जीव की सामर्थ्य और बल नहीं चलसक्ता ताते जे महापुरुष सच्चे हैं सो उनकी भी अन्त अवस्था यही है कि वे भी उसके सम्पूर्ण पहिंचानने के विषे अपनी असामर्थ्य वर्णन करते हैं पुनः देवता और बड़े ईश्वर भी महाराज की स्तुति और बड़ाई विषे अपनी लघुता मानते हैं और महाबुद्धिमानों की बुद्धि भी उसके आदि प्रकाश और सामर्थ्य विषे विस्मरता को प्राप्त होती है पुनः जिज्ञासु और प्रीतिमान् भी उसके दरबार की निकटता के ढूंढने के विषे विस्मय होरहे हैं और उसके स्वरूप का पावना संकल्प विषे प्राप्त नहीं होता बहुरि उसका समझावना और आकार स्थूल दृष्टान्तों से विलक्षण है इसीकारण से बुद्धिरूपी नेत्रों की दृष्टि उसके स्वरूप के देखने विषे मन्द होजाती है ताते सर्व बुद्धियों का फल यही है कि उसकी आश्चर्यरूप कारीगरियों को देखकर महाराज को पहिंचानै और किसी मनुष्य का ऐसा अधिकार नहीं जो उसके स्वरूप की बड़ाई का विचार करै कि वह कैसा है और
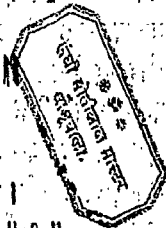
क्या है और यह भी किसी को उचित नहीं कि जो एक क्षणमात्र भी उसकी आश्चर्यरूप कारीगरी से अचेत होवै और इसप्रकार न जाने कि इस कारीगरीका कर्त्ता और आश्रय कोई नहीं ताते चाहिये कि कारीगरी को देखकर इस प्रकार माने कि यह सर्व जगत भी उस महाराज के ऐश्वर्य का प्रतिबिम्ब है और उस ही के तेज का प्रकाशहै बहुरि सर्व आश्चर्यमय जो रचना है सो उसही का अनुभव है और सब कुछ उसके स्वरूप का आभास है ताते सर्व पदार्थ उसही से उत्पन्न हुये हैं और उसही विषे स्थित हैं तात्पर्य यह कि सब वही है काहेते कि कोई पदार्थ भगवन्त की शक्ति बिना आप करके स्थित नहीं है ताते सब किसी का आश्रय वही है बहुरि उसके प्रियतम जे सन्तजनहैं सो वे भी जिज्ञासुओं को शुभमार्ग दिखावनेवाले हैं और भगवन्त के गुह्य भेद लखावनेवाले हैं और परम दयालुरूप हैं ताते उनको भी मेरा नमस्कारहै आगे ऐसे जान तू कि इस मनुष्य को भगवन्त ने व्यर्थ बोलने और हँसने के निमित्त नहीं उत्पन्न किया ताते इस मनुष्यका पदभी महाउत्तमहै और भयभी अधिक है और यद्यपि यह जीव अनादि नहीं अर्थात् उत्पन्न किया हुआहै पर तौ भी अविनाशीरूपहै और यद्यपि इस जीव का स्वरूप स्थूलतत्त्वों करके रचाहुआ है पर इसका हृदय जो चैतन्यरूप है सो महाउत्तम और अमर है बहुरि यद्यपि इस जीव का स्वभाव आदि उत्पत्ति विषे पशुओं और सिंहों और भूतोंके स्वभावके साथ मिलाहुआहै पर जब इसको यत्न की कुठारी विषे डालिये तब नीचस्वभावों के मैलते शुद्धस्वरूप होजाता है और भगवन्तके दर्शन और दरबारका अधिकारी होताहै ताते प्रसिद्ध हुआ कि अधोगति महारसातलहै और ऊर्द्धगति जे देवताहैं सोभी इसी मनुष्यकी गति हैं और अधोगति विषे जाना यह है कि पशु और सिंहों के स्वभावविषे गिरना अर्थात् भोगों और क्रोधके वशीकार होना बहुरि ऊर्द्धगतिजाना यह कि देवतोंके स्वभाव विषे स्थित होना और भोग और क्रोधको अपने वशीकार करना और अपने अधीन रखना सो जब इनको अपने वशमें करताहै तब भगवन्त की भक्तिका अधिकारी होताहै सो देवतोंका स्वभाव यहीहै और मनुष्यकी उत्तम अवस्थाभी यही है और जब इस मनुष्यको भगवन्तके दर्शनका आनन्द प्राप्तहोताहै तब एक क्षणभी उसके स्वरूपते इतर ठहर नहीं सक्ता और उसी दर्शन का आनन्द उसको स्वर्गरूप भासता है और यह स्थूलस्वर्ग जो भोगों और आहार का स्थान है सो तिस

को तुच्छरूप जानता है और यह जो मनुष्य देहरूपी रत्न है सो आदि उत्पत्ति विषे नीच और मलीन होता है ताते पुरुषार्थ और साधन विना किसी प्रकार पूर्णपद को नहीं पहुँचता जैसे तांबे और और धातु को पारस विना स्वर्ण करना कठिन होताहै और यह विद्या सब कोई नहीं पहिंचानसक्ता तैसेही मनुष्यरूपी जो धातु है सो तिसको पशुओं के स्वभावरूपी मैलसे शुद्ध करना और पूर्ण भागों विषे प्राप्त होना सो यहभी विद्या महागुह्य है और कोई नहीं जानसक्ता ताते यह जो ग्रन्थ है सो भागों का पारस है और इस विषे जे सुन्दर वचन हैं तेई पारसरूप हैं ताते इस ग्रन्थ का नाम पारसभाग राखाहै काहेते कि पारस उत्तमताई का नामहै पर वह पारस जो तांबे को स्वर्ण करता है सो स्थूल और नीचहै इसकरिकेकि तांबे और स्वर्ण विषे रङ्गही का भेदहै और उस स्वर्ण करके माया के भोग प्राप्त होते हैं सो माया आपही नाशवान्है ताते माया के भोग भी अल्प काल विषे परिणामी होजाते हैं बहुरि यह जो पारसरूपी वचन है सो महाविशेष है काहेते कि इन वचनों करिके महारसातल से ऊर्द्ध्वगति को प्राप्त होताहै सो इस अधोगति और ऊर्द्ध्वगति विषे बड़ा भेद है और जब यह मनुष्य निर्मल स्वभावरूपी ऊर्द्ध्वगति को पहुँचता है तब अविनाशी भागों को पहुँचता है सो वह कैसा सुखहैकि उसका काल और अन्त नहीं बहुरि दुःखरूपी मैल भी उस परम सुख विषे कदाचित् स्पर्श नहीं करता ताते इस ग्रन्थ का नाम पारसभाग कहा है जो पारस की शोभा भी दृष्टिमात्रही कही है ताते जान तू कि तांबा और अपर धातु तबही स्वर्ण होतीहै जब प्रथम पारस की प्राप्ति होवे सो यह स्थूल पारस भी सब ठौर और सब किसी के गृह में नहीं पायाजाता किसी सिद्ध अवस्थावाले के पास अथवा किसी महाराजा के भण्डार विषे होता है तैसेही वह सूक्ष्म पारस भी भगवन्तही के भण्डार विषे है सो भगवन्त का भण्डार सन्तजनों का हृदय है ताते जो कोई इस पारस को सन्तजनों के हृदय विना अपर ठौर ढूंढ़ता है सो व्यर्थही भटकता फिरता है और उसको प्राप्त कुछ नहीं होता इसीकारण से वह पुरुष अन्तकाल में निर्द्धनताई को प्राप्त होता है और झूंठे मद करिके जो अभिमानी हुआ था सो पीछे निर्लज्जता को प्राप्त होता है ताते भगवन्त ने अपनी दया करिके यह भी बड़ा उपकार किया है कि जो सन्तजनों को इस जगत् विषे कल्याण के निमित्त भेजा है कि वे सन्तजन वचनरूपी पारस को प्रसिद्ध करैं

और जीवों को उपदेश करें कि हृदयरूपी धातु को साधनरूपी कुठाली में क्योंकर राखिये और मलीन स्वभावोंको क्योंकर दूर करिये और उत्तम स्वभावों को क्योंकर प्राप्त हूजिये तब सन्तजनोंके उपदेश करिके ये मनुष्य नीच स्वभावों से मुक्त होते हैं और निर्मल स्वभावों को पावते हैं सो इस वचनरूपी पारस का तात्पर्य यह है कि प्रथम माया के पदार्थों से विरक्तचित्त होवें और भगवन्त की शरण आवैं जैसे महापुरुष ने भी कहा है कि सर्वपदार्थों को त्यागकरि आपको भगवन्त की शरण विषे लावो सो सर्वविद्या का तात्पर्य यही है और यद्यपि इसका बखान भी बहुत विस्तार करिके समझाजाता है पर तौ भी इसका पहिंचानना चारप्रकार का होता है सो प्रथम यह है कि अपने आपको पहिंचाने बहुरि भगवन्त को पहिंचाने और तीसरा प्रकार यह है कि माया को पहिंचाने बहुरि परलोक को पहिंचाने ॥

इति मङ्गलाचरणसम्पूर्णम् ॥

पहिला अध्याय ॥

पहिला सर्ग ॥

तातें जान तू कि अपने आपका पहिंचानना यही भगवन्त के पहिंचानने की कुञ्जी है सो इसीपर महापुरुष ने भी कहा है कि जिसने अपने को पहिंचानाहै तिसने निस्सन्देह अपने महाराज को पहिंचानाहै बहुरि महाराज ने भी कहाहै कि तैंने अपने लक्षण जीवों के मनमें प्रकट कियेहैं इस करिके कि आपको पहिंचानकर मुझको भी पहिंचानें तातें हे भाई! तेरे समान तुझको और पहिंचानने को कोई निकट नहीं सो प्रथम जब तू आपको भी न पहिंचानै तब अपर किसी को क्योंकर पहिंचानेगा और जब तू इस प्रकार कहै कि मैं तो आपको पहिंचानता हूं सो यह कहना तेरा झूठहै काहेसेकि जैसा तू आपको पहिंचानता है तैसा पहिंचानना भगवन्तके पहिंचाननेकी कुञ्जी नहीं इस करिके कि जिस प्रकार आपको शरीर हाथ पांव और त्वचा मांस स्थूल जो तू पहिंचानता है अथवा अपने अन्तरविषे जब तू भूखा होताहै तब आहार को चाहता है और जब क्रोधवान् होता है तब लड़ाई करता है और जब कामादिक भोगों को चाहता है

तब उसी सङ्कल्पविषे लीन होजाता है सो इस प्रकार के पहिंचानने में सब पशु भी तेरे समान हैं ताते तुझको इस प्रकार यथार्थरूप का पहिंचानना चाहिये कि मैं क्या वस्तु हूं और कहांते आया हूं बहुरि किस स्थानविषे जाऊंगा और इस संसारविषे किस कार्यनिमित्त आया हूं और किस कार्य के निमित्त मुझको भगवन्त ने उत्पन्न किया है और मेरी भलाई क्या है और किस विषे है और भाग्यहीनता क्या है बहुरि तेरे विषे जो पशुओं और देवतों के स्वभाव इकट्ठे उत्पन्न किये हैं सो इनमें तेरा प्रबल स्वभाव कौन है बहुरि इस प्रकार भी पहिंचानै कि तेरा अपना स्वभाव क्या है और परस्वभाव कौन है सो यह तैंने जब भली प्रकार करिके पहिंचाना तब श्रद्धा भी करसकैगा काहेते कि सब किसी की भलाई और पूर्णता और आहार भिन्न २ हैं जैसे पशुओं की भलाई और पूर्णता सोवने और खाने और युद्ध करने से इतर कुछ नहीं ताते जब तू आपको पशु जानता है तब दिन रात यही पुरुषार्थ कर कि पेट और इन्द्रियोंकी पालना होवे बहुरि सिंहों की पूर्णता यह है कि फाड़ना और क्रोधवान् होना और भूत प्रेतों का प्रभाव यह कि छल और प्रपञ्च रचना सो जब तू सिंह अथवा भूत है तब इसी स्वभाव विषे स्थित होउ तब अपनी पूर्णता को प्राप्त होवेगा और देवताओं की भली पूर्णताई और आहार भगवन्त का दर्शन है भोगवासना और क्रोध तो पशु और सिंहों का स्वभाव है सो तिनको स्पर्श नहीं करसक्ता सो आदि उत्पत्ति विषे जब तेरा देवभाव है तब यही पुरुषार्थ कर कि भगवन्त के दरबार को पहिंचाने बहुरि भोगवासना और क्रोध से आपको मुक्त करे और इस भेदको भी समझै कि भगवन्त ने तेरे विषे पशुओं और सिंहों का स्वभाव इस निमित्त उत्पन्न किया है तब तू उनके स्वभावों को अङ्गीकार करै और जिस मार्गविषे तुझको जानाहै सो तिस मार्गविषे स्वभावों को अपने अधीन कर लेजावे और तू इनके अधीन न होवे इसीकारण तुझको चाहिये कि एक स्वभाव को घोड़ा करै और दूसरे स्वभाव को शस्त्र करै और जगतविषे जितने काल तुझे जीवना है इस आयुष् को अपने कार्य के सिद्ध करने में बितावे तौ उस घोड़े और शस्त्र करिके अपनी भलाईका शिकार करै और जब वह भलाई तुझको प्राप्तहुई और उन स्वभावों को तैंने बशीकार किया और भगवन्त के पहिंचाननेकी और तेरा मुख हुआ तब तू मुक्त होवेगा सो भगवन्त का पहिंचानना कैसा है कि सन्त

जनों के स्थित होने का स्थान है और सूक्ष्मरूप है जैसे इतरजीव स्वर्ग को सुख रूप जानते हैं तैसे सन्तजनों का सुख महाराज की शरण विषे होता है सो जब इस प्रकार तैंने समझा तब कुछ एक अपने आपका पहिंचानना होवेगा और जो कोई इस भेद को नहीं पहिंचानता उसको धर्ममार्गविषे चलना कठिन होता है और आत्मसुख विषे उसको आवरण होता है ॥

दूसरा सर्ग ॥

बहुरि जब तू आपको पहिंचानना चाहताहै तब इस प्रकार निश्चय जान कि तुझको दो पदार्थ करिके उत्पन्न किया है सो एक तो शरीर जो स्थूलनेत्रों करिके देखाजाताहै और दूसरा चैतन्य है वह सूक्ष्मरूप है और उसको जीव कहते हैं और मन कहते हैं और चित्तभी उसीका नाम है सो तिसको बुद्धिरूपी नेत्रकरि देख सक्ता है और स्थूलनेत्रों की दृष्टि ते परे है ताते तेरा जो निजस्वरूप है सो वही चैतन्य तत्त्व है और जेते गुण हैं सो चैतन्य के अधीन हैं और उसीके टहलुये हैं अथवा सेनाकी नाईं हैं और मैंने उसी चैतन्य का नाम हृदय राखाहै सो यह वार्त्ता निस्सन्देह है कि आत्मा और हृदय और मन उसी चैतन्य के नाम हैं ताते मैं जो हृदय का बर्णन करताहूं सो मेरा प्रयोजन शरीरके हृदयस्थान का नहीं काहेते जो इस स्थूल हृदयस्थान का स्वरूप मांस और त्वचाकरि रचाहुआ है और पञ्चभूतों का रचाहै ताते जड़रूप है और मनुष्य का जो चैतन्यरूप हृदय है सो स्थूल सृष्टि ते विलक्षण है और इस शरीर में परदेशी की नाईं अपने कार्यनिमित्त आया है बहुरि यह जो स्थूल हृदय का स्थान है सो जीव का घोड़ा अथवा शस्त्र है और सब इन्द्रिय भी जीव की सेना हैं और शरीर का राजा जीवहै ताते भगवन्त का पहिंचानना और उसका देखना भी जीवको अधिकार है इसीकारण ते दण्ड और उपदेश और पुण्य पाप का अधिकारी वही जीवहै ताते भाग्यहीन और भाग्यवान् उसी जीव को कहाजाता है और सर्वकालविषे शरीर उसके अधीन है इसी कारण ते उस चैतन्य के स्वरूप का पहिंचानना और उसके स्वभावों का समझना भगवन्त के पहिंचानने की कुञ्जी है ताते तू यही पुरुषार्थ कर कि चैतन्यरूप को पहिंचाने काहे ते कि यह चैतन्यरूपी रत्न दुर्लभ है और देवताओं की नाईं निर्मल स्वरूप है और इस रत्न की खानि परब्रह्म है इस करिके कि यह जीव उसी ओरते आया है बहुरि उसी ओर जावेगा और इस संसार विषे परदेशी है सो

अपने कार्य के निमित्त यहां आया है ताते तुझको वह कार्य भी अवश्यमेव पहिंचानना चाहिये पर भगवन्त की दया करिके जानाजाता है ॥

तीसरा सर्ग ॥

आत्मसत्ता के अभ्यास का वर्णन ॥

अब आत्मसत्ता के अभ्यास का वर्णन करताहूं ताते जान तू कि जब लग चैतन्यरूपको नहीं पहिंचानिये तबलग हृदयके यथार्थस्वरूप को पहिंचान नहीं सक्ता सो इसीकारण से भगवन्त का पहिंचानना भी नहीं होसक्ता और उत्तम भागों को भी नहीं पावता और जब एकभाव करिके देखिये तौ चैतन्यरूप अति प्रकट है काहेते कि चैतन्य का होना शरीर के आश्रित नहीं जैसे मृतकशरीर और इन्द्रिय प्रकट होती हैं पर चैतन्यसत्ता विना उसको मृतक कहते हैं बहुरि यों भी है कि जब कोई पुरुष नेत्र आदिक इन्द्रियों को रोंकै और चैतन्यता के अभ्यास विषे सर्वशरीर और स्थूल जगत् विस्मरण करै तब निस्सन्देह अपने आप को पहिंचान लेवे और यथार्थरूप आत्मा को जानै बहुरि उसी विषे अधिक अभ्यास करै और बिचारकरे तब सुगमही परलोक को भी देखलेवे और इस वार्त्ता को भी प्रत्यक्ष जाने कि जब इस मनुष्य का शरीर छूटताहै तब चैतन्यरूप जीव का नाश नहीं होता और अपने आप विषे स्थिर रहता है ॥

चौथा सर्ग ॥

साधनाकाल का वर्णन ॥

बहुरि इस जीवका जो शुद्ध स्वरूप है और जो इसका परम स्वभाव है सो तिसका खोलना धर्मशास्त्रविषे प्रमाण नहीं कहा इसीपर एक वार्त्ता है कि लोगों ने जाकर महापुरुष से पूछा था कि जीवका स्वरूप क्या है तब उन्होंने जीवका परम स्वरूप वर्णन नहीं किया और भगवन्त की आज्ञा पाकर इतनाही कहा कि यह महाराज की सत्तामात्र है सो इससे अधिक बखान करना उचित नहीं देखा ताते इतनाही उत्तर दिया कि यह सब सृष्टि दो प्रकार की रचना है सो एक सृष्टि स्थूल है और दूसरी सत्तारूप सूक्ष्म है सो जिस पदार्थ की मर्याद और आकार और बढ़ना घटना है तिसको स्थूल कहते हैं और चैतन्यसत्ता जो सूक्ष्मरूप है तिसकी मर्याद और आकार कुछ नहीं और अखण्ड है काहेते कि वह जब इस मनुष्य का हृदय खण्डरूप होता तब इसके शरीर विषे एक और विद्या

होती और एक ओर मूर्खता होती सो चैतन्यस्वरूप विषे इस प्रकार विद्या और मूर्खता नहीं ताते इसको अखण्ड कहाजाताहै और मर्याद ते रहित है और इस का नाम जीव इस निमित्त कहा है कि यह भगवन्त का उत्पन्न कियाहुआ है इसी करके जीव को सूक्ष्मसृष्टि कहागया है पर तौ भी इसका स्वरूप स्थूल नहीं ताते सूक्ष्म है बहुरि जिन पुरुषों ने इस प्रकार निश्चय किया है कि यह जीव अनादि है सो वे भी भूले हैं और जिन्होंने इस जीवको प्रतिबिम्ब जाना है सो वे भी भूले हैं काहेते कि प्रतिबिम्ब आपकरिके वस्तु कुछ नहीं और जो अनादि है वह उत्पन्न कियाहुआ नहीं होता और यह जो जीव है सो उत्पन्न कियाहुआ है और शरीर का आश्रय है ताते इसको प्रतिबिम्ब भी कहना योग्य नहीं और जिन्हों ने इस शरीर को आत्मा प्रमाण कियाहै सो वे भी भूले हैं काहेते कि यह शरीर खण्ड २ होजाताहै और आत्मा अखण्डहै और ज्ञानस्वरूपभी है सो यह शरीर भी नहीं और प्रतिबिम्ब भी नहीं अर्थ यह कि सत्तारूप है और चैतन्य है और देवताओं की नाईं प्रकाशमान है और इस जीवका जो कारणस्वरूप है सो तिसका पहिंचानना दुर्लभ है और वचन विषे प्रसिद्ध कहाभी नहीं जाता और साधन काल विषे जिज्ञासु को इस निर्णय की अपेक्षा भी नहीं रहती काहेते कि धर्ममार्गविषे जिज्ञासु को यत्न और उद्यम चाहिये है बहुरि जब विधिसंयुक्त पुरुषार्थ दृढ़ होजाता है और भली प्रकार दृढ़ अभ्यास करताहै तब जिज्ञासु को आपही स्वरूप का ज्ञान भास आवता है और उसको किसी से कुछ सुनने की अपेक्षा नहीं रहती काहे ते कि स्वरूप का ज्ञान अपने पुरुषार्थ और भगवन्त की दया से प्राप्त होताहै इसीपर साईं ने भी कहा है कि जब पुरुष मेरे मार्ग विषे मन और अभ्यास करतेहैं तब मैं उनको अपने स्वरूप का ज्ञान लखावता हूं और जिस पुरुष ने यत्न और पुरुषार्थ भली प्रकार न किया होवे तब उसको आत्म-स्वरूप की वार्त्ता प्रसिद्ध करनी योग्य नहीं और जब उसको कहिये तब दृढ़ भी नहीं होती जबलग यत्न के आगेही जीवकी सेना को न पहिंचानिये तब तक अशुभ सेना से विरुद्ध भी नहीं करसक्ता॥

पांचवां सर्ग॥

जीव की सेना का वर्णन॥

ताते जान तू कि जीवरूपी राजा है और यह शरीर उसका राजमण्डल है

और इसके विषे सेना भिन्न२ रहती है पर इस जीवको जो भगवन्त ने उत्पन्न किया है सो परलोकके कार्यनिमित्त पैदा किया है सो कार्य इसका क्या है कि अपनी भलाई को ढूंढ़ना और भलाई इस जीवकी यह है कि भगवन्त का पहिंचानना और भगवन्त का पहिंचानना उसकी आश्चर्य कारीगरी करि होती है सो यह सर्व जगत् भगवन्तही की कारीगरी है और कारीगरी का पहिंचानना इन्द्रियों करि होता है सो इन पांचों इन्द्रियों का आश्रय शरीर है ताते ये इन्द्रियां फांसी की नाईं हैं और शिकार इनका कारीगरी है और यह शरीर पांच तत्त्वों करि रचा हुआहै और वात पित्त कफ इसमें प्रबल विकार हैं ताते सर्वदा इसको नाशहोने का भय रहता है और यद्यपि यह शरीर भूंख और तृषा करि भी नाश होजाता है और जल और अग्नि और शत्रु और सिंह आदिक भी इसको नाश करनेवाले हैं ताते भूंख और प्यास दूर करनेको भगवन्त ने जल और अनाज उत्पन्न किया है और शरीर की रक्षा के निमित्त दो प्रकार की सेना रची है सो एक स्थूल है जैसे हाथ और पांव और नाना प्रकार के शस्त्र बहुरि दूसरी सेना सूक्ष्महै सो चाह और क्रोध है पर सर्व कार्यों के पहिंचाननेवाली बुद्धि है सो प्रथम बुद्धि करिकै शत्रु को पहिंचानता है तब क्रोध करिकै जल और अनाज को खींचता है और शरीर की रक्षा करताहै बहुरि श्रवण त्वचा नेत्र रसना नासिका जो पञ्चइन्द्रियहैं सो यह भी बुद्धि के आश्रित हैं और शरीर का प्रेरक चतुष्टय अन्तःकरण है सो यह सभी सेना भगवन्त ने कार्यनिमित्त बनाई है और जब इस सेना विषे किसी को कुछ विघ्न होजाता है तब इस मनुष्य का स्वार्थ और परमार्थ का कार्य सिद्ध नहीं होता और ये सूक्ष्म स्थूल जो सेना हैं सो सब जीवही के अधीन हैं पर राजा इनका जीव है सो जब रसना को आज्ञा करताहै तब बोलने लगती है और हाथ आज्ञा से ग्रहण करते हैं और चित्त को जब आज्ञा करता है तब चित्त विषे चिन्तन की शक्ति आय फुरती है इसीप्रकार सब अङ्गों और सर्व स्वभावों विषे जीव ही की आज्ञा वर्तती है तब यह जीव परलोक मार्ग के तोशे को बनावै और भगवन्तकी पहिंचानरूपी शिकार को फँसावै और अपनी भलाई के बीज को बढ़ावै और परमार्थ के कार्यविषे दृढ़ होवे तब निस्संदेह परमपद को पहुँचता है और शरीर की रक्षा करनी भी इस निमित्त प्रमाण कही है कि यह जीव शरीर करिकै अपने कार्य को सिद्ध करै बहुरि जिसप्रकार देवता भगवन्त की आज्ञा

के अधीन हैं और प्रसन्नतासहित उसकी आज्ञा मानते हैं तैसेही शरीर और इन्द्रिय और अन्तःकरण इस जीव के अधीन हैं और इसकी आज्ञा विषेही वर्तते हैं सो यह सबही जीवकी सेनाहै यद्यपि उस सेना का बखान करना बहुत विस्तार है पर तौभी समझाने के निमित्त कुछ वर्णन करताहूं अब ऐसे जान तू जो यह शरीर राजाका नगरहै और सब इन्द्रियां इस शरीर विषे वसनेवाले लोगहैं और भोगों की अभिलाषारूपी राजा का प्रधान है और क्रोधरूपी कोतवाल है और जीव इस देश का राजा है बुद्धि इसका मन्त्री है पर जीवरूपी राजाको इस सर्व सेना की चाहहै काहे ते कि राज्य इनहीं करिकै सिद्ध होती है पर अभिलाषारूपी क्रोधप्रधानहै सो महाझूंठा और पाखण्डी है और बुद्धिरूपी मन्त्रीके कहने से विपर्यय वर्तता है और सर्वदा योंही चाहताहै कि राजा की सामग्री सब मैंहीं खर्च लेऊं बहुरि क्रोधरूपी जो कोतवाल है सो महातीक्ष्ण और कठोर है और सर्वदा जीवों का घातही चाहता है इसीकारण ते जीवरूपी राजाको देश महादुःखी रहता है पर यह जीव जो राजा है सो जब बुद्धिरूपी मन्त्री के साथ सम्मत लेवै और अभिलाषारूपी प्रधानको निर्बल करिकै अपने वशीकार करै और बुद्धिते विपर्यय जो कुछ कहै सो न मानै और कोतवाल को उसके ऊपर प्रबल करै तब उसको मर्याद विषे राखसक्ता है इसीप्रकार क्रोधरूपी कोतवाल को प्रबल न होने देवै और मर्यादते उलंघिकरि न बर्तने देवै तब इसका देश सुखी होवै और सदैव बुद्धिरूपी मन्त्री के कहनेके अनुसार वर्तै जो अभिलाषा और क्रोध को ऐसा निर्बलकरै कि वहभी बुद्धि की आज्ञाविषे चलै और बुद्धि को उनके अधीन न करै तब इसका राज्य स्वाधीनहोवै और सुखेन होवै और भगवन्तके दरबारमें विघ्न न होवै पर जब यह जीव बुद्धिको अभिलाषा और क्रोधके अधीन करदेवै तब इसका राज्य नष्ट होजाताहै और राजा भी मन्दभागी होता है ताते इस करके प्रसिद्ध हुआ कि भोग और रोगभी शरीरकी रक्षाके निमित्त उत्पन्न किये हैं तैसेही जल और अनाज भी शरीर का आहार बनाया है और शरीर को इन्द्रियोंके ठहराने के निमित्त बनायाहै ताते शरीर इन्द्रियों का टहलुवा है बहुरि इन्द्रिय जो हैं सो बुद्धि को खबर पहुँचाने के निमित्त रची हैं कि इन्द्रियों करिकै भगवन्त की कारीगरीको देखै और जानै ताते यह इन्द्रियां बुद्धिकी टहल करने वाली हैं और तैसेही बुद्धिको जीवके निमित्त उत्पन्न किया है सो यह बुद्धि जीव

का दीपक है कि उसके प्रकाश करिकै महाराज को देखता है सो महाराज का दर्शन इस जीव का परमस्वर्ग है ताते बुद्धि जीव का टहलुआ है तैसेही जीव को महाराज के दर्शन निमित्त बनाया है सो जब यह जीव महाराज के दर्शन को प्राप्त होवे तब अपने उत्तम कार्यको पावताहै और महाराज की सेवाविषे लीन होताहै इसीपर महाराजने भी कहाहै कि मैंने सर्वमनुष्यों को अपने भजन के निमित्त उत्पन्न किया है सो इसका अर्थ यहीहै कि इस जीवको महाराज ने उत्पन्न किया है और इन्द्रियादिक सेना दीनीहैं और शरीररूपी घोड़ा दिया है कि जिस करिकै स्थूलदेश से गमनकरके सूक्ष्मदेश विषे पहुँचै बहुरि जब यह जीव भगवन्त के उपकार का धन्यवाद कियाचाहे और भगवन्त का दर्शन हुआ चाहे तब इस प्रकार प्रथम इसको करना योग्य है कि इस शरीररूपी देश विषे बैठकर राज्य करे और अपना मुख भगवन्त की ओर लावै और इस संसार से गमन करने की इच्छाराखे और सर्व इन्द्रियों को अपनी टहल विषे लगावै अर्थ यह कि अपने २ कार्य विषे सावधान करै और तब इन्द्रियों करके जो कुछ कार्य करै तिसको चित्त विषे विचारे बहुरि समय पायकै बुद्धिविषे उसका अभ्यासकरै और बुद्धिरूपी मन्त्री उस खबर को पाकर राजा को समझावै सो इसका दृष्टान्त यह है कि जैसे देश की खबर दूत ले आवते हैं और उनसे दरवान खबर लेकर मन्त्री को पहुँचावते हैं और वह मन्त्री राजा को समझाय देताहै तैसे इन्द्रियरूपी दूतहैं और चित्त इसका पवँरिया है और बुद्धिरूपी मन्त्री है सो इस प्रकार इन्द्रियरूपी दूतों ने जो खबरें चित्तरूपी पवँरिया के द्वारा मन्त्री बुद्धिरूपी को पहुँचाई हैं तिनको मन्त्री के द्वारा जीवरूपी राजा पाता रहै बहुरि बुद्धिरूपी मन्त्री जब देखै कि इस जीव की सेना में काम और क्रोध अथवा कोई और स्वभाव प्रबल हुआहै और राजा की आज्ञासे विपर्यय होकर विचरने लगा है और राजा को नाश किया चाहता है तब बुद्धिरूपी मन्त्री उसको अपने अधीनकरै और कोमल करके राखै काहेते कि उन बिना शरीर का व्यवहार भी सिद्ध नहीं होता और उनका प्रबल होना भी दुःखदायक है ताते जब इसकी आज्ञा विषे होते हैं तब वह सर्वस्वभाव भी यथार्थमार्ग की सहायता करते हैं और वह जीवरूपी राजा अपने स्वामी को पहुँचता है और सम्मुख होता है और महाराज की बकशीश को पावताहै पर जब यह जीवरूपी राजा इस प्रकार अपने देश विषे न्याय न करै और दुष्टों

के साथ मिल जावे अर्थात् बासना के अधीन होजावे तब भगवन्त के उपकार का कृतघ्नी होजाता है और मन्दभागी होता हुआ महादुःख पाता है॥

छठा सर्ग॥

जीव के स्वभाव का वर्णन॥

तातें ऐसे जान तू कि जितने स्वभाव इस शरीर विषे पाये जाते हैं सो सबों के साथ इसका सम्बन्ध है और इस विषे इतना भेदहै कि कोई स्वभाव तो शुभ होते हैं और कोई अशुभ होते हैं सो अशुभ स्वभावों करि इस जीव को नाश होताहै और शुभ स्वभावों करि उत्तम अवस्था को पावता है सो वह स्वभाव यद्यपि अगणित हैं पर तोभी चार प्रकारके स्वभाव हैं सो एक स्वभाव पशुओंके हैं और दूसरे सिंहोंके तीसरे प्रेतों के चौथे देवतों के सो प्रथम जो इस मनुष्य विषे भोगोंकी अभिलाषा है और तृष्णा है सो इस करके पशु आदिक व्यवहार सिद्ध होताहै अर्थात् कामादिक खान पानादिक भोगों विषे लगे हैं बहुरि दूसरा जो क्रोधका स्वभाव है तिसकरके सिंहादिक व्यवहार सिद्ध होताहै जैसे मन कर्म वचन करके ईर्षा और दुर्वचन और जीवों का घात करना और तीसरा भूतों का स्वभाव मनुष्य विषे यह है कि छल प्रपञ्च दम्भ कपट करना और उपाधि उठावनी और चौथा स्वभाव देवतों का इस विषे बुद्धिहै सो बुद्धि करके दिव्य कार्य करताहै जैसे विद्या और भलाई और विराग को अङ्गीकार करना और निन्द्य कर्मों से आपको बचा रखना और सब जीवों के सुख को चाहना बहुरि बुद्धि करके शुभ कर्मों विषे प्रसन्नता को पावताहै जड़ता और मूर्खता के विघ्नों को समझता है सो इस मनुष्य विषे चारप्रकार के स्वभाव पाये जाते हैं जैसे पशु और भूत और देव स्वभाव आगे वर्णन किये हैं पर कूकुरको जो जगत् विषे अपवित्र कहा जाताहै सो तिसका स्वभाव ही अपवित्रहै शरीर करके अपवित्र नहीं है पर क्रोध करके जो जीवों को फाड़ने लगते हैं ताते अपवित्र हैं तैसेही शूकर में भी शरीर करके अपवित्रता कुछ नहीं है अपवित्र पदार्थों की जो तृष्णा करता है तिसकरके अपवित्र कहा जाताहै तैसेही भूत और देवता जो वर्णन किये हैं सो यहभी स्वभावही का अर्थ है और इन मनुष्यों को सन्तजनों और शास्त्रों ने यही उपदेश कियाहै कि बुद्धिरूपी नेत्रों के प्रकाश करके मनरूपी भूतके छलोंको पहिचानें और उनकी बुराई जानकर अपने चित्त सों त्यागें तब उनकी उसके

विघ्न और छलसे रक्षाहोवे इसी पर महापुरुष ने भी कहा है कि सर्व मनुष्यों विषे भूतों का स्वभाव प्रत्यक्ष है और मेरे विषे भी है पर महाराज ने उसके ऊपर मुझको प्रबल कियाहै उसका विघ्न मुझको स्पर्श नहीं करता तैसेही इस मनुष्य को सन्त- जनों ने इसी प्रकार आज्ञा करी है कि तृष्णारूपी शूकर और क्रोधरूपी कूकर को अपने अधीनकरे जो बुद्धि की आज्ञानुसार बर्ते तब इस करके तेरे सभी स्वभाव भले होजावेंगे और यह स्वभावही तेरे पुण्यों के बीज होवेंगे और जब तू इससे विपर्यय होकर बर्तेगा अर्थात् उनहीं के अधीन होकर चलेगा तब तेरेसबही स्वभाव अशुभ होजावेंगे और वह अशुभ स्वभावही तेरे भाग्यहीनता का बीज होजा- वेंगे पर जब इस जीवको जाग्रत् अवस्था अथवा स्वप्न विषे अपनी अवस्था प्रत्यक्ष होवे तब निस्सन्देह जाने कि मैं भूतों और कूकुरोंके अधीन हूं और उन की आज्ञा विषे बर्तता हूं सो इसका दृष्टान्त यह है कि जैसे किसी धर्मात्मा पुरुष को किसी अधर्मी तामसी मनुष्य के बन्दीखाने में बांध राखिये तब वह धर्मात्मा पुरुष महादुःखी और कष्टवान् होताहै बहुरि जैसे कोई देवता किसी कूकुर अथवा किसी दैत्यके बन्धन विषे आ फँसे तब उसकी भी नीच अवस्था होती है तैसेही जब यह मनुष्य विचारकरे और यथार्थ नीति की दृष्टिकर देखे तब जाने कि मैं दिन रात अपने मन की बासना के अधीन हूं और यद्यपि देखने में मनुष्यका शरीर दृष्टि आवताहूं पर तौभी स्वभाव करके कूकर शूकर और भूतों का स्वरूप हूं सो परलोक विषे यह वार्त्ता प्रसिद्ध होवेगी क्योंकि जैसा जिसका स्वभाव है सो तैसाही शरीर वहां पावता है ताते जिस मनुष्य विषे तृष्णा और अभिलाषा अधिक है सो शूकर के शरीर को पावेगा और इस प्रकार भी है कि जब कोई स्वप्न विषे आपको कूकुर और सिंह देखे तब इसका अर्थ यह है कि उस पुरुष का स्वभाव अपवित्र है काहे ते कि स्वप्न भी परलोक को लखावनेहारा है इस करके कि स्वप्न विषे भी यह मनुष्य इन्द्रियादिक देश से उल्लंघित होजाताहै ताते स्वप्नविषे जीव को अपना स्वरूप स्वभाव के अनुसार भासता है और जैसा इसका हृदय होता है तैसाही आकार प्रत्यक्ष देखता है और इस वचन का बखान करना भी बहुत विस्तार करिकै होता है ताते इस ग्रन्थविषे कहा नहीं जाता बहुरि जब तैंने इस प्रकार जाना कि यह चारों स्वभाव तेरे अन्तःकरण विषे प्रकटे हैं तब तू अपनी करतूति को विचार करके देख कि मैं इन चारों स्वभावों में से किसकी आज्ञाविषे

चलताहूं और यह बात भी निश्चयजान कि जैसी क्रिया तू करता है तैसाही स्वभाव तेरे हृदय के बिषे दृढ़ होता है और वही स्वभाव तेरे परलोक में भी संगी होगा सो सर्व स्वभावों का मूल यह चारों कृत हैं पर जब तू तृष्णारूपी शूकर की आज्ञा बिषे चलता है तब तेरे हृदय में अपवित्रता और निर्लज्जता और लम्पटता और ईर्षादिक अपलक्षण प्रकट होते हैं और जब तू तृष्णारूपी शूकर को अपने अधीन करे तब संयम और शीलता और गम्भीरता और निर्लोभता और निराशता आदि शुभगुण उपजते हैं बहुरि जब तू क्रोधरूपी कूकुर के अधीन होताहै तब कुटिलता और निश्शङ्कता और बढ़ावना और अपनी स्तुति करनी और दुर्वचन बोलना और मानता चाहनी और और जीवों को नीच जानना और उनको दुखावना इत्यादिक अनेक अवगुण उत्पन्न होते हैं और जब तू इस क्रोधरूपी कूकुर को अपने वशमें करे तब धैर्य, सहनशीलता, क्षमा, स्थिति, पराक्रम और दयाआदिक शुभ गुण प्रकट होते हैं बहुरि जब तू शैतान और भूतों की आज्ञा में वर्तता है तब तेरे हृदय बिषे मलिनता, रोग, कपट, दुविधा और छल पाखण्ड आदिक बुरे स्वभाव आनकर उत्पन्न होते हैं और जब तू इसको अपने वशीकार करे और भूतों के स्वभावों के अधीन न होवे तब तेरी बुद्धि की जीत होती है ताते विवेक, पहिंचान, विद्या, अनुभव, सब जीवों का भला चाहना और भावआदिक गुण बढ़ते हैं सो यह भले स्वभाव जब तेरे हृदय बिषे प्रकट होते हैं तब सर्वदा तेरे संगी होते हैं और अविनाशी हैं और तेरे परमभागों का बीज है बहुरि जो अशुभ कर्म है सो तिन करके हृदय का स्वभाव भी बुरा होजाता है ताते पाप भी इसी का नाम कहाजाता है सो सब करतूति इस मनुष्य के शुभ और अशुभ क्रिया के कदाचित् बिलग नहीं होते पर मनुष्य का जो यह हृदय है सो दर्पणवत् निर्मल है और जेते बुरे स्वभाव तेरे हैं सो धुएं और जंगाल की नाईं हैं ताते इन करके हृदयरूपी दर्पण ऐसा मलिन होजाता है कि भगवन्त के दरबारको नहीं देखसक्ता बहुरि यह जो भले स्वभावहैं सो प्रकाशरूप हैं ताते इन करके हृदयरूपी दर्पण से अविद्यारूपी मैल उतरजाताहै इसीपर महापुरुष ने भी कहा है कि जब कोई निन्दितकर्म तुझ से होजावे तब उसके पीछे शीघ्रही भला कर्म कर तब वह बुराई नष्ट होजावेगी और हृदय मलिन न होने पावेगा क्योंकि परलोक बिषे जैसा किसी का हृदय है

तैसाही प्रकट होजाताहै जिसका हृदय निर्मल है सो वहभी प्रत्यक्ष होताहै इसी पर महाराज ने भी कहाहै कि जिसका हृदय शुद्ध है उसही को भगवन्तकी ओर मार्ग खुलताहै काहेते कि आदि उत्पत्ति बिषे इस मनुष्य का हृदय लोहे की नाईं होताहै सो तिसको विधिसंयुक्त जब मर्दन करिये तब दर्पणवत् निर्मल होजाता है और सर्वपदार्थों को लखावताहै और जब उसको मर्दन न करिये तब ऐसा मलिन होजाताहै कि उस बिषे कुछ निर्मलताई भासती नहीं और किसी पदार्थ को भी नहीं लखाता इसीपर महाराज का वचनहै कि निस्सन्देह मैं तुम्हारे हृदय की ओर देखताहूं और जैसी करतूति तुम करतेहो सो तिनकी ओरभी देखताहूं ॥

सातवां सर्ग ॥

पूर्वपक्ष का वर्णन ॥

ताते जान कि जब तू इस प्रकार प्रश्न करे कि जो इस मनुष्य बिषे पशुओं, सिंहों, भूतों और देवतों के स्वभाव प्रकट हैं सो तो मैं समझा पर इस प्रकार तुम क्योंकर कहतेहो कि यह मनुष्य दिव्यरत्न है और कारण इसका निर्मल है और इसका अपना स्वभाव भी शुद्ध है और अपर सबही परस्वभाव हैं सो इस वार्ताको क्योंकर समझावे कि इस मनुष्य को भगवन्त के निर्मल स्वभाव के प्राप्तहोने निमित्त ही पैदाकियाहै काहेते कि यह चार प्रकार के स्वभाव हैं और इस मनुष्य बिषे इकट्ठेहुये उपजे हैं ताते निर्मल स्वभाव इसका क्योंकर अपना हुआ और अपर स्वभाव परस्वभाव किसकारण कहेगये सो तिसका उत्तर यह है कि इस मनुष्यको भगवन्तने पशुओं और सिंहोंसे विशेष उत्पन्न किया है और सर्व पदार्थों की बड़ाई और पूर्णताई भी भिन्न २ है और जिस पदार्थ की जो बड़ाई होती है सो वोही तिसका कारण कहाजाताहै जैसे गर्दभते घोड़ा विशेषहै काहेते कि गर्दभको बोझ उठावने के निमित्त बनाया है और घोड़े को इस निमित्त उत्पन्नकिया कि उसका दौड़ना और चलना सवार की आज्ञानुसार होवै और लड़ाई में सावधान होवै पुनः घोड़ा आठ गर्दभ की नाईं बोझा उठावने का बल भी रखता है और दौड़ने और संग्राम में सावधानता की बड़ाई अधिक दीनी है कि जो गर्दभबिषे नहीं पाई जाती पर जब घोड़ा अपनी बड़ाई और पूर्णताते हीन होताहै तब बोझा उठावने का अधिकारी रहताहै और गर्दभ के पदको पावता है और उसकी अपनी बड़ाई नष्ट होजातीहै तैसेही जिन पुरुषोंने इस प्रकार समझा

है कि यह मनुष्य खाने और सोवने और कामादिक भोग और धनसंचने के निमित्त उत्पन्न हुआहै सो मूढ़ है और उनकी सर्वआयुष् इनहीं कार्यों विषे बीत जाती है अथवा जिन्होंने इस प्रकार जानाहै कि यह मनुष्य जीतने और क्रोध करनेके निमित्त उत्पन्न हुआहै सो वह भी महातामसी पुरुष और दुष्ट हैं ताते यह दोनों प्रकार के मनुष्य भूले हैं काहेते कि अधिक आहार और भोग तो पशुओं विषेभी पायेजाते हैं जैसे सिंह और बैल का आहार तो मनुष्यसेभी अधिक होता है और चिड़ियों विषे कामचेष्टा अधिक होती है तैसेही क्रोध करना और फाड़ना सिंहों विषे होताहै ताते जो कुछ पशुओं के स्वभाव हैं सो यहभी मनुष्यों को दिये हैं और एक बड़ाई भी इनसे अधिक दीन्हीं है सो बुद्धि है कि उस बुद्धिही करके भगवन्तको पहिंचानताहै और महाराजकी कारीगरी को भी बुद्धिही करके जानताहै और उस बुद्धिही करके क्रोध और भोगोंसे आपको बचाये रखता है सो यह देवस्वभाव कहाजाताहै और इसी स्वभाव करके यह मनुष्य पशुओं और सिंहोंसे विशेषकहाहै और इसीकारण कर सर्वसृष्टि मनुष्यके अधीनहै इसीपर साईं नेभी कहाहै कि धरती और आकाश विषे जेती सृष्टि है सो मैंने तुम्हारी आज्ञाकारी करिदीन्हीं है ताते मनुष्य का जो अर्थ है सो यही बुद्धिहै कि इसकी बड़ाई और विशेषता बुद्धि ही करके प्रकट है और अपर जेते स्वभाव इस मनुष्य विषे पायेजाते हैं सो वास्तव में मनुष्य के स्वभाव नहीं केवल इस जीव की टहल और कार्य के निमित्त उत्पन्न किये हैं बहुरि जब यह जीव मृत्यु होताहै तब भोग और क्रोध की सबही सामग्री नष्ट होजाती हैं पर जब इस जीव की बुद्धि शुद्ध होती है और देवतोंकी नाईं इसका स्वभाव निर्मल होताहै तब चैतन्य देश विषे प्राप्त होता है और निस्सन्देह भगवन्त की पहिंचान और उसके दर्शन विषे लीन होता है बहुरि जिसकी बुद्धि मलिन और विपरीत होती है तब वह भोगों और क्रोधकी मलिनता करके आवरण आजाताहै सो यद्यपि उस देश विषेभी जाताहै तौभी उसका मुख संसार की ओर रहताहै अर्थ यह कि उसका हृदय इन्द्रियादिक भोगोंमें बध्यमान होताहै और सर्वदा उसको विषयोंकी खैंच रहतीहै ताते उसको अधोगति कहाहै और अधोगति का अर्थ यह कि परलोकरूपी उत्तम देश विषे भी उस मनुष्यका हृदय नीचताकी ओर खिंचा रहताहै इसीपर साईंने भी कहाहै कि परलोक विषे पापियों का शीश नीचे लटकाया रहैगा ताते जिस मनुष्य की

ऐसी अवस्था है सो भूतों के समान कहना चाहिये बहुरि ऐसे जान तू कि हृदय-रूपी देश की ऐश्वर्यता अमित है और बड़ाई इसकी यह है कि इस मनुष्य का हृदय सर्वपदार्थों से आश्चर्यरूप है परन्तु मनुष्य अचेतता करके इस आश्चर्यता को नहीं पहिंचानते और विशेषता इस मनुष्य की दोप्रकार करके कहीहै सो एक विद्याहै और द्वितीय बल है बहुरि विद्या करके जो यह विशेषता कही है सो इसे सब कोई पहिंचानता है सो स्थूल है और दूसरी सूक्ष्म और गुह्य है सो महादुर्लभ है बहुरि स्थूलविद्या यह है कि यह मनुष्य सर्वपदार्थों की विद्याका वेत्ता होसक्ता है और नानाप्रकारकी कारीगरी को पहिंचानसक्ता है बहुरि अनेकग्रन्थों की विद्या को पढ़सक्ता है जैसे वैद्यक, ज्योतिष, व्याकरण, धर्मशास्त्र और अनेक विद्या के भेदों को समझता है और यद्यपि येते प्रकार की विद्या को पढ़ता है तौभी इस मनुष्य का हृदय ऐसा आकाशरूप है कि पण्डिताई को नहीं प्राप्तहोता और सर्व पदार्थों का ज्ञान इस विषे समा जाता है अथवा सर्व संसार ही इसकी चैतन्यता के विषे ऐसा समा रहा है कि जैसे समुद्र विषे बूंद समाजाता है और इस चैतन्य पुरुष की ऐसी सूक्ष्मगति है कि अपने किंचित् संकल्पकरके पाताल और आकाश का कार्य करलेता है और उदय अस्तलों देख आवता है सो यद्यपि इस चैतन्य का सम्बन्ध इस शरीरके साथ ऐसा दृढ़ है कि सर्वदा आपको शरीरही जानताहै तौभी इसविषे ऐसी शक्तिहै कि विद्या के बलकरके आकाश के तारों का प्रमाणभी पहिंचानता है और योंभी जानता है कि अमुक ग्रह अमुक स्थान विषे आया है और अमुक ग्रह अमुक ग्रहते इतना दूरहै बहुरि विद्याही के बल करके मछली को समुद्रकी गहराई से बाहर निकाल लेताहै और आकाशविषे उड़नेहारे पक्षियोंको पृथ्वीपर आन डालताहै और जो कुछ इस जगतविषे आश्चर्यता और विद्या है सो तिसको पांच इन्द्रियों करके ग्रहण करलेता है सो यह इन्द्रियादिक विद्या सबही स्थूल कहलातीहै ताते इसको सब कोई पहिंचानता है बहुरि दूसरी विद्या जो महाआश्चर्यरूप है सो यह है कि इस मनुष्य के हृदयविषे एक बारी अर्थात् खिड़की है सो वह देवलोक की ओरको खुलीहुईहै जैसे यह पांचों इन्द्रियां आधिभौतिक जगत् की ओर को खुलीहुई हैं पर सूक्ष्मदेश का नाम देवलोक है और चैतन्यदेश भी उसीको कहते हैं सो बहुत पुरुष तो इसी इन्द्रियादिक देश को समझते हैं पर चैतन्यदेश की अपेक्षा करके जो देखिये तो यह सब जगत्

तुच्छमात्र है बहुरि चित्तविषे जो खिड़की है सो तिसका खुलनाभी दो प्रकार का होताहै प्रथम जब निद्रा करके सर्व इन्द्रियों का मार्ग रोकाजाता है तब स्वप्न विषे सूक्ष्मदेश की ओर वह खिड़की खुलती है सो तिसविषे अपूर्व सृष्टिको भी पहिंचानताहै पर प्रत्यक्ष नहीं देखता जैसे मन्ददृष्टि जीवों को पदार्थों का स्वरूपभी मन्द ही दृष्टि आता है तैसेही स्वप्नविषे भविष्यकाल को इस प्रकार पहिंचानता है कि जब उस स्वप्न का बखान करिये तब युक्तिकर समझा जाता है अन्यथा नहीं समझाजाता सो यह वार्त्ता प्रसिद्धहै और सब कोई जानताहै कि जाग्रद्विषे किसी भविष्यकाल की प्रकटता नहीं होती और स्वप्नविषे सब कोई अधिक व अल्पभविष्य देखताहै सो वह देखना इन्द्रियोंके मार्गकर नहीं होता और इस स्वप्न का अर्थ खोलना भी बहुत विस्तार करके होताहै ताते इतना कुछ तात्पर्य समझना चाहिये कि इस मनुष्य का हृदय दर्पणवत् निर्मल है सो जैसे दो दर्पण परस्पर सम्मुखहोने समय उनका प्रतिबिम्ब एक दूसरे विषे भास आवता है तैसेही चित्तरूपी दर्पण जब इन्द्रियादिक वृत्ति सों भिन्न होता है तब हिरण्यगर्भ जो स्थूल जगत् का आश्रय है सो तिसका प्रतिबिम्ब चित्त विषे भास आवताहै और जब यह चित्त इन्द्रियों की वृत्तिको त्याग जाताहै तब भविष्यकाल को देखता है इस विषे इतना भेद है कि यद्यपि स्वप्न विषे इन्द्रियों की वृत्ति रोकीजाती है तौ भी संकल्पों का ठहरना नहीं होता और चित्तका फुरना भटकता रहताहै ताते स्वप्नविषे भविष्यकाल को मन्ददृष्टिकी नाईं देखताहै और पदार्थों को प्रत्यक्ष नहीं देखता और जब यह जीव शरीर को छोड़जाता है तब इन्द्रिय और संकल्प की वृत्ति नष्ट होजातीहै तो उसको परलोक प्रत्यक्ष भास आवताहै और नरक स्वर्गको भी प्रत्यक्ष देखताहै तब महाराज के आगे प्रार्थना करने लगताहै कि हे भगवन्! तू मेरी सहायताकर बहुरि दूसरी युक्ति यह है कि जब किसी को अकस्मात् कोई संकल्प फुरआताहै तब वही संकल्प सत्यरूप होकर भासताहै और इस प्रकार नहीं जाना जाता कि यह संकल्प कहां से आयाथा सो इस करके इतना पहिंचान सकता है कि विद्याका मार्ग केवल इन्द्रियांही नहीं ताते विद्याका प्रकटहोना सूक्ष्मदेश ते होताहै और इन्द्रियों को इस स्थूलजगत् के ग्रहणकरने के निमित्त उत्पन्न किया है इसीकारण करके सूक्ष्मदेश की पहिंचान विषे इन्द्रियों करके पटल होताहै सो जबलग इन्द्रियों की विक्षेपता दूर न होवे तबलग सूक्ष्मदेशको नहीं पाता बहुरि

चित्तविषे जो वारी अर्थात् खिड़की कहीथी सो तिसके खुलने का दूसरा प्रकार यह है कि जब कोई पुरुष इस जगत विषे पुरुषार्थ और अभ्यासकर इन्द्रियों को रोके और चित्त को क्रोध और भोग और मलिन स्वभाव और सर्व अभिलाषाते शुद्धकरे बहुरि एकान्त ठौर बैठकर मनको एकत्रकरे और चित्तकी वृत्ति चैतन्य देश की ओर लगावे और भजनविषे सावधान होवे तब उसही अभ्यास विषे ऐसा लीन होता है कि उसको अपना शरीर और सर्वजगत् विस्मरण होजाता है और उसके चित्तविषे किसी पदार्थ का ज्ञान नहीं फुरता सो जब इस पुरुषकी ऐसी अवस्था होतीहै तब निस्सन्देह जाग्रत् विषेही उसको सूक्ष्म देश की खिड़की खुलती है और और पुरुषों को जो स्वप्न विषे भविष्यकाल की खबर होती है सो तिसको जाग्रत् विषे ही फुरआती है बहुत देवतों और अवतारों के स्वरूप को प्रकट देखताहै उनसों सहायता और लाभ पाता है सो जिसके हृदय विषे ऐसा मार्ग खुलता है तिसको और अनेक पदार्थों का भी ज्ञान होता है कि जिनका बखान नहीं कियाजासक्ताहै इसीपर महापुरुषने भी कहाहै कि मैंने अपने प्रकाश करके धरती और आकाश को लपेटलिया है और उदय अस्त को मैंने प्रत्यक्ष देखा है ताते सन्तजनों की जो विद्या है सो तिनको अपने चित्त के मार्ग विषे खुली है और उनका जानना इन्द्रियोंके मार्ग करके नहीं हुआ पर प्रथम उन्हों ने भी यत्न और अभ्यास कियाहै इसीपर साईं ने भी कहा है कि प्रथम तुम सब पदार्थों से विरक्त और शुद्ध होवो बहुरि अपने आपको मुझ को अर्पण करो और मायाके कार्यों विषे आसक्त न होवो इस करके कि कार्य तुम्हारे मेरी सहायता करके सिद्ध होवेंगे काहेते कि उदय अस्त विषे मेरी नाईं और कोई समर्थ नहीं ताते मेराही आसरा करो और और किसी कार्य की ओर हृदय न देवो और जब तुमने मेरा आसरा लिया तब तुम अपने चित्तको निस्सङ्कल्प कर सब जगत् ते भिन्न होवो ताते यह जो सब उपदेश और यत्न वर्णन किया है सो जगत् के जञ्जाल और इन्द्रियादिक भोगोंसे हृदयकी शुद्धता के निमित्त कहा है ताते जिज्ञासुओं और सन्तोंका आदिमार्ग यही है बहुरि शास्त्रोंकी विद्या को पढ़ना और उनके भेदों को समझना पण्डितों का मार्ग और विशेषता है पर तौ भी सन्तजनों की विद्या ऐसीहै कि वह किसी शास्त्र और किसी उपदेशके अधीन नहीं ताते उनके हृदय विषे भगवन्त की सहायता करके सर्वदा अनुभवका मेघ

वरसताहै सो यह वार्त्ता बहुत पुरुषों को प्राप्तहुई है और उनकी अवस्था ऐसीही दृढ़हुईहै और शास्त्रों के वचन और अपनी बुद्धिकरके भी समझा जाता है ताते तुझको इतना तो अवश्यमेव समझना चाहिये कि इस अवस्था के प्राप्तहोनेकी प्रतीति तेरे हृदय विषे दृढ़होवे बहुरि सन्तजनों की अवस्था और विद्यावानोंका मार्ग और तीसरी उनकी प्रतीति सों अप्राप्त न होवे और यह जो अवस्था वर्णन विषे आई है सो इस मनुष्य के हृदय की आश्चर्यता यही है और इसीकरके मनुष्य के हृदय की विशेषता कहीहै बहुरि इसप्रकारभी अनुमान न किया चाहिये कि यह अवस्था आगेही सन्तजनों और अवतारों को प्राप्तहुईहै और इस समय विषे किसी को नहीं प्राप्तहोती काहेते कि आदि उत्पत्ति विषे सब मनुष्यों का हृदय इस पद का अधिकारी होता है जैसे सब लोहा दर्पण का अधिकारी होता है पर जब कोई जङ्गारकरके महामलिन होजावे तब उसकी निर्मलता नष्ट होजातीहै तैसेही जिस मनुष्य का हृदय माया की तृष्णा और भोगों की अभिलाषा करके और पापकर्मों करके मलिन होजाताहै और उसके ऊपर यह बुरे स्वभाव प्रबल होजातेहैं तब निस्सन्देह उसकी मनुष्यता नष्ट होजाती है और उस परमपद के पावने का अधिकारी नहीं कहलाता इसीपर महापुरुष ने भी कहाहै कि सबही बालकोंका एक धर्म होताहै पर पीछे माता पिता की सङ्गति करके उनका निश्चय भिन्न २ होजाताहै इसीपर साईंने भी कहाहै कि तुम्हारा मैं ईश्वर हौं और तुम मेरे उत्पन्नकिये हुये हो तब सर्वजीवों ने इस वचनको सत्य करके माना है सो इस वचनविषे प्रसिद्धहुआ कि इस अवस्था के प्राप्तहोनेका सब कोई अधिकारी है इस विषे कुछ भेद नहीं जैसे बुद्धिमान् पुरुष इस बात को प्रत्यक्ष जानताहै कि एकसे दो अधिक होते हैं सो यद्यपि उसी ने किसीसे सुनाभी नहीं तौभी इस वचनको निस्सन्देह समझता है तैसेही सर्व जीवों की आदि उत्पत्ति विषे यह निश्चय दृढ़ है कि हमारा उत्पत्तिकर्त्ता भी ईश्वर है धरती और आकाश को भी उसीने स्थित किया है ताते यह वार्त्ता अपने अनुभव और बुद्धि की युक्ति करके हमने प्रत्यक्ष समझी है कि उस परमपद को प्राप्तहोना केवल उन्हीं का अधिकार नहीं इसीपर महापुरुष ने भी कहा है कि मैं भी तुम्हारी नाईं मनुष्य हूं पर भगवन्त की सहायता करके मुझको आकाशवाणी होतीहै ताते इस वचन का तात्पर्य यहहै कि जिस पुरुष को ऐसी अवस्था प्राप्तहोवे और सर्व जीवों को

उपदेश करके कल्याण का मार्ग दिखावे तब उसको आचार्य और अवतार कहते हैं और उसके वचनही धर्मशास्त्र कहलाते हैं और जिसको यह अवस्था भी प्राप्तहोवे और उस बिषे उपदेश का बलभी होने पर किसी और आचार्य का उपदेश जगत् विषे वर्त्तमान होवे और इस करके वह उपदेश न करे तौभी उस पुरुष की अवस्था कुछ खण्डित नहीं होती और तुझकोभी इस वार्त्ताकी प्रतीति उचित है और यद्यपि इस अवस्था के प्राप्तहोने का मूल अभ्यास है पर तौभी भगवन्त की सहायता करके पहुँच सक्ता है और अपने बल करके पहुँचना कठिन है काहेते कि मार्ग में विघ्न करनेहारे शत्रुभी बहुत हैं और जो पदार्थ दुर्लभ होता है तिसका पावनाभी दुर्लभ होता है और उस वस्तु के प्राप्तहोनेके निमित्त युक्ति भी बहुत चाहती है इसी कारण ते कहा है कि सबही खेती बोवनेवाले अनाजको नहीं पाते और सबही ढूंढ़नेवाले अपनी प्रियतम वस्तुको नहीं पासक्के हैं सो यद्यपि अनाज की प्राप्ति खेतीही करके होती है और वस्तुका पावना ढूंढ़ने करके होता है तौ भी अकस्मात् विघ्नभी होजाता है बहुरि यह जो सब बखान हुआ है सो इस मनुष्य की बूझ और उत्तम अवस्था वर्णन करी है और इसका प्राप्त होना यत्न और पूर्ण गुरुदेव की सहायता बिना सम्भव नहीं होता और जब जिज्ञासु को यत्न और सद्गुरु की संगति भी प्राप्तहोवे तौ भी सर्वप्रकार भगवन्त की सहायता चाहिये काहेते कि उसकी सहायता बिना कोई कर्म सिद्ध नहीं होता इसी पर महापुरुष ने भी कहा है कि पुरुषार्थ और बड़ाई भी उसही को प्राप्तहोती है जिसको भगवन्त देता है और धर्म का मार्ग भी वही देखता है जिसको साईं आप देखावै ॥

आठवां सर्ग ॥

मनुष्य के बल वर्णन में ॥

तातें जान तू कि मनुष्य की विशेषता और विद्या को जो तैंने भलीप्रकार समझा तब चाहिये कि बल करके जिस प्रकार मनुष्य की विशेषता है सो तिसको पहिंचान इस करके कि वह भी देवशक्ति है और पशुआदिक में पाई नहीं जाती सो तिसका अर्थ यह है कि जैसे यह सबही शरीरधारी जीव देवतों के अधीन हैं सो वह देवता भगवन्त की आज्ञा पाकर जीवों के सुखके निमित्त मेघ बरसावते हैं और जिस समय बिषे पवन चाहिये है तब पवन को

चलावते हैं बहुरि गर्भविषे जीवों का प्रतिपाल करते हैं और धरती विषे वनस्पतियों की उत्पत्ति करते हैं इसी प्रकार सबही देवता भगवन्त ने अपने २ कर्मों विषे दृढ़ किये हैं तैसेही इस मनुष्य का जो हृदय है सो यह भी देवरत्न है और इसविषे भी देवतों की नाईं बल दिया है इसी कारण ते केते शरीरों पर इसकी भी आज्ञा चलती है और इसका जो निज शरीर है सो भी इसके हृदय के अधीन है और सर्व अङ्गों विषे चित्तकी आज्ञा वर्त्तती है जैसे यह वार्त्ता प्रसिद्ध है कि हाथ की अंगुली विषे चित्त का स्थान नहीं कह सके पर चित्त की प्रेरणा करके प्रत्यक्ष अंगुली हिलती हैं ऐसेही जब चित्तविषे क्रोध का बल होताहै तब शरीर के अङ्गों विषे पसीना हो आवता है सो यह वर्षा की नाईं है बहुरि जब चित्त विषे काम का संकल्प आन फुरता है तब इन्द्रियों को चपलता आन होती है और जब भोजन करने लगता है तब रसना भी जल को डालने लगती है सो इस वार्त्ता को सब कोई जानता है कि शरीरकी सर्व क्रिया चित्त के फुरने करके होती है बहुरि योंभी है कि केते पुरुष विशेषता और पुरुषार्थ संयुक्त ऐसे दृढ़ होते हैं कि उनका स्वभाव देवतों की नाईं दृढ़ होता है ताते उनकी आज्ञा और शरीरों पर चलती है और उनके तेजकरके सिंह भी कांपने लगते हैं और जब वह चाहैं तब रोगी पुरुषको आरोग्य करलेवें और जब क्रोध करके देखें तब आरोग्य मनुष्य भी रोगी होजावे और जो पुरुष उनसे दूर होवे तब उसको संकल्प की खैंच करके निकट लेआते हैं और उसके चित्तको खैंचलेते हैं बहुरि जब इस प्रकार चाहें कि मेघ बरषे तब बर्षा होनेलगे सो यह सबही वार्त्ता प्रसिद्ध और निश्चय होती है और बुद्धि की युक्ति करके भी पहिंचाना जाता है सो सन्तजनों का बल इससे भी अधिक है बहुरि दृष्टिदोष और मन्त्र यन्त्र आदिक जो फुरना है सो यह भी मनुष्य के हृदय की विशेषता और बलहै सो वह बलही और शरीर विषे प्रवेश करता है पर जिसका हृदय मलिन होताहै सो तिसका बल भी ऐसा होता है कि जब किसी सुन्दर पशु को देखता है तब उसकी ईर्षा और दोषदृष्टि करके तत्कालही वह पशु नष्ट होजाता है सो यह भी मनुष्य के हृदय का बलहै पर इस विषे इतना भेद है कि जिसके बल करके जीवों का हृदय शुभमार्ग विषे दृढ़ होवे तब उसको शुद्ध सात्त्विकी बल कहते हैं और जिसके बल करके जीवों को शारीरिक अथवा धन का सुख प्राप्त होता है

तब उसको सिद्धता और ऐश्वर्य कहते हैं और जिसके बल करके उपाधि और खेद उत्पन्न होवै सो तिसको तामसी बल कहते हैं पर तौभी शुद्ध सात्त्विकी बल और ऐश्वर्य और यन्त्र मन्त्रादिक जेते तामसीबल हैं सो यह सबही इस मनुष्य के हृदय का बल और पुरुषार्थ है पर स्थूलदृष्टि करके देखिये तौ इन्हों विषे बड़ा भेद है सो इसका बखान भी सम्पूर्ण इस ग्रन्थ विषे कहा नहीं जाता पर जो पुरुष इस बचन के भेद को नहीं समझता तो तिसको सन्तजनों की अवस्था की पहिंचान कुछ भी नहीं होती और श्रवणमात्रही वह पुरुष उनको सन्त जानता है पर तौभी अवतारों और सन्तजनों की जो अवस्था है सो यह सबही इसी मनुष्य का पुरुषार्थ है और इस अवस्था के भी तीन लक्षण हैं उनमें से प्रथम यह है कि संसारीजीव जिस भेद को स्वप्नकरके पहिंचानते हैं सो सन्तजनों को जाग्रत् विषेही प्रत्यक्ष भासताहै और दूसरा यह है कि इतर जीवों का संकल्प अपनेही शरीर में प्रवेश करता है और सन्तजनों का संकल्प सर्व शरीरों विषे प्रवेश करजाता है पर इस संकल्प के प्रवेशकरके जीवों का हृदय शुद्धमार्ग को पाता है बहुरि तीसरा यह है कि और जीव जिस विद्या को पढ़कर भास होते हैं सो विद्या सन्तजनों को विनापढ़ेही अपने अन्तःकरण विषे फुर आवती हैं इसकी युक्ति यह है कि जो पुरुष बुद्धिमान् शुद्धचित्त होता है सो तिसको कितनी विद्या अपने हृदय मेंही भास आती है और अनुभव भी इसीको कहते हैं इसीपर साईंने भी कहा है कि केते पुरुषों की विद्या अपनेही अनुभव करके होती है ताते जिस पुरुष में यह तीन लक्षण सम्पूर्ण होतेहैं तब उसकी अवस्था सन्तजनों और अवतारों आचार्यों की होती है पर जब उस पुरुष की आज्ञा और उपदेश जगत् विषे बर्त्तमान होवै तब उसको आचार्य कहते हैं और जब वैराग्य करके सकुचता है अर्थात् उपदेश नहीं करता है तब उसकी सनकादिक अवस्था कहलाती है पर सन्तजनोंकी अवस्था विषे भी बड़ाभेद होता है किसी की अवस्था उत्तम होतीहै और किसीकी मध्यम और किसी की निकृष्ट होतीहै पर सम्पूर्ण सन्त उसीही को कहतेहैं कि जिसमें यह तीनों लक्षण सम्पूर्ण होवें पर यह तीन लक्षण भी इस निमित्त कहे हैं कि इनका कछुक अंश जीवों विषे भी पायाजाताहै जैसे स्वप्न और संकल्प का सत्यहोना और अनुभव जो कहआये हैं सो मनुष्य इन तीनों करके वह तीन लक्षणभी समझताहै काहेते कि इस मनुष्य

का यही स्वभावहै कि जिस अवस्था का अंश इस विषे होताहै उस विषे प्रतीतिभी करताहै इसी कारण करके कहा है कि भगवन्त की पूर्णताईको भगवन्तही ठीक जानता है और कोई नहीं पहिंचानसकता सो इसका तात्पर्य यह है कि आचार्यों और सन्तों विषे इन तीन लक्षणों से अधिक और भी अनेकलक्षण हैं पर हमको उनकी पहिंचान कुछ नहींकाहेतें कि उनका अंश हमारेविषे कुछ पाया नहीं जाता इसी कारणते कहा है कि जैसे भगवत्‌को आप भगवतही यथार्थ पहिंचानता है तैसेही सन्तजनों की अवस्था को सन्तजनही पहिंचानते हैं इतर जीव नहीं जानसकते सो इसका दृष्टान्त यह है कि जब हमारे देश विषे निद्राकी प्रबलता न होती और कोई पुरुष हमको यह वार्त्ता सुनाता कि अमुकदेशविषे पृथ्वीपर लोग पड़ेहुये दृष्टिआतेहैं पर उनविषे बोलना देखना सुनना कुछ नहीं रहता और उनकी चेष्टा भी शून्य होजाती है और फिर समय पाकर सुचेत हो उठते हैं सो जब हमको निद्रा न होती तब हम कदाचित् इस वार्त्ता को न समझते काहे ते कि यह मनुष्य जो कुछ देखता है सो उसीपर प्रतीति करता है इसीपर साईंने भी कहा है कि यद्यपि मैंने तुमको विद्या समझने का अधिकार दियाहै पर तौभी जबलग मैं तुमको मार्ग न दिखाऊं तबलग तुमको उस विद्याके भेद की युक्ति नहीं खुलती ताते तू इस वार्त्ता को आश्चर्य न जान कि सन्तजनों विषे कितने लक्षण ऐसे भी होते हैं कि उनको और कोई पहिंचान नहीं सकता और वह सन्त उन लक्षणों करके परमानन्द को पाते हैं जैसे यह वार्त्ता प्रसिद्ध है कि जिस पुरुष को राग और गीत की पहिंचान नहीं होती तिसको राग और गीत के श्रवण करने से आनन्द कुछ नहीं होता और जब कोई उसको और गीत शब्द का अर्थ समझावै तौभी नहीं समझता काहेते कि वह उसको जानता ही नहीं बहुरि जैसे जन्म के अन्धे को तेजरूप और सुन्दरताई का ज्ञान कुछ भी नहीं होता तैसेही भगवन्त की सामर्थ्य के विषे यह बात कुछ आश्चर्य नहीं कि आचार्यों और सन्तजनों को ऐसी भी कितनी अवस्था प्राप्त होती हैं कि उनको और जीव नहीं जानते ॥

नववां सर्ग ॥

पूर्वपक्ष के उत्तरके बखान में ॥

ताते जान तू कि इससे आगे जो कुछ वर्णनकियाहै सो इस करके तैंने मनुष्य

की विशेषता को समझा और जिज्ञासुओं का मार्ग भी तैंने पहिंचाना पर जब तैंने योगीजनोंसे यह सुना होवे कि अन्तरीय अभ्यास मार्ग बिषे यह विद्या पटल डालती है तो तुझको इस वचन का तिरस्कार करना प्रमाण नहीं काहेते कि यह वचन निस्सन्देह सत्य है कि यह इन्द्रिय और इन्द्रियादिक विद्या जो स्थूल हैं सो हृदय की एकाग्रताबिषे यहभी पटलहै और इस करके चित्त विक्षेपता को प्राप्त होता है सो इसका दृष्टान्त यह है कि इस मनुष्य का हृदय तालाब की नाईं है और यह पाँचों इन्द्रिय तालाब बिषे जल प्रवेशकरने के मार्ग हैं सो जब कोई इस तालाबके भीतर से निर्मलजल निकालाचाहे तब इसका उपाय यह है कि प्रथम जो उस तालाव बिषे बाह्यजल है तिसको निकाले बहुरि उस मलिन कीच को दूरकरे फिर उस तालाब को खोदे और जल प्रवेश करनेवाली मोहरियों को रोके तब उस तालाबबिषे निर्मलजल उत्पन्नहोवे पर जबलग वह बाह्यका जल और कीच दूर न होवे तबलग निर्मलजल कदाचित् नहीं निकलता तैसेही चित्त जब इन्द्रियादिक विद्यासे रहित न होवे तबलग वह सूक्ष्मविद्या कदाचित् नहीं प्रकट होती ताते जब यह पुरुष स्थूल जगत् की जानता को विस्मरणकरे और हृदयके अभ्यास बिषे दृढ़ होवे तब निस्सन्देह अनुभवविद्याको पाताहै और स्थूलविद्याको जो पटल वर्णन कियाहै सो इसनिमित्त कहाहै कि जब यह मनुष्य किसी मत और पन्थ को ग्रहण करताहै तब उसकी विद्या और युक्तियों को पढ़कर प्रतीति करलेताहै फिर एक दूसरे के मत को खण्डन किया चाहताहै और उसके वाद विवाद बिषे दृढ़ होताहै तब ऐसे जानताहै कि इस विद्यासे इतर और विद्या कोई नहीं बहुरि तिससे पीछे जब किसी यथार्थ वचन को श्रवण करताहै और समझता भी है पर तौ भी अपने हृदयबिषे ऐसा अनुमान करताहै कि जैसी विद्या मैंने आगे पढ़ी है सो यह वचन उससे विपर्यय है ताते उन वचनों को यथार्थ नहीं जानता इसीकारण से यथार्थ विद्याको प्राप्त नहीं होता और संसारी जीव जिस विद्या को और मत को निश्चय करते हैं सो विद्या यथार्थ ज्ञानकी त्वचाहै अर्थात् सारवस्तु नहीं और यथार्थज्ञान उसको कहते हैं कि उस गुह्यभेद को भलीप्रकार समझै पर जैसे दृक्षकी त्वचा जब दूर होती है तब उसका सर्वरस और गूदा प्रकट होताहै तैसे जब पन्थों और मतों का निश्चय दूर होताहै तब यथार्थ वस्तु का ज्ञान प्रकट होताहै ताते जान तू कि जो पुरुष वादविवाद की विद्याको पढ़ताहै उसको यथार्थज्ञान की विद्या नहीं प्राप्त

होती और वह जानताहै कि जो विद्या मैंने पढ़ी है सो यथार्थरूप यही विद्या है ताते यह अभिमानही उसको पटल होताहै इस करके कि ऐसी विद्या पढ़नेवाले को अवश्यमेव अभिमान उपजताहै और जब वह पुरुष अभिमानी न होवे तब उसको वह विद्या पटल नहीं होती और सारवस्तु के ज्ञान को पाताहै और उसकी अवस्था भी उत्तम होतीहै और वह यथार्थ मार्ग विषे चलताहै पर बहुत विद्यावान् तो ऐसे होते हैं कि अपना जन्म मिथ्याप्रतीति विषेही खोते हैं और वह स्थूल प्रतीतिही उनको पटल डालती है और जो पण्डित बुद्धिमान् होताहै सो झूठी प्रतीति नहीं करता कदाचित् भी और संशयों से निर्भय होताहै ताते इस वचन विषे जो विद्याको पटल कहाहै सो तिसका अर्थ तुझको समझना योग्यहै और तिरस्कार करना प्रमाण नहीं पर तौभी यह वचन उसको कहना योग्य है जिस को अनुभव विद्या खुली है और यह जो मनमती झूठे लोग हैं तिनको अनुभव विद्या नहीं प्राप्तहुई थोड़े से सूक्ष्म वचन सन्तजनों के उन्होंने पढ़लिये हैं और सर्वदा करतूति उनकी यही है कि सदैव शरीर को धोतेरहते हैं अथवा मैली गुदड़ी और आसनों को बनावते रहते हैं और समझ विनाही विद्यावानों और विद्या की निन्दा करते हैं सो तिनको अति दण्ड देना उचितहै काहेते कि वह जगत् का मार्ग खोनेवाले हैं भगवत् और भागवतों से विमुखहैं इसकरके कि भगवत् और सन्तजनों ने विद्यावानों की स्तुतिकरी है और सर्वजगत् को विद्या पढ़ने का उपदेश कियाहै और यह जो पापी भाग्यहीन लोग हैं सो उस अनुभवकी अवस्था को भी नहीं प्राप्तहुये और विद्यासे भी हीनहैं ताते इनको विद्यावानों की निन्दा करनी कैसे प्रमाण होवे सो ऐसे पुरुषों का दृष्टान्त यह है कि जैसे किसीने सुनाहोवे कि स्वर्ण से रसायन उत्तम है काहेते कि रसायन करके अमित स्वर्ण उत्पन्न होता है और जब कोई उसको स्वर्ण देवे तब अङ्गीकार न करे और कहे कि स्वर्ण किस काम आताहै और इसका मोल भी तुच्छहै ताते हमको तो रसायन चाहिये है क्योंकि रसायन स्वर्णका मूलहै पर जब वह पुरुष स्वर्ण भी न लेवे और उसके पास रसायन भी न होवे तब वह पुरुष निर्द्धन और भाग्यहीन रहता है और मूर्ख है काहेते कि रसायन की विशेषता सुनकरही प्रसन्न होता है तैसे ही सन्तजनों की अवस्था रसायन की नाईं है सो यह वार्त्ता निस्सन्देह है कि रूपे और स्वर्ण से रसायन का पाना विशेष है तैसेही सन्तजनों की अवस्था विद्या-

वानों से विशेष है बहुरि इस विषे एक और भी भेद है कि जैसे किसी के पास इतनाही रसायन होवे कि १०० मोहर प्रमाण स्वर्ण उससे होसके और किसी और पुरुष के पास सहस्र मोहर होवें तब उस सहस्र मोहरवाले पुरुषसे सौ मोहर की रसायनवाला विशेष नहीं होता काहेसे कि रसायन की विद्या और उसके ढूँढ़नेवाले पुरुष जगत् विषे बहुत हैं पर रसायन की पूर्ण विद्या प्राप्त होनी कठिन है इसीकारण से चिरकाल में किसी विरले को प्राप्त होती है तैसेही हृदय के अभ्यास का जो मार्ग है सो यद्यपि महाउत्तम है पर इसकी पूर्णताई को पहुँचना महादुर्लभ है तातें योंभी पहिंचानना चाहिये कि जिस पुरुष को ध्वनि ध्यान अथवा मन्त्र यन्त्र का कुछ परचो होताहै तौ भी वह पुरुष सर्व विद्यावानों से विशेष नहीं होता काहेते कि जब किसी को प्रथम साधन करके कछुक एकत्रता होती भी है तौभी बहुत पुरुष पीछेको पसरजाते हैं अथवा किसी संकल्प करके बावले होजाते हैं और वह जानते हैं कि हम बड़ी अवस्था को प्राप्तहुये हैं ताते ऐसा कोई विरलाही होता है जो अपनें हृदय की शुद्धता करके पूर्णपद को पहुँचे और बहुत तो विक्षेपता को प्राप्त होजाते हैं जैसे सच्चा स्वप्न भी कोई होता है और विशेष करके तो चित्त का भ्रमही होता है ताते विद्यावानों से वह पुरुष विशेष कहाजाता है जिसकी अवस्था ऐसी होवे कि जिस विद्या को और जीव पढ़कर समझें सो तिसको विना पढ़ेही भासआवे सो यह अवस्था महादुर्लभ है ताते तुझको उचित है कि सन्तजनों की अवस्था और उनकी विशेषतापर भी तेरी प्रतीति होवे और पाखण्डी मनुष्यों के वचनों करके विद्यावानों का निरादरभी न करे तब तेरा धर्म नष्ट न होवे बहुरि जब तू इसीप्रकार प्रश्नकरे कि इस मनुष्य की बुराई भलाई उत्तम भाग जो भगवन्त की पहिंचान करके आगे कहाहै सो इस भेदको क्योंकर पहिंचानिये तब इसका उत्तर यह है कि जिस पदार्थ करके किसी को प्रसन्नता और आनन्द प्राप्त होताहै तब वही पदार्थ उस पुरुष की भलाई कहीजातीहै बहुरि प्रसन्नता और आनन्द उस पदार्थ विषे प्राप्त होताहै जो पदार्थ इसके स्वतः स्वभाव अनुसार होता है और स्वतः स्वभाव उसीको कहते हैं कि जिस पदार्थ के निमित्त इस जीव को भगवन्त ने उत्पन्न कियाहै जैसे कामकी प्रसन्नता यह है कि अपनी इष्ट वस्तु को प्राप्त होना और क्रोध की प्रसन्नता यह है कि अपने शत्रुको जीते बहुरि श्रवणों को सुख

सुन्दर शब्द और राग विषे होताहै तैसेही बुद्धि की प्रसन्नता और भलाई यह है कि कामों के भेद को पहिंचाने काहेते कि इसका अपना स्वभाव भी यह है और भगवन्त ने भी इस बुद्धि को इसी निमित्त उत्पन्न कियाहै बहुरि काम और क्रोध और पांचों इन्द्रियों के भोग तो पशुओं विषे भी पाये जाते हैं परन्तु यह स्वभाव मनुष्यों में और अधिक है कि जिस पदार्थ के भेद को नहीं जानता तब निस्सन्देह उस पदार्थ को ढूँढ़ा करताहै और जानना चाहताहै बहुरि जब उसके भेद को समझताहै तब प्रसन्न होकर उसपर बड़ाई करताहै और यद्यपि वह पदार्थ नीच होवे तौभी उसके ज्ञान विषे ऐसा प्रसन्न होताहै कि उस प्रसन्नता को रोंक नहीं सक्ता जैसे शतरञ्ज खेलनेवाला पुरुष शतरञ्जकी विद्या बताने से धैर्य नहीं करसक्ता और योंभी समझता है कि मैं भली प्रकार खेलताहूं ताते उस प्रसन्नता को प्रकट किया चाहताहै सो जब तैंने इस वचन के भेद को समझा कि इस मनुष्य का स्वस्वभाव पहिंचानहै तब ऐसे जान कि जो पदार्थ जितनाही जानने योग्य विशेष और उत्तम होताहै तितनाही उसकी पहिंचान विषे आनन्द भी अधिक होता है जैसे कोई वज़ीर के भेदको जानता है तब प्रसन्न होताहै और जो पुरुष बादशाह के भेदको जाने तब वह उससे अधिक प्रसन्नता को पाताहै बहुरि शतरञ्ज की विद्या जाननेवाले पुरुष से ज्योतिष और वैद्यकविद्याका वेत्ता अधिक प्रसन्न होता है ताते यह वार्त्ता प्रसिद्धहै कि जब जाननेयोग्य पदार्थ उत्तम होवे तिसकी पहिंचान विषे आनन्द अधिक होताहै ताते कोई पदार्थ भगवन्त के समान उत्तम नहीं काहेते कि सर्व पदार्थों की विशेषता उसीकी शक्तिकरके होती है और वह सर्व सृष्टिका ईश्वर है और जो कुछ जगत् विषे आश्चर्य है सो सब उसीकी कारीगरी है इसी कारण से भगवन्त की पहिंचान के समान और पहिंचान कोई नहीं और उसके दर्शन समान और दर्शन सुन्दर कोई नहीं सो वह पहिंचान और दर्शन इस मनुष्यका स्वस्वभाव है और इस जीवको भगवत्ने अपनी पहिंचान के निमित्त उत्पन्न किया है ताते इस मनुष्यकी भलाई और पूर्णताई भगवत् की पहिंचान विषेहै पर जिस पुरुष के हृदयमें भगवत् की पहिंचान की प्रीति न होवे तब जानियेकि उसका हृदय रोगीहै जैसे किसी पुरुष को अनाजकी रुचि न होवे और माटीको प्रीतिसंयुक्त खावे तब वह रोगी कहलाताहै और जब उसका उपचार न करे तब मृत्यु को पाताहै और इस जगत् विषे भाग्यहीन कहाजाताहै तैसे

ही जिस मनुष्यको विषयों की प्रीति अधिक होवे और भगवत्की प्रीति से शून्य होवे तब उसका हृदय रोगी कहाजायगा पर जब वह भी मानसीरोग का उपचार न करे तब परलोक विषे मन्दभागी होता है और उसकी बुद्धि नष्ट होजाती है और महादुःखी होता है काहेते कि इन्द्रियादिक भोगों का सम्बन्ध इस शरीर के साथ है सो मृत्यु के समय यह शरीर दूर होजाता है ताते सर्वभोग भी नष्टता को पाते हैं और वह जीव भोगों की खैंचविषे बड़े कष्टको प्राप्त होता है ताते परलोक विषे भाग्यहीन कहलाता है और भगवत् की पहिंचान का जो सुख है तिसका सम्बन्ध हृदय के साथ है ताते वह सुख मृत्यु के समय अधिक होता है काहेते कि विक्षेपदायक पदार्थ सब दूर होजाते हैं बहुरि जितनी कुछ इस मनुष्य के हृदय की विशेषता कही है सो इस ग्रन्थ विषे इतनाही बहुत हैं पर यह सबही बखान इस जीव के स्वभावों का वर्णन किया है बहुरि इस मनुष्य का जो शरीर है सो इस विषे भी भगवन्त ने बड़े आश्चर्य गुण उत्पन्न किये हैं और सर्व अङ्गों विषे अनन्त गुण उपजाये हैं और इसी शरीर विषे कितनी नाड़ी और अस्थि हैं सो सभोंके आकार और गुण भिन्न २ बनाये हैं और कर्मभी उनके भिन्न २ सिद्ध होते हैं परन्तु इन सर्व अङ्गोंते अचेत है और यों तू जानता है कि हाथ ग्रहण करने के निमित्त हैं और चरण चलनें के निमित्त और रसना बोलनें के निमित्त है पर यह जो तेरे नेत्र हैं तिनको सात परदेकर बनाया है बहुरि जब एक परदा दूर होजावे तब नेत्रों की दृष्टि मन्द होजाती है सो तुझको यह पहिंचान कुछ नहीं कि यह सातपरदे किस निमित्त बनाये हैं और सभोंविषे देखने की क्रिया किस प्रकार राखी है बहुरि नेत्रों का जो आकार है सो तो प्रकटही अल्प-मात्रहै पर इनकी दृष्टि कितनी फैलती है और इनकी दृष्टि और विधि का वर्णन करिये तब तो कितने और ग्रन्थ चाहिये ताते तुझको इतना पहिंचानना योग्य है कि इस शरीरविषे मूलचक्र से आदि लेकर जो स्थान बनाये हैं तिनके बना-वने का प्रयोजन क्या है सो प्रथम इस शरीर विषे कलेजा इस निमित्त बनाया है कि भिन्न २ आहारों को परिपक्क करके रुधिर बनाताहै बहुरि वह रुधिर सर्व नाड़ियों में प्रवेश करताहै और उसका आहार सब अङ्गों को पहुँचता है बहुरि एक ऐसा स्थान है कि जब वह रुधिर परिपक्क होता है तब उसका जो मैल शेष रहता है तिसको गिराय देता है बहुरि उसी रुधिर विषे कलुक भाग उत्पत्ति

होते हैं तब उसको पित्ता दूरकरदेता है और प्रथमहीं जो रुधिर कलेजे से बाहर निकलता है तब पतला और जलसहित होता है सो उस जलको गुरदा रुधिर से खींचलेताहै बहुरि उस जल के अंशको कुलियां भिन्न करके लघ्वीके स्थानमें डालदेती हैं तब वह रुधिर मैल, भाग और जलकें अंशसे शुद्धहोकर नाड़ियों में प्रवेश करता है पर जब सब अङ्गोंविषे किसी एक अङ्ग को विघ्न होजावे तब शरीर विषे रोगउत्पत्ति होती है ताते प्रसिद्ध हुआ कि सूक्ष्म और स्थूल शरीर के जो अङ्ग हैं सो सबही अपने कार्य के निमित्त बनाये हैं और शरीर की रक्षा इनहीं करके होती है बहुरि यह जो जीव का पिण्ड है सो यद्यपि देखने में इस का आकार अल्पसा भासता है तौभी ब्रह्माण्ड की नाईं है और जितने पदार्थ ब्रह्माण्ड विषे बनाये हैं तिनके अंश पिण्डविषे भी प्रवेशे हैं जैसे अस्थि पर्वतों की नाईं हैं और रोमावली वनस्पति हैं और पसीना मेघ की नाईं है शीश आकाश और इन्द्रियां तारामण्डल हैं सो इनकाभी बखान करना बड़े विस्तार करके होता है पर तात्पर्य यह है कि ब्रह्माण्ड विषे यावत् पदार्थ और जीव हैं सो तिनका अंश पिण्ड विषे सबही पाया जाताहै जैसे शूकर कूकर पशु प्रेत देवता और पशी आदिक हैं सो तिनके स्वभावभी इस मनुष्य के शरीर विषे पायेजाते हैं बहुरि ब्रह्माण्ड विषे यावत् व्यवहारहैं तिनका अंशभी शरीर विषे प्रसिद्ध है जैसे जठराग्नि जो आहार को पचाती है सो मानों रसोई करनेवाली है और जिस शक्ति करके आहारका रस निकलताहै और मैलको भिन्न करदेय है सो गन्धी की नाईं है और जिस अङ्ग करके रुधिर का दूध और वीर्य बनताहै सो धोबी की नाईं है और जो अङ्ग जल के अंशको लघ्वीस्थान विषे डालता है सो पनिहारा है और जिस करके आहार का मैल बाहर निकलता है सो झाडूवाला भङ्गी है और जिस करके वात पित्त कफ शरीर विषे कोपते हैं और देह को दुःख होताहै बटमार और चोर की नाईं हैं बहुरि जिस करके वात पित्त कफ का कोप निवृत्त होताहै सो धर्मात्मा राजा की नाईं है पर इसका बखान करना भी बहुत विस्तार होताहै और तात्पर्य यह है कि तुझको ऐसी पहिंचान चाहिये है कि तेरे शरीर विषे भिन्न २ स्वभाव और अङ्ग उत्पत्ति किये हैं और सबही तेरी टहल विषे सावधान हैं बहुरि जब तू अचिन्त्य होकर सोइ रहता है तौभी वह तेरी सेवाको त्याग नहींकरते और तू उनको जानताही नहीं और जिस महाराजने यह तेरे

टहलुवे बनाये हैं सो तिसका तू उपकार भी नहीं जानता पर जब कोई मनुष्य एक बार तेरी टहल के निमित्त अपने टहलुवे को भेजे तब सारी आयुष् पर्यन्त तू उसका उपकार याद रखता है और जिस भगवत् ने कई सहस्र टहलुवे तेरे शरीर की टहल बिषे लगाये हैं और वे ऐसे सावधान हैं कि एक पल भी तेरी सेवा से आलस नहीं करते सो तिस भगवत् का तू कदाचित् भी स्मरण नहीं करता बहुरि इस शरीर की जो उत्पत्ति है और इसके अङ्गों बिषे जो गुण रचे हैं तिसकी विद्या भी अपार है और सबही लोग इस विद्या से अचेत हैं पर जब कोई इस शरीर की विद्या को पढ़ता भी है तौ भी वैद्य होने के निमित्त पढ़ता है ताते शरीर की विद्या को भी इस निमित्त पढ़ना प्रमाण है कि इस विद्याको पढ़कर भगवत् की कारीगरी को पहिंचाने तब उस पुरुष को निस्सन्देह भगवत् की पहिंचान प्राप्तहोती है सो भगवत् का पहिंचानना यह है कि प्रथम शरीर और जीव के उत्पन्न करनेवाले महाराज को ऐसा समर्थ जाने कि उसकी सामर्थ्य बिषे दीनता और पराधीनता का अंश कुछ भी नहीं पाया जाता ताते जो कुछ किया चाहता है सो करसक्ता है जैसे वीर्यके बूंदसे उसने यह शरीर उत्पन्न किया है सो जिस भगवत् में ऐसी सामर्थ्य है तिसकी सामर्थ्य बिषे शरीर के नाशहुये पश्चात् जिवायलेना कुछ कठिन बात नहीं इसी कारण से परलोक का दुःख और सुख पहिंचान किया जासक्ता है बहुरि ऐसे जाने कि वह भगवत् ऐसा ज्ञानस्वरूप है जिसका ज्ञान सर्व जगत् बिषे भरपूर है और यावत् नानाप्रकार के आश्चर्य और उनके बिषे गुण हैं सो सबही उसकी विद्याकरके सिद्धहुये हैं बहुरि तीसरा गुण महाराज का यह भी पहिंचानना चाहिये कि वह परमदयालुरूप है और सर्व जीवों पर उसकी अमित करुणा है ताते जिस २ जीवको जो कुछ चाहिये था सो सबही दिया है और कृपणता करके दुराय कुछ नहीं राखा जैसे शीश औ हृदयस्थान से लेकर जो कुछ अवश्यही चाहिये था सो सबही दिया और जिन अङ्गों करके इस जीव का प्रयोजन और कार्य सिद्ध होता है जैसे हाथ, पांव, रसना आदिक सो सबही दिये बहुरि जिस बिषे इस जीव का प्रयोजन भी न था और उस पदार्थ का होना अवश्यही चाहिये तो भी न था पर उस कर के सुन्दरता और शृङ्गार सिद्ध होता था सो वह अङ्ग भी दिये हैं जैसे नेत्रों की समता अधरों की ललाई बालों की स्याही भ्रूकी कुटिलता पलकों की समानता

और इसकी नाईं केते अङ्ग और भी सुन्दरता के निमित्त दिये हैं बहुरि भगवत् ने ऐसी कृपा मनुष्योंपर ही नहीं करी ताते सर्व जीवों पर उसकी दया समान है इसीकारण से मच्छर और माखीपर्यन्त जीवों को जो कुछ चाहिये था सो सबही दिया है उनका बदन और आकार और नाना प्रकार के चिह्नों करके सुन्दर बनाये हैं सो इन जीवों के शरीरों की उत्पत्ति का पहिंचानना भी इस प्रकार करके भगवत् के पहिंचानने की कुञ्जी है और विद्या के पढ़ने की विशेषता यही है कि इस करके भगवत् की बड़ाईको पहिंचाने जैसे कोई पुरुष किसी कवीश्वर की कविता और किसीकी कारीगरी को भली प्रकार समझता है तब निस्सन्देह उस कवीश्वर और कारीगर की वड़ाई को पहिंचान लेता है तैसेही यह जेती कुछ भगवत् की कारीगरी है सो महाराज के पहिंचानने की कुञ्जी है और उसके सर्व गुणोंको लखावनेवाली है पर तौ भी शरीर की उत्पत्ति का जो पहिंचानना है सो हृदय की पहिंचान के निकट तुच्छमात्र है काहेते कि यह शरीर घोड़े की नाईं है और चित्त सवार है ताते उत्पत्ति का जो तात्पर्य है सो हृदयरूपी सवारही है इस करके कि घोड़ा सवार के निमित्त होताहै और सवार की उत्पत्ति घोड़े के निमित्त नहीं बहुरि इतना कुछ जो वर्णन हुआहै सो इस करके प्रसिद्ध हुआ कि तू अपने शरीरके अङ्गोंको भलीप्रकार नहीं पहिंचानता और यह वार्त्ता प्रकट है कि तुझको तेरे स्वरूप से निकट और कोई पदार्थ नहीं सो जब तू अपने आपको ही न पहिंचाने तब और किसी पदार्थ के पहिंचानने का अभिमानी किसप्रकार होताहै सो इसका दृष्टान्त यह है कि जैसे कोई पुरुष ऐसा निर्द्धन होवे कि अपने शरीर के आहार को समर्थ न होवे और इस प्रकार अभिमान करके कहै कि सारे नगर के अभ्यागत मेरेही गृह से भोजन पावते हैं सो यह वार्त्ता असम्भव है और ऐसा अभिमान करनेहारा पुरुष मूर्ख और झूठा कहा जाताहै॥

दशवां सर्ग॥

जीव की पराधीनता के वर्णन में॥

ताते जान तू कि बड़ाई और शोभा और विशेषता इस मनुष्य के हृदयरूपी रत्न की तैंने भली प्रकार समझी तब आगे यों भी जानना चाहिये कि यद्यपि भगवत् ने ऐसा रत्न तुझको दियाहै पर तौभी तुझसे गुह्य कररखा है सो जबलग

तू इस रत्नको न खोजै और उससे अचेत होवे और व्यर्थ गँवावे तब इस करके तेरी परमहानि होती है ताते तू पुरुषार्थ करके अपने चित्त को खोज और माया के जञ्जालों से विरक्त हो तब वह तेरा चित्तरूपी रत्न पूर्णता को पहुंचे सो उस की पूर्णता और बड़ाई चैतन्यतारूपी सूक्ष्मदेश विषे प्रकटहोती है काहेते कि चैतन्यदेश विषे शोकते रहित आनन्द को पाता है और अविनाशी सत्यस्वरूपको देखता है और पराधीनता ते रहित सामर्थ्यता को प्राप्तहोता है और अविद्याते रहित ज्ञान को पाता है सो भगवत् का निर्मल स्वरूप यही है और यह जीव भी सूक्ष्मदेशमें इसीस्वरूप विषे लीन होताहै बहुरि इस स्थूलदेश विषे जो जीवकी विशेषता कही है सो इस निमित्त कहीहै कि उस परमपद के पाने का अधिकारी है और जबलग ऐसे परमपद को न प्राप्त होवे तबलग यह जीव ऐसा पराधीन और महानीच है कि इसकी नीचता वर्णन विषे नहीं आती भूख, प्यास, शीत, उष्ण, रोग, शोक, दुःख, मोह, क्रोध, तृष्णा आदिक सर्व स्वभावों के अधीन हैं बहुरि इस जीव के शरीर का जो सुख है सो भी कड़वे औषधोंविषे राखा है और जो भोग इस को प्रियतम लगते हैं सो तिनकरके रोग को प्राप्त होता है बहुरि इस मनुष्य की विशेषता जो है सो विद्या और बल अथवा धैर्य और श्रद्धा और सुन्दरताकर होती है सो जब तू इस मनुष्य की ओर देखे तब जाने कि ऐसा मूर्ख और कौन है काहेसे कि जब एक नाड़ी इसके शीशविषे विपर्यय होजावे तब बावला होजाता है और नाशता के भयको पाताहै और यद्यपि इसका औषध इसके निकट ही पड़ाहोवे तोभी जान नहींसक्ता कि मेरा औषध यही है और मुझको रोग क्या है बहुरि जब तू इसके बल की ओर देखे तब जाने कि इसके समान बलहीन और पराधीन भी कोई नहीं काहेते कि यह मनुष्य एक माखी से भी आपको बचाय नहींसक्ता और जब मच्छरही इसके ऊपर प्रबल होवे तो भी उसके काटने से महादुःखी होता है और जब इसके पुरुषार्थ और धैर्य की ओर देखिये तब ऐसा अधीर प्रकट होता है कि एक पैसे के गिरने करके शोक और दुःखको पाता है और जब भूखके समय एक ग्रास भी कम मिले तब मूर्च्छा को प्राप्त होताहै ताते इस मनुष्य समान नीच और कोई नहीं बहुरि जब इस मनुष्य की सुन्दरता का विचार करिये तब इसका शरीर ऐसा मलिन है कि मानों मल-मूत्र के भवन पर त्वचा लपेटी है और जब एक दिनविषे दो बार न धोवे तब

ऐसी दुर्गन्ध उत्पन्न होती है कि अपने आपही ग्लानि करनेलगता है और २ पुरुषभी उससे ग्लानि करनेलगते हैं सो जिस शरीर की सुन्दरता का अभिमान करताहै और जो शरीर का इसको आधारहै सो तिसके मैलको अपने हाथों करके नित्यप्रति आपही धोता है, इसीपर एक वार्त्ता है कि एक महापुरुष मार्गबिषे चलाजाता था और उस मार्गबिषे कछुक चाण्डाल विष्ठाको डालते थे सो तिसकी दुर्गन्धकरके लोग नासिका को मूंदनेलगे तब लोगों से उस महापुरुष ने कहा कि हे भाई ! तुमको भी कुछ सुनाई देता है यह विष्ठा मुझसे यह कहती है कि कल्हके दिन मैं बाजारबिषे धरीहुई थी और सबलोगों ने मुझको दाम देकर मोललिया था परन्तु मैंने एकरात्रिपर्यन्त तुम्हारी सङ्गति करी है तिसकरके ऐसी मलिनता को प्राप्तहुई हों इसी हेतुसे जब विचारकरके देखिये तो मुझको तुम से भागना उचित है कि तुमको मुझसे, सो इसका तात्पर्य यह है कि यह जीव इस शरीरबिषे महादीन और पराधीन है और इसकी अवस्था भी महानीच है ताते परलोकबिषे इसकी हीनता और विशेषता प्रकट होवेगी अर्थात् जब यह पुरुष भले स्वभावों के पारस साथ निर्मल करलेवे तबहीं पशु और सिंहों के स्वभावों से मुक्त होकर देवतों के पद को पासकेगा काहेते कि पशुओं की क्रिया और कर्मों का दोष नहीं लगता और यह मनुष्य अशुभकर्मोंकरके नरकों को भोगता है ताते इस पुरुष को चाहिये कि जिस प्रकार अपनी विशेषता को पहिंचानता है तैसेही अपनी नीचता और पराधीनता को भी पहिंचानराखै काहेसे कि इस प्रकारका पहिंचाननाभी भगवत्के पहिंचानने की कुञ्जी है ताते अपने आपके पहिंचानने का वर्णन करना इतनाही बहुत है ॥

दूसरा अध्याय ॥

भगवत्के पहिंचानने के वर्णन में ॥

ताते जान तू कि सन्तजनोंके वचनोंबिषे यह वचन प्रसिद्ध है और उन्होंने यही उपदेश कियाहै कि हे भाई ! जब तू अपने आपको पहिंचाने तब निस्सन्देह भगवत्को पहिंचानेगा इसीपर महाराज का वचनहै कि जिसने अपने आत्मा और मनको पहिंचाना है तिसने भगवत् को पहिंचाना है और इसकी युक्ति यह है कि मनुष्य का हृदय दर्पण की नाई है ताते जो पुरुष इस बिषे बुद्धि की दृष्टि कर के देखताहै तब उसको भगवत् का दर्शन प्रत्यक्ष भासताहै बहुरि सबहीलोग जो

आप को देखते हैं और भगवत् को नहीं देखसक्के सो तिसका कारण यह है कि जिस प्रकार आपको देखना सन्तजनों ने कहाहै तिस विधिसंयुक्त आपको नहीं देखते ताते जिस दृष्टि करके हृदयरूपी दर्पण विषे भगवत् को देखसक्ताहै तिस का खोलना अवश्यही प्रमाण है पर बहुत लोगों की बुद्धि इस भेद को समझ नहींसक्की ताते जिस प्रकार सबोंको समझना सुगमहै सो तिसी प्रकारसे वर्णन करता हूं कि प्रथम यह मनुष्य अपने स्वरूप के होनेकरके भगवत् के स्वरूप को पहिंचाने और अपने गुणों करके भगवत् के गुणों को पहिंचाने बहुरि अपने शरीर और इन्द्रियोंबिषे जिस प्रकार इस जीवकी आज्ञा वर्त्तती है तैसेही सर्व जगत् बिषे भगवत् की आज्ञा को पहिंचाने सो तिसका बखान यह है कि जैसे मनुष्य अपने होनेको जानताहै कि केते काल आगे मेरा नाम रूप कुछ भी न था बहुरि जब यह पुरुष अपनी आदि को समझे तब आदि उत्पत्ति का मार्ग वीर्य है सो मलिन जल की बूंदथी सो उस बूंद बिषे बुद्धि, श्रवण, नेत्र, शीश, हाथ, पांव, रसना, अस्थि, नाड़ी, त्वचा कुछ न थी और वह केवल श्वेत जल ही था ताते यही बिचार करे कि शरीर बिषे नाना प्रकारके आश्चर्य उत्पन्न हुये हैं सो इसने आपही बनाये हैं कि किसी ने उसको उत्पन्न किया है और यों भी जानना योग्य है कि अब तो यह मनुष्य बुद्धि और इन्द्रियों करके संयुक्त और पूर्ण है तो भी एक बालको बनाय नहीं सक्का और जब इसका आकार बीर्यरूप था तब तो महानीच था तब आपको क्योंकर बनाय सक्का सो जब इस प्रकार यह मनुष्य अपनी उत्पत्ति को पहिंचाने तब अपने उत्पत्ति करनेवाले महाराज को सुगमही पहिंचान लेवे बहुरि जब अपने आश्चर्यरूप अङ्गों को देखे तब भगवत् की समझ को प्रकटही समझलेवे और यों भी जाने कि वह ईश्वर ऐसा समर्थ है कि जिस प्रकार किसी पदार्थ को उत्पन्न किया चाहे सो करसक्का है बहुरि इससे विशेष और क्या वर्णन करिये उसका बल जो ऐसे मलिन जलकी बूंदसे यह शरीर सुन्दर बनाया है और आश्चर्यरूप इन्द्रियों के साथ शरीर को बनाया है और जब यह मनुष्य अपने स्वभावों की ओर देखे और इन्द्रियों के कर्मों को पहिंचाने तब इस वार्त्ता को जान लेवे कि एक २ अङ्ग कैसे गुणों के निमित्त बनाये हैं जैसे हाथ, पांव, जिह्वा, नेत्र, दांत और इस शरीर के अन्तर के अङ्ग जैसे हृदय, नाभि, प्राण इत्यादिक और भी जो असंख्य अङ्ग हैं सो

इनकी उत्पत्ति के गुणों करके अपने उत्पत्ति करनेवाले ईश्वर की विद्या को समझे कि उसकी विद्या अपार है और सर्व पदार्थों विषे भरपूर है और यों भी जाने कि उसकी ऐसी विद्या से कोई पदार्थ गुह्य नहीं होसक्ता ताते जब सर्व बुद्धिमान् एकत्र होकर दीर्घकालपर्यन्त बिचार करके किसी एक अङ्गको और भांति से बनाया चाहें तब जिस प्रकार आगे भगवत् ने बनाया है तिसही को भलाजाने और उससे अन्यथा किसी प्रकार न करसके जैसे यह दांत हैं सो अगले दांतोंका शीश तीक्ष्णहै और उस तीक्ष्णता करके आहार को खण्ड २ कर देतेहैं बहुरि दूसरे जो दांतहैं तिनके शीश चौड़े हैं उन करके आहार पीसाजाता है जैसे अनाज को चक्की पीसतीहै और जैसे उस विषे नली करके अनाज इकट्ठा हो आता है तैसेही रसना ग्रास को इकट्ठा करके दांतोंके तले करदेती है बहुरि रसना के नीचे एक सरोवर राखाहै सो उस करके रसना ग्रास को भिगो लेती तब आहार को भिगोवने करके कोमलता प्राप्तहोती है और उसका भिगोवना भी मर्यादा अनुसार होताहै ताते वह ग्रास सूखे नहीं कण्ठ विषे उतर जाता है सो जब सब बुद्धिमान् इकट्ठे होकर भगवत् की कारीगरी आश्चर्यरूपी से कुछ और प्रकार बनाना सोचें तब इससे विशेषता बनाय न सकें ताते जो कुछ भगवत् ने कियाहै उसही विषे भलाई और सुन्दरताई है जैसे हाथकी पांच अँगुली हैं सो चार अँगुलियों का स्वभाव एक है और पांचवां जो अँगूठा है तिसका स्वभाव भिन्न है और इसकी ऊँचाई थोड़ी है बहुरि कैसाहै कि सब अँगुलियों के ऊपर फिरता है और सबोंके साथ कार्यों को करताहै और अँगुलियोंके तीन २ बन्दहैं अँगूठेके दोही बन्दहैं ताते अँगूठे को ऐसा दृढ़ बनायाहै कि जब चाहता है तब अँगुलियोंको समेटकर मूठ करलेताहै और फिर उस मूठको उघारभी देता है और कभी हाथ को तलपात्र करलेताहै कभी चौड़ा करलेता है और नाना प्रकारके जो शस्त्र हैं सो अँगूठे करकेही सिद्ध होतेहैं और कभी हाथ को बासन की नाईं बनायलेता है तात्पर्य यह कि हाथों की क्रिया सब अँगूठे करके सिद्ध होतीहै और जब सभी सयाने मिलकर किसी और प्रकार विचारकरें कि पांचों अँगुलियां समानहोवें अथवा तीन एकओर होवें और दो भिन्न होवें अथवा षष्ठ अथवा चारहोवें अथवा इन तीन बन्दोंसे और भांति कियाचाहें सो यह जितना विचार करेंगे वह सब नीच और कुरूपहोवेगा ताते जो भगवत् ने बनायाहै सोई

पूर्ण है और इसकरके प्रसिद्धहुआ कि उत्पत्ति करनेवाले महाराजको विद्या इस जीवके शरीर और सर्व पदार्थों विषे भरपूरहै और सब जगत् का जाननेवाला है बहुरि जितने इस शरीर के अङ्गहैं सो सबों विषे ऐसेही गुण और भेद हैं पर जो कोई इन भेदों को अधिक समझताहै सो भगवत्की विद्याको देखकर अधिकही आश्चर्यवान् होताहै ताते यह पुरुष अपने अङ्गोंकी ओर देखै बहुरि आहार और वस्त्र और पृथ्वी आदिक जो स्थान हैं सो तिनका बिचारकरे बहुरि आहार की उत्पत्ति का जो सम्बन्ध मेघ और पवन और शीत उष्ण आदिक के साथहै सो तिसको पहिंचाने और आश्चर्यरूप जो खानि हैं तिन विषे लोहा और तांबा आदिक धातु उपजती हैं बहुरि लोह और काष्ठकरके अनेक भांति के शस्त्र बनाते हैं और इन शस्त्रों की विद्या जो है और कारीगरी जो है सो यह भी अपार है और जब कोई पुरुष विचारकर देखे तब यह सबही पदार्थ जगतविषे चाहिये थे सो भगवत्ने आगेही अपनी दयाकरके उत्पन्नकिये हैं और सम्पूर्ण विधिसंयुक्त बनायराखे हैं और एक २ पदार्थ विषे कितने गुण रचे हैं सो प्रथमही जब भगवत् इनको उत्पन्न न करता तब यह भी कोई न जानता कि अमुक पदार्थ मुझ को चाहिये है और मांगलूं ताते भगवत् ने अपनी दया करके पहिंचानने और मांगने के पहिलेही सभी पदार्थदिये हैं और जीवों को सर्व कार्यों की विद्या दीन्हीं है सो इस करके भगवत् की परमदया पहिंचानी जाती है सो वह महाराज सब सृष्टिपर महाकृपालु है और इनकी ऐसी दया को देखकर सब सन्त आश्चर्यवान् होरहे हैं इसीपर महापुरुष ने भी कहाहै कि जैसे बालक के ऊपर माता पिताकी दया होतीहै तैसेही सर्वजीवों पर भगवत् इससे भी अधिक दयालु है ताते इस जीव के उत्पन्नहोनेकरके उस भगवत् की सत्ता पहिंचानी जातीहै और नाना प्रकारके अङ्गोंकी उत्पत्तिकरके उस और अस्तीकी पूर्ण सामर्थ्य पहिंचानसके हैं बहुरि सर्व अङ्गोंविषे जो अनेक भांतिके गुण और कार्य रचे हैं सो इसकरके भगवत् की परमदया भास आवती है और जेते पदार्थ अवश्यमेव कार्यमात्र और सुन्दरताई के निमित्त चाहतेथे सो सभी इस मनुष्य को दिये हैं और किसीसे कुछ दुराय नहीं राखा सो ऐसे विचारों करके भगवत्की परमदया पहिंचानी जातीहै ताते अपना पहिंचानना भगवत्के पहिंचानने की कुञ्जी जो कहीहै सो यही है॥

दूसरा सर्ग ॥

भगवत् की निर्लेपता और परमशुद्धता की पहिचान के बखान में ॥

ताते जान तू कि जब तूने अपने स्वरूप की सत्ता करके भगवत् के स्वरूप को पहिंचाना और अपने गुणों करके भगवत् के गुणों को पहिचाना तब भगवत् की शुद्धता और निर्लेपता का अर्थभी पहिंचानना चाहिये सो शुद्धता का अर्थ यहहै कि जेती स्थूलता मनके संकल्प विषे आवती है तिससे भगवत् निर्लेप है अर्थ यह कि उसका स्वरूप संकल्प विषे नहीं आवता बहुरि देशकाल से भी निर्लेपहै सो यद्यपि कोई स्थान उसकी सत्ता से भिन्न नहीं पर तौभी उसको ऐसे नहीं कहसक्के कि भगवत् अमुक स्थान विषे रहताहै और इस निर्लेपता का लक्षण भी अपने विषेही पहिचान सक्केहैं जैसे मैंने आगे भी वर्णन कियाहै कि इस जीवका चैतन्य स्वरूप है सो मनके संकल्प विषे उसका रङ्गरूप कुछ नहीं भासता बहुरि मर्यादते रहितहै और अखण्डहै और अरूपहै ताते जो वस्तु मर्याद और रूपसे रहित होतीहै उसका स्वरूप संकल्प विषे कदाचित् नहीं आवता काहेते कि जिस पदार्थ को नेत्रों करके देखाहोवे अथवा उसकी नाईं और वस्तु देखीहोवे तब उसका स्वरूप संकल्प करके जानना चाहताहै इसका अर्थ यही है कि अमुककी वस्तु कैसी है और अमुक का रूपरङ्ग क्या है और अमुक की मर्याद केती है और लघु वा दीर्घ है सो उस चैतन्यस्वरूप विषे ऐसे संकल्पों का मार्गही नहीं और जब कोई यह प्रश्न करे कि वह कैसाहै सो यह प्रश्नही व्यर्थ है और जब तू इस संशय को दूर कियाचाहै कि जिस पदार्थ का रङ्गरूप कुछ न होवे तब उस पदार्थको क्योंकर सत्यजानिये सो तिसका उत्तर यहहै कि इस वार्ता को भी तू अपनेही अन्तर विषे देख कि तेरा चैतन्य स्वरूप है सो मर्याद और प्रमाण ते रहितहै और उसका रूप वर्णन विषे नहीं आवता पर जब तैंने आप कोभी इस प्रकार निर्लेप जाना तब ऐसे जाना कि भगवतकी निर्लेपता तेरी निर्लेपता से अधिक विशेषहै पर यह लोग इस वार्त्ताको सुनकर आश्चर्य मानते हैं कि जिसका रङ्ग कुछ न होवे तब उसको सत्यस्वरूप क्योंकर जानिये परन्तु जब विचारकरके देखें तब वह आपभी रङ्गरूपसे रहितहै और सत्यस्वरूपहै और आप को पहिंचान नहींसक्के बहुरि जब यह मनुष्य अपने शरीरविषे विचारकर देखे तब सहस्रों पदार्थों को रूपरङ्गसे रहित पहिंचाने जैसे क्रोध, प्रेम, पीड़ा और सुख

दुःखआदि सो यह सवही अरूप हैं तातें जो कोई यह प्रश्नकरै कि अरूप वस्तु क्योंकर सत्यहोसक्तीहै सो यह प्रश्नही व्यर्थहै काहेतें कि जब यह पुरुष राग और सुगन्ध और स्वादके चिह्नको देखाचाहे तव इनके आकार देखने विषे भी असमर्थ होताहै सो इसका कारण यह है कि रूपरङ्ग की ढूंढ़ भी मनके संकल्प कर होतीहै तौभी प्रथम जिस पदार्थ को नेत्रों करके देखाहोवे तव उसकी मूर्त्ति संकल्प विषे दृढ़ होजाती है तो संकल्प नेत्रों के देखेहुये को ढूंढ़ता है पर श्रवणों विषे जो शब्दहै तिस विषे नेत्रों का देखना पहुँच नहींसक्ता और शब्दका रूप चिह्नभी कुछ नहीं पासक्ता तातें जिस प्रकार शब्द का स्वरूप दृष्टिसे विलक्षण है तैसेही रूपरङ्ग का देखना श्रवणों सेभी विलक्षणहै वहुरि इसीप्रकार सर्व इन्द्रियों के विषय भिन्न २ हैं पर जिस पदार्थ का ज्ञान बुद्धि करकेही होता है उसको इन्द्रिय अगोचर कहते हैं उसमें किसी इन्द्रिय का गम्य और विषय नहीं और रूपरङ्गकी प्राप्ति इन्द्रियों के देश विषय विषे पाई जाती है पर इस भेद को पुरुषार्थ और युक्तिकरके समझ सक्ते हैं इसका विस्तार अपर ग्रन्थों में है इस ग्रन्थमें जितना वर्णनहुआ सो यही बहुतहै सो इसका तात्पर्य यह है कि यह मनुष्य अपनी अरूपता और निराकारता करके भगवत् की अरूपता और निराकारता को पहिंचाने और इस प्रकार जाने कि इस जीवका स्वरूप जिस प्रकार रूपरङ्ग से रहित है और शरीर जो रूपरङ्गसहित है तिसका राजा है और शरीर इसका देश है तैसेही सर्वदृष्टि का ईश्वर जो भगवत है सो अरूप और निराकार है और जेता कुछ जगत् स्थूल और आकारवान् है सो महाराज की आज्ञा विषे बर्तता है वहुरि भगवतको जो स्थानसे निर्लेप कहाहै सो तैसेही इस जीव को भी हाथ, पांव, शीश और किसी और अङ्ग विषे पाइ नहीं सक्ता काहेते कि यह इन्द्रिय और सब अङ्ग खण्डाकारहैं और चैतन्यरूप जो जीव है सो अखण्ड है सो खण्डाकार विषे अखण्ड वस्तु का स्थित होना असंभव है इसकरके कि जब खण्डाकाररूप पदार्थ विषे अखण्डवस्तु स्थित होवे तब वह भी खण्ड २ होजावे तातें यह बड़ा आश्चर्य है कि यद्यपि जीव की सत्ता से कोई अङ्ग भिन्न नहीं और सब अङ्ग जीवकी सत्ता और आज्ञामें हैं सत्ताबिना कोई अङ्ग नहीं पर तौभी उस को किसी एक स्थान विषे कह नहीं सक्ते और शरीर के सर्व अङ्ग जीवकी आज्ञा के अधीन हैं इसी प्रकार वह महाराज सर्व सृष्टिका ईश्वर है और निर्लेप है और

सर्व जगत् उसकी सत्ता से है और उसके अधीन है सो भगवत् को धरती और आकाश और पाताल विषे किसी एक स्थान में कहा नहीं जाता बहुरि भगवत् की जो निर्लेपता और शुद्धता है तिसका सम्पूर्णभेद तबहीं समझा जासक्ता है जब जीव के यथार्थरूप का वर्णन करिये और धर्मशास्त्र विषे इस वचन को प्रसिद्ध कहने से वर्जित कियाहै जैसे महाराजने भी कहाहै कि इस मनुष्यको मैंने अपने रूपके अनुसार उत्पन्न कियाहै॥

तीसरा सर्ग॥

भगवत्‌की बादशाही के वर्णन में॥

ताते जान तू कि भगवत्‌का स्वरूप और उसके गुण और अरूपता को तैंने समझा और देशकालसे निर्लेप निराकार तैंने जाना सो इन सब भेदों का पहिंचानना अपने पहिंचानने करके सिद्धहुआ तब भगवत् की बादशाही को पहिंचानने का प्रसङ्गभी तुझको श्रवण कियाचाहिये कि वह महाराज अपनी बादशाही विषे क्योंकर बर्तताहै और सर्वदेवतों को किसप्रकार आज्ञाविषे चलाताहै और देवता उसकी आज्ञा क्योंकर मानते और चलते हैं बहुरि जगत् के कार्यों को क्योंकर सिद्ध कराता है और आकाश लोक से उसकी आज्ञा भूमिलोक विषे किस प्रकार आती है और तारामण्डल को क्योंकर फिराता है और भूमिलोकके जीवों के कार्य किसप्रकार देवतों के आधीन राखे हैं और सर्वजीवों की प्रतिपालना आकाशद्वारे क्योंकर होती है सो इस विद्याको भगवत् के करतूतों का पहिंचानना कहते हैं और इसका बखान करना बहुत विस्तार से होताहै पर इस विद्या के पहिंचानने की कुञ्जी अपने २ पहिंचानने करके प्राप्त होतीहै ताते जबतक तू इस भेदको भी न पहिंचानसके कि मैं अपने शरीर विषे क्योंकर बादशाही करताहूं तबतक सर्व जगत्‌का राजा जो महाराज भगवत् है तिसकी बादशाही के भेदको क्योंकर पहिंचानेगा इसी कारण से प्रथम तू अपने एक कर्म को पहिंचान कि जैसे तेरे चित्तविषे भगवत्‌का नाम लिखने की इच्छा होवे तब प्रथम वह सङ्कल्प हृदय विषे आन फुरता है बहुरि उसका प्रवेश शीशविषे जाय पहुँचता है पर जिसको हृदयस्थान कहा है सो प्राणकी स्थिति होने का ठौरहै और सर्वइन्द्रियों का व्यवहार इसही करके सिद्ध होताहै ताते वैद्यक विद्या विषे प्राणों के स्थानको चैतन्य कहते हैं पर मेरे मतविषे प्राणों का ठौर जो हृदयस्थान है

सो जड़, स्थूल और नाशवन्त है बहुरि वह हृदय जो चैतन्यरूप है और ज्ञान का स्थान है सो इस प्राणवायु ते भिन्न है और अविनाशी है पर बहुसङ्कल्प हृदयस्थान से शीशविषे पहुँचता है तब उस नाम की मूर्त्ति सङ्कल्पविषे दृढ़ हो जाती है तिससे पीछे उसकी प्रेरणा कांधों और सर्वनाड़ी अर्थात् पुट्ठोंविषे आन पसरती है तिसकरके पुट्ठे और उनकी प्रेरणा से अँगुली हलती हैं और अँगुली लेखनी को हिलाती हैं तब कागज़ पर अक्षर प्रकट होते हैं और नामकी मूर्त्ति बनजाती है पर जैसी मूर्त्ति सङ्कल्प विषे फुरीथी सो नेत्रादिक इन्द्रियों के सम्बन्ध से पत्र के ऊपर प्रकट होती है सो जैसे तुझ को भी प्रथम महाराज के नाम लिखने की इच्छा प्रकट हुईथी तैसेही सर्वजगत् की उत्पत्ति का कारण भगवत्की इच्छा है और जैसे उस इच्छा की प्रेरणा तेरे हृदय स्थान विषे फुरीथी तैसे ही प्रथम भगवत् की इच्छाभी ईश्वरविषे आन फुरती है और जैसे तेरी इच्छा हृदय स्थान से शीश विषे पहुँचती थी तैसेही भगवत् की इच्छा ईश्वरसे और देवतों को पहुँचती है और जैसे तेरी इच्छा की मूर्त्ति प्रथम सङ्कल्प विषे दृढ़ हुई थी और उसके अनुसार अक्षर प्रकट हुये थे तैसे ही जो कुछ इस जगत् विषे प्रकट हुआ है सो प्रथम तिनकी मूर्त्ति महत्तत्त्व विषे प्रकट होती है और जैसे शीश के बल करके कांधे और भुजा और अँगुलियां हलती हैं तैसे ही देवतों की सत्ता नक्षत्र और तारामण्डल को हिलावती हैं और जैसे भुजा और अँगुलियों के बलकरके कलम का हिलना होताहै तैसेही नक्षत्रों करके पांच भूतों के स्वभाव भिन्न २ प्रकट होतेहैं और जैसे कलमकरके स्याहीका पसरना और अक्षर प्रकट होते हैं तैसेही वात पित्त और कफ आदिक जो भूतों के स्वभाव हैं सो तिन्हों करके नाना प्रकार के शरीर उत्पन्न होते हैं और जैसे कलम का कार्य येही था कि उस करके आदि सङ्कल्प अनुसार नाम की मूर्त्ति कागज़पर प्रकटहुई तैसेही पञ्चतत्त्वों की करतूति येही है कि देवतों की सहायता करके इनके विषे नाना प्रकारके शरीर और वनस्पति उत्पन्न होती हैं सो जैसे शीशमें सङ्कल्प विषे प्रथम नाम की मूर्त्ति दृढ़होकर फिर तिसके अनुसार नाड़ी और अँगुली आदिक कोरे कागज़पर प्रकट होती हैं तैसेही भगवत् के आदि संकेत विषे सब रचना प्रथमही होचुकी है और तिसही के अनुसार सर्व जगत्की उत्पत्ति और उसमें सर्व जीवों के समस्त व्यवहार समय पाकर होतेरहते हैं बहुरि जैसे तेरे सर्व कार्योंकी इच्छा

हृदय स्थान विषे फुरती है और पीछे उसका प्रवेश सर्व अङ्गों विषे होताहै तैसे ही सर्व जगत् का कारण ईश्वर है और पीछे देवतों को बल ईश्वर से पहुँचता है और जैसे तेरे चैतन्यता का स्थान हृदय कहा जाता है और उस करके सर्व क्रिया सिद्धहोती हैं तैसेही भगवत् की इच्छा का स्थान ईश्वर है और ईश्वरकी सत्ताकरके सर्व जगत् का व्यवहार सिद्ध होता है सो इस वार्त्ता विषे कुछ भेद नहीं पर जिन्हों के बुद्धिरूपी नेत्र खुले हैं तिनको प्रकट भासती है और तिस वचन के अर्थ को भी वही समझता है जैसे भगवत् ने कहा है कि मैंने मनुष्य को अपनी सूरतके अनुसार उत्पन्नकिया है ताते निस्संदेह जान तू कि राजाओं के भेद को कोई राजाही जानता है और अन्यथा कोई नहीं जान सका इसी कारण से भगवत् ने तुझ को भी राज्य दिया है कि अपने शरीररूपी देश के राज्यकरके तू भगवत् के राज्यको पहिंचानें ताते तू महाराज का परम उपकार बिचार कि जो तुझको प्रथम उत्पन्न किया है बहुरि अपने राज्य की नाईं तुझको भी कछुक राज्य दियाहै और हृदय स्थान को तेरा वैकुण्ठ बनाया है और शीश को देवलोक बनाया है और तेरे चित्त को महत्तत्त्व बनाया है बहुरि नेत्र और श्रवणादिक जो सर्व इन्द्रियां हैं सो तिन को देवतारूप स्थित कियाहै और तेरे शीश को आकाश की नाईं इन्द्रियों का स्थान बनाया है बहुरि तुझ को रूप रङ्गसे रहित उत्पन्न किया है और जेता कुछ रूप रङ्गसहित शरीर है सो तिसपर तुझको राजा बनाया है बहुरि इस प्रकार तुझ को आज्ञा करी है कि तू अपने राज्यसे एक पलभी अचेत न हो काहेते कि जब तू अपने आपसे अचेत होवेगा तब तुझको भी न पहिंचानेगा ताते तू प्रथम आपको पहिंचान और यह जो कुछ वर्णनविषे आया है सो जीव और भगवत् के राज्य को सूचनमात्र करके कहा है बहुरि जब जीवके सर्व अङ्गों और सर्व स्वभावों का वर्णन कियाहै सो वह भी बहुत बिस्तार होता है तैसे ही इस ब्रह्माण्ड और देवतों का जो परम्परा सम्बन्ध है और उनके जो स्थान और पुरियां हैं सो यह विद्याभी अपार है और तात्पर्य यह है कि जो कोई बुद्धिमान् होवे सो इस भेदको समझकर प्रतीतिकरे कि सर्वसृष्टि का ईश्वर भगवत् है पर जिसका हृदय मलिन होता है सो इतना भी नहीं समझसका और ऐसा अचेत होताहै कि भगवत् के स्वरूप की सुन्दरता और सामर्थ्य के ऊपर प्रतीति नहीं करता ताते इन जीवों की बुद्धि तो ऐसी

मलिन है कि जेता कुछ वर्णन मैंने कियाहै सो तिसको भी नहीं समझते ताते भगवत् स्वरूप को क्योंकर पहिचाने॥

चौथा सर्ग॥

वैद्यक और ज्योतिषके मतके खण्डन के वर्णन में॥

ताते जान तू कि ये वैद्य और ज्योतिषी ऐसे मतिहीन हैं कि सर्व जगत् के कार्यों को वात, पित्त, कफ और नक्षत्रों के अधीन कहते हैं सो इनका दृष्टान्त यहहै कि जैसे किसी लिखेजातेहुये कागज़को कोई मकोड़ादेखे कि कालाहुआ जाता है और उसपर अक्षर बनताहै तब जाने कि क्योंकर कागज़ स्याह होता जाताहै फिर कलम को देखे तब अपने चित्तविषे प्रसन्नहोवे कि मैंने इस भेद को भलीप्रकार समझाहै कि इन अक्षरों को क़लमही आप बनाताहै सो यह दृष्टान्त वैद्यक मतपर प्रसिद्ध है कि उन्होंने सबसे नीचे पद को अङ्गीकार कियाहै काहेते कि वह सर्व कार्यों को वात पित्त कफ के अधीन समझते हैं बहुरि कोई दूसरा मकोड़ा अर्थात् चींटी उसके पास आवे और उस पूर्वकी चिउँटी से इसकी दृष्टि अधिक विशालहोवे तब यह चिउँटी उसको कहे कि तू भूली है काहेते कि इस कलम को चलावनेवाली अँगुलियां हैं बहुरि इस अपनी समझपर प्रसन्नहोकर कहे कि मैंने तो इस वार्त्ता को भलीप्रकार जाना है सो यह दृष्टान्त ज्योतिषियों का है कि वैद्यों से उनकी दृष्टि अधिक है काहे ते कि वे तत्त्वों के स्वभावों को नक्षत्रों के अधीन जानते हैं पर यह नहीं जानते कि नक्षत्र भी और देवतों के अधीनहैं ताते इससे परे जो पदवी थी सो तिसको यहभी नहीं जानते भये बहुरि जैसे ज्योतिषी और वैद्यों की समझ विषे भेद है परस्पर उनका विवाद होता है तैसेही आत्मा और अनात्मा के समझनेवालों विषेभी भेद बड़ा होताहै सो बहुत पुरुष तो ऐसे हैं कि वे शरीर और प्राणादिकोंको चैतन्य मानते हैं ताते यह तो बहुत नीचीपदवी विषे गिरे हैं और ऊँचीपदवी जो चैतन्यता का मार्ग है सो तिस से उनको आवरण हुआ है ताते उनकी बुद्धि शरीर देशविषेही दृढ़हुई है बहुरि एक ऐसे पुरुषहैं कि उन्होंने शरीर से जीवको भिन्न जानाहै और वे चैतन्यता के प्रकाश विषे स्थितहुये हैं इसी प्रकार और भी केते पद हैं जो परे से परे चलेजाते हैं पर किसी का प्रकाश तारावत् है कितने चन्द्रमा के समान हैं कितने सूर्य की नाईं प्रकाशमान हैं सो इन पदों को वही पुरुष प्राप्तहोते हैं जिनकी बुद्धि चिदा-

काश विषे गमनकरती है इसीपर खलीलनामी सन्तने भी कहाहै कि जिस महा-
राज ने पृथ्वी और आकाश को उत्पन्न कियाहै सो मैं तिसकी ओर अपना मुख
लाया हूं और महापुरुष ने भी कहाहै कि भगवत् और जीव विषे सत्तरहजार परदे
हैं सो दूर जो होवें तौ प्रकाशरूप होवे अर्थात् महाराज के सत्तरहजार परदे अ-
थवा कला प्रकाशरूप हैं सो जो महाराज उन परदों को समस्त उठादेवें तौ नि-
श्चय करके उनका प्रकाश ऐसा है कि जिनकी दृष्टि उनपर पड़े तिनके मुख को
अवश्यमेव शीघ्रही भस्म करदेवें सो इन वचनोंका तात्पर्य यह है कि वैद्यक विद्या-
वाले ने भी सत्य कहाहै काहेते कि जो वात, पित्त, कफ विषे भगवत् की सत्ता न
होती तो वैद्यकविद्या झूठ होजाती सो नहीं परन्तु भूलना उनका इसप्रकार है कि
वे महानीचे पद को उत्तम पद मानते हैं तातें इनकी दृष्टि महामन्द है अर्थ यह कि
जैसे कोई मूर्ख किसी टहलुवे को राजाकरके जाने और यों न जाने कि यह टह-
लुवा तो पनहीं पकड़नेवाला है बहुरि एकता की दृष्टिकरके देखिये तो ज्योति-
षियों ने जो जगत् को नक्षत्रों के अधीन कहाहै सो यहभी सत्य कहाहै काहेसे कि
जब नक्षत्रोंविषे भगवत् की सत्ता कुछ न होती तौ रात्रि व दिन एक समान होते
क्योंकि सूर्यभी एक दीर्घ ताराहै जो सूर्यकरकेही जगत्विषे प्रकाश और उष्णता
होतीहै जब यों न होता तब ग्रीष्म और शरद्ऋतु समान होतीं काहेते कि जब
सूर्य आकाशविषे पृथ्वी के निकट आवते हैं तब ग्रीष्मऋतु होती है जब पृथ्वी से
दूरजातेहैं तब शरद्ऋतु होती है ताते जिस भगवत् ने सूर्य को प्रकाशमान और
उष्णतासहित बनाया है तिसही ने शुक्रको भी शीतल और सोखनेवाला बनाया
है बहुरि एक तारे को उष्ण और सजलता सहित बनाया है सो इस प्रकार समु-
झने करके धर्म विषे खण्डता कुछ नहीं होती परन्तु ज्योतिषियों को इस कारण
भूलेहुये कहाहै कि उन्होंने जगत्को नक्षत्रोंही के अधीन जाना है और नक्षत्रों
की पराधीनता नहीं जानते कि सूर्य चन्द्र और सब तारे भगवत् की आज्ञा के
अधीन हैं ताते इनको चलावनेवाली भगवत् की शक्ति है और यह सब आप
समर्थ नहीं जैसे हाथ और भुजाके विषे कांधों की शक्ति फुरती है पर कांधों विषे
भी शीश का बल होता है तैसे यद्यपि तारामण्डल और नक्षत्र भी चरणदासी
पकड़नेहारे टहलुवे की नाईं नहीं पर तौभी नीच किंकर हैं पर तत्त्वों को स्वभाव
जो वात पित्त कफ हैं सो महाअधम ते अधम हैं और महाराज के हाथ विषे कलम

की नाईं हैं और अधीनहैं पर बहुतलोगों विषे इस करके विवाद होताहै क्योंकि एक २ भावकरके वैद्यक और ज्योतिषवाले भी सत्य कहते हैं पर भलीप्रकार यथार्थ भेद को नहीं समझते और जानतेहैं कि हमने ज्यों का त्यों भेद पायाहै सो इनका दृष्टान्त यह है कि जैसे किसी जगह कई एक अन्धे रहते थे सो उन्होंने सुना कि हमारे नगर विषे हाथी आया है तब हाथीके देखने को सब इकट्ठे होकर गये पर उन्होंने इस प्रकार न जाना कि हाथी का देखना नेत्रों से होताहै और हाथों करके नहीं पहिंचानाजाता बहुरि तहां जायकर हाथी पर हाथ फेरनेलगे तब किसीका हाथ पांवों पर पड़ा और किसी का दांतों पर किसीका कान पर किसी का सूंड़ पर हाथ पहुँचा इसी प्रकार हाथी को देखकर लौटआये और परस्पर पूछनेलगे कि हे भाई! वह हाथी कैसा था सो जिसने पांव को पकड़ा था वह कहने लगा कि हाथी बड़े खम्भा की नाईं है और जिसने कानों को पकड़ा था उसने हाथीको पंखेकी नाईं बताया और जिसका हाथ दांतोंपर पहुँचा था वह मूसल की नाईं वर्णन करनेलगा और जिसके हाथ सूंड़ आई थी वह अँगरखा की आस्तीन की नाईं कहनेलगा ऐसे कहकर परस्पर झगड़ने लगे पर विचार करके देखिये तौ एक भावकरके उनका कहना सत्य है और एक भावसे मिथ्याहै काहेते कि उन्होंने एक २ अङ्गको पहिंचाना था हाथी को संपूर्ण नहीं देखा तैसेही वैद्यक और ज्योतिषवालों की दृष्टिभी भगवतके एक टहलुवे पर पड़ी और उस टहलुवे के ऐश्वर्यको देखकर आश्चर्यवान् हुये ताते उसीको राजा जाना पर जिसको भगवत्ने सीधामार्ग दिखाया वह सबोंकी नीचता और पराधीनता को पहिंचानताहै और योंभी जानताहै कि जो कोई पराधीन होता है वह राजा नहीं कहलाता ताते इनके ऊपर ईश्वर और है ॥

पांचवां सर्ग ॥

तत्त्वों और नक्षत्रों के वर्णन में ॥

ताते जान तू कि यह ब्रह्माण्ड राजा के मन्दिर की नाईं है सो तिसविषे वैकुण्ठपुरी एक घर है कि वहां प्रधान के रहने का स्थानहै अर्थात् विष्णु का भवनहै बहुरि उस भवन के चारों ओर एक बारहदरी है सो तिसको बारहराशि कहते हैं और उसके एक २ दरवाजोंपर उसप्रधान के कामदार बैठते हैं सो मानो द्वादश राशिविषे द्वादश देवताहैं बहुरि उस बारहदरी के बाहर नवनकीब फिरते हैं सो नव-

ग्रह हैं और प्रधान की आज्ञा जो कामदारों को पहुँचती है तिसको यह सुनते हैं बहुरि नकीब सवारों के नीचे पांच प्यादे हैं सो वे पांच तत्त्व हैं सो इनकी दृष्टि सर्वदा सवारकी ओर रहती है कि देखिये उस दरबार से कैसी आज्ञा आती है बहुरि उन प्यादों के हाथमें पांच जेवड़ी हैं सो वे वात पित्त कफादिक स्वभाव हैं तब उसके केते मनुष्यों को भगवत् की आज्ञाकरके ऊर्ध्वगति को खैंचते हैं और केतोंको नीचे गिरायदेते हैं बहुरि किसीको सुखरूपी शिरोपांव देतेहैं और किसी को दण्डदेते हैं और वैकुण्ठरूपी भवनविषे जो प्रधान कहे हैं सो विष्णुदेवहैं और परब्रह्मरूपी महाराज के अतिनिकटवर्ती हैं और सबही उनके अधीन हैं सो जगत्विषे जो किसी मनुष्य की अवस्था उलटजाती है तब संसारसे उसकी रुचि दूर होजाती है तब उसके ऊपर शोक ऐसा प्रबल होजाता है कि संसारके भोगों को विरस जानता है और परलोकके भयकरके चिन्तित रहताहै सो उस को जब कोई वैद्य देखताहै तब कहताहै कि इसको वाईका रोगहै और इसका कारण शीतऋतु की सोखता है जबलग वसन्तऋतु न आवे तबलग इसका उपचार नहीं होसक्ता और जब उसको कोई ज्योतिषी देखताहै तब वह इस प्रकार कहताहै कि इस पुरुषको वाईका रोग बृहस्पति के कोप करके हुआहै काहेसे कि बृहस्पति और मङ्गल का विरुद्ध हुआहै सो जबलग इनका विरुद्ध दूर न होवे तबलग इस पुरुष का रोग दूर न होवेगा सो एकभावकरके जो देखिये तो इन्हों नेभी सत्य कहाहै पर तात्पर्य यहहै कि भगवत् जिस जीव को भलाई प्राप्तकिया चाहता है तब बृहस्पति और मङ्गल जो दो नकीब हैं तिनको शीघ्रही उसकी ओर भेजता है और उनकी आज्ञा करके पवनरूपी प्यादा सोखतारूपी जेवड़ी उसपर डालताहै तिसकरिके उसका चित्त माया के भोगों से विरस होजाताहै और शोकरूपी चाबुक लगाकर श्रद्धारूपी बाग उसकी खैंचते हैं और भगवत् के दरबार की ओर उसका मुख ले आवतेहैं पर इस भेद की बूझ वैद्यक और ज्योतिश्शास्त्र विषे नहीं पाईजाती ताते यह विद्या सन्तजनोंके अनुभवरूपी समुद्रविषे होती है सो सन्तजनों की विद्या सर्व दिशा और सबकार्यों विषे भरपूर है इसी कारण से वे सन्तजन ग्रह और नक्षत्रों के फिरने को भी जानते हैं और योंभी जानते हैं कि भगवत्की आज्ञा पाकर किसीको ऊपरको खैंचते हैं और किसीको नीचे गिरायदेते हैं सो यद्यपि वैद्य और ज्योतिषी का कहना भी सत्यहै पर तौ

भी महाराज और उसके श्रेष्ठ प्रधान और सेनापतियों को नहीं जानते काहेते कि वह महाराज दुःख और रोग और आपदा और दण्डकरके जीवों को अपनी ओर खैंचताहै और महाराज का वचनहै कि जब सात्त्विकी मनुष्यों को कुछरोग होताहै तब मैं उनको पीड़ा नहीं देता परन्तु उस दुःखकरके मैं अपने प्रियतमोंको अपनीओर खैंचताहूं ताते यह दुःखभी मेरी जेवड़ी है पर जेता कुछ प्रथम बखान किया है सो इस जीवके स्वरूप का पहिंचानना कहाहै और इस करके भगवत्के स्वरूपकी पहिंचानभी प्रसिद्धकरके कही है और अब यह जो वर्णन कियाहै सो भगवत् के राज्य और उसकी करतूतों की पहिंचान कही है सो यह पहिंचानभी अपने राज्य और करतूतोंकी पहिंचानने करके प्राप्त होती है इसीकारण से मैंने अपने पहिंचानने का अध्याय प्रथम कहा है ॥

छठा सर्ग ॥

चार वचन भगवत्स्वरूपसूचक स्तुतिके बखानमें ॥

जानना चाहिये कि भगवतकी स्तुति चार वचनों विषे कहीहै सो चार वचन ये हैं प्रथम भगवत् सबसे निर्लेप है और शुद्ध है १ और दूसरा यह कि महाराज का सर्वप्रकार धन्यवादहै और वह सर्व जगत्का ईश्वरहै २ तीसरे भगवत् एक है और उसकी नाईं दूसरा कोई नहीं ३ चौथा यह कि वह महाराज सबसे बड़ा है और परेते परे है ४ सो यद्यपि ये चार वचन कहने विषे संक्षेपकरके कहे हैं पर तौभी भगवत् की सम्पूर्णताई को लखावनेवाले हैं ताते जब तैंने अपनी निर्लेपता करके महाराज की निर्लेपता को समझा तब निर्लेपता के अर्थ की पहिंचान तुझको प्राप्त हुई १ बहुरि जब अपने राज्यकरके ईश्वर के राज्य को तैंने पहिंचाना कि जेते कुछ देवता और कालकर्म स्वभावसहित सम्बन्धहैं सो ईश्वर के अधीन हैं तब ऐसे जानने करके धन्यवाद का अर्थ तैंने समझा काहेसे कि जब कोई और सुख देनेहारा नहीं और आप करके कोई समर्थ भी नहीं तब सर्व प्रकार के जितने सुख हैं तितने केवल भगवतही के उपकार हैं और उस ही का धन्यवाद किया चाहते हैं २ बहुरि जब तैंने इसप्रकार जाना कि भगवत् बिना और कोई समर्थ नहीं और सबही उसके अधीन है तब तीसरे वचन का अर्थ तुझको प्रकट हुआ ३ बहुरि चौथे वचनका भाव यहहै कि भगवत् सब से बड़ाहै सो तिसका अर्थ इसप्रकार जानना चाहिये कि जैसे तू यों जानताहै कि

मैंने भगवत्को पहिंचानाहै सो तिसको तैंने पहिंचानाही कुछ नहीं काहेसे कि भगवत् की बड़ाई का अर्थ यह है कि यह जीव सर्व अनुमान करके उस महाराज को पहिंचान नहींसके ताते बड़ाई का अर्थ यह नहीं कि भगवत् असुक पदार्थ से बड़ा है काहेसे कि उसके निकट तो और कोई पदार्थही नहीं कि जिस पदार्थ से भगवत् को बड़ा कहिये इस करके कि जेती कुछ सृष्टि भासती है सो भगवंत के प्रकाश का प्रतिविम्बहै और उसकी सत्ताकरके स्थितहै तौ बड़ा किससे होवे जैसे सूर्य की जो धूप है सो जब धूप सूर्य से कुछ भिन्न होवे तब उससे सूर्य को बड़ा कहिये इसकारण से भगवत् की बड़ाई का अर्थ यहीहै कि यह मनुष्य अपनी बुद्धि और अनुमान करके महाराज को नहीं जान सक्ता और उसकी जो निर्लेपता और शुद्धताहै सो तिसको मनुष्यकी निर्लेपताकी नाईं जानना महा अयोग्य है काहेसे कि जितनी यह सृष्टि भासतीहै सो सबसे भगवत् का स्वरूप विलक्षणहै और उसको किसीकी नाईं नहीं कहाजाता तब यह मनुष्य क्या है कि जो इसका दृष्टान्त भगवत्के ऊपर सम्भव होवे बहुरि ऐसी बुद्धिसे भगवान् रक्षाकरे जो उस महाराज महाप्रभुता और राज्य को इस मनुष्यके ऐश्वर्य राज्य के समान जाने अथवा विद्या और शक्ति आदिक जो महाराज के स्वभाव हैं तिनको मनुष्य की विद्या और सामर्थ्य की नाईं विचारे सो यह महाअयोग्य है यद्यपि इस प्रकार आगे वर्णन कियागया है तौभी महाराज का स्वरूप लखावने के निमित्त दृष्टान्तमात्र कहा है कि उस करके इस मनुष्य को भी कुछ बूझ प्राप्त होवे जैसे कोई बालक किसी बुद्धिमान् से पूछे कि राज्य करने में कैसा स्वादु होता है तब उस बालक को कहा जायगा कि जैसे तुझ को गेंद दण्डा खेलने में स्वादु आवता है तैसेही राजाओं को राज्यमें स्वादु मिलताहै सो उस बालक को इस निमित्त ऐसे कहाहै कि वह गेंद दण्डा से इतर सुख को नहीं जानता और जिस सुख को उसने देखाही न होवे तिसको अनुमान करके क्योंकर पहिंचाने ताते उसको गेंद दण्डा के दृष्टान्त करके समझ में आवेगा पर यह बात प्रसिद्ध है कि गेंद दण्डा का सुख राज्य के सुख से परस्पर कुछ सम्बन्धही नहीं रखता पर सुख शब्द दोनों पर समान आवताहै ताते नामसंज्ञा की एकता करके बालकों को समझावना सुगम होताहै तैसेही मनुष्यकी शुद्धता और निर्लेपताका जो वर्णन कियाहै सो इस जीव की मूर्खबुद्धि समझावने के निमित्त कहाहै ताते

ह वार्त्ता निस्सन्देहहै कि भगवत् की पूर्णता को भगवत बिना और कोई नहीं जानसक्ता इसी कारण से भगवत की पहिंचान का विस्तार अमित है जो इस ग्रन्थ में कहा नहीं जाता ताते इस जीव को श्रद्धा और प्रीति उत्पन्नहोने के निमित्त इतनाही बहुतहै और यह मनुष्यभी इतनेही समझने का अधिकारी है कि इस जीवकी भलाई भगवतकी पहिंचान और उसकी सेवा और भजन विषे होतीहै इस करके कि जब इस मनुष्य का शरीर मृत्यु को प्राप्त होवे तब चाहिये कि इसका ध्यान महाराजकी ओर होवे काहेसे कि इस जीव के स्थितहोने का स्थान वोही है और इसको अवश्य में तहांहीं पहुँचना है ताते जब आगे ही इसकी प्रीति उसके साथ होवे तब जीवकी भलाई जानिये इसकरके कि जितनी प्रीति किसी की अधिक होती है तितनाही उस प्रियतम के दर्शन विषे उसको आनन्द भी अधिक होता है और जबलग इस मनुष्य को भगवत् की पहिंचान और भजन की अधिकता न होवे तबलग इसके हृदयविषे भगवत् की प्रीति दृढ़ नहीं होती सो यह वार्त्ता प्रसिद्ध है कि जिस पुरुष के साथ किसी की प्रीति अधिक होतीहै उसका स्मरण भी बहुत करता है और जिसका स्मरण करता है उसके साथ प्रीति भी दृढ़ होजाती है इसी पर एक सन्त दाऊद को आकाशवाणी हुई थी कि हे दाऊद ! तेरे सर्व कार्यों का सिद्ध करनेवाला मैंहीं हूं और तेरा प्रयोजन भी मेरेही साथ है ताते एक क्षणभी मेरे भजनसे अचेत न हो पर इस मनुष्य के हृदयविषे भजन तबहीं दृढ़ होताहै जब प्रथम सत्कर्मों विषे वर्तता है और सत्कर्मों का अवकाश तब पावताहै जब सर्व भोगवासना का त्याग करताहै ताते पाप-कर्मों का त्यागकरना हृदय की मुक्ति का कारणहै और सत्कर्मोंका ग्रहणकरना भजन की दृढ़ता का कारणहै और ये दोनों भगवतकी प्रीतिके उपजावनेवाले हैं और उत्तम भागोंका बीज भगवतकी प्रीति करके सिद्ध होता है सो यद्यपि यह जीव शरीरधारी जो है सो सर्व भोगोंसे रहित नहीं होसक्ता और खानपान वस्त्रआदिक शरीर के कार्यनिमित्त प्रमाण भी कहे हैं ताते चाहिये कि बिचार की मर्यादविषे स्थित होवे तब करणीयकर्मों और भोगवासनाको भिन्न करे पर बिचारकी मर्याद भी दो प्रकारकरके होती है सो एक यहहै कि यह मनुष्य अपनी बुद्धि और अनुभव की दृष्टिके साथ बिचार की मर्याद को देखकर अङ्गीकारकरे अथवा किसी महापुरुष की संगति करके बिचार की मर्याद बिषे बर्त्ते पर अपनी

बुद्धि और पुरुषार्थ के आश्रित मर्याद विषे रहना कठिनहै काहेसे कि इस जीव के ऊपर भोगवासना ऐसी प्रबल है कि इसकी बुद्धि को अन्ध करके सर्वदा यथार्थ मार्गको दुराय रखती है और अपने मनोरथोंके अनुसार भोगों को पुण्य रूप करके देखावतीहै ताते चाहिये कि यह मनुष्य स्वाधीन होकर कभी न वर्त्ते और अपना शरीर किसी महापुरुषको समर्पणकरे पर सबही मनुष्यभी इस योग्य नहीं होते कि उन को अपनपौ अर्प दीजिये ताते जो ज्ञानवान् सन्त होवे उस की आज्ञा विषे वर्त्ते और आज्ञाकी मर्याद से उल्लंघित न होवे तब स्वाभाविकही भलाई को प्राप्तहोताहै सो सेवक होने का अर्थ यही है और जो मनुष्य अपनी वासना करके सन्तजनों की मर्याद से उल्लङ्घित होता है तब उसकी बुद्धि तत्कालही नष्ट होजाती है इसी पर महाराज ने भी कहा है कि जिस पुरुष ने विचार की मर्यादका त्याग किया है तिसने अपने आपपर अन्याय किया है॥

सातवां सर्ग॥

मूर्ख मनुष्य सन्तमार्ग विपरीतगामियों के वर्णन में॥

ताते जान तू कि जिन पुरुषों ने अपनी वासना के अनुसार सन्तजनों की आज्ञा और मर्याद को त्यागकियाहै सो तिनकी अवस्था सात प्रकारकी है सो प्रथम ऐसे मूर्ख हैं कि उनकी प्रतीति भगवत् पर भी नहीं होती और इसप्रकार कहते हैं कि भगवतभी कल्पनामात्रहै काहेसे कि जब कोई इस जगत् का ईश्वर होता तब उसका भी कुछ रूप रङ्ग होता ताते जिसका रूपरङ्ग स्थान दिशा न पाईजावे तब इससे जानाजाता है कि भगवान् कल्पाहुआ है और इस जगत् के कार्य तत्त्वों के स्वभाव और नक्षत्रों के आश्रित होते हैं सो वह मूर्ख ऐसे ही जानतेहैं कि यह मनुष्य और २ जीव और नानाप्रकार की रचना अनेक गुणों संयुक्त जो दीखतेहैं सो ईश्वर विना आप ही उत्पन्न हुयेहैं और इसी भांति स्थित रहेंगे अथवा इनका उत्पन्नहोना तत्त्वों का स्वभावहै सो यह उनका कहना व्यर्थ है काहेसे कि वह मूर्ख अपने आप से भी अचेत है तब और किसी पदार्थ को क्या जानै सो इसका दृष्टान्त यहहै कि जैसे कोई पुरुष लिखेहुये अक्षरोंको देखे और कहे कि यह अक्षर विद्यावान् और समर्थ लिखारी विना आपही करके लिखेहुये हैं अथवा अक्षरोंकी मूर्त्ति अनादिकालकी लिखीचली आवतीहै सो जिनकी बुद्धि के नेत्र ऐसे अन्धहोवें तब उनका इसप्रकार देखनाही भागों की हीनता का मार्ग

है बहुरि वैद्य और ज्योतिषियों का भूलना तो पहिलेही वर्णनहुआ है १ और दूसरे मनुष्य इसप्रकारके मूर्ख हैं कि वह परलोक को नहीं मानते और यों कहते हैं कि यह मनुष्यभी घास और खेतीकी नाईंहैं ताते जब यह जीव मृत्यु होता है तब मूलहीसे नष्ट होजाता है इसी कारण से पाप पुण्य सुख दुःख दण्ड ताड़ना सबही व्यर्थहै सो यह ऐसे मूर्ख हैं कि आपको भी घास और बैलों और गधोंकी नाईं जानतेहैं और आत्मा जो चैतन्य और अविनाशी है तिसको नहीं पहिंचानते और मृत्युहोना जो शरीर की नाशता का नामहै तिससे अचेतहैं पर इस का निर्णय परलोक अध्याय विषे कहैंगे २ बहुरि तीसरे मूर्ख ऐसे हैं कि वह भगवत् और परलोक को मानते हैं पर उनकी प्रतीति निर्बल होतीहै ताते सन्तजनों के वचनों को नहीं पहिंचानते और कहते हैं कि भगवत् को हमारे भजनकी अपेक्षा क्याहै? और हमारे पाप करने करके उसको दुःख क्याहै? काहेसे कि वह भगवान् ऐसा महाराजा है कि उसको जगत्के भजन करनेकी कुछ परवाहही नहीं ताते उसके निकट पाप और भजन सब समान हैं पर यह मूर्ख भगवत् के वचनों में प्रत्यक्ष नहीं देखते हैं कि महाराज ने कहा है कि जिज्ञासुजन पुरुषार्थ और शुभकर्म अपने मनकी पवित्रता के निमित्त करते हैं सो यह मूर्ख मन्दभागी इस वचन को नहीं जानते और इसप्रकार समझ रक्खा है कि शुभकर्म भगवत के निमित्त कियेजाते हैं अपने कल्याण के निमित्त नहीं सो तिसका दृष्टान्त यह है कि जैसे कोई पुरुष रोगी होवे और पथ्य का त्यागन करे और कहे कि मेरे पथ्य और कुपथ्य करके वैद्यकी क्या हानि होतीहै? सो यह वचन तो सत्यहै कि वैद्यकी हानि कुछ नहीं होती पर इस कुपथ्य करके रोगीही का नाश होताहै सो रोगी का नाश वैद्य की अप्रसन्नता करके नहीं होता पर वह कुपथ्यही रोगीकी नाशता का मार्ग है और वैद्य तो उसको शुभमार्ग दिखानेवालाहै ताते वैद्य की हानि क्योंकर होवै सो जैसे शरीर का रोग शरीर की नाशता का कारणहै और रोगों का उपचार करना सुखों का कारण है तैसेही मलिनस्वभाव बुद्धि की नाशता का कारणहै और भगवत् का भजन और पहिंचान बुद्धि की आरोग्यता का कारण है ३ बहुरि चौथे मूर्ख इस प्रकार कहते हैं कि सन्तजनों ने जो भोग और क्रोध से हृदय को शुद्धकरना कहाहै सो यह असम्भव है काहेसे कि यह स्वभाव मनुष्य की आदि उत्पत्ति विषे मिलेहुये उपजे हैं ताते यह यत्नकरना ऐसा है जैसे कोई काले-

कम्मल को सफ़ेद कियाचाहे तब वह कदाचित् सफ़ेद नहीं होता सो यह मूर्ख यों नहीं जानते कि सन्तजनों ने भोगों को और क्रोध को वशीकारकरना कहा है जिससे सन्तजनों की आज्ञा और मर्यादसे उल्लङ्घित न होवे और प्रबल न होजावे बहुरि तामसी, राजसी कर्मोंका त्यागना जो कहाहै सो यह वार्त्ता होनेके योग्य है और बहुतपुरुष इस अवस्था को प्राप्तहुये हैं इसीपर महापुरुष ने भी कहाहै कि मैं भी और मनुष्यों की नाईं क्रोध करताहूं पर मेरा हृदय तपायमान नहीं होता और महाराज ने भी ऐसे पुरुषों की प्रशंसा करी है जिन्होंने क्रोध को जीताहै सो जीतना तबहीं कहाजाता है जब प्रथम क्रोध होवे और जब क्रोध होवेही नहीं तब उसका जीतना क्योंकर कहिये ४ बहुरि पांचवें मूर्ख इसप्रकार कहते हैं कि वह भगवत् परमदयालु और कृपालुस्वरूप है ताते हमारे अवगुणों की ओर न देखेगा पर यों नहीं जानते कि यद्यपि वह महाराज परमदयालु है पर तौभी पापी मनुष्यों को दण्ड देनेवाला भी वोही है और इस जगतविषे जो नानाप्रकार के रोग और कष्ट और निर्द्धनता आदिक दुःख जो जीवों को प्राप्त होते हैं सो तिस को नहीं देखते और भगवत् की दया और कृपा में तो कुछ संदेह नहीं पर जब वह अपनी जीविका के निमित्त यत्न करते हैं तब उनकी प्रतीति भगवत्के दयालु जानने में कहां रहसक्ती है और व्यवहार और जीविका के निमित्त क्यों यत्नकरते हैं काहेसे कि वह महाराज उद्यम बिना ही प्रतिपाल करनेवालाहै और महाराज ने प्रसिद्ध कहा है धरती और आकाश विषे सर्वजीवों का प्रतिपाल करनेवाला एक मैंहीं हौं सो इस वचन से महाराजने व्यवहार से प्रसिद्ध वर्जाहै परन्तु परलोक के मार्ग में यत्न करनेसे तो इस प्रकार नहीं वर्जा कि तुम भजन और पुरुषार्थ मत करो बहुरि इसी प्रकार जब मूर्ख भगवत् को कृपालुस्वरूप जानते हैं और माया की तृष्णाका त्याग नहीं करसक्ते तो परलोक की वार्ता मुखसे व्यर्थही कहतेहैं कि हम को भगवत् क्षमाकरलेवेगा सो यह लोग अपने मन के सिखाये हुये हैं और वासना के दास हैं और भगवत् की कृपापर उनको प्रतीति ही कुछ नहीं ५ बहुरि छठे मूर्ख अपने ऊपर अभिमानी हैं और इस प्रकार कहते हैं कि हम ऐसी अवस्था को प्राप्तहुये हैं कि हमको पापों का स्पर्श ही नहीं होता और हमारा धर्म ऐसा दृढ़ हुआ है कि उसको कदाचित् मैल नहीं लगता सो ऐसे मूर्खों की अधिक तो ऐसी अवस्था होती है कि जब कोई उनका एकवचन खण्डन करके निरादरकरै

तब सर्व आयुष् अपनी उसके विरोध विषे खोवते हैं अथवा जब एक ग्रास भी भोजन का किसी से मांगें और वह न देवे तब क्रोध करके उनके हृदयविषे महा अन्धकार छाजाता है सो यह मूढ़ परमपुरुषार्थ विषे ऐसे तो दृढ़ नहीं हुये कि जो इनको पापों का प्रवेश न होवे फिर ऐसा अभिमान करना क्योंकर प्रमाण होवे और जब कोई मूर्ख ऐसे पद को पहुँचभी जावे कि वैरभाव और भोगों की अभिलाष दम्भ और क्रोध करके उसने दूर कियाहोवे पर जब इस प्रकार जाने कि मैं परमपद को प्राप्तहुआ हूं तौभी अभिमानी कहलावेगा काहेसे कि सन्तजनों की अवस्था तो ऐसी हुई है कि जब उनसे कुछ अवज्ञा होजाती थी तब भय करके रुदन करते थे और महाराज के आगे प्रार्थना करके क्षमा करावते थे और जो उत्तम पुरुष सच्चे हुये हैं वह किंचित् पापसे भी डरते थे और मलिन धान्य के संशय करके शुद्धधान्यको भी त्यागदेतेथे तब इस मूर्ख ने यह क्योंकरजाना कि मैं मान और भोगों की फांसी से मुक्त हुआ हूं सो इस बुद्धिहीन की अवस्था तो सन्तजनों से उत्तम नहीं हुई बहुरि जब इस प्रकार कहें कि सन्तजन भी कर्मोंसे निर्लेपहुये हैं पर उन्होंने जीवों के कल्याण के निमित्त अशुभ कर्मों का त्याग किया है सो तिसका उत्तर यह है कि जब वह सन्तजन जीवों के कल्याण के निमित्त पापकर्मों का त्याग करते थे तब यह मूर्ख जीवों के कल्याणनिमित्त क्यों नहीं करते और योंभी जानते हैं कि जब कोई और भी हमारे अशुभकर्मों को देखता है तब वह भी धर्म के मार्ग से गिरपड़ता है और उसकी बुद्धि नाश होजाती है बहुरि जब इस प्रकार कहैं कि लोगों की बुद्धि के नाशहोने से हमारी क्या हानि होती है ? तब ये मूर्ख यों नहीं जानते कि जो लोगों के नाशकरके इन की कुछ हानि न होती तो आगे जो सन्तजनों ने अपने शरीर पर तप और वैराग्य रक्खा है सो लोगों के अकाज विषे उनकी हानि क्योंकर होती थी जैसे महापुरुष के पास एक छुहारा सकामता का आया था तब उन्होंने मुख से उस को डालदिया सो जब उस छुहारे को भोजन करलेते तब इसमें उनको क्या पाप होता और लोगों का क्या अवगुण था और जब उस छुहारे के खाने के विषे दोष था तब इन मूर्खों को मांस मदिरा के खानपान करने से क्योंकर दोष नहीं होगा और फिर जो विचारकर देखें कि जिन्होंने एक छुहारे का त्याग किया था तिनकी अवस्था से इन मूर्खों की अवस्था तो उत्तम नहीं और एक छुहारेके

पाप से मद्पान का पाप भी थोड़ा नहीं ताते क्योंकर जानिये कि उनको एक छुहारे का भी पाप लगता था और इनको मदिरा करके भी दोष नहीं ताते निःसंदेह जानाजाता है कि इनकी क्रिया देखकर माया प्रसन्न होती है और इन मूर्खों को हास्य का स्थान और खिलौना बनाया है और जब बुद्धिमान् पुरुष इनके कर्मों को देखते हैं तब इनके दम्भकरके आश्चर्यवान् होतेहैं ताते धर्मात्मा पुरुष वेही हैं कि जिन्होंने मन को छलरूप जाना है इसी कारण से मन और वासना को जिसने वश में नहीं किया सो मनुष्य महानीच है अथवा पशु है काहे से कि जिसको अपने मन के छलों की पहिंचान नहीं तिसको अभिमान करना व्यर्थ है इस करके कि वह मूर्ख बुद्धि की हीनता करके कहताहै कि मैंने मन को वशीकार किया है और मन के वशीकार करने का कोई लक्षणही इस विषे पाया नहीं जाता सो मनके जीतने का लक्षण यह है कि जब इस जीवकी करतूति अपनी वासना के अनुसार न होवे और सन्तजनों की आज्ञाविषे वर्ते और सर्वदा आपको उनकी आज्ञाविषे अर्पे तब जानिये कि सच्चा है और जब अपनी सयानप और चतुराई करके निर्दोष हुआ चाहे तब जानिये कि मनका दास है और झूठा अभिमान करता है ताते अपने मन की परीक्षा का त्याग करना कदाचित् प्रमाण नहीं और जब निडर होता है तब निस्सन्देह छला जाता है और अपने नाश होने को भी नहीं जानता बहुरि सन्तजनोंके वचन अनुसार करतूति करना भी जिज्ञासु की आदि है अवस्था इसके विना धर्म की दृढ़ता नहीं होसक्की तब परमपद का पावना तो महाकठिन है और परेसे परेहै सो तिस पद का अभिमानी होना व्यर्थ है और सातवें मूर्ख अपनी वासना की प्रबलता करके मूढ़ हुये हैं अजान नहीं हैं इस करके कि आपको निर्लेप नहीं जानते पर जब मनमती लोगों की ओर देखते हैं कि कुमार्ग विषे चले जातेहैं और नाना प्रकार के भोग भोगते हैं और सूक्ष्म वचनों का उच्चारण करते हैं और आपको सन्त करके दिखावते हैं और वेषभी सन्तजनों का करतेहैं सो इन की क्रिया को देखकर वह देखनेवाले भी लम्पट होजाते हैं ताते वह भोगोंको बुरा नहीं कहते और योंभी नहीं जानते कि भोगों करके दुःख प्राप्त होता है और कहते हैं कि भोग तो निन्द्य नहीं और भोगों विषे दुःखही कहां है दुःख भी यह कहनेमात्र है और ये ऐसे मूर्ख हैं कि कहनेमात्र का अर्थ भी नहीं जानते

और पाखण्डियों के संग करके और मन की वासना करके महाअचेत और अन्धेहुये हैं और इनको माया ने जीतलिया है सो यह वचन और चर्चा करके सीधे नहीं होते काहेसे कि अजानता करके नहीं भूले जानबूझकर बावलेहुये हैं ताते उनका उपाय राजदण्ड है और वचन करके उनका उपाय नहीं होता बहुरि ऐसे जे मूर्ख हैं तिनकी अवस्था का बखान इतनाही बहुतहै और इस अध्याय बिषे इस कारण से इनकी अवस्था का वर्णन किया है कि ऐसे मूर्खों की अवस्था और मूर्खता अपने मन करके होती है अथवा भगवत् की ओर पहुँचने का जो मार्ग है सो तिस सन्तजनों के मार्ग से अचेत होते हैं पर मूर्ख के हृदय में मूर्खता का स्वभाव ऐसा दृढ़ होजाता है कि इसका दूरकरना कठिन होजाता है इसीकारण से एक ऐसे मूर्ख होते हैं कि अजानता और संशय बिषे ही मन-माति के मार्ग में चलेजाते हैं और उसपर बड़ाई करते हैं बहुरि जब उनसे कोई प्रश्नकरे तब बावले से होजाते हैं और वचन का निर्णय बताय नहींसक्के और किसीसे पूछते भी नहीं काहेसे कि उनके हृदयबिषे प्रीति भी कुछ नहीं होती और किसी वचन की शङ्का भी नहीं करते क्योंकि शङ्का भी उसी को उपजती है जिसके हृदयबिषे कुछ ढूंढ़ होती है सो ऐसे पुरुषों का उपचार करना कठिन है जैसे कोई रोगी पुरुष वैद्य के पासजावे और अपने रोग को प्रसिद्ध वर्णन करे तब उसका उपचारकरना कठिन रहताहै और ऐसे मूर्खोंको यह उपदेश करना भला है कि और जिस वार्त्ता को तुम नहीं समझते तिससे अजानही रहो पर इतनी प्रतीति तुमको अवश्यही चाहिये है कि तुम सब भगवत के उत्पन्न कियेहुये हो और तुम्हारा उत्पन्न करनेवाला भी ईश्वर समर्थहै और जो कुछ किया चाहे सो करसक्ता है सो वार्त्ताबिषे संशय करना अयोग्यहै बहुरि जब उस बिषे कुछ श्रद्धा देखिये तब सन्तजनों के वचन उसको युक्ति अनुसार समझाइये जिसप्रकार मैंने भी इस ग्रन्थ बिषे वर्णन किया है॥

तीसरा अध्याय॥

माया की पहिचान के वर्णन में॥

ताते जान तू कि यह संसार भी धर्म के मार्ग की मंजिलहै और जो जिज्ञासु जन भगवत् की ओर गमन करते हैं सो तिनके पन्थ बिषे यह संसार भी ऐसा स्थान है कि जैसे किसी महाबन के किनारे पर कोई बड़ा नगर अथवा बाज़ार

होवे इस करके कि उस नगर से परदेशी मनुष्य अपना तोशा करलेवें तैसेही यह संसार भी परलोक मार्ग का तोशा बनावने के निमित्त रचा है बहुरि लोक और परलोक का अर्थ यह है कि शरीर के नाश होने से पहले जो संसार दीखता है तिसका नाम लोक है और शरीर के मृत्यु हुये से पीछे जो जीव की अवस्था होती है सो परलोक कहाता है और इस लोक विषे जीवका उत्तम प्रयोजन यह है कि परलोक का तोशा बनावे और यद्यपि आदि उत्पत्ति विषे इस मनुष्य की अवस्था सामान्य और नीच होती है पर तौभी पूर्णपद का अधिकारी बनाया है कि देवतों के निर्मल स्वभाव को जब अपने हृदयविषे स्थित करे तब भगवत् के दर्बार का अधिकारी होवे सो जब इस मनुष्य को उस मार्ग की बूझ प्राप्तहोवे तब निस्सन्देह महाराज का दर्शन देखेगा और जीवकी परम भलाई यही है और इसका बैकुण्ठ भी यही है और इस जीव को भगवत्ने इसी कार्य के निमित्त उत्पन्न किया है पर तबलग महाराज का दर्शन नहीं देख सक्ता जबलग प्रथम इसके हृदय की आंख न खुलजावे और उस सूक्ष्मस्वरूपको समझ और पहिंचान भलीप्रकार न लेवे सो भगवत् के पहिंचानने की कुञ्जी यही है कि उसकी आश्चर्य कारीगरी को प्रथम पहिंचाने बहुरि महाराज की कारीगरी के पहिंचानने की कुञ्जी इन्द्रियां हैं और इन्द्रियों के स्थित होने का स्थान शरीर है और यह शरीर पञ्चतत्त्वों के सम्बन्धकरके रचाहुआ है इसी कारण से यह जीव स्थूल तत्त्वों के देशविषे आया है कि इस जगत् विषे तोशा बनालेवे और अपने मनकी पहिंचान करके भगवत् को पहिंचाने और सर्व पदार्थों का पहिंचानना इन्द्रियों करके होताहै ताते जबलग इस मनुष्य को इन्द्रियां जगत् की खबर देतीहैं तबलग यह पुरुष संसारविषे जीवता रहता है और जब इन्द्रियां इससे दूर होजातीहैं और यह जीव अपने स्वभाव विषे स्थित होता है तब इसी को परलोक कहते हैं सो इस जगत् विषे इस मनुष्य का आवना इसी निमित्त है कि अपने कार्यको सिद्धकरे॥

दूसरा सर्ग॥

शरीर और हृदय की रक्षा के वर्णन में॥

ताते जान तू कि संसार विषे इस जीव को दो कार्य अवश्य ही करनेहैं सो प्रथम यहहै कि अपने हृदय को अशुभ स्वभावों से बचावे काहे से कि बुरे

स्वभावों करके बुद्धि का नाश होजाताहै बहुरि हृदय का जो आहार है तिसको प्राप्त करे १ और दूसरा कार्य यह है कि शरीर को भी नष्ट होने से बचावे और शरीरको आहार भी देवै २ बहुरि हृदय का जो आहार है सो भगवत्की पहिंचान और प्रीति है काहेसे कि सबका आहार अपने स्वभाव अनुसार होताहै और उस को प्रियतम भी वोही लगता है और यह कछुक आगेभी वर्णन कियाहै कि जीव का स्वस्वभाव भगवत् की पहिंचान है पर जब यह जीव भगवत् से इतर किसी पदार्थ के साथ प्रीति करताहै तब उसी करके इस जीवकी बुद्धि नष्ट होजाती है बहुरि शरीर की रक्षा और सुख जो है सो यह भी हृदय की रक्षा के निमित्त चाहिये है काहे से कि चैतन्य स्वरूप हृदय अविनाशी है और यह शरीर नाशवन्त है ताते जीव और शरीर का सम्बन्ध ऐसा है जैसे तीर्थयात्रा में यात्री और ऊंट का सम्बन्ध होताहै अर्थात् यात्री के निमित्त ऊंट चाहिये है पर ऊंट के निमित्त तो यात्री नहीं होता और यद्यपि वह यात्री भी घास और पानी करके ऊंट की रक्षा करताहै पर तौभी उसका प्रयोजन तीर्थयात्रा है बहुरि जब तीर्थयात्रा सिद्ध होती है तब यात्री को ऊंट की अपेक्षा नहीं रहती ताते चाहिये कि मार्गविषे ऊंट की खबर कार्यमात्र ही लेवे पर जब सारा दिन ऊंट की टहलविषे और संभारविषे बीतजावे तब वह यात्री संगियों से दूर पड़जाताहै और तीर्थ को नहीं पहुँचता तैसेही जब यह मनुष्य सर्व आयुष् आहार की उत्पत्तिविषे लगावे और विघ्नोंसे शरीर की रक्षा करतारहै तब यह पुरुष भी अपनी भलाई को नहीं पहुँचता ताते इस संसार विषे शरीर की रक्षा के निमित्त अवश्यही चाहिये हैं सो तीन पदार्थ हैं एक आहारहै दूसरा वस्त्र तीसरा शीत उष्णकी रक्षाके निमित्त स्थानके होने की भी अपेक्षा होतीहै सो प्राणों की रक्षा के निमित्त इस जीव को इन तीन पदार्थों से अधिक कुछ नहीं चाहिये बहुरि माया के सर्व पदार्थों के मूल भी येही हैं बहुरि हृदयका आहार जो भगवत् की पहिंचान है सो जितनीही अधिक होवे तितनीही सुखदायक है और शरीर का आहार जो अनाज है सो जब मर्याद से अधिक अङ्गीकार करताहै तब इस करके शरीर का नाश होजाता है पर इस जीव विषे जो भगवत् नें भोगों की अभिलाषा रची है तिसका प्रयोजन यह है कि वह अभिलाषा आहार वस्त्र स्थान की चाह करनेवाली होवे और इस करके शरीररूपी घोड़े की रक्षाकरे पर यह अभिलाषा ऐसी प्रबल रची है कि अपनी

मर्याद विषे नहीं ठहरती और सदैव अधिकता को चाहती है ताते भगवत्‌ने बुद्धि को उत्पन्न किया है कि उस अभिलाषा को मर्याद विषे राखे और सन्तजनों की रसना विषे धर्मशास्त्रके वचन उत्पन्न कियेहैं कि वचनों करके विचारकी मर्याद प्रकट होवे और भोगों की अभिलाषा बालक अवस्था सेही इसके ऊपर प्रबल हुई काहेसे कि शरीर की प्रतिपालना खान पान आदिक भोगोंकरके होती है और बुद्धि का प्रवेश पीछे हुआहै ताते भोगों ने आगेही से हृदयस्थान को घेरलिया है इसी कारण से बुद्धि की आज्ञा को नहीं मानते और विचार की मर्याद तो पीछे प्रकट हुईहै सो तिससे उल्लङ्घित वर्ततेहैं ताते इस मनुष्यका अपना आप आहार और वस्त्र और स्थान आदिक भोगों विषे आसक्त हुआ है और इसीसे जीव ने भोगों की अभिलाषा करके आपको विस्मृत कियाहै बहुरि यों भी नहीं जानता कि आहार और स्थान आदिक का प्रयोजन क्या है ? और इस जगत्‌विषे मैं किस निमित्त आया हूं इसी अजानता करके हृदय के आहार से अचेत हुआ है और परलोकमार्ग विषय का तोशा इसको भूलगया है पर जब तैंने इस वचन करके माया का स्वरूप और उसके विघ्न और प्रयोजन को भलीप्रकार समझा तब इससे आगे माया का विस्तार और इसकी जो शाखा हैं तिसको भी पहिचानना चाहिये ॥

तीसरा सर्ग ॥

माया के विस्तार के वर्णन में ॥

ताते जान तू कि जब विचारकरके देखिये तो तीनही पदार्थों का नाम संसार है सो एक तो प्रकटही देखनेमें वनस्पति है १ दूसरे पर्वतोंमें खानि हैं २ तीसरे अनेकभांतिके जीव हैं ३ पर धरतीके उत्पन्नहोनेका जो कारण और प्रयोजन है सो यहहै कि यह सर्वपदार्थोंकी स्थिति और वनस्पति उपजने के निमित्त बनाई है बहुरि तांबे और लोहे आदिक की जो खानि हैं सो बासनों और वस्त्रोंके निमित्त बनाई हैं और नाना प्रकार के जो जीव हैं सो अपने २ निमित्त उत्पन्न किये हैं पर इन मनुष्योंने अपने हृदय और शरीरको इन जञ्जालों विषे बध्यमान कियाहै और हृदय का बन्धन स्थूल संसार की प्रीति है और शरीर का बन्धन संसार के कार्यहैं ।र माया की प्रीतिकरके चित्त विषे ऐसे बुरे स्वभाव उपजते हैं कि वह सब ही बुद्धि की नाशता के कारण होते हैं जैसे तृष्णा और कृपणता

और ईर्षा और वैरभाव आदिक जो बुरेस्वभाव हैं सो निस्सन्देह बुद्धिके नाश करनेवालेहैं बहुरि शरीर का बन्धन जो माया के कार्यहैं सो तिन विषे हृदय भी ऐसा आसक्त होजाता है कि आपको और परलोकको बिसार देताहै पर तौभी माया के पदार्थों का जो मूल और प्रयोजन है सो केवल आहार और वस्त्र और स्थान है ताते तीनों व्यवहार इस जीवको अवश्यही चाहिये हैं जैसे खेती और वस्त्रों और स्थानोंका बनावना बहुरि और जेते व्यवहार हैं सो इनहींकी शाखाहैं जैसे धुन्नियां सूत बनावनेवाला कोरी, धोबी, दरजी सो यह सबही वस्त्र के कार्य सिद्ध करते हैं पर इन सबोंको जो अपने २ शस्त्र चाहिये हैं ताते काष्ठ और लोहा आदिक जो शस्त्रोंको बनावते हैं सो तिनका व्यवहार पसरता है सो जब इतने व्यवहारी आपस विषे इकट्ठे हुये तब यह सबही एक दूसरे की सहायता करते हैं काहेसे कि सबकोई सर्वकार्य अपने आप नहीं करसके जैसे दरजी, कोरी और लोहार का कार्य करताहै बहुरि लोहार भी इन दोनों के कार्यों विषे सावधान है इसी प्रकार सबही एक दूसरे की सहायता करते हैं और परस्पर कार्य सिद्ध करते हैं ताते सबोंका परस्पर व्यवहार चलता है बहुरि लेने देने विषे विरुद्ध जाग आवता है काहेसे कि सब कोई नीति विषे नहीं वर्तता और तृष्णा करके एक दूसरे को दुखाया चाहता है इस कारण और भी तीन पदार्थों की अपेक्षा हुई सो प्रथम तो धर्मशास्त्र का ज्ञाता चाहिये जो धर्म की मर्यादको प्रकटकरे बहुरि कोई ऐसा श्रेष्ठ मनुष्य विचारवान् चाहिये जो झगड़ा करनेवालों को समझावे बहुरि तीसरा कोई बलवन्त राजा भी चाहिये जो झूठे मनुष्य को दण्डदेवे सो इसी प्रकार यह सबही व्यवहार ऐसे हैं कि सबों का परस्पर सम्बन्ध है अधिक से अधिक पसरते जाते हैं काहेसे कि संसार संसरने ही का नाम है पर लोगों ने इनहीं कार्यों विषे अपना आप भुलादियाहै और आहार, वस्त्र, स्थान जो प्राणों की रक्षा के कारण हैं और माया के भी सर्व पदार्थों का मूल है सो तिसके प्रयोजन को नहीं जाना अर्थात् सर्वव्यवहारों का प्रयोजन आहार आदिक तीन पदार्थ हैं और इन तीनों पदार्थ आहार वस्त्र स्थान से प्रयोजन शरीर की रक्षा है बहुरि शरीर की रक्षा जीव के निमित्त है कि यह शरीर जीव का घोड़ा है और जीव के उत्पन्नहोने का प्रयोजन भगवतकी पहिचान है पर इन मनुष्यों ने माया के कार्यों विषे आपको और भगवत्को विस्मरण करदिया है जैसे यात्री कोई तीर्थ के मार्ग और संगियों को

भुलादेवे और अपने समय को घोड़ेके सँभार और सेवाविषे वितावे तब उसकी यात्रा नष्ट होतीहै तैसेही जो मनुष्य परलोक के मार्गपर अपनी दृष्टि नहीं रखता और आपको परदेशी नहीं जानता और माया के जञ्जालों विषे मर्याद से अधिक आसक्त होताहै तब निस्संदेह जानाजाताहै कि उसने मायाके भेद को नहीं जाना और माया को जो पहिंचान नहींसक्ता तिसका कारण यह है कि यह माया महाछलरूप है इसीपर महापुरुष ने भी कहाहै कि यह माया जीवों को मन्त्र यन्त्र करके मोहनेवाली है ताते इसके छलों से भयकरना प्रमाण है सो जब यह माया ऐसीहुई तब इसके छलों का पहिंचानना अवश्यही चाहिये ताते मैं इस माया के छलों को दृष्टान्तसहित वर्णन करताहूं ॥

चौथा सर्ग ॥

माया के छलों के वर्णन में ॥

ताते जान तू कि माया के छलों का प्रथम दृष्टान्त यह है कि यह माया सर्वदा तुझको स्थिर दिखावती है परन्तु इसको ऐसे जानता है कि सदैव मेरे पास रहेगी पर यह माया ऐसी है कि सर्वदा तुझसे दूर चलीजाती है और क्षण २ विषे इस का जीवना ऐसा सूक्ष्म है कि जाना नहीं जाता जैसे वृक्ष की छाया को जब कोई देखे तब वह स्थिरही पड़ी भासती है पर जब भली प्रकार देखिये तब एक क्षण भी नहीं ठहरती तैसेही तेरी आयुष् पल २ विषे घटती जाती है और तू इसको स्थिरही जानताहै सो निस्सन्देह यह शरीर और आयुष् मायारूपहै और ऐसी छलरूपहै कि तू इसके दूर होनेसे अचेत है और यह सर्वदा तुझसे बिछुड़तीजाती है १ बहुरि दूसरा माया के छल का दृष्टान्त यह है कि यह माया तेरे साथ अपनी अधिक प्रीति दिखावती है ताते अपने ऊपर तुझको उलझालेती है और तेरे हृदय विषे उसकी प्रीति और प्रतीति ऐसी दृढ़ होजाती है कि यह हमारी परम प्यारी है और कदाचित और किसी के पास न जावेगी पर वह माया अचानक ही तुझको छोड़कर तेरे शत्रु के पास जातीरहती है जैसे व्यभिचारिणी स्त्री परपुरुषों को अपने ऊपर उलझावे और उनको अधिक प्रीति दिखाकर अपने गृह विषे लावे बहुरि अदया करके उनका घात करे इसी पर एक वार्त्ता है कि महात्मा ईसाने स्वप्न विषे माया को स्त्री के स्वरूपवत् देखा था तब उससे पूछनेलगे कि तूने कितने भर्ता किये हैं तब माया ने कहा कि मेरे भर्ता अगणित हैं तब उन्हों

ने पूछा कि वह सब मृतक हुये अथवा उन्हों ने तेरा त्याग किया है तब मायाने कहा कि मैंने ही सबको मारा है तब महात्मा ईसा कहनेलगे कि मुझको लोगों की मूर्खता पर आश्चर्य आताहै काहेसे कि जिनकी प्रीति तेरे साथ दृढ़ हुई है तिनका नाश और दुःखी होनाभी देखते हैं और फिरि तेरे ऊपर उलझकर आसक्त होतेहैं और भय नहीं करते २ बहुरि तीसरा दृष्टान्त यहहै कि यह माया आप को कपटी मनुष्य की नाईं बाहर से सुन्दर बनाकर दिखावतीहै और इसके अन्तर जो दुःख और विघ्नहैं तिनको दुराय रखती है ताते जब इसको मूर्ख मनुष्य देखते हैं तब अचानकही लिपटजाते हैं बहुरि जब इसका भेद पावते हैं तब महादुःखी होते हैं जैसे कोई महाकुरूपा स्त्री नाना प्रकारके भूषण और सुन्दर वस्त्र पहरे और अपने मुख को घूंघुट बिषे दुरायलेवे सो जब कोई उसको देखताहै तब अवश्यही मोहजाताहै फिरि जब घूंघुट उतारकर उसकी कुरूपता को देखताहै तबपश्चात्ताप करने लगताहै इसीपर महापुरुष ने भी कहा है कि परलोक बिषे माया की सूरत महाकुरूपा वृद्धा स्त्रीवत् दिखावेंगे कि उसके नेत्र भयानक और दांत मुखसे बाहर निकलेहुये होवेंगे तब महाराज से प्रार्थनाकरेंगे कि हे महाराज! इससे हमारी रक्षा कर और कहेंगे कि यह महाराक्षसी कौन है तब आकाशबाणी होगी कि जिस माया के निमित्त तुम ईर्षा और परस्पर बिरोधकरते थे और जीवों का घातकरते थे बहुरिभाव और दया से रहित होतेथे और जिसके ऊपर तुम अभिमान करते थे सो यह वोही माया है बहुरि आज्ञा होवेगी कि इस माया को महानरक बिषे डालो तब माया कहेगी कि मेरे प्रियतम कहांहैं तब आज्ञा होवेगी कि इसके प्रियतमों कोभी नरकबिषे डालदो ३ बहुरि चौथा दृष्टान्त यहहै कि जब कोई माया की आदि अन्त का विचारकरे तब निस्संदेह जाने कि यह माया आदि में भी न थी और अन्त में भी न रहेगी ताते मध्यकाल बिषे कुछदिन इसकी स्थितिहै जैसे कोई पुरुष परदेशी होवे तिसको मार्गबिषे ठहरना अल्पकालही होताहै तैसेही संसार की आदि पालनाहै और अन्त श्मशानहै और इसके मध्यमार्ग बिषे केती मंज़िलेंहैं सो वर्ष तो मंज़िल की नाईं है और महीना योजन है और कोस की नाईं दिन है और श्वास पैंड़हैं इसी प्रकार सर्वजीव सर्वदा मृत्यु के मार्गबिषे चलेजाते हैं सो किसीको योजनपर्यन्त मार्ग रहताहै और किसीको इससे भी अल्प रहताहै और किसी को कुछ अधिक रहताहै पर यह मनुष्य आप को स्थिर जानता है कि मैं इसी संसार बिषे

सदैव स्थितरहूंगा और कितने वर्षों की आशा धारकर कार्यों की चिन्ता करता है और यों नहीं जानता कि मेरी आयुष् दो दिन अथवा चारदिनही है अथवा कुछ भी नहीं रही ४ बहुरि पांचवां दृष्टान्त यह है कि विषयीजीव माया के भोगों विषे प्रसन्न होते हैं पर परलोकविषे ऐसे दुःख और निर्लज्जता को प्राप्तहोवेंगे कि उस कष्ट का वर्णन किया नहींजाता जैसे कोई मीठा और चिकना आहार होवे और उस को कोई मनुष्य ऐसा तृप्त होकर खावे कि उस करके उदरपीड़ा को प्राप्तहोवे बहुरि विसूचिका रोग करके वमन और अतीसार को प्राप्तहोवे और अतिमूर्च्छा को प्राप्त होवे तिसकी अतिदुर्गन्धकरके तब बहुत पश्चात्ताप और लाज को पाताहै काहे से कि सुखका समय बीतगया और कष्ट उसका शेषरहा सो यत्नकरके भी दूर नहीं होता और जितनाही भोजन स्वादिष्ठ होता है तितनीही उसमें परिणाम विषे दुर्गन्ध अधिक होती है तैसेही इस संसार विषे माया के भोग जितना अधिक भोगता है तितनाही परलोक विषे अधिक दुःखी और लज्जित होता है और इस दुःख को शरीर के नाशहोने के समय में प्रकट देखता है काहेसे कि जिस मनुष्य के पास भोग और बागीचे और टहलुवे और दासी और सोना चांदी अधिक होता है तिसको शरीर छूटने के समय उनके वियोग का दुःखही उतनाही अधिक होता है और जिसके पास माया की सामग्री थोड़ी होती है तिसको दुःखभी थोड़ा होताहै ताते भोगों के वियोग का जो दुःखहै सो शरीरके मरनेपर भी दूर नहीं होता और अधिक वृद्ध होता है काहे से कि माया की प्रीति मनुष्य के हृदय का स्वभाव है और शरीर के दूरहुये से मनुष्य का हृदय अपने आप विषे स्थित रहता है इसी कारण से माया के भोगों की प्रीति को खैंचकरके अधिक दुःखी होता है ५ बहुरि छठवां दृष्टान्त यह है कि जिस माया के कार्यों को यह मनुष्य करनेलगता है तब प्रथम वह कार्य अल्प दिखाई देता है और यह मनुष्य जानता है कि मैं शीघ्रही इस कार्य को करलूंगा और आसक्त न हूंगा बहुरि इस कार्य की आशा और तृष्णा बढ़ती है तब एकही कार्य विषे अनेक सहस्रों और मनोरथ उपज आते हैं और वह कदाचित् नहीं सम्पूर्ण होते इसीपर महात्मा ईसाने भी कहा है कि माया की तृष्णा करके मनुष्य महाअतृप्त होता है जैसे कोई तृषावन्त पुरुष कालर पृथ्वी के जल को पीवे तब उसकी तृषा अधिक से अधिक बढ़ती जाती है और उसही जलपान करके नाश

को पाताहै बहुरि महापुरुषने भी कहा है कि जैसे कोई मनुष्य जलविषे प्रवेश करे तब वह किसी प्रकार सूखा नहीं रहता तैसेही माया के व्यवहारों विषे भी निर्लेप रहना अतिकठिन है ताते ऐसा कोई विरला महापुरुष होता है जो माया के व्यवहारों विषे आसक्त न होवे ६ बहुरि सातवां दृष्टान्त यह है कि जैसे किसी के गृह विषे कोई परदेशी पुरुष आवे और वह घरवाला पुरुष परदेशियों की टहल करनेलगे और उनके निमित्त स्थान पवित्र कररक्खे और उनको रूपे के बासनों में भोजन और सुगन्ध आदिक देवे सो इसी प्रकार परदेशी लोग उसके आते जाते रहाकरें और वह पुरुष सबकी सेवा इसी प्रकार करता रहे सो उन परदेशियों में जो कोई बुद्धिमान् होता है और घरवालों के भेदको जानताहै वह पुरुष भोजन और सुगन्ध को अङ्गीकार करके फिर प्रसन्नता सहित उसके बासन सब उसके पास पहुँचाय देताहै और उसका उपकार मानता है बहुरि जो परदेशी मूर्ख होता है वह उन सुगन्ध और भोजनवाले रूपेके बासनोंको जानताहै कि उसने मुझको देडाले हैं और ऐसा विचारकर चलनेके समय उन बासनोंको अपने साथ उठाने लगताहै बहुरि जब उससे फेर लेते हैं तब शोकवान् और दुःखी होता है और पुकार करताहै तैसेही यह संसार भी परदेशियों का स्थानहै और इस निमित्त भगवतने बनायाहै कि इसविषे परदेशी जीव अपना तोशा बनालेवें और किसी पदार्थ के लोभ करके बद्धमान न होवें ताते जो बुद्धिमान् पुरुष होताहै वह अपने कार्यमात्र व्यवहार को सिद्ध करलेता है और जो मूर्ख होता है वह पदार्थों के लोभ विषे और भोग विषे बद्धमान होजाता है और फिर वियोग समय दुःखी होताहै ७ बहुरि आठवां दृष्टान्त संसारी जीवोंपर यह है कि यह संसारी जीव माया के व्यवहारों विषे ऐसे आसक्त होते हैं कि उनको परलोक की वार्त्ता ही भूलजाती है सो इसीपर एक वार्त्ता है कि किसी जहाज़ विषे कितनेक पुरुष चले जाते थे जब वह जहाज़ किसी टापूपर आया तब शरीर की नित्यक्रिया के निमित्त सब कोई उतरे तब केवट ने पुकारकर कहा कि हे भाई! अपनी २ क्रियाकरके शीघ्र ही चलेआइयो काहेसे कि यह जहाज़ बेगही आगे चलेगा बहुरि वह लोग उस टापूपर अपनी क्रिया करनेलगे पर उनमें जो बुद्धिमान् थे सो उन्होंने तो शीघ्र अपनी क्रिया करके जहाज़ पर आकर सावकाश समेत अपनी रुचिके अनुसार ठौर लेलिया और उसमें स्थितहुये और थोड़े पुरुष उस टापूमें जो नानाप्रकार के

फूल और पक्षी शब्द कररहे थे और रङ्गीन पत्थर पड़ेहुये थे सो उनकी आश्चर्य रचना को देखनेलगे पर कुछेक ढीलकरके वह भी जहाज़पर आपहुँचे तब उन को सावकाश समेत ठौर न मिला ताते सकुचकर बैठे बहुरि कितने लोग उस आश्चर्यताको देखकर भी तृप्त न हुये और रङ्गीन पत्थरोंकी पोटें बांधकर लेआये और कङ्कड़ों के रखने का ठौर भी उस जहाज़ विषे उन्होंने न पाया ताते वह पोटें शीशपर रखकर बैठे बहुरि जब एक दो दिन व्यतीत हुये तब उन कङ्कड़ पत्थरों का रङ्ग भी होगया और उनमेंसे दुर्गन्ध आनेलगी और उनको फेंकदेने का मार्ग दूर प्राप्त न हुआ ताते बड़े दुःख को प्राप्तहुये और पश्चात्ताप करनेलगे बहुरि कितने पुरुष उस टापू की आश्चर्यता को देखकर विस्मयको प्राप्तहुये और सुन्दर रचना को देखने में जहाज़ से दूरगये और वह जहाज़ भी आगेको चल दिया और उन मूर्खों ने केवट की पुकार भी न सुनी ताते उस टापू विषे भूख प्यास के मारे मृतक हुये और कितनों को सिंहादिकों ने फाड़ डाला पर वह मनुष्य जो प्रथमही शीघ्र जहाज़ विषे आय बैठे थे सो वैरागी पुरुष की नाईं हैं और जो पुरुष टापू विषेही रहे वह तामसी मनुष्य हैं कि उन्हों ने आपको और भगवत् को और परलोक को भुला दिया और अपने आप माया के विषे बध्य-मान हुयेहैं बहुरि जो पुरुष कुछ एक ढील करके जहाज़ विषे आये थे और रङ्गीन कङ्कड़ उठाय लाये थे सो वह दोनों विषयी राजसी हैं कि यद्यपि भगवत् और परलोक को मानते हैं पर तौ भी माया का त्याग नहीं करते और जगत् के पदार्थों के संचने करके भार उठाते हैं॥

पांचवां सर्ग॥

मांया और निर्मायिकपदार्थों के वर्णन में॥

ताते जान तू कि जेती कुछ मायिक पदार्थों की माया की नाईं निषेधता कही है सो इस करके यों नहीं जानना चाहिये कि मायाविषे सबही पदार्थ निन्द्य हैं काहे से कि इस संसार विषे कितने पदार्थ ऐसे भी पायेजाते हैं कि वह माया से रहित हैं जैसे विद्या और शुभकरतूति भी संसार ही विषे प्राप्त होती हैं पर माया से रहित हैं और परलोक विषे भी जीवों की संगी और सहायता करनेवाली हैं सो यद्यपि परलोक विषे विद्या के अक्षर और वचन नहीं पहुँचते पर तौभी विद्या का जो गुण है सो जीवोंके साथ रहताहै सो विद्या का गुण भी दो प्रकार का

होताहै प्रथम तो हृदयरूपी रत्न की पवित्रता और शुद्धता पापों के त्याग करके प्राप्त होती है और दूसरा गुण रहस्य और आनन्द है सो भगवत् के भजन और चित्त की एकाग्रता करके प्राप्तहोता है सो यह शुभगुण सत्यस्वरूप है ताते भगवत् की प्रार्थना और भजन का जो रहस्य है सो सर्व कार्यों से विशेष है पर यह रहस्य भी इसी जगत् विषे प्राप्त होताहै और माया से रहितहै इस करके प्रसिद्ध हुआ कि सबही रस भी निन्द्य नहीं पर जो रस परिणाम को शीघ्रही पाता है सो निन्द्य है और जब विचारकरके देखिये परिणाम पानेका रस वही स्वाद निन्द्य नहीं काहे से कि परिणाम पानेवाले स्वाद भी दो प्रकार के हैं सो एकतो यह कि जिन स्वादोंकरके शरीर की पुष्टता होतीहै सो यह निन्द्य है काहेसे कि ऐसे स्वादों करके अचेतता और प्रमाद और संसार की सचाई बढ़ती है १ बहुरि दूसरा सुख जो आहार और वस्त्र और स्थान करके प्राप्त होताहै सो यद्यपि यह भी नाशवन्त है पर तौभी निन्द्य नहीं काहे से कि विद्या और शुभ करतूति भी इसी से सिद्ध होती है ताते इसको भी परलोक का संगी कहते हैं २ ताते जो कोई पुरुष इस शरीर के सुखको संतोष सहित अङ्गीकार करे और उसका मनोरथ यही होवे कि मैं अचिन्त्य होकर भगवत् का भजनकरूं तब उसको माया से रहित कहते हैं इसी पर महापुरुष ने भी कहा है कि जिन माया के पदार्थों करके भगवत् की प्राप्ति होवे सो पदार्थ निन्द्य नहीं और ग्रहण करने के योग्य हैं ताते माया के छलों और इसके विस्तार का जो वर्णन किया सो इस ग्रन्थ विषे इतनाही बहुत है॥

चतुर्थ अध्याय॥

पहिला सर्ग॥

परलोक की पहिंचान के वर्णन में॥

ताते जान तू कि जबलग प्रथम मृत्यु होने को न पहिंचानिये तबलग परलोक भी नहीं जानाजाता और संसार का जीवना है जबलग इस जीवने को न जानेगा तबलग मृत्यु को नहीं पहिंचानसक्ता बहुरि जब जीव के यथार्थस्वरूप को न पहिंचानेगा सो जीवका पहिंचानना यह कि अपने आपको पहिंचानिये सो कुछ एक इस वचन का बखान मैंने पहले भी वर्णन कियाहै और सन्तजनों के वचन विषे भी आया है कि यह मनुष्य दो पदार्थों के सम्बन्धसे

उत्पन्न हुआ है सो एक जीव है और दूसरा शरीर बहुरि शरीररूपी घोड़ा है और जीवरूपी उस के ऊपर सवार है और परलोक विषे सुख दुःख इस जीव को शरीर के सम्बन्ध करके भी होता है और शरीर बिना ही अपने आप करके यह जीव दुःखी सुखी होता है ताते प्रसिद्ध हुआ कि परलोक विषे जीव की अवस्था केवल जीव की भी होती है पर शरीर के साथ जो जीव की अवस्था है सो तिसको स्थूल स्वर्ग नरक कहते हैं और दुर्गति सुगति भी कहते हैं बहुरि शरीर के बिना जो जीव को सुख और आनन्द प्राप्त होता है तिसको आत्म-स्वर्ग कहते हैं और शरीर से रहित जो जीव को कष्ट और दुःख होता है तिस का नाम मानसी नरक है पर वह जो स्थूलनरक स्वर्ग है तिसको सब कोई प्रकट ही समझते हैं जैसे स्वर्ग विषे कल्पवृक्ष और उत्तम फल और अप्सरा और अनेक प्रकार के सुन्दर खानपान आदिक भोग पायेजाते हैं बहुरि नरक विषे सर्प और बिच्छू और अग्नि के कुण्ड आदिक और बहुत दुःख पायेजाते हैं सो इसविषे स्थूलस्वर्ग और नरककी वार्ता मैंने संक्षेप करके कही है काहेसे कि यह वार्ता धर्मशास्त्र में प्रसिद्ध है ताते सब कोई पहिंचानता है ताते अब इस से आगे मृत्यु होने का अर्थ प्रकट करके कहता हूं फिरि मानसी नरक और स्वर्ग का वर्णन करूंगा काहे से कि इस सूक्ष्म नरक और स्वर्ग को सब कोई नहीं पहिंचानता पर इस भेद के पहिंचानने का उत्तम मार्ग यह है कि इस म-नुष्य के चित्तविषे एक खिड़की है और वह देवलोक की ओर खुलीहुई है पर जो कोई इस अनुभवरूपी सूक्ष्म खिड़की विषे देखता है उसको परलोक की दु-र्गति और सुगति प्रकट भास आवती है और संशयरहित होता है काहे से कि प्रत्यक्ष देखने में संशय कुछ नहीं रहता और युक्ति और वचन श्रवण से संशय रहजाता है जैसे वैद्य को शरीर का रोग और आरोग्यता भास आती है और वह योंभी जानता है कि जब यह रोगीपुरुष कुपथ्य को अङ्गीकार करेगा तब नाशको प्राप्त होवेगा और जब अपने रोग का उपचार करेगा और संयम में ब-र्त्तेगा तब रोग के दुःख से मुक्त होवेगा तैसेही सन्तजनों को जीवों की सुगति और दुर्गति प्रकट भासती है और इस बात को भी प्रकट देखते हैं कि भगवद्भ-जन और उसकी पहिंचान जीवकी उत्तमगति का कारण है और मूर्खता और पापों करके यह जीव नीचगति को पाता है सो यह विद्या ऐसी दुर्लभ है कि

बहुत परिडत भी इस भेद को नहीं समझते अथवा इसपर प्रतीति नहीं करते और स्थूल नरक और स्वर्ग विना और कुछ नहीं जानते और परलोक को भी श्रवणमात्रही मानते हैं तातें मैं शास्त्रों की युक्ति और वचन करके कुछ परलोक का अर्थ वर्णन करूंगा पर जिस मनुष्य की बुद्धि उज्ज्वल होवे और जिसका हृदय पन्थों के विवाद से रहित होवे और देखादेखी के विरुद्ध से शुद्ध और निष्काम होवे तब उसको इस मार्ग की बूझ भासआवेगी और उसके चित्तविषे परलोक का दृढ़ होवेगा काहेसे कि बहुतलोगों की प्रतीति परलोक के जानने विषे निर्बल और संशययुक्त होती है॥

दूसरा सर्ग॥

मृत्यु के वर्णन में॥

तातें जान तू कि जब तुझको मरने का अर्थ जानने की इच्छा हुई तब इस प्रकार श्रवणकर कि इस मनुष्य विषे दो प्रकार की चैतन्यता है सो एक प्राण चेतना कहाती है जिस करके हृदय स्थान और प्राणवायु के संयोग साथ शरीर और इन्द्रियां चैतन्य रहती हैं सो प्राणचेतना पशुओं और मनुष्यों विषे एक समान है बहुरि दूसरी चैतन्यता बुद्धिकरके होती है वह केवल मनुष्यही का अधिकारहै पर वह प्राणचेतना जो शरीर को सुचेत करती है सो प्राणों का फुरना हृदयस्थान से होता है बहुरि हृदयस्थान जो तत्त्वों के सूक्ष्म अंशों करके रचा हुआ है सो तत्त्वों का अंश वायु, पित्त, कफ आदिक हैं पर जबलग इनकी वृत्ति समान होती है तबलग वह हृदयस्थान सुख से रहता है और उसी हृदयस्थान की नाड़ी शीश और सर्व अङ्गों विषे पसरती हैं तातें प्राणवायुके सम्बन्ध करके सब इन्द्रियां चैतन्य होजाती हैं और शरीर की सर्वक्रिया सिद्ध होतीहै और जब वह तत्त्वों की समानवृत्ति शीश विषे पहुँचती है तब नेत्र और श्रवण आदि इन्द्रियों को अपने २ विषे ग्रहण करने का बल होताहै सो इसका दृष्टान्त यह है कि जैसे दीपक के प्रकाशकरके मन्दिर विषे चमत्कार होताहै और सर्वपदार्थ भासनेलगते हैं तैसेही भगवत की सत्ता पाकर तत्त्वों की समान अंश और प्राणवायु के मार्ग से सब इन्द्रियों को अपनी क्रिया का बल पहुँचता है और वह अपनी २ क्रियाविषे सावधान होती हैं और जब किसी नाड़ी में प्राणवायु के मार्ग और तत्त्वों के समान अंश से पटल पड़ जाता है तब वह अङ्ग क्रियासे रहित

होजाता है जो उस पटल और ग्रन्थि के आगे है और वह अङ्ग शून्य भी होजाता है बहुरि वैद्य की विद्या का प्रयोजन यह है कि उसका उपचार करके पटल को दूर करदेवै तब उस अङ्गविषे चैतन्यता फुरआती है और अपनी क्रिया विषे सावधान होताहै ताते वह हृदयस्थान शरीर विषे दीपक की नाईं है और प्राणवायु उसकी बाती है और आहार तेलहै ताते यह वार्त्ता प्रसिद्ध है कि तेल विना दीपक बुझजाता है तैसेही प्राणरूपी दीपक आहार विना बुझजाता है और जैसे अधिक तेल करके भी बाती तेल को नहीं खींचती तबभी दीपक शून्य होजाता है तैसे यह हृदयस्थान भी अधिक व्यतीतहुये वृद्ध अवस्था विषे आहार को नहीं खींचसक्ता ताते मृत्यु होजाती है बहुरि जैसे तेल और बाती होते भी अकस्मात् किसी विघ्नकरके दीपक बुझजाता है तैसेही शस्त्रादिक विघ्न करके भी शरीर का नाश होजाता है और प्राणवायु की जो समानता है तिस करके शरीर और इन्द्रियों की क्रिया सिद्ध होती है और जब वायु पित्त कफ के कोपकरके वह समान वृत्ति नष्ट होजाती है तब अवश्य में इन्द्रियों की क्रिया शून्य होजाती है जैसे दर्पण विषे जब उज्ज्वलता होती है तब उस विषे सब पदार्थों की मूर्त्ति भासती है और जब वह दर्पण जंगार करके मलीन होजाताहै तब किसी पदार्थ का प्रतिबिम्ब नहीं भासता सो जैसे निर्मलताई के नाश होने से किसी पदार्थ का भास नहीं होता तैसेही प्राणों की जो समान वृत्ति है तिसका भी यही स्वभाव है कि जब वह समानवृत्ति विपर्यय होती है तब हृदयस्थान शून्य होजाता है और इन्द्रियादिक व्यवहार सिद्ध नहीं होता और शरीर का अङ्ग जब तिस प्राणवायु के प्रकाश से रहित होताहै तब शून्यहोजाता है और शून्यहुये अङ्गको मृतक कहते हैं ताते मरने का अर्थ यहीहै कि प्राणवायु की समान वृत्तिका नाशहोना और समानता का नाश करनेवाला यमराजहै सो वहभी भगवत् का उत्पन्न कियाहुआ है पर यह लोग उस यम कोभी नाममात्र मानते हैं और इस वार्त्ता का खोलना बहुत विस्तार करके होताहै परतात्पर्य यहहै कि प्राणवायु के शून्य होनेका नाम मृत्यु है और वह प्राणवायु भी सूक्ष्मशरीर है अर्थात् तत्त्वों के सूक्ष्म अंश करके रचाहुआहै पर इस मनुष्यविषे जो चैतन्यरूप जीवहै सो प्राणचेतना से भिन्न है और शरीर की नाईं नहीं और अखण्ड है और भगवत् की पहिंचान का स्थानहै सो जैसे वह भगवत् अखण्डरूप है और एक है तैसेही उसका पहिंचानना भी

अखण्ड है और उसका पहिंचाननेवाला जीव भी अखण्ड है क्योंकि उस ज्ञान स्वरूप का समझना खण्डाकार शरीर विषे नहीं होसक्ता इसी कारणसे अखण्ड स्वरूप जीव विषेही भगवत् की पहिंचान होती है बहुरि दीपक के दृष्टान्त करके तू इस भेद को पहिंचान कि स्थूलशरीर दीपक है और हृदयस्थान इसकी बाती है और प्राणरूपी अग्नि है और चैतन्यतारूपी प्रकाश है सो इसका तात्पर्य यह है कि जैसे दीपकसे दीपकप्रकाश सूक्ष्म होता है तैसेही प्राणशक्ति से चैतन्यता रूपी प्रकाश सूक्ष्महै और ऐसा स्वरूप है कि उसको किसी वचन की संज्ञा करके कहा नहीं जाता सो जब तू सूक्ष्मता की ओर देखे तब यह दृष्टान्त प्रमाण होता है और जब इस प्रकार देखले कि दीपकका प्रकाश दीपक के आश्रित होताहै तब इस भाव करके यह दृष्टान्त मिथ्या होताहै काहेसे कि दीपक के नाश करके उसका प्रकाश भी नष्ट होजाता है और प्राणवायु के शून्य होने से तो चैतन्यता का नाश नहीं होता ताते इस प्रकार भी समझना चाहिये कि जैसे दीपक की विशेषता प्रकाश करके होती है तैसेही चैतन्यता करके शरीर की विशेषता है सो दीपक के दृष्टान्त का प्रयोजन भी यही है कि दीपक का होना प्रकाश के निमित्त चाहिये है ताते दीपक प्रकाश के आश्रित है तैसेही प्राणों का आश्रय भी चैतन्य है और प्रकाश की नाई महासूक्ष्म है तब इस भाव करके दीपकका दृष्टान्त संभव होता है अब इस करके प्रसिद्ध हुआ कि प्राणरूपी घोड़ा है और चैतन्यरूपी सवार है अथवा चैतन्यरूपी जीव के हाथविषे प्राणरूपी शस्त्र है सो जब प्राणों की समान वृत्ति नष्ट होजाती है तब शरीर स्थूल मृतक होजाता है और चैतन्यता अपने आप विषे स्थित रहती है और जैसे सवार घोड़े से रहित प्यादा कहाता है तैसे वह भी शरीररूपी घोड़े के नष्ट होने से प्यादा होताहै पर जैसे सवार का नाश घोड़े के नाश होनेसे नहीं होता तैसेही शरीर के नाश हुये जीव का नाश नहीं होता ताते यह शरीररूपी घोड़ा अथवा शस्त्र जो भगवत् ने इस जीव को दिया है सो भगवत् की पहिंचानरूपी शिकार के निमित्त दिया है पर जिस मनुष्य ने पहिंचानरूपी शिकार करलिया है तब शरीररूपी फांसी का नाश होना उसको सुखदायक है अर्थ यह कि उसके बोझ उठाने से छूटता है तब वह उत्तम सुख के स्थान को पाताहै इसीपर महापुरुष ने भी कहा है कि जब सन्तलोगों का शरीर छूटता है तब वह उत्तम सुख के स्थानको पाते

हैं और परमलाभ मानते हैं पर जिस मनुष्य को भगवत् की पहिचान नहीं प्राप्त हुई और उसका शरीर छूटता है तब महादुःखी होता है जैसे शिकार के प्राप्तहुये विना किसी का जाल दूर होजावे तब उसका कार्य कदाचित् सिद्ध नहीं होता और उसका पश्चात्ताप अधिक होता है तैसेही इस जीव को शरीर के छूटने से दुःख होता है और प्रथम यम मार्गही में पश्चात्ताप करने लगताहै ॥

तीसरा सर्ग ॥

जीव की अखण्डता के वर्णन में ॥

तातें जान तू कि जब किसी पुरुष के हाथ पाँव भुजा सूखजाते हैं अथवा अर्द्धाङ्ग होजाता है तब उस पुरुष की चैतन्यता तो दूर नहीं होती काहे से कि चैतन्यरूप जीव हाथ पाँव से रहित है पर हाथ पाँव उसके शस्त्र हैं और जीव इनका प्रेरक है सो जैसे हाथ पाँव तेरा स्वस्वरूप नहीं तैसेही पेट, पीठ, शीश आदिक जो सर्व शरीर हैं उनसे भी तेरा स्वरूप भिन्नही है ताते प्रमाण हुआ कि जब यह शरीर सबही शून्य होजावे तौभी तेरी चैतन्यता अपने आपविषे स्थित रहती है और जैसे यह हाथ भी जब अपनी क्रिया से शून्य होता है तब उसको मृतक कहते हैं अर्थात् हाथ की क्रिया बलकरके होती है और बल प्राण चेतना के प्रकाश करके नाड़ियों के मार्ग से सर्व अङ्गों में पहुँचता है और जब किसी नाड़ी का मार्ग रुकजाता है तब उस अङ्गको प्राणों का प्रकाश नहीं पहुँचता और बलकी हीनता करके क्रिया से रहित होजाता है तैसेही यह शरीर भी प्राणों के सम्बन्ध करके तेरी आज्ञाविषे वर्त्तता है पर जब प्राणों की समानवृत्ति दूर होजाती है तब शरीर के सर्व अङ्ग शून्य होजाते हैं और तेरी आज्ञा से रहित होते हैं सो इसी को मृत्यु कहते हैं पर तौभी तेरा चैतन्यस्वरूप अपने आप विषे स्थित रहता है काहेसे कि जब कोई टहलुवा तेरी टहल से दूर होजावे तब इस करके तेरा तो नाश नहीं होता अर्थ यह कि शरीर तेरा टहलुवा है और तेरा निजस्वरूप इससे विलक्षण है और जब तू विचार करके देखे कि यह तेरे अङ्ग जैसे बालक अवस्था में थे सो अब तो वोही अङ्ग नहीं काहे से कि वह अङ्ग सबही परिणाम करके विपर्यय हुये हैं और आहारों करके वृद्ध होगये हैं ताते प्रसिद्ध हुआ कि तेरा शरीर वह नहीं और तू अब भी वही है इस करके कि तेरा स्वरूप शरीरही नहीं ताते तू शरीर के नाश होने की चिन्ता न

करि काहेसे जब तेरा शरीर दूरहोजावैगा तब भी तेरा स्वरूप अविनाशी है और तेरे स्वभाव दो प्रकार के हैं सो एक तो शरीर के सम्बन्ध के साथ मिलेहुये हैं जैसे भूख प्यास और निद्रा जो है सो यह शरीरके सम्बन्ध के साथ मिलेहुये हैं और शरीर के सम्बन्ध बिना सिद्ध नहीं होते ताते शरीर के मृत्यु हुये यह सबही स्वभाव दूर होजाते हैं और दूसरे स्वभाव तेरे ऐसे हैं कि उन बिषे शरीर का सम्बन्ध कुछ नहीं होता जैसे भगवंत का पहिचाननिना और उसके ऐश्वर्य का देखना और उस बूझ की जो प्रसन्नता है सो केवल तेरा अपनाही स्वभाव है इसी कारण से यह पदार्थ सर्वदा तेरे साथही रहते हैं और कदाचित् दूर नहीं होते और भले गुणों को जो अविनाशी कहा है तिसका अर्थ यह है कि भले स्वभाव जीव के सर्वदा सङ्गी हैं और ऐसेही मूर्खता और अविद्या जो है सो यह भी तेरा अपनाही स्वभाव है ताते यह मूर्खता भी परलोक बिषे तेरे साथही रहती है इस करके कि यह अजानता तेरी बुद्धि के नेत्रों की हीनता है और मन्दभागों का बीजहै इसीपर महाराजने भी कहाहै कि मनुष्य संसार बिषे अज्ञान करके अन्धा है वह परलोक बिषे महादुःखी और अन्धा रहता है पर जब लग तू भलीभांति इसप्रकारकी चैतन्यता को न पहिचाने तबलग किसी प्रकार मृत्यु के अर्थ को न पहिचानसकेगा काहेसे कि परिणामत्व और चैतन्यता बिषे जो भेद है तिसके पहिचाननें करके मृत्यु का अर्थ भी जानाजाता है ॥

चौथा सर्ग ॥

प्राणचेतना और चैतन्यकला के भेद के वर्णन में ॥

ताते जानतू कि यह प्राण चैतन्यता तत्त्वों का बिकार है और वायु पित्त आदिक जो तत्त्वों का सूक्ष्म अंश है सो तिन करके रचीहुई है बहुरि जब कुछ वायु, पित्त, कफका कोप आपसमें होताहै तब प्राणोंकी वृत्तिभी विपर्यय होती है और जब इनका स्वभाव समान होताहै तब प्राणचेतना भी समानता स्वभाव बिषे ठहरजाती है ताते वैद्यक विद्या का तात्पर्य यह है कि वायु, पित्त, कफ रुधिर के कोप को उपचार करके समान रखतेहैं तब इस करके प्राणचेतना सावधान होतीहै और चैतन्यकला की आज्ञा को मानती है बहुरि चैतन्यकला जो कही है वह तत्त्वों के देश से नहीं उपजी और सूक्ष्म देश से आई है और देवतों की नाईं निर्मल स्वरूप है और तत्त्वों के देशबिषे उसका आना परदेशी की नाईं है और उसका

स्वरूप आधिभौतिक नहीं पर इस शरीरविषे उसके आनेका प्रयोजन यहहै कि परलोक मार्ग का तोशा बनालेवे इसी पर साईं ने भी कहा है कि मैंने अपनी कृपा करके सर्व जीवों को मार्ग दिखाया है पर जो शुभ मार्ग की बूझ पाकर उस पन्थविषे चलते हैं वह भय और शोक से रहित हुये हैं और इस मनुष्य का शरीर जो है सो मैंने पृथ्वी आदिक तत्त्वों से रचा है बहुरि मेरा अंश जो चैतन्य कलाहै तिसको शरीर विषे प्रवेश कियाहै तिसका तात्पर्य यह है कि प्रथम प्राण चेतना को स्थितकिया है और चेतना को चैतन्य कलाके स्थित होनेका अधिकारी बनाया है बहुरि उसविषे चैतन्यकला प्रवेश की है सो इसका दृष्टान्त यह है जैसे प्रथम रुई की अथवा कपड़े की मशाल बनाई जावे जो अग्नि के खैंचने के लायक होजावे बहुरि उसविषे अग्नि प्रवेश की जाती है तब प्रकाशमान होती है तैसे ही प्राणों की समान वृत्ति मशाल की नाईं है और चैतन्यकला अग्नि की नाईं है पर जैसे वैद्यक विद्या के जाननेवाले प्राणों की समान वृत्ति को पहिंचानते हैं तब उसकरके रोग और कष्ट से शरीर की रक्षा करते हैं तैसेही चैतन्यरूप जो जीवहै तिसके स्वभाव की भी समानताहै पर तिसको सन्तजन पहिंचानते हैं और जब इसी जीव के स्वभाव, वैराग्य और पुरुपार्थ करके सन्त जनों की मर्याद विषे समान होते हैं तब इस मनुष्य का चित्त आरोग्य होताहै ताते प्रसिद्धहुआ कि जैसे आपको पहिंचाने विना भगवत् को नहीं पहिंचान सक्ता तैसेही यथार्थरूप चैतन्य की पहिंचान विना परलोक को भी भली प्रकार नहीं पहिंचानसक्ता ताते अपने मन का पहिंचानना भगवत् के पहिंचानने की कुञ्जी है और परलोक के पहिंचानने की भी कुञ्जी है पर धर्मकी प्रतीति का मूल भी अपना पहिंचानना है इसीकारणसे मैंने अपनें आप का पहिंचानना प्रथम ही वर्णन किया है पर तौ भी इस जीव का जो यथार्थरूप है सो तिसको मैंने प्रसिद्ध नहीं कहा और सन्तों ने भी उस स्वरूप के कहने को वरजा है काहेसे कि इस जीवकी बुद्धि उस गुह्यभेदको समझ नहीं सक्ती और भगवत्की सम्पूर्ण पहिंचान और परलोक का भलीप्रकार देखना उसी यथार्थ स्वरूपके ज्ञान करके होताहै ताते तू यही पुरुपार्थ कर कि जिसमें अभ्यास और यत्न करके उस यथार्थ रूप को अपने अन्दर देखे काहे से कि उस स्वरूप का देखना अपने ही विषे होताहै और जब उस स्वरूप की वार्ता सुनकर हृदयमें न चाहे तब तेरी प्रतीति

ही नष्ट होजावेगी इसकरके कि बहुत पुरुषों ने भगवत्के यथार्थरूप के लक्षण श्रवण किये हैं तब उनकी प्रतीति नष्ट होगई है और बुद्धि की हीनता करके संशय को प्राप्त हुये हैं और ईश्वर का नतकार करके महाढीठ हुये हैं सो तिस का तात्पर्य यह है कि जब तेरे विषे भगवत् के यथार्थस्वरूप श्रवण करने का बल ही नहीं तब तू उस स्वरूप की वार्ता श्रवण करके आप विषे क्यों कर प्रमाण कर सकेगा इसी कारण से परमात्मस्वरूप का बखान धर्मशास्त्र विषे भी नहीं कहा काहे से कि जब संसारी जीव इस भेदको श्रवण करेंगे तब प्रतीति से हीन होजावेंगे ताते सन्तजनों को इस प्रकार आज्ञा करी है कि जीवों की बुद्धि अनुसार उपदेश करो और इनको मेरे गुह्यभेद और सहज स्वरूप की वार्त्ता प्रकट करके न कहो काहे से जो इन जीवों विषे ऐसे सूक्ष्म वचन सुनकर इनकी प्रतीति दूर होजावेगी ताते तब धर्महीनता को प्राप्त होवेंगे इसी करके जीवों की बुद्धि अनुसार वचन कहना विशेष है पर तैंने जब भली प्रकार समझा कि इस मनुष्य का चैतन्य स्वरूप अपने आप करके स्थित है और जीवका होना शरीरके अधीन नहीं ताते मरने का अर्थ यह नहीं कि चैतन्यस्वरूप का नाश होवे पर मृत्यु होने का अर्थ यह है कि जब इस जीव की आज्ञा इस शरीर विषे वर्त्तमान नहीं होती तब इसको मृत्यु हुआ कहते हैं बहुरि परलोकविषे जीवके जीनेका भी अर्थ यह नहीं कि प्रथम इस जीव का नाश होता है फिर परलोक विषे उपज आता है ताते परलोकविषे सुरजीत होने का अर्थ भी यही है कि यह जीव दूसरे शरीर को अङ्गीकार करता है पर जिस प्रकार भगवत् इस जीव को और शरीर को उत्पन्न करता है सो किसी मनुष्य की बुद्धि विषे नहीं आता काहेसे कि भगवत् की करतूति विषे कठिनता और सुगमता नहीं कही जाती पर बहुत पुरुष योंभी कहतेहैं कि परलोक विषे इस जीव को यही शरीर मिलता है सो यह वार्त्ता अयोग्य है क्योंकि यह शरीर घोड़े की नाई है सो जब घोड़ा बदलजावे तब सवार तो नहीं बदलता और यह शरीर तो बाल्यावस्था से वृद्धावस्थापर्यन्त परिणाम को पाताजाता है और आहार के सम्बन्ध करके सर्व अङ्गों का स्वरूप और से और ही होताजाता है पर जीव तो कदाचित् अन्यथा नहीं होता सो जिन पुरुषों ने ऐसाही निश्चय कियाहै कि परलोक विषे बहुरि यही शरीर सावधान होताहै सो तिनके वचनपर और भी अनेक प्रश्न और

संशय उपजते हैं और उनका उत्तर ऐसा निर्बल होता है कि संशय को दूर नहीं करसक्ता जैसे कोई प्रश्न करै कि एक मनुष्य को कोई दूसरा मनुष्य भक्षण करजावे तब वह तो दोनों शरीर के अङ्ग इकट्ठे होजाते हैं बहुरि परलोकविषे एकही शरीर दोनों जीवों को क्योंकर मिलताहै? अथवा जब कोई अङ्गहीन पुरुष होवे और वह भजन करे तब परलोकविषे भजन करनेवाले को अङ्गहीन करके भजन का फल भोगनापड़ेगा कि अङ्गों के संयुक्त पर जब कहिये कि वह पुरुष पुण्य के फल को अङ्गहीनही भोगता है तब उत्तर यह कि स्वर्गविषे तो अङ्ग हीनही कोई नहीं होता बहुरि जब कहिये कि अङ्गसंयुक्त भोगता है तब उत्तर यह कि भजन के समयविषे और करतूति में तो वह अङ्ग थेही नहीं फल भोगने के समय क्योंकर संगी हुये सो ऐसे प्रश्नों करके उनका उत्तर मन्द और निर्बल होताहै और संशय को दूर नहीं करसक्ते ताते प्रसिद्ध हुआ कि परलोकविषे अवश्यही इस जीव को पूर्व शरीर की अपेक्षा नहीं रहती और जिन्होंने इस प्रकार समझा है कि परलोकविषे जीव को वहही शरीर फिर मिलताहै सो तिस का कारण यह है कि उन्होंने अपने आपको शरीरही जाना है ताते यह ऐसे ही समझते हैं कि शरीर के और होने करके जीव भी और होजाताहै सो इस वचन का मूलही मिथ्या है क्योंकि शरीर भिन्नहै और जीव भिन्न है॥

पांचवां सर्ग॥

पूर्वपक्षउत्तर वर्णनम्॥

बहुरि जब तू इस प्रकार प्रश्न करे कि केते शास्त्रके मतविषे यह वार्ता प्रमाण करते हैं कि जब इस जीव का शरीर छूटता है तब प्रथम जीवही नाश होजाता है फिर परलोकविषे जीव को सुरजीत करके शरीर पहरावते हैं और जिस प्रकार तुमने आगे कहा है सो उस वचन के साथ इसका विरुद्ध होताहै ताते दोनों वचनों में से किसविषे प्रतीति करिये सो तिसका उत्तर यह है कि जो कोई पुरुष किसी दूसरे पुरुष के कहनेपर भटकता है सो अन्धा कहाताहै और जिन्होंने यही निश्चय किया है कि मृत्यु होने करके प्रथम जीव भी नाशता को पावता है सो तिनकी प्रतीति अपनी बूझ करके भी नहीं और शास्त्रों की विद्या करके भी नहीं काहेसे कि जब उनको अपनी बूझ होती तब इस वार्त्ता को प्रत्यक्ष देखते कि शरीर के मरने करके जीव का नाश नहीं होता और जब शास्त्रों

की विद्यापर प्रतीति करते तो भगवत् और सन्तजनों के वचनों को पढ़कर समझलेते कि यह जीव अविनाशी है और शरीर के नाशहुये से जीव अपने आप बिषे स्थित रहता है ताते यह वार्ता भी सन्तजनों के वचनों बिषे प्रसिद्ध है कि परलोक बिषे दो प्रकार के जीव होते हैं सो एक तो भाग्यहीन हैं और दूसरे भाग्यवान् हैं पर जो भाग्यवान् जीव हैं सो बड़ाई को पाते हैं और अविनाशीरूप हैं इसीपर महाराज ने भी कहाहै कि जिन्हों ने मेरे मार्गबिषे अपने शरीर का त्यागकिया है तिनको मृत्यु हुआ न जानो और वह उत्तमपुरुष मेरी बख़्शीश पाकर सर्वदा आनन्दबिषे रहते हैं बहुरि जीव भाग्यहीन हैं तिनकाभी नाश नहीं होता इसी पर एक वार्ता है कि जब लड़ाईबिषे एकबार बहुत मनुष्य मृत्यु हुये और महापुरुष की जीत हुई तब मृत्यु हुये पुरुषों से महापुरुष कहनेलगे कि हे भाई! जिसप्रकार मुझको भगवत् की आज्ञा हुई थी कि तेरी जीत होवेगी सो तिसको तो मैंने प्रत्यक्ष देखाहै पर जिसप्रकार भगवत् ने कहा था कि मैं तामसी मनुष्यों को परलोकबिषे दण्ड और कष्ट देऊंगा सो उस दुःख को तुमने भी पाया है कि नहीं पाया तब महापुरुषके साथवालों ने पूछा कि यह मृतक माटी की नाईं है तुम इनके साथ वचन क्योंकर कहते हो तब महापुरुष ने कहा कि जिस महाराज की सामर्थ्यबिषे मैं पराधीनहूं तिसकी दुहाईकरके कहताहूं कि यह मृतक पुरुष मेरे वचनों को तुमसे अधिक सुनते हैं पर इनको उत्तर देनेकी आज्ञा नहीं ताते प्रसिद्ध हुआ कि जीव का मरना तो धर्मशास्त्र बिषे भी नहीं कहा काहे से कि पितृपूजा के निमित्त श्राद्ध और दान आदिक कर्म जो करणीय कहे हैं तब इस करके जानाजाता है कि जीव का नाश नहीं होता पर इस प्रकार धर्मशास्त्र बिषे भी कहाहै कि मृत्यु होने करके जीव का शरीर और स्थान परिणाम को पाता है अर्थ यह कि शरीर भी दूसरा पहरता है और स्थित भी और स्थान बिषे होताहै पर जो पुण्यवान् जीव हैं वे स्वर्ग बिषे सुख पाते हैं और पापी नरकों के दुःखों को भोगते हैं ताते तू इस बार्त्ता को निस्सन्देह जान कि शरीर के नाशकरके तेरे स्वरूप और स्वभावोंका नाश नहीं होता और इन्द्रियों और शारीरिक व्यवहार सब दूर होजाताहै जैसे घोड़ेके मरनेसे सवार नहीं मरता पर तो भी पियादा रहजाता है और उसका जो अपना स्वभाव और क्रिया है सो ज्यों का त्यों बना रहता है तैसेही शरीररूपी घोड़े के नाश होने से तेरा नाश

नहीं होता क्योंकि तेरा स्वरूप सवारकी नाईं शरीररूपी घोड़े से भिन्न है इसी कारण से जिन पुरुषों ने शरीर और इन्द्रियों का विस्मरण किया है और अपने चैतन्य स्वरूपविषे स्थित हुये हैं और भजन की एकत्रता करके चित्तविषे लीन हुये हैं तिनको परलोक की अवस्था प्रत्यक्ष भास आती है इसका कारण यह है कि यद्यपि उनसे प्राणों की समान वृत्ति विपर्यय नहीं हुई पर चित्त के स्थिर होनेसे प्राण चेतना भी ठहर जाती है ताते भगवत के दर्शन को भी वे प्रत्यक्ष देखते हैं और उनके चित्त की वृत्ति किसी पदार्थ विषे आसक्त नहीं होती इसी कारण से उनको जीवन्मुक्त कहते हैं अर्थात् जो भेद लोगों को मरने के पीछे प्रकट होताहै वह उनको चित्त की एकत्र अवस्थामें जीवतेही खुलजाता है और प्रत्यक्ष देखते हैं फिर जब उस अवस्था से उत्थान होकर इन्द्रियोंके देश में आते हैं तब तिनको जाग्रत विषे भी उस अवस्था का स्मरण रहता है सो जब एकत्रता विषे सूक्ष्म स्वरूप करके स्वर्ग को देखते हैं तब जाग्रत् में प्रसन्नता और आनन्द उनके हृदयविषे रहता है और जब अकस्मात् करके नरक को देखते हैं तब जाग्रत् विषे उनको भय सकुच प्रकट होती है ताते जो कुछ परलोक की वार्त्ता उनको जाग्रत में स्मरण विषे रहजाती है सो जगत् विषे उसका वर्णन करके बताय देतेहैं और उस एकत्रता विषे जैसा संकल्प उनके चित्तविषे फुरता है सो सत्यस्वरूप होताहै और दृष्टान्तमात्र उसका वर्णन भी करते हैं कि एक समय महापुरुष समाधि विषे बैठे थे तब उन्होंने अपने हाथ को ऊपर को करके फिर खैंचलिया तब लोगोंने पूछा कि क्यों जी ! तुमने हाथ किस निमित्त पसारा था तब महापुरुष ने कहा कि स्वर्ग के अमृतफल को मैंने देखा था और उसको जगतविषे लाने की मैंने मनसा की थी पर शीघ्रही वह फल छिपगया ताते तू इस वार्त्ता से ऐसा अनुमान न करना कि वह फल जगत विषे आने योग्य था और महापुरुष उसके लानेमें समर्थ न हुये सो ऐसे जानना अयोग्य है काहे से कि सूक्ष्मदेश का फल इस जगत् विषे किसी प्रकार आताही नहीं इस करके कि यह आधिभौतिक जगत् स्थूल और जड़स्वरूप है और इस वचन का खोलना भी बहुत विस्तार करके होता है और तेरा प्रयोजन भी इस विषे कुछ नहीं पर केते विद्यावान् भी इसी संशयविषे डूब गये हैं कि वह अमृतफल कैसा था और महापुरुष ने क्योंकर देखा था सो ऐसेही प्रश्न उत्तर करके इस विषे पड़े विवाद

करतेहैं और अपने कल्याण की वार्त्ताको अङ्गीकार नहीं करते बहुरि अपनी विद्या पर अभिमानी होते हैं सो वे महामूढ़ हैं सो इसका तात्पर्य यह है सन्त जन परलोक को अपने हृदयकी दृष्टि करके देखते हैं और उनका देखना किसी के वचनों और युक्ति करके नहीं होता ताते वे इस जगत की वृत्ति को त्याग कर चैतन्य देश विषे जाते हैं और परलोक को प्रत्यक्ष देखते हैं सो परलोक का देखना भी सन्तजनों के बल का एक अङ्ग है ताते प्रसिद्ध हुआ कि परलोक की अवस्था दो प्रकार करके देखसक्ते हैं सो एक तो यह है कि जब प्राण चेतना के नाश होनेसे शरीर मृत्यु होजाता है तो भी यह जीव परलोक को प्रत्यक्ष देखताहै और दूसरे जब भजन की एकत्रता करके प्राणों की वृत्ति ठहरजाती है तब समझ के बल करके परलोक को प्रत्यक्ष देखताहै और इन्द्रियादिक देश विषे परलोक का प्रत्यक्ष देखना असंभव है जैसे चौदह लोक ब्रह्माण्ड एक राई विषे नहीं समाते तैसेही आत्मस्वर्ग की एक राई सर्व ब्रह्माण्ड विषे नहीं समासक्ती और जैसे श्रवणइन्द्रिय किसी प्रकार पदार्थ के रूप को नहीं देखसक्ती तैसेही सर्व इन्द्रियां चैतन्यदेशकी वार्त्ता को नहीं देखसक्तीं ताते सूक्ष्म देश को देखनेहारी इन्द्रियां चैतन्यदेश की वार्त्ता को नहीं देखसक्तीं ताते सूक्ष्मदेश को देखनेहारी इन्द्रियां भी सूक्ष्म हैं॥

छठा सर्ग॥

यममार्ग के कष्ट के वर्णन में॥

ताते जान तू कि यममार्गका कष्टभी तुझको पहिंचानना उचित है पर वह कष्टभी दो प्रकार का है सो एक दुःख तो शरीर के साथ जीवको होता है और दूसरा शरीरी कष्ट है सो शरीरी दुःख को तो सब कोई जानताहै पर जीव के दुःख को कोई नहीं पहिंचानता पर जिसने अपने आपको पहिंचाना है और हृदय का रूप भी उसको प्रत्यक्ष हुआहै सो जीवके दुःखको वही पहिंचानताहै क्योंकि वह अपना होना शरीरके आश्रित नहीं जानता और ऐसे भी जानता है कि शरीर के नाश हुये से मेरा नाश नहीं होता और मृत्यु के समय शरीर और इन्द्रियों का वियोग होजावेगा और ऐसेही धन पुत्रादिक सम्बन्धी सुन्दर टहलुवे, पशु, इष्टमित्र, धरती, आकाशादिक जो पदार्थ इन्द्रियों करके जाने जाते हैं सो सबही दूर होजावेंगे और जिस मनुष्य की प्रतीति इन पदार्थों विषे दृढ़ हुई है और जिसने अपना आप स्थूलताविषे बध्यमान किया है सो वह इन

के वियोग करके निस्सन्देह दुःखी होता है और जिस पुरुष का हृदय सर्वपदार्थों से विरक्त है और भगवत् के विना और किसी पदार्थ के साथ उसकी प्रीति नहीं उसको मृत्युके समय दुःख कुछ नहीं होता और अधिक आनन्द को पाता है काहेसे कि जिसके हृदयविषे भगवत् की प्रीति दृढ़ हुई है और जिसके चित्त विषे भजन का रहस्य प्रकट हुआ है और सर्वदा अपना आप जिसने भगवत् की ओर लगाया है और माया के सर्व पदार्थों को विरस जानकर आसक्त नहीं हुआ है तब मृत्यु के समय वह पुरुष निस्सन्देह अपने प्रियतम को पहुँचता है और जिन पदार्थों करके चित्त को विक्षेपता होती थी सो सबही दूर होजाते हैं ताते परमशान्ति को पावता है पर अब तू इस वार्ता को विचार कर देख कि जिस पुरुष ने शरीर के नाश हुये से भी आपको अविनाशी जाना और यों भी जाना कि सर्व मायिक पदार्थ संसार में ही रह जावेंगे इनमें मेरी अधिक प्रीति है तौ उसको अवश्य ही यह निश्चय होजावेगा कि जब मैं अन्तसमय अपने प्रियतम पदार्थों से अलग होऊँगा तब निस्संदेह मुझको इनके वियोग करके दुःख प्राप्त होवेगा इसी पर महापुरुष ने भी कहाहै कि जिस पदार्थ के साथ किसी की प्रीति है सो तिसके वियोग करके अवश्य ही दुःखी होता है और जब इस प्रकार जाने कि मेरी प्रीति केवल भगवत् के साथ है और माया के पदार्थों में से प्राणों की रक्षामात्र खान पानादिक व्यवहार संयमके साथ ग्रहण करके और समस्त पदार्थों को अपना शत्रु जाने तब वह भी निस्सन्देह जानेगा कि जब मेरा शरीर नाश होगा और माया के पदार्थ दूर होवेंगे तब मैं अपने प्रियतम महाराज को पाकर सुखी हूंगा ताते जिस पुरुषने इस वचन के भेदको समझा है वह यममार्ग के कष्टों को निस्संशय जानताहै कि वैरागी पुरुष माया के वियोग करके सुखको प्राप्त होवेंगे और विषयी जीव विषयोंके वियोग करके अधिक दुःखी होवेंगे तब इस करके इस वचन का अर्थ प्रसिद्ध हुआ कि यह माया मनमुखों को स्वर्गरूप है और जिज्ञासुजन माया को भी नरक जानते हैं ताते माया का वियोग मनमुखों को नरकरूप होता है और वैरागी पुरुष सुख को पावते हैं॥

सातवां सर्ग॥

माया के वियोग के दुःखों के भेदके वर्णन में॥

ताते जान तू कि जब तैंने यममार्ग के कष्टों को पहिचाना कि इस दुःखका

कारण माया की प्रीति है तब ऐसे भी जाने कि यह दुःख सब जीवों को एक समान नहीं होते किसी को अधिक होते हैं किसी को अल्प होते हैं अर्थात् जितनी प्रीति इस मनुष्य की माया के पदार्थों और भोगों के साथ होती है तितनाही दुःख को पाता है ताते जिस पुरुष के पास एकही पदार्थ होवे और किसी पुरुष के पास बहुत सामग्री, टहलुवे, पशु, मनुष्यादिक सर्व पदार्थ होवें तब ऐसे सम्पदा रखने वाले पुरुष से एक सम्पदावाले पुरुष को निस्सन्देह दुःख अल्प होताहै जैसे किसी पुरुष का एक घोड़ा चोरी जावे और किसी दूसरे पुरुष के दश घोड़े चोरी जावें सो जिस पुरुष का एक घोड़ा चोरी गया है तिसको दश घोड़े चोरी जानेवाले से दुःख अल्प होताहै और जब किसी पुरुष का आधा धन दण्ड करके राजा हरलेवे और किसी का सारा धन हराजावे सो सर्वधनवाला अधिक दुःख को पाता है और जिसका सर्व धन भी हराजावे और स्त्री पुत्रादिक भी मारेजावें और अपने देशसे भी निकालाजावे तब वह सर्व धन जानेवाले से भी अधिक अति कष्ट को पाता है तैसेही मृत्यु का अर्थ है कि जब इस जीव का शरीर छूटजाताहै तब स्त्री पुत्रादिक सम्बन्धी माया के सर्व पदार्थ दूर होते हैं और यह जीव अकेला रह जाताहै ताते जो पुरुष माया की सामग्री विषे अधिक आसक्त होताहै सो दुःखी भी अधिक होता है और जिस पुरुष की प्रीति पदार्थों में अल्प है वह पदार्थों के वियोग करके दुःखी भी अल्पही होता है इसीपर महाराज ने भी कहा है कि जिस मनुष्य को सर्वसुख और संपदा प्राप्तहुई है और वह पुरुष सर्व माया के पदार्थों विषे अधिक आसक्तहै सो दुःखी भी अधिक होताहै और इन पदार्थों विषे जिसकी प्रीति अल्प है सो पदार्थों के बियोग से भी अल्प दुःखी होता है इसी पर महापुरुष ने भी कहा है कि मनमुख पुरुष को यममार्ग विषे ऐसा कष्ट होता है कि उसको अजगर काटते हैं और उन अजगरों के सौ २ शीश होते हैं ऐसे महा अजगर विषयी जीवोंको सर्वदा डसते रहते हैं और जिसके बुद्धिरूपी नेत्र खुलेहुये हैं सो इन अजगरों को प्रत्यक्ष देखता है और बुद्धिहीन पुरुष इसप्रकार कहतेहैं कि हमने तो बहुत मृतक पुरुष देखेहैं और हमारे नेत्रोंकी दृष्टि भी तीक्ष्ण है पर हमको तो कोई भी सर्प्प दृष्टि नहीं आया जो प्राणी को डसता होवे ताते ऐसे पुरुष को इस प्रकार जानना चाहिये कि यह महा अजगर जीव के हृदय विषे होते हैं और उसी जीव को डसते हैं और जब शरीर को डसते होते तब

और कोई भी देखसक्ता फिर वह ऐसे सर्प हैं कि उस मनमुख के हृदयविषे इसही संसारमें डसते थे पर वह मूर्ख अचेतता करके जानता न था ताते इसका तात्पर्य यह है कि यह सर्प मन के मलिन स्वभाव हैं और एक २ स्वभाव से जो अवगुणोंकी शाखा उपजती हैं सो सर्पों के शीश वर्णन किये हैं पर इनकी उत्पत्ति का कारण माया की प्रीति है जैसे ईर्षा, कठोरता, कुटिलता, कपट, मान, चपलता, वैरभाव और मान की प्रीति इत्यादिक जो बुरे स्वभाव हैं सो येही सर्प हैं और इन अजगरोंका यथार्थस्वरूप और संख्या और इनके शीशोंका विस्तार जो है सो केवल भगवत् की कृपा से अनुभव के द्वारा मनुष्य देखसक्ते हैं क्योंकि जितनी बुरी प्रकृति की शाखा हैं तिनको भगवत् की दया और अनुभव करके पहिंचाना जाताहै और मुझको सर्व मलिन स्वभावों की जान भी नहीं पर यह मलिनस्वभाव मनमुख के हृदयविषे आगे भी थे इसीकरके जो मनमुख पुरुष भगवत् और सन्तजनों की प्रीति से शून्य होता है और सर्वदा माया के पदार्थों विषे आसक्त रहता है तिसको मलिन स्वभावरूपी सर्प जो उसके हृदय विषे थे सो यममार्ग में डसते हैं और इन सर्पों का डसना महादुःखरूप है क्योंकि जब उसको स्थूल सर्प डसते तब किसी समय क्षणमात्र उसको विश्राम भी देते पर यह मन के स्वभावरूपी सर्प जो उसके हृदय विषे डसते हैं सो इनसे कदाचित् मुक्त नहीं होता जैसे किसी पुरुष की प्रीति अपनी दासीके साथ होवे और वह उस प्रीतिको आगे न जानता होवे और किसी कारणकरके उस दासी का वियोग होजावे तब उस पुरुष को प्रीतिरूपी सर्प डसते हैं यद्यपि उससे आगे अचेत भी होता है तौ भी वियोग के समय उसको उस प्रीति की चोट महादुःख देती है सो वह प्रीतिरूपी अजगर भी उसके हृदय विषे आगेही स्थित था और डसता था पर मूर्खता करके पहिंचानता न था बहुरि वियोग विषे उस का डसना प्रत्यक्ष देखता है अर्थ यह है कि जैसे वह उसकी प्रीति करके उस की प्रीति विषे सुख पाता था तैसेही वियोग करके वहही प्रीति उसको दुःख देती है काहे से कि जो उस दासी के साथ इसकी प्रीति न होती तौ उसके वियोग करके दुःखी भी न होता इसी प्रकार मनमुख की जो प्रीति माया के साथ होती है तिस करके माया के भोगों विषे आनन्दित होता है बहुरि उसी प्रीति करके वियोगविषे दुःखी होताहै ताते मान और ऐश्वर्य की प्रीति जो है सो तिसका

डसना अजगर की नाईं है और धन की प्रीति सर्प की नाईं है और सुन्दरों की प्रीति बिच्छू की नाईं है तैसेही जिस जिस की प्रीति इस मनुष्य के हृदय बिषे दृढ़ होती है तब उस करके निस्सन्देह दुःख को पाता है जैसे वह पुरुष दासी के वियोग बिषे ऐसा दुःखी होता है कि आपको अग्नि और जल में डाला चाहता है इस करके कि प्रीतिरूपी सर्प के डसने से किसी प्रकार छूटे तैसेही जिस जीव को यममार्ग बिषे भोगों के वियोग का दुःख होताहै तब वह भी चाहता है कि जब मुझको स्थूल सर्प और बिच्छू डसते तो भी भला था क्योंकि उनके डसने करके शरीर को दुःख होता और यह दुःख मेरे हृदय को डसता है और कोई इसको देखता भी नहीं जो मेरा उपकार करे ताते प्रसिद्ध हुआ कि यह जीव अपने दुःख के बीज को इसी संसार से अपने साथ ही ले जाता है इसी पर महापुरुष ने भी कहा है कि यह तुम्हारे अशुभकर्मही तुमको दुःख देते हैं और कोई तुमको दुःख देनेवाला नहीं इसी पर महाराज का वचन है कि जब तुम्हारी प्रीति और निश्चय दृढ़ होवे तब तुम नरकों को इसी संसार बिषे देख लोगे क्योंकि मनमुखों का हृदय यहां भी नरक के दुःखों करके पूर्ण है सो महाराज ने भी इस प्रकार तो नहीं कहा कि मनमुख परलोक बिषेही नरक को पावेंगे पर यह कहा कि यहांही नरक उनके साथहै और उसमें वे पूर्ण हैं अर्थात् इसी ठौर में उनका हृदय नरकरूप है॥

आठवां सर्ग॥

प्रश्नोत्तर के वर्णन में॥

बहुरि जब तू प्रश्न करे कि धर्मशास्त्र बिषे तो स्थूल नेत्रों से उन सर्पों का देखना कहा है और जैसे सर्प तुमने हृदयबिषे बर्णन किये हैं सो स्थूल नेत्रों करके नहीं दीखसके ताते इसका उत्तर यह है कि यह सर्प भी दीखते हैं पर जिस मृतक प्राणी को डसते हैं वहही देखताहै और इस संसार के लोग उनको नहीं देखसके काहेसे कि सूक्ष्मदेश के पदार्थ स्थूल नेत्रों से नहीं देखे जाते ताते वह सर्प प्राणी को स्थूलसर्पों की नाईं नहीं डसते जो सब कोई प्रकट देखलेवे और उस मृतकजीव को स्थूल सर्पों की नाईं प्रत्यक्ष डसते हुये दीखते हैं जैसे कोई स्वप्न बिषे देखे कि सर्प मुझको काटताहै और जो पुरुष और कोई उसके निकट बैठा होवे तिसको कोई सर्प दृष्टि नहीं आता पर उस स्वप्न देखनेवाले को वह सर्प प्रत्यक्ष

दीखता है और उसके डसने के दुःखको भी प्रत्यक्ष पाता है और जाग्रत् पुरुषके जान में सर्प नहीं भासता और उस जाग्रत् पुरुष को जो सर्प नहीं भासता तिस करके उस स्वप्न देखनेवाले पुरुष को सर्प के डसने का दुःख कुछ खण्डित नहीं होता काहे से कि स्वप्न देखते पुरुष को सर्प डसनें का दुःख ऐसे प्रत्यक्ष है जैसे किसी मनुष्य को जाग्रत्विषे कष्ट होवे और योंभी है कि जब कोई स्वप्नविषे देखे कि मुझ को सर्प ने डसा तब इसका फल यह होगा कि जाग्रत्विषे उसको शत्रु जीतलेवेगा सो इस कष्ट को मानसी दुःख कहतेहैं और यह विशेष कष्ट है काहे से कि वह पुरुष इस प्रकार चाहता है कि जो मुझको जाग्रत्विषे सर्प डसता तो भला था पर किसी प्रकार मेरी शत्रु से रक्षा होवे क्योंकि सर्पके डसनेसे शत्रु का दुःख अधिक होताहै इस करके कि शत्रु का दुःख हृदय को पहुँचताहै और सर्प तो शरीर को डसता है बहुरि जब तू इस प्रकार प्रश्न करे कि जब प्राणी को डसनेवाले सर्प भी स्वप्न की नाईं हुये तब प्रसिद्ध हुआ कि वह सर्प भी संकल्पमात्र है अर्थात् उस पुरुष को वास्तव में कोई सर्प नहीं डसता पर अपने संकल्प करके दुःख मानता है सो तिसका उत्तर यह है कि ऐसा जानना भी बड़ी मूर्खता है काहेसे कि जब बिचार की दृष्टि से देखिये तब वे सर्प निस्सन्देह प्रत्यक्ष हैं इस करके जिस पदार्थ का सुख और दुःख प्रकट प्राप्त होवे तिसको प्रत्यक्ष कहते हैं और संकल्पमात्र का दुःख यह है कि उस पदार्थ का सुख दुःख प्रत्यक्ष न भासे ताते जब तुझको स्वप्न विषे कोई पदार्थ दृष्टि आवे और तैंने उसका सुख अथवा दुःख पाया तब वह पदार्थ तुझको तो प्रत्यक्ष हुआ सो यद्यपि और कोई उसको नहीं देखता पर तौभी तुझको प्रत्यक्ष है और जिस पदार्थ को सबही लोग देखें और तुझको वह पदार्थ न भासे तब तेरी जानविषे वह पदार्थ मिथ्या होता है इसी प्रकार स्वप्न देखनेवाले और मृतकपुरुष को जो दुःख प्राप्त होता है सो यद्यपि और कोई उसको नहीं देखता पर उनको निस्सन्देह प्रत्यक्ष है और औरों को देखने में भी जो नहीं आता तौभी उसका दुःख दूर तो नहीं होता और इस बिषे इतना भेद है कि स्वप्न देखनेवाला पुरुष शीघ्र जाग उठताहै और जाग्रत के समय उस दुःख का भान नहीं होता ताते उसको संकल्प कहते हैं और मृतक जीव को जो दुःख परलोक बिषे प्राप्त होता है तिस दुःख की मर्याद कुछ वर्णन बिषे नहीं आती और किसी प्रकार उस दुःख से छूट नहीं सके पर जब भगवत्

की कृपा होवे तब प्राणी को उस दुःखसे मुक्त करे और धर्मशास्त्र विषे भी तो इस प्रकार नहीं कहा कि प्राणी को स्थूलसर्प डसते हैं काहेसे कि जब वह सर्प स्थूल नेत्रों से देखे जावें तब परलोक भी इस लोक की नाईं आधिभौतिक प्रसिद्ध होता है सो ऐसे नहीं ताते जब कोई पुरुष स्थूल जगत् को विस्मरण करे तब उसको परलोक भी प्रत्यक्ष भास आताहै और तामसी जीवों को जिस प्रकार सर्प बिच्छू डसते हैं तिनको भी प्रत्यक्ष देखता है इसी कारण से कहा है कि इतर जीवों को जो कुछ आश्चर्य स्वप्नविषे दीखता है सो सन्तजनों को जाग्रत्विषे ही भासआता है इसी करके कि सन्तजनों को इन्द्रियादि विषय परलोकसम्बन्धी कार्यों में आड़ नहीं करसक्के पर तात्पर्य यह है कि जेते पुरुष स्थूलदृष्टि देखकर कहते हैं कि इस जीव को मरने के पीछे दुःख कुछ नहीं होता सो इसका कारण यह है कि उनको मानसी दुःख का ज्ञान कुछ नहीं और स्थूलशरीर के दुःख ही को दुःख जानते हैं बहुरि जब तू इस प्रकार प्रश्न करे कि तुमने जो यममार्ग के दुःख का कारण माया के भोग्य पदार्थ कहे हैं सो इस करके तो जानाजाता है कि यममार्ग के कष्टसे कोई पुरुष मुक्त न होवेगा क्योंकि सब कोई स्त्री पुत्रादिकसम्बन्धी और धन बड़ाई आदिक रखता है और माया की सामग्री भी सब कोई अधिक अथवा अल्प रखता है ताते प्रसिद्ध हुआ कि यममार्ग के कष्ट से कोई जीव नहीं छूटेगा तब इसका उत्तर यह है कि जिस प्रकार तैंने समझा है सो ऐसे नहीं काहेसे कि कोई पुरुष इस जगत्विषे ऐसे होते हैं कि उनका चित्त माया के भोगों से विरक्त होता है और किसी पदार्थ के साथ उन की प्रीति नहीं होती सो ऐसे जिज्ञासु वैराग्यसंयुक्त भी बहुत हैं बहुरि जो पुरुष धनवान् हैं सो वह भी तीन प्रकार के होते हैं सो एक तो ऐसे हैं कि उन की प्रीति माया के साथ भी होती है और भगवत् को भी प्रियतम रखते हैं पर जिनकी प्रीति भगवत् के साथ अधिक है तिनको भी यममार्ग विषे कष्ट नहीं होता तिसका दृष्टान्त यह है कि जैसे कोई पुरुष अपने गृह की सर्व सामग्री को प्रियतम रखता होवे और उसको कोई महाराजा किसी देश की राज्य देवे तब उसको अपने गृह की सामग्री का त्याग करना सुगम होता है काहेसे कि उस देश की राज्य और अधिक उसकी प्राप्ति की प्रीति के आगे अपने गृह की सामग्री और अपने नगर की प्रीति तुच्छमात्र ही होजाती है तैसेही प्रीतिमान्

मनुष्यों की प्रीति यद्यपि माया के भोगों और सम्बन्धियों के साथ भी होती है पर तौभी भगवत् की प्रीति और उसके मिलाप का जो रस है तिस आनन्द में सर्व पदार्थों की प्रीति उनको विस्मरण होजाती है और जब मरने के पीछे माया के पदार्थों का वियोग होता है तब वह आनन्दस्वरूप की प्रीति विषे लीन हो-जाते हैं बहुरि जो माया के साथ अधिक प्रीति रखते हैं और भगवत् के साथ अल्प सो ऐसे पुरुष यममार्ग के कष्ट से नहीं छूटते और चिरकालपर्यन्त दुःख को भोगते हैं फिर जब अधिक समय बीतजाता है तब उसको भी माया के पदार्थ विस्मरण होजाते हैं और भगवत् की प्रीति का बीज जो उनके हृदयविषे था सो धीरे २ उपजने लगता है तब चिरकाल पीछे वह भी सुख को पाते हैं सो इस का दृष्टान्त यह है कि जैसे किसी पुरुष के दो गृह होवें पर एक गृह के साथ उस की अधिक प्रीति होवे और दूसरे गृह के साथ कुछ अल्प प्रीति होवे सो उसको जब अधिक प्रीतिवाले गृह से मिलकर दीजिये और वह अल्प प्रीतिवाले गृह विषे जाय रहे तब कुछ काल तो अधिक प्रीतिवाले गृह के वियोगकरके दुःखी होता है फिर जब अधिक समय बीतता है तब वह गृह उसको सहजही भूलजाता है और जिस गृह के साथ कुछ अल्प प्रीति रखता था तिसही गृह के साथ उसका स्वभाव मिलजाता है २ और तीसरे धनवान् ऐसे हैं कि जिनकी प्रीति भगवत् के साथ कुछ भी नहीं और सर्वदा माया के पदार्थों विषे आसक्त हैं सो सदैव काल परलोक विषे बड़े दुःखों को भोगते हैं और कदाचित् नहीं छूटते काहे से कि माया के साथ जो उनकी प्रीति थी सो उसका वियोग हुआ तब ऐसे महा-दुःख से उनकी मुक्ति क्योंकर होवे ताते विमुखलोग जो सदैव दुःखविषे रहते हैं तिसका कारण मायाही की प्रीति है ३ बहुरि सब कोई इस प्रकार कहते हैं कि हम भगवत् ही को प्रियतम रखते हैं और माया के पदार्थों से भगवत् के साथ हमारी प्रीति अधिक है सो यद्यपि मुख से सब कोई ऐसेही कहता है पर तौभी इस वार्ता की परीक्षा के निमित्त कसौटी चाहिये है सो वह कसौटी यह है कि जिस भोग को इस जीवका मन चाहे और सन्तजनों के वचनों विषे वह भोग निन्द्य है सो जो यह मनुष्य उस समय विषे अपनी रुचि सन्तजनों के वचनों विषे अधिक देखे और मन की वासना का त्यागकरे तब जानिये कि उस पुरुष की प्रीति श्रीभगवत् के साथ अधिक है सो इसका दृष्टान्त यह है कि जैसे दो

पुरुषों के साथ किसी की प्रीति होवे और अकस्मात् उन दोनों पुरुषों में आपस विषे विरुद्ध होजावे तब जिस पुरुष के साथ वह मनुष्य अपनी खैंच प्रबल देखे तब जानिये कि उसकी प्रीति उसी पुरुष के साथ अधिक है तैसेही जबलग इस जीव की अवस्था सन्तजनों की आज्ञानुसार न होवे तबलग मुख के कहने करके कुछ लाभ नहीं होता और ऐसा कहनाही व्यर्थ है इसीपर महापुरुष ने भी कहा है कि जो पुरुष सर्वदा मुखसे ऐसेही कहते हैं कि एक भगवत् ही सत्य स्वरूपहै और सबही नाशवन्त हैं पर मायाके पदार्थोंविषे उनकी प्रीति अधिक है और इस वचन के कहने परही आपको मुक्त किया चाहते हैं तब भगवत् उन को इस प्रकार कहते हैं कि तुम झूठे हो काहेसे कि तुम्हारी तो मायाही के साथ अधिक प्रीति है और मुख से भगवत् ही को सत्यस्वरूप कहते हो ताते तुम अपनें वचनही विषे झूठे हो सो इस करके प्रसिद्ध हुआ कि जिनके बुद्धिरूपी नेत्र खुले हैं सो सूक्ष्मदृष्टि के साथ जिस प्रकार प्रत्यक्ष देखते हैं कि यममार्ग के कष्ट से कोई बिरला ही मुक्त है होवेगा और बहुत मनुष्य तो उस दुःख से न छूटेंगे पर अधिक और अल्प दुःख का भेद रहेगा जैसे माया के पदार्थों की आसक्ति विषे जीवों की अवस्था का भेद है तैसेही यममार्ग विषे भी दुःख का भेद होवेगा अर्थ यह कि कोई पुरुष चिरकालपर्यन्त उसही दुःख विषे रहेगा और कोई पुरुष अल्पकाल दुःख को भोगकर मुक्त होवेगा॥

नववां सर्ग॥

अभिमानी मनुष्यों की नीचता के वर्णन में॥

बहुरि जब तू इस प्रकार प्रश्न करे कि कितने पुरुष तो इस प्रकार कहते हैं कि यममार्ग के दुःख का कारण माया ही की प्रीति है तब हमको तो इस दुःख का कुछ भयही नहीं क्योंकि हमारा चित्त मायाके पदार्थों में आसक्तही नहीं पदार्थों का होना अथवा न होना हमको एक समान है सो इसका उत्तर यह कि ऐसा अभिमान करना कठिन है और ऐसे अभिमान करनेवाले भी महामूढ़ हैं काहे से कि जबलग अपने मनकी परीक्षा न करिये तबलग ऐसी अवस्था का अभिमान करना व्यर्थ है सो परीक्षा यह है कि जब उस पुरुषका धन तस्कर लेजावें अथवा उसका ऐश्वर्य नष्ट होवे और उसके मिलापी लोग बिमुख होकर निन्दा करने लगें तिसपर भी उस पुरुष की अवस्था न बदले और चित्तकी वृत्ति को खेद न

पहुँचे और ऐसे जाने कि किसी और का धन हरगया है और किसी और का मान दूर होता है और मेरा कुछ नहीं गया तब जानिये कि उसका कहना सत्य है और उत्तम अवस्था को प्राप्त हुआ है पर जब लग उसका धन और मान दूर नहीं हुआ होवे तब चाहिये कि अपनी परीक्षा के निमित्त आपही धन का त्याग करे और जिस नगरविषे इसका मान होवे तिस नगर को छोड़जावे और फिर ऐसी परीक्षा करके आपको निर्मल और निर्लेप देखे तब जाने कि मुझको परम पदकी प्राप्ति हुई है और जबलग आपको इस परीक्षाविषे परिपक्व न देखे तबलग उत्तम अवस्था का अभिमान करना व्यर्थ है काहेसे कि केते पुरुष सम्बन्धियों के संयोग विषे इस प्रकार जानते हैं कि स्त्री पुत्रादिकों के साथ हमारी प्रीति कुछ नहीं पर जब उनका वियोग होता है तब उनके हृदयविषे जो प्रीतिरूपी अग्नि छिपी हुई थी सो प्रकट हो आती है और उसकी तपन करके बावरे होजाते हैं ताते जो कोई पुरुष आपको यममार्ग के कष्ट से मुक्त किया चाहे तब उसको किसी स्थूलपदार्थ विषे आसक्त होना प्रमाण नहीं और माया का व्यवहार अवश्यमेव कार्यमात्र करना भला है सो जैसे इस मनुष्य को मलके त्यागने की अपेक्षा अवश्यमेव होती है और अवश्यमेव मलमूत्र के स्थानविषे जा बैठता है तैसेही जीव को चाहिये कि आहार की अभिलाषा भी इसी प्रकार कार्यमात्र होवे और ऐसे जाने कि जैसे मलत्याग किये विना शरीर को दुःख होता है तैसेही आहार के विनाभी शरीर की क्रिया सिद्ध नहीं होती और ऐसेही सब कार्यों विषे भय और संयमसंयुक्त वर्ते बहुरि जब माया के भोगों से यह मनुष्य अपना चित्त विरक्त करसके तब चाहिये कि जो पुरुषार्थ और प्रेम करके भजन विषे सावधान होवे भजन के और रहस्य को माया के रहस्य से प्रबल करे बहुरि सर्वदा अपने चित्त की परीक्षा करतारहे कि मेरा चित्त अपनी वासना की ओर अधिक खींचता है अथवा भगवत् और सन्तजनों की आज्ञाविषे अधिक प्रीति करता है सो जब इस प्रकार देखे कि मेरा चित्त अपनी वासना का त्याग करके सुगमही सन्तजनों की आज्ञानुसार वर्त्तता है तब निस्सन्देह जाने कि मैं निस्सन्देह यममार्ग के कष्ट से मुक्त होऊंगा और जब अपने मन को इस प्रकार न देखे तब जाने कि उस परमदुःखसे मुक्त होना कठिन है अथवा भगवत् की दया होवे तब मुक्त होसक्ता है सो वह इन सब करतूतों से न्यारी है सो

जब वह महाराज अपनी कृपा करे तब दुःख से मुक्त होना क्या आश्चर्य है ॥

दशवां सर्ग ॥

मानसी नरकों के बखान में ॥

तातें जान तू कि मानसी नरकों का अर्थ यह है कि वह दुःख केवल जीव को होता है और उस दुःखविषे शरीर का सम्बन्ध कुछ नहीं होता तातें जिस अग्नि करके शरीर को जलन होती है तिसको स्थूल नरक कहते हैं और जो अग्नि केवल मनही को जलावती है तिसको मानसी नरक कहते हैं बहुरि मानसी नरक की जो अग्नि है सो तीन प्रकार की होती है प्रथम तो स्थूल भोगों के वियोग की अग्नि जीव को जलावती है १ और दूसरी अग्नि अपमान और निरादर और लज्जाग्लानी की है २ बहुरि तीसरी अग्नि यह है कि भगवत् के दर्शन से अप्राप्त रहने का पश्चात्ताप इस जीव को जलावताहै ३ सो यह तीन प्रकार की अग्नि केवल हृदय को ही तपायमान करती है और इस दुःख का प्रवेश शरीरपर कुछ नहीं होता तातें इसका बखान करना प्रमाण हुआ पर इन तीनों अग्नि का बीज यह जीव इसी संसार से अपने साथ लेजाता है जैसे स्थूल दृष्टान्तों करके वर्णन करूंगा पर प्रथम अग्नि जो भोगों के वियोग की कही है सो इसका बखान कुछ आगे भी किया है सो इस दुःख का कारण माया की प्रीति है अर्थ यह कि उसही प्रीति करके सुखी होता है और वियोग करके उसी प्रीति करके दुःखी होता है तातें इस पुरुष की प्रीति जो माया के साथ है सो भोगों को इस संसार बिषे स्वर्ग की नाईं भोगता है फिर नरक को प्राप्त होता है काहेसे कि यह माया ही इसकी प्रियतम थी सो जब उसका वियोग होता है तब महादुःखी होता है इस करके प्रसिद्ध हुआ कि एकही पदार्थ सुख का कारण भी होता है बहुरि दुःख का कारण भी वहही है पर उस पदार्थ का सुख और दुःख संयोग और वियोग करके होता है सो इस अग्नि का दृष्टान्त यह है कि जैसे कोई महाराजा होवे और सर्व पृथ्वीमण्डल पर उसकी आज्ञा वर्तमान होवे और सर्वदा सुन्दर स्वरूपों का देखना उसको प्राप्त होवे और नाना प्रकार के दास और दासी और स्त्रियां सुन्दर और ताल बागीचे रमणीक स्थान और इसकी नाईं और भी बड़े सुख को भोगता होवे बहुरि अचानक ही कोई और राजा उसका विरोधी आनकर प्राप्त होवे और उसको

जीतकर अपने अधीन करलेवे और उसके प्रधान के देखतेही उस महाराजा को कूकरों की टहल विषे लगावे बहुरि उसके देखते ही उसकी स्त्रियों को अपनी दासी कर राखे और उसके दास दासियों से अपनी टहल करावे और उसके भण्डार विषे जो रत्न और माणिक्य होवें सो सबही उसके शत्रुओं को देवे सो जब विचारकर देखिये तब उस राजा के शरीरपर दुःख कुछ प्राप्त नहीं हुआ पर राज्य और स्त्री पुत्र दास दासी भण्डार और २ जो सर्व सुखों के वियोग की अग्नि है सो उसके हृदय को जलावती है और वह महाराजा अपने हृदय विषे आप को ऐसा दुःखी जानता है कि मैं किसी प्रकार मरजाऊं तो भला है जो इस दुःख से छूटूं सो यह दृष्टान्त स्थूल भोगों की अग्नि का है तातें प्रसिद्ध हुआ कि जितने माया के सुख अधिक होवें और वह पुरुष निष्कण्टक उनको भोगता होवे सो तितना ही उनके वियोग की अग्नि भी उसके हृदय को अधिक जलावती है और जिसके पास माया की सामग्री अधिक होवे और इन्द्रियादिक भोग भी उसको निर्यत्न प्राप्त होवें तब उनका वियोग भी उसके हृदय को अतिशय तपायमान करता है बहुरि यों भी है कि जिस वियोग की अग्नि करके इस जीव का हृदय जलने लगता है तिसके समान स्थूल अग्नि का दृष्टान्त नहीं सम्भवता काहे से कि जब इस मनुष्य के शरीर को इस जगत विषे कुछ दुःख भी होता है तब भी हृदय को सम्पूर्ण नहीं पहुँचता इस करके कि नेत्र और श्रवणादिक इन्द्रियों की क्रियाविषे चित्त की वृत्ति पसरजाती है तातें दुःख का भास निर्बल होजाता है और इन्द्रियों का व्यवहार भी हृदय को ऐसा पटल होजाता है कि दुःख का प्रवेश सम्पूर्ण चित्त विषे पहुँचने नहीं देता जैसे जब कोई दुःखी पुरुष अचानक निद्रा से जागता है तब उसको दुःख की पीड़ा अधिक भासने लगती है क्योंकि उस समय विषे उस पुरुष का चित्त पसरा हुआ नहीं होता और जैसे जब कोई पुरुष निद्रा से अचानक जागे और इन्द्रियों विषे चित्त की वृत्ति पसरने से आगेही सुन्दर शब्द उसके श्रवण विषे पड़े तौ भी उस शब्द विषे चित्त की वृत्ति एकत्र होती है पर जबलग यह मनुष्य इस संसार विषे जीता है तबलग इन्द्रिय व्यवहार के मैल से कदाचित् निर्मल नहीं होता और जब इस जीव का शरीर छूटताहै तब परलोक विषे अकेलाही रहजाताहै और इन्द्रियों की विक्षेपता सबही दूर होजाती है इसी कारण से परलोक विषे सुख और दुःख का प्रवेश जीव को

अधिक होताहै ताते तू ऐसा अनुमान चित्तविषे न करे कि वह सूक्ष्म अग्नि जीव को जलावनेवाली भी स्थूल अग्नि की नाईं होवेगी क्योंकि यह अग्नि सत्तर भाग उस सूक्ष्म अग्नि से शीतल है बहुरि दूसरी अग्नि जो अपमान की कही थी सो तिसका दृष्टान्त यह है कि जैसे कोई महाराजा नीच मनुष्य को दयाकरके अपना निकटवर्ती करे और सर्वकार्य गृहके उस को सौंप देवे बहुरि उसको रनिवास में जाने की भी अटक न होवे और धनके भण्डार भी सब उस के अधीन होवें सो जब ऐसे पुरुष को ऐसे सुखों की प्राप्ति होजावे तब विमुखता करके उसका हृदय मलिन होजावे और तिस करके भण्डारों विषे चोरी करने लगे और भीतर राजमहलों में व्यभिचारादिक अपकर्म करनेलगे और बाहर से आप को सुहृद्भाव और भलाई संयुक्त दिखावे बहुरि अचानक ही किसी समय महलों विषे अपकर्म करतेहुये उस महाराजा को देखै और इस प्रकार जाने कि राजा मुझको झरोखे में से अपकर्म महलों में करताहुआ देखता है और ऐसेही सदैवकाल आगे भी देखता रहताहै पर मुझको इस निमित्त दण्ड नहीं दिया कि जब इसका पाप पूर्ण और वृद्ध हो जावेगा तब मैं इसको इकट्ठा ही दण्ड और दुःख देऊंगा सो अब तू विचारकर देख कि उस समय विषे उस नीच मनुष्य को लज्जा की अग्नि किस प्रकार जलावती है कि यद्यपि उसका शरीर और कष्ट से रहित है तौ भी उस लज्जावानी के सबब से आप को धरती विषे लीन किया चाहता है इस करके कि किसी प्रकार लज्जावान् के कष्ट से मैं छूटूं तो भला है हे भाई! तैसे ही तू इस जगत् विषे अपने स्वभाव साथ कार्य करता है और वह कार्य बाहर से भले दृष्टि आते हैं और उस क्रिया का तात्पर्य म-लिन होता है सो जब परलोक विषे नीच क्रिया का तात्पर्य सिद्ध होवेगा तब तुझको अति लज्जा प्राप्त होवेगी और तू उस लाज की अग्निविषे दग्ध होवेगा जैसे कोई पुरुष की निन्दा अब कोई करे तो परलोक विषे ऐसी लज्जा को प्राप्त होवेगा कि जैसे कोई पुरुष इस संसारविषे अपने भाई का मांस भोजनकरे और जाने कि मैं पक्षी का मांस भक्षणकरता हूं बहुरि जब भलीप्रकार देखे तब जाने कि यह तो मेरे सम्बन्धी का मांस है ताते तू भली प्रकार देख कि उस समय विषे उस पुरुष का हृदय कैसा लज्जायुक्त होता है और कैसा तापकरके तपने ल-गता है सो निन्दा करनेवाले को परलोक विषे ऐसीही लज्जा प्राप्त होवेगी जैसी

उस पुरुष अपने भाई के मांस खानेवाले को हुई पर निन्दा करने का तात्पर्य जैसा मलिन है तैसा अब तुझको नहीं भासता और परलोक विषे उसको प्रत्यक्ष देखेगा इसी कारण से कहा है कि जब कोई मनुष्य स्वप्न विषे आप को मृतक का आहार करता देखे तब इसकी युक्ति यह है कि वह मनुष्य किसी पुरुष की निन्दा करता होवे बहुरि दृष्टान्त यह कि जैसे तू स्वाभाविकही किसी भीत के पीछे से पत्थर डारनेलगे और वह पत्थर तेरे घरमें जाकर पड़तेहोवें और कोई पुरुष तुझ से कहै कि तू पत्थर डारने का त्यागकर काहेसे कि यह पत्थर तेरेही गृह में पड़ते हैं और इन पत्थरों करके तेरे पुत्रों के नेत्र अन्धे होते जातेहैं फिर जब तू अपने गृह विषे जाकर प्रत्यक्ष देखे कि पत्थर करके मेरे पुत्रों के नेत्र अन्धे हुये हैं तब उस समय विषे तेरे चित्त को कैसी अग्नि लगती है और किस प्रकार तू लज्जाग्नी विषे जलता है तातें जब कोई पुरुष किसी मनुष्य की ईर्षा करता है तब परलोक विषे आपको ऐसाही लज्जित देखेगा काहेसे कि ईर्षा का भी येही होता है कि ईर्षा करनेवाला पुरुष अपने शत्रु की हानि चाहता है पर वास्तव में अपनी ही हानि करता है और अपना ही शुभ नष्ट करता है और अपने शुभ करतूतों का नाश किया चाहता है तात्पर्य यह कि परलोक विषे सब करतूतों का स्वरूप अर्थ के अनुसार भासेगा और यह मनुष्य पदार्थों के अनुसार बीज को प्रत्यक्ष देखेगा इसी कारण से अपमान की लज्जा को प्राप्त होवेगा बहुरि स्वप्न की अवस्था भी परलोक की अवस्था की नाईं होती है तातें जैसा इस पुरुष का हृदय होता है तिसको स्वप्नविषे आकारवन्त देखता है इसी पर एक वार्त्ता है कि कोई प्रवृत्ति पण्डित एक सन्त के पास आया था और कहनेलगा कि मैंने स्वप्नविषे अपने आपको लोगों के मुखपर मोहर लगावते देखा है सो इसका अर्थ क्या है ? तब उस सन्त ने कहा कि तू जाग्रत विषे दण्ड करके लोगों को व्रत रखाता होगा बहुरि उसने कहा कि निस्सन्देह मेरा ऐसाही स्वभाव है तातें अब तू विचार करके देख कि इस करतूतिका आकार कैसा है ? और अर्थ कैसाहै ? सो स्थूलव्यवहार विषे तो व्रत रखावना भलाकर्म दृष्टि आता है पर उसका अर्थ अशुभ प्रकटहुआ कि मानों लोगों के मुखों पर मोहर लगाता है और उनको आहार से रोक रखताहै सो यह भी बड़ा आश्चर्य है कि भगवत् ने तुझको यह स्वप्न परलोक की अवस्था का लखानेवाला बना

दिखाया है पर तू इससे भी अचेत है इसी कारण से सन्तजनों के वचनों विषे आया है कि परलोक विषे माया का आकार वृद्धा कुरूपा स्त्री की नाईं होवेगा और सबही जीव उसे देखकर भयवान् होवेंगे और प्रार्थना करेंगे कि हे महाराज! इस महाराक्षसी से तू हमारी रक्षाकर तब आज्ञा होवेगी कि जिस मायाकी प्राप्ति के निमित्त तुम अपने धर्मको नाश करते थे सो यह वही मायाहै तब वह जीव ऐसी अपमानता और लज्जा को प्राप्तहोवेंगे कि आप को अग्निविषे जलाया चाहेंगे इस करके कि किसी प्रकार हम इस लज्जा से छूटें सो इस लज्जाग्लानीका दृष्टान्त यह है कि एक समय विषे किसी राजा ने अपने पुत्र का विवाह किया था बहुरि वह राजपुत्र मदिरा अधिक पानकरके अपने गृह को चला सो मद की उन्मत्तता करके असावधान होगया और अपने गृहको भुलाकर किसी और स्थान विषे जा निकला और वहां एक मन्दिर में दीपक जलतादेखा तब उस ने जाना कि मैं अपने घरमें आ प्राप्तहुआ हूं बहुरि जब उस स्थानके अन्दर गया तब उसमें उसको बहुत पुरुष पड़े सोवतेहुये दृष्टिआये सो उनको पुकारा तो कोई न बोला तब उसने जाना कि सब निद्राविषे हैं बहुरि एक स्त्री को उसने उज्ज्वल वस्त्र पहिरे हुये सोवती देखा तिसको अपनी स्त्री जानकर उसके पासही शयन कररहा और उस स्त्री के शरीर से उसको सुगन्ध आनेलगी तब वह राजपुत्र उसके साथ क्रीड़ा करने लगा बहुरि जब सूर्य उदयहुये तब उस राजपुत्र का मद उतरा और जाग उठा और भली प्रकार देखा तो जाना कि जिनको मैं सोयाहुआ जानता था सो वह सब ही मृतक हैं और जिसको मैं अपनी स्त्री जानता था सो महाकुरूप वृद्धा स्त्री है और मुझको जो सुगन्ध भासती थी सो उसके शरीर की दुर्गंध और मलिनता है बहुरि जब अपने अङ्गों को देखा तो सब विष्ठा साथ लपटेहुये दृष्टि आये तब बड़ा मलिनचित्त होकर चाहनेलगा कि इससे तो मेरी मृत्यु आजावे तो भला है बहुरि यह भी भय करनेलगा कि कहीं मेरा पिता और उसकी सेना इस विष्ठादिक में लपटाहुआ मुझको न देखलेवे सो वह ऐसेही मनमें विचार कररहा था कि इतने में वह राजा अपने प्रधानों संयुक्त उसको ढूंढ़ता हुआ वहांही आ पहुँचा तब पुत्र को महामलिन अवस्था विषे देखा और वह राजपुत्र लज्जा करके ऐसे विचारनेलगा कि जो किसीप्रकार मैं धरती विषे समा जाऊं तो भला है पर किसी भांति इस लज्जाग्लानी से छूटूं-

तैसेही विषयी जीव परलोक विषे माया के सुखभोग और इन्द्रियों के रसों को ऐसाही मलिन देखेगा पर उसके हृदय विषे जो स्थूल भोगोंकी प्रीति शेष रहेगी तिस करके महादुर्गन्धता को प्राप्त होवेगा बहुरि जब विचार करके देखिये तब भोगी मनुष्य इसी संसार विषे अति निर्लज्जता को और दुःख को पाते हैं पर तौभी परलोक विषे इस प्रकार यह जीव दुःख और लज्जावानी को प्राप्तहोते हैं कि तिसके निकट इस संसार के दुःख और लज्जावानी अल्पमात्र हैं और मैंने जिज्ञासुओं को लक्ष्य करावने के निमित्त कुछ संक्षेप करके वर्णन किया है सो इसका तात्पर्य यह है कि यह लज्जावानीरूपी अग्नि भी ऐसी तीक्ष्ण है कि केवल हृदय को तपायमान करती है और इस दुःख का प्रवेश शरीरको कुछ नहीं होता २ बहुरि तीसरी अग्नि यह है कि भगवत् के दर्शन से अप्राप्त रहना और उत्तम भोगों की प्राप्ति से निराशहोना सो यह मूर्खता भी इसी संसार से जीव के साथ जाती है काहे से कि इस लोक विषे जिस पुरुषने सन्तजनों के उपदेश और पौरुष प्रयत्न करके ज्ञान को नहीं पाया और अपने हृदय को शुद्ध करके भगवत् के दर्शन का दर्पण नहीं बनाया और भोग और पापरूपी जंगार को हृदयरूपी दर्पण से नहीं छुड़ाया सो परलोक विषे भी उसका हृदयरूपी दर्पण अन्धा ही रहता है और सर्वदा पश्चात्ताप को पाता है सो इस पश्चात्तापरूपी अग्नि का दृष्टान्त यह है कि जैसे तू अँधेरी रात्रि विषे बहुत लोगों के साथ किसी बन में जाय निकले और उस बन में पत्थरों के टुकड़े बहुत पड़े होवें पर अन्धकार विषे उनका स्वरूप कुछ न भासे बहुरि तेरे संगी इस प्रकार कहें कि हमने इन पत्थरों की बहुत विशेषता सुनी है ताते यथाशक्ति इनको उठा लेवो बहुरि वह सबहीलोग यथाशक्ति कङ्कड़ उठालेवें और तू कुछ भी न उठावे और उनसे कहनेलगे कि यह तो बड़ीमूर्खता है कि अपने शरीर को प्रथम दुःख दीजिये और कङ्कड़ों का बोझ उठालेवें और यह वार्ताभी प्रसिद्ध नहीं जानीजाती कि यह कङ्कड़ हमारे किसी काम आवेंगे या नहीं आवेंगे पर तेरे संगी सबही उन कङ्कड़ों को उठालेवें और तू बिना कङ्कड़ों के उनके साथ खाली चलाजावे और उन सब को मूर्ख जानकर हास्य करने लगे और ऐसे कहे कि जो पुरुष बुद्धिमान् होताहै सो मेरी नाईं सुख से ही चला जाताहै और जो मूर्ख होता है सो गर्दभ की नाईं बोझ उठाताहै और जिस पदार्थ की हानि लाभ कुछ प्रसिद्ध

न भासे उसविषे यत्न करता है बहुरि जब अचानक ही सूर्य उदय होवें तब वह कङ्कड़ सब रत्न और लाल प्रत्यक्ष दृष्टि आवें और वह रत्न ऐसे होवें कि उनका मोल वर्णनविषे न आवे सो तेरे संगी देखकर प्रसन्न होवें और इस प्रकार पश्चात्ताप भी करें कि हम इससे भी अधिक उठालेते तो भला होता और तुझको तो इनके अप्राप्त रहने का अत्यन्त ही पश्चात्ताप होवेगा और उसकी अग्निविषे जलेगा बहुरि तेरे संगी रत्नों को पाकर धनी होवें और गज अश्व ऐश्वर्यादि उत्तमसुखों को भोगनेलगें और तू निर्धनताई करके भूखा और नग्न रहै और वह तुझको नीचटहल विषे लगावें और जो तू इनसे कुछ मांगने भी लगे तौ भी तुझको न देवें और इस प्रकार तुझसे कहैं कि तू कल्ह हम को हँसता था सो तुझ को उस हँसने का फल प्राप्त हुआ है तिस करके तू पश्चात्ताप और दुःख विषे जलता है और हमको परमसुख प्राप्तहुआ है तैसेही जो पुरुष भगवत् के दर्शन से अप्राप्त रहे हैं सो परलोक विषे तिनकी अवस्था ऐसेही होवेगी इस करके कि यह संसार अँधेरी रात्रि की नाईं है और जप, तप, भजन आदिक साधनरूपी रत्न हैं सो इस संसारविषे इन रत्नों का स्वरूप और मोल नहीं भासता ताते संसारी जीव शुभकर्मों को अङ्गीकार नहीं करते और कहते हैं कि हम माया के प्रत्यक्ष सुखों को छोड़कर परलोक के सुख परोक्ष का काहे को यत्नकरें सो ऐसे पुरुष निस्सन्देह परलोक विषे दुःखी होवेंगे और पुकार करेंगे और कहैंगे कि साधन करनेवाले परमसुखके अधिकारी हैं और उनको देखकर जलेंगे सो सत्य है काहे से कि जिन पुरुषों ने साधन करके इस संसार विषे भगवत् की प्रीति और पहिचान को प्राप्त किया है सो तिनको परलोक विषे भगवत् ऐसा उत्तम सुख देवेगा कि माया के सर्व भोग अमितकाल के उस सुख के क्षणसमान भी न लगेंगे काहे से कि वह आत्मसुख ऐसा अपार है कि उसके साथ कोई सुख का दृष्टान्त संभवित नहीं होता इस करके कि वह आत्मसुख सर्व सुखों का सार है जैसे कोई जौहरी कहै कि रत्न का मोल सौ मोहर है तब उस रत्न की तोल और आकार तो सौ मोहर के समान नहीं होता पर उसके कहनेका अर्थ यह है कि वह रत्न मोहर के स्वर्ण चांदी का सारहै तैसेही इन्द्रियादिक सुखोंसे आत्मसुख की जो अधिकता कही है सो मर्याद और आकारकरके नहीं कही पर वह आत्मसुख कैसा है कि सर्व सुखों का सार है ताते उसको अधिक वर्णन कियाहै॥

ग्यारहवां सर्ग ॥

स्थूल दुःख से मानसी दुःखों की तीक्ष्णता के वर्णन में ॥

ताते जब तूने तीन प्रकार की सूक्ष्म अग्नि को समझा तब ऐसे भी जान कि इस सूक्ष्म अग्नि की तपन स्थूल अग्नि से महातीक्ष्ण है क्योंकि शरीरको भी आप करके दुःख का ज्ञान नहीं होता ताते शरीर का दुःख भी तबहीं भासता है जब जीव की वृत्ति शरीर विषे आ फुरती है और जो दुःख केवल जीव के अन्दर में ही स्थित होवे तब वह दुःख तो निस्सन्देह ही अधिक होताहै ताते यह तीन प्रकार की अग्नि जो कही है सो इसकी अग्नि जीव के अन्तरही उत्पन्न होती है और शरीर के दुःख की नाईं बाहर से आके नहीं प्रवेश करती इसी कारण से सूक्ष्म अग्नि की जलन महाप्रबल है और सर्व दुःखों का कारण यह है कि जो पदार्थ शरीर के स्वभाव को इष्ट होते हैं सो जब उन पदार्थों का विरोधी प्राप्त होता है तब यह जीव अधिक दुःख को पाता है सो शरीर का इष्ट पदार्थ यह है कि तत्त्वों की वृत्ति समानहोवे सर्व अङ्गों का सम्बन्ध परस्पर बना रहै बहुरि जब अकस्मात् किसी विघ्न अथवा शस्त्र की चोटकरके अङ्गों की हीनता होजावे तब अवश्य ही दुःखी होता है और शस्त्रादिकों करके तो किसी एक अङ्ग का वियोग होताहै पर अग्नि करके सर्वअङ्ग जलने लगते हैं इसी कारण से अग्नि की पीड़ा शस्त्रादिकों से अधिक है तैसेही जो पदार्थ केवल इसको इष्ट होता है जब उसका विरोधी पदार्थ प्राप्तहोवे तब उसका दुःख भी जीव को अधिक पीड़ा देता है सो इस जीव का स्वतःस्वभाव भगवतकी पहिंचान और उसका दर्शन है जब अज्ञान करके भगवत की पहिंचान और दर्शन से दूर रहता है तब निस्सन्देह ऐसे दुःख को पाता है कि उस दुःख का अन्त कदाचित नहीं होता पर जब इस संसारविषे इस जीव को सुचेतता होती है तब इस दुःख को कुछ जानता है पर यह जीव माया के भोगों विषे ऐसा शून्यचित्त रहता है कि सूझ बूझ कुछ नहीं आती बहुरि जब परलोकविषे भोगों की शून्यता दूर होती है तब वह दुःख इसको प्रत्यक्ष भास आता है जैसे किसी पुरुष का शरीर अर्धाङ्ग रोग करके शून्य होजावे तब उसको अग्नि की उष्णता नहीं भासती पर जब अर्धाङ्ग की शून्यता दूर होजाती है तब अग्नि की ताप उसको तीक्ष्ण लगती है और उस तपन करके महादुःखी होताहै तैसेही इस मनुष्य का हृदय

माया करके शून्य हो रहा है इस कारण से अनेक दुःख को भी नहीं जानता पर परलोक विषे जब इसकी शून्यता दूर होती है तब अपने हृदयकी अग्नि के दुःख विषे तपायमान होता है और जलने लगता है सो यह अग्नि जीव को बाहर से नहीं आ जलातीहै इस करके कि इस अग्नि का बीज यहांही इस जीव के अन्तर स्थित था और प्रतीति की हीनता करके इसको जानता न था और जब वह बीज विस्तार करके वृक्ष हुआ तब प्रत्यक्ष आसनेलगा और उसके फल को पाताभया इसीपर महाराजने भी कहा है कि जब तुम्हारी प्रीति दृढ़ होती तब तुम नरकको यहांही प्रत्यक्ष देखते पर धर्मशास्त्र विषे स्थूलनरकों और स्वर्ग का अधिक वर्णन जो किया हैं सो इसका कारण यह है कि संसारी जीव इसही को समझसक्ते हैं और जब मानसी नरकों की वार्त्ता को श्रवण करते हैं तब बुद्धि की हीनता करके इस दुःख को तुच्छ जानते हैं जैसे किसी बालक से कहिये कि तू विद्या पढ़ और जो विद्या न पढ़ेगा तो पिता के ऐश्वर्य को नहीं प्राप्त होवेगा और महामूर्ख रहेगा तब वह बालक इस वचन को समझताही नहीं और पिता के ऐश्वर्य से अप्राप्त रहने के दुःख को जानताही नहीं पर जब बालक को ऐसे कहिये कि जब तू विद्या को न पढ़ेगा तब पाधा तेरे कानों को मरोड़ेगा तब इस करके वह बालक भयवान् होता है और इस दुःख को सुगमही समझ लेता है सो जैसे विद्या के न पढ़ने करके पाधा की ताड़ना भी सत्यहै पर पिता के ऐश्वर्य से अप्राप्तरहना भी सत्य है तैसेही स्थूल नरक भी नरक सत्य है और मूर्खता करके भगवंत के दर्शन से अप्राप्त रहने की अग्नि भी सत्य है पर महाराज के दर्शन से अप्राप्त रहने का दुःख ऐसा है जैसा पाधा बालक के कान मरोड़ताहै॥

बारहवां सर्ग॥

पूर्वपक्षोत्तर के वर्णन में॥

बहुरि जब तू इस प्रकार प्रश्नकरे कि तुमने ऐसे वर्णन कियाहै कि मानसी नरक को अनुभव की दृष्टिकरके देखसक्ते हैं और विद्यावान् पण्डित इस प्रकार कहते हैं कि शास्त्रोंविषे ऐसे वर्णन किया है कि परलोक की वार्त्ता को प्रतीतिही करके समझ सक्ते हैं और अपनी दृष्टिकरके देखना असम्भवहै सो इनदोनों वचनों का परस्पर विरोध होताहै तब इसका उत्तर यह है कि कुछ इस वचनका बखान मैंने आगेभी वर्णन किया है और भली प्रकार देखिये तो इस वचन का विरोध भी कुछ

नहीं और जिस प्रकार शास्त्रोंविषे परलोक का वर्णन किया है सो ऐसेही प्रमाणहै पर इसविषे इतना भेद है कि कितने पण्डित तो ऐसे हुये हैं कि उनकी बुद्धि इन्द्रियादिक देशसे बाहर नहीं निकलती और चैतन्य देश को उन्होंने जानाही नहीं और केते बुद्धिमान् ऐसे भी हुये हैं कि उन्होंने परलोक की अवस्था और मानसी नरक को प्रत्यक्ष देखा है और उन्होंने इस निमित्त प्रसिद्ध नहीं कहा कि बहुत लोग इस मानसी दुःख को समझ नहीं सके और सब किसी की बुद्धि विषे ऐसा बल भी नहीं होता कि अल्पबुद्धि जीवोंको चैतन्यदेश का भेद वचन करके हस्तामलकवत् कर दिखावें अथवा जिसको भगवत् अपनी कृपाकरे वह आपही इस भेद को देख लेता है और अपर जीवों को भी युक्तिकरके समझाय सक्ता है पर ऐसे पुरुष भी इस जगत विषे दुर्लभ पाये जाते हैं ताते स्थूल नरकों का भेद शास्त्रों के श्रवण करके ही समझसक्ते हैं और मानसी नरकों का अर्थ अपने आपकी पहिंचान करके जानाजाता है सो अपने आपका पहिंचानना और बुद्धि के नेत्रों करके चैतन्यरूप को देखना इस अवस्था को भी पुरुषार्थ और यत्न के मार्गकर पहुँचसक्ता है ताते इस परमपद को सोई पाता है जो अपने देश से अटन करके किसी और देश को गमनकरे और जिस स्थान विषे इस जीव की उत्पत्ति और स्थिति हुई है उसको त्यागकर आगे चलने का उद्यम करै पर यह जो मैंने अपने देश और गृह का त्यागना कहा है सो इसका अर्थ यह नहीं कि स्थूलदेश और मन्दिरों को त्याग आवे काहे से कि स्थूल मन्दिर और नगर तो शरीर का देश है ताते स्थूलदेशके त्यागने करके कुछ फल नहीं प्राप्त होता पर मैंने जीव के देश का त्यागना विशेष कहा है अर्थ यह कि वास्तव जीवका देश और है और इस शरीर देशविषे कार्यमात्र आया है पर इस जीव ने अपना देश यही जानलियाहै पर तो भी अवश्यही इस मनुष्य को स्थूलदेश से गमन करना है और सूक्ष्मदेश विषे पहुँचना है बहुरि मार्गविषे कई मंजिलहैं सो सब मंजिलों का भिन्न २ व्यवहार है पर प्रथम जो जीव की स्थिति का स्थान है सो इन्द्रियादिक देश है १ और दूसरी मंजिल संकल्पदेश की है २ और तीसरा देश संकल्प का कारण जगत् की प्रतीति है सो इसको स्थूलबुद्धि भी कहतेहैं ३ बहुरि चौथा सूक्ष्म बुद्धिका देश है ४ पर जब यह जीव सूक्ष्मदेश विषे पहुँचताहै तब इस को अपने स्वरूपकी बूझ प्राप्त होती है और प्रथम तीनों देश विषे अज्ञान करके

आवरण कियाहुआ रहता है पर यह जो चार मंज़िलें मैंने कही हैं सो दृष्टान्त करके समझ में आसक्की हैं सो प्रथम इन्द्रियादिक देश का दृष्टान्त यह है कि इन्द्रियादिक देशविषे इस जीव की अवस्था पतङ्ग की नाईं है जैसे पतङ्ग नेत्रों के विषयकर दीपक के ऊपर आन पड़ताहै पर उस विषे संकल्प और चिन्तन कुछ नहीं होते ताते अन्धकार से भागकर दरवाज़े खिड़की के मार्ग से निकलना चाहता है और वह दीपकही उसको खिड़की भासती है इस कारण से आप को दीपक के ऊपर आन डालता है बहुरि धुयें की प्रबलता करके पीछे गिर पड़ता है और उसके चित्त विषे इतनी भी समझ नहीं कि धुयें के दुःख को स्मरणविषे रक्खे और ऐसे जानें कि इस दीपक की तपन करके मैंने आगे भी दुःख पाया है सो यों नहीं समझता ताते बहुरि दीपक की ओर जाता है और इसी प्रकार मृत्यु को पावता है सो यह वार्त्ता प्रसिद्ध है कि जब उसको स्मरण अथवा चितवनी होती कुछ भी तौ एकबार दुःख पाकर फेर दीपक की ओर न जाता १ दूसरा देश संकल्प का पशुओं की नाईं है इस करके कि पशुओं को जब कोई पुरुष लाठी मारता है तब दूसरी बार लाठी को देखकर भयवान् होते हैं और उस पहली लाठी का दुःख उनके स्मरण विषे रहता है ताते लाठी को जब फिर देखते हैं तब भागजाते हैं तात्पर्य यह कि प्रथम इन्द्रियादिक देश की मंज़िल है और दूसरी मंज़िल संकल्प के देश की है सो जब यह मनुष्य संकल्प के देश विषे होता है तौ भी पशुओं के समान है इस करके कि जब लग किसी पदार्थ से दुःखी नहीं होता तबलग उस पदार्थ का त्याग नहीं करता पर जब एक बार किसी से दुःख पाता है तब दूसरी बार उसको देखकर भागा चाहता है २ बहुरि तीसरी मंज़िल संकल्प का कारण स्थूलबुद्धि है सो जब यह मनुष्य इस देश विषे पहुँचता है तब घोड़ों और बकरी की अवस्था को प्राप्तहोताहै अर्थ यह कि दुःख पाये बिनाही दुःखदायक पदार्थों से भयवान् होता है और यों जानता है कि इस करके मुझको दुःख प्राप्त होवेगा जैसे आगे अजाने भेड़िये को देखा नहीं और घोड़े ने सिंह को भी आगे नहीं देखा पर जब अचानकही सिंह और भेड़िये को देखते हैं तब घोड़ा और बकरी भागजाते हैं और अपने शत्रु को पहिचानलेते हैं सो यद्यपि ऊंट और हाथियों को देखते हैं तब नहीं डरते और नहीं भागते इस करके कि उनको अपना शत्रु नहीं जानते सो यह अपने शत्रु का

पहिंचानना भी सूक्ष्मदृष्टि से हैं कि भगवत् ने यह दृष्टि उनके हृदयविषे रक्खी है ताते शत्रु और मित्र को सुगमही पहिंचान लेतेहैं पर तौ भी यह घोड़ा और अजा इस भेद को नहीं जानते कि कलह क्या होवेगा? ताते आगे के दुःखको पहिंचानना और उससे भय करना यह अवस्था चौथी मंज़िलविषे प्राप्त होती है और वह मंज़िल सूक्ष्म है कि जब वह मनुष्य इस अवस्था को प्राप्तहोता है तब पशुओं के पद से उल्लङ्घित होता है और जब प्रथम तीन मंज़िलों विषे होता है तबलग पशुओं के समान होताहै और जब सूक्ष्मबुद्धि के देश को प्राप्त होता है तौभी सम्पूर्ण मनुष्य के पद को प्रथम अवस्था को पाता है और ऐसे पदार्थों को देखता है कि जिस विषे इन्द्रियां और संकल्प और स्थूलबुद्धि का प्रवेश न होवे और जिसकरके आगे दुःख होवेगा उससे भयकरताहै और करतूतों के सारे भेद को समझता है बहुरि भेद को समझकर करतूति के आकार को भिन्न करता है और उसके तात्पर्य को भिन्न करता है और सर्व पदार्थों की मर्याद को पहिंचानता है और इस प्रकार जानता है कि जेते पदार्थ इस जगत् विषे दृश्यमान भासते हैं सो सबही अन्तवन्त हैं इस करके कि जो कुछ इन्द्रियों के विषय हैं सो स्थूल हैं और इन्द्रियादिक व्यवहार की क्रिया ऐसे हैं जैसे पृथ्वीपर चलना फिरना सुगम होता है और संकल्प के देश की क्रिया ऐसी है जैसे नदीविषे नौकापर चढ़कर चलना होता है अर्थ यह कि नौकापर चढ़नेसे बालक डरता है और बड़े पुरुषों को कुछ भय नहीं होता बहुरि स्थूलबुद्धि जो संकल्पों का कारण है तिसकी क्रिया तैरनेकी नाईं है अर्थ यह कि जल विषे वही पुरुष तैरसक्ता है कि जिसको तैरने की विद्या परिपक्क होती है और सूक्ष्मबुद्धि जो चौथी मंज़िल है उसका गमन ऐसे है जैसे मेघमण्डल विषे उड़ना होवे सो तिसविषे कोई विरला शक्तिमान् ही उड़सक्ता है तैसेही सूक्ष्मबुद्धि की चिदाकाश विषे गति होती है और यद्यपि इस अवस्था का प्राप्त होना महाकठिन है तौभी ज्ञानवान् पुरुषों का जो पद है और सन्तजनों का पद है सो इससे भी परे है सो इस परमपद की गति ऐसी है जैसे कोई महाकाश विषे उड़ना करे इसीकारण से महापुरुष से किसी ने कहाथा कि महात्मा ईसा जलविषे चलते हैं तब महापुरुष ने कहा कि यह वार्ता भी सत्य है पर जब उनकी प्रतीति अत्यन्त दृढ़ होती तब वह आकाश विषे भी उड़ने को समर्थ होते पर यह मनुष्य सब मंज़िलोंविषे जो चलताहै सो बूझ-

ही के देशविषे इसकी गति चली जाती है बहुरि पशुओं की अवस्था से लेकर देवतों के स्वभाव को जा पहुँचता है इसी कारण से कहाहै कि अधोगति और ऊर्द्धगतिविषे जाना इसी मनुष्य का अधिकार है ताते यह मनुष्य सर्व्वदा इसीभय विषे स्थित है कि देखिये मत अधोगति रसातल विषे जाऊं अथवा ऊर्द्धगति देवलोक को प्राप्तहोऊं और भय का अर्थ यह है कि जेते जड़ पदार्थ हैं तिनकी अवस्था कदाचित् नहीं बदलती इस करके कि उन विषे चैतन्यता नहीं डाली-गई ताते निर्भय हैं और ईश्वरकोटि जो देवता हैं सो अपने शुद्धपद से कदाचित् नहीं गिरते ताते वे निर्भय हैं ताते शुभकर्मों करके ऊर्ध्वगति को प्राप्तहोता है और अशुभकर्मों करके अधोगति विषे जाता है इसी कारण से मनुष्य को भय विषे स्थितरहना कहा है और ऐसे जो कहा है कि भगवत की प्रीति और प्रेम की अमानता मनुष्यविषे ही राखी है सो इसका भी अर्थ येही है पर मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि परदेशी और नगरवासियों की अवस्था भिन्न २ होती है ताते बहुत मनुष्य तो नगरवासियों की नाई अपने स्वभाव विषे ही स्थित होते हैं और परदेशी जो जिज्ञासुजन हैं सो विरले हैं और जिस पुरुष की स्थिति इन्द्रिय और संकल्पों के देशविषे ही हैं तिसको यथार्थभेदकी बूझ प्राप्ति नहीं होती और निश्शरीर पद को नहीं पाता और शरीर से रहित अवस्था को भी नहीं जानता इसी कारण चैतन्य सत्ता का अधिक बखान शास्त्रों विषे नहीं किया ताते मैं भी इस वचन को यहांही पूर्ण करता हूं कि स्थूल बुद्धि जीव इतने वचन को भी नहीं समझसक्के तब इससे अधिक भेद उनकी बुद्धि क्योंकर पा सक्की है॥

तेरहवांसर्ग॥

नास्तिकों के मत के खण्डन के विषयमें॥

बहुरि केते पुरुष तो ऐसे मूर्ख होते हैं कि वह परलोक की गति को अपनी बुद्धिकरके नहीं देखसक्के और सन्तजनों के वचनपर प्रीति भी नहीं करते ताते परलोकके निश्चय विषे संशयवान् होते हैं बहुरि भोगोंकी प्रबलताकरके परलोक का प्रसिद्ध नतकार करते हैं सो उनको उनका मनही ऐसी ढीठता दिखावे है तब वह जानते हैं कि सन्तजनों ने जो नरकों का वर्णन कियाहै सो जीवोंको भय देनेके निमित्त कहा है और ऐसे ही स्वर्गों का वचन भी लालच देनेके निमित्त कहा है पर वास्तव में नरक और स्वर्ग कुछ नहीं सो ऐसे जानकर भोगों विषे

आसक्तरहते हैं और सन्तजनों की आज्ञा से विमुख होते हैं इसी कारण से जो पुरुष शास्त्र की मर्याद विषे वर्त्तते हैं तिनको मूर्ख जानकर हँसते हैं और इस प्रकार कहते हैं कि यह मूर्ख मर्याद की रस्सीविषे बँधे हुये हैं सो ऐसे बुद्धिहीन नास्तिकवादियों को परलोक की गति को किसी प्रकार समझा नहीं सके पर जब कुछ श्रद्धा किसी पुरुष विषे देख ले तब इस प्रकार उनसे कहना प्रमाण है कि सन्तजन असंख्य और बहुत से आचार्य तो ऐसे हुये हैं कि तुम्हारे निश्चय के अनुसार उनके वचन सबही झूठे होतेहैं और छले हुये सिद्ध होते हैं तब तुमने मूर्खता करके गुह्यभेद को क्योंकर यथार्थ समझा है ताते जाना जाता है कि वह महापुरुष नहीं भूले और झूठे भी नहीं पर तुम मूर्ख हो कि तुमने यथार्थभेद को नहीं समझा और नरकों के दुःखों को भी नहीं जाना बहुरि आत्मा अनात्मा की भिन्नता को भी तुमने नहीं पहिंचाना पर जब वह मूर्ख अपनी भूलको न माने और हठ करके इस प्रकार कहनेलगे कि हमतो इस वार्त्ता को प्रत्यक्ष हस्तामलकवत् जानतेहैं कि अब भी इस शरीरविषे चैतन्यता का निश्चय करना मिथ्या है ताते मरने के पीछे भी जीव को अविनाशी जानना व्यर्थ है काहे से कि शरीर का व्यवहार प्राणवायु कर सिद्ध होना होताहै और जो परलोक का दुःख सुख कहते हैं सो यह भी कल्पनामात्र है सो जब इनका निश्चय ऐसाहै तब तिनकी बुद्धि मूलही से नष्ट है और उनको समझाने से निराश हुआ चाहिये काहेसे कि वह महामूर्ख हैं इसीपर किसी सन्त को आकाशवाणी हुई थी कि तुम नास्तिकों को उपदेश मतकरो इस करके कि यह मूर्ख वचनों करके समझने के अधिकारी नहीं पर जब वह इस प्रकार प्रश्नकरे कि यद्यपि परलोक की गति निस्सन्देह सत्य होवेगी तौभी हमसे बहुत दूर है क्योंकि प्रथम तो हस्तामलकवत् नहीं भासती ताते ऐसे संशय के वचन करके प्रकटभोगों का त्याग काहेको करिये और अपनी सर्व आयुष् वैराग्यके दुःखविषे क्यों लगावैं तब तिसको इस प्रकार कहिये कि जब तूने परलोक की वार्त्ता को कुछ माना तब तुझको बुद्धि की आज्ञा करके प्रमाणहुआ कि सन्तजनों की मर्याद विषे स्थित होवो काहेसे कि जिसकार्य विषे अत्यन्त भय होताहै तब उस कार्य को संशयकर भी त्यागना भला है जैसे तू भोजन करने की इच्छा करे और कोई पुरुष तुझको अचानकही संशय डाले कि इस भोजन विषे सर्पने मुखडाला है तब तू अवश्यमेव उस भोजन का त्याग

करता है यद्यपि तुझको यह निश्चय भी होवे कि यह मनुष्य झूठ कहता है अथवा अपने लोभ के निमित्त तुझको डरवाता है पर तौभी तू उस भोजन को अङ्गीकार नहीं करता इसी करके कि यह पुरुष सत्य भी कहता होवे तब मरने के दुःख से भूख का दुःख तो अल्प है बहुरि जब तुझको कुछ रोग होताहै तब यन्त्र लिखनेवाला पुरुष तुझको कहताहै कि मैं यन्त्र लिख देऊंगा तब तेरा दुःख दूर होजावेगा सो यद्यपि तुझको प्रतीति भी होती है कि यन्त्र और रोग का सम्बन्ध ही नहीं तौभी तू चित्त विषे ऐसा अनुमान करताहै कि यद्यपि मैं यन्त्रवाले को कुछ धन भी यन्त्र के बदले देऊंगा तौभी मेरी क्या हानिहै? पर जब मेरा रोग दूर होजावे तब यह तो बड़ालाभ होगा ऐसेही ज्योतिषियों के वचन भी प्रमाण करके तू देवपूजा करने लगता है इस करके कि जब इसका वचन सत्यभी होवे तब तुझ को बड़ासुख प्राप्त होवेगा और जब यह झूठही कहता है तो मुझको देवपूजा विषे कितना कष्ट है तैसेही असंख्य जो सन्तजन हैं और अवतार महापुरुष हैं और आचार्य अवधूत हैं सो तिनके वचन बुद्धिमानों के निकट ज्योतिषी और यन्त्र लिखनेवाले के वचन से तुच्छ तो नहीं होते ताते जिज्ञासुजन सन्तों के वचनों पर प्रतीति करके यत्न करके स्थित होते हैं और निस्सन्देह परलोक के दुःखों से छूटते हैं बहुरि परलोक के दुःख के निकट वैराग्यादिक दुःख किञ्चिन्मात्र होजाते हैं काहेसे कि जब विचारकर देखिये तो प्रथम इस जगत् विषे जीवना ही तुच्छमात्र है और परलोक की अवस्था का कदाचित् अन्त नहीं आता ताते परलोक के दुःख से मुक्त होने के निमित्त जो इस जगत् विषे यत्न कियाजाता है सो उस दुःख की मर्याद क्या है अर्थात् किञ्चिन्मात्र है इसीकारण से इस जीव को चाहिये कि सन्तों के वचनोंपर प्रतीति करे और यों जाने कि जब मैं इनके वचन से विमुख होऊंगा तब चिरकाल पर्यन्त दुःख को भोगता रहूंगा और मेरी मुक्ति कदाचित् न होवेगी और इन्द्रियादिक भोग जो अल्पकाल विषे विरस होजातेहैं इन करके मुझको क्या लाभ होवेगा? काहे से कि परलोक का दुःख अनन्त है और शास्त्रों विषे इस प्रकार कहाहै कि जब सर्व ब्रह्माण्ड को राई के दानों से भरपूर करिये और कोई ऐसा पक्षी होवे कि सहस्रवर्ष पर्यन्त एक दाना भक्षण करे तब उस अनाज का भी अन्त आजाता है परन्तु परलोक के दुःख का अन्त कदाचित् नहीं आता सो ऐसा

चिरकाल पर्यन्त यद्यपि मानसी दुःख होवे अथवा स्थूलदुःख होवे पर उसका सहना महाकठिन है और उस दुःख के निकट इस संसार की आयुष् क्या है? ताते जो बुद्धिमान् पुरुष है सो विचार करके समझता है कि विचारकी मर्याद विषे चलना और दोषदृष्टि करके अपकर्मों का त्याग करना प्रमाण है इस करके कि जिस कार्य विषे अत्यन्त कष्ट होवे सो अनुमान करके भी उससे अपनी रक्षा करनी भली है और यद्यपि उसके यत्न विषे कुछ दुःख भी होवे तौ भी विशेष है काहे से कि सबलोग अपने व्यवहार के निमित्त जहाजोंपर बैठकर देशान्तर को जाते हैं सो उनकी सर्व क्रिया अनुमान करके सिद्ध होती है ताते परलोक की गतिपर जिस पुरुष की एकप्रतीति नहीं और अनुमानमात्र ही परलोक को मानता होवे सो वह भी जब दुःख से अपनी रक्षा चाहे तब धैर्य करके वैराग्यादिक दुःखों को अङ्गीकार करे इसीपर एक वार्ता है कि किसी नास्तिकवादी के साथ में एक महात्मा सन्तकी चर्चा हुई थी तब वह नास्तिक कहताथा कि परलोक का सुख दुःख सब कोई अनुमान करके मानता है और प्रत्यक्ष किसी ने देखा नहीं तब अली कहने लगे कि जो तेराही कहना सत्य है तो हम और तू दोनों मुक्तहुये और जो मेरा वचन सत्य है कि परलोक सत्य है तो परलोक विषे तू चिरकाल पर्यन्त दुःखी होवेगा और हम मुक्त होवेंगे सो यह जो वचन संशयसंयुक्त अली सन्तने कहा जो उस नास्तिकवादी की बुद्धि अनुसार कहा है कि वह पुरुष अनुमानमात्र परलोक को प्रमाण करता था नहीं तो परलोक के सुख दुःख विषे अलीसन्त को कुछ संशय न था पर वह यह जानता था कि जिस प्रकार परलोक को भलीभांति देख सके हैं तिस प्रकार यह मूर्ख न समझसकेगा ताते ऐसे जान तू कि जो इस संसारविषे तोशा नहीं बनावते परलोक का और २ कार्यों विषे मग्न रहते हैं वे निस्सन्देह महामूर्ख हैं और इस मूर्खता का कारण विषयों की प्रीति है ताते भोगों की प्रीति विषे ऐसे लीनरहते हैं कि कदाचित् परलोक का विचार ही नहीं करते पर जो परलोक को दृढ़ प्रतीति करके मानते हैं तिन सब को परलोक के दुःख से भयमान होना प्रमाण है बहुरि संयम और भय के मार्ग विषे चलना विशेष है सो अब अपनी पहिचान और परलोक की पहिचान का वचन पूराहुआ॥

इति चतुर्थोऽध्यायः समाप्तः॥ ४॥

सूचना ॥

हे भाई ! जब तूने अपने स्वरूप, भगवत्, माया और परलोक के स्वरूप को इनचारों अध्याय करके पहिचाना और योंभी जाना कि इस जीव की भलाई सम्पूर्ण भगवत् के भजन और उसकी पहिचानविषे है तो अब इससे आगे भगवत् का भजन और जिस प्रकार भगवत् की आज्ञा माननी योग्य है तिसको श्रवण करना चाहिये सो यह युक्ति चार प्रकरणकरके प्राप्तहोतीहै सो प्रथमप्रकरण यह है कि आपको भगवत् के भजन और सत्कर्मों विषे स्थितकरे १ बहुरि दूसरा प्रकरण यह है कि अपने सर्वशरीर की क्रिया विचार की मर्याद अनुसार करे २ और तीसरा प्रकरण यह है कि अपने चित्त को मलीन स्वभावों से शुद्ध करे ३ और चौथा प्रकरण यह है कि अपने हृदय को भले स्वभावों के साथ सुन्दर बनावे सो चारों प्रकरण विस्तारपूर्वक भिन्न २ वर्णन होवेंगे और इन चारों प्रकरणही के बखान में यह पुस्तक पूर्ण होगी अब आगे समस्त शेष ग्रन्थ विषे इन चार प्रकरणही का बखान है ॥

प्रथम प्रकरण

पहिलासर्ग ॥

भगवत् की प्रतीति के वर्णन में ॥

तातें जान तू कि सर्वजीवों को इतनाही अधिकार है कि जैसे सब कोई कहता है कि भगवत् एक है सो इसके अर्थकोभी चित्तविषे समझे और इस पर ऐसी प्रतीति करे कि जिसमें भ्रम और संशय का किंचित् प्रवेशभी न होनेपावे और जब इस प्रकार चित्त में निश्चय करलिया और बाल के बराबर भी संशय न रहा तौ सद्धर्म के मूल को इतनाही प्रतीति रखना विशेष है पर विद्या पढ़ना और प्रश्नोत्तरका व्यवहार करना सब किसी का अधिकार नहींहै इसी कारण से सन्तों और महापुरुष ने हृदय की सचाई और प्रतीति की दृढ़ता का उपदेश कियाहै कि संसारीजीवों का इतनाही अधिकारहै बहुरि ऐसे परिडतभी बहुत होते हैं कि वचनों के भेद को समझते हैं और युक्ति करके इतरजीवों को समझा सके हैं और प्रश्नोत्तर करके लोगों के संशय को भी दूर करते हैं सो तिनको परिडत कहाजाता

है और ऐसे जो विद्यावान् हैं सो संसारीजीवों की प्रतीति की रक्षा करनेवाले हैं बहुरि पहिंचानने का जो भेदहै और पहिंचान का जो वास्तवस्वरूप है सो वह केवल परिडत वक्ता होने से और संसारीजीवों के बल प्रतीतिवालोंकी अवस्था से भिन्न है पर उसके मार्ग को पुरुषार्थ के द्वारा प्राप्त होसक्ता है और जबलग यह मनुष्य परमार्थ के मार्गविषे दृढ़ पुरुषार्थ और यत्न न करे तबलग वह पहिंचान की पूर्ण अवस्था को नहीं पहुंचसक्ता और इसका अभिमानी होना भी उसको अयोग्य है और ऐसे पुरुषको विद्या और शास्त्रों के व्यवहारों का पढ़ना फलदायक नहीं होता और उसको अधिक अवगुणही होता है जैसे कोई रोगी पुरुष होवे जो औषध खाकर कुपथ्य का त्याग न करे तब वह रोगी अधिक तो मृत्यु को पाता है अथवा उसका रोग बढ़जाता है क्योंकि पथ्य विना औषधभी रोग को बढ़ावता है ताते मैंने पहिंचानने के चारों अध्याय प्रथमही वर्णन किये हैं और इस वचन के यथार्थ भेद को वह पुरुष प्राप्त होता है जिसका चित्त माया के किसी पदार्थविषे आसक्त नहीं होता और अपनी सर्व आयुष् भगवत् की प्रीति विषे बितावता है सो ऐसे परमपद का पावना महादुर्लभ है और कठिन यत्न करके प्राप्त होताहै ताते मैं सर्व जीवोंके अधिकार का उपदेश वर्णन करताहूं सो सबजीव इस प्रतीति को अपने हृदय विषे दृढ़ करें तब यह प्रतीतिही उनके उत्तम भागों का बीज होवे (अथ प्रकट करना भगवत् की प्रतीति का) ताते जान तू कि तू उत्पन्न कियाहुआ है और तेरा उत्पन्न करने वाला भगवत् है और सर्व विश्वका उत्पन्नकर्ता भी वही है बहुरि वह एक है और उसकी नाईं और समर्थ कोई नहीं और वह किसी जैसा भी नहीं बहुरि वह अनादि है और अविनाशी है कि उसका अन्त कदाचित् नहीं आता और सर्व कालविषे सत्यस्वरूप है और कदाचित् असत्यभाव को प्राप्त नहीं होता बहुरि अपने आप करके स्थित है और सर्व पदार्थों की स्थिति उसके आश्रित है अर्थ यह कि उसको किसी पदार्थ की अधीनता नहीं और सर्व पदार्थ उसही के अधीन हैं बहुरि उसका स्वरूप सब से निर्लेपहै ताते उसको कारण और कार्य नहीं कहा जासक्ता और शरीर से रहित है और उसके स्वरूप के समान कोई आकार और दृष्टान्त नहीं सम्भवता कि वह रूप और रङ्ग से विलक्षण है इसी कारण से जो कुछ इस मनुष्य के संकल्प विषे आता है सो भगवत्

उससे परे है काहे से कि संकल्प और वुद्धिविषे आनेवाले पदार्थ सबही उस के उत्पन्न किये हुए हैं और उत्पन्नहुई वस्तु से उस का स्वरूप भिन्न है ताते संकल्प और बुद्धिविषे जिसका स्वरूप और चिह्न दृढ़ होता है सो वह भगवत् उन सबों का उत्पन्न करनेवाला है बहुरि मर्याद और बढ़ना घटना उस विषे नहीं पायाजाता क्योंकि यह सबही शरीर के स्वभाव हैं और वह शरीर से रहित है इसीकारण से उस महाराज को किसी स्थानविषे नहीं कहाजाता और किसी स्थान के ऊपरभी नहीं कहसक्के और उसका स्वरूप स्थानकी कुछ अपेक्षा ही नहीं रखता और स्थान का ग्रहण करनेवालाही नहीं इस करके कि देहादि-कों के साथ उसका सम्बन्ध कुछ नहीं ताते यह सर्व सृष्टि ईश्वरों के आश्रितहै और ईश्वर सब उस महाराज के अधीन हैं और महाराज को जो वैकुण्ठके ऊपर कहा है सो ऐसा नहीं कि जैसा कोई स्थूल किसी स्थूलपर होवे काहे से कि वह स्थूल नहीं ताते वैकुण्ठ उसको उठायेहुए नहींहै पर वैकुण्ठ व वैकुण्ठवासी सब देवते पार्षद उसकी शक्ति के आश्रित हैं बहुरि वह भगवत् जिस प्रकार सृष्टि की उत्पत्ति के आगे था तैसेही अब है और अन्तमें भी एकरस बनारहेगा काहे से कि उसके स्वरूप विषे तो परिणाम करके घटना बढ़ना कुछ प्रवेश नहीं कर सक्ता और जो घटजावे तब भगवत् कहना उसको अयोग्य है व जो वृद्धता को प्राप्तहोवे तब ऐसे कहिये कि मानो आगे न्यून था अब पूर्ण हुआ है सो यह बात भी अयोग्य है बहुरि उस महाराज का स्वरूप सब सृष्टि से निर्लेप है पर तौ भी इसलोकमें बुद्धि करके पहिंचानने योग्यहै और परलोक विषे देहादिक अभि-मान दूर हुए दर्शन उसका होताहै पर जिस प्रकार बुद्धि करके रूप रङ्गसे रहित उस महाराजको समझा जाताहै तैसेही उसलोक विषे उसका दर्शन भी रूपरङ्ग से विलक्षण है इस करके कि उसका दर्शन स्थूल दर्शनकी नाईं नहीं॥ (अथ शक्ति सामर्थ्य) बहुरि वह ऐसा सम्पूर्ण समर्थ है कि उस विषे दीनता और पराधीनता प्रवेश नहीं करसक्ती ताते जो कुछ उसने चाहाहै सो किया है और जो कुछ चाहेगा सो करेगा बहुरि चौदहलोक और वैकुण्ठादिक पुरियां उसीकी सामर्थ्य विषे स्थित हैं उसीकी आज्ञा के अधीन हैं ताते और किसी के हाथ कुछ नहीं जो कुछ आप करके समर्थ होवे कोई भी इसी कारण से और कोई भगवत् के समान और उसकी नाईं और उसका विरोधी नहीं (अथ ज्ञान) बहुरि वह भगवत्

अपने ज्ञान करके सर्व पदार्थों का ज्ञाता है और जो कुछ जानने योग्य है उसको आगेही जानता है बहुरि उसी के ज्ञान का अंश सर्व पदार्थों विषे भरपूर है ताते आकाश और पाताल विषे कोई पदार्थ उसके ज्ञान से बाहर नहीं इस करके कि सबही उसके उत्पन्न कियेहुये हैं और उसही कर स्थित हैं इसी कारण से पृथ्वी के अणु और वृक्षों की पाती और जीवों के श्वास और हृदयों के संकल्प इत्यादिक और सबही पदार्थ भगवत् के ज्ञान विषे हस्तामलकवत् प्रसिद्ध हैं जैसे हमारी दृष्टि विषे आकाश और धरती प्रसिद्ध भासती है (अथ इच्छा) बहुरि सब कुछ उसकी इच्छा और आज्ञा के अधीन है जैसे सूक्ष्म, स्थूल, लघु, दीर्घ, विधि, निषेध, पुण्य, पाप, सम्मुखता, विमुखता, लाभ, हानि, सुख, दुःख, रोग, आरोग्यता, धन और निर्धनता सो यह सबही पदार्थ महाराज की आज्ञा और इच्छा विना कदाचित् वर्तमान नहीं होते ताते जब सर्वसृष्टि अर्थात् भूत, प्रेत, मनुष्य, देवता आदिक सब ही जीव एकत्र होकर भगवत् की रचना को कुछ विपर्यय किया चाहैं तब वह महाराज की आज्ञा विना कोई कुछ कर नहीं सक्के और असमर्थ हैं ताते जो कुछ भगवत् किया चाहता है सोई होता है और जो कुछ नहीं चाहता वह नहीं होता और उसकी आज्ञा ऐसी प्रबल है कि उस को कोई अन्यथा नहीं करसक्का इसी कारण से भूत, भविष्यत, वर्तमान विषे जितने पदार्थ स्थित हैं सो सबही स्वभाव भगवत् की सत्ता और विद्या के साथ रचे हुये हैं (अथ श्रवण और दृष्टि) बहुरि वह सब कुछ सुनता, देखता और जानता है पर उसके सुनने विषे निकटता और दूरता नहीं है तैसे ही उसकी दृष्टि विषे तम और प्रकाश समान है अर्थ यह कि तम करके उसकी दृष्टि विषे आवरण नहीं होता ताते जब अँधेरी रात्रि अथवा दिन विषे पृथ्वीमें चींटी चले तब वह महाराज उसके चलने के शब्द को भी सुनता है पर उसका सुनना और देखना भी चिन्तन और विचार करके नहीं होता बहुरि उसका उत्पन्न करना आरम्भ और सामग्री कर नहीं होता (अथ भगवद्वचन) बहुरि उस की आज्ञा माननी सर्वजीवों को प्रमाण है क्योंकि जो कुछ उसने वचन किया है सो निस्संदेह सत्य है पर उसका वचन रसना, अधर, दांतों और कण्ठ करके नहीं होता जैसे जीवके मनविषे किसी वचन वार्त्ता का जो संकल्प फुरताहै तब उस फुरना के वचन विषे शब्द और अक्षर नहीं होता और वह शब्द अखण्ड

होताहै तैसेही उस महाराज का वचन इससे भी सूक्ष्म अधिक है ताते सन्तजनों के हृदय विषे जो आकाशवाणी हुई है सो सब ही भगवत् के वचन हैं और परावाणी से उत्पन्न हुये हैं बहुरि वही वचन सन्तजनों के मुख से जगत् विषे प्रकटे हैं और वह वचन महाराज के निर्मल स्वभाव हैं और उसके स्वभाव सब ही अनादि हैं और अविनाशी हैं जैसे भगवत् के स्वरूप की जानता का प्रतिबिम्ब जीवों की बुद्धि विषे भासता है और सर्व जीवों की रसना विषे उसकी स्तुति होती है पर जाननेवाली जो बुद्धि है सो उत्पन्न की हुई है और भगवत् का स्वरूप उत्पन्न कियाहुआ नहीं बहुरि जीव जो उसका रसनासे स्मरण करते हैं सो यह स्मरण उत्पन्न किया हुआ है और जिसको स्मरण करता है सो वह महाराज अनादि और अविनाशी है तैसेही उस महाराज के वचन जो उस ही के स्वतःस्वभाव हैं सो यह भी अनादि हैं पर जीवों के हृदय विषे गुप्त कररक्खे हैं और रसनाविषे उन वचनोंका उच्चारण होताहै और कागज़ की पोथियोंविषे लिखेजाते हैं सो वह हृदय की गुप्तता उत्पन्न की हुई है और लिखना पोथी का और उच्चारण करना रसना से सो यह सब उत्पन्न कियेहुये हैं पर हृदय में जो गुप्त उन वचनों का स्वरूपहै और पोथी में जो वस्तु लिखित है और रसना से उच्चारण हुये उन वचनों का जो अर्थ है सो उत्पत्ति से रहित है ऐसेही वेदों के अक्षर और कागज़ और शब्द उत्पन्न कियेहुये हैं और उन विषे जो भेदहैं सो उत्पत्ति से रहित हैं वह भगवत् के स्वभाव से है (अथ कारीगरी के वर्णन में) बहुरि जो कुछ यह रचना मन और इन्द्रियों करके भासतीहै सो सब भगवत् की कारीगरी है और इस कारीगरी को उसने सर्व अङ्गों करके पूर्ण ऐसा बनाया है कि उस विषे कुछ ऊनता नहीं और जब किसी के चित्त विषे ऐसा संकल्प फुरे कि अमुक पदार्थ ऐसे नहीं बनावना योग्य था ऐसा संकल्प उस मनुष्य की मूर्खता है इस करके कि जिस भेद के निमित्त भगवत् ने उसको बनाया है सो यह मनुष्य उस के भेद और गुण को नहीं समझता सो इसका दृष्टान्त यह है कि जैसे कोई अन्धा पुरुष किसी के गृह विषे जावे और उस गृह विषे सब सामग्री अपनी २ ठौरपर रक्खी हुई होवें पर वह अन्धा पुरुष यों न जाने कि यह वस्तु अपने उचित स्थानविषे धरी है ताते अजानता करके ठोकर खाकर गिरपड़े तब कहनेलगे कि यह वस्तु तुमने मार्ग विषे काहे को रखदी है पर ऐसे नहीं समझता

कि मैं आपही मार्ग से भूलाहूं तैसेहीं भगवत् ने जो कुछ बनाया है सो यथार्थ विधि संयुक्त उत्पन्न किया है और जिस प्रकार चाहिये था तैसा ही रचा है काहे से कि जब इससे कुछ विशेषकरना होसक्ता है और महाराज ने नहीं किया तब ऐसे जानाजावेगा कि भगवत् ने वह विशेषता अपनी कृपणता अथवा असमर्थता करके उत्पन्न नहीं करी सो भगवत् विषे ऐसा अनुमान करना महा अयोग्य है ताते प्रसिद्ध हुआ कि दुःख, रोग, निर्धनता, मूर्खता, पराधीनता आदिक जो कुछ भगवत् ने रचा है सो यथार्थ भेद ही के निमित्त बनाया है काहे से कि उस महाराज से अन्याय कदाचित् नहीं होता इस करके कि अधिकार बिना दण्ड देने का नाम अन्याय है सो वह महाराज किसी को अधिकार बिना दण्ड नहीं देता क्योंकि अन्याय तो वह करता हैं जो दूसरे की प्रजा और राज्य को प्रथम अपने अधीन करता है सो महाराज में यह वार्त्ता संभवतीही नहीं अर्थात् महाराज के संग किसी दूसरे का ईश्वर होना असंभव है इस करके कि जो कुछ सृष्टि आदि में थी और वर्तमान विषे है और भविष्यत् काल में होनेवाली है तिस सब का उत्पन्नकर्ता और सबका परमेश्वर एक महाराज ही है और वह किसीके अधीन नहीं और अवर के समान भी नहीं न कोई उसके समान है (अथ परलोक निरूपण) बहुरि दो प्रकारकी सृष्टि उसने रची है सो एक स्थूल है और दूसरी सूक्ष्म है और यह स्थूल सृष्टि जो देहादिक है सो जीव की मंज़िल बनाई है कि इस मंज़िल विषे आकर कार्य को सिद्धकरे बहुरि शरीर के आयुष् की मर्याद रक्खी है तिस उपरान्त शरीर का मृतकहोना बनाया है सो वह आयुर्बल मर्याद से अधिक अथवा अल्प नहीं होती ताते काल पाकर शरीर और जीव की भिन्नता होजाती है बहुरि परलोक विषे जीव को शरीर पहिरावते हैं और जैसी २ किसी की करतूति होती है सो प्रकट दिखावते हैं तब यह मनुष्य अपनी भलाई और बुराई को पहिचानता है बहुरि परलोक का जो कठिन मार्गहै तिसके ऊपर चलावते हैं और वह एक पुलहै सो वह सेतु बाल से विशेष सूक्ष्म और तरवार से अधिक तीक्ष्ण है पर जो पुरुष इस संसार विषे विचार की मर्याद विषे दृढ़ होताहै सो उस मार्ग को सुगमही लांघ जाताहै और जिसने विचार की मर्याद का त्याग किया है सो नरकों विषे गिरपड़ताहै ताते परलोक विषे उस सेतु पर खड़ा होकर सच्चों के सत्य की परीक्षा लेवेंगे और विमुखों को लज्जायमान करेंगे

बहुरि केते महापुरुष कष्ट विना ही परमसुख को प्राप्त होवेंगे और कितनों को अल्प दण्ड होवेगा केते अधिक दण्ड और ताड़ना को पावेंगे पर जिन पुरुषों को आचार्य और सन्तों की सहायता होगी वे दुःखों से मुक्त होवेंगे और तामसी जीव चिरकाल पर्यन्त नरकों विषे दुःखों को भोगेंगे तात्पर्य यह कि पाप और पुण्य की मर्याद के अनुसार सब किसी को दण्ड और सुख प्राप्त होवेगा (अथ आचार्य और सन्त स्वरूप वर्णन) सो भगवत् ने यह संकेत रचा है कि कर्म अनुसार सब जीव फल को भोगेंगे और इस संकेतविषे केते भाग्यहीन और केते भाग्यवान् बनाये हैं पर यह मनुष्य अपनी भाग्यहीनता और उत्तम भाग्यों को पहिंचान नहीं सक्ता इसकारण से आचार्यों और सन्तजनों को भेजा है और अपनी दया करके उनको इस प्रकार आज्ञाकरी है कि जीवों को शुभ और अशुभ मार्ग को लखावें और भाग्यवान् पुरुषों को शुभमार्ग विषे लगावें बहुरि शुभ और अशुभ मार्ग के प्रकट कराने का हेतु यह है कि महाराज के ऊपर किसी का निहोरा न रहे और ऐसे न कहें कि हम शुभमार्ग को न जानते थे ताते सन्तजनों ने अपनी दया करके जिस प्रकार भलाई और बुराई का मार्ग प्रसिद्ध किया है सो उस विषे संशय कुछ नहीं और इस प्रकार की प्रतीति सर्व मनुष्यों को रखना अवश्यही प्रमाण है ॥

दूसरा सर्ग ॥

पवित्रता के वर्णन में ॥

ताते जान तू कि भगवत ने इस प्रकार अपने वचनों विषे कहा है कि जैसे वैरागी पुरुष मुझको अतिप्रियतम हैं तैसेही पवित्र मनुष्य मुझको प्रियतम लगते हैं पर तू अपने मनविषे ऐसे न जानना कि यह विशेषता शरीर और वस्त्रों की पवित्रता की कही है काहेसे कि यह पवित्रता जलकरके होती है सो महास्थूल है ताते पवित्रता का अर्थ तुझको इस प्रकार समझना चाहिये है कि पवित्रता भी ४ प्रकार की है सो प्रथम जीवात्मा की पवित्रता है और इस पवित्रता का अर्थ यह है कि अनात्मा से भिन्न और जुदा होना और सर्वपदार्थों को विस्मरण करना और भगवत के स्वरूप विषे अपने चित्तकी वृत्तिको लीनकरना सो यह महापुरुषों की अवस्था है पर जबलग यह जीव अनात्मा से शुद्ध नहीं होता तब लग भगवत्के भजन विषे स्थित नहीं होसक्ता १ बहुरि दूसरी हृदयकी पवित्रता है

सो इस पवित्रता का अर्थ यह है कि मलिन स्वभावों से शुद्ध होना जैसे ईर्षा अभि-मान पाखण्ड तृष्णा वैरभाव इत्यादिक सबही बुरेस्वभावों का त्यागकरे और भले स्वभावों की सुन्दरता के साथ अपने हृदय को सुन्दर बनावे जैसे नम्रता, संयम, त्याग, धैर्य, भगवत्काभय, भगवत्की आशा, भगवत्की प्रीति इत्यादिक जो उत्तम स्वभाव हैं सो यह जिज्ञासुजनों की पवित्रता है २ बहुरि तीसरी पवित्रता यहहै कि सब इन्द्रियों को पापोंसे शुद्धकरना जैसे निन्दा झूठ अशुद्ध जीविका चोरी परनारी पर दृष्टिकरना सो ऐसे अपकर्मों का त्याग करना और सर्व इन्द्रियों को संयम और सन्तजनों की आज्ञा विषे रखना सो वह सात्त्विकी मनुष्यों की पवित्रता है ३ बहुरि चौथी पवित्रता यह है कि अपने वस्त्रों और शरीर को मलिनता से शुद्धकरना और अपवित्र होकर अपने इष्ट की पूजा और जाप विषे सावधान न होना ४ ताते प्रसिद्ध हुआ कि पवित्रता की चार अवस्था हैं पर सब किसी ने जो अपना सुख शरीर और वस्त्रों को पवित्रता की ओर किया है और सर्वदा इसही शुचिता के यत्न विषे लगते हैं सो यह पवित्रता महा नीच है इस करके कि प्रथम तो सुगम है और दूसरे इस विषे मनको भी प्रसन्नता होती है इसी कारण से सब कोई इसीको पवित्रता जानते हैं बहुरि हृदय की पवित्रता जो मलिन स्वभावोंसे कहीथी और पापकर्मों के त्याग विषे जो इन्द्रियों की पवित्रता है सो इस पवित्रताविषे मन को कुछ स्थूलसुख नहीं प्राप्त होता और इस सूक्ष्म पवित्रता को और लोग देखते भी नहीं काहे से कि यह हृदय की पवित्रता को भगवत् ही देखता है और इतर जीव नहीं जानसक्के इसीकारण से इस पवित्रता की ओर मनुष्यों की प्रीति कुछ नहीं होती और इस को महा कठिन जानते हैं पर यह जो स्थूल शरीर की पवित्रता है सो यद्यपि यह महा नीच है तो भी जो इस पवित्रता को युक्तिके साथ करिये तब यह भी भलीहोती है और जब इसही संशय के समुद्र विषे बह जावे तब उलटा पापी और अभिमानी होजाता है जैसे इन आचारी वैष्णवों का स्वभाव होजाताहै कि सर्वदा बासनों और वस्त्रों को धोते रहतेहैं और पवित्रजल को ढूंढ़ा करतेहैं और बासनों को भिन्न रखते हैं जिसमें किसीका हाथ न लगनेपावे सो यद्यपि इस पवित्रता के विषे भी और दोष कुछ नहीं पर यह भी तबहीं भली होतीहै जब यह शुचिता पदयुक्तिके साथ होवे सो प्रथम युक्ति यह है कि जेते शुभ करतूति करने योग्य

अवश्यही हैं तिनसे दूर न रहे जैसे विद्या का पढ़ना और सन्तजनों के वचनों को विचारना अथवा अपने शरीर और संबन्धियोंके निमित्त शुद्ध जीविका का उद्यम करना कि किसी से कुछ मांगनें की इच्छा न रहै और किसी का आशा न होवे ताते यह सबही करतूति लाभदायक है इसी कारण से चाहिये कि ऐसे कार्यों को त्यागकर पवित्रता की अधिकता विषे अपना समय न बितावे काहे सें कि विद्या और विचार और शुभजीविका का उद्यम करना पवित्रतासे अधिक उत्तम है ताते प्रीतिमान् और जिज्ञासु जो आगे हुए हैं सो शरीर की पवित्रता विषे आसक्त और लीन नहीं हुये हैं और शुद्ध जीविका, विद्या, विचार और भजन आदिक शुभ करतूतों विषे सावधान रहते थे और हृदय की शुद्धता के निमित्त अधिक पुरुषार्थ करते थे पर जिस पुरुष की ऐसी अवस्था होवे उसके ऊपर वैष्णव को दोषदृष्टि रखना प्रमाण नहीं और जो कोई आलस और भोगों के निमित्त पवित्रता का त्यागकरे तिसको वैष्णवोंके ऊपर दोष रखना अयोग्य है १ बहुरि दूसरी युक्ति यह है कि कपट और अभिमानसे अपने चित्तको बचाय रक्खे इस करके कि जिस पुरुष की वृत्ति स्थूल पवित्रता बिषे अधिक है वह स्वाभाविक ही अपनी शुचिता और बड़ाई को प्रड़ा दिखाताहै इसी कारण से अभिमानी होजाताहै बहुरि जब अकस्मात् उसका चरण पृथ्वीपर छूजाताहै अथवा किसी और के बासनसे जल लेताहै तब लोगोंकी निन्दासे भयवान् होताहै ताते ऐसे पुरुषको चाहिये कि लोगोंके देखतेहुये नंगेपाँव चले अथवा किसी और के बासनोंका पानीभी पीलियाकरे इसप्रकार अपनी परीक्षाके निमित्त बर्ते तो भला है तात्पर्य यह कि अपनी बड़ाई को प्रकट न करे और जब उसका मन ऐसी करतूति बिषे वर्तमान न होसके तब जाने कि मुझको कपट और दम्भने घेरलियाहै तब उसको अवश्य ही उचितहै कि उस पवित्रताका त्यागकरे और लोगोंकी नाईं सहज बर्ते क्योंकि स्थूल पवित्रता भी जगत् की कीर्ति है और दम्भ करके इसकी बुद्धि का नाश होजाताहै ताते दम्भ और कपट को दूर करने के निमित्त स्थूल पवित्रता का त्याग करनाही विशेषहै २ बहुरि तीसरी युक्ति यह है कि सर्वदा अधिक संशय बिषे आसक्तभी न होजावे ताते चाहिये कि जिस प्रकार का संयोग आबने तिसी भांति बर्तलेवे काहेसे कि अपनी वृत्तिको संशय बिषे दृढ़करना अयोग्यहै और आगे जेते सन्तजन हुयेहैं उन्होंने भी संशय और ग्लानि बिषे आपको बध्यमान

नहीं किया और लोगों की नाईं समान आचार विषे विचरे हैं ताते जो महापुरुषों के आचार का त्यागकरे और उनको भ्रष्टजाने तब जानिये कि वह पुरुष यह पवित्रता अपने मन की प्रसन्नता के निमित्त करता है ताते निस्सन्देह ऐसी पवित्रता का त्यागकरना प्रमाण है ३ बहुरि चौथी युक्ति यह है कि जिस पवित्रता विषे किसी मनुष्य को दुःख पहुँचे तब उस कर्मको अवश्यमेव त्यागदेवे इस करके कि जीवों का दुखावना महापाप है और स्थूलपवित्रता के त्यागने में कुछ पाप नहीं होता जैसे कोई मित्र इसको मिलनेलगे और यह पुरुष उसके शरीर और अङ्गों के पसीने करके सकुचारहे तब यह भी अयोग्यहै क्योंकि उस मित्र को भाव संयुक्त मिलना और उसका आदरकरना सहस्र पवित्रता से विशेष है ऐसेही जब कोई पुरुष इसके आसन के ऊपर चरणराखे अथवा इसके वासन से जल लेवे तब चाहिये कि उसको बरजे नहीं और ग्लानिभी न लावे पर बहुत पुरुष तो शरीर की पवित्रता करनेवाले ऐसे सूक्ष्म भेद को नहीं समझते ताते जब कोई मनुष्य अचानकही उनके आसन अथवा वासन को छूलेवे तब उसका निरादर करते हैं और कठोर वचन कहकर उसका हृदय दुखावते हैं सो ऐसी क्रिया और पवित्रता सबही अयोग्य है काहे से कि ऐसी क्रिया से अभिमान प्रकट होता है और अभिमान करके ऐसे उन्मत्त होजातेहैं कि मानो इन्हों ने लोगों पर बड़ा उपकार किया है और जब किसीका निरादर करते हैं अथवा किसीसे सकुचरहते हैं तब इसको भला कर्म जानते हैं और अपनी पवित्रता को प्रकट दिखावते हैं और बड़ाई करते हैं और औरों को भ्रष्ट जानकर ग्लानि करते हैं सो मानो महामूढ़ हैं और उनका हृदय क्रोध और अभिमान करके महाअपवित्र है सो ऐसे कर्मों करके उनके हृदय की अपवित्रता प्रकट होती है और इस अपवित्रतासे अपने हृदय को शुद्ध करना अवश्यही प्रमाण है काहे से कि अपलक्षण की अपवित्रता करके बुद्धिकाही नाश होजाता है ४ बहुरि पांचवीं युक्ति यह है कि जैसे शरीर को शुद्ध रखता है तैसेही आहार और व्यवहार को भी शुद्ध करे और वचनभी शुद्ध बोले इस करके कि वचन और आहार की शुद्धता वस्त्रों और वासनों की शुद्धता से अधिक विशेष है और जो पुरुष आहारादिकों की पवित्रता का तो त्यागकरे और शरीरही की पवित्रता विषे डूबजावे तब जानिये कि वह पुरुष शरीर की पवित्रता भी दम्भ और कपट

के निमित्त करता है जैसे कोई पुरुष भूख विना अधिक आहारकरे और हाथ पांव धोये विना स्थित भोजनविषे होवे नहीं सो वह इतनाभी नहीं समझता कि जब वह आहार अपवित्र है तो विशेष भूख विना क्यों खाताहूं और जो पवित्र है तो मैं उसको भोजन करके हाथ पांव क्यों धोताहूं तात्पर्य यह कि भोजन की शुद्धता अवश्यही उचित है और भोजन अशुद्ध हुआ तो हाथ पांव धोने की पवित्रता भोजन विषे गुणदायक न होगी इसी प्रकार जब लोगों के वस्त्र बिछौना पर बैठने में और उनके साथ खानपान विषे भेदरखता है तब उनके बनायेहुये भोजन को क्यों खालेता है और उनके घर का अन्न आदिक क्यों ग्रहण करता है इस विषे भेद और विचार क्यों नहीं रखता क्योंकि आहार की शुद्धि करनी अधिक विशेष है ताते आहार का संयम न करना और शरीर की पवित्रता विषे आसक्त रहना यह सच्चेपुरुषों का लक्षण नहीं है ५ बहुरि छठी युक्ति यह है कि पवित्रता की क्रियाविषे ऐसा आसक्त न होवे कि जिससे और किसीविषे विशेष कार्य की हानि होजावे जैसे किसी के साथ कुछ बैन कियाहोवे और शरीर की पवित्रताविषे लगेरहने से उसवचन के पूराकरने और उसका कार्य करने का सावकाश न पाकर उस पुरुष को आशा विषे चिरकालपर्यन्त रक्खे और तिसकरके उसको विशेष दुःख पहुँचे सो यह सब ही निन्द्यहैं और जीविका की उत्पत्ति और वचन अनुकूल दूसरे का कार्य कर देना इत्यादिक कर्म अवश्यमेव करणीय हैं बहुरि जब किसी भजन के स्थान विषे अपना आसन बहुत लम्बाकरके बिछाले कि जिसमें किसी दूसरे भजनी का वस्त्र छू न जावे सो यह भी अयोग्य है काहेसे कि प्रथम तो अपनी मर्याद से अधिक स्थान को रोकना ही भला नहीं दूसरे इसकरके और मनुष्यों को संकोच होताहै और प्रीतिमानों की निकटता से ग्लानि करनी भी निन्द्य है तातें अधिक पवित्रता की आसक्ति विषे इसी प्रकार अनेक विघ्न हैं और जो मनुष्य मूर्ख होते हैं सो इन पापों को नहीं समझते और अजानता करके प्रीतिमानों का निरादर करके पापी होते हैं और यह उनकी बाह्य पवित्रता इन पापों और विघ्नों का प्रायश्चित्त नहीं होसक्ती ६ सो जब इस प्रकार तूने भलीभांति समझा कि स्थूल पवित्रता भिन्न है और सूक्ष्म पवित्रता तीनप्रकार की जो हम ने ऊपर वर्णन करी सो भिन्न है अर्थात् एक इन्द्रियों को अशुभकर्मों से पवित्र रखना

दूसरे मलिन स्वभावों से हृदय को शुद्ध रखना तीसरे सर्व अनात्मा को त्यागकर अपने आपको शुद्ध करना तब जिज्ञासुजनों को इस प्रकार चाहिये है कि अधिक पुरुषार्थ सूक्ष्म पवित्रता विषेही करे और स्थूल पवित्रता विषे कार्यमात्र वर्त लेवे॥

तीसरा सर्ग॥

दानदेने की युक्ति के वर्णन में॥

तातें जान तू कि जैसे भजन करने का एक आकार है और एक उसका जीव है सो हृदय की एकाग्रता भजन का जीवहै और सर्व इन्द्रियों को रोक बैठना यह भजन का आकार है पर जैसे जीव बिना आकार मृतक होताहै तैसे ही एकाग्रता बिना भजन भी व्यर्थ है बहुरि इसी प्रकार दान देने का भी एक जीव है और एक उसका आकार है सो जबलग ऐसे भेद को न समझे तबलग वह दान देना भी जीव बिना मृतक शरीर की नाईं होता है तातें दान देने के तात्पर्य तीन हैं प्रथम यह है कि सब कोई ऐसे मानताहै कि मेरी प्रीति भगवत् के साथ है और भगवत् के साथ प्रीति की परीक्षा यह है कि भगवत् बिना और किसी पदार्थ में अधिक प्रीति न होवे सो सबही मनुष्य इसी प्रकार जानते हैं कि हमको सर्व पदार्थों से अधिक भगवतही प्रियतम है तातें इसकी परीक्षा करनी सब किसी को अवश्यमेव प्रमाण है क्योंकि परीक्षा बिना अभिमान करना व्यर्थ होताहै सो परीक्षा यह है कि अपने सर्वप्रियतम पदार्थ भगवत् पर वारि देवे सो धन इस जीव का अधिक प्रियतम है तातें परीक्षा के निमित्त धन का देना प्रमाण कहा है कि इस करके अपने हृदयविषे भगवत् की प्रीति को पहिंचाने पर जिन्होंने इस भेद को समझाहै सो वह मनुष्य भी तीनप्रकार के होते हैं प्रथम पुरुष तो ऐसे सच्चे हैं कि उन्होंने अपने सर्वस्व को भगवत् के ऊपर वाराहै काहेसे कि वह दशांश के दान देने को भी कृपणता जानते हैं तातें उन्होंने सर्व त्याग कियाहै जैसे एक समय विषे अबूबक्र सदीक नामी सन्त अपना सर्वस्वधन महापुरुष के पास ले आये थे तब उन्होंने पूछा कि अपने संबन्धियों के निमित्त तुम क्या छोड़ आये हो? तब उन्होंने कहा कि महाराज सर्व जीवों का प्रतिपालक है और मुझसे अधिक उनको प्रतिपाल करेगा बहुरि जब उमर नामी दूसरे सन्त महापुरुष के पास आये तब उन्होंने भी कुछ धन महापुरुष के आगे आ रक्खा तब महापुरुष ने पूछा कि तुम अपने संबन्धियों के निमित्त क्या रख आये

हो? तब उन्होंने कहा कि जेता कुछ यहां ले आयाहूं तेताही सम्बन्धियों को दे आयाहूं तब महापुरुष ने कहा कि जैसे तुम्हारे और अबूचक्र के धन ले आवने विषे भेद हुआहै तैसेही तुम्हारी अवस्था विषे भी भेद है १ बहुरि दूसरे पुरुष ऐसे हैं कि उनमें एकबारही सर्वस्व देने की सामर्थ्य भी नहीं ताते धन का संग्रह रखते हैं पर तौ भी अर्थी जीवों को उदारता सहित देते हैं जैसे अपने सम्बन्धियों को प्रतिपाल करते हैं तैसेही अभ्यागतों को भी प्रीति संयुक्त देते हैं बहुरि तीसरे पुरुष ऐसे हैं कि उनमें ऐसी उदारता की भी सामर्थ्य नहीं ताते भगवत् के निमित्त दशांश देते हैं पर भगवत् की आज्ञा जानकर दशांश के देने विषे प्रसन्न होते हैं और जिनको देते हैं तिनके ऊपर अपना उपकार नहीं जानते काहेसे कि उस दान देने विषे अपनीही भलाई समझतेहैं सो यह कनिष्ठ अवस्था है पर जिस मनुष्य को दशांश देना भी कठिन होवे भगवत् के निमित्त तब जानिये कि उसको भगवत् की प्रीति ही कुछ नहीं इसकरके कि यद्यपि प्रसन्नतासहित दशांश भी देवे और उससे अधिक देने विषे समर्थ न होवे तौ भी प्रीतिमानों की सभा विषे उसको कृपण कहा जाताहै १ बहुरि दान देनेका दूसरा तात्पर्य यह है कि दान करके कृपणतारूपी मलिनता दूर होती है और जीवका हृदय शुद्ध होताहै काहे से कि भगवत्के निकट पहुँचने विषे यह कृपणताही बड़ा पटलहै अथवा बाह्यमलिनता जैसे शरीर को अपवित्र करती है तैसेही कृपणतारूपी अपवित्रता से हृदय मलिन और अपवित्र होजाताहै और जैसे बाह्यमलिनता से भजन पूजा की योग्यता नहीं रहती तैसेही कृपणता से हृदय में भगवत् की निकटता की योग्यता नहीं रहती बहुरि जिस प्रकार जलके धोये विना शरीर मलिनता से पवित्र नहीं होसक्ता तैसेही कृपणतारूपी अपवित्रता से दान दिये विना हृदय शुद्ध नहीं होता पर सन्त महात्माओं को दशांश आदिक दान अङ्गीकार अयोग्य है काहे से कि दशांश धन की रक्षाके निमित्त होताहै ताते महामलिन है २ बहुरि तीसरा तात्पर्य यह है कि दान देने करके भगवत्के उपकार का शुक्र होताहै इस करके कि यह धन भी दोनों लोक में सुख का हेतु है ताते जैसे व्रत और भजन करना शरीर के सुख का शुक्र है तैसेही दान देना धन का शुक्र है इसी कारण से प्रीतिमान् पुरुष जब आपको सुखी देखता है और किसी मनुष्य को निर्धनता करके दुःखी देखता है तब इस

प्रकार चित्त विषे विचार करताहै कि यह भी महाराज का जीव है और मैं भी उसी महाराज का जीव हूं ताते सर्वप्रकार महाराज का शुक्र है कि मुझको तो धनादिक करके सुखेन कियाहै और इसको दीन और अर्थी बनाया है ताते सर्वप्रकार दया करनी इसके साथ विशेष है क्योंकि यह भी मेरी परीक्षा मत होवे और मैं इस परीक्षा से अचेत होजाऊँ तब महाराज उसको मेरी नाई सुखेन करें और मुझ को उसके अधीन करदेवें तब मेरा क्या बल चले ताते सब किसी को उचित है कि दान के भेदों को समझे तब उसका दान देना व्यर्थ न होवे ३ बहुरि जब किसीको दान देवे तब उस विषे इतनी युक्तियां हैं प्रथम यह कि दशांश देने में विलम्ब न करे तब इस करके तीन लाभ होते हैं प्रथम यह कि उदारता की रुचि प्रकट होती है और जब सम्पूर्ण वर्ष पर्यन्त व्यतीत होजावे तब उसको दशांश देना अवश्यमेव प्रमाण है और जब न देवे तब पापी होता है सो पाप के भय करके दान देने विषे प्रीति का लक्षण कुछ नहीं भासता और जो टहलुवा प्रीति करके स्वामी की टहल न करे और भय करके कुछ सेवा करे तब वह टहलुवा बुरा कहावता है १ बहुरि दूसरा लाभ यह है कि शीघ्र दशांश देने में अर्थियों के चित्त विषे प्रसन्नता प्राप्त होती है और दानी को अशीष देते हैं तब अचानक ही इसके चित्त को भी प्रसन्नता पहुँचती है २ बहुरि तीसरा लाभ यह कि विघ्नों से बेशोच होजावेगा और जब दशांश देने में ढील करता है तब आधि व्याधि आदिक विघ्न आन उपजते हैं और जब शीघ्र देता है तब सर्वदुःखों से निर्भय होताहै अथवा जब कोई अचानकही संकट आन उपजे और यह पुरुष संकट विषे दान देने को समर्थही न होसके तौ भी पुण्यकर्म से अप्राप्त रहजाता है ताते सर्वप्रकार शीघ्रही दान देना भला है काहे से कि जब इस मनुष्य के हृदय विषे दान देनेकी रुचि उपजै तब उसको भगवत् की दया जाने और अपने चित्तविषे इस प्रकार भयवान् होवे कि मत इस धर्म की रुचिको बुरा संकल्प गिरादेवे ताते इस धर्म की रुचि को शीघ्रही पूर्ण किया चाहिये १ बहुरि दूसरी युक्ति यह है कि दानको गुह्यही देवे और प्रसिद्ध न करे तब दम्भ और कपट से दूरहोवे और इसका दान देना निष्कामहोवे और सन्तजनों के वचनों विषे भी आया है कि गुह्यदान करके भगवत् की दया को पावता है और जब परलोक विषे अधिक तपन होवेगी तब गुह्यदान करनेवाले पुरुष भगवत् की छाया तले रहेंगे और

जब कोई दान देकर आपही वर्णन करने लगता है तब वह दानही व्यर्थ हो जाता है इसी कारण से जिज्ञासु जनों ने गुह्यदान देने निमित्त बहुत यत्न किये हैं ताते जब किसी नेत्रहीन को देते थे तब मुख से बोलतेही न थे जिसमें वह पहिंचानेही नहीं अथवा जब निर्धन पुरुष को निद्रा विषे सोयाहुआ देखते थे तब जो कुछ देना होता था उसके वस्त्र में बांध जाते थे अथवा जब किसी अर्थी को आवता देखते थे तब दानकी वस्तु को मार्ग विषे डालदेते थे अथवा किसी और के हाथ से देते थे सो इसका तात्पर्य यह है कि ऐसा गुह्यदान दीजिये जो देनेवाले को अर्थी भी न पहिंचाने और गुह्यदान देनेका प्रयोजन यह है कि प्रकट देने विषे दम्भ होताहै सो कृपणता और दम्भ दोनों को इकट्ठा ही तोड़ते थे काहे से कि यह दोनों स्वभाव दुःखदायक हैं पर कृपणता बिच्छू की नाईं है और दम्भ महाअजगर है ताते दोनों को दूर करना विशेष है कि मलिन स्वभावों का दुःख परलोक विषे प्रकट होवेगा २ बहुरि तीसरी युक्ति यह है कि जिस पुरुष ने दम्भ को अपने चित्तसे दूर किया है तब उसको प्रत्यक्ष देनाही भला है काहे से कि उसकी उदारता को देखकर इतर जीवों को भी रुचि उपजती है पर यह अवस्था उस पुरुष की होती है जिसको निन्दा और स्तुति समान होवे और भगवत् को अन्तर्यामी जाने ताते लोगों की ओर दृष्टि न करे ३ बहुरि चौथी युक्ति यहहै कि जब यह पुरुष दान देनेके समय अर्थी को कठोर वचन बोलताहै अथवा क्रूरदृष्टि देखे तब इस करके भी दान देना निष्फल होताहै और ऐसी मूर्खता दो कारण करके उपजती है सो प्रथम यह है कि जिसको धन का देना कठिन होताहै तब वह दान देने के समय क्रोधवान् और अप्रसन्न होताहै ताते दुर्वचन कहने लगता है सो यह भी बड़ी मूर्खता है काहे से कि जिसको एक दाम देकर सहस्र दाम लेने की आशा होवे और देती बार सकुच जावे तब भी मूर्खता कहावती है तैसेही दान देने करके नरकों से इस जीव की रक्षा होती है और बड़े सुखों को प्राप्त होताहै सो जिसकी प्रतीति इस वचन पर दृढ़होवे तब उसको दान देना क्योंकर कठिन होगा और दूसरा कारण यह है कि मूर्खता करके आपको अर्थी से विशेष मानताहै कि, यह निर्धन और मैं धनवान् हूं और ऐसे नहीं जानता कि परलोक विषे निर्धन पुरुष सुख को प्राप्त होवेंगे और धनवान् दण्ड को पावेंगे काहेसे कि इसलोक विषे निर्धन पुरुष दुःख को

भोगते हैं और धनवान् सुखों को भोगतेहैं बहुरि धनवान् अभिमानी होते हैं और निर्धनों का हृदय दीन होताहै ताते भगवत् को दीन मनुष्यही प्रियतम लगते हैं और जब विचार करके देखिये तब इसलोक विषे भी धनवान् बहुत दुःखी हैं कि नाना प्रकार के व्यवहारों की विशेषता विषे चिन्तावान् रहते हैं और खान पान इतनाही करते हैं जितनी कुछ शरीर की मर्याद होतीहै बहुरि धनवानों पर यहभी दण्ड रक्खाहै कि अर्थी जीवों को यथाशक्ति दान देवें और जो न देवें तो पापी होवेंगे ताते प्रसिद्धहुआ कि धनवानों को इसलोक विषे भगवत् ने निर्धनों का टहलुआ बनाया है और परलोक विषे तो धनवानों से निर्धन पुरुष निस्सन्देह अधिक सुखी होवेंगे ताते चाहिये कि दान देने विषे सकुच और कठोरता न करे और आपको अर्थियों से विशेष भी न जाने ४ बहुरि पांचवीं युक्ति यहहै कि जिसको कुछ दान देवे तब उसके ऊपर अपना उपकार न राखे काहेसे कि उसके ऊपर तबहीं उपकार रखता है जब ऐसे जानता है कि मैंने उसको बड़ा पदार्थ दियाहै और यह मेरे अधीन है सो ऐसा जानना भी बड़ी मूर्खता है इस करके कि जब इस पुरुष के चित्तविषे ऐसा अभिमान दृढ़ होताहै तब इस प्रकार चाहताहै कि यह अर्थी पुरुष मेरी टहल विषे सावधान होवे अथवा मेरा सन्मान करके प्रथमही नमस्कार करे बहुरि जब वह अर्थी पुरुष ऐसे नहीं करता तब दान देनेवाला चित्त विषे रोष करताहै और इस प्रकार कहने लगता है कि मैंने इसके साथ ऐसा उपकार किया था पर इसने मेरा सन्मानही न किया सो यह सब मूर्खता के लक्षण हैं काहेसे कि जब भली प्रकार विचार करके देखिये तो जानाजाता है कि अर्थी पुरुष ने इसके ऊपर उपकार किया है कि दान को अङ्गीकार करके इसको नरकोंकी अग्नि से बचायाहै और दान देनेवाले पुरुष के हृदय से कृपणता के मैल को छुड़ाया है जैसे कोई नाऊ किसी पुरुष का विकारी रुधिर निकाले और लेवे कुछ नहीं तब वह पुरुष निस्सन्देह उस नाऊ का उपकार मानता है काहेसे कि इसके दुःखदायक रुधिर को उसने दूर किया है तैसेही कृपणतारूपी मैल भी मनुष्य के हृदय को दुःख देनेवाला है सो जिस अर्थी के सम्बन्ध करके दूरहोवे तिसका उपकार जानना चाहिये बहुरि सन्तजनों के वचनों विषे भी आया है कि जब कोई पुरुष किसी को दान देता है तब वह दान प्रथम भगवत के हाथ में जा पहुँचताहै पीछे अर्थी को प्राप्त होता है अर्थ यह कि

उस दानका फल भगवतही देताहै सो जब ऐसेहै तब चाहिये कि अर्थी पर उपकार न राखे और अपने ऊपर उसका उपकार जाने और जब भली प्रकार दान के भेद का विचार करे तब जानिये कि अर्थी के ऊपर उपकार रखना मूर्खता है ताते जो आगे जिज्ञासुजन हुये हैं सो उन्होंने अर्थियों और अभ्यागतों का सन्मान किया है और अधीनता सहित उसके आगे स्थित होकर कहने लगते थे कि तुम इस दानको अङ्गीकार करो अथवा किसी ने ऐसे भी किया है कि अपने हाथों बिषे कुछ सोना चांदी रखकर उनके आगे किया है इस करके कि वह आपही उठाय लेवें और हमारे हाथ से उनका हाथ ऊंचा रहै इसी कारण से अर्थियों से अशीष की भी चाहना नहीं करते थे इस करके कि अशीष की चाह करके भी इसका उपकार सिद्ध होताहै और विचार करके देखिये तो उपकार करनेवाला अर्थी है जिसने इस तेरे दान को अङ्गीकार किया ५ बहुरि छठी युक्ति यह है कि दान का पदार्थ उत्तम और निर्दोष होवे काहेसे कि पाप सहित उत्पन्न किये पदार्थ को भगवत् के अर्थ देना विशेष नहीं इस करके कि भगवत् भी शुद्ध स्वरूप है ताते शुद्ध पदार्थ का ही देना विशेष है और अशुद्ध को भगवत प्रमाण नहीं करता इसीपर महाराज ने भी कहाहै कि जिस पदार्थ को तुम प्रथमही मलिन चित्त साथ उत्पन्न करते हो तब उस मलिन वस्तु को मेरे अर्थ क्यों लगाते हो और जैसे कोई प्रियतम किसी के गृह बिषे आवे तब उसको नीच वस्तु देनी हँसी होती है तैसेही नीच और मलिन वस्तु भगवत् के अर्थ देनी और उत्तम वस्तु अपने अर्थ लगावनी यह भी महा अयोग्य है काहेसे कि इस बिषे श्रद्धा का चिह्न नहीं भासता और ग्लानि सहित देना पाया जाता है सो जिस दानबिषे अधिक श्रद्धा और प्रीति न होवे तब वह दान व्यर्थ होता है इसीपर महापुरुष ने भी कहाहै कि पाप रहित एक दान श्रद्धा सहित देना विशेष है और उसका फल सहस्र दान देने से भी विशेष होताहै ६ (अथ प्रकट करना दान के अधिकारियों का) ताते जान तू कि दानदेना भी अधिकारी प्रति भला है सो उत्तम अधिकारी तो उसको कहते हैं कि जिसको परलोक के मार्ग की चितवनी होवे और माया के व्यवहारों का उसने त्यागकिया होवे तब ऐसे पुरुष को देना अत्यन्त फलदायक होता है ताते वैरागी पुरुषों की आहार और वस्त्र करके सेवा करनी महा विशेष है इस करके कि जब उनके शरीर बिषे

कुछ बल होताहै तब भजनविषे दृढ़ होते हैं तब सेवा करनेवाला पुरुष भी उनके भजन का भागी होता है इसीपर एक वार्त्ता है कि एक पुरुष उदार धनवान् था और सर्वदा सात्त्विकी मनुष्यों की सेवा बिषे सावधान रहता था और इस प्रकार कहता था कि यह जिज्ञासुजन सर्वदा भगवत् के भजन विषे लीन हैं और जब इनको किसी वस्तु की अपेक्षा होती है तब इनका चित्त विक्षेपता को प्राप्त होताहै सो जब मैं व्यवहार का त्यागकरके अपने चित्त को एकत्र करूं तब इससे भी मुझको इनकी सेवा अधिक प्रियतम लगती है काहेसे कि मैं तो अकेलाही व्यवहार की विक्षेपता विषे रहूंगा और जब इनकी सेवा करूंगा तब तो यह अनेक पुरुष भजन विषे एकत्र रहेंगे ताते अनेक हृदयों का एकत्र होना एक हृदय की एकत्रता से मैं विशेष जानता हूं सो यह वचन एक सन्त ने सुना तब कहने लगा कि यह वचन किसी गम्भीर चित्तवाले और महापुरुष का है बहुरि अकस्मात् वह उदारपुरुष निर्धन होगया इसकरके कि अभ्यागतलोग उससे जो कुछ लेते थे तब वह सबोंको सन्तुष्ट करता था और वस्तु देकर मोल कुछ न लेताथा सो जब उसकी निर्धनता एक सन्त ने सुनी तब उन्होंने उनके पास कुछ धन भेजा और कहला भेजा कि धनको अङ्गीकार करके फिर भी व्यवहार करो काहेसे कि तुमसे पुरुषको व्यवहार करने में भी कुछ अवगुण नहीं १ बहुरि दूसरे अधिकारी वे हैं कि जिनको विद्या पढ़ने की इच्छाहोवे तब उनको भी दान देना विशेष है और दान देनेवाला पुरुष भी उस विद्या का भागी होताहै, २ बहुरि तीसरे अधिकारी वे हैं कि जिन्होंने अपनी निर्धनताई को गुप्त कियाहै और मांगने से रहितहुये हैं सो ऐसे पुरुषोंकोभी दानदेना महाउत्तमहै ३ बहुरि चौथे अधिकारी वे हैं कि जिनका कुटम्ब बड़ा होवे और धनसे हीन होवें अथवा रोगी होवें सो तिनको भी देना अति विशेष है इस करके कि जितना किसीको अर्थ अधिक होताहै तितनाही उसको देनेका फल भी अधिक होताहै ४ बहुरि पांचवें अधिकारी वे हैं कि कोई इसका संबन्धी निर्धन होवे तब उसको देनाभी भलाहै काहे से कि उसको देने करके संबन्धीसे भी सम्मुख होता है और पुण्य को भी पाता है अथवा जो कोई धर्म का मित्रहोवे तब उसको देने करके अधिक फलको प्राप्तहोताहै पर यह जो मैंने अधिक उसके पांच लक्षण कहे हैं सो जिस बिषे यह पांचों लक्षण सभी पायेजावें अथवा कुछ अल्प होवें तब ऐसे

अधिकारी को दान देना विशेषहै और उनकी अशीषों करके इसको भी लाभ प्राप्त होताहै ताते चाहिये कि दानदेने के निमित्त बड़े महन्तों और कुलवन्तों को न ढूंढ़ै और अधिकारीही को देवे ५ (अथ प्रकट करना युक्ति दानलेने की) ताते जान तू कि दान लेनेवाले को भी पांच युक्ति चाहिये हैं सो प्रथम युक्ति यहहै कि यह पुरुष अपने चित्त बिषे इस प्रकार बिचारकरे कि जैसे भगवत् ने मनुष्यों को धनके अधीन बनाया है इसीकारण से बहुते मनुष्यों को धनभी दियाहै पर तौभी जिनके ऊपर भगवत् की दया है तिनको माया के व्यवहार की विक्षेपता से बचा लियाहै और धनके संग्रह का बोझा और उसकी रक्षा का क्लेश धनवानों के ऊपर डाला है बहुरि उनको आज्ञा करी है कि मेरे प्रियतम धनसे जो रहितहैं तिनकी सेवाकरो तब वह माया के व्यवहारों से भी मुक्त होवें और सर्वदा मेरे ही भजन बिषे स्थित होवें ताते चाहिये कि जब यह पुरुष किसी से कुछ दान लेवे तब हृदय बिषे यही मंशा रक्खे कि मैं शरीरके आहारमात्र कुछ अङ्गीकार करके भजन बिषे सावधान होऊं और इस उपकार को भी जाने कि भगवत् ने धनवानों को मेरा टहलुवा बनायाहै सो इस निमित्त जो मुझको भजनमें विक्षेपता न होवे और इसका दृष्टान्त यहहै कि जिसके ऊपर किसी राजा की दया होती है तब उसको अपनी टहल के निमित्त अपने निकट रखता है और अवर सभी प्रजा राजा की सेवा के अधिकारी नहीं ताते उनको अपने निकटवर्त्तियों के अधीन करदेता है तब वह प्रजा उनके आगेही दण्ड भरती है ताते वह निकटवर्त्ती आराम के साथ सुख को भोगताहै और राजा की सेवा बिषे सावधान रहता है तैसेही भगवत् ने भी सर्व मनुष्यों को अपने भजन के निमित्त उत्पन्न किया है ताते चाहिये कि जब असंग्रही पुरुष किसी से कुछ लेवे तब इसी मंशा साथ लेवे तो भलाहै इसीपर महापुरुष ने भी कहा है कि दान देनेवाले से लेनेवाला विशेष तो नहीं होता पर जब वह संयम संयुक्त लेकर भजन बिषे स्थित होवे तो भला है और धनवानों को उनकी सेवाकरनी प्रमाण है ताते प्रसिद्ध हुआ कि धनवान् और निर्धन पुरुष सबही भगवत् के भजन और उसकी आज्ञा मानने के निमित्त उत्पन्न हुये हैं १ बहुरि दूसरी युक्ति यह है कि जब किसी से कुछलेवे तब उस दानको भगवतही का उपकारजाने और देनेवाले को महाराज की प्रेरणा के अधीन समझे काहे से कि जब भगवत ने प्रथमही उसके हृदय बिषे

प्रेरणाकरी है तब उसने मुझको दान दिया है सो भगवत् की प्रेरणा श्रद्धा है इस करके कि जब उस बिषे श्रद्धा और निश्चय की दृढ़ता न होती तब वह एक दाम भी न देता ताते सर्व प्रकार भगवत् ही का शुक्र है कि हृदयों का प्रेरक वही है बहुरि जब ऐसे जाना कि देनेवाला भगवत् है पर तौभी दान देनेवाले का संबन्ध बीच में रक्खा है कि उसके हाथों करके पहुँचता है ताते उसकी भलाई को भी जानना चाहिये इसकरके कि उसको भी दया का स्थान बनाया है इसहेतु से वहभी भगवत् का प्रियतम है और उसका भला चिंतवना प्रमाण है और यह भी चाहिये है कि जब वह इसको थोड़ी वस्तु देवे तब उसको अल्प न जाने सो यह भी शुक्र होताहै जैसे देनेवाले को इस प्रकार चाहिये है जितना कुछ किसी को देवे उसको किञ्चिन्मात्रही जाने तैसेही लेनेवाले को भी उचित है कि किञ्चिन्मात्रही को अधिक करके देखे २ बहुरि तीसरी युक्ति यहहै कि अशुद्ध धन को अङ्गीकार न करे अर्थात् पापकर्मियों का दान न लेवे ३ बहुरि चौथी युक्ति यह है कि अपने कार्यमात्र से अधिक न लेवे काहेसे कि कार्यमात्र से अधिक लेना अयोग्य है और जब कोई पदार्थ गृह बिषे रखताहोवे तब दान दशांश का अङ्गीकार करना प्रमाण नहीं ४ बहुरि पांचवीं युक्ति यह है कि प्रथमही दान देनेवाले से पूछलेवे कि तू यह दान रोगियोंके निमित्त का देताहै अथवा निर्धनियों के निमित्त का देताहै अथवा हमको साधु जानकर किसी कामना के निमित्त देता है सो वह जब कुछ उत्तर देवे तब चाहिये कि कामना के निमित्त का अङ्गीकार न करे और जब वह कहे कि यह निर्धनों के निमित्त का है सो जब इसको अत्यन्तही चाहना होवे तब लेलेवे अन्यथा नहीं ॥ ५ ॥

चौथा सर्ग ॥

व्रत के वर्णन में ॥

ताते जान तू कि भगवत् ने इस प्रकार आज्ञा करी है कि जो पुरुष मेरे निमित्त व्रत और तप करके भोगों का त्याग करते हैं तिनको फल देनेवाला मैंही हूं बहुरि व्रत भी तीन प्रकार का होताहै सो प्रथम यह कि अपने चित्त को संकल्पों से रोकरखना और चित्त की वृत्ति को भगवत् के स्वरूप बिषे स्थित करना सो यह व्रत ऐसा कठिनहै कि जब भगवत् बिना कुछ संकल्प भी इसके हृदय बिषे फुरे तब वह व्रत खण्डित होजाता है जो दिन बिषे रात्रि के आहार का संकल्प

खावे तौ भी प्रमाण नहीं इस करके कि प्रतिपाल करनेवाला भगवत् है ताते चाहिये कि यह मूर्ख अपनी जीविका की चिन्ता न करे और महाराज का भरोसा करके अचिन्त्य होरहे सो यह अवस्था सन्तजनों को प्राप्त होती है और उत्तम व्रतभी यही है १ और दूसरा व्रत यहहै कि सर्व इन्द्रियों को पापकर्मों से रोक राखे सो प्रथम अपनी दृष्टि नेत्रों की बुरी भावना से बचा रक्खे काहे से कि इस करके काम उत्पन्न होताहै इसी कारण से सन्तजनों ने कहा है कि नेत्रों की दृष्टि रोम का विष भरा तीर है बहुरि यह उसही के ऊपर विष लपेटा हुआहै ताते जो पुरुष भगवतके भय करके इसका त्याग करता है तब उसको धर्मका शिरोपाव प्राप्त होताहै और अपने चित्त बिषे प्रसन्नता को पाता है २ इसीपर महापुरुष ने भी कहाहै कि पांच कर्मों करके व्रत खण्डित होजाता है निन्दा और झूंठ बोलना और झूंठी दुहाई कठोर वचन काम की दृष्टिकर देखना सो यह पांच पाप व्रत को तोड़ डालते हैं ताते कामदृष्टि का रोकना यह नेत्रों का व्रतहै १ दूसरा व्यर्थ वचनों से रसना को रोक राखे अर्थात् जिस वचन बिषे प्रयोजन कुछ सिद्ध न होवे उस वचनसे मौन होरहे अथवा भगवत् के वचन और सन्तों के वचनों बिषे मन को लगावे और वाद विवाद बिषे आसक्त न होवे परनिन्दा और झूंठ तो ऐसे महापाप हैं कि इन करके संसारी जीवों का स्थूल व्रतभी खण्डित हो जाता है इसीपर एक वार्त्ता है कि दो स्त्रियों ने निराहार व्रतकिया था तब भूख की अधिकता करके व्याकुल होनेलगीं और व्रत खोलने के निमित्त महापुरुष से पूछनेलगीं तब महापुरुष ने उनको जल का कटोरा भरदिया सो जब उन्होंने जलपान किया तब उनको वमनहुआ और उस वमनमें सब रुधिर ही गिरा सो यह देखकर सबलोग विस्मय को प्राप्तहुये तब महापुरुष ने कहा कि इन स्त्रियों का ऐसा स्वभाव और अवस्था है कि जिस खान पान को भगवत् ने शरीर का आहार बनाया है तिससे तो इन्हों ने व्रत राखा और जिसको महाराज ने महा पाप कहाहै तिसको अङ्गीकार करती हैं अर्थात् निन्दा बिषे आसक्त हैं और इनके मुख से जो रुधिर निकसा है सो निन्दा करके मानों इन्हों ने मांस खायाहै २ बहुरि तीसरे श्रवणों को भी मर्याद बिषे रक्खे तात्पर्य यह कि जो वचन बोलने बिषे निन्द्यहैं तिनका श्रवण करना भी निन्द्यहै जैसे निन्दा और झूंठ वचन बिषे निन्द्यहै तिसका सुननेवाला भी कहनेवाले की नाईं पापका भागी होता

है ३ बहुरि ऐसेही अशुभ कर्मों से हाथ और पांवों को रोकरक्खे काहेसे कि व्रत रखनेवाला पुरुष रोगी की नाईं होताहै सो जब वह रोगी फल मूल आदिकों को कुपथ्य जानकर तो त्यागकरे और विषको पान करे तब शीघ्रही मृत्यु होताहै तैसेही पापकर्म विषकी नाईं हैं और खान पान फल मूल की नाईं हैं इस करके कि इसकी अर्थात् आहार की अधिकता में पापहै वास्तव में कुछ आहार पाप-रूप नहीं ताते खान पान का त्याग करना और इन्द्रियों करके अशुभकर्मों में आसक्त रहना सो ऐसे व्रत करके लाभ कुछ नहीं होता इसी पर सन्तजनों ने भी कहा है कि केते पुरुषों को व्रत विषे केवल भूख प्यास का कष्टही प्राप्त होता है ४ पांचवें योंभी चाहिये कि अशुद्ध आहार का अङ्गीकार न करे और शुद्ध आहार को भी मर्याद के अनुसार अल्पही अङ्गीकार करे और भोजन बहुत न करे और इस प्रकार भी न करे कि दिनको व्रत रखकर रात्रिको दूना आहार करलेवे काहेसे कि व्रत रखने का प्रयोजन यह है कि भोगों को निबलकरें ताते जब व्रतको रखकर पारण समय नाना प्रकार के व्यञ्जनों को अङ्गीकार किया तब इस करके तो भोग और अधिक होते हैं और हृदय भी उज्ज्वल नहीं होता ५ पर जिस प्रकार मैंने इन्द्रियों का व्रत वर्णन किया है सो जिज्ञासुजनों का व्रत है इसको मध्यम कहते हैं २ बहुरि तीसरी प्रकार का व्रत संसारी जीवों का स्थूल है कि वह केवल खान पान का त्याग करते हैं और इन्द्रियों को पापों से नहीं रोक सकते सो यह व्रत महाकनिष्ठ है और इस विषे इतनाही गुण है कि उस समय विषे इन्द्रियां कुछ निबल होजाती हैं पर जिज्ञासुजन जो सर्व इन्द्रियों का व्रत रखते हैं और अशुभ कर्मों से अपनी वृत्तिको रोक रखते हैं तब उनको भी इस प्रकार चाहिये है कि सर्वदा भगवत् के भय विषे स्थितरहें काहेसे कि न जानें भगवत् इस व्रतको प्रमाणकरे अथवा न करे ताते भय विषे स्थित रहना ही विशेष है पर निराश होकर शुभकर्मों को त्यागना प्रमाण नहीं काहेसे कि भगवत् किसी के किञ्चिन्मात्रभी करतूति को व्यर्थ नहीं करता है ॥ ३ ॥

पांचवां सर्ग ॥

पोथी पाठ करने के वर्णन में ॥

ताते जान तू कि सन्तजनों ने इस प्रकार कहा है कि पोथी का पढ़ना भी उत्तम भजन है और महापुरुष ने भी कहा है कि मनुष्यों के हृदय मलिन होगये

हैं जैसे जंगार करके दर्पण मलिन होजाता है बहुरि लोगों ने पूछा कि ऐसे हृदय क्योंकर निर्मल होवें तब उन्होंने कहा कि भगवत् वचनोंके पाठ और मृत्यु के स्मरण करके हृदय निर्मल होताहै बहुरि महापुरुष ने योंभी कहाहै कि मेरे पीछे तुमको उपदेश करनेवाले दो बहुतहैं एक तो मौनी और दूसरा बोलनेवाला सो बोलनेवाले तो भगवत् और सन्तों के वचन हैं और मौनधारी मृत्यु है सो इन दोनों के उपदेश करके जीवों को भलाई प्राप्त होवेगी (अथ प्रकट करना अचेत मनुष्यों के पाठ के स्वरूप का) ताते जान तू कि जो कोई वचनों का पाठ करता है उसकी निस्सन्देह उत्तम अवस्था होती है पर तौभी उसको चाहिये कि वचनों की विशेपता समझकर आपको नीच कर्मों से बचाये रहे और सर्वकाल विषे भयसंयुक्त रहे और जो इस प्रकार न करे तो उसमें यह भय होती है कि वह वचनही उसको झूंठा करते हैं इस पर महापुरुष ने कहा है कि बहुत कपटी तो विद्या पढ़नेवालेही होवेंगे इसी पर महाराज का भी वचन है कि हे मनुष्यो! तुमको लाज नहीं आवती कि जब किसी संबन्धी की पत्री तुमको पहुँचती है तब एकाग्रचित्त होकर पढ़ते हो और बारंबार उसको विचारकर वही कार्य करते हो और यह जो मेरे वचन हैं सो मानों तुम्हारी ओर पत्री मेरी आई है कि इसको विचार कर इसके अनुसार करतूति करो सो तुम इससे विपर्यय वर्तते हो और यद्यपि कुछ पाठ भी करतेहो तौभी उसका विचार नहीं करते कि इस पत्री विषे क्या लिखा है बहुरि और एक सन्त ने कहाहै कि हमसे आगे के जिज्ञासु जन ऐसे हुये हैं कि सन्तों के वचनों को पत्री जानते थे ताते रात्रि विषे उनका पाठ और विचार करतेथे और दिनको उसके अनुसार करतूति करतेथे और अब तुमलोग इस काल में केवल पाठको ही करतूति जानते हो बहुरि अक्षर और मात्राही को सुधारते रहते हो और जो कुछ इन विषे लिखाहै तिसके तात्पर्य की ओर तुम चित्त नहीं देते ताते इस प्रकार समझना चाहिये कि पढ़ने का फल पढ़नाही नहीं इसका फल यह है कि वचन के भेद को समझकर उसके अनुसार करतूति करे और जो पुरुष वचनों को पढ़कर उनकी आज्ञा न माने तब इसका दृष्टान्त यह है कि जैसे किसी दास की ओर उसका स्वामी कोई पत्री पठावे और उस पत्री विषे किसी कार्य की शिक्षा होवे कि यह काम तुम करना और वह दास उस पत्री को उत्तम स्थान विषे बैठकर तो पढ़े और भली प्रकार अक्षरों

को सुधारे पर जो कुछ उस विषे लिखा होवे तिस कार्य को न करे तब निस्सन्देह दुःखका अधिकारी होताहै (अथ प्रकट करनी युक्ति पाठकी) ताते जान तू कि जब वचनोंको पद्युक्ति साथ पढ़ताहै तब वह पढ़ना अधिक फलदायक होताहै सो प्रथम युक्ति यहहै कि जैसे टहलुवा स्वामी के आगे स्थित होताहै तैसेही नम्रतासहित बैठकर वचनों को पाठकरे और पवित्र होकर स्थित होवे १ बहुरि दूसरी युक्ति यहहै कि धीरे २ पाठकरे शीघ्रता न करे और उसके अर्थों को विचारता जावे ऐसे न चाहे कि किसीप्रकार शीघ्रही पाठ पूर्ण करलूं २ बहुरि तीसरी युक्ति यह है कि पाठकरनेके समय भय और प्रीतिसंयुक्त रुदन करे और जो नेत्रों में आंसू न आवें तो चित्त को कोमलकरे इसीपर महापुरुष ने भी कहा है कि यह भगवत् वचनके ग्रन्थ भय प्रकटावने के निमित्त हैं ताते भयसंयुक्त पाठकरो और जो कोई इनको विचारताहै तो निस्सन्देह उसको भय उत्पन्न होताहै और अपने को दीन पराधीन जानलेता है तब शोकवान् भी होता है परन्तु यह अवस्था भय और शोककी तबहीं प्राप्तहोती है जब असावधानता और अचेतता को दूर करके पाठ करै ३ बहुरि चौथी युक्ति यह है कि वचनों के तात्पर्य को भिन्न २ करके विचारे अर्थ यह कि जब ताड़ना का प्रसंग आवे तब भगवत् से अपनी रक्षाचाहे और जब भगवत् की कृपाका वचन आवे तब आशावन्त होवे ४ बहुरि पांचवीं युक्ति यह है कि कपट और विक्षेपता को दूरकरे अर्थात् जब दम्भ का आभास जानपड़े अथवा किसी दूसरेके भजनमें विक्षेप होता देखे तब ऊंचे स्वर से न पढ़े काहेसे कि गुप्त पाठकरने का ऐसा माहात्म्य है जैसे गुप्तदान देने का विशेष फलहै परन्तु जो दम्भ न फुरे और किसी के भजन में विक्षेप भी न होता होवे तब प्रत्यक्ष और ऊंचे स्वर सेही पढ़ना भलाहै काहेसे कि इस रीति से पढ़ने में निद्रा और आलस दूर होता है और सुननेवालों को भी गुण होता है और सोवनेवाले जाग पड़तेहैं बहुरि देखकर पोथी को पढ़े तो अतिविशेषहै कि नेत्र भी इसी काममें लगजावें तो नेत्रों का भी भजन हुआ और अपर दृष्टिसे नेत्र बचे रहेंगे इसी पर एक वार्ता है कि एक रात्रि विषे महापुरुष चले जाते थे तब एक जिज्ञासु को गुप्त पाठ करते देखकर पूछनेलगे कि तुम गुप्त क्यों पढ़ते हो? तब उसने कहा कि मैं जिस को सुनावता हूं वह गुप्त पाठ भी सुनताहै बहुरि महापुरुष आगे को चले तब एक दूसरे प्रेमी सन्तको देखा कि वह ऊंचे स्वर से पढ़ते

हैं तब उनसे पूछा कि ऊंचे स्वरसे क्यों पढ़ते हो? तब उसने कहा कि अपनी और सोवते हुये पुरुषों की निद्रा और विक्षेपता को दूर करताहूं तब महापुरुष ने कहा कि दोनों की भावना निर्मल है काहेसे कि करतूति की भलाई और बुराई मंशा करके होती है ताते जिसकी मंशा शुद्ध होतीहै तिसकी करतूतिभी शुद्ध ही होती है ५ बहुरि छठीं युक्ति यह है कि कोमल ध्वनिसाहित पाठकरे काहेसे कि जितना कोमल ध्वनि साहित पाठ करताहै तितनाही चित्तविषे वचन अधिक प्रवेश करते हैं ६ सो ये जो षट्युक्ति मैंने कहीं हैं सो स्थूल हैं और इसी प्रकार षट्युक्ति सूक्ष्म भी चाहियें है सो प्रथम यह है कि वचनों की बड़ाई को समझे और ऐसे जाने कि यह वचन आप भगवत् ने कहे हैं और भगवत् के सहज स्वभावरूप अविनाशी हैं और इनका तात्पर्य भगवत् के ज्ञान विषे स्थित है और रसना पर जो स्फुरित होते हैं सो ये अक्षर हैं और जिस प्रकार अग्नि का नामलेना मुख से सुगम है और अग्नि की तपन का सहना कठिन है तैसे ही अक्षरों का अर्थ ऐसा प्रबल है कि जब वह अर्थ प्रकट साक्षात्कार होवे तब उस के प्रकाश विषे चौदहों लोक लीन होजावें और उस तेज को सह न सकें पर उन वचनों के अर्थ की सुन्दरताई को और उनकी बड़ाई को शब्द और अक्षरों के परदे में गुप्त कररक्खा है कि जिस करके उस परदेकरके मन और रसनाको भी वचनों की प्राप्ति होवे और इस परदेके बिना वचनों का तात्पर्य मनुष्योंको समझा नहीं सके ताते जिज्ञासु अपने चित्त विषे इस प्रकार विचार करे कि वचनों को तात्पर्य अक्षरोंसे परेहै सो जैसे बैलआदिक पशुओं को मनुष्योंके शब्दों का अर्थ नहीं भासहोता और मनुष्य अपनी सहज बोली करके उनसे काम नहीं लेसक्ते ताते उनको चरस और हलमें चलावनेके निमित्त पशुओं की नाईं शब्द किया जाता है तब वह श्रवण करके सुचेत होतेहैं और कार्य को सिद्ध करतेहैं पर तौ भी तात्पर्य को नहीं समझ सक्ते कि हलको किस निमित्त पृथ्वी विषे चलाते हैं और धरती को क्यों खोदते हैं सो धरती के खोदने का प्रयोजन यह है कि वह कोमल होवे और उस विषे पवन प्रवेश करे फिर जल सींचने करके उस विषे बीज की वृद्धता होतीहै पर बैलोंके हृदय विषे यह ज्ञान कुछ नहीं होता तैसेही बहुत पुरुष पाठ करनेवाले भी ऐसे होते हैं कि वह भगवत् और सन्तोंके वचनों को शब्दमात्र और अक्षरमात्रही जानतेहैं सो अत्यन्त बुद्धि की हीनताहै और

इसका दृष्टान्त यह है कि जैसे कोई पुरुष ऐसे जाने कि अग्नि का अर्थ आगनही है और यों न जाने कि अग्नि तो काग़ज़ को जलानेवाली है पर यह तीनों अक्षर तो सर्वदा कागज़ पर लिखे रहते हैं और कागज़ को कुछ आंच नहीं पहुँचती ताते जिस प्रकार सब शरीरके एक जीव होताहै और उस जीव करकेही शरीर स्थित रहता है और जीवही के प्रभाव से शरीर की बड़ाई है तैसेही अक्षर शरीरवत् हैं और अर्थ इनका जीवहै और अर्थों करकेही शब्द और अक्षरोंकी बड़ाई है ताते इस प्रकार प्रथम वचनों की बड़ाईको जानना चाहियेहै १ बहुरि दूसरी युक्ति यह है कि जिस महाराज के ये वचनहैं तिसको पाठके समय विषे अपने सामने विद्यमान देखे और ऐसे जाने कि ये वचन मुझ से महाराजही कहते हैं ताते भय संयुक्त स्थितहोवे और जैसे पोथी को पवित्र हाथ से स्पर्श करता है तैसेही वचनों को हृदय की पवित्रताई के साथ ग्रहण करे और हृदय की पवित्रता यह है कि बुरे स्वभावों से शुद्धहोवे और भगवत् वचन के आदर और बड़ाई के प्रकाश करके सुन्दर प्रकाशित होवे जैसे अक्रमानामा एक बाईथी सो जब वह भगवत् वचनों के पाठकरने को बैठकर पोथी खोलती तब कहती कि यह महाराज सर्वेश्वर का वचनहै और ऐसा कहकर मूर्च्छित भय और प्रीति के सम्बन्ध से होजाती ताते जबलग भगवत् की बड़ाई को नहीं पहिचानता तबलग उसके वचनोंकी महिमा को भी नहीं जानसक्ता और भगवत् की बड़ाई भी उसकी कारीगरी और गुण के जाने विना जानी नहीं जासक्ती सो कारीगरी यह है कि आकाश, पाताल, धरती, देवता, मनुष्य, पशु, कीट, वृक्ष और पर्वत आदिक जो सर्व सृष्टि है सो सब महाराज के उत्पन्न किये हुये हैं और उसी के अधीन हैं और जब वह इन सबको नाश करडाले तौभी उसको कुछ भय नहीं और उसकी पूर्णताई में कुछ ऊनता नहीं आती बहुरि सर्व जीवों का उत्पन्न और पालन और रक्षा करनेवाला भी वही है इस प्रकार विचार करने से किंचित् बड़ाई महाराज की हृदयमें भास आवती है सो विचारे कि ऐसा जो ईश्वरों का ईश्वर महाराजहै तिसही के वचनों का मैं पाठ करताहूं तब ऐसे जानने करके भय उत्पन्न हो आवती है २ बहुरि तीसरी युक्ति यह है कि पाठ विषे चित्त को एकाग्र रक्खे और विक्षेपता को दूरकरे और जब कुछ अचेतता सहित पढ़ जावे तब उसही को फेर पाठकरे क्योंकि अचेतता सहित पाठ करना ऐसा होता है जैसे कोई पुरुष फूलों के देखने के

निमित्त बाग विषे जानेकी मंशा करे और जब वहां जावे तब विक्षेपता करके ऐसा अचेत होवे कि नाना प्रकार के फूलों की रचना को कुछ न देखे और योंहीं फिरकर बाहर चला आवे तब उसका वहां जाना व्यर्थ होता है-तैसेही भगवत् वचन जिज्ञासुजनों का बाग है और इन में नाना प्रकार के जो भेद रहस्य हैं सो मानों परमविचित्र सुखद मनमोहन फल फूल हैं सो जब कोई इनका विचार करे और एकाग्र चित्त होवे तब निस्सन्देह ऐसे परमानन्द को प्राप्त होताहै कि फिर किसी पदार्थ की ओर रुचि नहीं होती इसी कारण से कहा है कि जब पाठ करनेवाला पुरुष वचनों के अर्थ को न जाने तब उसको पाठ का गुण अल्प ही होता है ताते चाहिये कि वचनों की बड़ाई और सुन्दरताई को अपने हृदय में विद्यमान राखे तब आनसंकल्पों से रहित होवे ३ बहुरि चौथी युक्ति यह है कि सर्व वचनों को विचारे और जो समझ न सके तौ वारंवार उनका अभ्यासकरे तब इस करके रहस्य उपजताहै बहुरि उसही रस विषे मग्न होवे सो ऐसे रससहित पढ़ने से अधिक लाभ को प्राप्त होताहै इसी पर एक सन्तने कहा है कि जब कोई पुरुष रसना विषे किसी वचन को उच्चारण करता है और चित्त विषे किसी और वस्तु का विचार करता है तब उस प्रथम वचन के अर्थों से दूर पड़जाता है बहुरि एक और सन्त ने कहा है कि जब भजन अथवा पाठ विषे मुझको कोई व्यवहार का संकल्प फुरता होवे तब उस संकल्प से मैं अपना मरना विशेष जानताहूं ताते इस पुरुष को चाहिये कि जब किसी वचन का पाठ करनेलगे तब चित्त विषे और संकल्प का चिन्तवन न करे यद्यपि वह संकल्प सात्त्विकी होवे तौ भी उसको विस्मरण करना विशेष है बहुरि जब भगवत् की स्तुति का पाठ करने लगे तब इस प्रकार विचार करे कि वह महाराज सब से निर्लेप हैं संकल्प से परे हैं सबों के ऊपर समर्थ हैं परमदेव हैं बहुरि जब महाराज की कारीगरी का वचन होवे तब इस प्रकार विचार करे कि धरती और आकाश को उसहीने उत्पन्न किया है ऐसे नाना प्रकार की रचना को देखकर महाराज की विद्या और सामर्थ्य और बड़ाई को पहिंचाने और जिस पदार्थ की ओर दृष्टि करे तब उस विषे भगवतही की सत्ताको देखे बहुरि जब इस वचन को पढ़े कि महाराजने इस जीव को एक पानी की बूंद से उत्पन्न किया है तब ऐसे जाने कि वह वीर्य की बूंद तो एकही रङ्गकी थी पर भगवत् ने उससे नानारंग के चिह्न बनाये हैं जैसे

त्वचा और मांस नाड़ी हाथ पांव नेत्र रसना कर्ण इत्यादिक जो अनेक अङ्ग हैं सो सबही आश्चर्य रूप हैं बहुरि यह शरीर मांस के पुतले की नाईं है सो इस बिषे देखना सुनना बोलना और चैतन्यता किस प्रकार प्रकट हुई है पर इस प्रकार सर्व वचनों का बखान करना कठिन है ताते इसका तात्पर्य यह है कि जिस वचन का पाठकरे उसही वचन के अर्थ बिषे विचार और अभ्यास को सावधानकरे और जिस पुरुष की वृत्ति किसी महापाप बिषे आसक्त होती है अथवा जो पुरुष मनमत करके किसी क्रिया को अङ्गीकार करताहै अथवा किसी मत और पन्थ के निश्चय बिषे ऐसा दृढ़ होजाता है कि उस पन्थ की प्रतीति बिना यथार्थ वचन को श्रवणही न करे तब ऐसे पुरुष को महाराज के वचनों का अर्थ कदाचित् प्रकट नहीं होता ४ बहुरि पांचवीं युक्ति यह है कि जिस प्रकार वचनों का अर्थ भिन्न २ भाव को प्राप्तहोताहै तैसेही चित्तकी वृत्ति को भी उसके अनुसार उलटावता जावै जैसे भय और ताड़ना के वचन का जब पाठकरे तब भयवान् और अधीन होजावे और जब महाराज की क्रिया का वचन पढ़े तब आशावन्त और प्रसन्न चित्त होवे और जब महाराज की अपारता का वचन आवे तब महादीनभाव को ग्रहणकरे और ऐसे जाने कि महाराज की स्तुति और बड़ाई के वर्णन करनेकी मेरी बुद्धि ही नहीं ताते लज्जित होकर स्तुति करनेलगे इस प्रकार सर्व वचनों के अनुसार चित्तकी अवस्था बनावे ५ बहुरि छठीं युक्ति यह है कि वचनों बिषे इस प्रकार प्रतीति करे कि यह वचन मैं भगवंत् के मुख से सुनताहूं इसी पर एक सन्तजन ने कहा है कि आगे मुझको भजन का कुछ रहस्य न आताथा तब मैंने इस प्रकार प्रतीति करी कि मैं यह वचन महापुरुष के मुख से सुनता हूं तब मुझको रस आवनेलगा बहुरि मैंने इस प्रकार अनुमान किया कि यह वचन मुझको आकाशवाणी होती है तब मैंने उससे भी अधिक स्वाद को पाया फिर मैंने यह अनुमान करलिया कि यह वचन मुझ को आप भगवत् विद्यमान सुनाते हैं तब मैंने ऐसा रस और आनन्द पाया कि जिसका वर्णन नहीं करसका ॥ ६ ॥

छठवां सर्ग ॥

॥ स्मरणके वर्णन में ॥

ताते जान तू कि सर्व साधनों का फल भगवत् का स्मरण है जैसे पाठ

वचनों का भी उत्तम कहाहै पर इसका तात्पर्य भी यही है कि भोगों से विरक्त होकर स्मरण विषे स्थित हूजिये काहेसे कि भोगों की प्रबलता विषे भजन का कुछ रहस्य नहीं उपजता ताते प्रसिद्धहुआ कि सर्व कर्मों का सार भगवत् का भजन है और सर्व साधन भजन की दृढ़ता के निमित्त कहे हैं इसी पर महाराज ने भी कहा है कि तुम मेरा स्मरणकरो तब मैं तुम्हारा स्मरण करूं पर जब स्मरण की ऐसी अवस्था को न पहुँचसके तब अधिककाल विषे तो भजनही का अभ्यास चाहिये काहे से कि इस जीव की मुक्ति का कारण भजनही है ताते जो पुरुष बैठते, उठते, जागते, सोवते, चलते किसी अवस्था विषे भगवत् के भजन से अचेत नहीं होते सो तिनकी महिमा महाराज ने भी कही है और योंभी कहा है कि भय और दीनता सहित शुद्ध ही स्मरणकरो बहुरि संध्या और प्रभात पर्यन्त किसी काल विषे अचेत न होवो और किसीने महापुरुष से भी पूछा था कि सर्व करतूतों से कौनसी करतूति विशेषहै तब उन्होंने कहा कि मृत्यु के समय विषे जिस की सुरति प्रबल अभ्यास करके भगवत की ओर होवे सो यह स्मरण सब भजनों से विशेषहै और महापुरुष ने योंभी कहा है कि अचेत मनुष्यों विषे भजन करनेवाले पुरुष ऐसे विशेषहैं जैसे मृतकों विषे सजीव पुरुष होवे अथवा जैसे सूखे वृक्षों में सफल वृक्ष होताहै और जैसे कायरों विषे कोई शूरमा शत्रुओं के सम्मुख होकर युद्धकरे बहुरि एक और सन्तने भी कहा है कि परलोक विषे सर्व मनुष्यों को पश्चात्ताप होवेगा कि हमने भगवत् का भजन सर्वकाल क्यों न किया ? और संसारविषे अपने समय को व्यर्थ क्यों बिताया और जिन्हों ने भजन कियाहोगा वेभी कहेंगे कि हमने अधिक भजन क्यों न किया और एक क्षण भी अचेत क्यों हुये (अथ प्रकट करनी अवस्था भजनकी) ताते जान तू कि भजन की भी चार अवस्था हैं सो प्रथम अवस्था यह है कि रसना से भगवत् का नाम उच्चारण करना और हृदय से अचेत रहना सो यह कनिष्ठ अवस्था है ताते इस का गुण भी अल्प है पर तो भी गुण से रहित नहीं काहे से कि जब यह रसना विवाद मिथ्या विषे आसक्त होवे तब इससे तो भगवत् का नाम लेना निस्संदेह उत्तमहै १ बहुरि दूसरी अवस्था यहहै कि चित्त से भजन करना और जब भजन विषे चित्तकी एकाग्रता न होवे तब भी हठ करके संकल्प को दूरकरना और मन को भजन विषे स्थित करना सो यह मध्यम अवस्था है २

बहुरि तीसरी अवस्था यह है कि इस पुरुष का हृदय भजन विषे स्थित होजावे और भजन का रस चित्त विषे ऐसा प्रबल होवे कि जब कोई कार्य अवश्यही करना होवे तो भी यत्न करके उसी ओर लावे सो यह उत्तम अवस्था है ३ बहुरि चौथी अवस्था यह है कि जिस वस्तु को स्मरण करता है तिसके स्वरूप विषे चित्त की वृत्तिका लीन होजाना सो वह वस्तु परमात्मा स्वरूप है और उस विषे लीनता का अर्थ यहहै कि परमात्मा के स्वरूप की मग्नता विषे भजन की सुधि न रहै और सत्तारूप भजनही शेष रहजावे क्योंकि भजन जाप और अक्षरकर होताहै सो निस्सन्देह स्थूलहै और संकल्परूप है और परम अवस्था यह है कि संकल्प और अक्षरों का अभाव होजावे और केवल ब्रह्मसत्ता विषे स्थित होवे सो यह अवस्था पूर्ण प्रेमकर होती है जैसे किसी पुरुष का प्रेम किसी पुरुष के साथ ऐसा प्रबल होवे कि अपने प्रियतम के स्वरूप की मग्नता विषे आपा और सर्व पदार्थों को विस्मरणकरे और प्रियतम का नामही उसको भूलजावे तैसेही यह पुरुष महाराज के दर्शन विषे आप और सर्व पदार्थों को विस्मरण करे तब सन्तों की आदि अवस्था को प्राप्त होवेगा सो सन्तलोग इस अवस्था का नाम जीवन्मृतक कहतेहैं अर्थ यह कि सर्व पदार्थों की जानसे मृतक होजाताहै जैसे और जो अनेक ब्रह्माण्ड भगवत् ने उत्पन्न किये हैं पर उनका भान हमको कुछ नहीं होता और हमको वही पदार्थ सत्यस्वरूप भासते हैं जिनको हम प्रत्यक्ष इन्द्रियों कर देखते हैं सो जिस पुरुष को यह इन्द्रियादिक पदार्थ सबही विस्मरण होजावें तब उसके निकट नहीं हैं अर्थात् असत्यस्वरूप होजाते हैं बहुरि जब आप को भी विस्मरण करे तब इस भाव करके आपभी अपने जान में नेस्त होगया इसी को जीवन्मृतक कहते हैं और जब सर्व पदार्थों की सत्ता इसके निकट दूर हुई तब केवल महाराज ही उसके निकट सत्यस्वरूप और विद्यमान हैं जैसे तू धरती और आकाश को देखकर कहताहै कि सर्व जगत इतनाही है और तुझ को और कुछ नहीं भासता तैसेही उस जीवन्मृतक स्वरूप को किसी और पदार्थ की जान नहीं रहती केवल महाराजही को देखता है और कहता है कि रामही राम हैं राम बिना और कुछ नहीं तब ऐसी अवस्था विषे वह पुरुष महाराज से अभेद होता है अर्थ यह कि एकता विषे लीन होजाताहै और भेदभावना नष्ट होजाती है सो यह ज्ञानवानों की आदि अवस्था है पर जब यह अवस्था जीव

को प्राप्त होती है तब निकटता और दूरी की और द्वैत की कुछ सुधि ही नहीं रहती क्योंकि निकटता और दूरी और भेदभाव की उसको सुधि होती है जिस को दो दृष्टि आवें कि यह मैंहूं और वह महाराज हैं सो ऐसे पुरुष को तो सर्वथा अपना आपा विस्मरण होगया है तब निकटता और दूरी को क्योंकर देखे और द्वैतबुद्धि करे ताते इस अवस्था बिषे जिज्ञासुजन को चैतन्यस्वरूप की प्रत्यक्षता प्रकट होतीहै और चिदाकाश की गतिबिषे नाना प्रकार के आश्चर्यों को देखता है और आदि मध्य अन्त का ज्ञान उसको प्राप्तहोता है बहुरि सन्तजनों और अवतारों के पद को प्रत्यक्ष देखताहै और हस्तामलकवत् पहिंचानता है और इस प्रकार के आश्चर्यों को देखता है कि वचन करके उनका बखान नहीं होसक्ता बहुरि यद्यपि ऐसी समाधिसे जब उसको उत्थान होताहै तौभी एकत्रता का रस उसके हृदय से दूर नहीं होता और सर्वदा उसके चित्त की वृत्ति उसही रसकी ओर खिंची रहती है और माया के सर्व पदार्थों को विरस जानता है और यद्यपि संसारी जीवों बिषे स्थित दृष्टि आवता है तौभी हृदय करके निर्लेप रहता है और यह मनुष्य जो माया के व्यवहारों बिषे आसक्त रहते हैं सो तिनकी अवस्था को देखकर आश्चर्य मानताहै और दयादृष्टि से देखकर कहताहै कि यह अल्पबुद्धि जीव कैसे सुखसे अप्राप्त हैं और जगत् के जीव उसकी अवस्था को देखकर इस प्रकार कहतेहैं कि यह पुरुष मायाके व्यवहार को भली प्रकार क्यों नहीं करता ताते उसको बावरा और उन्मत्त जानते हैं पर जब जिज्ञासु जन ऐसे परमपद को पहुँच न सके और सूक्ष्मभेद उसको प्रकट न होवे तो भी निराश न होवे काहे से कि केवल भजनही की प्रबलता भी जीव को उत्तम भोगोंका बीजहै इसकरके कि भजनकी दृढ़ता बिषे प्रेम की अधिकता होतीहै और प्रेम करके सर्व पदार्थों से विरक्तचित्त होताहै ताते महाराजही को अपना अधिक प्रियतम रखताहै सो उत्तम भोगों का बीज यही है काहेसे कि इस जीव को अवश्यमेव भगवत् के निकटही पहुँचनाहै और सर्व संसार को त्याग जाना है ताते चाहिये कि इस मनुष्य की प्रीति सर्वथा भगवत् ही के साथ होवे इस करके कि जितनी किसी की प्रीति अधिक होती है उतना ही उसको अपने प्रियतम के दर्शन बिषे आनन्द अधिक होताहै तैसेही जिसका भगवतके साथ पूर्ण प्रेमहै तिसको महाराज के स्वरूप बिषे पूर्णही आनन्द प्राप्त होता है और जिसके हृदय बिषे माया की

प्रीति दृढ़ होती है तब वह माया के पदार्थों के वियोग करके सदा दुःखी रहता है तात्पर्य यह कि जब जिज्ञासुजन भगवद्भजन विषे दृढ़ होवे और सिद्धता आदिक का ऐश्वर्य इसके हृदय विषे कुछ न फुरे तब भी भजन का त्याग न करे काहे से कि परमपद की प्राप्ति सिद्धता और ऐश्वर्य के आश्रित नहीं ताते जब इस पुरुष का चित्त शुभ गुणों सहित निर्मल हुआ तब स्वाभाविकही परम पद का अधिकारी होताहै इसी कारण से इस जीव को चाहिये कि सर्वदा अपने चित्त विषे अभ्यास करे कि किसी प्रकार मेरा चित्त भगवत् के भजन से एक क्षण भी अचेत न होवे काहेसे कि भजनही महाराज के दर्शन और सूक्ष्म भेदों की कुञ्जी है इसी पर महापुरुष ने भी कहाहै कि जब कोई पुरुष वैकुण्ठ आदिक सुख को भोगना चाहै तब भगवद्भजन विषे ही लीन होवे काहेसे कि भजनही परम वैकुण्ठ है ताते प्रसिद्ध हुआ कि सब गुणों का सार यहहै कि निन्द्यकर्मों से इस जीव की रक्षा होवे और जो कुछ भगवत् ने करणीय कर्म कहे हैं तिन को श्रद्धा सहित करे और जब निन्द्य कर्मों विषे आसक्त रहै और शुभ कर्मों विषे सावधान न होवे तब ऐसे जानिये कि उस पुरुष का भजन करना भी मनका संकल्प है और उस विषे यथार्थ कुछ नहीं ताते यथार्थ भजन वही है जो पाप कर्म के समय जीव की सहायता करे और भगवत्के स्मरण करके भयवान् होवे॥

इति नियमवर्णनन्नाम प्रथमं प्रकरणं समाप्तम्॥

दूसरा प्रकरण॥

पहिला सर्ग॥

जगत् के मिलाप की युक्ति के वर्णन में॥

ताते जान तू कि यह संसार परलोक के मार्ग की मंज़िलहै और सर्व मनुष्य इस मंज़िल विषे परदेशी हैं और सबको एकही ओर जाना है जैसे सबही परदेशी आपस में संबन्धी की नाईं होते हैं तैसेही इस जीव को सब मनुष्यों के साथ प्यार और शुभ भावना चाहिये है पर जिस जिस प्रकार भाव और संगति करने का अधिकार है तिसका तीन सर्ग विषे वर्णन किया जायगा प्रथमसर्ग विषे जो जिज्ञासुजन भगवत् मार्ग के संगी हैं तिनके संगकी विशेषता प्रकट करेंगे और दूसरे सर्ग में सबों के मिलाप का अधिकार और युक्ति वर्णन होगी

बहुरि तीसरे सर्ग विषे संबन्धी और सेवक और सखावों के भावकी युक्ति का वर्णन किया जायगा ताते जान तू कि भगवत् के निमित्त जिज्ञासुजनों के साथ मित्रता करनी उत्तम भजन है और सर्व कर्मों से विशेष है इसी पर महा-पुरुष ने भी कहा है कि जिस पुरुष को भगवत् मार्ग की प्रीति होवे तिसको भगवद्भक्तों का मिलाप बड़े भागों से प्राप्त होताहै काहे से कि जब किसी समय विषे वह पुरुष भगवद्भजनसे अचेतभी होताहै तब उसको वह दूसरा भक्त सचेत करता है बहुरि जब दोनों सचेत होते हैं तब एक मार्ग के संगी होतेहैं और यों भी कहाहै कि जिज्ञासुजनों की संगति करके ऐसा सुख उत्तम प्राप्त होताहै कि और जनों करके नहीं पाया जाता और योंभी कहाहै कि जब कोई भक्तोंके साथ प्रीति करता है तब वह भी भगवत् का प्रियतम होताहै और भगवतने भी कहा है कि मेरी प्रीति उन पुरुषों को प्राप्त होती है जो मेरे निमित्त मेरे प्रियतमों के साथ प्रीति करते हैं और तन धनादिक करके उनकी सेवा करते हैं और उनके सर्व कार्यों की सहायता विषे सावधान रहते हैं और महापुरुष ने योंभी कहा है कि परलोक विषे भगवत् इस प्रकार कहेंगे कि जिन्होंने केवल मेरे निमित्त प्रीति और मिताई परस्पर करीहै सो पुरुष कहां हैं कि उनको अब हम अपनी छाया तले राखैं और योंभी कहा है कि ७ प्रकार के पुरुषों को परलोक विषे भगवत् की छायातले ठौर मिलेगा और परमसुखी होवेंगे सो प्रथम नीति और विचार की मर्यादा विषे वर्त्तनेवाला राजा है १ दूसरा वह पुरुष है जो बाल्यअवस्था से लेकर अपनी आयुष् भगवद्भजन विषे लगावे २ और तीसरा वह है जो यद्यपि शुभस्थान से बाहर भी निकसे तौभी व्यवहार की विक्षेपता विषे आसक्त न हो-जावे और उसके चित्तकी वृत्ति सर्वदा शान्तिकी ओर रहै ३ चौथा वह है जो एकान्त विषे बैठकर भगवद्भजन विषे सावधान रहै और प्रीति सहित रुदन करे ४ पांचवां वहहै कि जब उसको एकान्त ठौर विषे स्त्रीका मिलाप होवे और वह भगवत् के भय करके उसका त्यागकरे ५ छठवां वह है कि निष्काम गुप्तदान देवे ६ सातवां वह है जो भगवत्ही के निमित्त भगवद्भक्तों के साथ मैत्री कर और जो किसी पुरुष की प्रीति का त्यागकरे तौभी उसमें भगवत् संबन्धही कारण होवे अर्थात् मिलाप और त्याग दोनों भगवत् निमित्त होवें और अपने स्वार्थ का संबन्ध उस में कुछ न विचारे ७ इसीपर एक वार्त्ताहै कि कोई पुरुष किसी प्रियतम

के दर्शन को जाताथा उसको मार्ग विषे एक देवता मिला और कहनेलगा कि तू कहां जाता है तब उस पुरुष ने कहा कि अपने मित्रके दर्शन को जाता हूं बहुरि उस देवता ने कहा कि उसके साथ तेरा कुछ अर्थहै अथवा उसने तेरे ऊपर कुछ उपकार कियाहै तब उस पुरुष ने कहा कि मैं केवल भगवतही के निमित्त उसके दर्शन की इच्छा रखताहूं तब उस देवता ने कहा कि मुझको भगवत् ने तेरे पास भेजा है सो मैं तुझको प्रसन्नताका संदेशा पहुँचावता हूं कि इस श्रद्धाही करके भगवत्ने तुझको अपना प्रियतम किया है और महापुरुष ने योंभी कहा है कि धर्म का दृढ़ चिह्न यही है कि धर्मात्मा पुरुषों से मिलाप और भगवत विमुखों के संगको त्याग करना और एक सन्तको आकाशवाणी हुईथी कि यद्यपि तू सर्व मनुष्यों और सर्व देवतों के तुल्य अकेला भजन भी करे तौ भी जबलग मेरे निमित्त मेरे भक्तों के साथ मिताई और मनमुखों का त्याग न करेगा तबलग तू परमपद को प्राप्त न होवेगा और एक सन्त से जिज्ञासुजनों ने पूछा था कि संगति किसकी करे तब उन्होंने कहा कि जिसके दर्शन करके तुमको भगवत् का भजन दृढ़होवे और जिसकी करतूति देखकर तुमको शुभ करतूतिकी इच्छा उपजे तब उसकी संगति करो और एक और सन्तको भी आकाशवाणी हुईथी कि तैंने किस निमित्त एकान्त ग्रहणकिया है तब उसने कहा कि हे महाराज! जगत् के मिलाप करके तेरी प्रीति विषे पटल होताहै तिस निमित्त एकान्त को विशेष प्रिय मानता हूं बहुरि आज्ञाहुई कि इस एकान्त करके तो अपना सुख स्वार्थ अर्थात् व्यावहारिक क्लेशनिवृत्ति और भजन से प्रतिष्ठा की चाहना प्रसिद्ध है तातें मेरे भक्तों के साथ प्रीतिकर और विमुखों के संग का त्याग कर बहुरि एक और सन्त ने भी कहा है कि भगवद्भक्त जब परस्पर मिलकर प्रसन्न होते हैं तब जैसे शरदऋतु में वृक्षों के पात झर पड़ते हैं तैसेही उनके सर्व पाप नष्ट होजाते हैं (अथ प्रकट करना इसका कि भगवत के निमित्त मिताई किस प्रकार होती है) तातें जान तू कि जो मित्रता किसी संबन्ध करके होती है वह भगवत निमित्त नहीं कहाती है जैसे चटशाला विषे अथवा पड़ोस करके जो स्वाभाविक ही मित्रभाव होजाता है सो यह सब स्थूल प्रीति है अथवा जिस का रूप सुन्दर होवे और जिसकी वाणी मधुर होवे अथवा जिसके साथ धन और मान का अर्थ कुछ होवे सो यह भी आनही प्रीति कहाती है तातें भगवत्

के निमित्त मित्रताका अर्थ यहहै कि जिस प्रीति विषे कोई प्रयोजन और स्थूलता कुछ न होवे और केवल धर्महीके निमित्त होवे सो यह प्रीतिभी दो प्रकारकीहै प्रथम यहहै कि वह प्रीति प्रयोजन करके होती है पर उस विषे सात्त्विकी प्रयोजन होवे जैसे विद्यार्थी की प्रीति पढ़ानेवाले के साथ होती है सो जब वह पढ़ना परमार्थ के मार्ग निमित्त होवे तब यह भी भगवत् के निमित्त गिना जाता है और जब उसमें धन और मान का प्रयोजन होवे तब वह आन प्रीति होजाती है और ऐसे ही पढ़ानेवाले की प्रीति पढ़नेवाले के साथ जब निष्काम होवे और भगवत् की प्रसन्नता के निमित्त उसको पढ़ावे तब यह भी भगवत्के निमित्त प्रीति होती है और जब पढ़ानेवाले को मान का प्रयोजन होवे तब अशुभ कामना होजाती है तैसेही जब कोई दान देनेवाला पुरुष अपने टहलुवे को इस निमित्त प्रियतम राखे कि यह टहलुवा भली प्रकार अर्थियों को दान पहुँचाता है अथवा उत्तम भोजन कर अभ्यागतों को खवावता है तब यह भी धर्म की संबन्धी प्रीति है, १ बहुरि दूसरी प्रकार की प्रीति यह है कि जिसके साथ इसका प्रयोजन कुछभी न होवे केवल ईश्वरही के संबन्ध की प्रीति होवे और उसको भगवत प्रियतम जानकर उसके साथ मित्रता करे सो यह उत्तम प्रीतिहै और जब इस प्रकार किसी के साथ प्रीति करे कि वह भगवत का जीव है और यद्यपि उस विषे गुण की कुछ भावना न होवे तो भी उसको प्रेमदृष्टि कर देखे सो यह पूर्ण प्रेमकी अवस्थाहै जैसे किसी पुरुषके साथ किसी मनुष्य की अधिक प्रीति होवे तब वह अपने प्रियतम के मन्दिर और गलीको भी प्रियतम रखताहै उसके संबन्धियों और दासोंको देखकर प्रसन्न होताहै तात्पर्य यह कि उसके कूकरको भी और कूकरों से विशेष जानताहै और प्रियतमके मित्रोंको तो अधिक प्रियतम रखताही है तैसेही भगवत् के साथ जिसका पूर्ण प्रेम होता है तब सब जीव उसको प्रियतम लगते हैं और वैष्णवों और जिज्ञासुजनों के साथ तो निस्संदेह उसकी अधिक प्रीति होतीहै और सर्वपदार्थों को भी इस करके प्रियतम रखता है कि यह सब मेरे प्रियतम के रचे हुये हैं इसी पर एक वार्त्ता है कि जब बसन्तऋतु विषे महापुरुष के आगे कोई नवीन फूल आन रखता था तब उस फूलको नेत्रोंपर मर्दन करते थे और इस प्रकार कहते थे कि यह मेरे प्रियतम ने बनाये हैं और थोड़ाही काल बीताहै कि प्रियतमसे बिछुड़े हैं अर्थात् नवीन रचना

है २ पर भगवत् के साथ जो प्रीति होतीहै सो भी दो प्रकार की होती है एक प्रीति इस लोक और परलोक के सुखों की कामना करके होती है १ और दूसरी निष्काम होतीहै सो पूर्ण प्रीति इसही का नाम है २ ताते जितना जिस मनुष्य का निश्चय दृढ़होताहै सो उतनाही भगवत्के साथ इसको प्रीति अधिक होतीहै बहुरि उसी प्रीतिकरके महाराज के प्रियतमों कोभी प्रियतम रखताहै और प्रीति की मर्याद धन और मान के अर्पण कर प्रकट होती है अर्थ यह कि जितना धन और मान उनके ऊपर वारता है उतनाही प्रीतिका चिह्न प्रकट होताहै सो एक पुरुष ऐसे होतेहैं कि वह अपने धन और मानको अर्पण करदेते हैं सो पूर्णप्रेमी हैं और जो कुछ धन अर्पण करते हैं सो अल्पप्रेमी हैं (अथ प्रकट करना इस का कि भगवत् के निमित्त किस प्रकार विरुद्ध करना चाहिये) ताते जान तू कि जिस प्रकार सात्त्विकी मनुष्यों के साथ भगवत् के निमित्त प्रीतिमानों की मिताई होती है तैसेही राजसी और तामसी मनुष्यों के साथ जिज्ञासुजनों का स्वाभाविकही विरुद्ध होता है क्योंकि वे भगवत् से विमुख हैं और उनकी संगति करके यह भी अचेत होजाता है सो यद्यपि विरुद्ध का अर्थ यह नहीं कि उनकी क्रिया को देखकर अपने चित्त को तपायमान करे पर तौ भी मनमुखों की संगति से जिज्ञासुजन संकुचित रहते हैं सो इसही का नाम विरुद्ध है और इस विषे एक और भी भेदहै कि जब कोई पुरुष सात्त्विकी होवे और उस विषे कुछ राजसी गुणकी प्रबलता भी होवे तो चाहिये कि उस पुरुष के साथ सात्त्विक गुण साथ मिताई राखे और जो गुण की प्रबलता के अनुसार उससे विरुद्ध रहे सो इस प्रकार करके एकही मनुष्य के साथ मित्रता और विरुद्ध इकट्ठा होताहै जैसे किसी पुरुष के तीन पुत्र होवें सो एक आज्ञाकारी और बुद्धिमान् भी होवे और दूसरा पुत्र मूर्ख और आज्ञा से विमुख होवे और तीसरा मूर्ख भी होवे और आज्ञाकारी भी होवे तब आज्ञाकारी और बुद्धिमान् पुत्रके साथ पिता की प्रीति स्वाभाविक ही अधिक होती है और दूसरा पुत्र जो मूर्ख और आज्ञा से विमुख होता है सो स्वाभाविक ही दण्ड का अधिकारी होता है और तीसरा पुत्र जो मूर्ख और आज्ञाकारी होताहै सो तिसके साथ आज्ञा मानने के भावकरके पिता की प्रीति होती है और मूर्खता के निमित्त उसको ताड़ना करताहै तैसेही जो पुरुष भगवत् की आज्ञा से विमुख होवें सो तिस विमुखता के अनुसार तिसका

त्यागकरना योग्य है और जितना कुछ भगवत् की आज्ञा विषे सावधान होवे तितनीही प्रीति उसके साथ राखे सो इस मिताई और विरोध का चिह्न करतूति विषे प्रकट होताहै कि जब किसी पुरुष विषे तुझको कुछ अवगुण भासता है तब उस पुरुष से तेरा चित्त विरुद्ध करता रहताहै और जब अधिक अवगुण भासता है तब उससे चित्त की वृत्तिही उलट जाती है और वचन वार्त्ता का मिलाप भी थोड़ा होजाता है बहुरि जब लम्पटता करके सन्तजनों की मर्याद को त्याग देताहै और ढीठ होकर विचरता है तब उसके साथ प्रीति और वचन और करतूति का संबन्ध कुछ नहीं होता पर तौ भी भोगी मनुष्यों से तामसी की गति महानीच होतीहै ताते तामसी मनुष्य के साथ प्रीति करना सर्वथा अयोग्य है काहे से कि वह सर्वजीवों का घातक होताहै पर जब कोई तामसी मनुष्य ऐसा होवे जो केवल तुझही को दुखावे तब उसके ऊपर दयाकरनी प्रमाण है पर यह जो तामसी मनुष्यों से विरुद्ध करना प्रमाण कहा है सो इस विषे भी जिज्ञासु जनों की अवस्था दो प्रकार की हुई है सो एक तो ऐसे हुये हैं कि उन्होंने विचार और धर्म की मर्याद के निमित्त पापी जीवों को दण्ड दिया है और एक ऐसे हुये हैं कि उन्होंने सर्वजीवों के ऊपर दयादृष्टि राखी है जगत् से संबन्ध ही उन्होंने तोड़ा है पर इसका तात्पर्य यह है कि जिस पुरुष की मंशा शुद्ध है और अपनी वासना से रहित है सो तिसका सबही करतूति शुभ और नीक होताहै ताते जिस पुरुष ने ऐसे जानाहै कि सर्वजीवों का प्रेरक भगवत् है और आपसे यह जीव सबही पराधीन हैं तिस कारण से वह पुरुष सबों के ऊपर दया-दृष्टि से देखता है सो यह उत्तम अवस्था है और पापीजीवों को पापसे बर्जना यह भी भलाहै पर केते मनुष्य ऐसे भी मूर्ख होते हैं कि वह पापकर्मोंका त्याग नहीं करसके और पापी जीवों की संगति का अवगुण पहिचान भी नहीं सके और मुखसे इस प्रकार कहते हैं कि हम किसी को बुरा नहीं जानते काहेसे कि सर्व जीवों का प्रेरक भगवत् है और हृदय विषे राग द्वेष कर जलते रहते हैं सो जबलग भगवत् की एकता जानने का चिह्न प्रकट न होवे तबलग ऐसा अभिमान करना व्यर्थ होता है सो एकता का चिह्न यह है कि जब कोई इसका धन हरलेजावे अथवा दुर्वचन बोले अथवा कुछ दण्ड देवे तौ भी क्रोधवान् न होवे और उसके ऊपर दयादृष्टिसे ही देखता रहै तब जानिये कि इसके हृदय

बिषे एकता दृढ़ हुई है जैसे एक समय बिषे मनमुखों नें महापुरुष के दांत तोड़े थे और रुधिर चलने लगा तब महापुरुष कहने लगे कि हे महाराज! यह लोग मुझ को जानते नहीं ताते तूही इनके ऊपर दयाकर पर जो पुरुष अपने प्रयोजन करके राग द्वेष बिषे दृढ़ होवे और धर्म की मर्याद के निमित्त मौन होरहे अर्थात् पापियों को पाप से न बर्जे और उन से अपना संबन्ध भी न तोड़े तब यह भी बड़ी मूर्खता है ताते जबलग इस मनुष्य के हृदय बिषे एकताकी अवस्था दृढ़ न होवे और कुसंगी पुरुषों को बुरा जानकर उनकी मित्रता का त्याग न करे तब जानिये कि इसका धर्मही दृढ़ नहीं जैसे किसी पुरुष का कोई मित्र होवे और कोई पुरुष उसके मित्रको दुर्वचन कहै और वह उसको ताड़ना न करे तब जानिये कि उस पुरुष के साथ इसकी मिताईही नहीं बहुरि पापी मनुष्य जो कहे हैं सो तिनके बिषे भी भिन्न २ भेद होता है और उनके ऊपर दण्डकरना भी अधिकार प्रति चाहिये सो प्रथम तौ एक ऐसे मनुष्य होतेहैं कि वह भगवत् को नहीं मानते और परलोकपर भी प्रतीति नहीं करते और सर्वदा तमोगुण बिषे स्थित हैं सो ऐसे मनुष्यों के साथ जिज्ञासुजन को मिलाप करना नहीं चाहिये काहे से कि जब बड़े ईश्वरों और अवतारों ने शस्त्रोंकरकेभी उनका प्रहार कियाहै ताते उनके साथ किंचित् व्यवहार रखना भी अयोग्यहै बहुरि जो पुरुष लोगों को सत्कर्मों से भ्रष्टकरे और मनमतकरके नास्तिकवादियों का मत दृढ़करावे सो ऐसे मनुष्य के साथ संबन्ध रखना भला नहीं और उसका निरादर करनाही बिशेष है काहेसे कि निरादर को देखकर लोगोंकी प्रतीति उनसे दूरहोवे बहुरि जो पुरुष और लोगों को भ्रष्ट न करे और आपही सत्कर्मों से हीनहोवे तब प्रकट निरादर उसका करना भला नहीं और मिताई करना भी अयोग्य है बहुरि जो पुरुष निन्दा और झूठ और कपट और दुर्वचन और अनीति करके लोगों को दुखावता होवे तब उसके साथ कठोरता और विरक्तता करनाही भलाहै और उसके साथ प्रीतिकरना अयोग्यहै बहुरि जो मनुष्य भोगी होवे अथवा मद्यपान करनेहारा होवे पर और किसी को दुखावे नहीं तब उसको उपदेशकरना बिशेषहै पर जब कुछ श्रद्धावान्होवे और जब कुछ श्रद्धा न देखिये तब लज्जा करके उसकी क्रिया से नेत्र मूंदने भले हैं॥

दूसरा सर्ग॥

संगति और अधिकार के वर्णन में॥

ताते जान तू कि सबही मनुष्य मिताई करने के अधिकारी नहीं इसीकारण से जिज्ञासुजन को चाहिये कि जिस पुरुष विषे तीन लक्षण पाये जावें उसके साथ मिताई करे सो प्रथम लक्षण यह है कि बुद्धिमान् पुरुष होवे काहे से कि मूर्ख की संगति निष्फल होतीहै और उसकी मिताईका निर्वाह नहीं होता और मूर्ख मनुष्य जब तेरे साथ उपकार किया चाहता है तब भी मूर्खता करके ऐसा करतूति करता है जो तेरे कार्य को बिगाड़ देवे और यों भी नहीं जानता कि मैंने इस कार्य को बिगाड़ा है ताते मूर्ख की संगति से दूर रहनाही भगवत् की निकटता है और मूर्ख का देखनाही पापका कारण है पर मूर्ख तिसको कहतेहैं कि जो कार्य के भेद को न जाने और यद्यपि उसको समझा कर कहिये तौभी न समझ सके १ बहुरि दूसरा लक्षण यह है कि जिसका स्वभाव कोमल होवे सो तिसही के साथ मिताई करनी विशेष है काहे से कि जिसका स्वभाव कठोर होताहै सो कठोरता करके मित्रता को दूर करदेताहै और निडर होकर प्रीतिकी रीति को बिगाड़ देताहै २ बहुरि तीसरा लक्षण यहहै कि जिसकी वृत्ति सत्कर्मों विषे दृढ़होवे तब उत्तम अधिकारी मिताई का वही है काहे से कि पापकर्मी मनुष्य के हृदय विषे भगवत् का भय कुछ नहीं होता ताते जो पुरुष भगवत् के भय से रहित होवे तिसके साथ प्रीति और प्रतीति करनी महाअयोग्य है इसी पर महाराजनें भी कहाहै कि जो पुरुष मेरे भजन से अचेत हैं और अपनी वासना विषे वर्तते हैं तिनके साथ प्रीति और प्रतीति न करो ३ और जो कोई नास्तिकवादी होवे तिसकी संगति न करनाही विशेषहै काहेसे कि उसकी रहनि रीति का प्रवेश इसके हृदय विषेभी दृढ़ होजाताहै ताते यहभी अपकर्मी होजाता है और यह भी नास्तिकवादियों का लक्षण है कि वह इस प्रकार कहते हैं कि किसी को धर्म का उपदेश करना प्रमाण नहीं पापों और भोगोंसे भी किसीको बर्जना योग्य नहीं काहेसे कि लोगों के साथ हमको क्या प्रयोजनहै ? सो यह वचनभी मन्दभागों और दुःखों का बीज है और मनमतियों का चिह्न है ताते इनकी संगति का त्याग करना भलाहै इस करके कि यह वचन मनकी वासना का हितकारी है और जब यही निश्चय दृढ़ होताहै तब प्रकट ही ढीठ होकर

अपकर्म करने लगता है इसी पर एक सन्तने कहा है कि पांच प्रकारके मनुष्यों की संगति न करिये सो प्रथम तो झूठे मनुष्य की संगति बुरी है काहे से कि झूठ कहनेहारा पुरुष कपट करके सर्वदा छलही देताहै १ और दूसरा वह पुरुष जो मूढ़ता करके तेरे लाभ को गँवाय देता है २ बहुरि तीसरा वह जो कृपण मनुष्य है सो वह भी तेरी शुभ अवस्था को व्यर्थ करडालता है ३ और चौथा पुरुष वहहै जो पुरुषार्थसे हीन होवे सो वहभी तेरे किसी कार्य का निर्वाह नहीं करसक्ता ४ बहुरि पांचवां पुरुष जो लम्पटहै सो वह भी तेरी मिताई को एक ग्रास से अल्प बेंचता है और लोगोंसे पूछा कि ग्राससे अल्प बेंचना क्या है ? तब उन्हों ने कहा कि लोभ करके ग्रास को अङ्गीकार करताहै और तेरी मिताई को त्याग देताहै ताते मिताईको ग्रासके समान भी नहीं जानता ५ बहुरि एक और सन्त ने कहाहै कि मैं कठोर मनुष्य विद्यावान् से भोगी पुरुष कोमल चित्तकी संगति को विशेष मानताहूं पर ऐसे जान तू कि सर्व मनुष्यों विषे शुभ गुण दुर्लभ पाये जाते हैं ताते प्रथम संगति के प्रयोजन को पहिंचानना चाहिये कि जब तुझको केवल शुभगुण का प्रयोजन होवे तब कोमल मनुष्य और धीर मनुष्यों की संगतिकर और जब कुछ माया का प्रयोजन होवे तब उदार पुरुष के निकट जावो ऐसे ही सब मनुष्यों का स्वभाव भिन्न २ है सो एक पुरुष की संगति आहार की नाईंहै अर्थ यह कि उनका मिलाप सर्वदा चाहिये और एक पुरुष की संगति औषध की नाईं है अर्थ यह कि उनका मिलाप किसी अवस्था विषे चाहिये है और एक पुरुषों की संगति रोग की नाईं है अर्थात् किसी समय भी उनका मिलाप नहीं चाहिये और जब अकस्मात् उनका संयोग भी होजावे तौ भी धैर्य और पुरुषार्थ करके उनसे मुक्त हुआ चाहिये पर सर्वदा उसही की संगति करनी योग्य है जिसकी संगति विषे परस्पर शुभगुणों का लाभ होवे (अथ प्रकट करनी युक्ति मिताई के संबन्ध की) ताते जान तू कि मिताई और प्रीति का जो नाता है सो संबन्ध की नाईं है इसी कारण से संबन्ध की युक्तियें भी चाहिये इसी पर महापुरुष ने भी कहा है कि प्रीतिमानों का मिलाप इस प्रकार सुखदायक होताहै कि जैसे दोनों हाथ परस्पर एक दूसरे का मैल उतारते रहतेहैं ताते उनकी संगति करनी युक्ति के साथ विशेष होती है सो प्रथम युक्ति यह है कि अपने से खान पान वस्त्र मित्रको अधिक देवे और जो पदार्थ इसको भी चाहता

होवे तब अपनी अभिलाषा का त्याग करके उसके कार्य को पूर्ण करे बहुरि अपने धन और सामग्री को अपने से मित्र भिन्न नहीं जाने ताते कहे विना ही उसके कार्य विषे सावधान होवे और जब मित्र को इससे कुछ मांगना पड़े और आप करके उसकी सुरति न लेवे तब इस करके प्रीति मन्द होजाती है काहे से कि इसका हृदय उसकी सुरति और सहायता से अचेत रहा तब यह देखादेखी की प्रीति होजाती है इसी पर एक वार्त्ता है कि दो प्रीतिमान् परस्पर मित्र थे तब एक मित्रने कहा मुझको चारसहस्र रुपया चाहिये तब दूसरे मित्र नें कहा कि दो सहस्र रुपया लेलेव तब उस मित्र ने कहा कि तुझको लाज नहीं आवती कि मिताई का अभिमान करता है और मुझसे माया को अधिक प्रियतम रखताहै बहुरि एक और वार्ता है कि किसी नगरविषे केते प्रीतिमान् रहते थे किसी दुष्ट ने राजा से जाकर कहा कि ये सब शास्त्र की मर्याद से उल्लंघित रहते हैं और लोगों को भ्रष्ट करते हैं तब राजा नें उनको पकड़वाकर मारडालने की आज्ञा करी बहुरि जब मारनेलगे तब एक प्रीतिमान् सबसे आगे गया और कहने लगा कि मुझ को प्रथम मारो तब राजानें पूछा कि तू शीघ्रही आगे काहे को आया है तब उस प्रीतिमान् ने कहा कि ये सब मेरे प्रियतम हैं ताते इस प्रकार चाहता हूं कि कोई क्षण अपनी आयुर्वल इनपर वारों तब राजा ने कहा कि जो इनके हृदय विषे ऐसी प्रीति और प्रतीति है तिनको मारना प्रमाण नहीं ताते सबों को छुड़ाय दिया बहुरि एक और वार्ता है कि एक प्रीतिमान् अपने मित्र के गृह विषे आया और वह मित्र अपने गृह विषे न था तब उस प्रीतिमान् ने मित्र की दासी को बुलाकर धन का संदूक मँगाया और उसको आपही खोलकर जो कुछ चाहिये था सो लेलिया बहुरि जब वह मित्र अपने गृह विषे आया तब यह वार्ता सुनकर बड़ा प्रसन्न हुआ और प्रसन्नहोकर उस दासी को भी मुक्त करदिया॥ बहुरि एक और वार्ता है कि एक सन्तके पास एक पुरुष आकर कहने लगा कि मैं तुम्हारे साथ मिताई किया चाहताहूं तब उन्होंने कहा कि तू मिताई की युक्तिको जानताहै तब उस पुरुषने कहा कि मैं तो नहीं जानता बहुरि सन्त जन ने कहा कि जब धन और सर्व सामग्री को मुझसे अधिक प्रियतम न राखे तब प्रीतिकी युक्ति पूर्ण होती है तब उस पुरुष ने कहा कि मुझको यह अवस्था तो प्राप्त नहीं है तब उस सन्तने कहा कि तू प्रीतिका अधिकारी नहीं ताते अपने

गृहको जावो ॥ बहुरि एक वार्ता है कि एकबार महापुरुष वनबिषे गयेथे और एक और संगी भी उनके साथ था तब महापुरुषने एक वृक्षमेंसे दो दन्तधावन तोड़ीं सो सीधी और कोमल दँतौन तो उस संगी को दी और कठोर दँतौन आपने ली तब उस संगीने कहा कि हे महाराज! आपने सीधी दँतौन क्यों न ली तब महापुरुष कहनेलगे कि हे भाई! जब एक क्षणभी किसीकी संगतिकरिये तबभी उस की मिताईका निर्वाह करना प्रमाण है और मिताई का निर्वाह यहहै कि अपने आपे से मित्र को अधिक सुख दीजिये १ बहुरि दूसरी युक्ति यह है कि मित्र के सर्व कार्यों बिषे सहायता करे और मित्र के कहे बिनाहीं उसके कार्य बिषे सावधान होवे और चित्तकी प्रसन्नता सहित निर्वाह करे काहे से कि आगे ऐसे प्रीतिमान् हुये हैं कि अपने मित्र के कार्य को संबन्धियों से भी अधिक जानते थे इसी पर एक सन्तने कहाहै कि भगवत् मार्ग के मित्र मुझको स्त्री पुत्रादिकों से भी अधिक प्रियतम हैं काहे से कि वह धर्मकी दृढ़ता बिषे सचेत करनेवाले हैं बहुरि एक और सन्त ने भी कहा है कि जब मेरे साथ मेरे शत्रु को कुछ प्रयोजन होताहै तब मैं उसके भी प्रयोजन को शीघ्रही कियाचाहता हूं फिर मैं अपने प्रियतमों के अर्थ बिषे क्योंकर सावधान होऊंगा २ बहुरि तीसरी युक्ति यह है कि रसना करके मित्र का गुणही वर्णन करे और अवगुण को प्रसिद्ध न करे और जब कोई इसके मित्र की निन्दा करे तब उसको भी बर्जे और ऐसे जाने कि मेरा मित्र अबभी मेरे निकट है ताते जिस प्रकार मित्र के सम्मुख वचन करता है तैसेही पीछे भी मित्र की भलाई चिन्तन करे बहुरि मित्र का वचन सुनकर खण्डन न करे और उसकी गुप्त वार्ता को प्रकट न करे और जब वह मित्र इसके कार्य बिषे कुछ अवज्ञाकरे तो भी उसको कुछ न कहे और रोष न करे और ऐसे करके जाने कि यह मनुष्य सदैवही भूला हुआ है और मुझ से भी तो कितनी अवज्ञा भगवद्भजन बिषे होजाती हैं ताते इस प्रकार समझ करके रोष को मिटावे और जब सर्वथा ऐसेही मनुष्य को ढूंढ़े कि जिस बिषे अचेतता और अवगुण कुछ भी नहीं पायाजावे तब यह वार्ता भी महादुर्लभ है और इस करके किसी के साथ प्रीति न करेगा ताते मिताई से अप्राप्त रहता है इसी पर महापुरुष ने भी कहा है कि प्रीतिमान् लोग गुणकी ओर दृष्टि रखते हैं और यद्यपि किसी के कुछ अवगुण भी देखतेहैं तो भी जानते हैं कि अकस्मात

किसी कारण करके इससे भी यह अवज्ञा हुई होवेगी और जो कपटी मनुष्य होता है सो सर्वदा अवगुण की ओरही देखता है ताते चाहिये कि जिस बिषे एक गुणभी देखे तब उसके दश अवगुणों का विचार न करे इसी पर महापुरुष ने भी कहा है कि कुसंगी मनुष्यों से भगवत् रक्षा ही करे॥ सो कुसंगी मित्र वह है जो अवगुण देख कर प्रसिद्धकरे और शुभगुणों को दुरायराखे ताते चाहिये कि मित्र के अवगुणों को विचारे नहीं और मित्र के ऊपर भला अनुमान करे काहे से कि बुरा अनुमान करना महानिन्द्य है इसी पर एक सन्तने भी कहा है कि मित्र के अवगुणों को प्रसिद्ध करने का दृष्टान्त यह है कि जैसे कोई पुरुष अपने मित्र को सोवता देखकर उसका वस्त्र उतार लेवे और उसको नग्न करे सो जिसप्रकार करतूति महानिन्द्य है तैसेही मित्रका अवगुण प्रकट करना इससे भी अधिक निन्द्य है ताते बुद्धिमानों ने कहा है कि जिसप्रकार भगवत् तेरे गुणों और अवगुणों को जानता है और अवगुणों को प्रकट नहीं करता तैसेही मित्र भी वही है जो अवगुणों को जानकर प्रकट न करे तब उसकी संगति भी लाभदायक होती है इसी विषय पर एक वार्त्ता है कि किसी मित्र ने अपने मित्र के आगे गुप्तभेद प्रकट कहा था और फिर कहनेलगा कि तुमने यह बात हृदय बिषे राखी है तब उस मित्र ने कहा कि मैंने तो बिसार दी है इस करके कि लोभ क्रोध और अपनी वासना करके अथवा और किसी अवसर बिषे अकस्मात् जो मित्रका त्याग करता है सो मिताई का अधिकारी नहीं होता ताते मिताई की युक्ति यह है कि मित्रके भेद को प्रकट न करे और मित्रके आगे भी किसी की निन्दा न करे बहुरि झूठा वचन भी न कहे और मित्र के वचन का खण्डन भी न करे बहुरि कोई कर्म अपना मित्र से दुरावे नहीं ताते ऐसे जान तू कि मित्र के वचनको विपरीत वचन करके खण्डन करनेमें मिताई शीघ्रही नष्ट होजाती है काहेसे कि वचन को उलटने का अर्थ यह है कि मित्र को मूर्ख करना और आप को बुद्धिमान् जनावना सो यह मिताई के चिह्न नहीं इसी पर महापुरुष ने भी कहा है कि जब तेरा मित्र तुझ को ऐसे कहे कि उठ खड़ा हो तब यों भी पूछना प्रमाण नहीं कि कहां चलोगे काहे से कि प्रीतिकी उत्तम रीति यही है कि इसकी सर्व करतूति मित्रकी आज्ञा और प्रसन्नता अनुसार होवे ३ बहुरि चौथी युक्ति यह है कि सर्वदा अपने मित्रकी स्तुति करे और मधुर वचन करके

उसके गुह्य भेद को पूछे बहुरि प्रसन्नता और शोक विषे उसका संगी होवे अर्थ यह कि मित्रकी प्रसन्नता और शोक अपने से भिन्न न जाने और मित्रको शुभ वचन करके बुलावें और जब मित्र से कुछ भलाई देखे तब प्रसन्न होवे और महाराज का उपकार जाने ४ बहुरि पांचवीं युक्ति यह है कि मित्र को परस्पर धर्म की विद्या सिखावें क्योंकि संसार के दुःखों से नरक के दुःखों की रक्षा करनी विशेष है ताते चाहिये कि वह शुभ करतूति विषे जो कुछ अवज्ञा करे तौ भी भला उपदेश करके उसको धर्म विषे दृढ़ करावे और भगवत के भय का निश्चय दृढ़ावे पर मित्र को उपदेश करना एकान्त ठौर विषे प्रमाण है इस करके कि प्रसिद्ध ताड़ना करने विषे मित्र का अपमान होता है ताते मित्र को कोमलता और दयासंयुक्त सिखावे इसीपर महापुरुषने भी कहाहै कि प्रीतिमान् का दर्पण प्रीतिमान् होताहै अर्थ यह कि उस करके अपने अवगुणको देखताहै ताते यों चाहिये है कि जब वह मित्र एकान्त ठौर विषे दया करके समझावे तब मित्र का उपकार जाने और क्रोधवान् न होवे काहे से कि अवगुण जनावने का दृष्टान्त यह है कि जैसे किसी के वस्त्र विषे सर्प होवे और उसने देखा न होवे और कोई मित्र उसको लखादेवे कि तेरे वस्त्र विषे सर्प है तब इस करके क्रोधवान् होना प्रमाण नहीं और उसका उपकार जानना प्रमाण है तैसेही सबी मलिन स्वभाव सर्प हैं और जीव को डसनेवाले हैं और इनके विषय का प्रवेश परलोक विषे प्रत्यक्ष होवेगा ताते जो पुरुष इसके अवगुण लखावे सो इसका परम मित्र है इसी पर एक वार्ता है कि एक प्रीतिमान् सन्तके निकट एक और सन्त आया और उससे पूछनेलगा कि हे मित्र ! तैंने मेरा बुरा स्वभाव कौन सुना है तब उसने कहा कि मुझसे मत पूछ बहुरि उसने अतिदीनता सहित कहा कि तुम संकोच त्याग कर मेरा अवगुण मुझको लखावो तब वह सन्त कहने लगा कि मैंने तुम्हारे आहार और वस्त्रकी अधिकता सुनी है सो यह सुनकर उसने कहा कि अब फिर मैं यों भी न करूंगा पर जो और कुछ भी सुनाहोवे सो भी कहो तब उसने कहा कि और तो कोई अवगुण तुम्हारा मैंने नहीं सुनाहै इसीपर महापुरुष ने भी कहाहै कि जो पुरुष उपदेश करनेवाले को प्रियतम नहीं राखे तब जानिये कि उसकी बुद्धिपर अभिमान की प्रबलता है ताते चाहिये कि मित्रको प्रीतिसहित धर्म उपदेश करिये और पाप से वर्जि रखिये पर जब वह मित्र तेरेही किसी

कार्य विषे अवज्ञाकरे तब उसको क्षमाही करना योग्यहै बहुरि जब ऐसी अवज्ञा हो जावे कि उस करके मित्रताकी नष्टता होती होवे तब एकान्त में समझा देना प्रमाण है मित्रता का त्यागना प्रमाण नहीं पर जब वह कोमल वाणी करके न समझे और हृदय की तपायमानी करके कठोर वचन कहना पड़े तब इससे तो मित्रता का त्याग देना विशेष है काहे से कि मित्रता और संगति का प्रयोजन यही है कि शुभगुणों की वृद्धि होवे और सहनशीलता प्राप्त होवे सो जब संगति विषे स्वभाव की कठोरता होने लगी तब उसको त्यागनाही भला है ५ बहुरि छठीं युक्ति यहहै कि अपने मित्र के निमित्त भगवत् के आगे प्रार्थना किया करे और उसका भला चितवे इसी पर महापुरुष ने भी कहा है कि जब कोई अपने मित्र के निमित्त प्रार्थना करताहै तब इसको भी भलाई प्राप्त होती है ६ बहुरि सातवीं युक्ति यह है कि मित्रकी मित्रता का निर्वाहकरे सो निर्वाह का अर्थ यह है कि जब कोई इसके मित्र की निन्दा करे तब निन्दकको शत्रु जाने और निन्दा सुनकर मित्रकी मित्रता का त्याग न करे ७ बहुरि आठवीं युक्ति यह है कि मिताई में दम्भ न करे अर्थात् बहुत स्तुति करनी और अपना प्यार प्रकट दिखावना सो यह सब निंद्य और दम्भ होताहै ताते चाहिये कि जिस प्रकार अपने आपसे बड़ाई कोई नहीं चाहता तैसेही मित्रमें भी समानता होवे और केवल हृदयही की प्रीति होवे इसीपर एक सन्त ने कहा है कि जिस मित्र की मंशा के निमित्त कुछ उद्यम और क्लेश करना पड़े तब वह मित्रही भला नहीं होता ८ बहुरि नवीं युक्ति यह है कि अपने आपको मित्र से नीचजाने अर्थात् मित्र से उपकार और सेवा की चाह न करे इसीपर एक वार्त्ता है कि कोई पुरुष ने एक सन्त के निकट कई बार कहा कि इस समय में धर्ममार्ग का प्रियतम महादुर्लभ है तब सन्तने कहाहै कि जब तू ऐसे मित्र को चाहे कि जो सबप्रकार तेरा सेवक होवे और तू उसका सेवक न होवे तब ऐसे मित्र तो निस्संदेह दुर्लभ हैं और जब तू सेवक हुआ चाहे तब स्वामी होनेवाले तो मेरी सभा में बहुत हैं ताते बुद्धिमानों ने इस प्रकार कहा है कि जो अपने आपको मित्र से विशेष जानता है सो पापी होताहै और जब आपको उसके समान देखता है तब भी दुःखी रहता है और जब सब से नीच जानता है तब उत्तम लाभ को पावता है ९ ॥

तीसरा सर्ग॥

संसारी मित्रों और सम्बन्धियों और पड़ोसियों और दासोंके मिलाप के वर्णन में॥

ताते जान तू कि जितना किसी का संवन्ध व्यवहार में अधिक होता है तितनाही उसका निर्वाह करना प्रमाणहै पर सब संवन्धों से जो उत्तम संवन्ध है सो भगवत् मार्ग की मित्रताहै और उस मित्रता की युक्ति मैंने पूर्व वर्णन करी है बहुरि जिस मनुष्य के साथ अधिक प्रीति न होवे और कुछ एक सात्त्विक धर्म का संवन्ध पायाजावे तो उसके मिलाप विषे भी कई युक्तियां चाहिये हैं सो प्रथम युक्ति यहहै कि जो पदार्थ इसको अनिष्ट होवे तब उस पदार्थ की प्राप्ति दूसरेको भी न चाहे इसीपर महापुरुष ने भी कहाहै कि सर्वजीवोंका संवन्ध एक शरीरके अङ्गोंकी नाईं है सो जब एक अङ्गको कुछ दुःख होताहै तब सर्व शरीर को दुःख पहुँचता है तैसेही चाहिये कि किसी जीव का दुःख न चितवे १ बहुरि दूसरी युक्ति यह है कि मन वचन कर्म करके किसीको दुखावे नहीं पर महापुरुष ने भी कहाहै कि जिस पुरुषकी रसना और हाथों करके कोई दुःख न पावे वह धर्मवान् कहाता है ताते अपने रसना और कर्म को ऐसी मर्याद विषे रखिये कि किसी प्रकार किसी मनुष्य को दुःख न पहुँचे २ बहुरि तीसरी युक्ति यह है कि अभिमान करके आपको किसी से वड़ा न जाने काहे से कि अभिमानी मनुष्य भगवत् की ओर से विमुख होताहै इसीपर महापुरुष को आकाशवाणी हुई थी कि दीनता और नम्रता को अङ्गीकार करो और अभिमानी न होवो ताते चाहिये कि किसी को नीच न देखे काहे से कि जिस को नीच देखता है सो जब वह सन्त होवे और यह उस को जानता न होवे तब क्या आश्चर्य है क्योंकि बहुत सन्त ऐसे गुप्त रहते हैं कि उनको भगवत् विना और कोई नहीं जानता ३ बहुरि चौथी युक्ति यह है कि जब कोई इसको किसी की निन्दा सुनावे तब उसको श्रवण न करे काहे से कि यथार्थीपुरुष के वचन पर प्रतीति करनी प्रमाण है और निन्दकपुरुष यथार्थी नहीं होता इसी पर एक सन्त ने कहा है कि पिशुन और निन्दक अवश्यही नरकगामी होते हैं और योंभी जानना चाहिये कि जो पुरुष प्रयोजन विना किसी का छिद्र तुझको सुनावता है वह तेरा छिद्रभी लोगों के आगे अवश्यही वर्णन करेगा ४ बहुरि पांचवीं युक्ति यह है कि सबको आगेही प्रणामकरे और किसी के साथ विरोध न राखे और

क्रोध की गांठकरके किसी से मौनभी न करलेवे ताते जब किसी से कुछ अवज्ञा होजावे तबभी क्षमाही करे ५ बहुरि छठीं युक्ति यह है कि सब किसी के साथ यथाशक्ति भाव और उपकार करे और उसकी भलाई बुराई की ओर न देखे काहेसे कि जो वह उपकार का अधिकारी नहीं तौ तू तौ उपकार करने का अधिकारी है ताते तूही उपकारकर और धर्म की दृढ़ता यही है कि सबों के ऊपर दया करनी ६ बहुरि सातवीं युक्ति यह है कि जो आपसे बड़ा होवे तिसकी बड़ाई राखे और जो आपसे लघु होवे तिसके ऊपर दयाकरे इसीपर महापुरुष ने कहा है कि जब कोई अपने से बड़ों की बड़ाई रखता है तब उसकी बड़ाई महाराज औरोंसे रखता है ७ बहुरि आठवीं युक्ति यह है कि सब किसी से प्रसन्नवदन साथ मिले और वचन भी मीठा कहे ८ बहुरि नवीं युक्ति यह है कि जिसको कुछ वचन देवे तब उस का अवश्यही निर्वाह करे इसीपर सन्तजनों ने कहा है कि जब कोई पुरुष व्रत और भजन में सावधान होवे पर यह तीन अपलक्षण उसमें पाये जावें कि मुखसे झूंठ बोले और वचन का निर्वाह न करे और चोर होवे तब वह प्रीतिमान् नहीं कहाजाता और उसका भजन पाखण्ड निमित्त होता है ६ बहुरि दशवीं युक्ति यह है कि किसी के छिद्र को प्रकट न करे काहे से छिद्र को गुप्त रखने करके इसके पापों को भी परदा होता है इसीपर महापुरुष ने कहा है कि धर्म तुम्हारा तबहीं दृढ़होवेगा जब लोगोंके अवगुणों को छिपावोगे और किसी के छिद्रकी खोज न करोगे काहेसे कि जब कोई किसीका छिद्र उघारताहै तब महाराज उस का भी छिद्र उघारते हैं और जब कोई किसीसे पाप का वर्णन करता होवे तबभी सुरति देकर श्रवण न करे १० बहुरि ग्यारहवीं युक्ति यह है कि आपभी अपकर्म न करे काहेसे कि जब इसका अपकर्म प्रकट होताहै तब केतेलोग इसकी निन्दा करते हैं अथवा इसको देखकर उनका चित्त चपल होजाताहै तब इस करके यह भी अधिक पापी होता है ११ बहुरि बारहवीं युक्ति यह है कि जब इसके वचन करके किसी को सुख प्राप्तहोवे तब आलस्य न करे १२ बहुरि तेरहवीं युक्ति यह है कि जब कोई किसी को दुखावे अथवा कोई किसी का धन चुरावे और धन वाला पास न होवे तौभी उसके धनकी रक्षाकरे काहेसे कि जब यह किसी दीन पुरुष की सहायता करताहै तब भगवत् इसके ऊपर सहायता करताहै १३ बहुरि चौदहवीं युक्ति यह है कि जब कोई पुरुष किसी कुसंग में अटक जावे और उस

को कुसंग से छुड़ायाचाहे तब कोमल वचन कहकर समझावे और उसको देख कर कठोर वचन न कहे १४ बहुरि पन्द्रहवीं युक्ति यह है कि निर्द्धनों के साथ प्रीतिकरे काहेसे कि धनवानों के संगसे इसको भी अचेतता प्राप्तहोती है ऐसेही एक सन्तने भगवत् के आगे प्रार्थना करी थी कि हे महाराज! तुमको मैं कहां ढूंढ़ों तब आकाशवाणी हुई कि जिनके हृदयमें अधीनता होवे तिनके हृदय विषे ही मेरा निवासहै १५ बहुरि सोलहवीं युक्ति यह है कि सब किसीको सर्वप्रकार सुख पहुँचावे और उद्यम करके भी अर्थियों का अर्थ पूर्णकरे क्योंकि अर्थियों की सेवा भी भगवत् की सेवाहै और एक मुहूर्त्त भी किसी अर्थी के कार्य विषे सावधान होना सौ वर्ष की समाधि से विशेष है इसीपर महापुरुष ने भी कहा है कि सबल और निर्बल की सहायता करो तब लोगों ने पूछा कि सबल की सहायता क्योंकर करिये तब महापुरुष बोले कि उसको निर्बल के दुखाव से वरजि रखना यही उसकी सहायता है और योंभी कहाहै कि किसी के चित्त को प्रसन्न करने के समान और भजनही कोई नहीं और योंभी कहाहै कि दो लक्षण सर्वगुणों का मूल हैं सो एक तो हृदय की प्रतीति दूसरे जीवों को सुखदेना और दो पाप सर्व पापों का मूल हैं सो एक प्रतीति की हीनता दूसरा जीवों को दुखावना॥ इसी पर एक वार्त्ता है कि एक प्रीतिमान् रुदन करताथा तब लोगों ने पूछा तुम क्यों रोते हो तब उसने कहा कि एक पुरुष ने मुझ को दुखाया है सो मैं इस निमित्त रोताहूं कि परलोक में जब उससे पूछेंगे तब वह बिचारा क्या उत्तर देवेगा १६ बहुरि सत्रहवीं युक्ति यह है कि जब किसीको कुछ रोग होवे तब उस से जाकर पूछे और यद्यपि उसके साथ मित्रता कुछ न होवे तबभी रोगी की सुरति लेना प्रमाण है और सर्वप्रकार रोगी मनुष्य की सेवा और सहायता करे बहुरि रोगी को चाहिये है कि जब कोई उसको आकर पूछे तब भगवत् का धन्यवाद करे और दुःख का अधिक बखान न करे और ऐसे जाने कि इस दुःख से मेरे पाप खण्डित और नष्ट होवेंगे और रोगका दूरहोना औषधके आश्रित नहीं ताते सर्व प्रकार भगवत् का भरोसा करे १७ बहुरि अठारहवीं युक्ति यह है कि जिस प्रकार यह युक्तियें मैंने वर्णन करी हैं तिन विषे सावधान होवे और ऐसे पड़ोसियों पर भी दया राखे काहेसे कि जिसके साथ व्यवहार में इसका अधिक सम्बन्ध होताहै तब उसके मिलाप में भी भाव और दया रखनी प्रमाण है ताते

चाहिये कि निकट रहनेवाले को भी किसी प्रकार दुखावे नहीं और उसके साथ भलाईकरे अथवा जब उसको निर्द्धन देखे तब उसकी सुरति लेवे तैसे ही संबन्धियों और दास दासियों परभी सर्वदा दयाकरे तात्पर्य यह है कि सर्व मनुष्यों का अधिकार देख कर बर्ते और जिसके साथ व्यवहार अथवा परमार्थ कुछ निकटता होवे तब उसकी युक्ति को पहिंचाने कि यह कितने भाव और सत्कार उपकार का अधिकारी किस रीति से है तिसके साथ उसी भांति वर्ते ईर्षा और अभिमान कृपणता आदिक मलिन स्वभावों से रहित होवे और किसीका कृतघ्नी न होवे बहुरि भाव और दया और सहनशीलता बिषे अपनी आयुष् बितावे इसी पर महापुरुषने भी कहाहै कि जब कोई तुम्हारा विरोधी होवे तोभी उसके साथ भलाईही करो और जब तुमको कुछ देवे नहीं तब तुमहीं उसको कुछदेवो ॥

चौथा सर्ग ॥

एकान्त के वर्णन में ॥

तातें जान तू कि इस वार्त्ताबिषे बुद्धिमानोंनें परस्पर चर्चा कियाहै सो कितनों ने तो आचार्यों की सङ्गति को विशेष कहाहै और कितनों ने एकान्त रहनेको प्रमाण किया है पर जो जिज्ञासु अन्तर्मुख हुये हैं तिन्हों ने एकान्तको अङ्गीकार किया है इसीपर एक सन्तने कहा है कि जिसने भोगों से संयम किया है तिसको जगत्की कामना कुछ नहीं रही और जिसने ईर्षा का त्याग किया है सो दयावान् होताहै और जिसने कुछ दिन पुरुषार्थ कियाहै सो अविनाशी सुख को प्राप्त हुआहै और जिसने एकान्त को अङ्गीकार किया है सो जगत् के जञ्जालोंसे छूटाहै और एक और सन्त ने कहा है कि भजन के अभ्यास का मूल मौन और एकान्तहै और एक और सन्तने कहाहै कि जो पुरुष मुझको प्रमाण न करे और जब मैं रोगी होऊं तब मुझको आकर न पूछे तब मैं उसका उपकार जानताहूं और किसी जिज्ञासुने एक सन्तसे कहाथा कि मैं तुम्हारी संगति किया चाहता हूं तब उसने कहा कि जब मेरी मृत्यु होवेगी तब तू किसके सङ्ग रहेगा तब उसने कहा कि तब मैं भगवत्के आश्रित रहूंगा तब उसने कहा कि तू अब हीं भगवत्का सङ्गी हो सो एकान्त और सङ्गति की महिमा बिषे ऐसे ही वचन बहुत आयेहैं पर जबलग इनके गुण और अवगुण को प्रकट न किया जावे तबलग समझना इस भेद का कठिन है ताते मैं एकान्तके षट्गुण वर्णन करताहूं

फिर संगति के षट्गुण वर्णन करूंगा सो एकान्त का प्रथम गुण यह है कि भजन और विचार की सिद्धता एकान्त विषे होती है और सर्व भजन का मूल यह है कि भगवत्की कारीगरी का विचार करना और इससे भी उत्तम अवस्था यह है कि अपने चित्तकी वृत्तिको भगवत् के स्वरूप विषे लीनकरना और आप सर्व पदार्थों को विस्मरण करना सो ऐसी एकत्रता एकान्त विना सिद्ध नहीं होती काहेसे कि माया के सर्व पदार्थ इस जीव को वध्यमान करनेवाले हैं और जिज्ञासुकी बुद्धि में ऐसा बल दुर्लभ होता है जो संसार विषे निर्लेप रहै ताते अभ्यासके निमित्त एकान्तमें रहनाही विशेष है काहेसे कि महापुरुषभी आदि अवस्थों में पहाड़ की कन्दरा में जाय रहेथे बहुरि जब पूर्ण अवस्था को प्राप्त हुये अभ्यास करके तब ऐसे निर्लेपहुये कि शरीर करके लोगों में रहे और चित्त उन का भगवत् के चरणों में रहा और महापुरुष ने यों कहा भी है कि मुझको भगवत् की प्रीतिने और सबकी प्रीति से विरक्त किया है सो इस अवस्था का प्राप्त होना आश्चर्य नहीं इस करके कि यह जीव परमपद का अधिकारी है इसीपर एक सन्तने कहा है कि मैं तीसवर्ष से भगवतही के साथ वचन कहताहूं और यह लोग ऐसे जानते हैं कि हमारे साथ बोलता है ताते प्रसिद्ध हुआ कि इस अवस्था की प्राप्ति असम्भव नहीं काहे से कि जब किसी मनुष्य को किसी स्थूल पदार्थ की अधिक प्रीति होती है तो भी ऐसा लीन होजाता है कि लोगों में बैठा हुआ भी उनके वचनों को नहीं सुनता और उनको देखता भी नहीं पर ऐसी अवस्था का अभिमान करना अयोग्य है क्योंकि बहुत से पुरुष तो ऐसे होते हैं कि लोगों के मिलाप विषे उनकी बुद्धि पसरजाती है इसीपर एक वार्त्ता है कि जैसे एक तपस्वी से किसी ने पूछा था कि तू अकेलाही रहता है तब तपस्वी ने कहा कि मेरा संगी भगवत् है ताते मैं अकेला नहींहूं॥ बहुरि एक और सन्त ने किसी एकान्ती से पूछा था कि तू अकेला क्यों रहता है और तैंने संग का किस निमित्त त्याग किया है तब उसने कहा कि मैं अपने कार्य में ऐसा मग्नहूं कि किसी के मिलाप की इच्छा मुझको नहीं फुरती बहुरि उस सन्तने पूछा कि वह कार्य क्या है? तब उसने कहा कि क्षण २ में सर्वदा भगवत् के उपकार होते रहते हैं और मुझ से पाप होते रहते हैं ताते मैं अपने पापों को क्षमा करावता हूं और महाराज के उपकारों का धन्यवाद करताहुआ रहता हूं

इसीकारण से मुझको किसी के मिलाप का सावकाश नहीं रहता और न अभिलाष करसक्ताहूं बहुरि उस सन्तने कहा कि तू धन्य है॥ बहुरि एक जिज्ञासु किसी सन्त के निकट गया था तब उन्हों ने पूछा कि तू किस निमित्त आया है तब उसने कहा कि आप के संग में विश्राम के निमित्त आयाहूं तब उन्होंने कहा कि जिसने भगवत को पहिंचाना है वह और किसी के मिलाप में क्योंकर विश्राम चाहता है बहुरि एक और सन्त ने कहा है कि जब रात्रि आवती है तब मैं प्रसन्न होता हूं कि प्रभातपर्यन्त एकान्त होकर भगवत् के भजन में स्थित रहूंगा बहुरि जब सूर्य उदय होते हैं तब मुझको शोक होता है कि दिन में अवश्यही लोगों का विक्षेप होवेगा बहुरि एक और सन्त ने कहा है कि लोगों के वाद विवाद से जिसकी प्रीति महाराज के भजन में अधिक नहीं होती वह पुरुष बुद्धिहीन है और उसका हृदय भी मलिन है अपनी आयुष् व्यर्थ बितावता है बहुरि एक और बुद्धिमान् ने कहा है कि जिस पुरुष को किसी मनुष्य के मिलने और देखने की अभिलाष उपजती है तब जाना जाता है कि इसके हृदय में आतमसुख का रस कुछ नहीं ताते स्थूलपदार्थों की सहायता चाहता है और योंभी कहा है कि लोगों के मिलाप में जिस पुरुष की प्रीति है वह अत्यन्त निर्द्धन है ताते प्रसिद्ध हुआ कि उत्तम भजन हृदय का अभ्यास है और अभ्यासही करके भजन का रहस उपजता है बहुरि विचार और ज्ञान की प्राप्ति अभ्यासही करके होती है सो यह सर्व साधनों का फलहै काहे से कि इस जीव को परलोक में अवश्य जाना है सो जब यह पुरुष महाराज के भजन की एकत्रता के साथ वहां जाता है तब उत्तम भाग्यवान् कहाता है पर भजन का रहस और विचार का अभ्यास एकान्त बिना हो नहीं सक्ता १ बहुरि दूसरा गुण यह है कि एकान्त करके कितनेही पापों से छूटता है काहे से कि लोगों के मिलाप में चार पाप तो अवश्यमेव उपजते हैं और इन पापों से कोई बिरलाही छूटता है सो प्रथम पाप निन्दा है कि निन्दा करके धर्म नष्ट होताहै और दूसरा पाप यह है कि जब किसी मनुष्य का अपकर्म देखकर उसको उपदेश न करे तब शास्त्रों की मर्याद से बिमुख होता है और जब उपदेश करके उसको पाप से बर्जना चाहे और उसकी रुचि न होवे तब उस पुरुष के साथ बिरोध होताहै बहुरि तीसरा पाप दम्भ और कपट है सो दम्भ से छूटना भी महाकठिन है काहे

से कि जब किसी की मनोहार में और उसकी प्रीति में दृढ़ होवे तब बिक्षेपता को पाता है और जब ऐसे न करे तब उनके विरोधसे नहीं छूटसक्ता बहुरि थोड़ा सा पाप तो यह है कि जब अचानकही किसी को मिलता है तब ऐसे कहताहै कि मुझको तुम्हारे दर्शन की बहुत अभिलाष थी सो जब इसके हृदयमें उसकी प्रीति ही कुछ न होवे तब ऐसा कहना झूठहोता है और जब इस प्रकार न कहे तब उसकी मनोहार नहीं होती बहुरि मनोहार के निमित्त उससे पूछता है कि तेरा क्या हाल है? और तेरे संबन्धी कैसे हैं पर हृदय में उसकी प्रीति कुछ नहीं रखता तब यह केवल पाखण्ड होताहै इसी पर एक सन्तने कहा है कि जब किसी के साथ इसका प्रयोजन होता है तब अपने मनोरथ के निमित्त इतनी स्तुति करताहै कि अपने धर्महीसे भ्रष्ट होजाता है और वह प्रयोजन भी सिद्ध नहीं होता बहुरि कपट करके भगवत् की ओरसे विमुख होता है इसी पर एक और वार्त्ता है कि एक पुरुष किसी सन्तके पास आया था तब सन्त नें पूछा कि तू किस निमित्त आया है तब उसनें कहा कि तुम्हारे दर्शन की प्रीति करके आया हूं तब उन्होंने कहा कि तू तो प्रीतिके दूर करने को आया है काहेसे कि तू मेरी होती और अनहोती स्तुति करेगा और मैं तेरी बड़ाई को प्रकट करूंगा सो यह सबही झूंठ और पाखण्ड है तातें जो पुरुष आपको संसार के मिलाप में भी बचाय रखता है उसको मिलाप करके कुछ विघ्न नहीं होता पर यह अवस्था महादुर्लभ है इसीकारण से जो आगे प्रीतिमान् हुये हैं वह परस्पर एक दूसरे के व्यवहार की वार्त्ता नहीं पूछते थे इसीपर एक वार्त्ता है कि एक प्रीतिमान् ने एक प्रीतिमान् से पूछाथा कि तेरी क्या अवस्था है? तब उसने कहा कि सुख और आनन्द है तब दूसरे सन्त ने कहा कि सुख आनन्द तो तबहीं होवेगा जब आत्मसुख को प्राप्तहोगे बहुरि एक और सन्तसे भी किसी ने पूछा था कि तुम्हारी क्या अवस्था है? तब उन्होंने कहा कि जिसपद करके सुख प्राप्त होता है तिसका प्राप्तहोना मेरे हाथ नहीं और जिन कर्मों करके दुःख प्राप्त होता है तिनका निवृत्त करना भी मुझसे नहीं होसक्ता बहुरि मैं सर्वदा अपनी चितवनी में बध्यमान रहता हूं और कार्य मेरा महाराज के हाथ है तातें मुझसा दुःखी और अनाथ कोई नहीं॥ बहुरि एक और सन्त से किसी ने पूछा था तब उन्होंने कहा कि मैं महापापी और निर्बल हूं तातें अपनी प्रारब्ध को पड़ा भोगता हूं और काल की ओर खड़ा

निहारता हूं॥ वहुरि इसी प्रकार किसी ने एक और सन्त से पूछा था कि तेरी क्या अवस्था है? तो उन्होंने कहा कि सुख है तब उसने कहा कि सुख तो तब होवे जब नरकों के दुःख से निर्भय हूजिये वहुरि एक और सन्त से किसीने पूछाथा कि तुम्हारी क्या अवस्था है? तब उन्होंने कहा कि जो पुरुष प्रभात समय उठे और इतना भी न जानसके कि मैं रात्रिपर्यन्त जिऊंगा अथवा न जिऊंगा तब उसकी क्या अवस्था वर्णन करिये? वहुरि एक सन्त से किसी ने पूछा कि तुम्हारी क्या अवस्था है तब उन्होंने कहा कि जिस पुरुष की आयुर्वल तो घटती जावे और पाप वढ़तेजावें उसकी क्या अवस्था वर्णन करिये? वहुरि एक और बुद्धि-मान् से किसीने पूछाथा कि क्या अवस्था है? तब उन्हों ने कहा कि दिया तो महाराज का खाताहूं और आज्ञा मन की मानताहूं वहुरि एक और सन्त से किसी ने अवस्था को पूछा तब उन्होंने कहा कि जिसकी आयुर्वल क्षण २ घटती जावे और वह जाने कि मैं बड़ा होता जाताहूं तब उसकी क्या अवस्था वर्णन करिये? वहुरि एक और सन्त से किसीने पूछा था कि तुम्हारा क्या हाल है तब उन्होंने कहा कि जिस पुरुष को अवश्यही मरनाहोवे और परलोक में दण्ड का अधिकारी होनाहोवे तब उसकी कौन अवस्था कहिये वहुरि एक सन्त से किसी ने पूछा कि तुम्हारी क्या अवस्था है? तब उन्होंने कहा कि जो मेरा एक दिन भी सुखसे वीते तौभी भला है तब उसने कहा कि क्या अब तुमको सुख नहीं? तब उन्होंने कहा कि जिस दिन मुझसे कोई पाप न होवे तब मैं सुख का दिन वही जानताहूं वहुरि एक प्रीतिमान् से मृत्युसमय किसी ने पूछाथा कि तुम्हारी अब क्या अवस्था है? तब उन्होंने कहा कि जिसको दूरदेश जाना होवे और उसके पास तोशा कुछ न होवे और महाघोर अँधेरे में जिसका मार्ग होवे तिस समय मार्ग में जाना जिसको होवे और संगी भी कोई न होवे वहुरि न्याय करनेवाले महाराज के सम्मुख पहुँचना होवे और वहां आपको बचने का आश्रय भी कुछ न होवे तब उसकी क्या अवस्था वर्णन करिये॥ वहुरि एक और सन्त ने किसी पुरुष से पूछाथा कि तेरा क्या हाल है तब उसने कहा कि मुझको पांचसौ रुपये देने हैं तिसके शोच में रहताहूं तब उन्होंने सहस्र रुपये उसको देकर कि पांच सौ तो देना देवो और पांचसौ रुपये से अपनी जीविका करो और फिर इस प्रकार कहनेलगे कि जब प्रीति करके किसी की अवस्था पूछिये और उसका

दुःख सुनकर सहायता न करिये तब वह पूछनाही कपट होता है ताते इसप्रकार चाहिये कि जब किसीसे कुछ पूछिये तब उसका प्रतिपाल करिये अथवा पूछेही नहीं ताते आगे जो प्रीतिमान् सन्त हुये हैं तिनकी ऐसी अवस्था थी कि यद्यपि व्यवहार में परस्पर अपनी प्रीति प्रकट करते थे तौभी हृदय करके एक दूसरे को ऐसा प्रियतम रखते थे कि जब किसी को कुछ अर्थ होताथा तब अपनी कुछ सामग्री दुराय नहीं रखते थे और इस समय विषे अब ऐसे लोग प्रकट हुये हैं कि एक दूसरेकी मनोहार के निमित्त उनके सम्बन्धियों और पशुवों की भी बात पूछते हैं और जब उसको एक पैसे का भी अर्थ होताहै तौ विमुख होजाते हैं सो यह सांची प्रीति नहीं कहाती इसी का नाम कपट की प्रीतिहै ताते इस जगत् के मिलाप का ऐसाही स्वभाव है कि जब हृदयपूर्वक इनके साथ मिलाप करिये तब कपट और पाखण्ड के समुद्र में डूबना होता है और जब उनको मिलकर ऐसे मनोहार न करिये तब यह लोग विरोधी होजाते हैं और इस का छिद्र ढूंढ़नें लगते हैं और इस करके अपना धर्मभी खोवते हैं और इसके धर्म को भी नष्ट किया चाहते हैं बहुरि जगत् के मिलाप में चौथा पाप यह है कि यह मनुष्य जिसकी संगति करता है तब अवश्यही उसका स्वभाव इसके हृदय में दृढ़ होजाता है और यद्यपि इसको उस स्वभाव का ज्ञानही कुछ नहीं होता तौ भी निस्संदेह वह स्वभाव बढ़जाता है और उस करके कितनेही पाप उपजते हैं और अचेत पुरुषों की संगति में यह भी अचेत होजाता है बहुरि जब मायाधारियों की संगति करता है तब इस को भी माया की तृष्णा उपज आती है और यद्यपि किसी भोग को निन्धही जानता है पर भोगी मनुष्यों की संगति करके उस कर्म की दोषदृष्टि नष्ट होजाती है बहुरि जब किसी अपकर्म की वार्त्ता सुनता हैं तब इसके हृदय में भी उसकी मलिनता प्रवेश करजाती है जैसे महापुरुषों की वार्त्ता सुनकर इसका हृदय कोमल होजाता है तैसेही भोगियों और पापियों की वार्त्ता सुनकर इसको भी रुचि उपजआती है ताते प्रसिद्धहुआ कि जिसकी वार्त्ता सुनने से इसका हृदय मलिन होवे तब उसकी संगति में क्यों न मलिनता उत्पन्न होवेगी ? इसीपर महापुरुष ने भी कहा है कि कुसङ्गी मनुष्यों की संगति ऐसीही है जैसे कोई लुहार के निकट जाबैठे अर्थ यह कि यद्यपि अपने वस्त्र को जलने से बचा राखे तौभी उष्णता और धुवां तो अवश्यही पहुँचेगा

बहुरि सात्त्विकी मनुष्यों की सङ्गति जो है सो गन्धी के हाट की नाईं है कि यद्यपि उससे मोल करके सुगन्ध न लेवे तौभी उसकी सुगन्धता तो निस्सन्देह नासिका में पहुँचती है तात्पर्य यह है कि मनमुखों की संगति से अकेलाही रहना भला है और अकेला रहने से सात्त्विकी मनुष्यकी संगति विशेष है इसी पर सन्तजनों ने कहा है कि जिस पुरुष की संगति में मायाकी प्रीति दूर होवे और भगवत् की प्रीति उत्पन्न होवे तब उसकी संगति को उत्तम जानो और कदाचित् उसका त्याग न करो बहुरि जिसकी संगति से तुमको विषयों में प्रीति होवे तिसका त्यागनाही भला है पर वह विद्यावान् जो माया का लोभी होवे और उसकी करतूति वचन के अनुसार न होवे तब उसकी संगति का त्यागना अवश्यही प्रमाण है काहे से कि उसकी संगति करके जिज्ञासु की प्रीतिही घटजाती है क्योंकि जिज्ञासुकी बुद्धि आदि अवस्था में परिपक्क नहीं होती सो विद्यावान् को देखकर जिज्ञासु भी ऐसा अनुमान करता है कि जब माया का त्यागना विशेष होता तब यह विद्यावान् क्यों नहीं त्याग करता सो इसका दृष्टान्त यह है कि जैसे कोई पुरुष प्रीतिसंयुक्त मिठाई को खाताजावे और मुख से इस प्रकार कहे कि यह मिठाई हालाहल अर्थात् विष है ताते इसके आहार की अभिलाष न करो तब उसके वचनपर किसी को प्रतीति नहीं आवती काहे से कि उसकी प्रीति करके खानाही तृष्णा को उपजाता है और इसमें यही सिद्ध होता है कि यह पुरुष अपने लोभ के निमित्त मिठाई को विष बताता है तैसेही ऐसे मनुष्य भी बहुत से हैं कि उनको आदि में अशुद्ध आहार और पापों विषे दोषदृष्टि होती है पर विद्यावानों को निःशङ्क देखकर उनकी दोषदृष्टिभी नष्ट होजाती है और निडर होकर बर्तने लगते हैं इसी कारण से विद्यावानों का छिद्र प्रकटकरना महाअयोग्य है इस करके कि प्रथम तो निन्दा होती है दूसरे उसकी वार्ता सुनकर और लोग भी ढीठ होजाते हैं ताते इतरजीवों का अधिकार यह है कि जब किसी विद्यावान् के छिद्र को देखे तब दो प्रकार करके ग्लानि को निवारण करे सो प्रथम तो ऐसे जाने कि यद्यपि इस विद्यावान् से यह अवज्ञा हुई है तौ भी उसकी विद्याही पापों को क्षमा करानेवाली है पर जो मनुष्य विद्या से भी हीन होवे तो उसकी अवज्ञा क्योंकर क्षमा होवेगी और दूसरे ऐसे जानना प्रमाण है कि विद्या करके जो पापकर्म को बुरा जानता है और उस

विषे बर्त्तमान भी होता है तो उसका बर्तना संसारी जीवों की नाईं नहीं होता काहे से कि विद्यावानों की युक्ति को संसारीजीवों की बुद्धि पा नहीं सक्ती ताते इतरजीवों को चाहिये कि विद्यावानों के ऊपर दोषदृष्टि न राखैं तब उनका धर्म नष्ट न होवे तात्पर्य यह कि बहुत से मनुष्यों की संगति भी इसके धर्म को नाश करनेवाली है ताते जिज्ञासु को चाहिये कि जगत् के मिलाप से एकान्तही रहै तो विशेष है २ बहुरि तीसरा गुण यह है कि सब संसार में वैरभाव और ईर्षा और पन्थों के विरोध आदिक विघ्न बड़े उपजते हैं सो एकान्त रहनेवाला पुरुष उन सब विघ्नों से मुक्त रहता है और जिसने जगत् के मिलाप को अङ्गीकार किया है तिसके धर्म के नाश होने का भय होता है इसी पर महापुरुष ने भी कहा है कि लोगों की संगति त्यागकर अपने घर में बैठरहो और रसना को अधिक बोलने से बर्ज राखो और जिसको तुम भलाई समझतेहो तिसको अङ्गीकार करो और जिस करतूति के भेदको तुम समझ न सको उसको त्यागकरके आत्मधर्म विषे स्थित होवो और संसार के कार्यों को विस्मरण करो ३ बहुरि चौथा गुण यह है कि एकान्त रहनेकरके यह पुरुष लोगों की उपाधि से मुक्त रहताहै काहेसे कि जब लोगों के साथ मिलाप करता है तब निन्दा और दोषदृष्टि और लोभ से रहित नहीं होसक्ता और जब संसारी जीवों के सुख दुःख का संगी होता है तब इसकी सर्व आयुर्बल व्यर्थ होती है और जब ऐसे न करे तब वह लोग इसको बुरा जानकर दुर्वचन कहते हैं बहुरि जब किसी के साथ तो मिलापकरे और किसी से एकान्त रहे तौभी विषमता होती है और वह भी एक दूसरे को देखकर बिरोधी होते हैं ताते जब सर्वत्याग करके एकान्त में स्थित होता है तब सब विघ्नों से मुक्त रहता है और कोई मनुष्य भी अप्रसन्न नहीं होता इसी पर एक वार्त्ता है कि एक प्रीतिमान् सर्वदा भगवत् वाक्य की पोथी को लेकर श्मशान में रहता था तब किसी ने पूछा कि तुम अकेले क्यों रहते हो तब उसने कहा कि एकान्त के समान सुखस्थान और कोई मैंने नहीं देखा और श्मशान समान उपदेष्टा भी और कोई नहीं और पोथी के समान सुखदायक मित्र भी और कोई नहीं देखा ४ बहुरि पांचवां गुण यह है कि एकान्ती पुरुष से सबलोग भी निराश होजाते हैं और वह भी सब से निराश होजाता है और यह आशाही सर्व दुःखों का मूल है क्योंकि जब धनवानों

के साथ मिलाप करताहै तब अवश्यही इसको भी तृष्णा उपजती है बहुरि जब तृष्णा उत्पन्न हुई तब निरादर और अपमान को पाता है इसी पर महापुरुष ने भी कहा है कि मायाधारी जीवों की सुन्दरताई को न देखो इस करके कि यह माया ही उनको छलनेवाली है बहुरि योंभी कहा है कि जब तुम धनवानों के सुखकी ओर देखोगे तब भगवत् के उपकार से बिमुख होवोगे और अधिक सुखों की अभिलाष बिषे दुःख पावोगे ५ बहुरि छठवां गुण यह है कि एकान्त करके मूर्खों और पापियों की संगति से छूटजाता है सो मूर्खों की संगति कैसी है कि उनका देखनाही चित्त को मलिन करता है इसी पर एक बुद्धिमान् ने कहाहै कि जैसे ज्वर करके शरीर दुःखी होताहै तैसेही मूर्खों की संगति करके हृदय तपाय-मान होता है ताते एकान्त बिषे ऐसे परमदुःख से मुक्त रहता है और स्वाभाविक ही इसके गुण औ अवगुण की ओर दृष्टि नहीं पड़ती ६ (अथ प्रकट करना संगति के गुणों का) ताते जान तू कि जितने अर्थ और परमार्थ के लाभ हैं सो परस्पर मिलाप करके प्राप्त होते हैं और एकान्त करके उनको पा नहीं सक्ते सो प्रथम लाभ यह है कि विद्याभी संगति करके प्राप्त होतीहै और जबलग यथार्थविद्या का वेत्ता न होवे तबलग एकान्त रहना भी फलदायक नहीं होता काहेसे कि जो पुरुष विद्या पढ़े विना एकान्त बिषे स्थित रहताहै तब निद्रा और व्यर्थ संकल्पों में उसका समय बीतजाता है और यद्यपि यत्न करके भजनमें सदा लगारहै तौभी यथार्थविद्या के समझे विना अभ्यास नहीं होता और छलों से रहित नहीं हो सक्ता बहुरि जब अभिमान से भी रहित होवें तब जिसप्रकार भगवत् को जानना चाहिये सो यथार्थविद्या विना किसी प्रकार जान नहींसक्ता और किसी ऐसे विप-रीत निश्चय को अङ्गीकार करता है कि उस करके भगवतही से विमुख होजाता है अथवा मन्मथ करके किसी कुमार्ग को अङ्गीकार करलेता है और उस कुमार्ग के अवगुण को जान नहींसक्ता तात्पर्य यह कि एकान्तमें रहना भी किसी विद्या-वान्ही को फलदायक होताहै इसी कारण से इतरजीवों को एकान्त प्रमाण नहीं कहा काहेसे कि इतरजीवों की बुद्धि रोगी की नाईं है अर्थ यह कि रोगी को वैद्यकी संगति का त्यागकरना प्रमाण नहीं और जब वह रोगी आपही अपना उपचार करनेलगे तब शीघ्रही मृत्यु को पावता है इसीकारण से शुभ उपदेश और विद्या का फल भी अधिक है इसी पर महापुरुष ने भी कहा है कि जो पुरुष

यथार्थविद्या को समझा होवे और उसके अनुसार उसकी करतूति भी होवे बहुरि और लोगों को भी उपदेशकरे तब उसकी अवस्था महाउत्तम कहीजाती है सो किसी को उपदेश करना भी एकान्त में नहीं होसक्ता ताते प्रसिद्ध हुआ कि किसी को उपदेश करना और किसीसे कुछ उपदेशलेना यह दोनों एकान्त में नहीं सिद्ध होसक्के पर उपदेश करने का अधिकारी वह है जिसकी मंशा निष्काम होवे और धनवान् के प्रयोजन रहितहोवे बहुरि विद्या भी वही सिखावे जिस करके धर्मकी प्राप्ति होवे और जिज्ञासु के अधिकार अनुसार उपदेशकरे पर जब वह विद्यार्थी यथार्थ की युक्ति को अङ्गीकार न करे तब जानिये कि वह भी मानके निमित्त ही पढ़ता है ताते जिज्ञासु को यही उपदेशकरना योग्य है कि उत्तम पवित्रताई हृदय की शुद्धताहै सो हृदय तबहीं शुद्ध होता है जब मायिक पदार्थों से विरक्त होता है ताते सर्वमन्त्रोंका वीजमन्त्र यही है कि स्थूलपदार्थ सब नाशवन्त हैं और भगवत् सर्वदा सत्यस्वरूप है ताते सर्वप्रकार महाराजही का दासहुआ चाहिये और २ किसी पदार्थ में सक्त न होवे क्योंकि जो पुरुष अपनी वासना में बध्यमान है वह अपनी वासनाही का दास है और उसने यथार्थभेद को समझा नहीं ताते यथार्थभेद यह है कि मलिन स्वभावों से मुक्त होना और उत्तम स्वभाव को ग्रहण करना और उत्तम विद्या विषे जिसकी प्रीति न होवे और नाना प्रकारके प्रवृत्ति मार्गोंकी विद्या पढ़नाचाहै तब जानिये कि यह विद्यार्थी धन और मान के निमित्त विद्या को पढ़ता है ताते उसको पढ़ावना प्रमाण नहीं काहेसे कि उसकी विद्या विघ्नोंका कारण है तात्पर्य यह कि मनही इस पुरुष का परममित्रहै और मन सर्वदा इसको दुःखों में डालता है पर जो पुरुष मन को विरुद्ध और विपरीत करके जीतने का यत्न नहीं करता और और पन्थों के वाद विवाद और विरुद्ध विषे आसक्त होता है तब ऐसे जानिये कि उसका मनही उसको नचावता है बहुरि इसके हृदय में जो मलिन स्वभाव है जैसे ईर्षा, अभिमान, दम्भ, धनकी प्रीति आदिक जितने अवगुण हैं सो इस जीव की बुद्धि को नाश करनेवाले हैं और हृदय को भ्रष्ट करदेते हैं पर जो पुरुष ऐसे स्वभावों के दूर करने का यत्न न करे और प्रवृत्तिमार्ग की क्रिया को सावधान होकर वारम्बार विचारा करे तब किस प्रकार निर्मल नहीं होता ताते जिस पुरुष की मंशा निष्काम न होवे तब उसको विद्या पढ़ावनी ऐसी है जैसे कोई पुरुष

किसी चोर को तलवार देवे बहुरि जब इस प्रकार कोई प्रश्नकरे कि तलवार तो चोर को शुभमार्ग में नहीं लगाती पर विद्या का पढ़ना ऐसा है कि यद्यपि इस की मंशा सकाम होवे तौभी विद्या के बल करके अकस्मात् निष्काम होजाता है तब इसका उत्तर यह है कि नाना प्रकार के मतों और पन्थों की जो विद्या है सो इस विद्या करके कदाचित् निष्कामता नहीं उपजती काहेसे कि जिस विद्या करके निष्कामता उत्पन्न होती है और भोगों से मुक्त होता है सो विद्या सन्तजनों के वचन हैं और यह विद्या ऐसी है कि सर्व मनुष्यों का अधिकार है और सब किसी को लाभदायक है और जब कोई पुरुष कठोरचित्त होवे और उसकी मंशा मलिनहोवे तब वह पुरुष अकस्मात् लाभसे अप्राप्त भी रहताहै पर जो पुरुष इस उत्तम विद्या का ज्ञाता है और वह अपने हृदयमें कुछ अभिमान की अभिलाषा देखे तब उसको चाहिये कि किसीको उपदेश न करे काहेसे कि यद्यपि उपदेश करके और मनुष्यों को गुणहोता है पर मान की अधिकता करके उसको भगवत् की ओर से अवगुण होजाता है तब इसका दृष्टान्त यहहै कि जैसे दीपक करके मन्दिर में तो प्रकाश होताहै पर वह दीपक क्षण २ विषे घटता जाताहै तैसेही मानी के उपदेश करके औरों को गुण होवे पर उसकी परमहानि का कुछ उपाय उस करके नहीं और वृद्धि होती जाती है इसीपर एक सन्तने कहाहै कि मैंने सात संदूक पोथियों के पृथ्वी में दबवादिये और उपदेश लोगों को नहीं किया जब किसीने पूछा कि आप उपदेश क्यों नहीं करते तब उन्होंने कहा कि मेरे हृदय में जब मौनकर रहने की अभिलाष होती तब मुझको उपदेश करना प्रमाण था पर मैं अपने हृदय में उपदेश करने की अभिलाष अधिक देखता हूं ताते उपदेश करने को त्यागकरके मैंने मौन को अङ्गीकार कियाहै इसीपर एक सन्तने एक जिज्ञासु से कहाथा कि तेरी अवस्था तो उत्तम है पर जब तुझको माया की प्रीति न होती तब उसने पूछा कि माया के साथ मेरी प्रीति क्योंकर है बहुरि उस सन्तने कहा कि जगत के मिलाप और उपदेश करने की तेरे में अधिक रुचि है तब उस जिज्ञासु ने कहा कि मैंने अब इससे आगे को उपदेश करने का त्याग किया तात्पर्य यह है कि विद्या का पढ़ने और पढ़ाने हारा निष्कामी कोई बिरला होताहै ताते अधिकारी विना विद्या का पढ़ावनाही पाप है और पाढ़वना भी उसी को प्रमाण है जिसको अपने का कुछ प्रयोजन न होवे तब ऐसे उपदेश

करनेवालेको एकान्त रहने से उपदेश का करना विशेष है पर उपदेश सुननेवाले को इस प्रकार चाहिये है कि उपदेश करनेवाले पर दोषदृष्टि न लावे और ऐसा जाने कि यह मुझको मेरे कल्याणके निमित्त उपदेश करता है अपने मानके निमित्त नहीं करता सो अपने कल्याण के निमित्त यथार्थ उपदेश को अङ्गीकार करे और उसके ऊपर भावना शुद्धकरे पर जिसका हृदय मलिन होता है वह औरों पर भी भावना मलिन रखताहै और उसको भी अपनी नाईं जानताहै १ बहुरि दूसरा लाभ यह है कि जीवों को प्रसन्नता पहुँचावनी भी संगति करके प्राप्त होती है क्योंकि जिस पुरुष ने एकान्त को ग्रहणकिया है वह किसीकी सेवा नहीं करसक्ता और जो पुरुष किसी को सेवा करके प्रसन्नकरता है उसको प्रसन्नता पहुँचती है २ बहुरि तीसरा लाभ यहहै कि सहनशीलता आदिक जितने गुण हैं सो यह भी संगति विषे प्राप्तहोते हैं क्योंकि जिस पुरुष का मिलापही किसी के साथ न होवे वह सहनशीलता किस प्रकार करे पर जिज्ञासु को सहनशीलता और धैर्य आदिक शुभगुण अवश्यमेंही चाहिये हैं और अधिक लाभदायक हैं इस करके कि इस पुरुष का स्वभाव तबहीं भला होता है जब दुष्टों के वचनों को सहता है इसी कारण से जिज्ञासु जनों ने भिक्षा आदिक कर्मोंको अङ्गीकार किया है और ऐसी क्रिया करके प्रथम तो अभिमान दूर होता है दूसरे लोगों के ताड़ना और दुर्वचनों को सुनकर क्षमा और सहनशीलता की वृद्धि होती है सो यद्यपि इस समय में लोगों की कामना धन और मानके निमित्त होती है पर पहले जिज्ञासु जन इसी मनोरथ से संग करते थे कि जिस से अभिमान टूटे और सन्तों की सेवा करके कृपणता भी दूर होवे और उनकी अशीष को प्राप्त करें और आदि अवस्था में महापुरुषों ने भिक्षा आदिक कर्म इसी कारण करके प्रमाण किये हैं काहेसे कि जिसका स्वभाव सहनशील नहीं होता वह लोगों के वाद विवाद में आसक्त होजाता है तात्पर्य यह कि क्षमा और सहनशीलता जो जिज्ञासु के धर्म को दृढ़ करनेवाली है तिसको एकान्त विषे पाय नहीं सक्ता पर जो पुरुष किसीका वचन सह न सके उसको एकान्तमें रहनाही भलाहै और जो पुरुष तितिक्षा भिक्षा आदिक और सन्तसेवा करके भली प्रकार करचुका है और तिस करके निरभिमानता और सहनतादिक गुण पायचुका है तिसको भी एकान्तही रहना योग्यहै काहे से कि तितिक्षा आदिक साधनों से यह प्रयोजननहीं

है कि सदा दुःख और कष्टही उठावे जैसे औषध से केवल कटुता प्रयोजन नहीं और रोग की निवृत्ति होना उससे प्रयोजन है जब रोग सर्वप्रकार दूर हुआ तब औषधियों की कटुता का कष्टसहना व्यर्थ है इसी प्रकार सब साधनों से श्रीभगवत् पदारविन्द में प्रेमभक्ति की प्राप्ति प्रयोजन है और जो पदार्थ भक्ति के बाधक हैं उनका दूर होना जिस करके निर्विघ्न और निश्चित महाराज के स्मरण में परायण रहै बहुरि जो पुरुष उपदेश करनेवाला है उसको भी एकान्त रहना प्रमाण नहीं सो जैसे शिष्य को श्रीगुरु की संगति का त्याग आदि में अयोग्य है तैसे ही गुरु को भी जिज्ञासुओं के वियोग करके एकान्त रहना प्रमाण नहीं पर मिलाप में भी जब दम्भ और मान का आवरण न होवे तबहीं ऐसी संगति एकान्तसे विशेष है ३ बहुरि चौथा लाभ यह है कि नानाप्रकार के संशय और संकल्प भी संगति करके दूर होते हैं काहे से कि जब यह पुरुष एकान्त में स्थित होता है तब अकस्मात् ऐसे संकल्प उत्पन्न होते हैं कि उन करके भगवद्भजन में पटल होता है सो वे संशय आप करके दूर नहीं होते ताते उनके दूर करने का उपाय सात्त्विकी मनुष्यों की संगति है इसी पर एक सन्त ने कहा है कि चित्त का खुलना सात्त्विकी संगति करके होता है काहे से कि इस मन का ऐसाही स्वभाव है कि जब इसको एकही क्रिया में स्थित करिये तब शून्यता करके अन्ध होजाता है बहुरि सात्त्विकी संगति में जब पहुँचता है तब वह शून्यता दूर हो जाती है इसी कारण से चाहिये कि नित्यप्रति किसी सात्त्विकी मनुष्य की संगति करे बहुरि उससे अपना अवगुण प्रकट करके कहे और जीविका आदिक क्रिया पूछलेवे तो भला है पर अचेत पुरुष की संगति एक घड़ी भी बुरी है काहे से कि सारे दिनभर में अभ्यास करके जितना हृदय निर्मल होताहै वह निर्मलता मूर्खों की संगति से दूर होजाती है इसी पर महापुरुष ने भी कहाहै कि जब यह पुरुष किसी मनुष्य के साथ प्रीति करता होवे तब चाहिये कि प्रथमही इस प्रकार विचार करे कि मैं इसके साथ किस गुण के निमित्त प्रीति करता हूं ४ बहुरि पांचवां लाभ यह है कि परस्पर भाव और प्रीति की रीति भी संगति में प्राप्त होती है और जो पुरुष एकान्त में स्थित रहता है वह सात्त्विकी मनुष्यों की प्रीति और भावरूपी लाभ को नहीं पाता ५ बहुरि छठवां लाभ यह है कि लोगों के मिलाप और उनकी नाईं वर्तने करके दीनता और नम्रता प्रकट होती है और एकान्त

करके चित्तमें अभिमान की वृत्ति फुरती है अथवा यों भी होता है कि कितने पुरुष स्वामी होने के निमित्त एकान्त को अङ्गीकार करते हैं ताते किसी महा-पुरुष के दर्शन को भी नहीं जाते और ऐसेही चाहते हैं कि लोग हमारे दर्शन को आवें सो ऐसा अभिमान महाअयोग्य है इसी पर एक वार्त्ता है एक नगर में कोई ऐसा बुद्धिमान् हुआ था कि उसने तीनसौ साठ ग्रन्थ बनाये थे और ऐसे जाननेलगा कि मैं भगवत् के निकट प्राप्त हुआ हूं तब उसको आकाशवाणी हुई कि तैंने आपको जगत् में प्रकट किया है सो मैं इस बड़ाई को प्रमाण नहीं करता तब वह बुद्धिमान् इस वचन को सुनकर सब त्यागकर एकान्त में रहनेलगा और ऐसे जाना कि अब मेरे ऊपर भगवत् प्रसन्न हुआ है बहुरि आकाशवाणी हुई कि मैं तेरे ऊपर अब भी प्रसन्न नहीं हुआ क्योंकि अब भी तैंने आपको स्वामी बनाया है तब वह बुद्धिमान् एकान्त को त्यागकर बाहर आया और खान-पान आदिक लोगों की नाईं वर्तनेलगा और अभिमान से रहित होकर समान भाव विषे स्थित हुआ तब आकाशवाणी हुई कि अब तू मेरी प्रसन्नता को प्राप्तहुआ है तात्पर्य यह कि जिस पुरुष की मंशा सकाम है और एकान्त को इस कारण अङ्गीकार किया है कि लोगों के मिलाप करके मेरा मान घटजावेगा अथवा मेरी विद्या और करतूति के छिद्र को कोई देखलेगा तब ऐसे जानाजाता है कि उस ने अपने छिद्र दुरावने के निमित्त एकान्तरूपी परदा डाला है क्योंकि उसको नित्यप्रति यही अभिलाषा दृढ़ होतीहै कि लोग मेरा आकर दर्शनकरें और मुझ को दण्डवत् करें सो ऐसा एकान्त रहना केवल दम्भ है ताते चाहिये कि जब यह पुरुष एकान्त विषे रहे तब भजन और विचार से किसी समय भी अचेत न होवे अथवा विद्या और पाठ में चित्त को लगावे बहुरि जिस पुरुष की संगति में कुछ धर्म का लाभ होवे उसकी संगतिकरे और प्रीति रहित मनुष्य जो मृतक की नाईं हैं तिनकी संगति को न चाहे इसी पर एक वार्त्ता है कि कोई पुरुष बड़ा बुद्धिमान् एक सन्त के निकट आकर कहनेलगा कि मैं तुम्हारे दर्शन को शीघ्र नहीं पहुँचसक्ता हूं ताते मैं अपनी अवज्ञा क्षमा करावता हूं तब उस सन्त ने कहा कि तू इस वार्त्ताको अवज्ञा न जान काहे से कि जैसे और पुरुष लोगों के मिलने को उपकार जानते हैं तैसे मैं न मिलनेवाले का उपकार मानता हूं इस करके कि मुझको सर्वदा काल के आवने की चितवनी रहती है ताते मैं

और किसी के आवने और मिलने की चाह नहीं करता इस करके प्रसिद्ध हुआ कि मान और दम्भ के निमित्त एकान्त रहना बड़ी मूर्खता है क्योंकि जिज्ञासु को ऐसे चाहिये कि यह अपने मन में विचारे कि मेरा कार्य किसी मनुष्य के हाथ नहीं और सब लोग पराधीन हैं बहुरि यों भी है कि जब यह पुरुष पहाड़ की कन्दरा में जाबैठेगा तौ भी दुष्ट मनुष्य योंही अनुमान करेंगे कि यह दम्भ ही के निमित्त कन्दरा में स्थित हुआ है और जो कोई पुरुष महाअशुभ स्थान विषे जावे तौ भी सुहृद् मनुष्य ऐसे जानते हैं कि यह धर्मात्मा पुरुष आप को लोगों के दुरावने के निमित्त ऐसे ठौर में गया होवेगा तात्पर्य यह कि सबलोग दो प्रकार के होते हैं एक मित्र दूसरे शत्रु सो जो इसका मित्र है सो सब कार्यों में इसके ऊपर भला अनुमान करता है और जो शत्रु होता है वह सर्वदा दोष दृष्टि रखताहै ताते जिज्ञासु को जिस प्रकार चाहिये है कि अपने चित्त की वृत्ति को परमधर्म की दृढ़ता में सावधान करे और लोगों के अशुभ वचनों की ओर सुरति न राखे इसी पर एक वार्त्ता है कि एक सन्त ने अपने जिज्ञासु से किसी कार्य के करने को कहा था तब उसने कहा कि लोगों के भय करके इस कार्य को नहीं करसक्ता हूं वह सन्त कहनेलगे कि जबलग जिज्ञासु को दो अवस्था न प्राप्त होवें तबलग यथार्थ भेद को नहीं पहुँचसक्ता सो प्रथम अवस्था यह है कि इस पुरुष की दृष्टि से सब जगत् नष्ट होजावे और भगवत् बिना कुछ और न देखे और दूसरी अवस्था यह है कि जब इसका मन मरजावे ताते जिसप्रकार जगत् इसको कुछ कहे तब इसके चित्त में ग्लानि कुछ न आवे और मान अपमान का भय कुछ न रहे बहुरि एक और सन्त से किसी ने कहाथा कि कितने मनुष्य जो तुम्हारे वचन सुनकर बाहर जाते हैं तब निन्दा करने लगते हैं तब उस सन्त ने कहा कि मेरे चित्त की वृत्ति तो परमपद के पावने की ओर लगी हुई है ताते मुझको लोगों की निन्दा का भय कुछ नहीं है और जिस पुरुष ने लोगों की निन्दा और स्तुति की अभिलाषा का त्याग किया है वह मुक्तरूप है ताते जिज्ञासु को निन्दा और स्तुति की ओर सुरति देनाही अयोग्य है क्योंकि जगत् की निन्दासे रहित नहीं होसक्ता अब इस वचनके निर्णय में मैंने एकान्त और मिलाप के गुण और दोष वर्णन किये हैं ताते जिज्ञासु इस वचन को सुन कर प्रथम अपने अधिकार को विचारे बहुरि जैसा इसका अधिकार होवे तैसीही

वृत्ति को अङ्गीकार करे (अथ प्रकट करनी युक्ति एकान्त रहने की) ताते जान तू कि जब यह पुरुष एकान्त में स्थित हुआ चाहे तब प्रथम ऐसी मंशा करे कि मैं एकान्त को इस निमित्त अङ्गीकार करता हूं कि मेरे वचन और कर्म करके किसी को खेद न पहुँचे और जगत् की उपाधि से मैं भी दुःखी न होऊं बहुरि सर्व जंजालों से मुक्त होकर भगवद्भजन में सावधान होऊं तात्पर्य यह कि एकान्ती पुरुष को भजन और विचार विना रहना किसी समय प्रमाण नहीं अथवा विद्या और शुभ करतूतों में दृढ़ होवे बहुरि लोगों के मिलाप की अभिलाषा करनीभी उसको अयोग्य है और प्रयोजन विना किसीसे नगर की वार्त्ता भी न पूछे काहे से कि यह मनुष्य जैसी बात सुनता है तैसाही संस्कार उसके हृदय में दृढ़होताहै फिर भजन की एकत्रता में वही संकल्प फुरने लगताहै और एकान्त रहने का प्रयोजन यही है कि सब संकल्पों का निरोध होवे ताते एकान्ती को चाहिये कि आहार और वस्त्र का संयम राखे क्योंकि जबलग यह पुरुष संयमको अङ्गीकार नहीं करता तबलग लोगों की पराधीनता से नहीं छूटता बहुरि जब कोई इसको वचन अथवा कर्म करके दुःख देवे तौ भी सहनशीलता करके उस को क्षमाकरे और अपनी स्तुति और निन्दा को श्रवण न करे और धर्म कार्य में सावधानरहे क्योंकि जब अपनी स्तुति और निन्दा की ओर सुरति देताहै तो भी उसका समय व्यर्थ होताहै और एकान्त रहने का प्रयोजन यह है कि इस समय में यह पुरुष अपने उत्तम कार्य को सिद्ध करलेवे ॥

पांचवां सर्ग ॥

राजनीति के वर्णन में ॥

ताते जान तू कि राजनीति करनी भी महाउत्तम है और जो पुरुष विचार संयुक्त राज्य विषे वर्तता है वह भगवत् का निकटवर्त्ती होता है पर जो पुरुष राज्य में धर्म की मर्याद को त्याग देता है वह अपने मनकी वासना का दास है उस को महाराज की ओर से धिक्कार होती है काहेसे कि सर्व उपायों का मूल धर्मज्ञ राजा है और धर्मात्मा वही होता है जिसको विचार की बुद्धि होती है और उस का स्वभाव सात्त्विकी होता है सो राजनीति की विद्या भी अपार है और इस विद्या का तात्पर्य यह है कि प्रथम वह राजा इस भेद को जाने कि मैं इस जगत् में किस कार्य के निमित्त आया हूं और किस अवस्था विषे जाऊंगा और यों भी

जाने कि यहां मैं परदेशी हूं और यह संसार एक मंज़िल है और इस मंज़िल की आदि तो पार ना है और अन्त श्मशान है बहुरि दिन मास वर्ष मार्ग के योजन और कोस हैं सो इस प्रकार काल बीतने करके सर्वदा मैं परलोक के निकट पहुँचता जाताहूं बहुरि जिस स्थान में मुझे जाना है वह स्थान इस संसार की जाग्रत् से भिन्न है ताते जैसे किसी पुरुष का मार्ग पुलों के ऊपर होवे और वह पुरुष सारादिन पुलके बनावने में लगारहै और अपने मार्ग की मंज़िल को बिसारदेवे तब वह महामूर्ख कहाजाता है तैसेही यह संसाररूपी पुल है सो जो मनुष्य मूर्ख होता है वह इस संसार के कार्यों को सम्पूर्ण किया चाहता है और जो पुरुष बुद्धिमान् है वह और किसी कार्य की ओर सुरतिही नहीं देता और सर्वदा परलोक मार्ग के तोशे को बनाया चाहता है और माया के पदार्थों को कार्यमात्र अङ्गीकार करता है और कार्यमात्र से अधिक जो भोग विलास है तिसको विष की नाई जानता है और यों समझता है कि जितना सोना चांदी कोई इकट्ठा करता है वह मृत्यु के समय सब खज़ाने भस्म होजावेंगे अर्थ यह कि किसी काम न आवेंगे और अन्तकाल में चित्तको उनके वियोग का दुःख प्राप्त होवेगा ताते माया की सर्व सामग्री का सार यह है कि जिसकरके शरीर का खानपान आदिक कार्य सिद्ध होवे और इससे अधिक सब सामग्री पश्चात्ताप और दुःखों का बीज है पर पदार्थों के वियोग का और पश्चात्ताप का जो दुःख है तिसके दुःख से रहित भी शुद्ध और पाप से रहित माया के संचने करके होता है और जो पुरुष पापसहित माया को जोड़ता है उसको परलोक में भी ताड़ना होती है और तमोगुण करके जिसके धन को हरा है उसका ऋणी रहता है और यह बात तो निस्संदेह है कि हठ और पुरुषार्थ विना किसी प्रकार भोगों से रहित नहीं होसक्ता पर जिस पुरुष की प्रतीति और बुद्धि दृढ़ होती है वह ऐसे समझता है कि यह इन्द्रियादिक भोग कुछ काल पीछे सब विरस होजावेंगे और अब भी दुःखरूप हैं बहुरि परलोक का सुख जो आत्मरहस्य है वह सर्वदा परमानन्दस्वरूप है और सच्ची बादशाही है और सब विघ्नों से रहितहै सो जिस पुरुष की प्रतीति दृढ़ होती है उसको भोगों का त्यागना सुगम होता है और इसका दृष्टान्त यह है कि जैसे किसी पुरुष का कोई प्रियतम होवे और उस पुरुषसे इस प्रकार कहिये कि जो तू अब एकरात्रिभर अपने प्रियतमके मिलाप

का त्यागकरे तो सर्वदा वह प्रियतम तेरे पासही रहेगा और तेरा विरोधी भी कोई न होवेगा सो यद्यपि उस प्रियतमके साथ उस पुरुषकी प्रीति अधिक होती है तो भी एक रात्रि के मिलने के त्यागने में कुछ खेद नहीं मानता और नित्य मिलाप की आश करके उसको सुखसहित भोगता है तैसेही बुद्धिमान् पुरुष को ऐसे समझना चाहिये कि प्रथम तो इसलोकमें आयुष् तुच्छमात्र है दूसरे जितने भोग्य पदार्थ हैं वह क्षण २ में परिणामी होते जाते हैं और आत्मा का आनन्द ऐसा है कि उस सुख का कदाचित् अन्त नहीं आवता और जिस सुख का अन्तही न होवे उसका प्रमाण क्योंकर वर्णन करिये और इस मनुष्य की आयुष् का प्रमाण तो सौ वर्ष का है और कदापि इससे अधिक होवे और उदय अस्त पर्यन्त निष्कण्टक राज्य को भी पाजावे तौ भी आत्मसुख जो अनन्त है तिसकी अपेक्षा करके यह आयुष् और सुख सब तुच्छमात्र हैं बहुरि जब किसी को इस संसार के सुख और चक्रवर्त्ती राज्य सर्वदा भी प्राप्त होवे तो भी महामलिन और विरस है क्योंकि यह सब सुख दुःखों के साथ मिले हुये हैं ताते ऐसे सुख-स्वरूप दुःखरहित आत्मसुख को त्यागकर इन्द्रियादिक सुखों में जो महामलिन है आसक्त होना बड़ी मूर्खता है ताते धर्मात्मा राजा और उसके मन्त्रियों को इस वार्त्ता को सर्वदा समझना चाहिये सो जब ऐसी समझ करके भोगों से रहित होवे तब उनको राजनीति और प्रजा को सुखी रखना और जीवों पर दया करनी सुगम होवे और राज्य करना उसी को प्रमाण है जिसको सन्तों के वचनों की समझ होवे और माया के पदार्थों की तृष्णा न होवे क्योंकि धर्म और नीति सहित राज्य करनेको सब जप और तप से अधिक भगवत् प्रियतम रखते हैं इसी पर महापुरुषने भी कहा है कि एक दिन विचार की मर्यादसहित न्याय करना साठि वर्ष के तपसे विशेष है और योंभी कहा है कि धर्मात्मा राजा परलोककी तपनि विषे भगवत्की छाया तले शीतल रहेगा और धर्मात्मा राजा भगवत् का प्रियतम है और धर्महीन भगवत् से विमुख है बहुरि महापुरुष ने भगवत् की दुहाई देकर कहाहै कि धर्मात्मा राजाको सब प्रजाके भजन का फल होता है और जो वह एक बार भगवत् का नाम लेताहै तो उसको सहस्रनाम का फल होताहै सो जब राजनीति का ऐसा लाभ हुआ तब चाहिये कि वह राजा भगवत् के उपकार को जाने और धर्म से विमुख न होवे और जब इस

उपकार का कृतघ्नी होकर अनीति विषे वर्ते और अपने मन की वासना का दास होवे तब दुःखों का अधिकारी होताहै ताते मैं राजनीति के धर्मकी कुछ युक्तियां वर्णन करताहूं सो प्रथम युक्ति यह है कि जैसे दुःख और अपमान आपको भला नहीं लगता तैसेही सब विघ्नों से प्रजा की रक्षा करनी प्रमाण है और जब ऐसे न करे तब राजा धर्म से भ्रष्ट होताहै इसी पर एक वार्त्ता है कि एक बार महा-पुरुष छायातले बैठे थे और औरलोग धूप में बैठे थे तब महापुरुष को आकाश-वाणी हुई कि तुमको ऐसे बैठना प्रमाण नहीं तात्पर्य यह कि इस किञ्चिन्मात्र कर्म की भी ताड़ना हुई ताते चाहिये कि राजा जिस बात में आप प्रसन्न न होवे उसको प्रजा के ऊपर भी प्रमाण न करे और जिस राजा की मंशा ऐसी निष्काम न होवे वह राजा धर्महीन है १ बहुरि दूसरी युक्ति यह कि अर्थी को नीचदृष्टि से न देखे और उसके दुःखी होने से भयवान् होवे और यद्यपि उस समय कुछ नियम अथवा जाप करता होवे तौ भी उस नियम को छोड़कर अर्थी के मनोरथ को पूर्णकरे क्योंकि अर्थी के अर्थ को पूर्ण करना सब नियमों से विशेषहै इसीपर एक वार्त्ता है कि एक महाधर्मात्मा राजा था सो एकबार सारेदिन प्रजा के कार्यों को करके विश्राम करने के अर्थ जब चारघड़ी दिन रहा तब गृह में जाकर शयन कररहा तब उस राजा का पुत्र आकर कहनेलगा कि हे पितः! तुम अचिन्त होकर क्यों सो रहेहो ? मैं तो इस वार्त्ता से अधिक भय मानता हूं कि मत अबहीं काल आकर तुमको मारलेवे और कोई अर्थी तुम्हारे दरबारपर अप्राप्त रहजावे और तुम उससे अचेतरहो तब राजा ने कहा कि हे पुत्र! तू सत्य कहता है बहुरि वह राजा उसी समय उठ खड़ा हुआ और प्रजा के कार्य में साव-धान हुआ २ बहुरि तीसरी युक्ति यह है कि अपने ऊपर अधिक भोगों का स्व-भाव प्रबल न करे और खानपान आदिक विषे संयमसहित बर्ते क्योंकि जब राजा संयमरहित होकर अधिक भोगों विषे वर्तता है तब उससे धर्म की मर्याद नष्ट होजाती है इसी पर एक धर्मात्मा राजाने किसी अपने मन्त्री से पूछा था कि तुमने मेरा कोई अवगुण सुना होवे सो कहो तब उसने कहा कि तुम रात्रि और दिन का पोशाक भिन्न २ रखते हो और भोजन दो तरकारी के साथ खाते हो तब उन्होंने कहा कि मैं फिर अब यह भी न करूंगा ३ बहुरि चौथी युक्ति यह है कि यथाशक्ति सब कार्यों को दयासंयुक्त निर्वाह करे और क्रोध तब करे

जब कोई ऐसाही कठिन कार्य होवे जो विना क्रोध किये उसमें निर्वाह न होवे इसीपर महापुरुष ने भी कहा है कि प्रजा के ऊपर जिस राजा की सर्वदा दया होती है उसके ऊपर भगवत् भी दया करता है और यों भी कहा है कि तबहीं राज्य करना भला होता है जब धर्म की मर्याद के अनुसार होवे और जो राजा धर्म मर्याद से भ्रष्ट होता है तब वह राज्यही उसको नरकगामी करता है इसी पर एक वार्त्ता है कि एक राजा ने किसी विद्यावान् से पूछा था कि राजनीति में मुक्तिदायक धर्म कौन है? तब उसने कहा कि पापरहित धन को उत्पन्न करना और यथार्थही के मार्ग में उसको लगावे तब वह राजा कहनेलगा कि यह बात किससे होसक्ती है तब उन्होंने कहा कि जिसको नरक के दुःखों का भय होवेगा और परमसुखों को प्राप्त हुआ चाहेगा उसको यह करतूति करना भी सुगम होगा ४ बहुरि पांचवीं युक्ति यह है कि हृदय से सर्वदा यही यत्न करे कि शास्त्र की मर्याद के अनुसार सब प्रजा सुखी होवे और यह वार्त्ता प्रसिद्ध है कि राजा के निकट जो स्तुति लोग करते हैं सो सब भयकरके करते हैं और वह जानता है कि मेरे ऊपर प्रसन्न अतिशय करके हैं ताते बुद्धिमान् राजाको इस प्रकार चाहिये कि मन्त्री और दूतों के द्वारा प्रजा की सुरति लेवे और अपनी भलाई बुराई को जाने और लोगों से स्तुति सुनकर अभिमान न करे ५ बहुरि छठीं युक्ति यह है कि जब कोई पुरुष दुष्ट और धर्महीन होवे तब उसकी प्रसन्नता को न चाहे क्योंकि उसकी प्रसन्नता करके और जीवों को दुःख होता है और यथार्थ नीति अनुसार जब वह दुष्ट अप्रसन्न होवेगा तब उसकी अप्रसन्नता का पाप राजा को स्पर्श नहीं करेगा ताते दुष्ट मनुष्यों की प्रसन्नता चाहनी और भगवत् की प्रसन्नता से विमुखहोना बड़ी मूर्खता है इसी पर एक सन्तने कहा है कि जो पुरुष सब प्रकार भगवत् ही की प्रसन्नता चाहता है तब महाराज उसके ऊपर लोगों को भी प्रसन्न कर देता है और जो पुरुष लोगोंकी प्रसन्नता के निमित्त भगवत् से विमुख होता है तो भगवत् भी उससे प्रसन्न नहीं होता और लोग भी अप्रसन्न रहते हैं ६ बहुरि सातवीं युक्ति यह है कि राजा को सर्वदा राजनीति का भय चाहिये क्योंकि राजनीति विषे यथार्थ विचरना बड़ा कठिन है ताते जो पुरुष सब प्रकार प्रजा को धर्म विषे वर्तावे और सुखीराखे और आपभी धर्ममें सावधानरहै तब निस्सन्देह वह राजा परमभाग्यवान् होता

है और जब इससे विपरीतहोवे तब ऐसा अभागी होता है कि उससे अधिक भाग्यहीन और कोई नहीं होता इसीपर महापुरुष ने कहा है कि जब कोई भगवत् की दया चाहे तब सब जीवोंपर आपही दयाकरे और जो राजा अपने तेज को चाहे वह धर्मनीति में दृढ़ होवे और जैसा वचन आप कहे तैसी करतूति करे और जब ऐसे न करे तब देवता भी उसको धिक्कार करते हैं और महाराज की ओर से भी विमुख होताहै और जिस राजा से प्रजा का पालन न होवे और वह यद्यपि पूजा पाठ के नियम में सावधान रहे तौ भी उसको लाभदायक कुछ नहीं होता ताते तू विचारकरके देख कि धर्म की मर्याद से रहित होकर राजनीति का वर्त्तना ऐसाहै जिस करके कोई शुभ करतूति लाभदायक नहीं होती इसी पर बहुरि महापुरुष ने कहा है कि जब कोई पुरुष दोपुरुषों विषे सुखिया होवे और विचार की नीति साथ न विचरे तौ भी धिक्कार का अधिकारी होता है और यों भी कहा है कि अधिक करके तो राजाही नरक को प्राप्तहोवेंगे और उनमें से कोई वही मुक्त होवेगा जो सदा भगवत् के भय करके डरता रहेगा और विचार की युक्ति को अङ्गीकार करेगा और यों भी कहा है कि जब कोई इस लोक में किसी के ऊपर कोप करता है तब भगवत् भी उसके ऊपर क्रोध करेगा बहुरि यों भी कहा है कि जो इस लोक में किसी को सुख देगा वह आप भी सुख को प्राप्तहोवेगा बहुरि कहा है कि जब इस लोक में राजा अपनी प्रजापर दण्ड कर-लेवे और उनकी रक्षा न करे और जो चौधरी नगर में समान भाव न वर्ते अर्थात् किसी का पक्षकरे किसी की सुरति न लेवे बहुरि जो पुरुष अपने सम्बन्धियों को धर्ममार्ग न सिखावे और अशुद्धजीविका करके उनकी उदरपूर्णताकरे बहुरि जो पुरुष किसी से अपना कार्य कराकर उसकी मजदूरी न देवे सो ऐसे पुरुष सबही नरकगामी होते हैं ताते राजा को चाहिये कि सन्त जनों के वचनों को अपना दर्पण बनावे और जो वचनों में अनीति की निन्दा वर्णनहुई है तिसको समझकर सर्वदा भयवान् रहे ७ बहुरि आठवीं युक्ति यह है कि राजा सदा वि-द्यावान् पुरुषों की संगतिकरे और उनसे धर्मकी मर्याद पूछतारहे और जो वि-द्यावान् धनके अर्थी होवें उनकी संगति न करे काहे से कि सकामी पण्डित राजा को प्रसन्नकरके अपने प्रयोजन को सिद्धकिया चाहते हैं और यथार्थ उपदेश को नहीं सुनासक्के ताते उनकी संगति ही बुरी है और राजा को उसी विद्यावान्

की संगति करनी प्रमाण है जो अपने प्रयोजन और राजा के मान के निमित्त यथार्थ को दुरावते नहीं इसी पर एकवार्त्ता है कि किसी राजा ने किसी सन्त से पूछाथा कि अमुक तपस्वी तुमहीं हो तव उन्हों ने कहा कि अमुक तो मैं हूं पर तपस्वी तू ही है क्योंकि जो अधिकवस्तु को त्यागकर अल्प वस्तु को अङ्गीकार करे उसको तपस्वी कहते हैं सो तैंने आत्मसुख को त्यागकर माया के सुख को अङ्गीकार किया है ताते तपस्वी भी तूहीं हैं बहुरि राजा ने कहा कि मुझको कुछ उपदेश करो तव सन्त ने कहा कि तुझको भगवत् ने धर्म के सिंहासन पर बैठाया है ताते महाराज तुझसे परलोक में धर्म की मर्याद पूछेंगे बहुरि भगवत् ने तुझको नरकों के द्वार का पँवरिया बनाया हैं अर्थ यह कि तू नरकों से प्रजाकी रक्षा करने का अधिकारी बनायागया है ताते जो पुरुष जीविका के निमित्त पाप करताहोवे तो तू उसको जीविकामात्र धन दे और जो कोई धर्म मर्याद से मनमत करके रहित होवे तव इसको ताड़ना करके पाप से बर्जना कर और जब कोई अपनी सबलता करके जीवोंका संहार करता होवे तब उसको खड्ग करके दण्डदे और जब तू ऐसे न करेगा तब प्रथम तूहीं नरकगामी होगा बहुरि राजा ने कहा कुछ और उपदेश करिये तब सन्त बोला कि हे राजन्! तू नदी की नाईं है और प्रधान तेरे प्रवाह हैं अर्थ यह कि जो तू निर्मल होगा तो वह भी निर्मल होवेंगे और जब तेराही हृदय मलिन होगा तव प्रधान भी मलिन क्रिया विषे वर्त्तेंगे बहुरि एक और राजा किसी सन्त के दर्शन को गया था सो वह सन्त यह वचन पढ़रहाथा कि यथाशक्ति शुभ करतूति ही को अङ्गीकार करो क्योंकि उत्तम और नीच की गति समान नहीं होती सो जब राजा ने यह वचन सुना तब अपने चित्तमें विचार करनेलगा कि सन्तों का एक वचन सर्व उपदेश का मूल है पर दर्शन की अभिलाषा के निमित्त राजा के प्रधान ने किवाड़ीको खड़काया और कहनेलगा कि हे महाराज! किवाड़ को खोलो तब सन्त ने पूछा कि तुम कौनहो बहुरि प्रधान ने कहा कि अमुक राजा तुम्हारे दर्शन को आया है तब सन्त ने कहा कि हमारे साथ राजा का क्या प्रयोजन है बहुरि राजा के प्रधान ने कहा कि राजा का निरादर करना प्रमाण नहीं है तब सन्तने किवाड़ को खोला और गृह में जो दीपक जलताथा उसको बुझाय दिया तब उस राजा ने भीतर जाकर सन्त के चरणोंपर मस्तक

धरा और हाथों करके चरणों को पकड़ा तब सन्त ने कहा कि यह तेरे हाथ तो बहुत कोमल हैं पर जब नरकों की अग्नि से इनकी रक्षाहोवे बहुरि राजासे इस प्रकार कहनेलगे कि हे राजन् ! जो तू अबहीं यथार्थ विषे विचरे तो भलाहै काहे से कि परलोकमें तुझसे एक २ जनकी बात पूछेंगे तब यह वचन सुनकर राजा रुदन करनेलगा और मूर्च्छित होगया तब प्रधान ने कहा कि हे महाराज ! अब इस वचनसे मौनकरिये क्योंकि राजा तुम्हारे वचनकरके मृतकहुआ जाता है तब सन्तने कहा हे कुमन्त्री ! राजा तो तुमलोगोंकी संगति करके मृतकहुआ है और तू हम से कहता है कि राजा को तुमने मारा है बहुरि वह राजा सचेत होकर सन्त के आगे तीन सहस्र रुपया रखताभया और कहनेलगा कि हे महाराज ! यह धन पापरहित उत्पन्न कियाहुआ है तब सन्तने कहा कि मैं तुझको माया से विरक्त किया चाहताहूं और तू मुझकोही माया विषे डाला चाहता है ऐसे कहकर वह सन्त उठखड़ेहुये और गृहसे बाहर निकलआये और धनको अङ्गीकार न किया बहुरि और एक राजाने किसी सन्तसे कहाथा कि तुम मुझको धर्मनीति का उपदेश सुनावो तब सन्तने कहा कि जो तुझ से लघु मनुष्य हैं उनको पुत्र की नाईं जान और जो तुझसे बड़े हैं तिनको पितावत् जान और जो समहैं तिनके संग बान्धवोंकी नाईं वर्त्तावकर और जो किसीको कुछ दण्ड देवे तोभी जितना उसका अपराध होवे उतनाही उसका दण्ड ताड़नाकर और चित्तमें यही भावना रख कि मैं ताड़ना भी उसको भलाईहीके निमित्त करताहूं बहुरि जब किसीको क्रोध करके एक छड़ी भी मारेगा तब नरकगामी होवेगा इसीपर एक बुद्धिमान् राजा ने कहाहै कि एक बार मेरे टहलुवे से कोई काम बिगड़ा था ताते मैं क्रोध करके उसको मारनेलगा तब टहलुवे ने कहा कि तुम परलोक की ताड़नाका स्मरण करो अर्थ यह कि क्रोध से रहितहोवो सो जब यह वचन मैंने सुना तब मुझको भगवत् का भय उत्पन्न हुआ तात्पर्य यह कि राजा को चाहिये कि सदा ऐसेही वचन सुनतारहे ८ बहुरि नवींयुक्ति यह है कि राजा को ऐसा अभिमान न चाहिये कि मैं तो किसी को दण्ड नहीं करताहूं क्योंकि मन्त्रियों, प्रधानों और सेनापतियों के पापकर्म करके भी राजाही को ताड़ना होवेगी ताते उनको पाप से वर्जितकरे इसी पर एक धर्मज्ञ राजा ने अपने प्रधान की ओर पाती लिखी थी कि भाग्यवान् प्रधान वही होताहै जिसके राज्य

करके प्रजा सुखी रहतीहै और जिस राजाकी प्रजा धर्महीन होजावे और दुःख को प्राप्तहोवे वह राजा भी मन्दभागी होताहै ताते तुझको सचेतहोना उचितहै जब तू अचेत होकर भोगोंमें लम्पट होवेगा तब तेरी सेना भी प्रजाको दुःखदायक और लम्पट होजावेगी और अधिक भोगी पुरुष पशु की नाईं होताहै कि वह पशु हरे तृण को खाकर बड़ा स्थूल होताहै बहुरि उसके शरीर की स्थूलता ही उसके दुःख और नाश का कारण होती है इसीपर महापुरुष ने भी कहा है कि जिस राजा का कोई प्रधान पापकर्मी होवे और राजा उसको ताड़ना न करे तब उस पापका फल राजाको लगताहै ताते राजाको इस प्रकार जानना चाहिये कि माया में आसक्त होकर परमार्थ से विमुख होना बड़ी मूर्खता है और यह जितने मेरे मन्त्री और प्रधान हैं सो सब अपने प्रयोजन के अर्थी हैं और अपने मनोरथों के निमित्त मेरा धर्म नष्ट किया चाहते हैं सो जब मैं इनके वशीभूत होकर धर्म से विमुख रहूंगा तब मैं निस्सन्देह नरकगामी होऊंगा सो जब इस प्रकार विचार कर देखिये तौ यह सब मेरे शत्रु हैं ताते जो राजा अपने मन्त्रियों और सेना को पापसे वर्जित न करे तब इसका दृष्टान्त यह है कि जैसे कोई अपने स्त्री पुत्रादिकों को पापकर्मों में लगावे और उनके पाप का भागी होवे पर यह जो धर्म की मर्याद सन्तों ने कही है सो इसका पालन वही पुरुष करता है जिसने अपने शरीर को विचार के संयुक्त दृढ़ किया है और शरीर को धर्मनीति विषे रखना यह है कि बुद्धि के ऊपर क्रोध और भोगों को प्रबल न होनेदेवे पर बहुत से लोग तो ऐसे होते हैं कि अपने मनोरथ पूर्ण करने के निमित्त यत्न करते हैं और बुद्धि को भी इन्हीं कामों में लगाये रहते हैं सो जिसने बुद्धिरूपी देवता को क्रोधरूपी राक्षसके हाथ बांधदिया है ऐसे पुरुषसे किसीप्रकार धर्म की नीति नहीं हो सकी प्रजा के ऊपर तात्पर्य यह कि प्रथम विचाररूपी सूर्य हृदय में उत्पन्न होताहै फिर उसका प्रकाश इन्द्रियादिकों में वर्त्तमान होता है और इस से पीछे वही प्रकाश सब प्रजा के ऊपर उजियारा करता है ताते जो पुरुष ऐसे सूर्य विना प्रकाश की आशा रखते हैं सो अयोग्य हैं इसी कारण कहा है कि धर्म की बुद्धि से विचार उपजता है और परमबुद्धि उसका नाम है जो सब करतूतोंके भेदको समझे और इस बातको विचार करके देखे कि मैं धर्म और विचार मर्याद का त्याग किस निमित्त करता हूं सो जब नाना प्रकार के भोजनों के

निमित्त विचार की मर्याद को त्यागकरे तब ऐसे जाने कि खानपान की अभिलाषा तो पशुओं का स्वभावहै क्योंकि जिसको खानपान की अधिक तृष्णाहै वह यद्यपि देखने मात्रमें मनुष्य भासता है तौ भी आहारविषे पशुओं के समान है बहुरि जो सुन्दर वस्त्रोंके निमित्त धर्मका त्यागकरे तो शृंगार बनावना स्त्रियों का काम है और जो अपने क्रोध के निमित्त धर्म को त्यागा है तौ सिंहों और भेड़ियों की नाईं होता है और जब लोगों की मान्यता के निमित्त विचार की मर्याद को त्याग दिया तौ भी बड़ी मूर्खता है काहेसे कि जब विचार करके देखिये तौ सब लोग अपने प्रयोजन के अर्थी हैं और अपने भोगों के निमित्त इसकी सेवा करते हैं सो इसकी परीक्षा यह है कि जब उनका स्वार्थ भङ्ग होता है तब सब इसके शत्रु होजातेहैं और इसके शत्रुओं की सेवा में सावधान होतेहैं ताते प्रसिद्ध हुआ कि इसके सम्बन्धी, मित्र, टहलुवे और सबही लोग अपने स्वार्थके होते हैं और बुद्धिमान् पुरुष वही है जो ऐसे भेद को भली प्रकार समझे और पदार्थों की स्थूलता को देखकर अभिमानी न होवे पर जिस पुरुष को ऐसी समझ उत्पन्न नहीं हुई वह बुद्धिहीन कहाताहै और जिस पुरुष के बुद्धिही नहीं वह विचार की मर्याद में सावधान भी नहीं होसक्ता और जो विचार से रहित है वह निस्संदेह नरक का अधिकारी होताहै इसीकारण सन्तजनों ने कहा है कि सर्व शुभगुणों का मूल बुद्धि है ९ बहुरि दशवीं युक्ति यह है कि राजाओं में अवश्यही अभिमान अधिक होता है और अभिमान करके क्रोध उत्पन्न होता है सो क्रोधही इसकी बुद्धि का परमशत्रु है तातें राजा को इस प्रकार चाहिये कि प्रथम क्रोध के विघ्नों को पहिंचाने बहुरि जब अकस्मात् किसी अवसर में क्रोध उपजने लगे तब यत्न करके अपने स्वभाव को दया और सहनशीलता विषे दृढ़करे और यों भी जाने कि सहनशीलता सन्तों का धर्म है और क्रोध करना असुरों का स्वभाव है ताते जब कोई पुरुष वचन करके राजा की अवज्ञा करता है तब ऐसे समय उसके ऊपर अवश्य क्रोधही किया चाहता है सो राजा को ऐसे अवसरमें इसप्रकार समझना चाहिये कि जब दुर्वचन कहनेवाला पुरुष सत्य कहताहै तो उसका उपकार मानना प्रमाण है और जो झूठ कहता है तो अधिक उपकार जानना प्रमाणहै काहेसे कि जब उसके वचनको सुनकर सहनशीलता होवेगी तब उसके शुभ कर्मों का फल इसको प्राप्त होवेगा इसी पर एक

वार्त्ता है कि किसीने महापुरुष से कहाथा कि अमुक पुरुष ऐसा बलवान् है कि जिसके साथ युद्ध करता है तिसको गिराय देताहै तब उन्होंनें कहा कि जिसने अपने क्रोधको जीताहै उसी को बलवान् कहाजाता है और मनुष्यों के पकड़ने और गिरानेवाले को बली कहना अयोग्य है और यों भी कहा है कि धर्मवान् पुरुष का लक्षण यहहै कि यद्यपि क्रोध के योग्य कोई पुरुष होवे तौ भी विचार की मर्याद को त्याग न करे और अनुचित वचन न कहे और जब किसी पर प्रसन्न होवे तौ भी यथार्थ को भुलाय न देवे यद्यपि समर्थ होवे तौ भी अपनी मर्यादसे उल्लंघित न होवे इसी पर एक सन्तने कहाहै कि जबलग किसी पुरुष के धैर्य और क्रोध की परीक्षा करके भली प्रकार न देखिये तबलग उसके ऊपर प्रतीति करनी अयोग्य है इसी पर एक वार्त्ता है कि एक राजपुत्र पढ़ने के अर्थ पाठशालाको जाताथा सो एक दुष्ट आकर उसको दुर्वचन कहने लगा तब राजपुत्र को टहलुवा क्रोधवान् होकर उस दुष्टके मारने को उद्यत भया तब राजपुत्र ने अपने टहलुवे को वर्जित किया और उस दुष्ट से कहने लगा कि हे भाई! हम में तो ऐसे अवगुण हैं कि तू उनको जानता ही नहीं पर तुझको कुछ अर्थ होवे तो प्रसिद्ध कह बहुरि यह वचन सुनकर वह दुष्ट लज्जित हुआ तब राजपुत्र ने अपने गले का वस्त्र और सहस्र रुपया उसको दिया तब वह पुरुष लेकर इस प्रकार कहनेलगा कि निस्सन्देह तू महापुरुषकी सन्तान है बहुरि उसी राजपुत्रकी एक और वार्त्ता है कि एक समय दोबार अपने टहलुवे को पुकारा और वह टहलुवा चुप साधि रहा बहुरि उसके निकट जाकर कहनेलगा कि मैंने तुझ को दोबार बुलाया और तैंने सुना भी नहीं तब टहलुवे ने कहा कि मैंने सुना तो था पर तुम्हारी सहनशीलता विचारकर निर्भय हो रहाथा कि इस अवज्ञाकरके ताड़ना न करेंगे तब वह राजपुत्र कहनेलगा कि हमारे ऊपर यह भी महाराज का बड़ा उपकार है कि मेरा टहलुवा तक मेरे क्रोध से निर्भय हुआ है॥ बहुरि किसी और सन्तके टहलुवे ने गृहके पशुका पांव तोड़डालाथा तब सन्तने कहा कि तैंने इस बेचारे को क्यों दुःख दिया है बहुरि टहलुवा कहनेलगा कि तुम्हारे धैर्य और क्रोधकी परीक्षा के निमित्त यह अवज्ञा मैंने करी है तब सन्त ने कहा कि मैं सहनशीलता करके क्रोधही को लज्जावान् करूंगा इतना कहकर उस मोल लियेहुये टहलुवे को मुक्त करादिया बहुरि उसी सन्त को कोई दुष्ट दुर्वचन

कहनेलगा था तब सन्तने कहा कि मेरे और भगवत् के मध्य में कितनीही कठिन घाटी हैं सो जब मैं उनसे उल्लंघित हुआ तो तेरे दुर्वचनों का भय कुछ नहीं और जब मैं उनको न लांघसका तब जैसा तू कहता है तिससे भी मैं नीच हूं इसीपर महापुरुष ने कहा है कि बहुते पुरुष क्षमा और सहनशीलता करके महागम्भीर पद को पावते हैं और यद्यपि गृहस्थधर्म विषे वर्तते हैं तौभी महाशूरमा विरक्तचित्त कहावते हैं बहुरि यों भी कहा है कि जो विचार के मर्याद से रहित होकर क्रोधके वशीभूत होते हैं सो निस्संदेह नरकगामी होते हैं और जो कोई समर्थ होकर अपने क्रोध को दमन करलेते हैं उनके हृदय को महाराज परमानन्द करके पूर करदेता है तात्पर्य यह कि जिस राजा की बुद्धि धर्म विषे स्थित होती है तिसको जितने मैंने वचन और युक्तियां वर्णन करी हैं इतनीही बहुत हैं और जिसका हृदय ऐसे उपदेश करके कोमल न होवे तब जानिये कि भगवत्पर उसकी प्रतीतिही कुछ नहीं अर्थ यह कि वचन करके भगवत् को सत्य कहना और है और हृदय में भगवत् को सत्य जानना और है काहे से कि जो पुरुष छल और दण्डकरके धन को उत्पन्न करे और पापोंविषे निश्शङ्क होकर वर्ते तब क्योंकर जानिये कि उसने भगवत को प्रकट सत्य जाना है ताते धर्मात्मा पुरुष वही है जो सर्वदा विचारकी मर्याद विषे स्थित रहै ॥

इति व्यवहारवर्णनन्नाम द्वितीयप्रकरणं समाप्तम् ॥ २ ॥

तीसराप्रकरण ॥

प्रथमसर्ग ॥

मनके यत्न और कठोर स्वभावों के उपचार के वर्णन में ॥

प्रथम विभाग भले स्वभावों की स्तुति में ॥ ताते जान तू कि महाराज ने भी भले स्वभावों करकेही महापुरुष की प्रशंसा करी है और महापुरुष ने भी कहाहै कि भगवत् ने मुझको भले स्वभावों के पूर्ण करने के अर्थ इस जगत् विषे भेजा है और यों भी कहा है कि परलोक में महाउत्तम पदार्थ भला स्वभावही होवेगा बहुरि एक पुरुष ने महापुरुष से पूछा कि धर्म क्याहै महापुरुष ने कहा कि भला स्वभावही धर्महै ऐसेही एक और पुरुषने भी पूछा कि उत्तम करतूत क्याहै? तब उन्होंने कहा कि भलास्वभाव सब करतूतों से उत्तम है ॥ बहुरि एक और पुरुष

ने महापुरुष से कहाथा कि मुझको कुछ उपदेश करिये तब उन्होंने कहा कि जिसस्थान विषे तू होवे तहांही भगवत् के भय संयुक्त रहो बहुरि जब कोई तेरे साथ बुराई करे तब तू उसके साथ भलाईही कर और सब जीवों के साथ भले स्वभावों सहित मिलापकर और महापुरुष ने योंभी कहाहै कि जिसको भगवत् ने भला स्वभाव दिया है और जिसका मस्तक प्रसन्नता सहित खुलारहता है वह नरकों की अग्नि में नहीं जलता और महापुरुष से किसीने कहा था कि अमुकी स्त्री दिनको व्रत रखती है और रात्रि को जागरण करती है, और सर्वदा भजन में सावधान है पर उसका स्वभाव बुरा है कि पड़ोसियों को दुर्वचन करके दुखावती है तब महापुरुषने कहा कि निस्संदेह वह स्त्री नरक को प्राप्तहोवेगी॥ और योंभी कहाहै कि बुरास्वभाव भजन को इस प्रकार नाशकरताहै, जैसे मधुको खटाई बिगाड़ देती है बहुरि महापुरुष महाराज के आगे यों प्रार्थना करते थे कि हे महाराज! अपनी दयाकरके जैसे तैंने मेरा शरीर सुन्दर बनाया है तैसेही मेरा स्वभाव भी भलाकर और यों भी कहते थे कि मुझको भलास्वभाव और नीरोगता देवो बहुरि किसी ने महापुरुष से पूछा कि भगवत् जो कुछ इस जीव को देताहै सो तिनमें भला पदार्थ क्या है? तब उन्हों ने कहा कि भला स्वभाव सब पदार्थों से विशेष है॥ बहुरि एक और सन्तने भी कहाहै कि मैं एकबार महापुरुष के सङ्ग था तब उन्होंने कहा कि मैंने एक बड़ा आश्चर्य देखा है कि एक पुरुष मुझको गिराहुआ दृष्टि आयाथा और भगवत् और उसके बीच में बड़ा पटलथा पर भला स्वभाव जो उसके हृदय में आया तिसने उस सब पटल को दूरकरदिया और उस पुरुष को भगवत् के साथ मिलाय दिया और यों भी कहा है कि यह पुरुष भले स्वभावों करके विना कष्टही ऐसी अवस्था को प्राप्त होते हैं जो बड़े तप और जाग्रत् करके कोई उस अवस्था को प्राप्त होवे सो भले स्वभाव करके यत्न विनाही मनुष्य पावता है पर इस भले स्वभाव की पूर्णता महापुरुष ही में पाई जाती है इसी पर एक वार्त्ता है कि एक ठौर में महापुरुष बैठेथे तब वहां स्त्रियां निडर होकर ऊंचे स्वर से शब्द करने लगीं बहुरि जब वहां उमर उनके सङ्गी आये तब वे स्त्रियां चपलता को छोड़कर मौन हो बैठीं तब उमर कहनेलगे कि हे पुरुषाओ! तुमने महापुरुष का भय न किया और मुझको देखकर मौन हो बैठीं तब उन्हों ने कहा कि महापुरुष का स्वभाव अतिकोमल है और तुम्हारा

स्वभाव उनसे कठोर है तातें हम तुमसे डरती हैं बहुरि महापुरुष उमर से कहने लगे कि हे उमर! तुझको जब माया न देखकर भी तेरे तेज के आगे भागजावे और ठहर न सके तब औरों की क्या चली इस प्रकार कहकर उनकी मनोहार करतेभये और प्रसन्न किया बहुरि एक और सन्त थे सो संयोग करके किसी पुरुष के साथ मार्ग में सङ्गीहुये बहुरि जब उससे बिछुड़े तब रोवने लगे तब लोगोंने पूछा कि तुम किस निमित्त रोवतेहो तब उन्होंने कहा कि यह पुरुष जो मुझसे बिछुड़ा है सो इसका बुरा स्वभाव इसके साथही रहा और दूर न हुआ ताते मैं रुदन करताहूं ॥ और अबूबक्र किताईने भी कहाहै कि फ़क़ीरी भले स्वभावका नाम है ताते जिसका स्वभाव भला है सो उत्तम फ़क़ीरहै और एक और सन्त ने भी कहाहै कि कठोरस्वभाव ऐसा पाप है कि इसके होते हुये कोई शुभ गुण भी लाभदायक नहीं होता और कोमल स्वभाव ऐसा भजन है कि इस करके सर्व पापों का नाश होजाता है और कोई अवगुण विघ्न नहीं करसक्ता १ (दूसरा विभाग भले स्वभावों के वर्णन में) ताते जान तू कि इनके स्वभाव के निर्णय में बहुत प्रकार के वचन आये हैं पर भले स्वभावों की पूर्णता किसी ने नहीं कही जैसे किसीने कहा है कि मस्तक प्रसन्न रखनाही भला स्वभाव है और किसीने कहा है कि सहनशीलताही भला स्वभाव है सो इसकी नाईं और भी बहुत वचन हैं पर यह सब भले स्वभाव के अङ्ग हैं पूर्ण स्वभाव भला इसीका नाम नहीं ताते मैं भले स्वभाव की पूर्णता को प्रकट करके कहताहूं सो ऐसे जान तू कि इस मनुष्य को दो पदार्थों के सम्बन्ध से उत्पन्न किया है सो एक शरीरहै जो स्थूल नेत्रों करके देखा जाताहै और दूसरा जीवहै सो उसको बुद्धि करके पहिंचानसक्ते हैं सो शरीर और जीव की सुन्दरताई भी है और कुरूपता भी है पर शरीरकी सुन्दरता को स्थूलरूपवत् कहते हैं और जीव की सुन्दरताई भले स्वभाव करके होती है पर स्थूलरूपवान् भी उसीको कहते हैं जिसके नेत्र, मस्तक, नाक, कान, मुख और अवर सब अङ्ग और उदर समान होते हैं तैसेही जीव की पूर्ण सुन्दरताई भी तबहीं कहीजाती है जब इसी पुरुष में चार गुण समान पाये जावें सो एक विद्याहै दूसरा भोगों का जीतना तीसरा क्रोध का जीतना चौथा विचार सो विचार इन तीनों में वर्त्तताहै पर प्रथम जो विद्या कहीथी तिसका अर्थ बूझ है और विशेषता इसकी यह है कि बूझ करके

सत्य और असत्य को सुगमही पहिंचान लेवे बहुरि वचन और करतूति की भलाई और बुराई के भेद को समझे और योंभी जाने कि यह प्रतीति झूठीहै और यह सत्य है सो जब वचन और करतूति और निश्चय को भलीप्रकार जानता है तब इसके हृदयमें अनुभव उत्पन्न होताहै सो अनुभव सर्वगुणों का मूल है जैसे महाराज ने भी कहा है कि जिस पुरुष को अनुभव प्राप्त हुआ है तिसको सब गुण प्राप्त होते हैं और दूसरा भोगों का जीतना यह है कि भोग भी इसके ऊपर प्रबल न होवें और बुद्धि की आज्ञानुसार बर्ते और विचारकी आज्ञा माननी इसको सुगम होवे बहुरि तीसरा क्रोध का जीतना यह है कि क्रोध भी विचार की आज्ञानुसार होकर उसकी आज्ञामें बर्ते और विचार की आज्ञा को उल्लंघनकरके किसीको दुखावे नहीं ३ बहुरि चौथा जो विचारहै सो यह है कि विचार का बल इन तीनों में बर्ते अर्थ यह है कि भोग और क्रोध को वशीकार करे और विद्या को समान राखे और इनको धर्मशास्त्र की आज्ञा विषे बर्तावे क्योंकि क्रोध शिकारी कूकुर की नाईं है और भोग घोड़े की नाईं है और बुद्धिरूपी सवार है सो कभी ऐसा होता है कि घोड़ा सवार से प्रबल होजाता है और कभी आज्ञा विषे चलता है तैसेही कूकुर भी कभी आज्ञा विषे चलता है और कभी आज्ञा से विपर्यय होता है पर जबलग घोड़ा और कूकुर सवार की आज्ञा में न होवें तब लग सवार को शिकार हाथ नहीं लगता और सवार को यह भय रहता है कि कहीं घोड़ा प्रबल होकर मुझको गिराय न देवे अथवा कूकुरही फाड़डाले ताते विचार का काम यह है कि इनको वश में करे और इनको बुद्धि और धर्म की आज्ञा में बर्तावे सो क्रोधके ऊपर कभी भोगोंको प्रबल करके क्रोधके वेगको अपमान के द्वारे हटावे और कभी क्रोधको भोगोंपर प्रबल करके मान का लालच देकर भोगोंकी अभिलाषाओं के वेग को मिटावे इस प्रकार इन दोनों को अपने आधीन राखे सो जिस मनुष्यमें ये चारों लक्षण समान होते हैं तिसको सम्पूर्ण भले स्वभाववाले कहते हैं और जब कोई लक्षण होवे और कोई न होवे तब उस का सम्पूर्ण भला स्वभाव नहीं कहाजाता जैसे कोई पुरुष सुन्दर होवे पर उसके नेत्र अथवा नाक अथवा और कोई अङ्ग कुरूप होवे तो उसको पूर्णरूपवान् नहीं कहते ताते जान तू कि इन लक्षणों की सुन्दरताईभी है और कुरूपता भी है सो सुन्दरता समानता में होती है और कुरूपता दो प्रकार करके होती है एक

मर्याद से अधिक होने में और दूसरे मर्याद से अल्प होने में और योंभी है कि जिस मनुष्यमें एक स्वभाव बुरा होताहै तब उस करके और भी अनेक बुरे स्वभाव उत्पन्न होते हैं पर इन लक्षणों की मर्याद जो कहीथी सो इस प्रकार है कि प्रथम जब विद्याही मर्यादसे अधिक होतीहै तब नाना प्रकारकी मलीनता बिषे भी पसर जाती है ताते चपलताई और चतुराई उत्पन्न होती है फिर अभिमानी होजाताहै और जब विद्या मर्याद से थोड़ी होतीहै तब मूर्खता और जड़ताको प्राप्त होताहै बहुरि जब विद्याही मर्यादअनुसार होती है तब उससे विचार और सुमति और शुद्ध संकल्प और उत्तम बूझ उपजती है तैसेही जब क्रोधका बल अधिक होता है तब अभिमान और अहङ्कार और दुर्वचन और बदावना और अपनी स्तुति करनी और निश्शङ्क होकर आपको भयानक स्थान में डालना इत्यादिक अवगुण उत्पन्न होतेहैं और जब यह क्रोध ही मर्याद से अल्प होता है तब निर्मानता और पराधीनता और कपट इत्यादिक बुरे स्वभाव उपजते हैं बहुरि जब क्रोध का बल मर्याद के अनुसार होताहै तब इसका चित्त दृढ़ होता है और पुरुषार्थ और बल और सहनशीलता और नम्रता और इसकी नाईं अनेक शुभगुण को पावता है इसी प्रकार जब भोगों का बल अधिक होता है तब तृष्णा और अशुद्धता और कृपणता और ईर्षा उपजती है और लोभ करके धनवानों के अपमान को सहता है और निर्धनों का निरादर करता है इत्यादिक अनेक अपलक्षण उत्पन्न होते हैं बहुरि जब सर्वथा भोगोंसे रहित होताहै तब आलस्य, कादरता, अस्थिरता उपजती है और भोगों का बल मर्यादअनुसार होता है तब संयम धैर्य संतोष भाव यह सब उत्पन्न होते हैं ताते विद्या और क्रोध और काम जो वर्णन किये हैं सो इनके दो २ किनारे हैं एक अधिकता दूसरा अल्पता सो यह दोनों निन्द्य हैं ताते इनकी मर्यादही विशेष कही है पर इनकी मर्याद बालसे भी सूक्ष्म और कठिनहै और उत्तम मार्ग भी यही है जैसे परलोक में पुलसरात अर्थात् वैतरणीका उतरना कठिन कहाहै तैसेही इनकी मर्यादमें बर्तना भी कठिन है ताते जो पुरुष इस लोक में इनकी मर्याद अर्थात् समानता बिषे बर्तताहै वह पुलसरात से परलोक में निर्भय रहता है इसी कारण से श्रीमहाराज ने भी सब स्वभावों में समानताही प्रमाण कही है और उन पुरुषों की प्रशंसा करी है जो कृपणता और फ़ज़ूली से रहित हैं और महापुरुषने भी कहाहै कि

न तो ऐसी कृपणता करिये जो किसीको कुछ न दीजै और न ऐसी फ़जूली करिये जो सब कुछ एकही बारमें लुटादीजै और आप निर्धनताई को प्राप्त हूजिये ताते जान तू कि हृदय की सुन्दरताई सम्पूर्ण तबहीं होतीहै जब यह सब गुण मर्याद के अनुसार होते हैं जैसे शरीर करके सुन्दर भी तबहीं होता है जब सब अङ्ग सुन्दर और समान होतेहैं पर इस हृदयकी सुन्दरता और कुरूपता विषेभी मनुष्य चार प्रकारके होतेहैं सो एक ऐसे मनुष्य हैं कि उनमें सम्पूर्ण शुभगुण पाये जाते हैं तब उनको सम्पूर्ण सुन्दर कहाजाता है और सब जीवों को ऐसे महापुरुष की आज्ञाविषे वर्तना उचित है पर ऐसा पूर्ण सुन्दर कोई महापुरुष और सन्तही होता है जैसे शरीर के पूर्ण सुन्दर भी एक यूसुफ़ही हुये हैं तैसे हृदयका पूर्णसुन्दर भी कोई बिरला होताहै १ और दूसरे पुरुष ऐसे होतेहैं कि उनमें सब स्वभाव बुरेही पाये जातेहैं और हृदय उनका महाकुरूप और कठोर होताहै पर ऐसे पुरुष जगत में न होवें तो भलाहै काहेसे कि वह मनमुख असुरोंकी नाईं हैं और असुरों को जो कुरूप कहाहै सो शरीर करके कुरूप नहीं कहा केवल सेवकहीके स्वभावों की बुराई करके कुरूप कहा है २ और तीसरे मनुष्य ऐसे हैं कि हृदय उन दोनों प्रकार के मनुष्यों के मध्यहैं पर उत्तम सुन्दरताई के अधिक हैं ३ और चौथे प्रकारके मनुष्य भी यद्यपि उन दोनों के मध्य हैं पर ते कुरूपता के बहुत निकट हैं सो जैसे शरीर करके भी सम्पूर्ण सुन्दर और कुरूप कोई बिरलाही होताहै पर मध्यम भाव विषे बहुत होते हैं हृदय की सुन्दरता और कुरूपता भी इसी प्रकार है ४ ताते सबको यही पुरुषार्थ करनाचाहिये कि जो हृदयकी पूर्ण सुन्दरताको न पहुँच सके सम्पूर्ण सुन्दरता के निकट जो पदहै तिसको पहुँचे अर्थात् जब सब शुभगुणों को प्राप्त न होसके तो भी कुछ शुभगुणों को तो प्राप्तहोवे सो जैसे शरीर की सुन्दरता और कुरूपता अपार है तैसेही हृदय की सुन्दरता और कुरूपता भी अपार है काहेसे कि शुभगुणों की सुन्दरता एक वस्तुका नाम नहीं तौभी मूल इनका विद्या और भोगों का जीतना और क्रोध का जीतना और विचार है और अवर शुभ गुण इनकी शाखा हैं २ (अब तीसरे विभाग में यह वर्णन होगा कि पुरुषार्थ करके निस्संदेह भले स्वभावों को प्राप्त होसक्ते हैं) ताते जान तू कि कोई पुरुष ऐसे कहते हैं कि जैसे शरीर का स्वरूप नहीं उलटसक्ता जैसे आदि में उत्पन्न हुआ है तैसाही रहता है अर्थात् लम्बा पुरुष छोटा नहीं होसक्ता और छोटा

यत्न करके लम्बा नहीं होता तैसेही हृदय का स्वरूप भी नहीं उलटता ताते जिसका स्वभाव बुरा है वह यत्न करके भला नहीं होता सो यह कहना उनका प्रमाण नहीं काहेसे कि वह भूल करके कहते हैं क्योंकि जो उनका कहना प्रमाण होता तौ उपदेश और समझावना सिखावना सन्तजनों का सब मिथ्या होता है जैसे महापुरुष ने भी कहा है कि अपने स्वभावों को भला करो ताते जाना जाता है कि स्वभावों का उलटावना असंभव नहीं इस कारण से कि महाकठोर पशु भी यत्न करके कोमल होजाते हैं और वह मृग जो मनुष्यों को देख कर भयवान् होकर भागजाते हैं सो भी प्यार करके मनुष्यों के साथ विना पकड़े चलेजाते हैं ताते स्वभाव का उलटावना शरीर के उलटावने की नाईं नहीं ताते सर्व कार्य दो प्रकार के होते हैं सो एक कार्य ऐसे हैं कि मनुष्यों के यत्न करके सिद्ध नहीं होते जैसे खजूर के बीज से सेब का वृक्ष मनुष्य के यत्नसे नहीं होता पर इतना कार्य मनुष्य के अधीन है कि खजूर के बीज को यत्न करके खजूर का वृक्ष करसक्ता है तैसे यह भी मनुष्य के अधीन नहीं कि खाना पीना आदिक जो शरीर के भोग हैं सो सर्वथा इनसे मुक्त होसकें पर इतना कार्य मनुष्य से होसक्ता है कि यत्न करके क्रोध और भोगों को मर्याद के अनुसार करलेवे सो यह बात निस्संदेह है पर इसमें इतना भेद है कि कोई पुरुष ऐसे होते हैं जिनका स्वभाव उलटना कठिन होताहै और एक ऐसे होते हैं कि उनको सुगम होता है पर कठिनता भी इनकी दो कारण से होती है सो एक यह है कि जिस मनुष्य का स्वभाव आदि उत्पन्न विषे यही प्रबल होता है वह भी कठिनता करके उलटता है और दूसरा यह है कि जिस स्वभाव में चिरकालपर्यन्त बर्त्ताव होता है वह भी सुगम नहीं उलटता और प्रबल होजाता है बहुरि सर्व मनुष्य स्वभाव के उलटने में चार प्रकार के होते हैं एक ऐसे हैं कि प्रथम उत्पत्ति विषेही कोरे कागज की नाईं हैं और उन्होंने सत्य और असत्य को अभी पहिचानाही नहीं और किसी भले और बुरे स्वभाव में वर्त्तमान भी नहीं हुये सो ऐसे मनुष्य उपदेश के उत्तम अधिकारी हैं कि वह सुगमही भले स्वभाव को अङ्गीकार कर लेते हैं सो ऐसे पुरुष को कोई उपदेश करनेवाला सिखावे और उनको बुरे स्वभाव के विघ्नों को समझावे तब वह सीधे मार्ग विषे चलें सो आदि जन्म अवस्था में सभी बालक ऐसे होते हैं पर माता पिता उनको बुरे मार्ग में डालते हैं

और माया की तृष्णा में उनको लगावते हैं और कुछ भली बुद्धि नहीं सिखाते ताते वह खेलने और खाने की वासना में निश्शङ्क होकर वर्त्तते हैं सो उनके धर्म के नाश होने का पाप माता और पिता को होता है सो इसी कारण करके महाराज ने भी कहा है कि जो पुरुष अपने मन और सम्बन्धियों को पाप कर्म से वर्जते हैं और नरक की अग्नि से बचाते हैं वह पुरुष धन्य हैं १ और दूसरे मनुष्य ऐसे हैं कि उन्होंने यद्यपि अभी भले बुरे का निश्चय कुछ नहीं किया पर भोग और क्रोध में कुछ काल वर्त्तमान हुये हैं तौ भी इतना जानते कि ये स्वभाव भले नहीं सो ऐसे पुरुषों का कार्य कठिनता से होता है क्योंकि इनको दो यत्न चाहिये हैं एक बुरे स्वभावों का दूर करना दूसरे भले स्वभावों का बीज उनके हृदय में बोवना पर जब वह पुरुष श्रद्धा और पुरुषार्थसंयुक्त होवे तब तुरत ही भलाई को प्राप्त होसक्ते हैं और उनका बुरा स्वभाव नाश होजाता है २ और तीसरे मनुष्य इस प्रकार के हैं कि उनका स्वभाव पापों में दृढ़ हुआ है और यों भी नहीं जानते कि यह बुरे स्वभाव हैं और उनकी दृष्टि में पापकर्म सुन्दर होकर भासते हैं सो ऐसे पुरुषों का स्वभाव उलटना महाकठिन होता है ताते ऐसा कोई विरला होता है जो अपने पाप स्वभाव का त्याग करे ३ ॥ और चौथे मनुष्य ऐसे हैं कि पापकर्म करके बड़ाई करते हैं और भला जानते हैं और कहते हैं कि हम इतनी मदिरा पान करजाते हैं और कामादिक भोगों विषे हमको इतना बल है सो ऐसे पुरुष भलाई के उपदेश को अङ्गीकार नहीं करते पर जिस किसी पर अकस्मात् भगवतही की दया होजावे तिसकी दूसरी बात है और उसका स्वभाव बुरा दूर होजाता है सो इस भगवत्दया में मनुष्य का बल और यत्न कुछ नहीं चलता ४ (और चौथे विभाग में भले स्वभाव के प्राप्त होने का उपाय वर्णन करते हैं) ताते जान तू कि जो कोई पुरुष यों चाहे कि मेरा बुरा स्वभाव दूर होवे तब इसका उपाय यह है कि अपने स्वभाव के अनुसार न वर्त्ते काहे से कि भोगों का नाश करना विपर्यय हुये विना सिद्ध नहीं होता क्योंकि विरोधी पदार्थ अपने विरोधी ही से दूर होता है जैसे क्रोधरूपी रोग की औषध सहनशीलता है और अभिमानरूपी रोग की औषध नम्रता है और कृपणता की उदारता औषध है और इसी की नांई सर्व रोगों की औषध उसकी विरोधी वस्तु है ताते जो कोई पुरुष शुभ करतूति की साधना में आपको लगावे तब उसका

स्वभाव सहजही भला होजाता है और धर्मशास्त्र में जो शुभकर्म करने की आज्ञा है इसका कारण यह है कि शुभकर्म करके हृदय का स्वभाव शुभ होता है सो जो कुछ यह पुरुष प्रथम यत्न करके करता है तिसके हृदय का स्वभाव भी उसीके अनुसार दृढ़ होजाता है जैसे आदि में बालक पढ़ावनेवाले और चटशाला से भय करके भागता है पर जब उसको दण्ड करके पढ़ने में लगावते हैं तब तिसका वही स्वभाव बनजाता है बहुरि जब बड़ा होता है तब सम्पूर्ण रहस्य विद्याही को समझता है और विद्या के रस को छोड़ नहीं सक्ता इसी प्रकार जब कबूतर शतरंज जूवा खेलने का स्वभाव पकड़ता है तब ऐसा स्वभाव होजाता है कि सब सुख माया के और अवर जो कुछ संग्रह रखता है सो उसीमें खर्च करता है और उसका त्याग नहीं करसक्ता ताते उसके स्वभाव के विपर्यय भी बहुत स्वभाव हैं पर जब उन स्वभावों में वर्त्तमान होता है तब ऐसा दृढ़ होजाता है कि उन करके दुःख और दण्ड को सहना भला जानता है जैसे बहुत मनुष्य जिनका चोरी करना दृढ़ स्वभाव होगया है वह नाना प्रकार के दण्ड और हाथ कटवाने पर भी धैर्य धरते हैं पर चोरी नहीं छोड़सक्ते और उस दण्ड के सहने में अपनी विशेषता मानते हैं इसी प्रकार हिजड़े अपनी निर्लज्जता करके ही परस्पर प्रसन्न होकर उसकी अधिकता पर बड़ाई करते हैं ताते जो विचार करके देखिये तब नाऊ और श्वपच भी आपस में ऐसी बड़ाई करते हैं जैसे विद्यावान् और जो गुणीलोग बड़ाई करते हैं सो यह सब स्वभाव के वर्त्तने का फल है कि वह ऐसा ही दृढ़ होजाता है जैसे किसी का स्वभाव मिट्टी खाने का होता है और उसमें रोग और मृत्यु होने का भय भी उसको होता है तौ भी उसका त्याग नहीं करसक्ता ताते यही प्रसिद्ध है कि जो कुछ स्वभाव के विपर्यय है वह भी बहुत काल के वर्त्तमान होने करके दृढ़ होजाता है। फिर जो कुछ इस मनुष्य के हृदय के स्वभावअनुसार है वह तो इसका जीवनरूप है जैसे आहार और जल शरीर का जीवनरूप है पर जब यह पुरुष अपने शुद्ध स्वभाव को ग्रहण करे तब वह स्वभाव तो सुगमही दृढ़ होजाता है सो तैसेही भगवत् का पहिचानना और भजन और काम क्रोध का अधीन करना सो यह मनुष्य के हृदय के स्वतः स्वभाव हैं इस कारण करके कि यह मनुष्य भी देवताओं की नाईं उत्पन्न हुआ है जैसे देवताओं का आहार

भगवत का पहिंचानना और बूझ है तैसे मनुष्यों के हृदय का आहार भी और जीवनरूप यही है पर इस मनुष्य का स्वभाव जो भोगों में अधिक दृढ़ हुआ है इस कारण करके उसमें नहीं रुचि करता सो उन भोगों करके इनका हृदय रोगी होगया है जैसे रोगी पुरुष अपने दुखदायक आहार में प्रीति करता है और सुखदायक आहार को बुरा जानकर त्याग करता है ताते प्रसिद्ध हुआ कि जो पुरुष भगवत् की पहिंचान और भजन के विना अन्यथा पदार्थों को प्रियतम जानता है वह रोगी है सो महाराज ने भी इसी प्रकार कहा है कि मनमुखों का हृदय रोगी है और जो पुरुष भगवत् की ओर आया है वही अरोग है और जैसे शरीर के रोग करके मृत्यु का भय होता है तैसे हृदय के रोगी होने करके भी परलोक में बुद्धि के नाश होने का भय होता है सो जैसे शरीर के रोग से भी तब छूटता है जब अपने स्वभाव से विपर्यय कटु औषध खावे और वैद्य की आज्ञा विषे वर्त्ते तैसे हृदय के रोग का उपाय भी यही है कि अपनी वासना और मनके स्वभाव से विपर्यय होवे जैसे सन्तजनों और शास्त्रों ने कहा है क्योंकि सन्त जन हृदय के वैद्य हैं सो प्रयोजन यह है कि जैसे शरीर के रोगों का वैद्यक है तैसे हृदयके रोगों का भी वैद्यक है और दोनों का एकही स्वभाव है जैसे शरीर के वैद्यक में गरमी की औषध शरदी कही है तैसे जिस पुरुषको अभिमान का रोग प्रबल होवे तिसको यत्न करके दीनस्वभाव करना चाहिये कि उसकी आरोग्यता यही है और जिस पुरुष का अत्यन्त दीन स्वभाव होवे उसको यत्न करके गम्भीर स्वभाव करलेना उचित है ताते जान तू कि सब शुभगुण तीन प्रकार करके प्राप्त होते हैं सो एक यह है कि वह पुरुष आदि उत्पत्तिमेंही गुणवान् होता है सो यह बात भगवतकृपा करके होती है जैसे किसी पुरुष को आदि उत्पत्ति से ही उदार अथवा नम्र भगवत उत्पन्न करे सो ऐसे पुरुषभी बहुतसे होते हैं १ और दूसरे मनुष्य इस प्रकार के हैं कि वह यत्न करके शुभ करतूतों के साधन में दृढ़ होते हैं तब उनका स्वभाव भी सहज स्वाभाविकही शुभ होजाता है २ और तीसरे मनुष्य ऐसे होते हैं कि वह जब भले स्वभाव और शुभ करतूतिवालों को देखते हैं और उनका संग करते हैं तब उनका स्वभाव सहजही शुभ होजाता है और यद्यपि उनको ऐसी बूझ भी नहीं होती तो भी भलाई को प्राप्त होते हैं ३ पर जिस पुरुष को यह तीनों पदार्थ इकट्ठे मिलें कि आदि उत्पत्ति से भी शुभ गुणोंवाला

होवे और उसकी करतूति भी भली होवे और संगति भी उसको भली प्राप्त होवे तब वह पुरुष पूरा भाग्यवान् होताहै और जिस मनुष्य में यह तीनों पदार्थ न होवें कि आदि उत्पत्तिमें भी उसके स्वभाव नीच होवें और करतूति भी बुरी करे और संगति भी कुसंगियों की होवे वह पूरा भाग्यहीन होता है सो इन भाग्यवान् और भाग्यहीन दोनों में बड़ा भेद है कि किसीको कोई पदार्थ प्राप्तहोता है और कोई नहीं होता सो जितना किसीमें शुभगुण पायाजाताहै तितनाही भाग्यवान् कहाता है और जितना अवगुण होता है उतना मन्दभागी है ताते भगवत्ने भी कहा है कि जो पुरुष अल्पमात्र भी सुकृत करता है तिसको अवश्यही उसका फल प्राप्त होता है और जो किंचित भी बुराई करता है वह उतनाही दुःख भोगता है ताते जान तू कि सब करतूति इन्द्रियोंके साथ होती हैं और उन में प्रयोजन यही है कि हृदय का स्वभाव बुराई से उलटकर सीधा होवे क्योंकि परलोक में जीवही जाता है और शरीर यहांही रहजाता है ताते चाहिये कि जब जीव परलोक में जावे तब निर्मल और सुन्दर होकर जावे तो भगवंत् के दर्शन का अधिकारी होवे और शुद्ध दर्पण की नाईं निरावरण होकर अपने हृदय में भगवत् की सुन्दरता को देखे सो वह सुन्दरताई कैसी है कि उसको देखकर स्वर्ग के सुख भी कुरूप और तुच्छ भासते हैं और यद्यपि परलोक में शरीरके साथ भी सम्बन्ध होता है तौ भी कर्त्ता और भोक्ता यह जीवही है और शरीर उसके अधीन है ताते जान तू कि शरीर और जीव भिन्न २ है क्योंकि जीवकी उत्पत्ति सूक्ष्म और अरूप है और शरीर आधिभौतिक है सो यद्यपि शरीर और जीव भिन्न है तौभी इनका परस्पर सम्बन्ध है सो जो भली करतूति शरीर से होती है उसका प्रकाश हृदय में जाय पहुँचताहै और वही प्रकाश उत्तम भागों का बीज होताहै और जो करतूति बुरी शरीर के साथ होती है तिसका अन्धकार हृदय को पहुँचता है और वही अन्धकार मन्दभागों का बीज होताहै सो इसी सम्बन्ध के निमित्त जीवको आधिभौतिक लोक में उत्पन्न किया है कि यह जीव शरीर को फांसी की नाईं बनावे और इस करके सम्पूर्ण भले स्वभावोंको शिकार करे जैसे लिखना जो है सो कारीगरी बुद्धिकी है पर तौभी करतूति लिखनेकी हाथों करके ही सिद्ध होतीहै ताते जब कोई चाहे कि मेरे अक्षर लिखने में सुन्दर होवें तब इसका उपाय यह है कि यत्न करके अक्षर

सुन्दर लिखे और हाथों की हथेली को बनावे तब उसके हृदयमें सुन्दर अक्षरों की मूर्त्ति दृढ़ होवे सो जब मूर्त्ति हृदय में दृढ़ होती है तब उसीके अनुसार अँगुली अक्षर को लिखती हैं तैसेही प्रथम इस मनुष्य की करतूति भली होती है तब इसके हृदय में भला स्वभाव दृढ़ होताहै फिर उस भले स्वभाव के अनुसार करतूति सहजही भले होते हैं ताते निस्सन्देह यही प्रसिद्ध हुआ कि बीज सब भलाई का यह है कि प्रथम यत्न करके शुभकर्म करे और शुभकर्मों का फल यह है कि हृदय में भला स्वभाव दृढ़ होवे और फिर भले हृदय के स्वभाव का प्रकाश शरीर में पसरता है तिस करके स्वाभाविकही प्रीतिसंयुक्त भले करतूति होने लगतेहैं सो जीव और शरीर के सम्बन्ध का भेद यही है कि शरीरके करतूति का गुण हृदय में प्रवेश करता है और हृदय के स्वभाव का प्रवेश शरीर में पहुँचता है सो इसी कारण करके जो करतूति अचेतता और अज्ञानता के साथ होती है वह निष्फल और व्यर्थ होती है क्योंकि उसका गुण अथवा अवगुण हृदय में प्रवेश नहीं करता ताते ऐसे जान तू कि जिस मनुष्य का शरदी का रोग गरम औषध खाने करके मिटे तिसको योंभी न चाहिये कि गरम औषध खायेही जावे जो गरमीही अधिक होकर रोगरूप होजावे ताते रोगकी औषध की जो मर्याद है तिसके अनुसार रहनाही फलदायक होता है इस प्रकार जानना चाहिये कि औषध करने का प्रयोजन यह है कि शरीर का स्वभाव समान होवे और गरमी अथवा शरदी अधिक न होवे सो जब यह पुरुष जाने कि मेरे शरीर का स्वभाव समान हुआ है तब आगे औषध का त्याग करे और स्वभाव के निमित्त आहार पथ्य भी समानही खावे और समानताही को आरोगता जाने तैसेही हृदय के स्वभावों के भी दो २ किनारे हैं एक अधिक होना दूसरा न्यून होना सो यह दोनों निन्द्य हैं ताते इनका प्रयोजन समानता है जैसे कृपण को उचित है कि धनको परमार्थ में खर्चै और जब लग उसके हृदय में उसकी सुगमता न होवे तबलग यत्न करके खर्च करे और जब उसको अधिकारी प्रति देना सुगम हुआ तो ऐसे भी न चाहिये कि व्यर्थही खर्चता रहे सो यह भी निन्द्य है सो जैसे शरीर के स्वभाव की मर्याद विपर्यय विषे प्रसिद्ध है तैसे हृदय के स्वभावों की भी सन्तजनों के वचनों करके समझी जाती है ताते चाहिये कि सन्तजनों की आज्ञानुसार बर्ते और जिस पदार्थ का संग्रह

करना कहा है उसका संग्रह करे और जिसका देना प्रमाण कहा है उसे देवे तब जानिये कि यह पुरुष संमानता को प्राप्त हुआ है पर जबलग इस मनुष्य की शुभकर्मों में स्वाभाविक रुचि नहीं और यत्न करके करता है तबलग जानिये कि अभी रोगी है पर भला है कि यत्न करके औषध का अङ्गीकार करताहै इस का रोग दूर होरहेगा इसी कारण करके महापुरुष ने भी कहा है कि महाराज की आज्ञा को प्रीतिसंयुक्त अङ्गीकार करो और महाराज की आज्ञा पालन करने में हठ और धैर्य भी करना भला होता है ताते जान तू कि जो पुरुष विचार करके धन का संग्रह करता है वह कृपण नहीं कहाजाता क्योंकि कृपण वह होता है जिसकी प्रीति धनके संग्रह में स्वाभाविक अधिक होवे तैसेही जो पुरुष यत्न करके धन को खर्च करताहै वह संपूर्ण उदार नहीं कहाजाता ताते संपूर्ण उदार वही है जिसको धनका देना सुगम होवे सो इस पुरुष को ऐसे चाहिये कि सब स्वभाव इसके स्वाभाविक ही भले होवें यत्न और हठ दूर होजावे और संपूर्णता इस मनुष्य की यही है कि सब करतूति और स्वभाव इसके सन्तजनों के वचनों के अनुसार होवें और इसको अपनी अभिलाषा कुछ न रहे और सन्तजनों की आज्ञा माननी इसको सुगम होवे तब जानिये कि इसका रोग दूर हुआ है सो भगवत् ने भी महापुरुष से इसी प्रकार कहा है कि इन पुरुषों का धर्म तबहीं संपूर्ण होवेगा जब तेरी आज्ञा में स्वाभाविक प्रसन्नतासहित चलेंगे सो यह जो आगे बखान किया है सो तिसमें भी एक गुह्य भेद है पर वह भेद इस ग्रन्थ में संपूर्ण कहा नहीं जाता तौभी कुछ सूचनामात्र कहते हैं सो ऐसे जान तू कि यह मनुष्य भाग्यवान् तब होता है जब इसका स्वभाव देवताओं की नाईं निर्मल होवे क्योंकि मनुष्य की उत्पत्ति भी देवताओं की नाईं शुद्धरूप है और इस जगत में परदेशी है और स्थान इसका देवलोक है ताते जो स्वभाव स्थूल इस जगत् का यह पुरुष अपने साथ परलोक में लेजाता है तब उस करके देवताओं के सम्बन्ध से दूर होता है ताते चाहिये कि जब यह पुरुष देवलोक में जावे तब देवताओं के स्वभावोंसे संयुक्त जावे और कोई स्वभाव इस विषे जगत् का न होवे सो स्वभाव जगत् का इस प्रकार होता है कि जिस पुरुषको धन संचने की तृष्णा है वह भी धनके साथ परचा हुआ है और जिसको धन खर्चने में प्रीति है वह भी धनके साथ परचा हुआ है तैसेही जिसको मान की इच्छा है वह भी लोगों के

साथ परचा हुआ है और जिसको दीनता और नम्रता विषे अधिक अभिलाषा है वह भी लोगों के साथ परचा हुआ है और देवता जो हैं वह किसी प्रकार धन और लोगों के साथ आसक्त नहीं हैं और केवल भगवत् के प्रेम में ऐसे मगन हैं कि अन्यथा किसी ओर नहीं देखते ताते चाहिये कि मनुष्य के हृदय का सम्बन्ध भी धन और लोगों से टूटाहुआ होवे और इन सबसे शुद्ध और निर्लेप होवे पर यद्यपि मनुष्य जो यह शरीरधारी है सो शरीर के सब स्वभावों से रहित नहीं रह सक्ता तौभी चाहिये कि इनकी मर्याद और समानता विषे स्थित होवे सो जब यह पुरुष समानताविषे दृढ़ हुआ तब इस प्रकार जानिये कि अब सब स्वभावों से मुक्त हुआ अर्थात् कोई स्वभाव भी इस पर प्रबल नहीं है जैसे प्राणी जो शीत और उष्णता से रहित कदाचित् नहीं रहसक्ता पर जब समानभाव में रहता है और शीत उष्ण की अथवा अधिकता नहीं होती तब मानो दोनों स्वभावों से वह मुक्त है क्योंकि जल गरमी और शरदी दोनों से रहितभी नहीं पर उसको शीतल और उष्ण कुछ नहीं कहाजाता ताते सन्तजनों ने जो सब स्वभावों में मर्याद और समानता कही है सो इसी कारण कही है ताते चाहिये कि इस मनुष्य की दृष्टि सदैव समानताविषे रहे और सब स्वभावों के बन्धनों से मुक्त होवे तब इसका चित्त सर्वकाल भगवत्विषे लीन होवे सो महाराज ने भी इसी प्रकार कहाहै कि एक मुझको स्मरण करो और अवर सब बिसारो सो सबका बीज मन्त्र यहीहै पर यद्यपि इस मनुष्य को शुद्ध परमपद विषे स्थित होना कठिनहै तदपि सब जप तप और भजन के अभ्यास का प्रयोजन यही है कि श्रीरामजी को एक पहिचाने और सर्व विषे उन्हींको देखे और उन्हींको चाहे उन्हींका दास होवे और कोई इच्छा हृदय में न फुरे सो जब इस मनुष्यकी ऐसी अवस्था होवे तब जानिये कि सम्पूर्ण भला स्वभाव इसको प्राप्त हुआ और मानुषी स्वभाव दूर होकर स्वस्वरूप को प्राप्त हुआ और महाराज को पहुँचा अब ऐसे जान तू कि यद्यपि यत्न और पुरुषार्थ इसके साधने का बड़ा कठिन है तो भी जो सद्गुरु इसका वैद्य होवे और इसका औषध भली प्रकार करे तब यत्न और पुरुषार्थ करना भजनविषे इसको सुगम होजाता है सो भली प्रकार औषध करना यह है कि जिज्ञासु को प्रथमही तत्त्वज्ञान का उपदेश न करे क्योंकि जिज्ञासु की आदि अवस्थामें ऐसा बल नहीं होता जैसे प्रथम बालक को जब पाठशाला

में भेजिये और उससे कहिये कि तुझको विद्याके पढ़ने करके बड़ाई और मान प्राप्त होवेगा सो वह बालक बड़ाई और मान के सुख को समझताही नहीं कि बड़ाई और मान कैसे होतेहैं ताते चाहिये कि प्रथम बालकसे ऐसे कहे कि अब तू चटशाला विषे जा और जब पढ़कर आवेगा तब तुझको गेंद दण्डा देवेंगे अथवा बुलबुल चिड़िया देवेंगे तब तू प्रसन्न होकर खेलियो तब वह बालक इस लोभ करके चटशालामें जाताहै बहुरि जब उससे कुछ बड़ा होवे तब कहिये कि जब तू खेलने का त्याग करे और विद्या पढ़े तब तुझको सुन्दर वस्त्र देवेंगे बहुरि जब उससेभी बड़ा होवे तब कहिये कि विद्या पढ़ने करके बड़ाई और मान प्राप्त होवेगा और सुन्दर रेशमी वस्त्र का पहरना स्त्रियों का स्वभाव है बहुरि जब सम्पूर्ण विद्या पढ़लेवे और बुद्धि उसकी उज्ज्वल होवे तब उससे कहिये कि इस जगत् की बड़ाई और मान निर्मूलहै अर्थात् मृत्युके समय नष्ट होजातीहै बहुरि उससे पीछे जो अविनाशी पद सच्ची बादशाही और अमर है उसका उपदेश करे तैसेही प्रथम जिज्ञासुको शुद्ध निष्कामता का बल नहीं होता ताते चाहिये कि सद्गुरु प्रथम उससे इस प्रकार कहे कि अब तू शुद्ध करतूति विषे पुरुषार्थ कर क्योंकि शुद्ध करतूति करके जगत् में तेरी बड़ाई होवेगी और लोग तुझको भजनवान् जानेंगे तब इस बड़ाई की अभिलाष करके धन और भोगों से निवृत्त करे बहुरि जब जिज्ञासु धन और भोगों की अभिलाष से रहित होवे और इसी वैराग्य का अभिमान इसके हृदयमें फुरे तब चाहिये कि सद्गुरु उसके अभिमान को इस युक्ति करके दूर करे कि जिज्ञासु को भिक्षा मांगने की आज्ञा करे बहुरि जब इसमें भी जगत् उसका आदर करे तब जिज्ञासु को नीच टहलमें लगावे अर्थात् मल मूत्र के स्थानको शुचि करावे इसीप्रकार जिज्ञासुको जैसा रोग होवे तैसा ही उपचार करे और शनैः २ करके सब रोगों को दूर करे क्योंकि जबलग जिज्ञासु में सम्पूर्ण बल नहीं होता तबलग मान और आदर के आश्रय करके तप और भजन को अङ्गीकार करता है सो और सब बुरे स्वभाव तो बिच्छू की नाईं हैं और मानरूपी अजगर सर्प है ताते मानरूपी अजगर और सर्व स्वभावों को भक्षण करलेता है और मान का स्वभाव सब स्वभावोंसे पीछे दूर होताहै ४ (और पांचवें विभाग में मानसी रोग और अवगुणों का वर्णन होवेगा) ताते ऐसे जान तू कि तन और इन्द्रियों की आरोगता इस करके जानी जाती है कि जिस कार्य

के निमित्त जो २ इन्द्रियाँ उत्पन्न हुई हैं तिसी कार्य को सावधान होकर ग्रहण करे जैसा नेत्र भली प्रकार देखैं चरण भली प्रकार चलें तब जानिये कि नेत्र और चरण अरोग्य हैं तैसे हृदय की अरोगता तब पहिंचानी जाती जब इस हृदय का जो स्वतः स्वभाव है और जिस निमित्त जीव को उत्पन्न किया है तिसी कार्य में निर्यत सावधान होवे और अपने स्वतःस्वभाव में दृढ़ होवे सो यह सावधानता दो कारणों करके प्रकट होती हैं एक श्रद्धा दूसरे बल ताते श्रद्धा ऐसी चाहिये कि भगवंत बिना और किसी पदार्थ में प्रीति न होवे क्योंकि जैसे शरीर का आहार अनाज है तैसे भगवत् की प्रीति और पहिंचान हृदय का आहार होवे सो जिस पुरुष की क्षुधा मन्द होती है वह रोगी होता है तैसे जिस मनुष्य के हृदय में भगवत् की प्रीति न होवे तिसका हृदय रोगी और निर्बल होता है ताते महाराज ने भी ईस प्रकार कहा है कि जबलग पुत्र और पिता और धन व्यवहार और सम्बन्धियों अथवा और किसी के साथ तुम्हारी प्रीति है तबलग तुम यह जानो कि जब मेरी आज्ञा आन पहुँचेगी और शरीर छूटनेका समय आवेगा तब तुम अधिक दुःखी होओगे॥ बहुरि बलकी अरोगता यह है कि जितनी शुभकरतूतिं भगवंत ने इस मनुष्यको करणीय कहीहैं तिनको सुगमही करे और उस करतूति करनेमें इसको यत्न कुछ न करनापड़े और शुभ करतूति मेंही इसको स्वाद विशेष उत्पन्न होवे सो ऐसेही महापुरुष ने भी कहा है कि महाराज का भजन मेरे नेत्रों की पुतली हैं अर्थात महाप्रियतम है॥ तातें जो पुरुष श्रद्धा और बल अपने में न देखै तब जाने कि मेरा हृदय रोगी है और जिसनें अपने रोग को पहिंचाना उस को चाहिये कि उस रोग के उपचार में सावधान होवे और ऐसेभी बहुत पुरुष होते हैं कि उनका हृदय तो रोगी है और वह अपने को अरोग्य जानते हैं सो इसका कारण यह है कि यह मनुष्य अपने अवगुणों के देखने में अन्धा है अर्थात् अपने अवगुण को आप नहीं देखसक्ता पर जो कोई अपने अवगुण को देखा चाहे तिसके चारि उपाय हैं सो प्रथम यह कि जिज्ञासु ऐसे सद्गुरु के निकट रहे जो सर्व धर्मों का ज्ञाता होवे और वह अपनी दया करके जिज्ञासु के अवगुण को लखावें सो ऐसे सद्गुरु इस समय में दुर्लभ पाये जाते हैं १ ताते दूसरा उपाय यह है कि कोई मित्र अपनी रक्षा निमित्त करे और वह मित्र ऐसा होवे जो इसके अवगुण को दुरावे नहीं और ईर्षा करके अधिक भी न कहे सो ऐसा

मित्र भी कोई होता है जैसे दाऊदताई नामी सन्त से लोगों ने कहा कि तुम हमारे निकट बैठते क्यों नहीं हो तब उन्होंने कहा कि मैं ऐसे पुरुषों की संगति कैसे करूं जो मेरे अवगुण को प्रकटकरके न कहैं और दुराय राखें २ और तीसरा उपाय यह है कि जो कोई इस पुरुष का बैरी होवे सो वचन को सुने क्योंकि वैरी की दृष्टिभी सर्वदा इसके अवगुणों परही होती है सो यद्यपि वह वैरभाव करके अधिक भी कहता है तौभी उसके वचन में कुछ सत्यभी होताहै ३ और चौथा उपाय यह है कि जब किसी मनुष्य में कोई अवगुण देखे और वह अवगुण इसको बुरालगे तब आप भी उस अवगुण को त्यागकरे और यों जाने कि जैसे इस अपलक्षण करके यह पुरुष बुरा भासता है सो ऐसे मैं भी ऐसे स्वभाव करके बुरा होऊंगा ताते उसका त्याग करे जैसे एवनामी सन्त से लोगों ने पूछा कि ऐसा भला स्वभाव तुमने किससे सीखा है तब उन्होंने कहा कि यह भला स्वभाव मैंने इस प्रकार सीखा है कि जब किसी पुरुष में मैंने अवगुण देखा और मुझको बुरा भासा तब मैंने उस अवगुण का त्याग किया ४ ताते जान तू कि जो मनुष्य महामूढ़ होता है वह अपने को विशेष जानताहै और जो पुरुष विशेष बुद्धिमान् होताहै सो आपको बुरा जानता है जैसे उमर ने एक सन्त से पूछाथा कि महापुरुष ने तुमसे कपटियों के लक्षण कहे हैं सो तुम भली प्रकार जानते हो ताते मुझसे खोलकर कहो कि मुझमें कपटियों का कौन लक्षण है? तब मैं अपने अवगुण को पहिंचानूं॥ ताते सब किसी को चाहिये कि अपने अवगुण के पहिंचानने का उपायकरे क्योंकि जबलग अपने रोग को न पहिंचानिये तबलग उपचार भी उसका नहीं होसक्का और सब ओषधियों का मूल यह है कि अपनी वासना से विपर्यय होना सो महाराज ने भी योंहीं आज्ञा की है कि अपने मन को वासना से विपर्ययकरो तब उत्तम सुख स्थान में तुम्हारा निवास होगा और महापुरुष ने भी जिस समय मनमुखों को युद्ध करके जीता तब अपने संगियों से कहा कि अब हम छोटी लड़ाई तो जीतआये अब बड़ी लड़ाई में आय प्राप्तहुए हैं तब संगियों ने पूछा कि बड़ी लड़ाई क्या है? तब उन्होंने कहा कि मनके साथ युद्ध करना यह बड़ी लड़ाई है और योंभी कहा है कि अपने मनको दुःख से बचाओ अर्थात् महाराज की आज्ञा का उल्लंघन करके मनको उसकी वासना अनुकूल आहार मत दो क्योंकि परलोक में यह

मनही तुम्हारा शत्रु होवेगा और सब इन्द्रियाँ तुमको धिक्कार कहेंगी ॥ और इस नवसरी सन्त ने भी कहाहै कि कोई पशू कठोर और अजीत मनके समान नहीं और सिरीसक्त सन्त ने भी कहाहै कि चालीस वर्ष से मन मेरा मधु के साथ रोटी खाने की इच्छा करता है पर मैंने अबलग अङ्गीकार नहीं किया ॥ और इब्राहीम खवासने भी कहाहै कि मैं एक पहाड़पर चलाजाताथा तहां मुझ को अनार खाने की इच्छाहुई तब मैं एक अनार तोड़कर खाने लगा सो वह खट्टा निकला तब मैं उसको छोड़कर आगे को चला तहां एक पुरुष पड़ाहुआ था तिसको मैंने देखा कि उसको बहुत माखी डस रही हैं तब मैंने उसको बहुत नमस्कार किया तब उसने मेरा नाम लेकर मुझको बुलाया तब मैंने कहा कि तुमने मुझको क्योंकर पहिचाना बहुरि उन्होंने कहा कि जिसने भगवत् को पहिचाना है उस से कुछ गुह्य नहीं रहता तब मैंने उनसे कहा कि मैं देखता हूं कि महाराज के साथ तुम्हारा मिलाप है ताते तुम महाराज के आगे प्रार्थना क्यों नहीं करते कि जो माखियों को दूर करें और तुमको यह माखी दुःख न देवें तब उन्हों ने कहा कि तेरा भी तो महाराज के साथ मिलापहै ताते तू प्रार्थना क्यों नहीं करता जो तेरी अनार की अभिलाषा दूर करे क्योंकि अनार की वासना करके हृदय को दुःख पहुँचता है और माखियों के डसने का दुःख शरीर को होता है ताते जान तू कि यद्यपि अनार का खाना पाप नहीं तौ भी बुद्धिमान् यों जानते हैं कि वासना के भोग पवित्र अथवा अपवित्र यह दोनों समान हैं और निन्द्य हैं क्योंकि जब पापरहित भोगों से मन को न बरजा जावे और कार्य निर्वाहमात्र पर न ठहराया जावे तो यह मन भोग वासना करके पापों विषे वर्त्तने लगताहै इसी कारण से बुद्धिमानों ने पापरहित भोगों को त्याग किया है तब इस यत्न करके वासना से मुक्तहुये हैं सो ऐसेही उमर ने भी कहा है कि सत्तरबार मैंने पापरहित भोगों का त्याग किया है इस भय करके कि मत मन मेरा पाप भोगों में प्रवेशकरे और यों भी है कि जब मन राजसी भोगों में प्रीति संयुक्त वर्तता है तब इसी संसार को स्वर्ग जानता है और मरने को दुःख जानता है और इसी करके बुद्धि अचेत होती है और यद्यपि कुछ भजन और प्रार्थना करता है तौभी उसके सुख स्वाद को नहीं पाता ताते जब इस मन को पापरहित भोगों से भी बरज रखिये तब निर्बल और अधीन होताहै और इस लोक के सुखों से भागा

चाहता है और परलोक के सुख की श्रद्धा करने लगता है सो जब यह मन दुःख और अधीनता संयुक्त भगवत् का नाम लेवे तब इतना स्वाद और फलदायक होता है जो सुख में सौ बार नाम लेवे तौभी उसके समान नहीं होता ताते मन का दृष्टान्त बाज़ की नाईं है अर्थात् जब बाज़ पक्षी को पकड़ते हैं तब प्रथम नेत्र उसके मूंद कर घर में रखते हैं और यत्न करके उसको उड़ने के स्वभाव से बन्द करते हैं बहुरि तिसके पीछे उसको थोड़ा २ आहार देते हैं तब बाज़ उस पालने-वाले से मिलाप प्यार करने लगताहै और आज्ञाकारी होताहै बहुरि जब उसको उड़ावते हैं तब प्यार करके फिर आताहै तैसेही जबलग इस मनको सर्व वास-नाओं के स्वभावों से भिन्न न करिये तबलग इसको भगवत् में प्रतीति नहीं उप-जती और जबलग नेत्र कान रसना और सब इन्द्रियों को रोके नहीं और भूख और एकान्त और जाग्रत् और मौन करके इस मन को दण्ड न देवें तबलग मनका प्यार भगवत् विषे नहीं होता सो यह यत्न करना मनको प्रथम कठिन होता है जैसे बालक को माता का दूध त्यागना कठिन होताहै पर जब माता उसको यत्न करके दूध पीनेसे छुड़ाती है तब वह बालक ऐसा होजाता है कि जो उसको यत्न करके वह दूध दीजिये तौ भी नहीं पीता ताते जान तू कि तप करना यही है कि जिस पदार्थ में इस पुरुष को अधिक प्रीति होवे और उसकी प्राप्ति में बहुत प्रसन्नता होवे तब उसी पदार्थ को त्यागदेवे और जो स्वभाव इस पर प्रबल होवे तिसको विपर्यय करे यही उत्तम तप है ताते जिस पुरुष को मान बड़ाई में अधिक प्रीति होवे वह मानका त्यागकरे और जिसकी प्रीति धन के संग्रह में होवे वह धन का त्यागकरे और इसकी नाईं जिस पदार्थ को अपने सुख का स्थान भगवत् विना जानता होवे तब चाहिये कि यत्न करके उस पदार्थ का त्यागकरे और उस पदार्थ के साथ सम्बन्धकरे जो कदाचित् इससे दूर न होवे और जो सामग्री मरने के समय इस से दूर होनेवाली है तिसको पुरुषार्थ करके आगेही त्यागकरे सो सदैव इसका सङ्गी एक महाराजही है और कोई नहीं जैसे महात्मा दाऊद को आकाशवाणी हुईथी कि हे दाऊद ! सङ्गी तेरा एक मैंहीं हूं ताते तू मेरेही साथ मिलाप कर और महापुरुष ने भी कहा है कि मुझसे भगवत् के मुख्य पार्षद ने इस प्रकार कहाहै कि मायाके जिस पदार्थ के साथ तू प्रीति करताहै वह निस्सन्देह तुझसे दूर होवेगा ५ (अब छठे त्रिभाग

में भले स्वभावों के लक्षण वर्णन होवेंगे) ताते जान तू कि भगवत् ने भले स्वभावों के लक्षण इस प्रकार कहे हैं कि निस्सन्देह ऐसे जिज्ञासु संसार से मुक्त हुये हैं जो त्याग और भजन और शुकुर संयुक्त हैं और योंभी कहा है कि मेरी प्रीतिवाले मनुष्य ऐसे हैं जो सर्व व्यवहारों में धैर्य के साथ वर्तते हैं और जो कपटियों के लक्षण हैं सो सबही बुरे स्वभाव हैं जैसे महापुरुष ने कहा है कि प्रीतिमानों की श्रद्धा भजन और तप में होती है और मनमुखों की श्रद्धा आहार और भोगों में दृढ़ होती है ॥ और हातिमनामी सन्त ने कहा है कि गुरुमुख का हृदय विचार और आश्चर्य में रहता है और मनमुख आशा और तृष्णा विषे आसक्त रहता है बहुरि गुरुमुख सब संसार से निराश रहता है और एक महाराजही की आश रखता है और मनमुख सब लोगों की आशा रखता है एक महाराज से निराश रहता है और गुरुमुख धनको धर्मपर निवछावर करता है और विमुख अपना धर्मही धनपर निवछावर करता है बहुरि गुरुमुख भजन करताहै और भयसंयुक्त रहताहै और मनमुख पाप करता है और निडर होकर हँसता है गुरुमुख की प्रीति एकान्त विषे होती है और मनमुख की प्रीति जगत् के मिलाप में होती है गुरुमुख यद्यपि सुकृतबीज बोवताहै तौभी डरता रहता है कि मेरी खेती विघ्न करके नष्ट न होजावे और मनमुख शुभ बीज बोवताही नहीं और फल की आश करता है ॥ और सन्तजनों ने इस प्रकार से भी कहा है कि भले स्वभाव के लक्षण यह हैं कि मनुष्य लज्जावन्त और निर्दोष और शुभ चित्त होवे और सत्य बोले वचन थोड़ा कहे और भजन बहुत करे निष्पाप होवे संयमी होवे सब किसी का भला चाहे और सबका सुखदायक होवे दयावान्, गम्भीर, धीर, सन्तोषी, धन्यवाद करनेवाला, सहनशील, निर्लोभ होवे दुर्वचन और धिक्कार किसीको न कहे निन्दारहित होवे किसी के वचन का छिद्र न ढूंढ़े वचन शुभ बोले किसी कार्य में उतावली न करे हृदय में क्रोध की अग्नि न राखे ईर्षा न करे मस्तक प्रसन्न राखे मित्रता और वैर प्रसन्नता और क्रोध सब जिसका केवल धर्मही के निमित्त होवे पर ऐसे जान तू कि स्वभाव की भलाई सहनशीलता में ही विशेष होती है जैसे महापुरुष को जब मनमुखों ने दुःखदिया और दांत तोड़े तब उन्होंने महाराज से प्रार्थना की कि हे महाराज ! तू इनके ऊपर दया कर क्योंकि यह मुझको जानते ही नहीं और इब्राहीम अदहमनामी सन्त

एक वन में चलेजाते थे तब एक सिपाही उनको मिला और उसने पूछा कि तू कौन है तब इन्होंने कहा कि मैं गुलाम हूं बहुरि सिपाही ने पूछा कि बस्ती कहां है तब इन्होंने श्मशान की ओर सैनकरी तब सिपाही ने कहा कि मैं बस्ती को पूछताहूं तब फिर इबराहीम ने कहा कि बस्ती तो यही है तब सिपाही ने उनके शिर में लाठी मारी और रुधिर बहनेलगा और उनको खैंच कर नगर में लेआया तब लोगोंने देखकर सिपाही से कहा कि हे मूर्ख! तू जानता नहीं कि यह इबराहीम अदहम है तब वह सिपाही घोड़े पर से उतरकर इबराहीमजी के चरणोंपर गिरपड़ा और कहनेलगा कि मैंने भूलकर यह अपराध किया तुम क्षमाकरो तब लोगों ने सिपाही से पूछा कि तूने किस निमित्त इनको मारा तब उसने कहा कि मैंने इनसे पूछा था कि तू कौन है? सो इन्होंने कहा कि मैं गुलाम हूं तब इबराहीमजी बोले कि मैंने तो सत्य कहा है क्योंकि मैं भगवत् का गुलाम हूं यह बात निस्संदेह है बहुरि सिपाही ने इबराहीम से कहा कि भला जब मैंने तुमसे पूछा था कि बस्ती किधर है तब तुमने श्मशान को क्यों बताया तब इबराहीमजी बोले कि यहभी हमने सत्य कहा क्योंकि लोग नित्यप्रति श्मशानही विषे आवते हैं बहुरि नगर उजड़ते जाते हैं और श्मशान बसताजाता है ताते बस्ती यही है फिर सिपाही ने कहा कि जब मैंने तुमको मारा था तब तुम ने मेरे ऊपर क्रोध हृदय में किया होगा तब इबराहीमजी बोले कि मैं महाराज के आगे प्रार्थनाकरके तेरा भला और कल्याण चाहा क्रोध नहीं किया बहुरि सिपाही ने पूछा कि तुमने मेरा भला किस निमित्त चाहा तब उन्हों ने कहा कि मुझको यह निश्चय दृढ़ है कि सहने में बड़ा फल होताहै सो जब मैंने जाना कि तेरा दण्ड सहने करके मुझको तो फल होगा परन्तु तुझको मेरे करके इसका पाप लगेगा ताते मैंने तेराभी भला चाहा॥ और एक उसमानहैरीनामी सन्त थे सो वह एक समय किसी गली में चलेजाते थे तब किसीने अचानक छत परसे उन के ऊपर राख थाल भरके डालदी तब वह सन्त वस्त्र अपने झाड़कर महाराज का शुकुर करनेलगे बहुरि लोगों ने कहा कि यह शुकुर का कौन स्थान था तब उन्हों ने कहा कि मैं अग्नि में जलावने योग्य था पर महाराज ने राख परही दया करके निबेरा करदियाहै ताते मैं शुकुर करताहूं बहुरि इन्हीं उसमानहैरी की एक और वार्ता है कि किसी पुरुष ने प्रसाद पावनेके निमित्त इनका निमन्त्रण किया था

सो जब अपने घर लेगया तब भीतर घर में परीक्षाके कारण करके पैठने न दिया तब यह फिर चले बहुरि इनको उस पुरुप ने पुकारलिया तब फिर आये बहुरि उसने भीतर पैठते हुये बरजा तब फिर निकलचले इसी प्रकार उस पुरुषने बहुत बार इनका निरादरकिया और फिर २ बुलाया सो जब वह पुरुप बुलावे तब चलेआवें और जब बरजे तब निकल चलें तब उस पुरुष ने कहा कि हे महात्मा जी! मैं आप की परीक्षा लेता था सो निस्सन्देह आप उत्तमजन हैं तब उन्होंने कहा कि यह जो स्वभाव तैंने मेरे विषे देखाहै सो यह तो कूकुरोंका भी स्वभाव है कि जब कूकुर को बुलाइये तब आवता है और जब बरजिये तब फिर जाता है ताते इस स्वभाव की क्या विशेषताहै? बहुरि एक और सन्त थे उनका श्यामरङ्ग था और सबलोगों में उनकी बड़ाई प्रसिद्ध थी सो जब वह हम्माम अर्थात् स्नान के स्थान में स्नानकरने को जातेथे तब हम्माम का टहलुवा हम्माम को खाली करदेताथा अर्थात् लोगों को दूर करके तिनको स्नान करावताथा बहुरि एकदिन वह स्नानको गयेथे और टहलुवा लोगों को दूर करके किसी कार्य को गया था और वह हम्माम में अकेलेही रहेथे तब एक पुरुष जंगली वहां आया और उसने इनको देखकर जाना कि हम्माम का टहलुवा यही है तब उस जंगली पुरुष ने उन को अपनी टहल में लगाया और आप स्नान करनेलगा और जैसी टहल वह इन से करवातारहा तैसीही यह करतेरहे बहुरि जब वह टहलुवा आया और जंगली पुरुष का बोलना उसने सुना तब टहलुवा भयवान् होकर निकलगया बहुरि जब जंगली पुरुष गया और यह सन्तभी स्नान करके बाहर आये तब लोगों ने कहा कि टहलुवा भयवान् होकर भागगया है तब उस सन्तने कहा कि टहलुवा क्यों डरताहै? यह अवज्ञा टहलुवे की न थी मेरे शरीरही की अवज्ञा थी क्योंकि मेरे शरीर का रङ्ग श्याम टहलुवों की नाईं है बहुरि एक और सन्त थे सो सीवने की क्रिया करके अपना निर्वाह करतेथे सो एक मनमुख उनसे अपने वस्त्र सि-लवाकर जब मजदूरी दे देताथा तब खोटाही रुपया देता था और वह ले रखते थे बहुरि एक दिन आप किसी कार्य को गये थे और टहलुवा वहां बैठा था तब वह मनमुख उस टहलुवे को खोटा रुपया देने लगा टहलुवे ने नहीं लिया जब वह सन्त अपने घर आये तब टहलुवे ने वह बात कही तब उन्होंने टहलुवे से कहा कि तूने रुपया क्यों नहीं ले लिया? आगे कई वर्ष से वह पुरुष मुझ को

खोटा ही रुपया देतारहा है पर मैंने उससे प्रसिद्ध करके नहीं कहा कि तू खोटा रुपया क्यों देता है ? ताते मैं उससे लेकर धरती विषे गाड़ देताहूं इस विचार से कि कोई और पुरुष न ठगाजावे और एक आवेसकरनी नाम करके एक सन्तथे सो वह जब नगर में जाते तब बालक उनको पत्थर मारते थे तब वह बालकोंसे कहते थे कि मेरे छोटे २ पत्थर मारो काहेसे कि जो मेरी टांगों में से रुधिर निकलेगा तो मैं भजन विषे खड़ा न होसकूंगा और एक कोई मूर्ख किसी सन्त को दुर्वचन कहनेलगा था और वह मार्ग में चलेजाते थे सो वह मूर्ख भी उन के सङ्ग में दुर्वचन कहता जाताथा और यह सन्त मौन होकर सुनते चले जाते थे सो जब सम्बन्धियों के स्थान के निकट पहुँचे तब खड़े हो गये और उस से कहनेलगे कि तुमको जो कुछ और भी कहना होवे सो सब हम को यहां हीं कहले काहेसे कि तेरे दुर्वचन जब मेरे सम्बन्धी सुनेंगे तब तुझको दुःख देवेंगे और मालिकदीनारनामी सन्त से किसी स्त्रीने कहाथा कि तू कपटी है तब उन्हों ने कहा कि मेरा नाम यही था पर इस नगरके लोग जानते न थे सो तैंने अब प्रसिद्ध किया है ताते जान तू कि सम्पूर्ण भले स्वभाव के लक्षण यही हैं जो इन सन्तजनों के लक्षण वर्णन किये गये सो यह स्वभाव उनको प्राप्तहुये हैं जिन्होंने पुरुषार्थ करके मन के स्वभावों को दूर किया है और हृदय को शुद्ध किया है ताते भगवत विना और कुछ नहीं देखते और जो कुछ देखते हैं तिस का प्रेरक भगवतही को जानते हैं ताते चाहिये कि जो पुरुष अपने में यह लक्षण न देखे वह अभिमानी होकर यों न जाने कि मुझको भला स्वभाव प्राप्त हुआ है ६ (अब सप्तम विभाग में यह वर्णन होवेगा कि माता पिता बालकों को इस प्रकार सिखावें) ताते जान तू कि बालक भी माता पिता के पास महाराज की थाती हैं और बालक का हृदय प्रथम मणि की नाईं शुद्ध होताहै और कोमल होता है और जो कुछ उसको सिखाइये उसका अधिकारी है और हृदय उसका शुद्ध भूमि की नाईं है जो कुछ बीज उसमें बोइये वह उग आवता है सो जब शुभ बीज बोइये तब इसलोक और परलोक की भलाई को प्राप्त होता है और तब माता पिता भी और गुरु भी उसके पुण्य में साझी हैं और जब बालक के हृदय में अशुभ बीज बोइये तब भाग्यहीन होताहै और फिर जो कुछ पाप कर्म वह करताहै तिस विषे भी माता पिता और सिखावनेवाले परलोक में साथी हैं

सो महाराज ने भी कहाहै कि अपने मन और सम्बन्धियों को नरक की अग्नि से बचावो ताते बालकों को इस नरक की अग्नि से बचावना स्थूल अग्नि की रक्षासे अधिक प्रमाण है सो नरक की अग्नि से बचावना इस प्रकार होताहै कि बालक को भयसंयुक्त राखे और उसको भले गुण सिखावे और कुसंग से रक्षाकरे कि कुसंग करके सर्व विघ्न उत्पन्न होते हैं ताते प्रथमही बालकको राजसी भोजन और वस्त्रका स्वभाव न डाले क्योंकि ये राजसी स्वभाव हैं सो जब इनका अभ्यास होजायगा तब पीछे भोगों बिना रह न सकेगा ताते चाहिये कि बालक के प्रतिपाल करनेवाली दाई भी भली होवे और आहार भी शुद्ध पावनेवाली होवे क्योंकि बालक जैसा दूध पीवता है तैसा ही गुण अथवा अवगुण उसमें प्रवेश करता है और जब बालक की जिह्वा खुले तब प्रथम भगवत् का नाम ही सिखावे बहुरि जब ऐसा होवे कि बुरे कार्य से लज्जा करे तब जानिये कि भला होगी और इसके ऊपर बुद्धि का प्रकाश चमका है तब चाहिये कि वही लज्जा उसके विषे बढ़ावे और जब कुछ बुरा कार्य करे तब उसको ताड़ना करे और बरजे सो प्रथम ही बालक को खाने की तृष्णा उत्पन्न होती है ताते चाहिये कि उसको खानेकी युक्ति सिखावे सो युक्ति यह है कि जब भोजन खाने लगे तब प्रथम महाराज का नाम लेवे और धैर्यसंयुक्त खावे और अपनी दृष्टि किसी और के भोजन की ओर न करे बहुरि कभी २ बालक को रूखी रोटी भी खिलावे जिस में बालक का स्वभाव रसों में अधिक न होवे और बहुत खाने की उसको निषेधता सुनावे कि आहार बहुत खाना पशुओं और मूर्खों का काम है और जो बालक भय संयुक्त होवे उसकी प्रशंसा करे तब उसकी विशेषता सुनकर यह बालक भी उस स्वभाव को ग्रहण करेगा और वस्त्र श्वेत पहिरने की स्तुतिकर समझावे और रङ्गीन और रेशमी वस्त्र की निन्दा करे और कहे कि ऐसे वस्त्र सुन्दर पहिरना स्त्रियों का काम है अथवा अभिमानियों का पहरावा है और शरीर का शृङ्गार बनावना नाचनेवालों और हिजरों का काम है भले पुरुषों का स्वभाव ऐसा नहीं होता और जो बालक रेशमी वस्त्र और राजसी स्वभाववाला होवे तिसकी संगति से अपने बालक की रक्षाकरे क्योंकि ऐसी संगति करके बालक की बुद्धिका नाश होता है और भोगों की वासना उत्पन्न होती है ताते जिस बालक की रक्षा बुरी संगति से नहीं करते तब वह

बालक क्रोधी, निर्लज्ज, चोर, झूठा और निडर होजाता है सो वह स्वभाव उसका चिरकालपर्यन्त भी दूर नहीं होता बहुरि जब बालक चटशाला विषे जावे तब भगवत् के वचन उसको पढ़ावे और सन्तों की रहनि और बर्तावने का इतिहास पढ़ावे और जिस विद्या में स्त्रियों का शृङ्गार और उनकी प्रीति वर्णन होवे तिससे बरजे और पाठक ऐसे की संगति बालक को न करावे जो इस प्रकार कहे कि ऐसी विद्या के पढ़ने से बुद्धि चतुर होती है सो वह पढ़ावनेवाला असुर की नाईं है कि बालक के हृदय में पापों का बीज बोवना चाहता है बहुरि जब वह बालक कोई सुकृतकरे अथवा कोई भलास्वभाव उसमें प्रकट होवे तब उसकी प्रशंसाकरे और कुछ बालक को देवे कि उस करके बालक प्रसन्न होवे और जो कुछ बुराई करे तो प्रथम एक दोबार देखकर चुप होजावे क्योंकि बालक ढीठ न होजावे और जब ढीठ होता है तब प्रकटही बुराई करने लगता है बहुरि जब बालक का स्वभाव बुराई विषे अधिक होवे तब एकान्त में उसको ताड़नाकरे और कहे कि यह बुराई फिर मतकरना क्योंकि जब तू फिर करेगा तो लोग देखेंगे और तू अपमानता को प्राप्तहोवेगा और पिता को चाहिये कि अपना भय उससे दूर न करे अर्थ यह कि पिता के होतेहुये बालक निर्लज्ज होकर न वर्ते व बालक को दिनमें बहुत न सुलावे जिस में आलसी न होजावे व रात्रिको भी कोमल शय्या में सोने न देवे जो शरीर बालक का दृढ़ होवे और दिनमें दोघड़ी पर्यन्त खेलने की भी छुट्टी देवे जिसमें बालक का चित्त अत्यन्त सकुचा न रहे क्योंकि सारे दिनके परिश्रमसे चित्त को मूर्च्छा प्राप्तहोती है और बालक को ऐसा स्वभाव सिखावे कि सब किसी को नम्रता सहित और दीनता सहित प्रणामकरे और अपर किसी बालक पर बड़ाई करके बढ़ावे नहीं और किसी बालक से कुछ लेवे नहीं और यों भी सिखावे कि नाक और मुख का मैल किसी के सम्मुख न डाले और किसी पुरुष की ओर पीठ न करे भय संयुक्त बैठे और डाढ़ी तले हाथ धरके न बैठे कि यह भी लक्षण आलसियों का होता है और बहुत बोले भी नहीं और किसी कार्य में भगवत् की दुहाई भी न करे और बुलाये बिना बोले नहीं और जो कोई उससे बड़ा होवे उसका अनादर न करे और उसके आगे होकर न चले और दुर्वचन और धिक्कार से अपनी जिह्वाको रोकेरहे और जब बालक को पढ़ावनेवाला दण्डदेवे तब सहजावे पुकार

न करे क्योंकि सहना पुरुषों का काम है और पुकार करना स्त्रियों का काम है और जब बालक सात वर्ष का होवे तब उसको स्नान और भजन प्यार करके सिखावे और जब दशवर्ष का होवे और नियम में कुछ अवज्ञा करे तब उसको ताड़ना देवे और चोरी, झूठ और अशुद्ध आहार की बुराई उसको लखावे सो जब बालक को इस प्रकार सिखाइये तब किशोर अवस्था में सब करतूतों के भेद को अपनी बुद्धि करके सुगम समझता है तब चाहिये कि उससे कहे कि भोजन करने का प्रयोजन यह है कि इस पुरुष को भजन करने का बल होवे और इस जगत् में जीवने का प्रयोजन यह है कि परलोक मार्ग का तोशा बनावे क्योंकि जीवन थोड़ा है और मृत्यु इसको अचानक ही ग्रसलेती है ताते बुद्धिमान् पुरुष वही है जो इसलोक में परलोक का तोशा बनालेवे कि इस करके उत्तम सुख और भगवत् की प्रसन्नता को पावे ताते पुण्य और पाप करके जो नरक और स्वर्ग और सुख दुःख की प्राप्ति होती है सो भली प्रकार बालक को समझावे सो जब प्रथम बालक को भली प्रकार सिखाया जाता है तब वह वचन उसके हृदय में मूर्त्ति की नाई दृढ़ होजाता है और जो प्रथमही न सिखाइये तो फिर पीछे उसको यह उपदेश दृढ़ नहीं होता जैसे लवनी अर्थात् ऊसर की मट्टी की भीतिपर लेप नहीं ठहरता सो इसीपर सुहेलस्तरी नामी एक सन्त की कथा है कि उन्होंने इस प्रकार कहा है कि जब मैं तीन वर्ष का था तब रात्रिमें पिता को भजन करते देखता था सो एकबार उन्होंने मुझसे कहा कि हे पुत्र ! जिस भगवत् ने तुझको उत्पन्न किया है तिसका तू भजन क्यों नहीं करता तब मैंने कहा कि भजन किस प्रकार करूं तब पिताने कहा कि रात्रिको सोवने के समय यों कह लिया कर तीनबार कि महाराज मेरे साथ हैं और महाराज मुझ को देखता है और महाराज मेरा अन्तर्यामी है सो कई रात्रि में नित्य प्रति इसी प्रकार कहता रहा फिर पिता ने कहा कि अब यह वचन सातबार रात्रि को कहाकर तब मैं सातबार कहने लगा फिर ग्यारहबार कहने को कहा सो कुछ दिन मैं ग्यारह बार कहता रहा तब इस करके मेरे हृदयमें कुछ स्वाद सुख आने लगा बहुरि जब एक वर्ष बीता तब पिता ने कहा कि जो मैंने तुझको यह सिखाया है सो इसी को दृढ़ करले और मरने पर्यन्त न बिसारना कि यही भजन इसलोक और परलोक में तेरा सहायक होवेगा सो कितनेही वर्ष पर्यन्त मैं इसी

प्रकार कहता रहा तब मेरे हृदय में और अधिक रहस्य प्रकट हुआ फिर पिताने कहा कि हे पुत्र! महाराज जिसके साथ होवे और सदैव जिसके साथ होकर उसको देखता रहे और जिसके हृदय का अन्तर्यामी होवे सो वह पुरुष पाप क्यों-कर करे? ताते तुझको भी चाहिये कि तू पापकर्म कदाचित् न करे बहुरि उस से पीछे मुझ को चटशाला में भेजा तब मैंने अपने चित्त में विचार किया कि पढ़ने में लगने करके कहीं मेरा चित्त पसर न जावे ताते मैंने पाठक के साथ वचन करलिया कि मैं तीन घड़ी पर्यन्त पढ़ूँगा और पीछे उसी भजन में स्थित होऊंगा इसीप्रकार मैं उस पाठकके पास पढ़नेलगा और भगवत् वाक्य सम्पूर्ण मैंने पढ़े बहुरि जब सात वर्ष का हुआ तब सदैव दिन को व्रत करनेलगा और रात्रि को आहार करता रहा बहुरि जब बारह वर्ष का हुआ तब मेरे हृदय में एक प्रश्न आया और उस प्रश्न का उत्तर नगर में किसी से न दियागया बहुरि पिता की आज्ञा लेकर बसरेनामी नगर में आया पर वहां भी उस प्रश्न का उत्तर किसी ने न दिया बहुरि मैं एक और नगर में हबीब नामी बड़े भजनी सन्त के पास गया तब उन्होंने उत्तर देकर मेरे संशय को निवृत्त किया तब कई वर्ष में उनके निकट रहा और मुझको उनकी संगति में बहुत लाभ प्राप्तहुआ बहुरि मैं अपने नगर तस्तर में आया और एकान्त रहकर भोजन इसप्रकार करनेलगा कि एक दिरम के जब मोल लेकर उसी में एक वर्ष पर्यन्त भोजन करता था और रात्रि के समय एकबार किंचित् भोजन कर लेता था बहुरि तीसरे दिन खाने लगा उससे पीछे सातवें दिन फिर पचीसवें दिन खानेलगा सो बीस वर्ष में इसी अवस्था में रहा और सम्पूर्ण रात्रि बिषे जागरण करता रहा सो इस वार्त्ता का प्रयोजन यह है कि जैसा अभ्यास बाल्यावस्था में होताहै वह निस्संदेह दृढ़ होजाता है ७॥ (अब अष्टम विभाग बिषे युक्तियां जिज्ञासु के अभ्यास और यत्नकी वर्णन होवेंगी कि जिस प्रकार जिज्ञासु आदि धर्म के मार्ग विषे चलता है) ताते जान तू कि जो पुरुष भगवत् के दर्शन को प्राप्त नहीं हुआ सो वह इस कारण प्राप्त नहीं हुआ कि प्रथमही उस मार्ग बिषे चला नहीं और जो कोई उस मार्ग में नहीं चला उसका कारण यह है कि उसने मार्गको नहीं खोजा और न खोजने का हेतु यह कि उसको बूझही न थी और प्रतीति भी उनकी दृढ़ न थी क्योंकि जिस पुरुष ने यह जाना है कि इसलोक के सुख दुःखदायक और नाशवान् हैं

और परलोक का सुख निर्मल और नित्य है उस पुरुष को परलोक मार्ग की श्रद्धा प्रकट होती है क्योंकि नीच पदार्थ को त्यागकर उत्तम पदार्थ का ग्रहण करना कठिन नहीं होता जैसे कोई पुरुष माटी का बासन देवे और उसको सोने का बासन उसके बदले में प्राप्तहोवे तब उस पुरुष को माटी का बासन देना कठिन नहीं होता ताते प्रसिद्ध हुआ कि परलोक मार्ग विषे विमुख होना प्रतीति की हीनता करके होती है और प्रतीति की हीनता इस कारण करके होती है कि विचारवान् और वैराग्यवान् पुरुष इस काल में दुर्लभहैं कि जिनकी संगति और उपदेश इतर जीव धर्ममार्ग को प्राप्त होवें इसी से इतर संसारी जीव अपनी भलाई से विमुख रहते हैं और जो कोई विद्यावान् पुरुष पाया भी जाता है उसके ऊपर माया की प्रीति प्रबल होती है और वैराग्य से हीन होताहै सो जिस पुरुष की प्रीति माया की तृष्णा बिषे होवे वह और जीवों को माया का त्याग क्योंकर करासक्ता है ? और उसका उपदेश लोगों के हृदय में क्योंकर दृढ़ होगा कि जिसको सुनकर परलोक मार्ग बिषे चलें क्योंकि परलोकमार्ग और इसलोक में परस्पर बड़ा बिरोध है जैसे पूर्व दिशा और पश्चिम दिशा में अन्तराय है कि जितना पूर्व दिशा को जावे उतनाही पश्चिम दिशा से दूर होताहै ताते जिस पुरुष को भगवत की श्रद्धा प्रकट होवे तिसकी ऐसी अवस्था होती है कि जैसी ऊपर वर्णन हुई सो महाराजने यों कहाहै कि जिस पुरुष को परलोक की श्रद्धा उत्पन्न हुईहै और उसके मार्ग बिषे यत्न और करतूति करताहै सो धर्मात्मा पुरुष वही है और यत्न करना जो महाराज ने कहा है सो तिस यत्न को भी जानना चाहिये कि वह यत्न क्या है ? ताते उसको आगे नवें विभाग में कहते हैं ८ (नवां विभाग धर्म मार्ग के यत्न की युक्ति के वर्णन में) ताते जान तू कि यत्न करना यह है कि धर्म के मार्ग बिषे चलने का उद्यम करना और कितनी युक्ति ऐसी हैं कि जब जिज्ञासु प्रथम उनको जान लेवे और बर्तावकरे तब पीछे धर्म मार्ग में चलने का अधिकारी होता है बहुरि उससे पीछे अपनी रक्षा करनेवाले गुरुदेव का भरोसाकरे और दृढ़ होकर उसका अञ्चल पकड़े बहुरि एक कोट है तिसकी ओट में जिज्ञासु स्थित होवे सो प्रथम जो कहा है कि कई युक्ति का निर्वाह करे तब जिज्ञासु धर्ममार्ग का अधिकारी होता है सो उन में प्रथम युक्ति यह है कि भगवत और इस जीव के विषय जो परदे और आड़ पड़ी है तिसको दूर

करे जिससे मनमुखों के संग में उसकी गिनती न होवे जैसे महाराज ने कहा है कि मैंने मनमुखों के आगे और पीछे परदे डाल दिये हैं अर्थ यह कि आपसे उनको दूर किया है सो वह चार परदे हैं जिन करके जीवको पटल हुआ है एक १ धन दूसरा २ मान तीसरा ३ वेष चौथा ४ पाप सो धन को इस प्रकार परदा कहा है कि धन विषे चित्त लम्पट रहता है और जबलग चित्त निस्संकल्प न होवे तबलग धर्ममार्ग विषे चल नहीं सक्ता ताते चाहिये कि धन के संग्रह का त्याग करे और किंचित निर्वाहमात्र राखे पर उसमें चित्तको आसक्त न करे और जो यह पुरुष असंग्रही होवे और आकाशी वृत्ति करके उसका आहार होवे तब वह तो सुखेनही धर्ममार्ग विषे चलता है बहुरि मानके परदे को इस प्रकार दूर करे कि जहां पर इसका आदर और मान होवे तिस स्थानको त्याग जावे और ऐसे स्थान विषे जाय रहे कि जहां इसको कोई पहिंचाने नहीं क्योंकि जब इस पुरुष को जगत् विषे मान प्राप्त होता है तब यह पुरुष इस जगत् के मिलाप विषे सुख जानकर आसक्त होता है और जो कोई जगत् के मिलाप को सुख जानता है भगवत् को नहीं पहुँचता २ और वेषको जो परदा कहा है सो इस कारण करके है कि जब यह पुरुष देखादेखी करके किसी मत और पन्थ को ग्रहण करता है तब औरों के मत को खण्डन करता है और अपने मतकी स्तुति करता है ताते उस पुरुष के हृदय विषे सांचा वचन प्रवेश नहीं करता ताते चाहिये कि जितने मत और पन्थ हैं सभों को विसारे और भगवत् की एकता पर प्रतीति करे और चित्तको एकता विषेही दृढ़करे और एकता की दृढ़ता का लक्षण यह है कि भगवत् विना और किसी का भरोसा न करे और किसी के अधीन न होवे सो जो पुरुष अपने मनकी वासना के अनुकूल चलता है वह वासनाही का दास है और वासना ही उसका भगवत् है सो जिस पुरुष ने यों जाना है कि भगवत् एक है और भगवत् की आज्ञा विषेही चलना विशेष है तब वह पुरुष अपनी मुक्तिके निमित्त यत्न करता है और जगत् के वाद विवाद विषे नहीं परचता ३ और चौथा परदा जो पाप कहा है सो जीव को महाकठिन पटल होता है क्योंकि जिस पुरुष का स्वभाव पापकर्मों विषे दृढ़ होता है उस का हृदय अन्धकार करके मलीन होजाता है सो जिसका हृदय मलीन हुआ तिसको भगवत् प्रत्यक्ष नहीं भासता ताते अशुद्ध जीविका भी महापाप है और

शुद्धजीविका करके हृदय ऐसा उज्ज्वल होता है कि जैसा किसी कर्म करके नहीं होता इसी कारण करके तप का मूल यही है कि अशुद्ध आहार का त्याग करे और जीविका अपनी शुद्धकरे और जो पुरुष यों चाहे कि जैसे शुभ करतूति सन्तजनों के वर्णन किये हैं तैसी करतूति के किये विनाही मेरे गुह्य भेद खुलें तब इसका दृष्टान्त यह है कि जैसे कोई पुरुष यह चाहे कि मैं विद्या के पढ़े विनाही शास्त्रके अर्थों का ज्ञाता होजाऊं सो यह बात किसी प्रकार हो नहीं सक्ती ताते जिसने यह चार पर्दे दूर किये हैं वह भजन का अधिकारी होता है बहुरि तिससे पीछे जिज्ञासु को गुरु की अपेक्षा होती है काहेसे कि गुरु विना इस जीव को धर्म का मार्ग नहीं खुलता क्योंकि भगवत् का मार्ग अतिगुह्य है और संसारी वासना का मार्ग प्रकट है बहुरि सच्चा मार्ग एक है और झूठे मार्ग अनेक हैं ताते निस्सन्देह प्रसिद्ध है कि ऐसा मार्ग सद्गुरु विना प्राप्त नहीं होता सो जिज्ञासु को ऐसा चाहिये कि जब सद्गुरु साथ मिले तब अपने कार्य सद्गुरु को अर्पे और अपनी बुद्धि और बल का त्याग करे ताते जब इसको सद्गुरु कुछ आज्ञा करे और इसको कुछ संशय आवे तौ भी यों जाने कि यह मेरीही बुद्धिकी मलीनता है और मेरा कल्याण सद्गुरु की आज्ञा विषे है और जब इसको फिर संशय आवे तब जैसे जिज्ञासुओं ने आगे सद्गुरुओं की आज्ञा मानी है और अपनी बुद्धि के संशय दूर किये हैं तिनके चरित्रों को स्मरण करे क्योंकि सन्तजनों ने ऐसे भेद को बूझा है कि जिज्ञासु अपनी बुद्धि करके उस भेद को पाय नहीं सक्ता जैसे जालीनूसनामी एक बड़ा वैद्य हुआ है सो तिस समय में किसी पुरुष की दाहिने हाथ की अँगुली में पीड़ा हुई और अवर जितने वैद्य थे तिन्हों ने उस अँगुली पर औषध लगाई पर वह पीड़ा दूर न हुई बहुरि जालीनूसने बायें कांधे पर औषध लगाई तब और वैद्यों ने कहा कि अँगुलियों में पीड़ा होवे और कांधेपर औषध लगाई जावे सो यह कैसा सयानप है और जालीनूस के औषध लगाने करके अँगुली की पीड़ा दूर होगई सो जालीनूसने यों जाना था कि इस अँगुली में नाड़ी के मूल से रोग उठा है और सब नाड़ियां पीठ और शीश से निकल कर शरीर विषे पसरती हैं सो दाहिने ओर की नाड़ी बायें ओर जाती हैं और बायें ओर की नाड़ी दाहिने ओर को जाती हैं पर इस भेद को और वैद्य समझते न थे और जालीनूसही जानता था

सो इस दृष्टान्त का तात्पर्य यह है कि किसी प्रकार जिज्ञासु सद्गुरु की आज्ञा बिषे चले और अपनी उक्ति और संशय न लावे और एक सन्त ने कहा है कि मैं अपने सद्गुरु के पास था सो एक स्वप्न मैंने देखा और उसको सद्गुरु के आगे कहा तब उन्होंने स्वप्न को सुनकर हृदय में मेरे साथ रोष किया और एक मास पर्यन्त मुझसे न बोले सो मैं इसका कारण समझता न था बहुरि उन्होंने ही कहा कि वह स्वप्न जो तैंने कहा था सो यह था कि मैंने तुझसे कोई कार्य करना कहा था और तूने कहा कि यह कार्य किस निमित्त करावते हैं तब मैंने जाना कि जाग्रत में जब मेरी आज्ञा में तुझको संशय न होता तब तू स्वप्न बिषे भी संशय न लावता ताते मैंने तुझको शिक्षा के निमित्त और मेरे वचन में संशय न लावने के अर्थ रोष किया था सो जब इस प्रकार जिज्ञासु सद्गुरु की आज्ञा मानने में दृढ़ होता है तब प्रथमही सद्गुरु उसको कोट में स्थित करते हैं क्योंकि जिज्ञासु को कोई विघ्न न लागे सो वह कोट की चार भीति हैं एक मौन दूसरी क्षुधा तीसरी एकान्त चौथी जाग्रत क्योंकि क्षुधाकरके भोगों का बल क्षीण होता है और जाग्रत करके हृदय उज्ज्वल होता है और मौन करके वाद विवाद की विक्षेपता दूर होती है और एकान्त करके जगत के मिलाप का कुसंग और अन्धेरा दूर होता है और नेत्र और श्रवण भी रोके जाते हैं इसीपर सुहेलनामी सन्तने भी कहा है कि जो आगे सन्त हुये हैं वह इन चारों लक्षणों करकेही हुये हैं सो जब जिज्ञासु स्थूल पदार्थ बिषे पसरने से सकुचा तब आगे सूक्ष्ममार्ग की आदि यह है कि उस मार्ग में कठिन घाटियां हैं सो प्रथम तिनको काटता है और चित्त में जितने मलिन स्वभाव हैं सोई कठिन घाटी हैं जैसे धन और मन की तृष्णा और भोगों की बासना और दम्भ और अभिमान और अवर इनकी नाईं जो मलिन स्वभाव हैं सो सर्व अशुभ करतूतों के बीज हैं ताते इनको दूर करना चाहिये क्योंकि स्थूल पदार्थों में इनही करके पसरना होता है सो प्रथम जब इनको दूर किया तब हृदय शुद्ध होवेगा ताते सम्पूर्ण अशुभ वासना को नाशकरे और जिस प्रकार सद्गुरु की आज्ञा होवे उसीप्रकार पुरुषार्थ करे क्योंकि सब जीवों का अधिकार भिन्न २ है और अपने अधिकार को यह पुरुष अपने आप करके नहीं पहिंचान सक्ता ताते सद्गुरु की आज्ञा करके हृदय शुद्ध होता है बहुरि जब हृदयरूपी धरती शुद्ध हुई तब उसमें महाराज का भजनरूपी बीज

बोवे सो प्रथम जब आन संकल्पों से रहित हुआ तब एकान्त ठौर विषे बैठे और सदैव श्रीराम राम मन और जिह्वा से कहे बहुरि तिसके पीछे जिह्वाका बोलना ठहर जाता है और वह नाम मनही विषे फुरने लगता है बहुरि मनभी ठहर जाता है और श्रीनाम का अर्थ हृदय में प्रबल होता है सो अर्थका रूप यह कि जिस विषे वचन और वाणी नहीं पहुँचती क्योंकि मन विषे स्मरण भी वाणी और अक्षरों करके होता है सो वाणी और अक्षर भी अर्थरूपी फलकी त्वचा हैं ताते चाहिये कि नाम का अर्थही हृदय में स्थित होवे सो ऐसा दृढ़ होवे कि उस में मन को यत्न न भासे और अर्थरूपी कमल पर मनरूपी भँवर होवे अर्थात् यत्न करके भी उससे दूर न होवे जैसे शिवलीनामी एक सन्तने अपने जिज्ञासु से कहा था कि जब तू मेरे पास आवे और तेरे हृदय में भगवत् बिना और संकल्प फुरे तब तेरा आवना व्यर्थ होवेगा ताते जब जिज्ञासु ने संकल्परूपी कण्टकों से हृदयरूपी धरती शुद्ध करी और नावरूपी बीज को उसमें बोया तब आगे इसके करतूति का वश नहीं चलता ताते भगवत् की दया का आश्रय करे और यों जाने कि देखिये इस बीज का फल क्या होता है? और अधिक करके तो यह है कि यह बीज निष्फल नहीं होता इसी पर महाराजने भी कहा है कि जो पुरुष परलोक सम्बन्धी बीज बोवता है उसको मैं निस्सन्देह अधिक फल देता हूं और जब जिज्ञासु इस अवस्थाको पहुँचताहै तब अकस्मात् कभी ऐसा भी होता है कि भगवत् की माया करके इसके हृदय में झूठे संकल्प आन फुरते हैं और किसी को नहीं भी फुरते पर जिसका हृदय शुद्ध होता है तिस पुरुष के देवतों और ईश्वरों का रूप प्रत्यक्ष भासने लगता है बहुरि यह भी है कि उनका सुन्दर स्वरूप स्वप्नविषे देखे अथवा प्रकट प्रत्यक्ष देखे बहुरि ऐसी २ अवस्था प्रकट होती हैं कि उनका बखान नहीं कियाजाता और उनके वर्णन करने में कुछ लाभ भी सिद्ध नहीं होता क्योंकि धर्म के मार्ग विषे चलने करके कल्याण होता है और मार्ग की वार्ता करके स्थानको पहुँच नहीं सक्ता ताते जिज्ञासु की भलाई इसमें होती है कि इस अवस्था के ऐश्वर्यों को आगेही श्रवण न करे क्योंकि ऐश्वर्यों की आशा करके भी विक्षेपता को प्राप्त होता है ताते मेरे कहने का प्रयोजन यह है कि जिज्ञासु ऐसी अवस्था विषे संशयवान् न होवे क्योंकि बहुत पण्डित भी ऐसे होते हैं कि उनको अवस्था के प्राप्त होने में

प्रतीति नहीं होती ताते जिस अवस्था का वखान मैंने किया है सो जिज्ञासु तिस विषे संशय न लावे और दृढ़ प्रतीति करे ॥

दूसरा सर्ग ॥

अतिआहार और कामकी निषेधता के वर्णन में ॥

ताते जान तू कि यह उदर भी सरोवर की नाईं है अर्थ यह कि जैसे सरोवर से प्रवाह निकलते हैं तैसेही उदर की पुष्टता करके सब इन्द्रियों को बल पहुँचता है तिससे अपने २ विषय को ग्रहण करती हैं इस करके प्रसिद्धहुआ कि सब जीवों पर आहार का विषय अतिप्रबल है और प्रबलता इसकी यह है कि जब उदर पुष्ट होता है तब काम की अभिलाषा उत्पन्न होती है और काम की अभिलाषा तब पूर्ण होती है जब धन का संग्रह होताहै बहुरि धन की उत्पत्ति के निमित्त ईर्षा, वैरभाव, क्रोध, कपट और अभिमान आदिक अवगुण उपजते हैं ताते आहार की अधिकता विषे आसक्त होना सब पापों की मूल है और आहार का संयम करना सब शुभगुणों का बीज है सो मैं भिन्न २ करके तिसका वखान करूंगा (अथ प्रकट करनी स्तुति आहार के संयम की) इसी पर महापुरुष ने कहा है कि भूख और तृषा को अङ्गीकार करके अपने मन के संग युद्धकरो तब उत्तमफल को पावोगे और भगवत् के निकट संयम के समान और करतूति विशेष कोई नहीं ताते जो पुरुष अपने उदर को अतिपुष्ट करता है तिसको सूक्ष्मदेश की ओर मार्ग नहीं खुलता और किसी ने महापुरुष से पूछा था कि उत्तम पुरुष कौन है तब उन्होंने कहा कि जिस पुरुष का आहार संयम सहित होवे और वचन भी संयमसहित होवें और नग्नता के ढकनेमात्र वस्त्र को पहरे और इसीपर सन्तुष्ट रहे सो वह मनुष्य महाउत्तम कहावता है बहुरि योंभी कहा कि आहार और वस्त्रों को संयमसहित अङ्गीकार करना भी महापुरुषों का लक्षण है और योंभी कहाहै कि जिस पुरुष का आहार संयमसहित है और हृदयभी विचार के अभ्यास में दृढ़ है वह भगवत् का प्रियतम है और जिस पुरुष का आहार और निद्रा मर्याद से अधिक है वह भगवत्से विमुख रहता है और योंभी कहा है कि अपने हृदय को मृतक न करो सो आहार की अधिकता करके हृदय मृतक होजाता है जैसे अधिक जल करके खेती मृतक होजाती है ताते शरीर के निर्वाह निमित्त अल्पमात्रही आहार सुखदायक

होता है और अधिक आहार की तृष्णा करके नाना प्रकार की मलिनता उपजती हैं ताते चाहिये कि इतनाही आहार करे जिसमें जल, श्वास और भजन का अवकाश रोका न जावे इसीपर ईसानामी महापुरुष ने भी कहाहै कि जब तुम अपने शरीर को भूखा और नग्न राखो तब निस्सन्देह भगवत् के दर्शन को प्राप्त होवोगे और महापुरुष ने भी कहाहै कि जैसे शरीर के सब अङ्गों में रुधिर भरपूरहै तैसेही सब शरीर विषे मनकी चपलताभी व्याप रही है ताते भूख करके चपलता के मार्ग को रोको तब स्वाभाविकही मनका निग्रह होवे और जैलनामी सन्त ने कहा है कि तुम कदाचित् ऐसा भय मतकरो कि हम भूखे रहेंगे सो यह भयकरना अयोग्य है क्योंकि महाराज भूख और अपमान तो अपने प्रियतमों को देते हैं अथवा ऐसे दुःख जिज्ञासुजनों पर भेजते हैं ताते तुम ऐसे अभागी जीवों को इस पद की प्राप्ति कब होती है तात्पर्य यह कि सब सन्तोंने विचार करके देखाहै और यही निश्चय किया है कि इस लोक और परलोक विषे सुख देनेको संयम के समान कोई पदार्थ नहीं और आहार की अधिकता के समान दुःखदायक भी कोई नहीं (अथ प्रकट करने लाभ संयम के) ताते जान तू कि जैसे औषध की कटुताही औषध का लाभ नहीं तैसेही संयम विषे जो शरीर को कष्ट होता है सो वह केवल कष्टही लाभ नहीं है ताते आहार के संयम विषे १० लाभ प्रसिद्धहैं प्रथम लाभ यह है कि संयम करके हृदय शुद्ध और उज्ज्वल होताहै और आहार की पुष्टता करके हृदय अन्ध होता है और जब कुछ विचार करनेलगताहै तब ऐसी विक्षेपता को प्राप्त होता है कि उसकी बुद्धि पसर जातीहै और अवर विचारने लगती है इसी पर महापुरुष ने कहा है कि अपने हृदयको प्रीति और मौन से सजीव अर्थात् चैतन्यकरो और संयम करके शुद्धकरो और योंभी कहा है कि संयमी पुरुष का हृदय उज्ज्वल होता है और विचार की वृद्धता होती है इसी पर शिवलीनामी सन्त ने कहा है कि जिसदिन आहार का संयम मैं करता हूं उस दिन मेरे हृदय में नवीन विचार और अनुभव की युक्ति अवश्यही खुलतीहै १ बहुरि दूसरा लाभ यहहै कि संयम करके भजन और प्रार्थना के रहस्यको पावताहै और आहार की पुष्टता करके हृदय कठोर होजाताहै ताते यद्यपि कुछ भजन भी करताहै तो भी हृदयमें उसका सुख स्वाद नहीं प्रकट होता इसीपर जुनैदसन्तने भी कहाहै कि जिसका उदर आहारसे भरपूरहै तिसको भजन

और प्रार्थना का आनन्द नहीं प्राप्त होता है २ बहुरि तीसरा लाभ यहहै कि संयम करके दीनता और नम्रता उपजती है और आहार की पुष्टताकरके अचेतता और प्रमाद बढ़ता है सो प्रमाद ही नरक का द्वारा है क्योंकि जबलग यह पुरुष आपको अधीन और दीन न देखे तबलग भगवत् की सामर्थ्यता और पूर्णता को नहीं पहिंचानता इसी पर एक वार्त्ता है कि जब महापुरुष को भगवत् की ओर से सब पृथ्वी के खज़ाने समर्पणहुये और इस प्रकार आज्ञा हुई कि तुम इनको अङ्गीकार करो तब उन्होंने विनती करी कि मुझको इन पदार्थों की अभिलाषा कुछ नहीं और मैं यही चाहताहूं कि कभी आहार की प्राप्ति होवे और कभी भूखाही रहूं तो भला है क्योंकि भूख विषे धैर्य और सहनशीलता करूंगा और आहार करके तेरे उपकार को पहिंचानूंगा ३ बहुरि चौथा लाभ यह है कि जिसको क्षुधा रहती है तिसको क्षुधित पुरुषों पर दया उपजती है और जब अति पुष्ट होताहै तब अर्थीजनों को बिसार देताहै और परलोक का दुःखभी विस्मरण होजाताहै बहुरि जब भूखा रहताहै तब परलोक के दुःखको भी स्मरण करताहै सो परलोक के दुःखों का स्मरण करना और अर्थीजीवों पर दयालु होना परम सुखों का द्वार है इसी पर यूसुफ़नामी महापुरुष से किसी ने पूछा था कि सब पृथ्वी के भण्डार तो तुमको महाराज से प्राप्तहुये हैं फिर तुम भूखे काहेको रहते हो तब उन्होंने कहा कि जो अति उदर पूर्ण होनेसे मुझको भूखे याचकों का विस्मरण होजावे तो इसमें मेरा अति अकाज होवेगा ताते संयम और भूखको मैंने अङ्गीकार कियाहै ४ बहुरि पांचवां लाभ यह है कि मन का निग्रह करना सब शुभगुणों का मूल है और मनके वशवर्त्ती होना मन्दभागों का बीज है सो जैसे कठोर पशु भूख विना कोमल नहीं होता तैसेही मन भी संयम विना वशी नहीं होता सो मन को भोगों से वर्जित करनाही परमलाभ है क्योंकि पापोंका मूल भोग है और भोगों का मूल आहार की पुष्टताहै इसी पर ज़ुलनूननामी सन्त ने कहाहै कि मैंने जिस दिन अघायकर भोजन किया है उस दिन निःसन्देह मुझ से कुछ पाप हुआ है अथवा पापकी मंशा हुई है ताते यह वार्त्ता प्रसिद्ध है कि आहार के संयम करके व्यर्थ वचन और काम की प्रबलता दूर होजाती है और जो पुरुष आहार का संयम नहीं करता उसके ऊपर वाद, विवाद, निन्दा, स्तुति और कामकी प्रबलता होती है बहुरि जब यत्न करके इन्द्रियों को

विकारों से रोंकराखे तब नेत्रों को नहीं रोंकसक्ता और जब नेत्रों को भी रोंक राखे तब चित्त के संकल्प का निग्रह नहीं करसक्ता और संयम करके स्वाभाविकही मन और सब इन्द्रियां निर्बल होजाती हैं ५ बहुरि छठवां लाभ यह है कि आहार के संयम करके निद्रा भी क्षीण होजाती है सो भजन और प्रार्थना और विचार का बीज रात्रि का जागरण है और जो पुरुष अपने उदर को पुष्ट करता है तब निद्रा की मूर्च्छा करके मृतक की नाईं होजाता है और स्वप्न भी मलिन देखताहै ताते सन्तजनोंने यों कहा है कि मनुष्य की उत्तम पूंजी आयुर्बल है और श्वासरूपी रत्न हैं क्योंकि आयुर्बल करकेही परलोक के लाभ को पायसक्ता है सो अधिक निद्रा करके आयुर्बल क्षीण होजाती है और संयम करके निद्रा का बल दूर होताहै ताते संयम ही उत्तमपदार्थ है इस करके कि आहार की पुष्टता करके कामादिक स्वप्न भी छलजाता है तब मन और शरीर मलिन होजाताहै ताते भजन विषे सावधान नहीं होसक्ता ६ बहुरि सातवां लाभ यह है कि संयमी पुरुष का समय भी व्यर्थ नहीं बीतता और उसको व्यवहार की विशेषताभी अल्प होती है बहुरि जिस पुरुष को आहार की अधिक अभिलाष है तिसकी आयुर्बल भोजन की सामग्री विषे ही बीतजातीहै औरसर्वदा शरीर के प्रतिपाल विषे रहताहै और आयुबेज समान पदार्थ को व्यर्थ खोवनाही बड़ी मूर्खता है इसी कारण से जिज्ञासुजनोंने यवके सतुवा खाकर संतोष किया है और सर्वजञ्जालों से मुक्तहुये हैं इसी पर एक सन्तने कहाहै कि अधिक आहार करके षठगुणों का नाश होताहै सो प्रथम तो भजन का रहस्य नहीं आवता १ दूसरे वचनोंका स्मरण नहीं रहता २ तीसरे दया क्षीण होजातीहै ३ चौथे आलस उघड़ता है ४ पांचवें भोगों की प्रबलता होती है ५ छठें सर्वदा खाने और मलत्यागने की इच्छाविषे रहताहै ६ । ७ बहुरि आठवां लाभ यह है कि संयम करके शरीर आरोग्य रहताहै ताते वैद्यों की अधीनता और ओषधियों की कटुता से छुट जाताहै इसी पर बड़े आचार्यों और वैद्यों ने यही सिद्धान्त दृढ़ किया है कि सर्व रोगों का बीज आहार की अधिकता है और जिस करतूति विषे सबही लाभ होवे और किंचिन्मात्र दोष न होवे सो आहार का संयम है और एक बुद्धिमान् ने कहा है कि सर्व आहारों विषे अनार का भोजन महापथ्य है और कठोर अन्न अत्यन्त कुपथ्य है पर जब अनार ही अधिक भोजन

करे तो भी खेद को पावता है और जब कठोर अन्न को अल्प अङ्गीकार करे तब निःखेद रहता है ८ बहुरि नववां लाभ यह है कि संयमी पुरुष को जीविका भी अल्प चाहती है और धन की अधिक तृष्णा से मुक्त रहता है सो सब विघ्न, पाप और विक्षेप तृष्णाही से उपजते हैं क्योंकि जिसको नानाप्रकार के रसों और अधिक भोजनों की अभिलाष होवे तिसकी सर्व आयुर्बल धन की उत्पत्ति बिषेही बीत जाती है और धन का उपजावना पापों विना कठिन है इसी पर एक बुद्धिमान् ने कहा है कि मैं तो अपने मनोरथ को इस प्रकार पूर्ण करता हूं कि प्रथमही मनोरथों की वासना को त्याग देता हूं ताते निश्चिन्त और सुख से रहता हूं ९ बहुरि दशवां लाभ यह है कि संयमी पुरुषका हृदय उदार होता है इस करके कि संयमी पुरुष को ऐसेही समझ रहती है कि जिस पदार्थ करके उदर पुष्ट करते हैं सो पदार्थ मलिनता को प्राप्त होजाता है और जो पदार्थ भगवत् के निमित्त दान करते हैं वह निस्सन्देह महाराज के हाथों बिषे पहुँचता है इसी पर एक वार्त्ता है कि एक बार महापुरुष ने किसी धनवान् को देखा था सो तिसका शरीर बहुत स्थूल था तब उसको देखकर कहने लगे कि जितना कुछ तैंने उदर बिषे डाला है तितना जो तू भगवत् अर्थ देता तो भला था १० (अथ प्रकट करनी युक्ति आहार के संयम की) ताते जान तू कि प्रथम जिज्ञासु को पाप से रहित आहार किया चाहिये बहुरि जैसे आहार की अधिकता निन्द्य है तैसेही एकबारही अल्प करदेना भी निन्द्य है ताते चाहिये कि शनैः२ करके आहार को घटावे सो जब इस प्रकार करके क्रम से आहार को घटावे तो शरीर भी सुखी रहता है पर उत्तम पुरुषों की अवस्था तो यह है कि प्राणों के निर्वाहमात्र भोजन करते हैं पर आहार की अधिकता और अल्पता का भी शरीरों और समय और क्रिया के अनुसार भिन्न २ ही अधिकार होता है ताते सबों का तात्पर्य यह है कि अत्यन्त पुष्ट होकर भोजन न करे क्षुधा शेष बनी रहने देवे और क्षुधा का लक्षण यह है कि भोजन करने के पीछे भी इतनी रहजावे क्षुधा कि रूखे भोजन को भी अङ्गीकार किया चाहे इसी पर सुहेलनामी सन्त ने भी कहा है कि यद्यपि सर्व संसार पापरूप होजावे तौ भी प्रीतिमान् को शुद्ध जीविकाही प्राप्त होती है अर्थ यह कि प्रीतिमान् शरीर के निर्वाह से अधिक अङ्गीकार नहीं करता ताते जिन पुरुषों को

परमपद की प्रीति उत्पन्न हुई है तिन्हों ने सर्वप्रकार के रसों का त्याग किया है और जो २ मनकी वासना है सो तिससे विपर्यय होकर वर्ते हैं क्योंकि जब यह मन अपनी वासना अनुकूल भोगों को पावता है तब प्रमाद करके अन्ध होजाता है बहुरि इसी संसार के जीवने को प्रियतम जानता है ताते चाहिये कि इस मन को संसार के भोगों से विवर्जित करके निग्रह करिये और वैराग्य करके ऐसा दुःखित करिये कि इस संसार को बन्दीखाना जाने और शरीर के मृतक होने की मुक्ति अपनी जाने इसी पर महापुरुष नें भी कहा है कि सबों में बुरे मनुष्य वही हैं कि जिनका चित्त भोगोंविषे आसक्त हुआ है और नानाप्रकार के रसों और वस्त्रों की अभिलाष करते हैं इसी पर मूसानामी महात्माको आकाशवाणी हुई थी कि हे मूसा! अन्त में तेरी स्थिति का स्थान श्मशान होगा ताते चाहिये कि तू अपने शरीरको भोगों से विवर्जित करे इसी कारण से जिन पुरुषों को अपनी वासना अनुसार भोग प्राप्त हुये हैं तिनको महापुरुषोंने मन्दभागी जाना है इसी पर एक सन्त ने कहा है कि मैंने दो देवता आकाश से उतरते देखे सो तब एक देवता बोला कि अमुक मनमुख ने मछली फँसावने के निमित्त जल विषे जालडाला है सो मैं उसके निमित्त जाल में मछली फँसावने जाताहूं और दूसरे देवता ने कहा कि अमुक प्रीतिमान् को घृत लाने की इच्छा हुई है सो मैं उसके हाथ से घृत के बासन को गिराने जाता हूं और उमरनामी सन्त को किसीने मिश्री और शरद जलका शरबत आनदिया था तब उन्हों ने अङ्गीकार नहीं किया और कहनेलगे कि इसको मुझ से दूर करो काहे से कि परलोक विषे इसका भी दण्ड होवेगा इसी पर एक सन्त की वार्त्ता है कि वह आटा भिगोकर भोजन करते थे और जल के घड़े को धूप में से उठाकर छाया विषे न रखते थे और एक और प्रीतिमान् को किसी वस्तु की इच्छा हुई थी सो जब अधिक यत्न करके वह वस्तु प्राप्तहुई तब कहने लगे कि इसको भगवत् अर्थ उठाय देवो तब किसी मित्र ने कहा कि इस वस्तु को तो तुम चाहते थे सो जब प्राप्त हुई तब अङ्गीकार क्यों नहीं करी बहुरि उन्होंने कहा कि मैंने महापुरुष के मुख से सुना है कि जब इस मनुष्यको किसी भोगकी वासना उठे और फिर उस वस्तु को पायकर भगवत् अर्थ उठाय देवे तब उसके ऊपर भगवत् दया करता है ऐसेही एक जिज्ञासु को दूध पान करनेकी इच्छा हुईथी तब उन्होंनें चालीसवर्ष

पर्यन्त अङ्गीकार न किया तात्पर्य यह कि परमार्थ के मार्ग विषे चलनेवाले जिज्ञासुओं के ऐसे लक्षण हुये हैं और जो ऐसे पद को प्राप्त न होसके तोभी चाहिये कि कुछ भोगों से तो रहित होवे और अधिक चिकने और मीठे और मांसादिक आहार तो अङ्गीकार न करे और योंभी कहाहै कि मांसादिक आहारों करके हृदय कठोर होजाताहै (अथ प्रकटकरना भेद यत्न का और अधिकार गुरु शिष्य का) ताते जान तू कि संयम और यत्न का तात्पर्य यह है कि यह मन कोमल और अधीन होवे बहुरि जब मन विचार की मर्याद विषे स्थितहुआ तब हठ और यत्न की अपेक्षा नहीं रहती इसी कारण से सद्गुरु जिज्ञासु को यत्न और हठका उपदेश करते हैं और आप सहजवृत्ति विषे वर्तते हैं क्योंकि उनका मन भोगों से मुक्त हुआहै बहुरि यत्न का प्रयोजन यह है कि संयम करके सुखीरहे अर्थात् ऐसी क्षुधा भी न राखे कि जिस करके अनाज की ओर सुरत खिंची रहे और भजन में विक्षेपता होवे और ऐसा उदर पूर्ण भी न होवे कि जिस करके आलस और अचेतता बढ़जावे तात्पर्य यह कि इस मनुष्य की पूर्णताई यह है कि इस का स्वभाव देवताओं की नाईं होवे सो देवताओं का स्वभाव यह है कि उनको भूख का खेद भी नहीं होता और अधिक आहार का बोझ भी नहीं होता पर यह मन ऐसी समानता विषे प्रथम स्थित नहीं होसक्ता ताते प्रथम इसको हठ और यत्न करके दण्ड करना प्रमाण है क्योंकि यत्न करके जब इसका मलिन स्वभाव दूर होवे तब पीछे समानता को प्राप्त होता है इसी कारण से जिज्ञासु जनों ने सर्वदा अपने मन पर दोषदृष्टि राखी है और वैराग्यरूपी फांसी विषे इसको फँसाया है और सदैवकाल मनके स्वभाव को विचारसहित देखते रहतेहैं बहुरि जब पूर्णपद को प्राप्त हुये तब समभाव विषे स्थित हुये हैं इस पर दृष्टान्त प्रमाण यह है कि जब मारूफ़करख़ीनामी सन्त के पास लोग अच्छा भोजन लेजाते थे तब वह उसको ग्रहण करलेते थे और जब बशरहाफ़ीनामी के पास लेजाते तो वह कदाचित् अङ्गीकार न करतेथे तब मारूफ़करख़ी से लोगों ने पूछा कि तुम्हारा स्वभाव किस करके खुलाहुआहै और बशरहाफ़ी का स्वभाव किस करके सकुचा हुआहै तब उन्होंने कहा कि बशरहाफ़ी वैराग्य करके विधि निषेध का विचार करते हैं ताते विधि को अङ्गीकार करते हैं और निषेध का त्याग करते हैं और मैं ज्ञानकरके ग्रहण त्याग के बन्धन से मुक्त हुआहूं ताते मेरी

समझ यह है कि मैं महाराज के गृह विषे अभ्यागतहूं और सब विश्व महाराज का गृह है और जो कोई वस्तु कोई देताहै वह महाराजही की ओरसे और महाराजही की प्रेरणा से है ताते जो कुछ मुझको महाराज देता है वही अङ्गीकार करलेता हूं और जब कुछ नहीं देता तबभी प्रसन्न रहताहूं इसी कारण से मैं किसी पदार्थ को चाहताभी नहीं और किसी का निषेधभी नहीं करता पर यह अवस्था जो महाउत्तम और दुर्लभहै सो मूर्खोंके गिरनेका स्थानभी यही है अर्थ यह कि मूर्खलोग इस वचन को सुनकर आपको ज्ञानी मान लेते हैं और कहते हैं कि हमको ग्रहण त्यागका बन्धन कुछ नहीं रहा पर अवस्था उनकी ऐसी नीच होती है कि उनमें रश्चकमात्रभी वैराग्य का बल नहीं होता और सर्वदा विषयों विषे आसक्त रहते हैं ताते प्रसिद्ध हुआ कि जिनका मन सर्व बन्धनों से मुक्त हुआ है सो ऐसे ज्ञानवानों से भी सहजही साधना रहजाती है और जो महाअज्ञानी हैं सो वह भी आप को ज्ञानवान् जानकर साधन और यत्न का त्याग कर देते हैं पर मारूफ़करखी की जो वार्त्ता मैंने कही है सो उनकी ऐसी परम उत्तम अवस्था थी कि जब कोई उनको हाथों करके दुखावता था तौभी वह उसको महाराजही की ओरसे समझ करके शीतलचित्त और खेदरहित रहते थे तात्पर्य यह कि जिन के चित्त गम्भीर ऐसे हैं तिनहीं को ऐसे भजन शोभितहैं और बशरहाफ़ी आदिक जो सन्त हुये हैं तिन्होंने अपने मन को यत्न से दूर नहीं किया क्योंकि मनके स्वभावों से कदाचित् निर्भय न होते थे पर यह वार्त्ता महाकठिन है कि मनके वशीकार होकर आपको ज्ञानवान् जानना बहुरि वैराग्य है और अभ्यास का त्याग करना सो यह बड़ी मूर्खताई है (अथ प्रकट करना स्थूल भोगों के त्याग विषे विघ्नोंका और उपाय विघ्नों के निवृत्त करने का) ताते जान तू कि अल्प बुद्धि जीवों को भोगोंके त्याग विषे दो विघ्न आन उपजते हैं सो प्रथम यह है कि जब यह मनुष्य भोगों का कुछ त्याग करताहै और उसके त्याग में समर्थ नहीं होसक्ता तब एकान्त विषे उसको भोग लेता है और इस प्रकार चाहताहै कि लोग मुझको भोगता न देखें तौ भलाहै सो एकान्त विषे लम्पट होता है और दूसरा यह कि वह मनुष्य आपको वैरागी दिखावताहै सो यह भी केवल लम्पटता है और यह दोनों प्रकार के पुरुष अपने चित्त विषे ऐसा अनुमान करते हैं कि जब हमलोगों से डरायकर भोगों को अङ्गीकार करेंगे तब इस लोक

विषे लोगों की भलाई होवेगी इस करके कि प्रथम तो निन्दा से बचेंगे और दूसरे भोगों विषे ढीठ होकर न वर्तेंगे सो यद्यपि उनको मन ऐसे सिखावता है तौ भी विचार करके देखिये तो केवल दम्भ है क्योंकि जिन पुरुषों का हृदय वैराग्य और सन्तोष करके शुद्ध हुआ है तिनके ऐसे लक्षण वर्णन विषे आये हैं कि वह लोगों के देखते में खान पान आदिक पदार्थों को अपने गृह विषे ले आते थे और फिर उन पदार्थों को गुप्त भगवत् अर्थ दे डालते थे सो यह परम सांचे हृदयवालों की अवस्था है और यद्यपि ऐसी करतूति करना मनको महा कठिन होता है पर निष्कामता की परीक्षा भी यही है कि ऐसी करतूति विषे संकोच न आवे और जबलग ऐसी अवस्था प्राप्त न होवे अर्थात् मनको इस प्रकार वर्त्तना सुगम और निर्यत्न सहजस्वभाव न होजावे तबलग जानिये कि मान और कपटसे मुक्त नहीं हुआ बहुरि जिस पुरुष के हृदय विषे मान की कामना है उसका सब करतूति और भजन मानही के निमित्त होता है और वह मानही का दास है पर जो पुरुष आहारादिक भोगों का संयम करके मान की अभिलाषा विषे आसक्त होजावे तब उसका दृष्टान्त यह कि जैसे कोई पुरुष मेघ की बूंदों से भागकर पनालेके नीचे जाय बैठे सो ऐसा पुरुष मूर्खही कहाता है ताते जब जिज्ञासु अपने विषे मान की अभिलाष देखे तब चाहिये कि लोगों के देखतेहुये अल्पमात्र रसादिक के भोजन को अङ्गीकार करलेवे पर तृष्णा करके अधिक न खावे तब इस विषे मान की क्षीणता होती है और भोगों से भी मुक्त रहेगा (अथ प्रकट करना कामादिक विघ्नों का) ताते जान तू कि कामादिक अभिलाष को जगत् की उत्पत्ति के निमित्त मनुष्यों पर प्रबल किया है पर जितनी इसकी अभिलाष अति प्रबल होवे तितनेही इस विषे विघ्न भी उपजते हैं और वह चित्त को अत्यन्त आवरण करते हैं इसीपर एक वार्त्ता है कि महात्मा मूसानामी महापुरुष ने कलियुग से पूछा कि तेरा अधिक निवास किस जगह में होता है तब उसने कहा कि जहां पर स्त्री और पुरुष एकान्त विषे मिलके बैठते हैं तहांहीं मेरा अधिक निवास है ताते तुझको चाहिये कि एकान्त विषे स्त्रियों से मिलाप मतकरे क्योंकि ऐसे स्थान विषे मैं निश्शङ्क होकर उत्पात और विघ्न डालताहूं पर केते मनुष्य ऐसे मूर्ख होते हैं कि कामादिक भोगों के निमित्त बलदायक औषधों का सेवन करते हैं सो तिनका दृष्टान्त यह है कि

जैसे कोई बिच्छुओं और बरों के छत्ता को हिलावे कि मैं इनके डसने का तमाशा देखूं सो ऐसा मनुष्य महाबुद्धिहीन कहाताहै तैसेही जो पुरुष ऐसे विकारों को उत्पन्न करके आपको दुःखित करता है सो महामूढ़ है क्योंकि जब इस विकारकी वृद्धिता होती है तब दुराचारादिक अपकर्मों विषे वर्तताहै और इस करके और भी अनेक पाप उपजते हैं ताते जिज्ञासु को चाहिये कि प्रथमही काम के मार्ग को रोके और जब ऐसे न करे तब निस्संदेह विकारों की प्रबलता होती है सो काम की उत्पत्तिका मार्ग नेत्रों की दृष्टि है पर जब अचानक ही एकबार नेत्रों की दृष्टि किसी रूपवान् पर पड़े तब दूसरीबार नेत्रों के देखने से वर्ज राखे तब इस प्रकार काम का रोकना सुगम होताहै और जब नेत्रों को इस प्रकार न वर्जैं तब पीछे मन को रोकना कठिन होताहै क्योंकि यह मन भी कठोर घोड़े की नाईं है अर्थात् जैसे घोड़ा किसी और ओरको चला चाहता है तब प्रथमही सचेत होकर उसको निग्रह करना सुगम होताहै और जब बल करके छूट जाताहै तब किसी प्रकार पकड़ नहींसक्ते तैसेही मनके निग्रह करने का मार्ग नेत्रही हैं इसीपर एक सन्तने कहाहै कि महात्मा दाऊजी भी नेत्रों के मार्ग करकेही छलेगये थे ताते दाऊजी ने अपने पुत्र को उपदेश किया था कि बड़े अजगर और सिंहोंके सम्मुख जाना प्रमाण है पर स्त्री के सम्मुख जाना अयोग्य है इसी पर महापुरुष ने भी कहा है कि स्त्रियों के रूप को देखना ऐसा है जैसे किसी के शरीर विषे विष मिलाहुआ बाण लगे ताते जो पुरुष अपने नेत्र को रोक रखता है उसके चित्तविषे भजन का रहस्य उपजता है बहुरि यों भी कहा है कि जैसे काम इन्द्रिय करके काम का भोग होताहै तैसेही नेत्रों की दृष्टि भी काम का भोग है पर जो पुरुष अपने नेत्रों को रोक न सके तब उसको चाहिये कि तप और व्रतोंकरके शरीर के बल को घटावे बहुरि जब इस विषे भी समर्थ न होवे तब विवाह करके गृहस्थ मार्ग विषे विचरे तो भला है पर यह तो मैंने स्त्रियोंके संग की निन्दा कही है बहुरि रूपवान् लड़कों की ओर देखना भी बड़ा विघ्नहै क्योंकि जिसको यह देखने की अभिलाषा बढ़ती है तब वह पापों के समुद्र विषे बह जाताहै और किसी प्रकार निर्दोष नहीं रहसक्ता क्योंकि जैसे पुष्पादिक और चित्रकारी की सुन्दरता को देखकर चित्त प्रसन्न होताहै और उस में कामचेष्टा कुछ नहीं फुरती तैसेही जो पुरुष रूप को देखकर स्पर्शके विकार से

विरक्त रहे तिसको भी कोई दोष नहीं लगता सो यह किसी विरले पुरुष से हो सक्ता है इसी पर एक सन्त ने कहाहै कि जिज्ञासुजन जिस प्रकार रूपवान् लड़कों से भयकरते हैं तैसे गरजते सिंहसे भी भयवान् नहीं होते (अथ काम के बल को तोड़ने की महिमा का प्रकट करना) ताते जान तू कि जितनी जिस भोग की प्रबलता अधिक होती है उतनी ही उसके बल को तोड़ने की विशेषता भी अधिक होती है सो यह वार्त्ता प्रसिद्ध है कि काम की अभिलाषा महा प्रबल है और इस विषे विचरना मलिन है और केते पुरुष जो इस भोग से रहित होते हैं सो अधिक तो ऐसे होते हैं कि वह काम के वेग को लज्जावानी और दण्ड अथवा असमर्थता करके रोके रहते हैं ताते उनको कुछ अधिक फल नहीं होता क्योंकि लोगों से भयकरके सकुचे रहते हैं और भगवत् के भय करके उस से रहित नहीं हुये और जब असमर्थता अथवा लज्जा करके पाप से रहित होवे तो भी भला है क्योंकि दुःख भोगने का परलोक में अधिकारी तो नहीं होता पर जिसको पाप से रक्षा करनेवाला और कोई हेतु न होवे और केवल भगवत् के भय करके पापकर्मों को त्यागदेवे तब उसको अधिक फल ही प्राप्त होता है इसी पर एक वार्त्ता है कि यूसुफ़नामी एक सन्त अतिसुन्दर हुये हैं सो उनको ज़लेखा नामी स्त्री ने मिलाप करके मोहित करना चाहा पर वह कामके बल को भली प्रकार तोड़कर उससे मिलाप न करते भये तब उत्तम पदवी को प्राप्तहुये बहुरि एक और वार्त्ता है कि दो प्रीतिमान् किसी देश को चलेजाते थे तब मार्ग विषे एक भाई किसी कार्य के निमित्त नगर में गया और दूसरा आसन पर बैठ रहा बहुरि दैव संयोग करके एक स्त्री सुन्दर आयकर उसको चपलता दिखावने लगी तब वह प्रीतिमान् नीचे को शीश करके रोनेलगा ताते वह स्त्री लज्जावती होकर चली गई बहुरि जब दूसरा प्रीतिमान् आया तब पूछनेलगा कि हे भाई! तू क्यों रोताहै? तब प्रथम तो उसने अपने वृत्तान्त को प्रकट न किया पर जब अति दीन होकर उसने पूछा तब उसने वार्त्ताको खोलकर कहा बहुरि वह वार्त्ता सुनकर वह प्रीतिमान् भी रोनेलगा तब पहले भाई ने पूछा कि तू क्यों रोनेलगा? तब उसने कहा कि मेरे रोने का प्रयोजन यहहै कि जैसे तुमने आपको स्त्रीके छलसे बचाया है तैसे मैं आपको बचा नहीं सक्ता बहुरि जब रात्रि विषे शयन करते भये तब स्वप्न विषे उनको आकाशवाणी हुई कि तुमने यूसुफ़ की नाईं आपको बचाया है

तातें तुम धन्य हो बहुरि एक और वार्त्ता हैं कि तीन मनुष्य एकमार्ग विषे चले जाते थे सो जब रात्रि हुई तब मेघ की रक्षा के निमित्त एक पहाड़ की कन्दरा विषे जायरहे दैवयोग करके पहाड़ के शृङ्ग से एक बड़ा पत्थर आय गिरा और पहाड़ की कन्दरा के द्वार को रोकलिया तब तीनों मनुष्य व्याकुल हुये बहुरि यही विचार किया कि अपने २ पुण्य को स्मरण करके भगवत् से प्रार्थना करें तब एक पुरुष ने कहा कि हे महाराज ! मैं तेरी आज्ञा जानकर माता पिता की अधिक सेवा करताथा सो एकदिन माता के निमित्त दूध का कटोरा भरलाया था तब उस समय विषे मेरी माता सोयगई थी तातें मैं हाथ में कटोरा लिये खड़ारहा और आहार भी न किया सो हे अन्तर्यामी ! तू तो इस वार्त्ता को जानता है तातें हमको निकलनेका मार्ग करदे तब कुछ कन्दरा के द्वार से वह पत्थर सरका पर बाहर आवने योग्य मार्ग न खुला बहुरि दूसरे ने कहा कि हे महाराज ! तू इस वार्त्ता को जानता है कि एक मजदूर की मजदूरी मेरे पास रहगई थी सो मैंने उसी मजदूरी की बकरी मोल ली बहुरि उस अजा का इतना परिवार बढ़ा कि मैंने उसही के मोल से बहुत पशु लिये सो जब चिरकाल के पीछे वह मजदूर आया तब मैंने वह सब धन उसको देदिया सो जो यह वार्त्ता सत्य है तो हमको मार्ग देहु तब वह पत्थर हिलकर कुछ और भी द्वार से हटा बहुरि तीसरे पुरुष ने कहा कि हे महाराज ! अमुकी स्त्री के साथ मेरी अधिक प्रीति थी और वह मुझको प्राप्त न होती थी सो जब दुर्भिक्षकाल करके उसके सम्बन्धी दीन हुये तब मैंने उसको धन का लोभ देकर अपने अनुकूल किया बहुरि जब मैं उसके निकट गया तब उसने कहा कि तू भगवत से नहीं डरता तब हे महाराज ! मुझको तेरा त्रास आया और तुझ को व्यापक और सर्वदर्शी जानकर उसका त्याग किया सो जो यह वार्त्ता सत्य है तो हमको मार्ग देहु तब वह पत्थर कन्दरा के द्वार से दूर हुआ और वह तीनों बाहर निकल कर दुःख से मुक्त हुये (अथ प्रकटकरना निषेधता स्त्रियों और लड़कों को कुदृष्टि देखने की) तातें जान तू कि प्रबल होते हुये काम को तोड़ना महाकठिन है इस कारण से चाहिये कि प्रथम ही नेत्रों को परदृष्टि से रोंके इसी पर एक सन्त ने कहाहै कि स्त्रियों के वस्त्र देखने करके भी काम उपजता है तातें इनके वस्त्रों का देखना भी जिज्ञासु को प्रमाण नहीं बहुरि स्त्रियों के साथ बोलना और उनके वचनों को सुनना और जहां उनका निवास

होवे तहां जाना और उनसे हास्यादिक करना सो यह सब व्यवहार निन्द्य हैं तात्पर्य यह कि काम का कारण रूप है ताते रूप की अभिलाष करके दृष्टि करनी अयोग्य है और जब अभिलाष विनाही मार्ग बिषे अथवा किसी और ठौर बिषे अचानकही किसी पर दृष्टि जापड़े तब वह देखना पाप नहीं पर फिर दूसरी बार उसको प्रीति करके देखना निस्सन्देह पाप है इसी पर महापुरुष ने भी कहा है कि प्रथम स्वाभाविक दृष्टि पड़ती है और दूसरी बार देखना दण्ड का कारण है प्रयोजन यह कि स्त्री पुरुष का मिलाप सर्वथा विघ्नों का बीज है बहुरि केते ऐसे स्थान हैं कि वहां अवश्यही स्त्रियों का मिलाप होताहै सो वह स्थान ही निन्द्य है जैसे राग नाच के ठौर अथवा विवाहादिक अथवा तमाशे और मेले की ठौर में जिज्ञासु को जाना प्रमाण नहीं बहुरि योंभी चाहिये कि स्त्रियों के वस्त्र अथवा हारमालाको धारण न करे और न सूंघे और उनकी किसी वस्तु को अङ्गीकार न करे और प्रीति करके कुछ देवे भी नहीं इसी पर महापुरुष ने भी कहाहै कि स्त्रियों के साथ मधुर वचन न बोलो क्योंकि जब मार्गबिषे भी किसी स्त्री अथवा लड़कों का मिलाप होताहै तब मनबिषे यही संकल्प फुरता है कि इसको अवश्यही देखना चाहिये पर जिज्ञासु को यही पुरुषार्थ चाहिये कि मन के साथ युद्धकरे और यों कहे कि इस देखने करके मुझको पाप होगा और भगवत् से विमुख होऊंगा ऐसेही विचार करके मन को बर्ज राखे तो भलाहै ॥

तीसरा सर्ग ॥

अधिक बोलने के विघ्न के वर्णन में ॥

ताते जान तू कि यह रसना भी भगवत ने महाआश्चर्यरूप बनाई है क्योंकि देखने में तो एक मांस का टुकड़ा है पर जो कुछ धरती और आकाश बिषे सृष्टि है तिन सब पर रसना का प्रवेश होताहै और जितने पदार्थ अरूप हैं तिनका भी वर्णन करती है ताते यह रसनाही बुद्धि की मन्त्री कही है अर्थ यह कि जैसे कोई पदार्थ बुद्धि की पहिंचान से बाहर नहीं तैसेही रसना भी सर्व पदार्थों को वर्णन करती है और अवर इन्द्रियों का धर्म ऐसे नहीं कि जो सर्व कार्यों बिषे वर्त्तमान होवें जैसे नेत्र केवल आकार ही को देखसकते हैं और श्रवण केवल शब्दही के सुनने को समर्थ हैं ऐसेही और इन्द्रियां भी एक २ कार्य को ग्रहण करती हैं पर यह रसना ऐसी है कि नेत्रों और श्रवणों और अवर सर्व

अङ्गों के भेद को वर्णन करती है जैसे जीव की चैतन्यता सर्व अङ्गों विषे पसर रही है तैसेही रसना भी जीवों के सर्व संकल्पों को प्रकट करती है बहुरि जैसे वचन का उच्चारण रसना करती है तैसाही प्रवेश हृदय को भी पहुँचता है जब अधीनता और वियोग का वचन उच्चारती है तब हृदय कोमल होजाता है और नयनों के मार्ग से आँसू चलने लगते हैं और जब प्रसन्नता और किसी की स्तुति वर्णन करती है तब स्वाभाविकही उसकी अभिलाष उपज आती है तात्पर्य यह कि जब रसना विषे झूठ और मलिन अक्षरों का उच्चारण होता है तब हृदय भी मलिन होजाता है और जब शुभ वचन का उच्चारण करनेलगती है तब हृदय सात्त्विकी भाव को प्राप्त होताहै इसीपर महापुरुष ने भी कहाहै कि जबलग मनुष्य का हृदय शुद्ध नहीं होता तबलग इसका धर्मभी दृढ़ नहीं होता और जबलग रसना सूधी और सच्ची नहीं होती तबलग हृदय भी शुद्ध नहीं होता ताते रसना के पापों और विघ्नों से भय करना धर्मकी दृढ़ता का कारण है इसी कारण से हम प्रथम तो मौन की विशेषता कहेंगे बहुरि रसना के विघ्न जो झूठ और निन्दा और विवाद और दुर्वचन आदिक पाप हैं सो तिनका वर्णन करेंगे और इनके उपाय भी भिन्न २ करके कहेंगे (अथ प्रकट करना परत्व मौन का) ताते जान तू कि इस बोलने में इतने पाप हैं कि उनसे अपनी रक्षा करनी महाकठिनहै ताते सर्वों विषे मौनही विशेष उपाय है सो मनुष्य को चाहिये कि कार्य विना वचन न कहे इसीपर सन्तोंने कहाहै कि जिनका आहार और निन्दा और वचन संयम सहित होताहै वह निस्सन्देह सिद्धपदवी को पातेहैं इसी पर महाराजने भी कहाहै कि अधिक बोलने विषे कदाचित् भलाई नहीं होती ताते केवल किसी के उपकार अथवा दानदेने अथवा विरुद्धनिवृत्त करनेके निमित्तही वचन कहना भला है इसी पर महापुरुष ने भी कहा है कि जिसको रसना और उदर और काम इन्द्रिय की उपाधि से भगवत् ने बचाया है सो मुक्तरूप है बहुरि एक प्रीतिमान् ने महापुरुष से पूछा कि विशेष करतूति कौन है तब उन्होंने सैन करके कहा कि मौनही विशेष करतूति है बहुरि योंभी कहाहै कि मौन और कोमल स्वभाव सुखेन भजन है और योंभी कहा है कि जब कोई अधिक बोलता है तब उसका हृदय कठोर होताहै सो पापों का रूपहै और जो पापरूप हुआ सो अग्नि विषे जलने का अधिकारी है इसी पर एक वार्त्ता है कि एक सभा विषे

कुछ वचन विलास होता था और एक प्रीतिमान् मौन करके बैठ रहा था तब सबोंने उससे पूछा कि तुम क्यों नहीं बोलते तब उन्होंने कहा कि जब झूठ कहूं तब भगवत् से डरताहूं और जब सत्य कहूं तब तुमसे भयवान् होताहूं ताते जान तू कि मौन की विशेषता इस कारण करके कही है कि बोलने करके अनेक पाप उपजते हैं और रसना सर्वदा व्यर्थ वचनों बिषे आसक्त रहती है बहुरि न बोलने बिषे कुछ यत्नभी नहीं होता और मनभी प्रसन्नता को पाताहै बहुरि गुण और दोष वचनके विचारने महाकठिन हैं इसी कारण से कहाहै कि मौन करके सर्व क्लेशों से मुक्त रहताहै और पुरुषार्थ और एकाग्रता भी बढ़ती है और भजन बिषे सुगम स्थित होताहै ताते जान तू कि वचन चार प्रकार काहै सो एक तो विघ्न-रूप है जैसे निन्दा और झूठ १ और दूसरा ऐसाहै कि उसबिषे गुण दोष मिला हुआहै जैसे प्रयोजन विना किसीकी व्यथा पूछनी २ बहुरि तीसरा वचन गुण और दोषसे रहितहै सो यह व्यर्थ वादहै पर इस बिषे यह बड़ी हानिहै कि समय व्यर्थ बीत जाता है ३ और चौथा वचन यह है कि जो सर्वथा गुणरूप है जैसे किसीके सुखके निमित्त वचन कहना ४ ताते इन चार प्रकारके वचनों बिषे तीन निन्द्यहैं और जिज्ञासु को चौथा ही अङ्गीकार करना योग्यहै पर जो पुरुष मौन बिषे स्थितहै सो सर्व विघ्नों से मुक्त होताहै स्वाभाविक ही पर जितने रसना के विघ्नहैं सो सब कोई पहिंचान नहीं सक्ता इसीकारणसे मैं सर्व विघ्नों को भिन्न२ करके कहताहूं सो पन्द्रह विघ्न प्रसिद्ध हैं प्रथम विघ्न यह है कि जिस वचन बिषे तेरा कार्य कुछ न होवे सो वह बोलना भी महानिन्द्यहै अर्थ यह कि जिस बिषे व्यवहार और परमार्थ की सिद्धता कुछ न होवे उस बोलने करके सतोगुण की शोभा नष्ट होजाती है जैसे किसी सभाबिषे जायकर ऐसे वर्णनकरे कि मैं अ-मुक देश बिषे इस प्रकार गया था बहुरि उन नगरों और पहाड़ों और खानपान और बागोंकी वार्त्ता करनेलगे सो यद्यपि वह कहना सत्यही होवे तौभी इसको व्यर्थवचन कहते हैं ताते इसका भी त्याग करना चाहिये क्योंकि ऐसे वचनों बिषे तेरा कार्य कुछ नहीं सिद्ध होता अथवा जब किसी से प्रयोजन विना पूंछे तौभी व्यर्थ है पर व्यर्थ उसको कहते हैं जिस बिषे अवगुण कुछ न होवे और कार्य कुछ न होवे पर जब किसीसे ऐसे पूछे कि तैंने व्रत राखा है अथवा नहीं सो जब वह कहै कि मैं व्रती हूं तब अभिमानी होताहै और जो कहै कि मैं व्रती

नहीं हूं तो झूठा होता है अथवा लज्जा करके व्रत किये विनाही आप को व्रती कहे तौ भी पापी होता है सो यह अभिमान और पाप उसको तेरे पूछने करके ही लगता है ताते ऐसे पूछनाही अयोग्यहै अथवा जव किसीसे इस प्रकार पूछे कि तू कहां से आताहै और कहां जाता है और क्या करताहै ? सो जब उसको प्रसिद्ध कहना न होवे और झूंठ कहदेवे तौभी तेरे सम्बन्ध करके पापी होता है इसीपर एक वार्त्ता है कि एकवार लुकमान नामी हकीम महात्मा दाऊदनामी महापुरुष के पास गयाथा तव वह आगे लोहेकी कवच वनातेथे वहुरि लुकमान के चित्तविषे पूछने की मंशाहुई कि तुम यह क्या वनाते हो ? पर भय और धैर्य करके नहीं पूछा सो जब वह कवच को वनाचुके तब गले विषे डालकर कहने लगे कि यह युद्धके समय भला पहरावा है तब लुकमान ने ऐसे जाना कि यह मौन उत्तम पदार्थ है पर इस विषे कोई प्रीति नहीं करता वहुरि जब यह मनुष्य किसी से कार्य विना कुछ पूछता है कि मैं लोगों के भेद को प्रकटजानूं और उनसे वचन करके मित्रताई का सम्बन्धकरूं सो यह सबही बुद्धि की हीनता है ताते इसका उपाय यहहै कि काल को निकट देखे और ऐसे जाने कि एकवार भी श्रीरामनाम लेना बड़ा धन है सो जब मैं ऐसे खज़ाने को वाद विवाद विषे व्यर्थ खोऊंगा तब मेरी वड़ी हानि होवेगी सो यह उपाय वूझ करके होता है और करतूति करके इस प्रकार उपाय होताहै कि एकान्त विषे जायरहे सो इस करके भी वाद विवाद से मुक्त होता है तात्पर्य यह कि जब एक वचन करके निर्वाह होसके तब दो वचन कहे इसीपर एक प्रीतिमान् ने कहाहै कि जो मेरे हृदय विषे महामधुर वचन भी फुरता है तो भी मैं उच्चारण नहीं करता क्योंकि कभी मैं अधिक वोलनेवाला न हो जाऊं वहुरि महापुरुष ने भी कहा है कि भला पुरुष तिसको कहते हैं जो धनकी थैली की गांठ तो खोले और रसना को वन्धन विषे राखे १ वहुरि दूसरा विघ्न मिथ्या और पाप संयुक्त वचन वोलना है जैसे युद्धों की वातें और दुराचारी मनुष्यों के व्यवहार को प्रकट करना सो ऐसे वचन सबही पापरूप हैं इस करके कि प्रथम व्यर्थ विवाद का जो निर्णय किया था सो यह वोलना उसकी नाईं नहीं अर्थात् उससे भी अधिक नीच है इसीपर महापुरुष ने भी कहा है कि जब यह पुरुष निश्शंक होकर वोलता है और उस वचन की बुराई को नहीं जानता तब उसही वोलने करके नरकगामी

होता है और जब सत्यसंयुक्त बोलता है और विचार करके इस भेद को समझता है तब निस्संदेह परमानन्द को पाता है २ बहुरि तीसरा विघ्न यह है कि जब कोई पुरुष वचन कहे तब उसके वचन को विपर्यय करदेना सो यह भी महानिन्द्य है और बहुते पुरुषों का ऐसाही स्वभाव होता है कि जब कोई कुछ बोलता है तब शीघ्रही इस प्रकार कहनेलगते हैं कि यह वार्ता ऐसी नहीं है सो विचार करके देखिये, तो इसका यह अर्थ होता है कि तू मूर्ख और झूंठा है और मैं बुद्धिमान् और सांचा हूं, ताते प्रसिद्ध हुआ कि ऐसे वचन करके क्रोध और अहङ्कार जो महामलिन स्वभाव हैं तिनकी वृद्धता होती है इसीपर महापुरुष ने भी कहा है कि जो पुरुष किसीके वचन को विपर्यय न करे और व्यर्थवाद से भी रहित होवे तब वह परमसुख को पावता है और इसकी विशेषता इस निमित्त कही है कि भले बुरे वचन को सहना धैर्य करके महाकठिन है और योंभी कहा है कि इस पुरुष का धर्म तबहीं दृढ़ होता है कि यद्यपि आप सांचा भी होवे तौभी किसी के वचन को उलटावे नहीं और वचन उलटाना इसको कहते हैं कि जब कोई कहै कि यह अनार खट्टा है और तू कहै कि मीठा है अथवा जब कोई कहे कि अमुक नगर यहां से पांच कोस है और तू कहे कि पांच नहीं षट् कोस है सो यह महापाप है क्योंकि उसके वचन को खण्डन करना होता है और उसके दोष को प्रकट करना होता है और वचन करके दुखावना इसीका नाम है ताते सर्व प्रकार जिज्ञासु को मौनही चाहियेहै पर जब परस्पर एक दूसरे के मत को निषेध करते हैं तब यह तो झगड़ा होता है पर जब किसी पुरुष विषे श्रद्धा देखिये तब एकान्त विषे उसको उपदेश करना भला है और जब श्रद्धाहीन होवे तब मौनही विशेष है इसीपर महापुरुष ने कहा है कि जब यह पुरुष मतों और पन्थों के झगड़ों विषे आरूढ़ होता है तब शीघ्रही आत्मधर्म से भ्रष्ट होजाता है तात्पर्य यह कि योग्य अयोग्य वचन को सुनकर मौनकर रहना बड़ा पुरुषार्थ है इसीपर एक वार्ता है कि एक जिज्ञासु जगत् को त्यागकर एकान्त विषे स्थित हुआ था तब किसी बुद्धिमान् ने उस से पूछा कि तू लोगोंविषे क्यों नहीं आता तब उसने कहा कि मैं जगत् के झगड़े से आपको बचाया चाहता हूं बहुरि उस बुद्धिमान् ने कहा कि जब तू लोगों विषे आवे और उनके भले बुरे वचन सुनकर धैर्य करे और बोलने से रहित रहै

तब यह पुरुषार्थ बड़ा है बहुरि केते पुरुष ऐसे होते हैं कि वह अपने मान के निमित्त दूसरे के पन्थको निषेध करते हैं और कहते हैं कि यह भी धर्म की दृढ़ता है सो यह बड़ी मूर्खता है ३ बहुरि चौथा विघ्न यह है कि धन के निमित्त किसीके साथ झगड़ा करना और राजाओं के दरबार में जाकर पुकार करनी इसीपर सन्तजनों ने कहा है कि जब य मनुष्य धन के लोभ करके किसी के साथ झगड़ा करता है तब ऐसी विक्षेपता को पाता है कि जैसी विक्षेपता और किसी अवगुण करके नहीं होती क्योंकि ऐसे झगड़े का निर्वाह कठोर वचन और वैरभाव बिना नहीं होता ताते जिज्ञासुजन पुरुषार्थ करके मूलही से ऐसे व्यवहार को त्याग करते हैं ४ बहुरि पांचवां विघ्न मुख से दुर्वचन बोलना है इसीपर महापुरुष ने कहा है कि कुछ लोग नरकविषे महादुःखी होवेंगे और पुकार करेंगे तब और नरकी पूछेंगे कि ये महापापी कौन हैं तब देवता कहेंगे कि ये मनुष्य सर्वदा दुर्वचनही बोलते थे और दुराचार के वचनोंविषेही इनकी प्रीति थी और महापुरुष ने योंभी कहा है कि अपने माता पिता को गाली मत दो तब किसीने पूछा कि अपने माता पिता को कौन गाली देता है तब महापुरुष ने कहा कि जब कोई मनुष्य किसी दूसरे के माता पिता को दुर्वचन बोलता है तब वह भी इसके माता पिता को दुर्वचन कहने लगता है जब विचार करके देखिये तब इसने अपने माता पिता को आपही दुर्वचन बोला है ताते चाहिये कि जब अवश्यही किसी मलिनक्रिया का नाम लेना होवे तौभी सैन से कहे और प्रसिद्ध वर्णन न करे ५ बहुरि छठवां विघ्न यह है कि किसीको धिक्कार करना सो यह भी महानिन्द्य है यद्यपि किसी पशु और जड़ पदार्थ को धिक्कार करिये तौभी बुरा है इसीपर महापुरुष ने कहा है कि प्रीतिमान् किसीको धिक्कार नहीं करते बहुरि एक और प्रीतिमान् ने भी कहा है कि जब यह मनुष्य धरती अथवा और किसी पदार्थ को धिक्कार करता है तब वह पदार्थ ऐसे कहता है कि हम दोनों में जो विशेष भगवत् से विमुख और पापी है उसीको धिक्कार है और जब इस प्रकार कहे कि समस्त अपकर्मियों और जीवों के दुःखदायकों को धिक्कार है और किसी जाति पांति पन्थका नाम लेकर न कहे तौ ऐसे कहना प्रमाण है पर तौभी जो विचार करके देखिये तो अपकर्मियोंको धिक्कार करने से भगवत् का नाम लेनाही विशेष है ६ बहुरि सातवां

विघ्न यह है कि रूप और शृङ्गार के व्यवहार की कविता करनी और रूपवानों की स्तुति करनी सो यह भी अयोग्य है क्योंकि ऐसी कविता विषे अधिक तो झूठ होता है बहुरि कहने और सुननेवाले का हृदय चपल होता है पर जब मानसे रहित होकर भगवत् और सन्तजनों की स्तुति वर्णन करे तो प्रमाण है ७ बहुरि आठवां विघ्न हाँसी है सो हाँसी से महापुरुषने जिज्ञासुजनों को वरजा है पर जब अकस्मात् किसीके प्रसन्न करने के निमित्त हाँसी का वचन कहे तो निन्द्य नहीं पर यह भी तब प्रमाण है जब हाँसी का स्वभाव अधिक न होजावे और झूठ भी न कहे और किसीके हृदयको खेदभी न होवे क्योंकि जब हाँसी का स्वभाव अधिक होता है तब इस मनुष्य की आयुर्बल व्यर्थही बीतजाती है और हृदय अन्ध होजाता है बहुरि गम्भीरता भी नष्ट होजाती है और हाँसी से अकस्मात् तमोगुण भी उपज आता है इसी कारण से सन्तजनों ने अधिक हाँसी से वरजा है ऐसेही महापुरुषने भी कहा है कि जैसे मैं भगवत् की बड़ाई और वेपरवाही को जानताहूं सो जब तुमभी जानो तब हाँसीसे रहित होकर रुदन ही करते रहो बहुरि किसी प्रीतिमान् ने किसी और प्रीतिमान् से कहाथा कि नरकों के दुःखको तू निस्सन्देह जानताहै तब उसने कहा कि जानताहूं बहुरि उसने पूछा कि तू ऐसाभी जानता है कि नरकोंसे छूटूंगा तब उसने कहा कि यह तो मैं नहीं जानता बहुरि उन्होंने कहा कि जब ऐसे हुआ तब प्रसन्नता और हाँसी तुमको क्योंकर आती है इसी कारण से एक जिज्ञासुजन चालीस वर्षपर्यन्त हँसने से रहित रहे और परलोक के भयको स्मरण करतेरहे हैं इसीपर एक सन्तने कहा है कि जो पुरुष पाप करके इस लोकविषे हँसता है सो निस्सन्देह नरकों विषे अधिक रोतारहेगा बहुरि एक सन्त ने योंभी कहाहै कि जैसे स्वर्गविषे रोना आश्चर्य है तैसेही संसारविषे हँसनाभी आश्चर्य है काहेसे कि यह मनुष्य तो इतना भी नहीं जानता कि मैं परलोक विषे नरक को प्राप्त होऊंगा अथवा स्वर्ग को इसी पर एक सन्त ने कहाहै कि भगवत्के भय करके हाँसी से रहित होवो क्योंकि हाँसी करके क्रोध उपजता है और क्रोध करके अनेक अवगुण उपजते हैं इसी कारणसे महापुरुष की सर्व आयुष्भर में जीवों की प्रसन्नता के निमित्तमात्र कुछ अल्पही हाँसी की वार्ता वर्णनहुई है जैसे एक बार एक वृद्धा स्त्रीसे कहनेलगे कि कोई बूढ़ा मनुष्य स्वर्ग को प्राप्त न होवेगा तब वह स्त्री रोनेलगी बहुरि उससे

कहा कि तू शोक मत कर काहे से कि जब कोई मनुष्य स्वर्ग विषे जाताहै तब प्रथम उसको युवा करलेते हैं बहुरि एक स्त्री महापुरुषसे आकर कहनेलगी कि तुमको प्रसाद पानेके निमित्त मेरे पति ने बुलाया है तब उससे कहा कि तेरा भर्त्ता वही है जिसके नेत्रों विषे सफ़ेदी है बहुरि वह स्त्री कहनेलगी कि उसके नेत्रों विषे तो सफ़ेदी नहीं है तब उससे हँसकर कहनेलगे कि सफ़ेदी से रहित तो किसीके भी नेत्र नहीं होते बहुरि एकबार मार्गविषे चले जाते थे तब एक वृद्धा स्त्री कहने लगी कि मुझको ऊंटपर चढ़ादो तब महापुरुष ने कहा कि तुझको ऊंट के पुत्र पर चढ़ादूं तब उसने कहा कि ऊंट के पुत्रपर तो मैं नहीं चढूंगी कि वह मुझको गिरा देवेगा तब हँसकर कहनेलगे कि ऐसा ऊंट तो कोई नहीं होता जो ऊंट का पुत्र न होवे तात्पर्य यह कि महापुरुषों का हँसना और बोलना सबही विचारके अनुसार होताहै और गुणसे रहित नहीं होता पर जब कोई उनको देखकर ऐसाही स्वभाव करलेवे और उनके भेद को समझ न सके तब निस्सन्देह पापी होता ८ बहुरि नववां विघ्न यह है कि किसीको उपहास करके डुलावना और उसके कर्मों के छिद्रको प्रकट करके लोगों को हँसाना है सो यहभी महानिन्द्य है इसीपर महाराज ने कहाहै कि किसीके छिद्र को देखकर न हँसो क्योंकि कदाचित् वह तुमसे भला होजावे और तुम उससे भी नीचगति को प्राप्तहोजाओ बहुरि महापुरुष ने भी कहाहै कि जब कोई अभिमान सहित किसीका अवगुण देखकर हँसता है तब मरनेसे आगेही अवश्यमेव उस अवगुण को प्राप्त होताहै ९ बहुरि दशवां विघ्न यह है कि अपने वचन का निर्वाह न करना सो यहभी महापाप है इसीपर महापुरुषने भी कहाहै कि जो पुरुष वचन झूठा कहे और वचनका निर्वाह न करे अथवा किसीकी वस्तु चुरायलेवे तब वह कपटी कहाताहै और वह यद्यपि जप तप और व्रत भी करता होवे तौ भी भगवत् से विमुख होताहै इसीपर सन्तजनों ने कहा है कि किसीके साथ वचन करना भी ऋण की नाईं है ताते उससे विपर्यय न हूजिये तौ भला है बहुरि धर्मशास्त्रविषे भी यों कहा है कि जैसे किसीको कुछ देकर फेरलेना अयोग्य है तैसेही वचन देकर निर्वाह न करना अयोग्य है १० बहुरि ग्यारहवां विघ्न यहहै कि झूठ बोलना और झूठी दुहाई करना सो यह भी महापाप है इसीपर महापुरुष ने कहाहै कि झूठ करके इस मनुष्य की प्रारब्ध घटजाती है और यों भी कहा है कि सौदागरीविषे झूठ बोलना और झूठी शपथ करनी

महानीचताहै और इसी पाप करके सौदागर अर्थात् वनिज व्यवहारी भी नरकगामी होवेंगे बहुरि यों भी कहा है कि झूठा मनुष्य व्यभिचारी से भी बुराहै काहे से कि व्यभिचारी तो अकस्मात् छल करके होजाता है और झूठ बोलना मंशा की मलिनता करके होताहै पर ऐसे जान तू कि झूठकी निषेध इस करके कही है कि झूठ बोलने करके हृदय अन्धा होजाता है और जब झूठ की मंशा न होवे और अकस्मात् किसी कार्य के निमित्त बोलना चाहिये तो झूठ बोलना भी प्रमाण है तात्पर्य यह कि जब झूठ की मंशा न होवे और किसीकी भलाई अथवा रक्षा के निमित्त बोलता होवे तो हृदय अन्धा नहीं होता जैसे कोई अनाथ किसी तामसी मनुष्य के भय करके छिपा होवे और इसने देखा होवे बहुरि जब वह तामसी मनुष्य इससे पूछे कि अमुक कहां है तब सत्य बोलने से झूठ बोलना विशेष है अथवा जब दो मनुष्यों विषे परस्पर विरोध होवे और इसके झूठ बोलने करके उनका विरोध निवृत्त होवे तौ भी झूठ कहना निन्द्य नहीं अथवा जब किसीका अवगुण देखिये और दूसरा कोई उसके अवगुण को पूछे तौभी उसको गुह्य रखना भला है अथवा जब कोई तामसी मनुष्य किसीका धन पूछे तौभी प्रसिद्ध कहना योग्य नहीं तात्पर्य यह कि यद्यपि झूठ कहना अयोग्य है तौभी विचारकी मर्यादाविषे देखे कि जब झूठ कहने करके किसीकी रक्षा होती है अथवा कोई बड़ा विघ्न दूर होताहै तब झूठ कहने करके दोष कुछ नहीं होता पर जब अपने मान और धन के निमित्त झूठ बोले तो निन्द्य है बहुरि ऐसे भी जान तू कि जब जिज्ञासुजनोंने इस प्रकार देखा है कि अमुक कार्य झूठ विना सिद्ध नहीं होता तब उन्होंने ऐसा यत्न कियाहै कि जिस वचन विषे झूठ का अक्षर न आवे और वह पुरुष कुछ और का औरही समझलेवे तब ऐसाही वचन उन्होंने बोलाहै जैसे एक प्रीतिमान् चिरकाल के पीछे राजा के निकट गया था तब राजाने पूछा कि तुम चिरकाल करके क्यों आये हो तब उस प्रीतिमान् ने कहा कि जिस दिनसे मैं तुम्हारे पास से गया हूं सो मैंने तिस दिनसे अपना अङ्ग धरती से तबहीं उठाया है जब भगवत् ने मुझको नीरोगता दीनी है ताते राजाने जाना कि इनको कुछ रोग हुआ होवेगा और इन्होंने इसप्रकार कहा था कि जब भगवत्ने मुझको नीरोगता का बल दिया तबहीं मेरा शरीर चलने फिरने को समर्थ हुआ है सो इस वार्ताविषे कुछ सन्देह नहीं बहुरि एक

श्रीरामानुरागी थे सो उन्होंने अपने शिष्य को समझा दिया था कि जब मैं एकान्त बिषे भगवद्भजन करने लगूं और कोई पुरुष मुझको आकर पूछे तब तू धरती पर लकीर खैंचकर उससे कहदेना कि यहां तो नहीं हैं बहुरि जब ऐसे पूछे कि कहां गये हैं तब ऐसे कहना कि किसी ठाकुरद्वारे बिषे होवेंगे सो उन्होंने गृहबिषेही ठाकुरद्वारा भी बनाय राखा था बहुरि एक और प्रीतिमान् एक धर्मज्ञ राजा के प्रधान होकर किसी देश की पालना को गये थे सो जब अपने गृह बिषे आये तब उनसे स्त्री कहनेलगी कि तुम हमारे निमित्त क्या लाये हो तब उन्होंने कहा कि मेरे साथ एक रक्षक और भी था ताते मैं कुछ ले नहीं आया सो उनके कहनेका तात्पर्य यह है कि अन्तर्यामी भगवत् मेरे साथ था और स्त्रीने यों जाना कि राजा ने कोई रक्षक भेजा होगा पर इस प्रकार जान तू कि ऐसा वचन बोलनाभी तब प्रमाण है जब किसी कार्य का निर्वाह ऐसे वचन बिना न होसके और जो सर्वथा ऐसाही स्वभाव पकड़लेवे तो अयोग्य है काहेसे कि यद्यपि यह वचन सत्य है तौ भी औरों को धोखा देना प्रमाण नहीं और एक महापुरुष ने ऐसा कहाहै कि भगवत् की दुहाई करनी महापाप है अथवा जब ऐसे कहे कि भगवान् जानता है कि यह वार्ता ऐसीही है पर जब वह वार्ता तैसी न होवे तब इस प्रकार कहना भी बड़ापाप है ११ बहुरि बारहवां विघ्न निन्दा है सो यह निन्दा ऐसी प्रबल है कि अवश्यही सब किसीसे होजाती है पर जिसकी भगवत् रक्षा करे सो विरला जनही मुक्त होता है इसीपर महाराजने कहाहै कि निन्दा करनी ऐसी बुरी है जैसे कोई बन्धु का मांस भक्षण करे बहुरि महापुरुष ने भी कहा है कि निन्दा व्यभिचार से भी बुरी है काहेसे कि जब व्यभिचार का त्याग करे तब शीघ्र भगवत् उसको मुक्त करता है और निन्दाके पाप से तबहीं छूटता है कि जिस पुरुष की निन्दा करी होवे सो जब उसही से क्षमा करावे बहुरि एक प्रीतिमान् ने कहा है कि मैंने महापुरुष से उत्तम उपदेश पूछा था तब उन्होंने कहा कि किंचिन्मात्र सुकृत कोभी अल्प न जानना यद्यपि किसी प्यासे को एक कटोरा भर जल देवे तौभी भगवत् का उपकार जान और सर्व मनुष्यों के साथ प्रसन्न मस्तक रख बहुरि किसीकी निन्दा भी न करना और निन्दा इसका नामहै कि यद्यपि तू सत्यही कहे पर जिस वचन को सुनकर किसीका हृदय खेदित होवे तब उसही को निन्दा कहते हैं जैसे तू कहे कि

असुक पुरुष लम्बा है अथवा अतिश्यामहै अथवा मन्ददृष्टि है सो यह सब निन्दा है अथवा जब ऐसे कहे कि यह नीचजाति अथवा दासीसुत है अथवा कठोर है अथवा बहुत बोलनेवाला है अथवा चोर है अथवा भजन से हीन है अथवा वाणी अशुद्ध पढ़ताहै अथवा पवित्र नहीं रहता अथवा कृपणहै अथवा व्यवहार अशुद्ध करता है अथवा असंयमी है अथवा सोवता बहुत है अथवा वस्त्र सुन्दर पहरता है अथवा अधिक चपल है यह सबही निन्दा है तात्पर्य यह कि यद्यपि सत्यही वचन होवे पर जिस वचन को सुनकर उसका मन तपायमान होवे तब इसही का नाम निन्दा है इसी पर महापुरुष की स्त्री ने कहा है कि एक बार मैंने इस प्रकार कहा था कि असुकी स्त्री ठिंगनी है तब महापुरुष मुझसे कहने लगे कि तुमने उसकी निन्दा करी है ताते मुख से थूक डालो बहुरि जब मैंने थूका तब मेरे मुख से रुधिर निकला और कितने स्थूल छिवाले इस प्रकार कहतेहैं कि अपकर्मियों की बुराई करनी निन्दा नहीं क्योंकि उनकी निषेधता करने से धर्म की वृद्धि होती है सो यह वार्त्ता अयोग्य है इस करके कि जिज्ञासु को सर्वथा अपने मार्ग की ओर दृष्टि रखनी प्रमाण है ताते किसीको मद्यपानी और दु-राचारी कहना योग्य नहीं अथवा जब कोई ऐसाही संयोग अवश्यही होवे तब कहिये पर कार्य विना कहना अयोग्य है और योंभी जानना चाहिये कि निन्दा केवल रसना करके ही नहीं होती हाथ और नेत्रों करके भी निन्दा होती है जैसे नेत्र अथवा हाथ अथवा और किसी अङ्ग की सैन करके दिखावे कि असुक म-नुष्य ऐसा है तब यह भी पाप है और जब किसी का नाम न लेवे और योंहीं कहदेवे कि किसी पुरुष ने ऐसा कर्म कियाहै तब यह निन्दा नहीं कहाती पर केते विद्यावान् और तपस्वी तो महापुरुषों की निन्दा करते हैं और कहते हैं कि हमने निन्दा नहीं करी जैसे अपनी सभाविषे बैठकर वार्त्ता करते हैं कि यह माया महाछलरूप है और इसके छलों से मुक्त होना महाकठिन है इसीकारण से यद्यपि असुक पुरुष महाउत्तम था तौ भी असुक छलकरके छलागया और उस विषे आसक्त होगया और उसको क्या कहिये हम भी छलेहुये हैं और यह माया ऐसीही विघ्नरूप है सो इसका अभिप्राय यह होता है कि अपनी निन्दा करके औरों की निन्दा करता है सो यह बड़ी मूर्खता है बहुरि जब कोई उनके आगे आयकर कहे कि असुक पुरुष ऐसे अपकर्म विषे स्थित हुआ है तब

आश्चर्यवान् होकर कहते हैं कि भगवत् रक्षा करे और यह तो बड़ी असंभव वार्त्ता हुई कि अमुक पुरुष गुणवन्त भी छलको प्राप्त हुआ है सो इस वचन का प्रयोजन यह हुआ कि निन्दा करनेवाला पुरुष प्रसन्न होकर उसके कर्म को वर्णन करे और सबलोग भलीप्रकार श्रवण करें अथवा इस प्रकार कहना कि हे भाई! सर्वप्रकार भगवत् से भय करना चाहिये और अभिमान करना अयोग्य है काहे से कि अमुक श्रेष्ठ पुरुष को कैसा छल प्राप्त हुआ है कि भगवतही उसकी रक्षा करे सो यद्यपि मुखसे ऐसाही कहता है तौभी उसका प्रयोजन यह है कि उसके छलको लोग भी जानें सो ये सबही निन्दा हैं और यह ऐसा महाकपट है कि पाखण्ड करके आपको अनिन्द्य हो दिखाता है ताते इसको दो पाप लगते हैं एक तो निन्दा होती है और दूसरे कपटबद्ध होताहै और वह मूर्ख ऐसा जानता है कि मैंने निन्दा नहीं करी और यह वार्त्ता प्रसिद्ध है कि निन्दाके करनेवाले और सुननेवाले दोनों समान पापी होते हैं पर जब निन्दा सुननेवाले के चित्तविषे ग्लानि दृढ़ रहे और निन्दक को वर्जने की सामर्थ्य न रखता होवे तौभी निन्दा सुनने के दोषसे मुक्त रहताहै ताते जिज्ञासुको इस प्रकार उचितहै कि निन्दक को प्रसिद्ध वरजे बहुरि जिस प्रकार मुखसे निन्दा करनी परमपाप है तैसेही हृदयकरके भी निन्दा करनी पापरूप है सो हृदय करके निन्दा इस प्रकार होती है कि किसीके दोषको चित्तविषे स्मरण करना सो यह भी बड़ापाप है इसीपर महापुरुष ने भी कहा है कि परद्रव्य चुराना और किसीका घात करना और किसीके ऊपर बुरा अनुमान करना सो यह तीनों महापाप हैं पर जब अकस्मात् तेरे चित्तविषे ऐसा संकल्प फुरआवे और तू उसको मलिन जानकर निवृत्त करे तब इसकरके तुझको पाप नहीं लगता पर इसकी परीक्षा यह है कि जब किसीके दोषका संकल्प तेरे चित्तविषे फुरे अथवा किसीसे श्रवण करे तब उस वार्त्ता को ढूंढ़े नहीं और उस फुरना को हृदय बिषेही लीन करदेवे बहुरि ऐसे जाने कि जैसे मेरे मन बिषे अनेक पाप उपजते रहते हैं तैसेही और मनुष्य भी पाप से रहित नहीं होसके और जिस प्रकार मैं अपने अवगुणों को छिपाया चाहता हूं तैसेही औरों के अवगुण भी प्रसिद्ध करने प्रमाण नहीं और जब मैं किसी के छिद्र को प्रकट जानूंगा तब मुझको क्या लाभ होगा? पर जब किसी के अवगुण को निःसंदेह जाने तब एकान्त बिषे उसको नम्रता सहित उपदेशकरे और किसी के

आगे उसका छिद्र वर्णन न करे बहुरि ऐसे जान तू कि निन्दा की अभिलाषा भी इस मनुष्य के हृदय को बड़ा रोग है ताते इसका उपाय करना अवश्यही प्रमाण है और उपाय इसका दो प्रकार का है सो एक उपाय स्पष्टहै अर्थात् इ-कट्ठाही निन्दा को नाश करता है सो यह उपाय भी दो प्रकार करके होताहै प्रथम तो जो वचन निन्दा की निषेधता विषे महापुरुषोंने कहे हैं उनका वारम्बार वि-चार करे और ऐसे जाने कि निन्दा करनेवाले के सब शुभ करतूतों का फल उस की ओर जाताहै जिसकी निन्दा करता है और निन्दक मनुष्य सुकृतहीन रह जाताहै इसीपर महापुरुष ने कहा है कि जैसे सूखे तृणों को अग्नि भस्म कर डालती है तैसेही निन्दाकरके सब सुकृत शीघ्रही नष्ट होजाते हैं १ और दूसरा प्रकार यह है कि अपने अवगुणों का विचारकरे और ऐसे जाने कि जिस प्रकार मैं अवगुणों के वशीभूत हूं तैसेही और मनुष्य भी अवगुणों से रहित नहीं होसक्ते क्योंकि महाराज की माया अतिप्रबल है बहुरि जब अपने विषे कोई अवगुण न देखे तब ऐसे जाने कि अपने अवगुणों का न देखनाही बड़ा अवगुण है और जो यह पुरुष अवगुण से रहित और गुणवन्तही होवे तो भगवत् का उपकार जानकर धन्यवाद करे और निन्दा से रहित होवे बहुरि ऐसे जाने कि जब मैं किसी की निन्दा करूंगा तब यह भी भगवत्की निन्दा होती है काहेसे कि सब किसी का उत्पन्न करनेवाला भगवत् है सो जैसे कारीगरी की निन्दा करने से कारीगर की निन्दा होती है तैसेही मनुष्यों की निन्दा करके भगवतहीकी निन्दा होती है २ सो यह दोनों प्रकार निन्दा के दूर करने के समस्त उपाय हैं बहुरि दूसरे निन्दा के दूरकरने के भिन्न २ उपाय ये हैं कि प्रथम जिज्ञासु अपने हृदयविषे विचारकरे कि मैं निन्दा किसकारण करताहूं सो निन्दा के आठ का-रण हैं और सबके भिन्न २ उपाय हैं प्रथम कारण यह है कि जब यह पुरुष किसी पर कोप करता है तब उसकी निन्दा किया चाहता है सो जब ऐसा होवे तब जिज्ञासु इस प्रकार विचारकरे कि बिराने क्रोध के निमित्त आप को नरकगामी करना बड़ी मूर्खता है और जब भली प्रकार देखिये तो उसके निमित्त अपने ऊपर क्रोधकरना होताहै इसीपर महापुरुष ने कहा है कि जब यह पुरुष भगवत् के निमित्त अपने क्रोध को क्षमा करलेता है तब उसके ऊपर महाराज दयालु होते हैं १ बहुरि दूसरा कारण यह है कि जब किसीको निन्दा करता देखता है

तव उसकी प्रसन्नताके निमित्त यह भी निन्दा करने लगता है तब इसका उपाय यहहै कि ऐसा जाने कि मैं लोगों की प्रसन्नता के निमित्त भगवत् को अप्रसन्न करताहूं सो यह भी मूढ़ता है ताते जिज्ञासु को चाहिये कि निन्दक पुरुषोंको देख कर क्रोधवान् होवे और उनकी संगतिका त्यागकरे २ बहुरि तीसरा कारण यह है कि जब इस पुरुषका कोई छिद्र प्रकट होता है तब अपने छिद्र का दोष औरों पर रखता है और आपको बचाया चाहता है सो यह भी अयोग्य है ताते ऐसा जानना प्रमाण है कि भगवत् का क्रोध मेरी चतुराई करके नष्ट न होवेगा और जिस अपमान से मैं डरता हूं तिस अपमान से भगवत् का क्रोध महातीक्ष्ण है और अपने दोष का दोष औरों पर देनाही भगवत् के क्रोध का बीज है पर जब अपने अवगुण छिपनि के निमित्त औरों के अवगुण वर्णनकरे तब यह भी मूर्खता है जैसे कोई कहै कि अमुक पुरुष भी अशुद्ध जीविका करता है और अमुक राज-धान्य लेता है ताते मैं भी इसको अङ्गीकार करताहूं सो ऐसा जाननेवाला पुरुष महामूर्ख है क्योंकि जिस मनुष्य का कर्म मलिन होता है तिसको देखकर आप भी मलिनता विषे विचरना अयोग्य है जैसे कोई अग्नि विषे जायकर जले तब उसके पीछे जलना तो इसको प्रमाण नहीं तैसेही पापी को देखकर पाप करना अयोग्य है ३ बहुरि चौथा कारण यह है कि अपनी स्तुतिके निमित्त औरों की निन्दा करता है जैसे कोई कहै कि अमुक पुरुष वचन को नहीं समझता और अमुक पुरुष पाखण्ड का त्याग नहीं करता सो इसका अर्थ यह हुआ कि मैं बुद्धि-मानहूं और पाखण्डसे रहितहूं सो यह भी अयोग्यहै ताते ऐसा जानना चाहिये कि बुद्धिमान् पुरुष तो इस मेरे कपटको शीघ्रही जान लेवेगा और मेरी निष्कामता पर प्रतीति न करेगा और जो आपही मूर्ख है तिसकी प्रीति प्रतीति करके मुझ को क्या लाभ होवेगा ताते यह भी बुद्धिकी हीनताई है कि भगवत् के निकट आपको लज्जायमान करना और पराधीन जीवों के निकट अपना मान बढ़ा-वना ४ बहुरि पांचवां कारण यह है कि ईर्षा करके भी निन्दा होती है अर्थात् जब किसी पुरुष का धन और मान अधिक होताहै तब ईर्षा करनेवाला पुरुष उसकी बड़ाई को देख नहीं सक्ता ताते उसके अवगुण को ढूंढ़ने लगताहै और वैरभाव विषे दृढ़ होता है पर ऐसे नहीं जानता कि मैं अपने साथही वैरभाव करता हूं क्योंकि इस लोक विषे ईर्षा की अग्नि विषे जलता रहता है और परलोक विषे भी

निन्दा आदिक पापोंकरके दुःखी होवेगा ताते ऐसा पुरुष दोनों लोकके सुखों से अप्राप्त रहता है पर इतना भी नहीं समझता कि भगवत्की आज्ञाकरके जिस को धन और मान प्राप्तहुआहै सो मेरी ईर्षा करके उसकी हानि क्योंकर होवेगी ५ बहुरि छठवां कारण यह है कि हांसी के स्वभाव करके भी निन्दा होजाती है और हाँसी करनेवाला पुरुष ऐसा नहीं जानता कि जितना मैं किसी को हास्य करके लज्जावान् करता हूं तितना मैं भी भगवत् के निकट लज्जित होऊंगा और जब ऐसा जाने कि निन्दा और हास्य करके परलोक विषे मेरी ऐसी गति हो-वेगी तब कदाचित् ऐसे कर्म को अङ्गीकार न करे ६ बहुरि सातवां कारण यह है कि जब किसी से कुछ अवगुण होवे तब इसका हृदय सात्त्विकी स्वभाव करके सहजही शोकवान् होजाता है और उसकी वार्ता करतेहुये उसका नाम किसी के आगे मुख से निकल जावे तब यह भी निन्दा होती है ताते ऐसा जानना प्रमाण है कि यद्यपि दया करके जो हृदय कोमल हुआ है तिससे उस के विषे अवगुण को नहीं चाहता तौ भी प्रसिद्ध नाम लेने करके इस दया स-म्बन्धी करतूति के फल से अप्राप्त रहता है ७ बहुरि आठवां कारण यह है कि यद्यपि धर्महो के निमित्त किसी का अवगुण नहीं देखसके पर जब आपको शुद्ध जानकर उसके छिद्र को देखकर आश्चर्यवान् होवे और ऐसा जाने कि असुक पुरुषने यह अवज्ञा क्योंकर करी ताते विस्माद होकर उसकी आश्चर्यता विषे उसका नाम लोगों के सामने कहे तब यह भी अयोग्य है और निन्दा के निकट जा पहुँचता है ताते चाहिये कि किसी का अवगुण देखकर आश्च-र्यवान् न होवे और नम्रता विषे स्थित रहे ८ (अथ प्रकट करना इसका कि निन्दा भी कितने कारणों करके प्रमाण है) ताते जान तू कि निन्दा भी झूठ की नाई महापाप है इसी कारण से आवश्यक कार्य विना निन्दा करना प्रमाण नहीं होता ताते मैं उन कार्यों को कुछ वर्णन करता हूं जिन करके निन्दा भी प्रमाण होती है,सो प्रथम कार्य यह है कि जब किसी ने इसको दुखाया होवे और अथवा कुछ धन हरलिया होवे और इसको जिसके आगे पुकार करनी होवे तब यह भी निन्दा किये विना सिद्ध नहीं होता पर तौभी जिस पुरुष से सहायता कुछ न होसके तब दुःख देनेवाले की वार्ता तिससों कहनी अयोग्य है १ बहुरि दूसरा कारण यह है कि जब किसी स्थान विषे कुछ पाप होता देखे

और ऐसा जाने कि जो इस पाप को प्रसिद्ध न करिये तो अधिकही बढ़ता जावेगा तब किसी ऐसे ऐश्वर्यवान् से कहना प्रमाण है कि जिसके भय करके वह पाप नष्ट होजावे २ बहुरि तीसरा कारण यह है कि जब कोई धर्मज्ञ किसी नास्तिकवादी अथवा किसी अपकर्मी की संगति करता होवे तौ उसके अवगुण को प्रसिद्ध करना योग्य है क्योंकि उसकी संगति करके धर्मज्ञ का अकार्य होता है इसी पर महापुरुष ने कहा है कि तीन प्रकार के मनुष्यों की निन्दा करनी पाप नहीं एक अन्यायी राजा दूसरा सन्तजनों की मर्याद से विपरीत नास्तिकवादी और तीसरा प्रसिद्ध दुराचारी क्योंकि इनकी क्रिया कुछ गुह्य नहीं होती ताते इनकी वार्ता प्रसिद्ध करनी कुछ निन्दा नहीं ३ बहुरि चौथा कारण यह है कि जब किसी का नाम ऐसाही प्रसिद्ध लोग लेते होवें कि सूरदास अथवा मन्द-दृष्टि अथवा बधिर अथवा कुष्ठी सो ऐसे पुरुष का इसी प्रकार नाम लेना निन्दा और पाप नहीं और वह भी अपना नाम सुनकर अप्रसन्न नहीं होता पर जब उसको भी किसी और नाम करके बुलाइये तौ भला है ४ बहुरि पांचवां कारण यह है कि कितने लोग प्रसिद्ध ही निर्लज्ज हैं जैसे हिजड़े और नर्तक और मद्यपानी जो लाज से रहित हैं सो यह भी अपनी करणी की वार्ता सुनकर बुरा नहीं मानते ताते जब किसी संयोग करके इनकी वार्ता चले तब इसका नाम भी निन्दा नहीं और निन्दा का अर्थ यह है कि जिस वचन को सुनकर किसी का हृदय तपायमान होवे ५ ताते प्रीतिमान् को चाहिये कि जब इससे कुछ ऐसी अवज्ञा होवे तब शीघ्रही उसे क्षमा करावे और अपने पापों का पुर-श्चरण करलेवे इसीपर महापुरुष ने कहा है कि इसी लोक में अपने पाप क्षमा करावो क्योंकि परलोक विषे जब इस जीव को अधिक दण्ड होवेगा तब इसके पास पुरश्चरण की कुछ सामग्री न होवेगी और एक वचन विषे योंभी आया है कि जिस पुरुष की इसने निन्दा की होवे तब उसके निमित्त भगवत् के आगे प्रार्थना करके उसको क्षमाकरावे पर केते पुरुषों ने यही दृढ़ किया है कि जिसकी निन्दा करीहोवे उससे क्षमा कराने की कुछ अपेक्षा नहीं भगवतही के आगे प्रा-र्थना करनी विशेष है सो यह वार्ता अयोग्यहै क्योंकि भगवत् के आगे प्रार्थना करनी तबहीं कही है जब वह मनुष्य जीवता न होवे अथवा दूर होवे पर जब उस का मिलाप होसके तब नम्रता और दीनता सहित उसही से क्षमाकरावे तो भला

है और जब वह क्षमा न करेतब उसही को पाप होताहै १२ बहुरि तेरहवां विघ्न यह है कि किसी के वचनका छिद्र ढूंढ़ना और चुगली करनी सो यहभी बड़ा पाप है इसीपर महापुरुषने कहा है कि चुगली करनेवाला पुरुष कदाचित सुखी नहीं होता और योंभी कहाहै कि चुगली करनेवाला पुरुष सर्वमनुष्यों से नीच है इसीपर एक वार्ता है कि एक समय एक देशमें दुर्भिक्ष हुआथा तब महात्मा मूसा और उस देश के लोग मिलकर भगवत् से प्रार्थना करनेलगे तब महात्मा मूसा को आकाशवाणी हुई कि तुम्हारे देश विषे एक चुगल है तिसके पाप करके मेघ नहीं वर्षता तब महात्मा मूसा ने पूछा कि वह चुगल कौन है ? तब आकाशवाणी हुई कि हे मूसा ! मैं तो चुगल को अपना शत्रु जानता हूं ताते मैं ही उसकी चुगली क्योंकर करूं कि अमुक चुगल है और इसका उपाय यह है कि तुम सब लोगोंको चुगली से विवर्जितकरो तब शीघ्रही वर्षा होवेगी बहुरि उन्होंने ऐसेही किया तब बड़ा मेघ वर्षा और दुर्भिक्ष दूरहुआ एक और भी वार्ता है कि एक प्रीतिमान् दो सहस्र कोस चलकर एक बुद्धिमान् के निकट गया और वहां जाकर यह वार्ता पूछी कि आकाश से विशाल क्या है १ और धरती से भारी क्याहै २ और पाथर से कठोर क्या है ३ और अग्निसे अधिक तीक्ष्ण क्या है ४ और बर्फ़ से शीतल क्या है ५ और समुद्र से उदार क्या है ६ और जिस बालक के माता पिता मुये होवें उससे अधिक निर्मान और दुःखी कौन है ७ तब उस बुद्धिमान् ने कहा कि सत्य वचन आकाश से भी विशाल है १ और निर्दोष मनुष्य को दोष लगाना यह पाप धरती से भी भारी है २ और मनमुखों का हृदय पाथरसे भी कठोर है ३ और ईर्षा अग्निसे भी तीक्ष्णहै ४ बहुरि भाव और सहनशीलता बर्फ़ से भी शीतल है ५ और संतोषवान् समुद्रसे भी अतिउदार है ६ और चुगली करनेवाला मनुष्य माता पिताहीन बालक से भी अधिक निर्मान होवेगा ७ पर चुगली का अर्थ यह है कि वचन अथवा कर्म अथवा सैन करके किसी के छिद्र को किसी और के आगे प्रकट करना और उसका हृदय दुखावना सो यह महापाप है ताते जिज्ञासु को चाहिये कि किसी का परदा उघारे नहीं अथवा जब कोई ऐसाही अवश्य कार्य होवे तब प्रकट करना भी प्रमाण होता है ताते जब कोई आयकर तुझसे ऐसे कहे कि अमुक पुरुष तेरा बुरा चेतता है अथवा दुर्वचन कहताहै तब तुझको इस प्रकार समझना चाहिये कि प्रथम तो चुगल और

दुराचारी झूंठे होते हैं ताते उस पर प्रतीति करनी अयोग्य है १ और दूसरा प्रकार यह कि जब अधिकार देखिये तब उसको चुगली से विवर्जित करिये २ और तीसरा यह कि चुगली करनेवाले पुरुष के साथ मित्रता न करिये ३ और चौथा प्रकार यह कि जब किसी के अवगुण की वार्ता सुनिये तब देखे बिना मलीन अनुमान करना अतिनिन्द्य है ४ बहुरि पांचवां प्रकार यह है कि किसी का छिद्र सुनकर उसकी ढूंढ़ भी न करे कि यह वार्ता सत्य है अथवा झूंठ है ५ और छठवां प्रकार यह है कि चुगली करनेवाले पुरुष की वार्ता भी किसीसे न कहै कि यह चुगली खानेवालाहै ताते उसके छिद्र को भी गम्भीरता करके छिपाय लेवे ६ तात्पर्य यह कि यह षट् युक्तियां सब किसी को चाहिये हैं इसीपर एक वार्ता है कि एक बुद्धिमान् से किसीने आकर कहा कि असुक पुरुष तुम्हारी निन्दा करताहै तब उस बुद्धिमान् ने कहा कि यद्यपि तू हमारे दर्शनको आया है तौभी तीन अवगुण तैंने अवहीं किये हैं सो एक तो मुझको उसके ऊपर क्रोधवान् किया दूसरे मेरे चित्त को विक्षेपता दी तीसरे तू आप भी चुगली करनेवाला हुआ इसी पर हसनवसरी सन्तने भी कहाहै कि जब कोई मनुष्य आयकर तुझको किसी की चुगली सुनावे तब निस्संदेह ऐसा जान कि तेरी वार्ता भी औरों को जाय सुनावेगा ताते उसको अपना शत्रु और निन्दक जानकर उसकी संगति का त्यागकर प्रयोजन यह कि चुगली करनेवाले से केते जीवों का घात होता है इसीपर एक वार्ता है कि एक पुरुष ने एक दास मोल लियाथा तब दास के बेचनेवाले ने कहदिया कि इस विषे और अवगुण कोई नहीं पर कुछ एक चुगली और वाक्यछल करता है तब दास लेनेवालेने कहा कि इतने अवगुण का संशय क्या है? बहुरि जब वह दास उसके गृह विषे रहनेलगा तब उसकी स्त्री से कहा कि तुम्हारा पति और विवाह किया चाहता है और तुम्हारे साथ बिपरीत चित्त हुआ है ताते इसका उपाय यह है कि जब तुम्हारा पति शयन करे तब एक बाल उसके कण्ठ का मुझको काटकर लादेना तब मैं मन्त्र पढ़ दूंगा तिस करके सर्वथा तेरेही साथ उसकी प्रीति अधिक होवेगी बहुरि उस दासने अपने स्वामीसे कहा कि तुम्हारी स्त्री की प्रीति किसी और पुरुषके साथ दृढ़ हुई है ताते तुमको मारना चाहती है पर जब तुम रात्रिके समय शयनकरो तब सचेत रहना बहुरि जब रात्रि हुई तब वह गृह विषे आयकर शयन कररहा

और अन्तर से जागता रहा तब वह स्त्री उस्तुरा लेकर अपने पति के कण्ठ का वाल काटनेलगी और उसके पति ने ऐसा जाना कि यह मुझ को मारती है ताते क्रोधवान् होकर स्त्री को मारने लगा बहुरि जब स्त्री के सम्बन्धियों ने सुना तब वे आकर उस पुरुष को मारनेलगे बहुरि स्त्री और पुरुष के सम्बन्धियों विषे बड़ा युद्ध हुआ और २ भी केते मनुष्यों का घात हुआ १३ बहुरि चौदहवां विघ्न यह है कि दो शत्रुओं विषे वाक्यछल करना और अपने २ ठौर दोनों को मित्र होय दिखावना सो यह चुगली से भी बड़ा पाप है इसी पर महापुरुषने भी कहाहै कि इस लोक विषे जिसका स्वभाव वाक्यछल का होताहै उसकी परलोक विषे दो जिह्वा होवेंगी ताते महादुःख को भोगेगा इसी कारण से बुद्धिमान् को चाहिये कि जब दो शत्रुओं का मिलापकरे तब दोनों की वार्ता सुनकर मौन कररहे अथवा यथार्थ वचन कहदेवे तो भला है पर एक की वार्ता दूसरे से कहना अयोग्य है और कपट करके एक दूसरे को मित्र होय दिखावना भी बुरा है १४ बहुरि पन्द्रहवां विघ्न स्तुति है काहेसे कि एक स्तुति के कहने से षट् पाप और उपजते हैं सो दो पाप श्रोता को लगते हैं और चार पाप वक्ता को होते हैं सो वक्ता को प्रथम पाप यह होता कि जब अधिकार से अधिक किसी की स्तुति करताहै तब निस्संदेह झूठ होता है १ और दूसरा पाप यह कि जब प्रीति बिना किसी की स्तुति करताहै तब कपट होता है २ बहुरि तीसरा पाप यह कि जिसके गुण का ज्ञाता न होवे उसकी स्तुति करनी भी अयोग्य है जैसे कोई कहे कि अमुक पुरुष वैरागी है अथवा शुभकर्मी है पर जब उसके गुणों को पहिंचानता ही न होवे तब ऐसे कहना भी मिथ्यावाद होता है ३ बहुरि चौथा पाप यह कि जब किसी तामसी मनुष्य की स्तुति करे और वह अपनी स्तुति सुनकर प्रसन्न होवे और प्रसन्न होकर तमोगुण विषे दृढ़ होजावे तब यह भी प्रमाण नहीं इसी पर महापुरुष ने कहा है कि जब कोई तामसी पुरुष की स्तुति करता है तब उसके ऊपर भगवत् कोपवान् होताहै ४ बहुरि अपनी स्तुति सुननेवाले को दो पाप प्रसिद्ध होते हैं सो प्रथम यह है कि जब यह पुरुष अपनी स्तुति श्रवण करता है तब स्वाभाविकही अभिमानी होजाता है १ और दूसरा पाप यह है कि जब अपने गुणों और विद्या की बड़ाई सुनता है तब आगे शुभ करतूति से थकित होजाताहै और ऐसा जानता है कि मैं परमपद को प्राप्त हुआहूं

इसीपर महापुरुष ने कहाहै कि तीक्ष्ण शस्त्रकर प्रहार करना भला है पर सम्मुख होकर किसी की स्तुति करनी भली नहीं क्योंकि जब यह पुरुष अपनी महिमा सुनता है तब इसका मन इसको अपने स्थान से गिराय देता है पर जो बुद्धिमान् है सो आपको पहिंचाननेवाला होता है ताते जब वह अपनी स्तुति सुनता है तब अधिक अधीन चित्त होजाता है २ तात्पर्य यह कि जब कहने और सुननेवाला इन षट् पापों से रहित होवे तब स्तुति करनी भी प्रमाण होती है और अपने मुखसे अपनी स्तुति करनी तो महानीचता है और धर्मशास्त्र बिषे भी निन्द्य कही है ताते जिज्ञासु को चाहिये कि जब कोई इसकी स्तुति करे तब अपनी महिमा सुनकर अभिमानी न होवे और ऐसे जाने कि जब लग मैं परलोक के दुःख से मुक्त न होऊं तबलग शूकर और श्वान भी मुझ से भले हैं ताते चाहिये कि अपनी स्तुति सुनकर लज्जावान् होवे और अपनी नीचता को वर्णन करे इसीपर एक वार्ता है कि कोई पुरुष एक सन्त की स्तुति करनेलगा तब वह सन्त अधीनचित्त होकर भगवत् के आगे प्रार्थना करके कहने लगा कि हे महाराज ! यह पुरुष तो मुझको नहीं जानता और तू भली प्रकार सब कुछ जानता है ताते तूही मुझको क्षमाकर बहुरि एक और सन्त की किसी ने स्तुति करी थी तब वह सन्त कहने लगा कि हे महाराज ! यह जो मेरी बड़ाई करता है सो इसका दण्ड मुझको न देना और यह जो मेरे अवगुणों को नहीं जानता सो अवगुण भी तूही दूर कर और जैसा यह मुझको जानता है सो अपनी दया करके इससे विशेष मुझको कर बहुरि एक पुरुष ऐसा था कि उसके हृदय बिषे प्रीति प्रतीति कुछ न थी पर सम्मुख आकर एक सन्तजन की कपट सहित स्तुति करने लगा तब उस सन्त ने कहा कि जैसे तू मुख से कहता है तिस से हम अतिनीच हैं और जैसा तू हृदय बिषे जानता है तिससे हम निस्संदेह अधिक हैं ॥ ५ ॥

चौथा सर्ग ॥

क्रोध और ईर्षा और गांठि के वर्णन में ॥

ताते जान तू कि यह क्रोध भी महामलीन स्वभाव है और क्रोध का बीज अग्नि है पर यह क्रोधरूपी ऐसी अग्नि है कि केवल हृदय को जलानेवाली है और क्रोध करके ऐसी विक्षेपता उपजती है कि चित्त कभी शान्ति को प्राप्त नहीं

होता और सर्व करतूतों का फल शान्ति है इसी पर एक प्रीतिमान् ने महापुरुष से पूछाथा कि मैं भगवत्के क्रोधसे क्योंकर मुक्त होऊं तब उन्होंने कहा कि जब तू किसी पर क्रोधवान् न होवे तब तू महाराज के क्रोधसे मुक्त होवेगा बहुरि उस प्रीतिमान् ने पूछा कि मुझको कोई ऐसी करतूति बताओ जिस विषे क्रिया तो थोड़ी होवे और फल तिसका विशेष होवे तब उन्होंने कहा कि क्रोध से रहित होना ही अधिक फलदायक है और क्रिया इसकी थोड़ी है और महापुरुष ने योंभी कहा है कि जैसे शहद को खटाई गँवाय देती है तैसेही क्रोध करके धर्म नष्ट होजाता है तात्पर्य यह कि यद्यपि अत्यन्त निष्क्रोध होना कठिनहै तौभी जिज्ञासु को यह तो अवश्यही चाहिये कि यत्न करके क्रोधका सहारनाकरे और जिन पुरुषों ने क्रोध को धैर्य करके जीताहै तिनकी भगवत् ने भी प्रशंसा करी है और योंभी कहा है कि विचारकी मर्याद से रहित होकर क्रोध करना भी नरक का द्वारा है ताते अपने क्रोध को भक्षण करनाही सर्व आहारों से विशेष है बहुरि कई एक सन्तजनों ने मिलकर यही सिद्धान्त दृढ़ कियाहै कि क्रोधके समय धैर्यवान् होना और लोभके अवसर विषे संतोष करना सर्व करतूतोंसे विशेष है इसीपर एक वार्ताहै कि एक बड़े ऐश्वर्यवान् सन्त थे सो कोई दुष्ट आकर उनको दुर्वचन कहनेलगा पर वह अपना शीश नीचे करके मौन कररहे बहुरि उस दुष्टसे कहनेलगे कि तू हमको क्रोधवान् किया चाहता है और मनके छलविषे डारना चाहता है सो मैं तो ऐसा न करूंगा पर ऐसा जान तू कि भगवत्ने यह क्रोध भी इस निमित्त रचा है कि मनुष्य का शस्त्र होवेगा और इस शस्त्र करके शत्रुओं का नाश करेगा और शरीर की रक्षा विषे सावधान होवेगा जैसे भूख और प्यास इस निमित्त रची है कि जल और आहार को खैंचकर शरीर की पुष्टता होवे ताते प्रसिद्धहुआ कि चाह और क्रोध दोनों इस मनुष्य के शस्त्र हैं पर जब मर्यादसे अधिक बढ़तेहैं तब यह दोनोंही दुःखदायक होतेहैं ताते जब क्रोध-रूपी अग्नि हृदयविषे प्रबल होतीहै तब इसका धुवां सर्व शरीरविषे पसर जाता है बहुरि बुद्धि और विचार को अन्धकार करलेताहै ताते भलाई और बुराई को नहीं पहिंचानता इसीकारणसे कहाहै कि क्रोध बुद्धिका शत्रुहै और महामलीन स्वभाव यहीहै पर जब यह क्रोध मूलहीसे नष्ट होजावे तब कुसंग और अपकर्मों की ग्लानि दूर होजाती है ताते चाहिये कि यह क्रोध मर्यादही पर रहे अधिक

न होवे और अत्यन्त शून्य भी न होजावे और सर्वदा धर्म की मर्यादविषे वर्ते तो भलाहै तात्पर्य यह कि जैसे मैंने पीछे वर्णन कियाहै कि अत्यन्त निष्क्रोध होना भी कठिनहै पर तौभी केते अवसरों विषे ऐसा लीन होताहै कि जानाही नहीं जाता सो इसका बखान यहहै कि क्रोध का कारण मनोरथहै सो जब इसकी प्रियतम वस्तु को कोई लिया चाहता है तब शीघ्रही क्रोध उपज आता है और जिस पदार्थ विषे इसका मनोरथ कुछ नहीं होता तिसके दूरहोने विषे क्रोध भी नहीं उपजता बहुरि जबलग यह जीव देहाभिमानी है तबलग आहार और वस्त्र और स्थान के प्रयोजन से मुक्त नहीं होसकेता इसीकारण से जब कोई इन पदार्थोंको हरलेना चाहताहै तब निस्सन्देह इसको क्रोध उपजताहै ताते प्रसिद्ध हुआ कि प्रयोजनही बन्धनरूप है और प्रयोजन से रहित होनाही मुक्तरूप है इसीकारण से जब जिज्ञासु पुरुषार्थ करके पदार्थोंकी तृष्णा को घटावे और पुनः मानादिक की अभिलाष से रहित होवे तब क्रोध भी स्वाभाविकही घटजाता है जैसे कोई मानी पुरुष का सन्मान नहीं करता तब उसको अवश्यही क्रोध उपजता है और जब कोई निर्मान पुरुषके आगे होकर चले अथवा अधिक आदर न करे तौभी वह निष्क्रोधही रहता है सो यद्यपि लोगों की अवस्था विषे भेद बहुत होताहै तौभी धन और मान की अधिकता विषे क्रोध भी अधिक होताहै तात्पर्य यह कि पदार्थके वैराग्य और यत्न और अभ्यास करके क्रोधकी क्षीणता होजातीहै पर मूलही से नष्ट नहीं होता और जब क्रोध विचारकी मर्यादसे अधिक न होवे तब उसका दोषभी कुछ नहीं इसीपर महापुरुष ने कहाहै कि मैं भी और मनुष्यों की नाईं क्रोध करताहूं अथवा कुछ ताड़ना देताहूं तौ भी मेरे हृदय से दया दूर नहीं होती और वह क्रोध भी उसकी भलाई के निमित्त करताहूं और एक और सन्त ने भी कहाहै कि जब मैं क्रोधवान् होताहूं तब भी मेरी जिह्वा से यथार्थ वचन निकलताहै पर ऐसे जान तू कि कितने पुरुषों को ऐसी अवस्था भी होतीहै कि सर्व करतूतों का कर्ता भगवतही को देखते हैं तब इसकरके भी क्रोध क्षीण होजाताहै जैसे कोई इस पुरुषके पाथर मारे तब यह पाथरपर रञ्चकमात्र भी क्रोधवान् नहीं होता और उस दुःखका कारण पाथर को नहीं जानता अथवा जब राजा किसी पुरुषके मारनेके निमित्त चिट्ठी लिख देवे तब उस पुरुषको कलम पर क्रोध कुछ नहीं उपजता क्योंकि कलम को राजा के हाथमें पराधीन देखता

है तैसेही जिन पुरुषोंने भगवत् के सामर्थ्यको निश्चय जानाहै तब वे सर्वजीवों को पराधीन देखते हैं और सबका प्रेरक भगवत् को जानते हैं ताते किसीपर क्रोध नहीं करते इस करके कि यद्यपि कर्म का कारण बल है और बल का कारण श्रद्धा है पर इस मनुष्य की श्रद्धा इसके अधीन नहीं वह श्रद्धा भगवत् की प्रेरणा करके उपजती है इसी कारण से सन्तजनों ने कहाहै कि यह मनुष्य भी पत्थर और कलम की नाईं पराधीन है और यद्यपि कर्मकरता यह मनुष्यही दृष्टिआता है तौ भी आप करके समर्थ कुछ नहीं सो जिन पुरुषों की ऐसी समझ दृढ़ हुई है तब वे किसीपर रोष नहीं करते और क्रोधवान् भी नहीं होते और यद्यपि दुःख करके दुःखी भी होते हैं तौ भी उनको क्रोध नहीं उपजता क्योंकि दुःख और है और क्रोध और है जैसे अचानक ही किसीका पशु मरजावे तब शोक करके वह दुःखी तो होताहै पर किसी पर क्रोध नहीं करता पर इस प्रकार सर्व जीवों को पराधीन देखना और सर्वदा ऐसी समझ बिषे स्थितरहना महादुर्लभ है क्योंकि यद्यपि कभी बिजली की नाईं इस अवस्थाका चमत्कार होताहै तौ भी स्थूलता की प्रबलता करके बहुरि विक्षेप होजाताहै पर जब ऐसी अवस्था को प्राप्त न होवे तौ भी कितने जिज्ञासुओं का अभ्यास परमार्थ बिषे ऐसा दृढ़ होताहै कि उनको कदाचित् क्रोध नहीं फुरता जैसे एक सन्त को किसी ने दुर्वचन कहा था तब उन्होंने इस प्रकार कहा कि जो मैं परलोक के दुःख से निवृत्तहुआ तब तो तेरे कहने का भय कुछ नहीं और जब मैं परलोक बिषे दुःख को प्राप्तहुआ तौ तेरे कहनेसे भी अधिक नीच हूं तब तेरे कहने का क्या संशय है? बहुरि एक और सन्त को किसी ने दुर्वचन कहा था तब उसने कहा कि मेरे परमसुख बिषे कितनी ही कठिन घांटियां हैं और मैं उनसे उल्लङ्घित हुआ चाहता हूं सो जब मैं उन घांटियों से उल्लङ्घित हुआ तो तेरे कहने का मुझको भय कुछ नहीं और जब मैं उनसे उल्लङ्घित न हुआ तब जैसा तू मुझको कहता है सो इससे भी मैं अधिक नीचहूं बहुरि एक और सन्त को कोई दुर्वचन कहता भया तब उन्होंने कहा कि हे भाई! जितने हमारे अवगुण हैं सो तेरे जानने से अतिगुह्य हैं और असंख्य हैं तात्पर्य यह कि जिज्ञासु वैराग्य और अभ्यास बिषे ऐसे लीन हुये हैं कि उनको क्रोध की चिन्तवनी ही कुछ नहीं रही जैसे एक प्रीतिमान् से किसी स्त्री ने कहा था कि तू बड़ा कपटी है तब वह कहने लगा कि तैंने

मुझको भलीप्रकार पहिंचाना है वहुरि एक और प्रीतिमान् को किसीने दुर्वचन कहा था तब वह कहनेलगा कि जो तू सत्य कहता है तो यह अवज्ञा भगवत् हमको क्षमाकरे और जब तू झूंठ कहताहै तब मुझको भगवत् बख्श लेवे ताते प्रसिद्ध हुआ कि इतने उपाय करके क्रोध जीता जाता है और जब किसी पुरुष को ऐसी दृढ़ता होवे कि क्रोध से रहित होने को भगवत् प्रियतम रखता है तब वह भी भगवत् की प्रसन्नता के निमित्त क्रोध से रहित होताहै जैसे किसी मनुष्य का कोई प्रियतम होवे और उस प्रियतमका पिता अथवा पुत्र उसको दण्ड करे और प्रेमी वह मनुष्य ऐसा जाने कि मेरा प्रियतमही मुझको ताड़ना कराता हैं तब उसको प्रीति की अधिकता करके ताड़ना का दुःखही कुछ नहीं भासता और रञ्चकमात्र भी क्रोधवान् नहीं होता ताते जिज्ञासु को चाहिये कि किसी ऐसेही कार्य बिषे लीन होकर क्रोध से रहित होवे और जब ऐसा पुरुषार्थ न हो सके तौ भी चाहिये कि क्रोध की प्रवलता को क्षीणकरे अर्थ यह कि यद्यपि क्रोध को मूलही से नष्ट न करसके तौ भी यत्न करके बुद्धि और सन्तजनों की मर्याद से उल्लङ्घित न होने देवे क्योंकि यह क्रोधही निस्सन्देह बहुत जीवों को नरकगामी करताहै और अनेक विघ्नों का कारण है तातें इसको जीतने का उपाय करना अवश्यही प्रमाण हैं पर इसका उपाय भी दो प्रकार कहा है सो एक तो ऐसा उत्तम है कि क्रोध को नखशिख पर्यन्त दूर करके हृदय को शुद्ध करदेता है और दूसरा उपाय मध्यम है सो यत्न करके क्रोध को निर्बल करताहै पर उत्तम उपाय यह है कि प्रथम क्रोध के कारण को विचारे और उसको मूलहीसे उखाड़ डाले सो क्रोधके कारण पांच हैं प्रथम कारण अभिमान है कि अभिमानीपुरुष किञ्चितही वचन और निरादर करके क्रोधवान् होजाता है ताते इसका उपाय दीनता है क्योंकि सबही जीव भगवत् के उत्पन्न किये हुये हैं और एक समान हैं और जो किसी को विशेष कहाजाता है तो शुभगुणों करके विशेषता होती है सो अभिमान करना महामलिन स्वभाव है और नीचता का कारण है १ बहुरि दूसरा कारण क्रोध का यह है कि हास्यरस से भी क्रोध उपजता है सो इसका उपाय यह है कि जिज्ञासु सर्वदा परलोक के कार्य बिषे स्थित होवे और शुभगुणों के पाने का विचार राखे और वाद विवाद हास्य से विरक्त रहे और आपको ऐसे समझावे कि जब कोई किसी को इसलोक बिषे हँसता है तब परलोक बिषे उस

को भी लज्जित करते हैं २ बहुरि तीसरा कारण यह है कि जब कोई इसकी निन्दा करता है अथवा इस पर कुछ दोष रखता है तौभी दोनों ओर से क्रोध उपजता है सो इसका उपाय यह है कि आपको निर्दोष न जाने और इसप्रकार समझे कि मैं तो अवगुणों करके भरपूर हूं ताते किसी पर क्रोधवान् क्यों होता हूं और यद्यपि मेरे बिषे अवगुण कोई नहीं तब किसीकी निन्दा का मुझ को संशय क्या है ३ बहुरि चौथा कारण क्रोध का तृष्णा और ईर्षा है क्योंकि क्रोधी मनुष्य से जब कोई एक दाम हरलेता है अथवा मांगता है तौ भी क्रोधवान् होताहै और जब कोई लोभी पुरुष को एक कौड़ी न देवे तौभी दुःखको प्राप्त होता है सो यह सबही मलिन स्वभाव हैं और इसका उपाय यह है कि तृष्णा के विघ्न को पहिंचाने कि तृष्णावान् पुरुष इस लोक बिषे भी दुःखी रहता है और परलोक बिषे भी बड़े दुःखों को भोगता है ताते चाहिये कि तृष्णा को हृदय से दूर करे और ऐसे मलिनस्वभावों के साथ विरुद्ध करके आत्मधर्म बिषे सावधान होवे ४ बहुरि पांचवां कारण यह है कि क्रोधवानों की संगति से भी क्रोध उपजता है और वह मनुष्य ऐसे मूर्ख होते हैं कि क्रोध की अधिकता को अपना पुरुषार्थ समझते हैं और इस प्रकार कहते हैं कि हमने ताड़ना करके अमुक पुरुष को जीतलिया और अमुक सन्त ने एकही शाप करके अमुक मनुष्य को भस्म करडाला उसका धन और गृह सबही नष्ट करदिया बहुरि ऐसे कहते हैं कि बलवान् पुरुषों का लक्षण यही है कि जो उनके सम्मुख बोलता है तिसका नाश होताहै पर ऐसे कहनेवाले मनुष्य महामूर्ख हैं कि जिस क्रोध को सन्तजनों ने कूकुरों का स्वभाव कहाहै सो तिसको पुरुषार्थ और बड़ाई जानते हैं और सहनशीलता जो महापुरुषों का लक्षण है तिसको बलहीनता कहते हैं सो यह मलिन मन की प्रकृति है कि बुराई को छल करके सुन्दरकर दिखाताहै और शुभ गुणों को कुरूप कर दिखाताहै पर जो बुद्धिमान् पुरुष है सो निस्संदेह इस प्रकार समझाता है कि जब क्रोधहीं का नाम पुरुषार्थ होता तब स्त्रियां और रोगी और वृद्ध पुरुषों को तो अधिक क्रोध होताहै ताते जगत् बिषे इन्हीं की विशेषता होती तात्पर्य यह कि अपने क्रोध को जीतनाही पुरुषार्थ है और महापुरुषों का लक्षण भी यही है बहुरि क्रोधवान् पुरुष जङ्गली मनुष्योंकी नाईं हैं अर्थात् यद्यपि देखने में मनुष्य भासते हैं तौभी सिंह और व्याघ्रों

का स्वरूप हैं ताते तू विचार करके देख कि महापुरुषों के लक्षण का नाम पुरुषार्थ है कि पशुओं और मूर्खों के स्वभाव का नाम पुरुषार्थ है ५ पर यह जो उपाय मैंने पञ्च कारण निवारणवाला वर्णन किया है सो यह उत्तम उपाय है क्योंकि इस करके क्रोध मूलही से नष्ट होता है और अधम उपाय यह है कि इस करके क्रोधरूपी कुरोग कुछ बलहीन होजाता है पर मूलही से दूर नहीं होता सो यह उपाय भी बूझरूपी मिठाई और हठरूपी कटुता के मिलाप करके औषध जो बनाई जावे तिस करके होता है क्योंकि सबही भले स्वभाव बूझ और करतूति की एकत्रता करके होते हैं पर बूझ यह है कि जितने वचन क्रोध की निन्दा और सहनशीलता की विशेषता विषे आये हैं सो बारम्बार उनका विचार करे और आपको इस प्रकार समझावे कि जैसे तू प्रबल होकर अनाथ पर क्रोध करता है सो इससे अधिक भगवत् तेरे ऊपर प्रबल है ताते जब तू किसी के ऊपर क्रोध करेगा तब तेरे ऊपर भगवंत् भी क्रोधवान् होवेगा इसी पर एक वार्ता है कि महापुरुष के टहलुवे ने कुछ अवज्ञा करी थी तब महापुरुष ने उससे कहा कि जो परलोक का भय न होता तो तुझको ताड़ना करता बहुरि इस प्रकार समझे कि मैं इस निमित्त क्रोधवान् होताहूं कि जो भगवत् की इच्छानुसार कार्य हुआ है और मेरी इच्छानुसार नहीं हुआ सो यह तो महाराज के साथ विरुद्ध होता है पर जब ऐसी बूझ करके भी क्रोध का बल क्षीण न होवे तब इसी संसार के प्रयोजन को विचारे और इस प्रकार क्रोध को खण्डन करे कि जब मैं किसी पर क्रोध करूंगा तब वह भी मेरे साथ विरुद्ध किया चाहेगा और अपने शत्रु को अल्प जानना न चाहिये और क्रोध के समय जो मनुष्यों का स्वरूप कूकुर की नाईं होजाता है सो तिस भयानक आकारको स्मरणकरें ताते चाहिये कि ऐसे मलिनस्वभाव को त्यागकर क्षमा और धैर्य जो सन्तजनों के स्वभाव और लक्षण हैं तिनको ग्रहणकरे और जगत् के मान को त्यागकर महाराज ही की प्रसन्नता को चाहे सो इस प्रकार आपको समझावना ही परम बूझ है और क्रोध के जीतने का उपाय है पर करतूति करके इस प्रकार उपाय होत है कि जब क्रोध की अधिकता देखे तब मुख से ऐसा कहे कि हे भगवन्! इस क्रोधरूप दुष्ट से मेरी रक्षाकर बहुरि जो क्रोध की प्रबलता के समय खड़ा होवे तो बैठजावे और जब आगेही बैठा होवे तब शयन कर रहे अथवा शीतल

जल से स्नान करलेवे तब स्वाभाविक ही क्रोध का बल क्षीण होजाताहै इसी पर महापुरुप ने भी कहा है कि जब इस मनुष्य पर क्रोध प्रबल होवे तब चाहिये कि महाराज को दण्डवत् करे और अपने मस्तक को धरती पर राखे बहुरि इस प्रकार विचार करे कि मैं धरतीही से उत्पन्न हुआहूं ताते मुझ को क्रोध करना प्रमाण नहीं तात्पर्य यह कि जब कोई इसको दुखावे अथवा दुर्वचन कहे तब प्रथम तो क्षमाकरनी विशेप है और जब देखे कि अवश्यही कुछ कहनेही का अवसर है तब थोड़ाही उत्तर देवे और यद्यपि कठोर वचन कहे तौभी झूठ न बोले पर जिज्ञासु को इस प्रकार प्रमाण नहीं कि दुर्वचन के उत्तर आपभी दुर्वचन कहे और निन्दा करनेवाले की आप भी निन्दा करे सो यह सहनशीलता नहीं होती इसी पर एक वार्त्ता है कि एक प्रीतिमान् को कोई दुष्ट दुर्वचन कहता था और महापुरुप भी पास बैठेहुये थे बहुरि जब वह प्रीतिमान् उस दुष्ट से कुछ बोलनेलगा तब महापुरुप उठ खड़ेहुये बहुरि उस प्रीतिमान् ने पूछा कि हेस्वामीजी! जब वह दुष्ट मुझ को दुर्वचन कहता था तब तो आप बैठे रहे और जब मैं बोलनेलगा तब किस निमित्त उठ चले तब महापुरुप ने कहा कि जबलग तू मौनकर रहा था तब लग तेरे निमित्त देवता उसको उत्तर देतेथे और जब तू बोलनेलगा तब क्रोधरूपी असुर आवता भया ताते असुरोंकी संगति का त्यागना प्रमाण है बहुरि महापुरुप ने यों भी कहा है कि मनुष्यों की अवस्था भगवत् ने भिन्न २ रची है इसीकारण से केते मनुष्य चिरकाल करके क्रोधवान् होते हैं और चिरकाल करकेही प्रसन्न होते हैं और केते पुरुप शीघ्रही क्रोधवान् होते हैं और शीघ्रही प्रसन्न होजाते हैं सो महाउत्तम जन हैं पर ऐसे जान तू कि जब क्रोध को विचार और धैर्य करके लीन करलेवे तो यह तो महाविशेप है और जब यह पुरुप किसी संयोग अथवा अपनी निर्बलता करके क्रोध न करे और हृदय विपे क्षोभवान् रहे तब इस करके चित्तविपे क्रोध की गांठ पड़जाती है सो यह महानिन्द्य है इसीपर महापुरुप ने कहा है कि जिज्ञासु जन हृदय विपे क्रोध की गांठ नहीं रखते ताते प्रसिद्ध हुआ कि यह गांठ भी क्रोधकी सन्तान है और इस क्षोभ की गांठ के आठ पुत्र और हैं सो सब धर्म के नाशक हैं सो प्रथम ईर्षा है जो अपने शत्रु का सुख देखकर तपायमान होता है १ और दूसरा वैरभाव है कि जब अपने शत्रु को कोई दुःख देवे तब प्रसन्न होकर उस दुःख का बखान

करता है २ बहुरि तीसरा यह है कि क्रोध करके उसके साथ राम राम भी नहीं करता ३ और चौथा यह है कि अपने शत्रु को ग्लानि सहित देखता है ४ और पांचवां उसको दुर्वचन बोलता है ५ और छठवां उसके छिद्र को लोगों में प्रसिद्ध करता है ६ और सातवां उसका घात चेतता है ७ और आठवां उसके किसी कार्य विषे सहायता नहीं करता और यद्यपि उसका ऋणी होवे तौ भी दीठता करके विमुख रहता है पर जब कोई ऐसा ही बुद्धिमान् होवे कि स्थूल विकारोंसे आपको बचाय राखे तौभी शत्रुपर उपकार करना तो महाकठिन होता है बहुरि भाव, मिलाप, सहायता और उसकी भलाई का वर्णन नहीं करसक्ता ८ सो यह सबही स्वभाव चित्त को मलिन करनेवाले हैं इसीपर एक वार्त्ता है कि एक मनुष्य महापुरुष की रसोई करनेवाला था सो महापुरुष की स्त्री को दुर्वचन कहताभया बहुरि महापुरुष की स्त्री के पिता उस रसोइयां के खानपान वस्त्रादिक की सुधि लेते थे सो जब उन्होंने सुना कि मेरी पुत्री को इसने दुर्वचन कहा है तब क्रोध संयुक्त महाराज की दुहाई देकर कहनेलगे कि फिर मैं तेरी जीविका की सुधि न लेऊँगा सो जब महापुरुष ने यह वार्त्ता सुनी तब कहनेलगे कि मुझ को भगवत् ने इस प्रकार आज्ञा करी है कि जब कोई तुम्हारी अवज्ञा करे तब तुम क्षमाकरो और दुहाई करके इस प्रकार न कहो कि बहुरि मैं इसके साथ भलाई न करूंगा तात्पर्य यह कि जिसके ऊपर इस पुरुष का चित्त क्षोभवान् होवे तब चाहिये कि प्रथम तो हठ और धैर्यकर क्रोध को निवारे अथवा उसके साथ भाव और भलाई को बढ़ावे सो यह उत्तम पुरुषों की अवस्था है और जब शत्रु के साथ भलाई न करसके तब इतना तो अवश्यही चाहिये कि शत्रुको किसी प्रकार दुखावे नहीं सो यह मध्यम पुरुषों की अवस्था है और बुरे के साथ बुराई करनी यह तो संसारी जीवों का कर्म है और महानीच अवस्था है ताते प्रसिद्ध हुआ कि बुरेके साथ भलाई करनी विशेष है और महाउत्तम करतूति है और जब ऐसा न होसके तब क्षमा करनी विशेष है इसी पर महापुरुष ने भगवत् की दुहाई देकर कहा है कि दान देने करके धनकी क्षीणता कदाचित् नहीं होती और पराई आशा करनेवाले पुरुष को अवश्यही निर्धनता प्राप्त होती है और क्षमा करनेवाले पुरुष के ऊपर महाराज भी निस्सन्देह क्षमा करते हैं बहुरि महापुरुष की स्त्री ने भी कहाहै कि मैंने महापुरुष को अपने निमित्त दण्ड करतेहुये

कदाचित् नहीं देखा पर जब केवल धर्महीका प्रयोजन होता था तब ताड़नाभी करते थे बहुरि यों भी कहा है कि मैंने लोक परलोक विषे उत्तम करतूति यही देखा है कि वैरीके साथ भावकरना और दुःख देनेवाले को सुखदेना और महाराज ने कहा है कि जो मेरे भय करके बलके होतेहुये किसीकी अवज्ञा को क्षमा करते हैं सो सर्वदा मेरे निकटवर्त्ती हैं और मुझको अधिक प्रिय लगते हैं इसी पर एक वार्त्ता है कि एक सन्तकी सामग्री किसी ने चुरायली थी तब वह सन्त रुदन करनेलगा बहुरि लोगोंने पूछा कि तुम धनके निमित्त रोतेहो तब उसने कहा कि मुझको धनका शोक तो कुछ नहीं पर मैं इस निमित्त रोताहूं कि जब परलोक में उस अनाथ चोर को पकड़कर दण्ड करेंगे तब वह बिचारा क्या उत्तर देवेगा ? ताते मैं दयाकर रोताहूं बहुरि महात्मा दाऊद को आकाशवाणी हुई थी कि जब यह पुरुष अपने शत्रुकी अवज्ञा को क्षमा करताहै और वैरभाव से दूरहोता है तब इसके सर्वविघ्न नष्ट होजाते हैं ताते चाहिये कि जब क्रोध उपजने लगे तब शीतल चित्त होरहे और दुःख देनेवाले पुरुष पर भी उपकार करे तब क्रोधही निर्बल होजाताहै इसीपर महापुरुष ने अपनी स्त्रीसे कहाथा कि जिसको भगवत् ने भाव और दया का लक्षण दिया है सो लोक और परलोक के सुखको भोगता है और जो पुरुष भाग्यहीन है वह लोक और परलोक के सुख से अप्राप्त रहताहै (अथ प्रकट करना ईर्षा के विघ्नों का) ताते जान तू कि क्रोधसे गांठ उत्पन्न होती है और क्रोधही की गांठ से ईर्षा उपजती है सो ईर्षा भी जीव के धर्म को नाश करनेवाली है इसी पर महापुरुष ने कहा है कि जैसे लकड़ियों को अग्नि भस्म करडालती है तैसेही ईर्षा शुभ करतूतों को जलादेती है बहुरि योंभी कहा है कि दोषदृष्टि और ईर्षा से मुक्तहोना इस पुरुष को महाकठिन है पर इसका उपाय यह है कि जब किसी पर दोषदृष्टि उपजे तब उसके छिद्र को ढूंढ़ न करिये और जिसके साथ कुछ ईर्षा उपजने लगे तब रसना और हाथोंको अपकर्मों से बचाय रखिये बहुरि महापुरुष ने अपने प्रियतमों से इस प्रकार कहा है कि अब मैं तुम्हारे बिषे ईर्षा की अधिकता देखता हूं सो ईर्षा करके आगे भी बहुत मनुष्यों का नाश हुआ है ताते मैं भगवत् की दुहाई देकर कहता हूं कि जबलग इस मनुष्य का धर्म दृढ़ नहीं होता तबलग आत्मसुख को नहीं पावता और जबलग सर्व मनुष्यों के साथ भाव और प्रीति नहीं रखता तबलग इसका धर्मही

दृढ़ नहीं होता इसीपर महाराज ने कहाहै कि ईर्षा करनेवाला पुरुष ऐसा विमुख है कि जिसको मैं कुछ देताहूं सो तिसका शत्रु होताहै और जिस प्रकार जीवों की प्रारब्ध मैंने रची है सो तिसको भला नहीं जानता और महापुरुष ने भी कहा है कि षट्प्रकार के पुरुष सृष्टिस्वभाव करके स्वाभाविकही नरक विषे चले जावेंगे सो राजा अधर्म करके १ और सिपाहीलोग कठोरता करके २ और धन-वान् अभिमान करके ३ और व्यवहारी लोग छल करके ४ और जङ्गलीलोग मूर्खता करके ५ और विद्यावान् ईर्षा करके नरकगामी होवेंगे ६ बहुरि एक सन्त ने कहा है कि मैं किसी की ईर्षा नहीं करता क्योंकि जब मैं परलोक विषे सुख को प्राप्त हुआ तब यह स्थूल सुख किंचिन्मात्र है जो इसकी ईर्षा करूं और जब मुझको नरकगामी होना है तब संसार के सुखों को भोगकर कबलग सुखी होऊंगा (अथ प्रकट करना रूप ईर्षा का) ऐसा जान तू कि जब किसी मनुष्य को सुख प्राप्तहोवे और उसके सुख को देखकर तपायमान होवे और उसके सुख को नाश हुआ चाहे तब इसही का नाम ईर्षा है सो यह महामलिन स्वभावहै क्योंकि भगवत् की आज्ञा के साथ विरुद्ध होता है और यह बड़ी मूर्खता है कि तुझको कुछ लाभ न होवे और दूसरे की हानि चाहे सो यह हृदय की मलि-नता का लक्षण है पर जब तू किसीका सुख देखकर अप्रसन्न होवे और उसीके समान हुआ चाहे तब इसका नाम अभिलाषा कहते हैं सो यह अभिलाषा जो धर्मकार्यों विषे होवे तब निस्सन्देह सुख का कारण है और जब भोगों के नि-मित्त होवे तब यह भी अपवित्रहै इसी पर महापुरुष ने कहा है कि जिज्ञासु को ईर्षा करनी अयोग्य है पर इस प्रकार प्रमाण है कि जब किसी सात्त्विकी मनुष्य को शुभ करतूति विषे वर्तते देखे अथवा किसी को उदारता सहित देखे तब ऐसे चाहे कि मैं भी किसी प्रकार इसकी नाईं होऊं सो यद्यपि यह पुरुष निर्द्धन है तौभी सात्त्विकी श्रद्धा करके धनवान् की उदारता के फल को पाता है ऐसाही जब कोई धनवान् अपने धन को पापों विषे लगाता होवे और कोई निर्द्धन उसको देखकर इस प्रकार चाहे कि जो मेरे पास धन होता तौ मैंभी ऐसाही भोग भोगता सो ऐसी मंशाकरके दोनों समान पापी होते हैं तात्पर्य यह है कि किसी की सम्पदा और सुख को देखकर ग्लानि करनी प्रमाण नहीं पर जब कोई अ-धर्मी राजा होवे अथवा कोई दुराचारी होवे और उसके सुख को देखकर दोषदृष्टि

आवे तो प्रमाण है काहे से कि उसकी सामर्थ्य के नाश होने करके पापों का नाश होता है सो इसका लक्षण यह है कि जब वह अधर्मी राजा अथवा वह दुराचारी उस पाप का त्याग करे तब उसकी सम्पदा को देखकर प्रसन्न होवे और दोषदृष्टि न राखे तब जानिये कि यह ईर्षा नहीं और यद्यपि यह ईर्षा ऐसी है कि स्वाभाविक ही इस मनुष्य के हृदय बिषे आन फुरती है और अपने बल करके इससे दूर नहीं होसक्ती पर जब यह पुरुष उस ईर्षा के संकल्प को महामलिन जाने और भयवान् रहे तब उस सूक्ष्म संकल्प करके ऐसा पाप नहीं लगता पर जब ऐसा साक्षीरूप होवे कि जो इसके शत्रु का सुख दुःख इसही के हाथ होवे तौभी उसको सुख से अप्राप्त न राखे (अथ प्रकट करना उपाय ईर्षा का) ताते जान तू कि ईर्षा भी एक दीर्घरोग है और इस रोग करके केवल हृदय ही को दुःख होता है ताते इसका उपाय भी बूझ और करतूति के सम्बन्ध करके होसक्ता है सो बूझ यह है कि ईर्षा करके लोक और परलोक बिषे अपनी हानि को जाने पर इस लोक बिषे इस प्रकार हानि होती है कि ईर्षा करनेवाला पुरुष सर्वदा चिन्तावान् रहता है और दुःखी रहता है और यद्यपि अपने मन बिषे शत्रु का दुःख चितवता है तौभी प्रथम तो आपही चिन्ता करके जलने लगता है ताते प्रसिद्ध हुआ कि यह ईर्षा महादुःखरूप है और महामूर्खता है क्योंकि अपने ही क्रोध करके आपको जलाता है और शत्रु की हानि कुछ नहीं करसक्ता इस करके कि सब किसी का सुख दुःख महाराज की आज्ञा के अधीन है और जिस प्रकार भगवत् ने उस सुख की मिति राखी है सो इसके संकल्प करके न बढ़ती है न घटती है ताते प्रसिद्ध हुआ कि ईर्षा करनेवाले मनुष्य को इसी लोक बिषे ईर्षा दुःख देती है बहुरि परलोक बिषे इस प्रकार दुःखदायक है कि ईर्षा करनेवाला पुरुष भगवत् की आज्ञा से विरोध करता है और भगवत् ने जो पूर्णज्ञान के साथ जीवों की प्रारब्ध रची है तिससे विमुख होता है ताते ईर्षा करके महाराज की प्रतीति से हीन होता है बहुरि सर्व जीवों का भी बुरा चितवता है इसीकारण से सन्तजनों ने कहा है कि ईर्षा करनी मनमुखता है और जब विचार करके देखिये तब जिसकी ईर्षा करता है सो तिसको यह लाभ होता है कि उसकी ईर्षा करनेवाला शत्रु इसीलोक बिषे पड़ा जलता है और उसकी हानि कुछ नहीं होती बहुरि जिसकी तू ईर्षा करता है तिसको

धर्म का लाभ इस प्रकार होता है कि उसने तो तुझ को नहीं दुखाया और तू उसका दुःख चितवता है ताते तेरे शुभकर्मों का फल उसी को होवेगा और उसके पापों का फल तुझ को भोगना पड़ेगा ताते जब तू विचार करके देखे तब तू इस प्रकार जाने कि तू जो उसके लौकिक सुख का नाश चाहता है सो तेरे चितवने करके उसके लौकिक सुख भी दूर नहीं होते और तेरी ईर्षा के सम्बन्ध करके उसको परलोक बिषे भी सुख अधिक होता है और तू इसलोक बिषे भी दुःखी रहता है और परलोक के दुःखों का बीज बोता है ताते तू अपने चित्त बिषे जानता है कि मैं अपना मित्र हूं और उसका शत्रु हूं पर जब भली प्रकार देखे तब उसका मित्र है और अपना शत्रु है ताते तू अपने आपही को बड़ा दुःखी करता है और परलोक के सुख से भी अप्राप्त रहता है और जो पुरुष किसी की सम्पदा और सुख को देखकर ईर्षा नहीं करते और प्रसन्न होते हैं सो यहां भी सुखी हैं और परलोक बिषे भी सुखी होवेंगे इसी पर महापुरुष ने कहा है कि उत्तम पुरुष वही है जो किसी को शुभ उपदेश दृढ़ावे अथवा विद्यावानों से उपदेश सुनकर अङ्गीकार करे अथवा उनको प्रियतम राखे सो ईर्षा करनेवाला इन तीनों गुणों से अप्राप्त रहता है ताते ईर्षा करनेवाले का दृष्टान्त यह है कि जैसे कोई अपने शत्रु को पत्थर मारे पर इसका शत्रु तो उस पत्थर की चोट से बचजावे और वह पत्थर उलटकर इसी के नेत्र में लगे ताते इसका नेत्र अन्ध होजावे बहुरि अधिक क्रोध करके और पत्थर उसको मारे तब उसके लौटकर लगने से इसका दूसरा नेत्र भी अन्ध होजावे बहुरि और पत्थर मारे तब उस करके भी इसी का शीश फूटै सो ऐसेही बारंबार आपको घायल करता रहै और वह शत्रु इसको देखकर हँसता रहै तैसेही ईर्षा करनेवाला पुरुष अपने आपही को दुःखी करता है और शत्रु की हानि कुछ नहीं करसक्ता बहुरि जब हाथों और वचन करके शत्रु को दुखावे और उसकी निन्दाकरे तब वह तो अधिक दुःखकारी होता है पर बूझ का उपाय जो मैंने कहा था सो यही है कि जिसने ईर्षा को हलाहल विष की नाईं जाना है वह अवश्यही तिसका त्याग करता है बहुरि करतूति करके इस प्रकार उपाय होता है कि जिस सम्बन्ध करके ईर्षा उपजती है तिसको यत्न करके अपने हृदय से दूरकरे सो ईर्षा का बीज अभिमान और वैरभाव और मानकी प्रीति है ताते चाहिये कि जिज्ञासु ऐसे मलिनस्वभावों को मूलही से

दूरकरे तब ईर्षा का बीजही नष्ट होजावे बहुरि एक यह भी उपाय है कि जब ईर्षा करके किसी की निन्दा किया चाहे तब उसकी स्तुतिकरे और जब उसकी हानि किया चाहे तब सहायता करे और जब अभिमान का अंकुर उपजने लगे तब दीनता को अङ्गीकार करे सो यह भी उत्तम उपाय है कि जिसके साथ कुछ वैरभाव होवे तब सब प्रकार उसकी भलाई वर्णनकरे तो स्वाभाविकही ईर्षा दूर होजाती है पर यह मन ऐसा शत्रु है कि जब यह पुरुष सहनशीलता करता है तब मन इस प्रकार कहने लगता है कि जब तू सहनशील होवेगा तब तेरा शत्रु तुझको निर्बल जानेगा इसीकारण से कहा है कि यद्यपि मनके स्वभाव को विपर्यय करना उत्तम उपायहै पर अतिकठिन है अर्थात् इस विषे धैर्य करना अति कठिनहै पर जब जिज्ञासुकी बुद्धि विषे ऐसा बल दृढ़होवे कि ईर्षा और क्रोधको लोक और परलोकका दुःख जाने और इनको त्यागकरके परमसुखकी प्राप्ति देखे तब वह यत्न विनाही इस औषध को अङ्गीकार करता है काहे से कि यद्यपि सब औषधें कटु और कसैली होती हैं तौभी बुद्धिमान् पुरुष कटुता के निमित्त औषध का त्याग नहीं करते और जो रोगी मूर्खता करके कटुता के निमित्त औषध को त्याग देवे तब वह शीघ्रही मृत्युको प्राप्तहोता है बहुरि ऐसा जान तू कि यह मनुष्य अपने यत्न करके शत्रु और मित्र को समान नहीं करसक्ता काहेसे कि यह जीव है और पराधीन है पर तो भी इसको इतना अवश्यही चाहिये कि जो मन से ईर्षा और क्रोध को दूर न करसके तो वचन और कर्म करके तो वैरभाव न करे और बुद्धि विषे भी इस स्वभाव को मलिन जाने बहुरि इस प्रकार चाहे कि जो यह मलिन स्वभाव मेरे हृदय से दूर होवे तो भला है जब जिज्ञासुजन ऐसे पुरुषार्थ को प्राप्त होवे तब जानिये कि मनके संकल्प करके इसको कछुक पकड़ न होवेगी क्योंकि इसकी श्रद्धा विषे मलिनता कुछ नहीं और जीवत्व करके अकस्मात् कुछेक संकल्प फुर आताहै सो वहभी विचार के बल करके दूर होजावेगा पर केते पुरुष इस प्रकार कहतेहैं कि यद्यपि हृदय विषे ईर्षा की बुराई न जाने पर जब वचन और कर्म करके वैरभाव न करे तब मनके संकल्पों करके इसको परलोक में पकड़ कुछ नहीं होती सो यह अयोग्यहै क्योंकि यह ईर्षा तो मनही का कर्म है सो जब यह किसी का सुख देखकर तपायमान होवे और दुःख देखकर प्रसन्न होवे तब इससे अधिक पाप क्या है? ताते इस पाप से तबहीं छूटे जब इस स्वभाव को

मलिन जाने और सर्व प्रकार इससे मुक्त हुआ चाहे तब मंशा करके वह मलिन संकल्प दूर होजाता है पर शत्रु और मित्र की सम्पूर्ण समानता तबहीं होती है जब इस पुरुष को एकता की अवस्था प्राप्त होजावे अर्थ यह कि सर्व जीवों को पराधीन देखे और सर्व कर्मोंका कर्ता भगवत्‌ही को जाने सो यह अवस्था महादुर्लभ है और यद्यपि किसी समय विषे बिजलीवत् चमत्कार दिखावी है तौभी सर्वदा स्थिर नहीं रहती और जिन्हों ने ऐसे परमपद विषे स्थिति पाई है वे भी विरले ही सन्तजन हैं॥

पांचवां सर्ग॥

माया की प्रीति और तृष्णा की निषेधता के वर्णन में॥

ताते जान तू कि यह माया सर्व विघ्नों का मूल है और इसकी प्रीति सर्व पापों का बीज है बहुरि यह माया कैसी है ? कि भगवत् के प्रियतमों की वैरिनि है और जो महाराज से विमुख हैं तिनकी भी शत्रु है पर भगवत् के प्रियतमों की इस प्रकार वैरिनि है कि उनके प्रति आपको सुन्दर कर दिखाती है और नाना प्रकार के छलोंको पसारती है इसी कारण से वे जिज्ञासु वैराग्य और इसके त्यागने विषे यत्न करते रहते हैं और आपको बचाया चाहते हैं बहुरि भगवत् विमुखों की शत्रु इस प्रकार है कि प्रथम तो उनको अपने ऊपर रिझावती है और जब अधिकप्रमाद करके मोहित होते हैं तब उनको भी त्याग जाती है और दुराचारिणी स्त्री की नाईं घर २ भटकती फिरती है और अपने प्रियतमों को सर्वदा दुःख देती है बहुरि जब इसके साथ प्रीति करनेवाले मनुष्य परलोक विषे जाते हैं तब महाराज के कोप को देखते हैं ताते जिस बुद्धिमान् ने इसके छलों को भली प्रकार समझकर इसका त्याग किया है वह इसके विघ्नों से छूटता है इसीपर महापुरुष ने भी कहाहै कि यह माया महाछलरूपा है और भगवत् ने जो सन्तजनों को संसारविषे भेजा है और नाना प्रकार के शास्त्र और वचन उत्पन्न किये हैं सो तिनका प्रयोजन यही है कि जीवों को माया की प्रीति से विवर्जित करें और इसके छलों और विघ्नों को प्रसिद्ध करके दिखावें तब यह जीव माया से विरक्तचित्त होकर परलोकमार्ग के यत्न विषे सावधान होवें इसी पर एक वार्ता है कि एक समय महापुरुष अपने प्रियतमों सहित चले जातेथे तब एक मृतक पशु को देखा और कहने लगे कि मैं भगवत् की दुहाई करके कहताहूं कि जैसे यह मृतक

पशु ऐसा कुचील है कि इसकी ओर कोई देखताही नहीं तैसे यह माया सन्तजनों के आगे इससेभी अधिक कुचील है क्योंकि जो भगवत् के दरबार बिषे इस माया को कुछभी विशेषता होती तो मनुष्यों को रञ्चकमात्र भी न मिलती बहुरि महापुरुष ने कहाहै कि इस माया को धिक्कार है और इसकी जो सामग्री हैं तिनको भी धिक्कार है और एक वही पदार्थ धिक्कार से रहितहै जो केवल भजनही के निमित्त अङ्गीकार करिये बहुरि योंभी कहाहै कि जिसने माया को अपना प्रियतम किया है वह परलोक से विमुख हुआ है और जिसने परलोक के सुखों को प्रियतम किया है वह माया के भोगों से विरस होता है ताते चाहिये कि नाशवन्त पदार्थों का त्यागकरो और सत्यस्वरूप की प्रीतिविषे सावधान होवो बहुरि एक प्रीतिमान् ने कहा है कि एकबार एक सन्त ने जल मांगा था तब लोगों ने उनको कटोरा आनदिया सो जब पानकरनेलगे तब ऐसा रुदन किया कि उनको देखकर सबही लोग रुदन करनेलगे और कोई पूछ न सके कि तुम क्यों रोतेहो ? बहुरि जब मौनकरी तब प्रियतमों ने पूछा कि तुम्हारे रुदन का कारण कौन था तब उन्हों ने कहा कि एक बार महापुरुष ध्यान में बैठे थे और हाथों करके किसी को हटाते थे पर मुझको कुछ दृष्टि न आया तब मैंने पूछा कि तुम किसको हटाते थे तब उन्होंने कहा कि यह माया बारंबार मेरे पास आती है और मैं उसको दूर करता हूं पर यह माया इस प्रकार कहती है कि तुमतो मेरे छलों से बचेहो पर जो तुम्हारे पीछे होवेंगे वह आपको बचा न सकेंगे ताते इस शरबत को देखकर डरा हूं इस निमित्त कि मत मुझको छलने के निमित्त यह माया यही रूप धार कर आय मिली होवे तब मैं क्या करूंगा ? बहुरि महापुरुष ने योंभी कहा है कि यह माया निघरा घर है और निर्द्धना धन है ताते प्रीति करके मूर्खही इसको हर्ष से संचय करते हैं और इसको प्राप्त वही करते हैं जो विद्याहीन हैं और इस के निमित्त यत्न वही करते हैं जो धर्म से रहित हैं ताते जो पुरुष प्रभात समय उठकर मायाही के कार्यों बिषे दृढ़ होता है वह भगवत् से बिमुख है और मायाधारी जीवों बिषे ४ लक्षण अवश्य ही होते हैं सो प्रथम तो उसकी चिन्ता कदाचित् दूर नहीं होती १ और दूसरे जञ्जालों बिषे ऐसा आसक्त रहता है कि कदाचित् मुक्त नहीं होता २ और तीसरे सर्वदा अतृप्त रहताहै ३ चौथे उस की आशा कदाचित् पूर्ण नहीं होती ४ इसी पर अबूहरेरा सन्त ने कहाहै कि

एक बार मुझसे महापुरुष ने कहा कि तू माया की सम्पूर्णता को देखा चाहता है इतना कहकर मुझको कुचील ठौर विषे लेगये सो तहां पशुओं और मनुष्यों के अस्थि पड़ेथे और विष्ठा और पुरातन वस्त्रों के टुकड़े भी पड़ेहुये थे तब उन को देखकर कहनेलगे कि हे भाई। यह जो मनुष्यों के शीश देखतेहो सो तुम्हारी नाईं यहभी तृष्णा और ईर्षा करके पूर्ण थे सो अब इनके हाड़ों पर त्वचा भी न रही और शीघ्रही भस्म होजावेंगे और वह नाना प्रकार के व्यञ्जन जो मीठे लगते थे और यत्न करके प्राप्त होतेथे सो अब सबही विष्ठा का रूप हुये हैं बहुरि अनेक भांति के वस्त्र सबही पुरातन होकर भस्म होतेजाते हैं बहुरि जिन घोड़ों और हाथियों पर सवार होकर फिरते थे सो तिनके भी हाड़ही शेष रहगये हैं सो माया का सम्पूर्ण आदि अन्त यही है बहुरि यों भी कहाहै कि परलोकविषे केते पुरुष जप तप करनेवाले भी नरकगामी होवेंगे क्योंकि जब माया के पदार्थों को देखते थे तब अधिक तृष्णा करके अङ्गीकार करते थे बहुरि एकबार महापुरुष अपने प्रियतमों से कहनेलगे कि आपको अन्ध करनेवाला पुरुष कौन है ताते जो पुरुष माया की तृष्णा करता है सो आपको अन्ध किया चाहता है और जो पुरुष माया से विरक्त होता है और आशा तृष्णा को घटाता है तब उसके हृदयविषे भगवत् अनुभव की विद्या प्रकटावता है और पढ़े विनाही उसकी बुद्धि उज्ज्वल होती है और यथार्थ के मार्ग को प्रकट देखता है और महापुरुष ने यों भी कहा है कि माया के पदार्थों का स्मरण भी न करो सो जिस माया की वार्ता करनी ही अयोग्य हुई तब उसके साथ प्रीति करनी और उसकी उत्पत्ति के निमित्त यत्न करना कैसे प्रमाण होवे इसी पर महात्मा ईसा महापुरुष ने कहा है कि माया को अपना स्वामी न बनावो तब तुमको यह माया अपना दास न करे अर्थ यह कि माया के साथ अधिक प्रीति न करो तब इसके जञ्जाल विषे बद्धयमान न होवोगे बहुरि उस पदार्थ को संचो कि जिसके संचनेविषे तुमको कदाचित् भय न होवे और यों भी कहा है कि यह माया और परलोक ऐसे हैं जैसे एक पुरुषके दो स्त्री होवें अर्थ यह कि जब एक प्रसन्न होती है तब दूसरी दुःखित होती है तैसेही जब यह पुरुष माया विषे सावधान होता है तब परलोक से विमुख होताहै और जब परलोकके मार्ग विषे सावधान हुआ चाहताहै तब माया के साथ विरोध करताहै बहुरि अपने प्रियतमों से योंभी

कहाहै कि मैं तुम्हारे देखतेही इस माया को धरती पर डालताहूं ताते तुमभी इस को अङ्गीकार न करो क्योंकि प्रथम तो यह माया ऐसी है कि सब पाप इसकी प्रीति करके होते हैं बहुरि जबलग इसका त्याग न करिये तबलग परलोक के सुखों को पाय नहीं सक्ना ताते इस माया की प्रीति से बाहर निकलो और इस के कार्यों की सम्पूर्णता बिषे दृढ़ न होवो बहुरि ऐसे जानो कि सर्व पापों का मूल माया की प्रीति है और सर्व भोगों का फल शोक और दुःख है बहुरि जैसे जल और अग्नि का मिलाप नहीं होता तैसेही भगवद्भक्ति और मायाकी प्रीति किसी प्रकार इकट्ठी नहीं होती इसीकारण से सन्तजन माया से विरक्त हुये हैं बहुरि एक वार्ता है कि एक दिन बिषे बहुत मेघ और बिजली का चमत्कार होता भया तब ईसाजी मेघकी रक्षाके निमित्त स्थान को ढूंढ़नेलगे सो तहां एक तम्बू को देखा पर जब तम्बूबिषे जाय प्राप्तहुये तब वहां एक सुन्दर स्त्री देखी बहुरि वहां से तुरन्तही निकल कर पहाड़ की कन्दरा बिषे गये तब आगे एक सिंह बैठाहुआ देखा तब भगवत् के आगे प्रार्थना करनेलगे कि हे महाराज! तैंने सब किसीको विश्राम का स्थान दिया है एक केवल मेराही स्थान कोई नहीं तब आकाशवाणी हुई कि हे ईसा! मैंने तुझको कुसंगसे बचाया है ताते तेरा विश्रामस्थल मेरी दया है इसीपर एक और वार्ता है कि जब सुलेमानजी महापुरुष का ऐश्वर्य अधिक हुआ और सब पशु मनुष्य देवता परी उनकी आज्ञा मानने लगे तब किसी तपस्वी ने उनसे कहा कि तुमको भगवत् ने बड़ा ऐश्वर्य दिया है तब उन्होंने कहा कि मेरे ऐश्वर्य से एकबार श्रीरामनाम लेना विशेष है काहे से कि महाराज के नाम का उच्चारण स्थिर रहेगा और मेरा ऐश्वर्य सब ही नष्ट होजावैगा बहुरि एक और वार्ताहै कि नूहनामी महात्मा की आयुष् सहस्र वर्ष की हुई है सो जब परलोक बिषे गये तब देवताओं ने पूछा कि तुमने इतनी आयुर्बल में संसार को किस प्रकार देखा है? तब उन्होंने कहा कि जैसे सराय के एक दरवाजे बिषे होकर अन्दर चलेजावें और दूसरे द्वारसे निकलजावें सो मैंने इतनी आयुर्बल बिषे जगत् का जीवना ऐसेही देखाहै बहुरि ईसा महापुरुष से लोगों ने पूछा कि जिस करके हम भगवत् के प्रियतम होवें सो वह लक्षण कौन है? तब उन्होंने कहा कि जब तुम माया के प्रियतम न होवो तब स्वाभाविकही भगवत्के प्रियतम होवोगे सो माया के निषेध बिषे सन्तजनों के ऐसेही वचन

बहुत हैं जैसे एक नामी सन्त ने कहा है कि जिन पुरुषों ने इन षट्भेदों को जाना है वह स्वाभाविकही नरकों से मुक्त होवेंगे और परम सुखको पावेंगे सो प्रथम तो जिसने भगवत को पहिंचाना है भलीप्रकार वह निस्सन्देह उसके भजन विषे सावधान होता है १ और जिसने मनको छलरूप जाना है वह निस्सन्देह मनके साथ विरुद्धही करताहै और उसकी आज्ञा नहीं मानता २ बहुरि जिसने सत्य को इस प्रकार समझा है कि यथार्थ वस्तु यही है वह सांचेही पदार्थ को अङ्गीकार करता है ३ और जिसने झूंठ को झूंठही पहिंचाना है वह सहजही उसका त्याग करता है ४ बहुरि जिसने मायाके आदि अन्तको भलीभांति देखा है वह स्वाभाविकही इसके सुखों को विरस जानता है और विरक्त होताहै ५ और जिसने परलोक के सुखकी अधिकता विचार देखी है वह सर्वदा परलोकमार्ग के यत्न विषेही स्थित होताहै ६ इसीपर एक बुद्धिमान् ने कहाहै कि जो माया का पदार्थ तुझको प्राप्त होताहै सो तुझसे आगेभी किसीको प्राप्त हुआ है और तुझ से पीछे भी किसी और के पास जावेगा ताते ऐसे पदार्थ को पायकर प्रसन्न क्यों होताहै क्योंकि इस संसार विषे खान पानआदिकसे अधिक तेरा कार्यही कुछ नहीं ताते इस खानपान के निमित्त तू अपना नाश क्यों करता ? हे प्यारे ! तुझ को इस प्रकार चाहिये कि मायाके सर्वभोगोंसे व्रत राखेरहे तब परलोक में जाकर अनन्त सुखों की प्राप्ति करके उस व्रत का पारना होवे क्योंकि इस संसार के सुखों की पूंजी वासना और तृष्णा है और लाभ इसका कुंभीपाक नरक है बहुरि एक सन्त से किसी जिज्ञासु ने कहाथा कि मेरे हृदय से माया की अभिलाष दूर नहीं होती ताते मैं कौन उपाय करूं तब उस सन्त ने कहा कि प्रथम तो माया की उत्पत्ति धर्म सहित कर बहुरि शुभ अर्थ उसको खर्च कर तब इस प्रकार स्वाभाविकही माया की प्रीति नष्ट होजावेगी सो यह उपाय उन्होंने इस निमित्त कहा था कि धर्म सहित धनकी उत्पत्ति और शुभ अर्थ खर्चने करके सहजही विरक्त चित्त होजाता है इसीपर एक सन्त ने कहा है कि, जब माटी का बासन स्थिर रहनेवाला होवे और स्वर्ण का बासन शीघ्रही नष्ट होनेवाला होवे तब बुद्धिमान् को चाहिये कि स्थिरता के विचार से माटी के बासन को ही अङ्गीकार करे और नश्वर स्वर्ण को त्यागदेवे पर यह माया तौ माटी की नाईं है और क्षण २ विषे परिणाम को पाती है बहुरि परलोक का सुख स्वर्ण की नाईं निर्मल और

अविनाशी है तातें जब परलोकके अविनाशी सुखों को त्यागकर मायाके क्षण-भंगुर भोगों को अङ्गीकार करिये तब बड़ी मूर्खता है इसी पर एक और सन्तने कहाहै कि इस मायाके छलसे भय करो क्योंकि परलोक विषे मायाकी प्रीति करने वालों को इस प्रकार कहेंगे कि जिस माया के भोगों को निन्द्य कहाहै सो यह पुरुष उसहीके प्रियतम हैं और एक मसऊदनामी सन्तने कहाहै कि इस संसार विषे सबही मनुष्य परदेशी हैं और जितनी माया की सामग्री है सो सब पराई है तातें परदेशी को अवश्यही चलना होवेगा और सब सामग्री यहांहीं रहजावेगी बहुरि लुकमानने अपने पुत्र से कहा है कि जब तू मायाके सुखको त्यागकर पर-लोक के सुखको अङ्गीकार करेगा तब लोक और परलोक का सुख तुझको प्राप्त होवेगा और जब मायाके निमित्त परलोक का त्याग करेगा तब दोनों लोकों विषे तेरी हानि होवेगी इसीकारण से फुजैलनामी सन्तने कहाहै कि जब मायाके सर्व सुख पापसे रहित मुझको प्राप्त होवें और परलोक विषे कुछ उसका दण्ड देना भी न पड़े तौभी मुझको स्थूल भोगों से लज्जा आती है जैसें तुम मृतक पशु से अरुचि रखते हो इसीपर हसनबसरी सन्त ने उमर अब्दुलअज़ीज़ को पाती लिखा था कि काल को आया देखो क्योंकि जिसके मस्तक पर मरना लिखा है सो अवश्यही आवेगा तब उन्होंने उत्तर में लिखा कि हमको तो अन्तकाल का दिनही सर्वदा दृष्टि आता है और यह संसार अनहुआही भासता है बहुरि इस प्रकार भी सन्तजनों ने कहा है ये मनुष्य मरने को भी सत्य जानते हैं और फिर प्रसन्न होते हैं सो यह बड़ा आश्चर्य है बहुरि जो पुरुष नरक को सत्य जानता है और संसार में हँसता भी है सो यह भी बड़ा आश्चर्य है बहुरि यह भी बड़ा आश्चर्य है कि यह मनुष्य माया की सामग्री के परिणाम को सदाही देखता है और इसी को विशेष जानकर बध्यमान भी होता है बहुरि जो पुरुष भगवत् को सबका प्रतिपालक जानता है और फिर जीविका की चिन्ता विषे चिन्तित रहता है सो यह भी बड़ा आश्चर्य है ऐसेही एक और सन्त ने भी कहा है कि इस संसार विषे ऐसा निर्विघ्न पदार्थ कोई नहीं जिस करके प्रथम प्रसन्न हूजिये और पीछे शोक न आवे तात्पर्य यह कि दुःख से रहित निर्मल सुख इस संसार विषे नहीं उत्पन्न हुआ इसी पर हसनबसरी ने कहा है कि इस मनुष्य को अन्तकाल विषे तीन पश्चात्ताप अवश्यही होते हैं सो प्रथम यह

कि जिस माया को यत्न करके बटोरा था तिसको भली प्रकार भोग न लिया १ बहुरि दूसरा यह कि मन के मनोरथ सबही पूर्ण न हुए २ और तीसरा यह कि परलोकमार्ग का तोशा न बनालिया ३ इसी पर इब्राहीम अदहम नामी सन्त ने किसीसे पूछा था कि तू स्वप्न के पैसे को प्रियतम रखता है कि जाग्रत् की मोहर को विशेष जानता है तब उसने कहा कि मैं जाग्रत् की मोहर को अधिक प्रियतम रखता हूं बहुरि इब्राहीम कहनेलगे कि तू झूठ कहता है क्योंकि यह माया स्वप्न का पैसा है और परलोक का सुख जाग्रत् की मोहरहै सो माया ही के साथ तेरी अधिक प्रीति है ताते तू झूठ बोलता है बहुरि एक और सन्त ने कहा है कि बुद्धिमान् पुरुष वही है जो माया के त्यागने से आगेही माया का त्याग करे और मृत्यु के आगेही मृतक होरहे बहुरि परलोक विषे जाने से आगेही परलोक का तोशा बनालेवे बहुरि यों भी कहा है कि इस माया की अभिलाषही भगवत् से अचेत करडालती है तब इसके प्राप्त होने की मलिनता क्या वर्णन करिये? बहुरि एक और सन्त ने कहा है कि जो पुरुष माया के भोगों को कर तृप्त हुआ चाहे तब इसका दृष्टान्त यह है कि जैसे कोई लकड़ियां डालकर अग्नि को बुझाया चाहे तब निस्सन्देह मूर्ख कहाता है तैसेही माया के साथ सन्तुष्ट होना असम्भव है इसीपर अलीनामी सन्त ने कहा है कि सर्व स्थूलभोगों का सार यह षट्भोग हैं खाना १ पीना २ पहरना ३ सूंघना ४ सवारी ५ स्त्रियों का सङ्ग ६ सो यह सब इस प्रकार मलिन हैं कि प्रथम सर्व रसों में मधु श्रेष्ठ है सो वह माखी का थूक है १ और सर्व पान करने के पदार्थों में जल विशेष है सो सब किसीको समान प्राप्त होता है २ बहुरि पहरना रेशम का अति कोमल है सो वह भी कीड़ों की लार से उपजता है ३ और सर्व सुगन्धियों में उत्तम कस्तूरी है सो मृगों का रुधिर है ४ बहुरि स्त्रियादिक भोग तो प्रसिद्ध ही मलिन हैं ५ और घोड़ोंपर चढ़ना ऐसा है जैसे अङ्गों को चीरकर स्थित करिये ६ बहुरि एक और सन्त ने कहा है कि हे मनुष्यो! तुम को भगवत् ने परमपद की प्राप्ति के निमित्त उत्पन्न किया है सो जब यह प्रतीतिही तुमको दृढ़ नहीं तब निस्सन्देह मनमुख हो और जब प्रतीति भी रखते हो और अचेतता करके निडर होरहेहो तब निसन्देह मूर्ख होते हो (अथ प्रकट करना अर्थ माया की मलिनता का) ताते जान तू कि महापुरुष ने कहा

है कि यह माया महानिन्द्य है और इसकी सर्व सामग्री भी निन्द्य है पर वही पदार्थ निन्द्य नहीं जो केवल भगवत्‌ही के निमित्त अङ्गीकार करिये ताते इस भेद को अवश्यही पहिंचानना चाहिये कि इस माया बिषे निन्द्य क्या है ? और ग्राह्य क्या है ? तात्पर्य यह कि सबही पदार्थ तीन प्रकार के हैं सो एक तो केवल मायारूप हैं जैसे पाप और भोग अर्थ यह कि जबलग यह पुरुष इन का त्याग न करे तबलग निर्मल कदाचित् नहीं होता क्योंकि अचेतता और प्रमादता का कारण इन्द्रियादिक भोग और तमोगुणी कर्म हैं १ बहुरि दूसरे ऐसे पदार्थ हैं जो देखनेमात्र भगवत् के निमित्त भासते हैं पर सकामता करके वह भी मायारूप कहाते हैं जैसे जप व तप व भोगों का त्याग ये तीनों परलोक बिषे भी सुख देनेवाले हैं पर जब इस पुरुष की मंशा निष्काम होवे और जब हृदय बिषे मान आदिकों का प्रयोजन होवे तब यह क्रिया स्थूल भोगों से भी निन्द्य है क्योंकि कपट और पाखण्ड इसीका नाम है २ बहुरि तीसरा प्रकार यह है कि देखनेबिषे मनका भोग भासता है और अन्तर से परमार्थ का प्रयोजन होता है सो ऐसे पदार्थों को निन्द्य नहीं कहाजाता जैसे शरीर के निर्वाह-मात्र आहार करना अथवा शुद्ध जीविका उत्पन्न करनी सो मंशा की निष्का-मता करके यह सबही कर्म निर्मल होजाते हैं इसी पर महापुरुष ने कहाहै कि जो मनुष्य अपने भोगों के निमित्त धन को संचय करता है वह परलोक बिषे अपने ऊपर भगवत्‌को क्रोधवान् देखेगा पर जब इस निमित्त व्यवहार करे कि इतने उद्यम करके लोगों से बेमुहताज होऊँगा और अचिन्त्य होकर भजनबिषे सावधान होऊंगा तब परलोक बिषे इसका मस्तक पौर्णमासी के चन्द्रमा के स-मान उज्ज्वल होवेगा तात्पर्य यह कि वासना के भोगों का नाम माया है जिस बिषे परलोकमार्गका सम्बन्ध कुछ न होवे पर जिस क्रिया बिषे परमार्थ की मंशा होवे तब उसको मायामात्र नहीं कहते जैसे तीर्थयात्री तीर्थों के मार्ग बिषे घास और जल करके अपनी सवारी के घोड़े और ऊंटकी खबर लेता है तौभी उसकी यह क्रिया तीर्थयात्रा के निमित्त होती है इसी पर महाराज ने भी कहा है कि मन की वासना का नाम माया है ताते जो पुरुष अपनी वासना से वि-रक्त हुआ है वह माया से विरक्त कहाता है इस करके यह प्रसिद्ध हुआ कि सर्व सामग्री तीन प्रकार की होती हैं सो एक तो आहार दूसरा वस्त्र तीसरा स्थान

है सो शरीरकार्य को निर्वाह करने योग्यहै और जब इस पुरुष की मंशा निष्काम होवे तब इतनी सामग्री करके बन्धवान् नहीं होता १ और दूसरे नाना प्रकार के इन्द्रियादिक भोग हैं सो इन करके कदाचित् तृप्ति नहीं होती और परलोक के मार्ग विषे भी इनका सम्बन्ध कुछ नहीं ताते जिस पुरुष ने प्राणों की रक्षा के निमित्त सामग्री को अङ्गीकार कियाहै वह निस्सन्देह मुक्तरूप है और जो मनुष्य इन्द्रियादिक भोगों विषे पसरा है सो परम नरकों को प्राप्त होवेगा २ बहुरि तीसरा प्रकार यह है कि शरीर के निर्वाहमात्र और इन्द्रियादिक भोगों के मध्यभाव विषे स्थित होना सो विचार की सूक्ष्मदृष्टि कर देखसक्नाहै अन्यथा नहीं जानाजाता पर उसका देखना यह है जिस पदार्थ की इसको अत्यन्त अपेक्षा न होवे और यह पुरुष अपने मन विषे ऐसा जाने कि यह पदार्थ मुझको अवश्यही चाहिये है ताते अङ्गीकार करलेवों तब निस्संदेह परलोक के दण्ड का अधिकारी होता है इसी कारण से जिज्ञासु जनों ने अपने शरीर को यत्न विषे राखा है और स्थूल सामग्री को अल्पही अङ्गीकार किया है तब मनकी वासनासे मुक्त हुये हैं पर सर्व वैरागियों के मुखिया आवेश करनी नामी सन्त हुये हैं उन्हों ने सो अपने आपको इस प्रकार संसार से विरक्त किया है कि सब लोग उनको बावरा जानते थे और वह प्रभातसमय नगर से बाहर निकल जाते थे और प्रहर रात्रि व्यतीत हुये बहुरि आते थे और बेर और खजूरों के फल जो स्वाभाविकही गिरपड़ते थे सो तिनको चुनकर आहार करते थे और कुछ भगवत्अर्थ देते थे बहुरि गलियों के चीथड़े चुनकर धोते थे और उसही की गुदड़ी बनाकर ऊपर ओढ़ते थे सो उनकी ऐसी अवस्था देखकर लोगों को बावरे भासते थे और जब बालक उनको पाथर मारते थे तब वह कहते थे कि मेरे छोटे छोटे पाथर मारो क्योंकि घायल होकर भजन से रहित होजाऊंगा इसी कारण से महापुरुष ने यद्यपि उनको स्थूल नेत्रों करके देखा न था तौभी सर्वदा उनकी प्रशंसा करते थे बहुरि उमर और अलीनामी अपने प्रियतमों को महापुरुष ने आज्ञा दी कि तुम आवेशकरनी के दर्शन को जाना और मेरे गले का जामा उनको पहुँचाना कि उनकी अशीष और प्रार्थना करके मेरी संप्रदाय के अनन्त मनुष्यों को भगवत् मुक्त करेंगे बहुरि आवेशकरनी की अवस्था का चिह्न भी उनको बतादिया सो जब महापुरुष का शरीर छूटा तब उमर और अली उनके

दर्शन को गये और उपदेश के निकट जाकर पूछनेलगे कि करनदेश का कोई पुरुष यहां है तब एक पुरुष ने कहा कि मैं करननगर का वासी हूं बहुरि उससे पूछा कि तू आवेशकरनी को जानता है तब उसने कहा कि हां मैं जानता हूं पर वह तुम्हारे पूछने का अधिकारी तो नहीं क्योंकि वह तो महा बावरासा है और किसीके साथ मिलाप भी नहीं रखता सो जब उमर ने यह बात सुनी तब रोनेलगे और कहनेलगे कि हम उसही को ढूंढ़ते हैं इस करके हमने महापुरुष के मुख से सुना है कि उनकी दया करके असंख्य जीवों का उद्धार होवेगा इसी पर हरमनामी सन्त ने कहाहै कि मैं भी आवेशकरनी की महिमा सुनकर एक वार उनके दर्शन को गया था तब वह करन नगर विषे नदीपर स्नान करते थे तब मैंने उनको अचानकही पहिंचान कर दण्डवत् किया और उनकी अवस्था देखकर मेरा चित्त बहुत कोमल हुआ तब वह मुझसे इसप्रकार पूछनेलगे कि हे हसन के पुत्र, हरम ! तुम कुशल सहित हो और यहां क्योंकर आयेहो ? तब मैंने कहा कि तुमने मिले बिनाही मुझको और मेरे पिता को क्योंकर पहिंचाना तब उन्होंने कहा कि मुझको भगवत् ने लखाया है और प्रीतिमानों के हृदय शरीर के मिलाप बिनाही एक दूसरे को पाहिंचान लेते हैं बहुरि मैंने अधीन होकर कहा कि मुझको महापुरुष की कुछ वार्ता सुनावो तब इसप्रकार कहनेलगे कि मैं तो उनका दास हूं और इस शरीर करके मैंने उनको देखाही नहीं बहुरि मैं अपने चित्त के अभ्यास विषे परचा हूं ताते मुझको पण्डितों की नाईं कहने सुनने की इच्छाभी नहीं बहुरि मैंने कहा कि तुमहीं मुझको कुछ उपदेश करो तब मेरा हाथ पकड़कर कहनेलगे कि इस मनरूपी असुरसे भगवत् ही रक्षा करे इतना कहकर रोनेलगे बहुरि ऐसा कहा कि बड़े २ आश्चर्यरूप सन्त और महापुरुष सबही मृत्यु को प्राप्त हुये हैं ताते हम और तुम भी मृतकरूपही हैं पर उत्तम यही है कि सन्तजनों के मार्ग को अङ्गीकार करो और एक क्षण भी मरने के भयसे अचेत न होवो और अन्य लोगोंको भी यथार्थवचन कहो बहुरि कदाचित् भी साधुसंगति का त्याग न करो क्योंकि सन्तों के संग विना अपने धर्म से भ्रष्ट होजावोगे और जान भी न सकोगे सो ऐसे कहकर चलदिये और मुझको अपने साथ ठहरने न दिया तात्पर्य यह कि जिन्होंने माया के छलों को पहिंचाना है सो तिनके ऐसे लक्षण हुये हैं और जिज्ञासुजनों का मार्ग

यही है पर जब तू ऐसे पदको प्राप्त न होसके तब इतना तो अवश्य कर कि शरीर के निर्वाहमात्र से अधिक भोगोंके विषे लम्पट न हो ताते दुःखों से मुक्त रहे॥

छठवां सर्ग॥

धन की तृष्णा और कृपणता के निषेध और उपाय के वर्णनमें॥

ताते जान तू कि इस मायारूपी वृक्ष की शाखा बहुत हैं सो एक शाखा इस की धन और सम्पदा है बहुरि मान और बड़ाईभी इसी की शाखा हैं ऐसीही और भी अनेक शाखा हैं पर यह धन बहुत विघ्नों का कारण है इसीपर महापुरुष ने भी कहाहै कि इस धनरूपी घाटी से उतरना कठिन है क्योंकि शरीरव्यवहार के साथ भी इसका सम्बन्ध है और परलोक मार्ग का तोशाभी यही धन होता है अर्थ यह कि आहार और वस्त्र और स्थान की प्राप्ति भी इसही करके होती है ताते शरीर के निर्वाहमात्र इसका उत्पन्न करना अवश्यही चाहिये और जब धनकी उत्पत्ति न करिये तब केवल निर्द्धनता विषे धैर्य नहीं होसक्ता बहुरि जब धन की प्राप्ति होती है तब नाना प्रकार के भोगोंविषे आसक्त होजाता है सो यह भी अनेक पापों का बीज है पर निर्द्धन पुरुषों की भी दो अवस्था होती हैं सो एक तृष्णावान् हैं और एक सन्तोषी होते हैं बहुरि तृष्णावान् पुरुषों की भी दो अवस्था हैं कि एक मनुष्यधन की उत्पत्ति के निमित्त व्यवहार करलेते हैं और एक और पुरुषों की आशा रखते हैं पर और पुरुषों की आशा करने से व्यवहार करना विशेष है तैसेही धनवानों की भी दो अवस्था हैं सो एक कृपणता है और एक उदारता है पर उदारता भी दो प्रकार की होती हैं सो एक उदारता विचार के अनुसार है और एक उदारता मर्याद से रहित है ताते विचार के अनुसार उदारता विशेष है और दूसरी निन्द्य है पर यह परस्पर मिलीहुई हैं और इनका पहिंचानना महाकठिन है तात्पर्य यह कि धन करके अनेक विघ्न भी होते हैं और पुण्यकर्मों का बीज भी यही है ताते अवश्यही चाहिये कि यह पुरुष धनके विघ्नों और लाभों को पहिंचाने और पहिंचानकर भली प्रकार विघ्नों का त्याग करे और लाभ को अङ्गीकार करे (अथ प्रकट करनी निषेधता धनकी प्रीति की) इसीपर महाराज ने कहा है कि जिसको धन और संतान आदिकों की प्राप्ति होती है वह निस्सन्देह भजन से विमुख होता है बहुरि महापुरुषने भी कहा है कि जैसे जल करके वनस्पति और तृणादिक शीघ्रही उत्पन्न होते हैं तैसेही धन करके भी

शीघ्रही हृदय विषे कपट उपज आवता है बहुरि महापुरुष से किसी ने पूछाथा कि सर्व सृष्टि विषे नीच मनुष्य कौन है तब उन्होंने कहा कि धनके साथ प्रीति करनेवाले अतिनीच हैं क्योंकि नाना प्रकार के रसों को भोगते हैं और अनेकभांति के सुन्दर वस्त्र पहिरते हैं और स्त्रियादिकों के रूप के साथ बन्धवान् होते हैं और बड़े २ घोड़ों और हाथियों पर आरूढ़ हुआ चाहते हैं ताते उनकी आशा कदाचित् पूर्ण नहीं होती और सर्वथा माया की सामग्री विषे आसक्त रहते हैं ताते मायाही को भगवत् की नाईं पूजते हैं और जो कुछ किया करते हैं सो मायाही के निमित्त करते हैं इसीकारण से मैं तुमको उपदेश करताहूं कि ऐसे मनुष्यों के साथ कदाचित मिलाप मत करो बहुरि महापुरुष ने यों भी कहाहै कि यह माया सबही मायाधारियों को अर्पणकरदो क्योंकि जो पुरुष माया के सुख शरीर के निर्वाह से अधिक अङ्गीकार करताहै वह उसके नाश का हेतुहै और वह जानता भी नहीं और योंभी कहाहै कि यह अज्ञानी मनुष्य सर्वदा योंही कहते हैं कि यह धन मेराहै और सम्पदा मेरी है पर इतना नहीं जानते कि शरीर के आहार और नग्नता के ढांकने से अधिक मेरा क्याहै? ताते इसका अपना धन वही है जो किसी को भगवत् अर्थ देवे तब वह धन परलोक विषे इसका संगी होता है सर्वदा इसी पर किसी ने महापुरुष से पूछा था कि मेरे पास परलोक का तोशा कुछ नहीं ताते मैं क्या यत्न करूं? तब महापुरुष ने कहा कि जब कुछ धन का संग्रह रखनाहोवे तब भगवत् अर्थ दे क्योंकि भगवत् अर्थ देना इसका सदा संगी होता है और यों भी कहा है कि इस मनुष्य के ३ मित्र हैं सो एक मित्रता जीवने से उपरान्त कुछ नहीं रहती १ दूसरे मित्र श्मशान पर्यन्त संगी होते हैं २ और तीसरे मित्र परलोक पर्यन्त निर्वाह करते हैं ३ अर्थ यह कि जितनी धनकी सामग्री है तिसकी मित्रता जीवने पर्यन्त है और जितने सम्बन्धी लोग हैं सो शरीर को श्मशान तक पहुँचाते हैं बहुरि इस मनुष्य के जो कर्म हैं सो परलोक पर्यन्त संगी होते हैं और जब यह मनुष्य मृत्यु होजाता है तब और लोग कहने लगते हैं कि इसकी सामग्री पीछे क्या रही है? और देवता इस प्रकार कहते हैं कि इसने आगे क्या कुछ भेजा है? इसी पर ईसा महात्मा के संगियों ने पूछा था कि तुम जलपर किस करके सूखेही चलेजातेहो और हमारे विषे ऐसी सामर्थ्य क्यों नहीं है तब उन्होंने कहा कि मैं रुपये और स्वर्ण को

माटी की नाईं जानता हूं और तुम इसको उत्तम पदार्थ समझते हो ताते मेरी और तुम्हारी अवस्था विषे इतनाही भेद है इसी पर एक वार्त्ता है कि अबूदरदा नामी सन्त को किसी भगवत् विमुख ने दुखाया था तब वे कहनेलगे कि हे महाराज! तू इसको अरोगता और बड़ी आयुष् और बहुत धन दे तात्पर्य यह कि उन्होंने यह सबही दुःख के कारण समझलिये थे क्योंकि जिसको ऐसी सम्पदा प्राप्त होती है तब वह प्रमाद करके परलोक से अचेत होजाता है और उसकी बुद्धि नष्टता को पाती है इसी पर हसनबसरी ने कहा है कि जिस मनुष्य ने रूपे और स्वर्ण को अधिक प्रियतम किया है उसको परलोक विषे भगवत् लज्जावान् करता है और यहियानामी सन्त ने कहा है कि यह सोना और चांदी बिच्छू और सांपों की नाईं है ताते जबलग इसका मन्त्र न जानो तबलग इन का स्पर्श न करो और जब मन्त्र सीखे बिना इनपर हाथ डालोगे तब निस्संदेह उनके विष करके मृत्युहोवोगे सो मन्त्र इसका यह है कि प्रथम धनकी उत्पत्ति पाप से रहित होवे और धर्म के मार्ग विषे दियाजावे बहुरि जब एक सन्त का शरीर छूटनेलगा तब उनसे एक प्रीतिमान् ने कहा कि तुमने अपनी सन्तान के निमित्त कुछ धन नहीं राखा सो इस वार्त्ता का कारण क्या है? तब उन्होंने कहा कि मेरे पुत्रों की जो प्रारब्ध है सो मैंने और किसी को नहीं दीनी और जो और की प्रारब्ध है वह इनको किसी प्रकार प्राप्त नहीं होती और यह वार्त्ता भी प्रकट है कि जो मेरे पुत्र धर्म के अधिकारी होवेंगे तो भगवतही इनको प्रतिपाल भली प्रकार करेंगे और जो धर्म से हीनहुये तो मुझको इनकी चिन्ता ही कुछ नहीं बहुरि एक और सन्त बड़े धनवान् हुये हैं सो सर्वदा अपनी सम्पदा भगवत् अर्थ देते थे तब किसी ने उनसे कहा कि कुछ धन अपनी सन्तान के निमित्त भी राखो तब उन्होंने कहा कि मैं धन को भगवत् के निकट अपने निमित्त रखताहूं और पुत्रों की प्रारब्ध करनेवाला भगवत् है बहुरि यहियानामी सन्त ने कहा है कि मृत्यु के समय धनवान् पुरुष को दो दुःख अवश्यही लगते हैं सो एक तो उसकी सर्वसम्पदा दूर होती है और दूसरे धर्मराज के दण्ड का अधिकारी होता है पर ऐसे जान तू कि यद्यपि यह धन महानिन्द्यहै तौभी कुछ इस विषे विशेषता कहीहै क्योंकि यह धनरूपी पदार्थ उपाधि और भलाई दोनों का बीज है इसी पर महापुरुष ने कहा है कि यह धन भी उत्तम पदार्थ है पर

बुद्धिमान् और धर्मात्मा पुरुषों को और यों भी कहा है जब यह मनुष्य अत्यन्त निर्द्धन होता है तब निस्सन्देह महाराज से विमुख होजाता है क्योंकि जब अपने सम्बन्धियों और आपको भूखसंयुक्त अधीन देखता है तब ऐसा जानता है कि भगवत् ने यह कैसी अनीति रची है कि पापी मनुष्यों को धन दिया है और सात्त्विकी मनुष्य ऐसे दुःखित किये हैं कि उनको एक दाम भी हाथ नहीं आता जिस करके भूख का निवारण करें बहुरि ऐसा अनुमान करता है कि जब भगवत् मेरे दुःख को नहीं जानता तब अन्तर्यामी क्योंकर हुआ और जब दुःखी जानता है और दे नहीं सक्ता तब पूर्ण समर्थ क्योंकर हुआ और जब समर्थ होकर नहीं देता तब दया और उदारता से हीन जाना जाता है और जब इस निमित्त नहीं देता कि परलोक विषे सुखी करूंगा तब ऐसे जाना जाता है कि दुःख दिये विना सुख देने को समर्थ नहीं होसक्ता ताते प्रसिद्ध है कि निर्द्धन पुरुष क्रोधवान् होकर ऐसा भी कहने लगता है कि समय विपरीत हुआ है और लोग अन्धहुये हैं जो अनधिकारियों को पदार्थ और धन देते हैं तात्पर्य यह कि सन्तोष विना यह मनुष्य इस प्रकार भगवत् से विमुख होता है और अपने भले बुरे को पहिंचान नहीं सक्ता ताते ऐसा पुरुष कोई दुर्लभ होता है जो निर्द्धन होकर भी प्रतीति करके उसही विषे अपनी भलाई जाने पर ऐसे मनुष्य बहुत होते हैं जो निर्द्धनताई विषे व्याकुल होजाते हैं इसी कारण से भगवत् ने यह धन भी जीव के छिद्रों को छिपानेवाला बनाया है और शरीर के निर्वाहमात्र संग्रह करना सन्तजनों ने भी प्रमाण कहा है ताते प्रसिद्ध हुआ कि इस प्रकार करके यह धन भी केवल निन्द्य नहीं बहुरि इसही धन विषे एक यह भी लाभ है कि सब जिज्ञासुओं की अभिलाष परलोक के सुख पाने की होती है सो परलोक का सुख तबहीं प्राप्त होताहै जब प्रथम तीन पदार्थ प्राप्तहोवें सो एक तो विद्या और कोमल स्वभाव और इसकी स्थिति मन विषे होती है १ और दूसरा पदार्थ शरीर के विषे पायाजाता है सो वह आरो-ग्यता और जीवना है २ बहुरि तीसरा पदार्थ शरीर से बाहर पाया जाता है सो वह प्राणों की रक्षा के निमित्त शुद्ध जीविका है ३ पर जब इस पुरुष की श्रद्धा निष्काम होवे तब इन पदार्थों करके परलोक के सुख को पासक्ता है सो जिस पुरुष ने इस प्रकार निश्चय जाना है वह धन को कार्यमात्र अङ्गीकार करता

है और अधिक धन की सामग्री को हलाहल विष की नाईं जानता है सो इस वचन का अर्थ यहीहै जो कहाहै कि उत्तम पुरुषों को धनभी लाभदायक होताहै इसी पर महापुरुष ने कहा है कि जो पुरुष धन को धर्म के निमित्त प्रियतम रखता है वह धर्मही को प्रियतम रखता है और जो पुरुष अपनी बासना के अनुसार धन को प्रियतम जानता है वह अपनी वासनाही का दास है और उसने इस मनुष्य जन्म के तात्पर्य को नहीं समझा ताते महामूर्ख है इसी पर इब्राहीम सन्तने कहा है कि हे महाराज! मेरी और मेरे प्रियतमों की प्रेतपूजा से रक्षाकर अर्थ यह कि सोना चांदी प्रेतरूप हैं और सबही लोभ संयुक्त इसको पूजते हैं ताते तू मेरे हृदय से इसकी प्रीति को दूरकर (अथ प्रकट करने लाभ और विघ्न धनके) ऐसे जान तू कि यह धन सर्प की नाईं है अर्थ यह कि जैसे विष और मणि दोनों सर्पही से उपजते हैं तैसेही धन विषे भी गुण दोष पाये जाते हैं सो जबलग विष और मणि के स्वरूप को भिन्न २ करके न कहिये तब लग वचनका तात्पर्य परमसिद्ध नहीं होता ताते मैं धनके गुण और दोष भिन्न२ करके कहताहूं पर धन के लाभ दो प्रकार के प्रसिद्ध हैं सो एक तो संसारी लाभ है कि धनवान् पुरुष जगत विषे बड़ाई को पावता है और इत्यादिक अवर जो स्थूल लाभ हैं सो आपही प्रसिद्ध हैं बहुरि दूसरे धर्म के मार्ग विषे धन के लाभ हैं सो यह भी तीन हैं एक तो अपने शरीर की जीविका होती है और जितने शुभकर्म हैं सो वह शरीर के सम्बन्ध करके सिद्ध होते हैं ताते सर्व शुभ कर्मों का बीज शुद्ध जीविका है पर जब जीविका की चिन्ता रहती है तब उस से भजन और अभ्यास कुछ नहीं होसक्ता ताते जब इस पुरुष की मंशा धर्म के मार्ग की होवे तब जीविका का संग्रह रखना भी उसही मार्ग का तोशा होता है इसी पर एक वार्त्ता है कि सन्त के पास कुछ अनाज निष्पाप व्यवहार का आया था सो वह सन्त उस अनाज की मुष्टि भरकर कहने लगे कि इस शुद्ध जीविका को मैं निरुद्यमियों के भरोसे से विशेष जानता हूं पर इस भेद को सोई पुरुष समझता है जिसको अपने हृदय की शुद्धता और अशुद्धता की बूझ होती है और तबहीं वह जानता है कि शुद्ध जीविका करके इस प्रकार हृदय निःखेद रहता है और और लोगों की आशा दूर होजाती है और भजन विषे एकाग्रता दृढ़ होती है १ बहुरि दूसरा लाभ धर्ममार्ग सम्बन्धी धन का यह है कि और

जीवों को दान देता है तौ भी इस पुरुष को भलाई प्राप्त होती है पर धन का देना भी चार प्रकार का है सो प्रथम यह है कि अर्थी और सात्त्विकी मनुष्यों की पूजा करनी तब उनकी प्रसन्नता करके व्यवहार और परमार्थ के सुख को प्राप्त होता है १ और दूसरा प्रकार देने का यह है कि मित्रों और सम्बन्धियों के साथ भाव करना और सर्व कार्यों विषे उदारचित्त होना सो यह भी धन करके होता है २ बहुरि तीसरा यह कि कितनेही पुरुष इसकी आशा रखतेहैं और जब उनको कुछ न देवै तब निन्दा करने लगते हैं जैसे ब्राह्मण व भाट व कवीश्वर होते हैं सो इनको देना भी बड़ा उपकार है क्योंकि वह सब निन्दा करने से छूटते हैं ३ बहुरि चौथा प्रकार यह है कि यह मनुष्य सब क्रिया अपनी आपही नहीं करसक्ता ताते केते पुरुषों के साथ व्यवहार का सम्बन्ध होताहै तब अपनी सेवा करनेवालों को देना भी विशेष है क्योंकि जब यह पुरुष अपनी क्रिया से निश्चिन्त होता है तब भजन विषे सावधान रहता है और यद्यपि अपने शरीर की क्रिया आपही करनी विशेष है तौभी जिस जिज्ञासु का चित्त अन्तर अभ्यास विषे दृढ़ होताहै तब उसको स्थूल क्रिया का अत्यन्त अधिकार नहीं रहता ४।२ बहुरि तीसरा लाभ धन का धर्ममार्ग सम्बन्धी यह है कि धन करके और भी बड़े २ पुण्यकार्य होते हैं जैसे कूप, ताल और पुलों का बनाना अथवा अभ्यागतों के निमित्त धर्मशाला और ठाकुरद्वारे बनाने सो इत्यादिक पुण्यस्थान ऐसे उत्तम हैं कि इन्हों करके चिरकाल पर्यन्त असंख्यजीवों को सुख होता है पर इनकी सिद्धता भी धन करके होती है (अथ प्रकटकरने विघ्न धन के) ताते जान तू कि इस धन विषे केते विघ्न तो स्थूल हैं और केते ऐसे हैं कि धर्म के मार्ग से विमुख करते हैं सो यह विघ्न भी तीन प्रकारके हैं प्रथम यह जो धन करके भोगों की प्राप्ति और पापक्रिया सुखेन होती हैं सो इस जीव का मन तो आगेही से ऐसा चपल है कि सर्वदा विषयों और पापों की ओर दौड़ता रहता है और जब सन्मानादिक बड़ाई को पावता है तब शीघ्रही पापों विषे जाय गिरता है और बुद्धि की शुद्धता नष्ट होजाती है बहुरि जब भोगों और पापों से हठ करके आपको बचाया चाहे तौ भी बड़ा पुरुषार्थ चाहिये काहे से कि संपदा विषे विरक्त रहना महाकठिन है १ बहुरि दूसरा विघ्न यह है कि यद्यपि धनवान् पुरुष ऐसा विचारवान् होवे कि पाप कर्मों से बचायेराखे तौ भी खान पान और वस्त्रादि

भोगों से मुक्त नहीं होसक्ता क्योंकि ऐसा वैराग्य महादुर्लभ है जिस करके सम्पदा बिषेही आपको संयम साथ राखे जैसे व्यञ्जन के होते हुए भी रूखा अनाज खावे अथवा सुन्दर वस्त्रों के होतेहुयेही कमली आदिक पहरे ताते जब ऐसे वैराग्य को प्राप्त नहीं होता तब शरीर का स्वभाव अधिक भोगों के साथ मिलजाता है और राजसी व्यवहार का त्याग नहीं करसक्ता बहुरि अधिक भोगों की उत्पत्ति पापसे रहित होनी कठिन है इसी कारण से भोगी पुरुष अचानक ही पापों के समुद्र बिषे बहजाता है और इस संसार के जीवने को स्वर्गवत् जानता है ताते परलोक के मार्ग से विमुख रहता है और जिसको भोगों की तृष्णा होती है वह धन के निमित्त नाना प्रकार के पाखण्ड करता है और राजाओं का निकटवर्ती हुआ चाहता है तब अनेक शत्रु और ईर्षा करनेवाले उपज आवते हैं और परस्पर वैरभाव बिषे दृढ़ होजाता है सो ऐसे कर्म सबही पापरूप हैं तात्पर्य यह कि रजोगुणी बीज से अवश्यही तामसी वृक्ष उपजता है इसी पर महापुरुष ने भी कहा है कि माया की प्रीति सर्व पापों का कारण है और ऐसा महानरक है कि इसका अन्त कदाचित् नहीं आवता २ बहुरि तीसरा विघ्न धन का यह है कि यद्यपि धनवान् पुरुष भोगों और पापों से रहित भी होवे और सर्वथा वैराग्य संयुक्त रहै और विचार की मर्याद के साथ खर्च करे तौ भी धन की रक्षा के संकल्प बिषे ऐसा लीन होजाता है कि भजन और अभ्यास कर नहीं सक्ता सो सर्व शुभकर्मों का फल भगवत्भजन और प्रीति है और प्रीतिका रूप यह है कि भगवत से इतर सर्व पदार्थों से विरक्त होवे पर ऐसी अवस्था तब प्राप्त होती है जब और सर्व संकल्पों से मुक्त होता है और धनवान् की विक्षेपता इस प्रकार है कि जब अधिक सामग्री रखता है तब तौ सहजही व्यवहार पसरता है पर जब और सामग्री कुछ न राखे और केवल सोना चांदी ही धरती बिषे दाबराखे तौभी उसको सर्वदा यही संकल्प रहता है कि ऐसा न होवे जो कोई पुरुष मेरा धन देखलेवे और अचानकही चुराय लेजावे तब मैं क्याकरूं तात्पर्य यह कि धनवान् का हृदय किसी प्रकार निस्संकल्प नहीं होता और चिन्ता का समुद्र होजाता है इसीपर सन्तजनों ने कहा है कि जैसे जल बिषे सूखा रहना असम्भव है तैसेही मायाबिषे निर्लेप रहना कठिन है ताते मैंने धनके लाभ और विघ्न सबही प्रकट किये हैं पर जब बुद्धिमानों ने भली प्रकार

विचार करके देखा है तब यही निश्चय किया है कि शरीर के निर्वाहमात्र शुद्धजीविका का संग्रह करना अमृतरूप है और इससे अधिक संपदा निस्संदेह विषरूप है (अथ प्रकट करने विघ्न तृष्णा के) ताते जान तू कि यह तृष्णारूपी स्वभाव महानिन्ध है काहे से कि लोभी मनुष्य व्यवहार विषे भी अनादर को पावता है और सदैव लज्जावान् रहता है बहुरि इस लोभ से और भी अनेक अवगुण उपजते हैं जैसे कपट और पाखण्ड और धनवानों की अधीनता विषे आसक्त रहता है और उनके अपमान को सहता है और उनके झूठ को सत्य कहता हैं सो इस मनुष्य को भगवत् ने प्रथमही तृष्णा सहित उत्पन्न किया है पर यह तृष्णा संतोष विना कदाचित् दूर नहीं होती इसी पर महापुरुष ने कहा है कि यद्यपि इस मनुष्य को दो बँगले स्वर्ण से पूर्ण करदेवे तब तीसरे को चाहता है ताते मृत्यु ही इसको तृप्त करती है और और किसी पदार्थ करके तृप्त नहीं होता बहुरि यों भी कहा है कि धनकी तृष्णा और जीवने की आशा कदाचित् पूर्ण नहीं होती ताते उत्तम पुरुष यही है जिसको धर्ममार्ग की बूझ प्राप्त हुई है और शरीर के निर्वाहमात्र शुद्धजीविका पर संतोष करता है और योंभी कहा है कि जबलग यह मनुष्य अपनी सर्व प्रारब्ध नहीं भोगता तबलग निस्संदेह मृत्यु नहीं होता ताते तृष्णा का त्यागकरो और संतोष सहित जीविका को उत्पन्न करो और अधिक भोगों से विरक्त होवो और जो वार्त्ता अपने अर्थ हित लगती है वह औरों के अर्थ भी चाहो तब प्रीतिमान् होवोगे बहुरि एक बार महापुरुष ने कुछ जिज्ञासुजनों को यह उपदेश किया था कि भगवत् से इतर किसी को न पूजो और उसी की आज्ञा विषे सावधान होवो और और किसी से याचना भी न करो सो जिनको महापुरुष ने यह उपदेश किया था उनकी ऐसी अवस्था हुई है कि जब घोड़े पर सवार होते और चाबुक हाथ से गिरपड़ता तब किसी को इस प्रकार न कहते थे कि हमको चाबुक उठा दो ताते आपही घोड़े पर से उतरकर उठा लेते थे बहुरि मूसानामी महापुरुष ने कहा है और भगवत् के आगे इस प्रकार प्रार्थना करी थी कि हे महाराज ! तेरी सर्वसृष्टि विषे अति धनवान् कौन है तब आकाशवाणी हुई कि जिस पुरुष को यथाप्राप्ति विषे सन्तोष है सोई अति धनवान् है बहुरि बिनती करी कि हे महाराज ! न्याय करनेवाला उत्तम कौन है तब आकाशवाणी हुई कि जिसने अपने ऊपर न्याय

किया है सोई उत्तम न्याय करनेवाला है इसी पर एक जिज्ञासुजन रूखी रोटी को जल के साथ भिगोकर खालेते थे और इस प्रकार कहते थे कि जिसने ऐसी जीविका पर सन्तोष किया है वह सब संसार से अचाह रहता है और इब्न-मसऊद नामी सन्त ने भी कहा है कि एक देवता सदैव जगत विषे पुकारकर कहता है कि हे मनुष्यो! जो कुछ जीविका तुम्हारे शरीर के निर्वाहमात्र है सो तुमको वही विशेष है काहेसे कि इससे जितनी अधिक सामग्री होती है उसमें प्रमाद और अचेतता उपजती है इसी पर एक और सन्तने कहा है कि यह उदर तेरा सर्व मलिनता का घर है ताते तू इस उदर की तृष्णा के निमित्त नरकगामी क्यों होता है इसी पर महाराज ने भी कहा है कि हे मनुष्य! जब मैं तुझको अधिक धन देऊं तौभी आहार ही करके तेरी तृप्ति होवेगी पर जब मैं तुझको आहारमात्र ही देतारहूं और व्यवहार की विक्षेपता और परलोक का दण्ड धन-वानों के शीश पर डारूं तब तेरे ऊपर इससे बड़ा उपकार कौन है और एक बुद्धिमान् ने कहा है कि तृष्णावान् के समान दुःख सहनेवाला कोई नहीं और संतोषी के समान सुखी कोई नहीं और ईर्षा करनेवाले के समान चिन्तावान् कोई नहीं और वैराग्यवान् के समान सुखेन चित्त कोई नहीं और जो विद्यावान् करतूति से रहित होवे तिसके समान पश्चात्ताप करने योग्य और कोई नहीं इसी पर एक वार्ता है कि एक बधिक ने एक ममोला चिड़िया को फँसाया था तब ममोले ने कहा कि जब तू मुझको मारकर भक्षण करेगा तौभी तेरी तृप्ति न होवेगी ताते मैं तुझको तीन उपदेश करताहूं सो तीनों करके तुझको अधिक लाभ होवेगा पर एक वचन तेरे हाथ पर कहूंगा बहुरि जब मुझ को छोड़ेगा और मैं वृक्ष के ऊपर जा बैठूंगा तब दूसरा वचन कहूंगा और तीसरा वचन पहाड़ पर बैठकर कहूंगा तब बधिक ने कहा कि बहुत भला पर प्रथम वचन तो कह तब ममोला बोला कि जिस कार्य का समय बीतजावे तब उसके ऊपर पश्चात्ताप न करना तब बधिक ने ममोले को छोड़ दिया और वृक्ष के ऊपर जाबैठा तब बधिक ने दूसरा वचन पूछा तब ममोले ने कहा कि असंभव वार्त्तापर प्रतीति न करना इतना कहकर ममोला पहाड़ पर जाबैठा और कहने लगा कि हे अभागी! जो तू मुझ को मारता तो मेरे उदरसे दो लाल निकलते और एक २ लाल दो २ पैसे के प्रमाण भारी था सो जब तू उनको पावता तब ऐसा धनी

होता कि कदाचित् निर्द्धनता को न देखता बधिक ने जब यह वार्त्ता सुनी तब हाहाकार करके हाथ मलने लगा और बड़े पश्चात्ताप को प्राप्तहुआ और इस प्रकार कहनेलगा कि अब तीसरा बचन कह तब ममोले ने कहा कि तू ने तो वह दोनों उपदेश भी बिसारदिये अब तीसरा सुनकर क्या करेगा? काहे से कि मैंने तुझसे कहा था कि बीतगये कार्य का पश्चात्ताप न करना और असम्भव वार्त्ता पर प्रतीति न करना सो यह बड़ा आश्चर्य है कि मेरा शरीर ही दो पैसे भर न होवेगा तब चार पैसे भरके लाल मेरे उदर में क्योंकर समावते इतना कहकर ममोला उड़गया सो इस वार्त्ता का तात्पर्य यह है कि लोभी मनुष्य होनी और अनहोनी वार्त्ता का विचार नहीं करता और लोभ करके अन्ध होजाता है इसीपर एक सन्तने कहा है कि इस मनुष्य के गले विषे यह लोभ जेवड़ीरूप है और लोभ ही पांवों की बेड़ी है पर जब तू लोभ को दूरकरे तब तेरे गले से जेवड़ी और पांव से बेड़ी टूटजावें और तू मुक्तरूप होवे (अथ प्रकट करना उपाय तृष्णा के निवृत्त करने का) ताते जान तू कि तृष्णा की औषध हठरूपी कटुता और बूझरूपी मिठाई करतूतिरूपी तीक्ष्णता के साथ मिलीहुई होती है सो जब मानसी रोगों के सर्व उपायों विषे ऐसीही औषध मिलती है तब वह रोग दूर होजाते हैं ताते तृष्णा की औषध पांचप्रकार करके होती है प्रथम यह है कि अपने कार्य को घटावे रूखे आहार और मोटे वस्त्र करके तब इतनेमात्र जीविका तृष्णा से रहित उत्पन्न होसक्ती है पर जब नाना प्रकार के रसों और सुन्दर वस्त्रों को चाहे तब कदाचित् तृप्त नहीं होसक्ता इसी पर महापुरुष ने भी कहा है कि जिस पुरुष का व्यवहार संयम के साथ है वह निर्धन कदाचित् नहीं होता और यों भी कहा है कि यह तीन लक्षण सर्वजीवों को मुक्त करनेवाले हैं सो प्रथम यह कि गुप्त और प्रकट विषे भगवत् का भय करना और दूसरा यह कि विचार की मर्याद के अनुसार क्रोध और प्रसन्नता विषे बिचरना और तीसरा यह कि संपदा और आपदा विषे संयम सहित जीविका करनी इसीपर एक वार्त्ता है कि अबूदरदा नामी सन्त एकबार खजूरों के फल गिरेहुए चुनते थे और इसप्रकार कहते थे कि यथाप्राप्त जीविका विषे प्रसन्न रहना भी बड़ा पुरुषार्थ है १ बहुरि दूसरा उपाय तृष्णा के घटावने का यह है कि जब इस पुरुष को एक दिन की जीविका प्राप्तहोवे तब दूसरे दिन की चिन्ता

न करे पर यह मनुष्य इस प्रकार संशय उपजावता है कि अभी तो तुझको बहुत जीवना है और कदाचित् कल्ह के दिन कुछ नहीं प्राप्त होवे ताते अबहीं उद्यम करके संचय कर रखिये सो यह मन तेरा ऐसा शत्रु है कि अगली चिन्ता करके आजही दुःखी किया चाहता है और निर्धनताई के भय से अबहीं तुझको निर्धन करता है पर जब ऐसा संकल्प फुरे तब जिज्ञासु को इस प्रकार विचार किया चाहिये कि यह जीविका तृष्णा करके उत्पन्न नहीं होती काहे से कि प्रारब्ध तो महाराज की रचीहुई है सो इस जीव को अवश्यही आन पहुँचती है और यों भी है कि जब अगले दिन जीविका न प्राप्तहुई तौभी इसकी उत्पत्ति के विषे जितना यत्न आज होता है सो उतनाही कल्ह होवेगा ताते अबहीं क्यों चिन्तावान् हूजिये इसीपर एकबार महापुरुष इबनमसऊद के घर गये थे तब इबनमसऊद को चिन्तावान् देखकर कहनेलगे कि तुम शोक और चिन्ता मतकरो काहे से कि तुम्हारी प्रारब्ध तुमको अवश्यही प्राप्त होरहेगी इसीपर महाराजने भी कहा है कि वैराग्यवान् को यत्न विनाही जीविका प्राप्त होती है इसी पर सिफ़यांसौरी ने कहा है कि तुझको तृष्णा से रहित होनाही विशेष है क्योंकि कोई संतोषवान् भूख करके दुःखी नहीं हुआ इसकरके कि भगवत् सर्व जीवों को उसके ऊपर दयालु करदेता है ताते याचना विनाही उसकी प्रतिपाल होती है इसीपर एक और सन्त ने कहा है कि जो मेरी प्रारब्ध है सो मुझको यत्न विनाही प्राप्त होवेगी और जो मेरी प्रारब्ध नहीं सो सर्व मनुष्यों और देवतों के यत्न करके भी प्राप्त न होवेगी ताते जीविका के निमित्त मेरा यत्न और अधैर्यता क्या काम आवेंगे २ बहुरि तीसरा उपाय यह है कि जब इस पुरुष को निराश होने विषे यत्न भासता है तब ऐसे जानना प्रमाण है कि जब किसी की आशा करूंगा तब यत्न और खेद भी होजावेगा और मैं निर्लज्जता को भी प्राप्त होऊंगा और भगवत् से भी विमुख रहूंगा पर जब मैं निराशता विषेही धैर्य करूंगा तब निस्संदेह लाभ को प्राप्त होऊंगा तात्पर्य यह कि निराशता विषे धैर्य करना लोभ के अप्रमाण दुःख से सर्व प्रकार विशेष है इसी पर महापुरुष ने कहा है कि प्रीतिमान् की बड़ाई यही है जो संतोष करके सर्व संसार से अ-चाह रहता है ऐसेही अली सन्त ने कहा है कि जिसके साथ कुछ तेरा प्रयोजन है तब तू उसी का दास है और जिसका प्रयोजन तेरे साथ है सो निस्संदेह वह

तेराही दास है और जिस पदार्थ से तू अचाह है तब तुझको उसकी अधीनता नहीं रहती ३ बहुरि चौथा उपाय यह है कि जिज्ञासु प्रथम अपने हृदय विषे ऐसे विचार कर देखे कि मैं तृष्णा और लोभ किस निमित्त करताहूं पर जब मैं अहंकार के निमित्त करूं तब यह तो वृषभों और गर्दभों का काम है और जो कामादिकों के निमित्त तृष्णा करता हूं तौ शूकर और पक्षी चिड़िया मुझसे अधिक भोगी हैं अथवा जब नाना प्रकार के वस्त्रादिक के निमित्त यत्न करता हूं तब केते तामसी मनुष्य भी मुझसे अधिक धनवान् हैं तात्पर्य यह कि जब इस प्रकार विचार करके तृष्णा को दूर करे तब सर्व संसार से उत्तम अवस्था को पावे और सन्त जनों के पद को जापहुँचे ४ बहुरि पांचवां उपाय तृष्णा के घटाने का यह है कि वारंवार धनके विघ्नों को विचारे और इस प्रकार जाने कि धनवान् पुरुष इस लोक विषे भी डरता रहता है और परलोक विषे भी दण्ड का अधिकारी होता है ताते जिज्ञासु को चाहिये कि सदैव आपसे अधिक निर्द्धनों को देखतारहे और धनवानों की ओर न देखै तब भगवत् के उपकार को प्रकट जाने पर यह मन ऐसा शत्रु है कि सर्वदा इस मनुष्य को भटकाता रहता है और ऐसा कहता है कि अमुक तो ऐसा धनवान् है और अमुक विद्यावान् तो किसी धन से भय नहीं करता ताते तू क्यों त्यागकरता है सो इस संकल्प का उपाय यह है कि आप से विशेष अवस्थावाले को परमार्थ सम्बन्ध में देखे तब अपनी नीचता को प्रकट जाने और अभिमान से रहित होवे और व्यवहार विषे आपसे अधिक निर्द्धनों की ओर देखे तब भगवत् के उपकार का ज्ञाताहोवे (अथ प्रकट करनी महिमा उदारता की) ताते जान तू कि जैसे निर्धनताई विषे जिज्ञासु को सन्तोष चाहिये तैसेही धन और सम्पदा विषे प्रीतिमान् को उदारता विशेष है और कृपणता को दूर करनाही भलाई का कारण है इसी पर महापुरुष ने कहा है कि उदारतारूपी वृक्ष की मूल स्वर्ग विषे है और शाखा इसलोक विषे है ताते उदार पुरुष उसही शाखा को पकड़कर अवश्यही स्वर्ग को प्राप्त होता है ऐसेही नरक विषे कृपणतारूपी वृक्षकी मूल है और शाखा इसलोक विषे है सो कृपण मनुष्य उसही शाखा को पकड़कर अवश्यही नरक को प्राप्तहोता है और योंभी कहा है कि दो लक्षण भगवत् को अधिक प्रियतम हैं एक कोमल स्वभाव और दूसरा उदारता ऐसेही दो लक्षण निस्सन्देह भगवत्

से विमुख करते हैं एक कठोर स्वभाव और दूसरा कृपणता बहुरि योंभी कहा है कि उदार पुरुष के अवगुण को न देखो काहेसे कि उदार पुरुष को जब कुछ अवसर बनता है तब भगवतही उसकी सहाय करता है और योंभी कहा है कि उदार पुरुष भगवत् का निकटवर्ती है और परमसुख भी उसको निकट है और लोगों के चित्तविषे भी प्रियतम लगता है और नरकों से दूर है ऐसेही कृपण मनुष्य भगवत् के सुख से दूर है और लोगों के चित्त से भी दूर है और नरकों के निकट है इसी कारण से कृपण मनुष्य यद्यपि भजनवान् होवे तो भी उससे विद्याहीन उदार पुरुष को भगवत् अधिक प्रियतम रखता है क्योंकि कृपणता महामलिन स्वभाव है और योंभी कहा है कि जिन पुरुषों को परमपद की प्राप्ति हुई है सो जप तप और व्रत करके नहीं हुई वह हृदय की शुद्धता, दया और उदारता करके उत्तमपद विषे स्थित हुये हैं इसी पर अलीनामी सन्त ने कहा है कि जब तुझको सम्पदा प्राप्त होने लगे तब उदारता सहित खर्चकर काहेसे कि दान करके सम्पदा दूर न होवेगी और जब यह धन की सामग्री तुझ से दूर होनेलगे तब भी निरशङ्क होकर दे क्योंकि वह तो आपही चलीजाती है और जब तू संचने की मंशा करेगा तब दण्डका अधिकारी होगा इसीपर एक वार्त्ता है कि कोई पुरुष अपने मनोरथ की पाती लिख कर हसन नामी सन्त के निकट आया तब हसनजी ने पाती के पढ़े बिनाही उससे कहा कि जितना कुछ तुझको चाहिये सो मांगले बहुरि किसी ने पूछा कि तुमने पाती क्यों नहीं पढ़ी तब वह कहने लगे कि जब मुझ को पाती पढ़ते कुछ ढील लगती और भगवत् मुझसे पूछता कि तैंने अर्थी का अर्थ पूर्ण करने विषे इतनी देर क्यों लगाई ? तब मैं क्या उत्तर कहता इसी भय करके मैंने पाती नहीं पढ़ी इसीपर एक और वार्त्ता है कि कोई धनवान् ने पचास सहस्र रुपया महापुरुष की स्त्री को भेंट किया था तब उन्होंने वह सब धन बांटदिया बहुरि जब व्रत खोलने का समय हुआ तब रूखाही भोजन खानेलगीं तब दासी ने कहा कि जो तुम अपने निमित्त भी एक दो पैसा रखलेती तो क्या होता ? तब उन्होंने कहा कि जब तू आगे मुझको स्मरण कराती तो तुझको भी उसमें से देदेती इसी पर एक और वार्त्ता है कि एक दिन अलीनामी सन्त रुदन करनेलगे तब किसी ने पूछा कि तुम क्यों रोते हो तब उन्होंने कहा कि सात दिन व्यतीत हुये हैं कि हमारे घर

कोई अभ्यागत नहीं आयाहै ताते इसी निमित्त मैं रोताहूं बहुरि एक और वार्त्ता है कि एक प्रीतिमान् ने अपने मित्र से कहाथा कि मुझको दोसौ रुपया देना है तब उस मित्र ने दोसौ रुपये उसको आनदिये और पीछे रुदन करनेलगा तब उसकी स्त्रीने कहा कि जब तुमको श्रद्धा देनेकी न थी तब प्रथमही न देते जो अब रुदन करतेहो तब उन्होंने कहा कि मैं धनके निमित्त नहीं रोता पर इस निमित्त रोताहूं कि मैं मित्र की व्यथासे इतना अचेत क्योंरहा ? जो उसको मांगना पड़ा सो मैंने यह मित्र की बड़ी अवज्ञा करीहै (अथ प्रकट करनी निषेधता कृपणता की) ताते जान तू कि महाराज ने भी इस प्रकार कहाहै कि जिनको धनरूपी पदार्थ प्राप्तहुआ है और वह कृपणता करते हैं तब वह धनही उनको विघ्नदायक होताहै और अन्तसमय विषे वही सम्पदा उनके गले की जंजीर होतीहै इसी पर महापुरुष ने भी यह कहा है कि कृपणता से सदैव दूर रहो काहे से कि इस कृपणता ने आगे भी बहुत लोगोंका नाशकिया है और जिनके ऊपर कृपणता प्रबल हुई है उन्होंने निश्शङ्क होकर जीवों का घातकिया है और अशुद्ध जीविका को शुद्धकर जानाहै और योंभी कहाहै कि तीनस्वभाव इस जीवकी बुद्धि को नाश करनेवाले हैं सो प्रथम तो कृपणता है और दूसरा अशुद्ध वासना के अनुसार करतूति करना और तीसरा आपको विशेष जानकर अभिमान करना इसीपर एक वार्त्ता है कि दो पुरुषों ने कुछ धन महापुरुष से मांगा था सो जब महापुरुष ने उनको दिया तब वे अधिक प्रसन्न हुये बहुरि महापुरुष ने उमर की ओर दृष्टि करके कहा कि ये लोग अधिक बिनती करके मुझसे मांगते हैं ताते मैं इनको कुछ देताहूं पर जब भलीप्रकार देखिये तब यह सकामता का द्रव्य उनको अग्निकी नाईं जलानेवाला है तब उमर ने पूछा कि जब तुम इस द्रव्य को अग्निरूप जानतेहो तब उनको किस निमित्त देते हो तब महापुरुषने कहा कि मैं उनकी अधिक दीनता देखकर भयवान् होताहूं और इससे भी भयकरता हूं कि कहीं मैंही कृपण न होजाऊं और मेरी कृपणता करके महाराज अप्रसन्न होजावें बहुरि एक और वार्त्ता है कि कोई पुरुष भगवत् के आगे इस प्रकार प्रार्थना करता था कि हे महाराज ! मेरे पाप को तू क्षमाकर तब महापुरुष ने उसको देखकर कहा कि तेरा पाप क्या है ? तब उसने कहा कि मेरा पाप अतिदीर्घहै और मुख से कहा नहीं जाता बहुरि महापुरुष ने कहा कि तेरा पाप दीर्घ है कि पृथ्वी

दीर्घ है तब उसने कहा कि मेरा पाप दीर्घ है बहुरि महापुरुष ने कहा कि तेरा पाप अधिक है अथवा आकाश अधिक है तब उसने कहा कि मेरा पाप अधिक है बहुरि महापुरुष ने कहा कि तेरा पाप बड़ा है अथवा महाराज की दया बड़ी है तब उसने कहा कि महाराज की दया तो निस्सन्देह अमित है तब महापुरुष ने कहा कि तू अपने पाप को प्रसिद्ध करके कह तब उस पुरुष ने कहा कि मैं अधिक धनवान् हूं पर जब किसी याचक को आया देखताहूं तब कृपणता की अग्नि करके जलने लगताहूं यह वार्त्ता सुनकर महापुरुष ने कहा कि मुझसे दूर हो क्योंकि यद्यपि तू सर्व आयुभर तीर्थोंपर स्थित होवे और रात्रि दिन भजन करता रहे बहुरि इतना रुदनकरे कि तेरे नेत्रों के जल करके बड़े प्रवाह चलें पर जबलग कृपणता का त्याग न करेगा तबलग नरकों के दुःख से न छूटेगा क्यों कि यह कृपणता मनमुखता है और अग्निरूप है और योंभी कहा है कि सदैव दो देवता भगवत् के आगे पुकार करके कहते हैं कि हे महाराज! धन को जोड़नेवालों की सम्पदा नष्टकर और उदार पुरुषों को अधिक सम्पदा दे बहुरि एकबार एक सन्तने शैतान से पूछाथा कि तू प्रियतम किस को रखता है और शत्रु किसको जानता है तब उसने कहा कि मैं कृपण तपस्वी को प्रियतम रखताहूं काहे से कि वह तप और कष्टकरके दुःख खींचता है और कृपणता करके फल उसका नष्ट होजाता है बहुरि राजसीपुरुष उदार को अपना शत्रु जानताहूं काहेसे कि वह शरीर करके भी सुख भोगता है और मैं डरताहूं कि उदारता करके उसके ऊपर भगवत् क्षमा करे और अपनी दया करके उसको वैराग्य प्राप्त करदेवे (अथ निरूपण परम उदारता का) ताते जान तू कि एक उदारता है और एक परमउदारता है सो उदारता यह है कि जिस पदार्थ की इसको अपेक्षा न होवे उसको भगवत् अर्थ उठादेवे और परमउदारता यह है कि जिस पदार्थ की इसको अति अपेक्षा होवे और वह पदार्थ किसी और अर्थी को उठादेवे और ऐसेही परमकृपणता यह है कि यद्यपि उसको कुछ अपने शरीर का प्रयोजन होवे तौभी खर्च नहीं करता और अपने मनोरथ को भी और मनुष्यों की आशा करके पूर्ण कियाचाहता है और अपने धनकी गांठ को खोल नहीं सक्ता और महापुरुष ने इस प्रकार कहा है कि जो पुरुष अपने अर्थ की ओर दृष्टि न करें और और के अर्थको पूर्ण करे तब उसके ऊपर भगवत् अति-

प्रसन्न होता है इसीपर एक वार्त्ता है कि एक प्रीतिमान् के घर कोई अभ्यागत आया था और उनके घर में भोजन अल्प था तब उन्होंने दीपक को बुझादिया और मिलकर भोजन करने को बैठे पर आप कुछ नहीं खाते थे और योंही रीते हाथ भोजन विषे डालते थे इस करके कि यह अभ्यागत तृप्त होकर खावे तब उनकी यह वार्त्ता सुनकर महापुरुष ने कहा कि तुम्हारी परम उदारता पर भगवत् अतिप्रसन्न होगा और मूसा महात्मा को भी आकाशवाणी हुई थी कि जो पुरुष सर्व आयुष् विषे एकबार भी अपने अर्थ का त्याग करके और का अर्थ पूर्ण करता है तब मैं उसके साथ लेखा नहीं करता इसीपर एक वार्त्ता है कि एक बड़ाधनी और उदार प्रीतिमान् अटन करता हुआ खजूर के बाग़ में जा निकला तब उसके सामने बाग़ के रखवाले को दो रोटी आईं बहुरि उसी समय विषे एक कूकुर उसी बाग़ में आ निकला तब उस रखवाले ने एक रोटी उसको डालदी सो उस कूकुर ने वह शीघ्रही खा ली तब उस रखवाले ने दूसरी भी डालदी तब यह आश्चर्य देखकर उस रखवाले से प्रीतिमान् ने पूछा कि तुझ को घर से कितना भोजन आता है तब उसने कहा कि जितना तुमने देखा है तितनाही आता है बहुरि प्रीतिमान् ने कहा कि तैंने सबही किस निमित्त डाल दिया तब उसने कहा कि यहां आगे से कूकुर कोई न था और यह दूरसे आया है ताते मैंने यही मंशा करी कि यह कूकुर भूखा न रहे तब उस प्रीतिमान् ने कहा कि लोग मुझको व्यर्थही उदार कहते हैं यह रखवाला तो मुझसे भी परम उदार है इतना कहकर उस प्रीतिमान् ने उस बाग़ और रखवाले को मोल लेकर मुक्त करादिया और वह बाग़ भी उस रखवालेही को देदिया बहुरि एक और वार्त्ता है कि एकनामी सन्त के गृहविषे कुछ अभ्यागत आये थे और उनके घर में भोजन अल्प था ताते उन्होंने रोटियों के टूक करडाले और दीपक बुझा कर भोजन करने के निमित्त एकत्र होकर बैठे बहुरि जब एक घड़ी के पीछे दीपक उन्होंने जलाया तब भोजन सब ज्योंका त्यों धरा देखा और किसी ने अङ्गीकार न किया तात्पर्य यह कि सब ने परमउदारता करी और योंही सब मंशा करतेभये कि हमारे मित्र तृप्त होकर खावें और हम को भूखा रहना भला है इसीपर एक प्रीतिमान् ने कहा है कि एकबार बड़ा युद्धहुआ और उसमें बहुत लोग घायल हुये थे और मेरा भाई भी उसी विषे घायल पड़ा था तब मैं उसके

निमित्त जलका पात्र भरकर लेगया सो जब मैं उसको जल देनेलगा तब एक और घायल ने कहा कि मुझको जल पिलादो तब मेरे भाई ने कहा कि प्रथम इसी को पिलादो बहुरि जब मैं उसके निकट गया तब एक और ने जल मांगा तब उस घायलने भी कहा कि प्रथम उसी को जल देदो सो जब मैं उसके निकट पहुँचा तबतक उसका शरीर छूटगया बहुरि जब मैं उनके निकटआया तब उस घायल और मेरे भाई के भी प्राण छूटगये प्रयोजन यह कि सबही ने अपने जीने से अपने मित्रों का जीना विशेष जाना और बशरहाफ़ी नामी सन्त ऐसे परमउदार हुये हैं कि जब उनका शरीर छूटनेलगा तब एक अर्थी ने आकर याचना करी और उन के पास कुछ न था तब उन्होंने अपने गले का वस्त्र उतार दिया और फिर और किसी का वस्त्र मांगकर गले में पहरा बहुरि एक मुहूर्त के पीछे शरीर का त्यागकिया तब बुद्धिमानों ने कहा कि बशरहाफ़ी जिसप्रकार इस लोक विषे आये थे तैसेही परलोक विषे गये अर्थ यह कि जैसे नग्न जन्मे थे तैसेही असंग्रह होकर गमन करतेभये (अथ उदारता कृपणता मर्याद निरूपण) ताते जान तू कि बहुत पुरुष आप को उदार जानते हैं और वह और लोगों के मत विषे कृपण होते हैं ताते इस भेद को अवश्य ही पहिंचानना चाहिये क्योंकि यह कृपणतारूपी दीर्घरोग है और जबलग ऐसे रोग को पहिंचानिये नहीं तबलग इसका उपाय क्योंकर करिये और यह वार्ता भी प्रसिद्ध है कि अर्थियों के अर्थ को सब कोई पूर्ण नहीं करसक्ता सो जब इसीका नाम कृपणता होवे तब सबही कृपण होते हैं पर ऐसा नहीं क्योंकि विचार की दृष्टिविषे जिस वस्तु का देना प्रमाण होवे उसको जो पुरुष न देवे तब वह कृपण कहाजाता है और जो पुरुष विचार के साथ सुगमही न देवे तब वह भी कृपणही कहाता है और जो पुरुष भोजन के निमित्त वस्तु लेताहुआ अधिक विवादकरे अथवा सम्बन्धियों को आहार और वस्त्र सकुचकर देवे अथवा याचक को देखकर अपने आहार को छिपालेवे सो यह प्रसिद्ध कृपणता है क्योंकि कृपणता का अर्थ यही है कि जिस पदार्थ का देना प्रमाण है और जब वह वस्तु दे न सके तब जानिये कि यह कृपण है इस करके कि भगवत् ने यह धन व्यवहार के निमित्त उत्पन्न किया है सो जबलग इस भेदको न जाने और धनको इकट्ठा करताजावे तब यह कृपणता का लक्षण है बहुरि धनका देना प्रमाण यों है कि जिस प्रकार धर्मशास्त्र

बिषे कहा है अथवा जिस करके भाव और दया प्रकटहोवे और धर्मशास्त्र बिषे जो दशांश का देना अवश्यही कहा है सो यह संसारी जीवों का अधिकार है काहे से कि यह अल्पबुद्धि मनुष्य इससे अधिक कुछ नहीं देसक्ते ताते विचारवानों के मत बिषे यहभी कृपणता है पर भाव के निमित्त जो धनका देना कहाहै सो इसका भी अधिकार भिन्न २ है जैसे एक वस्तु निर्द्धनों को देनी योग्य है और वही वस्तु धनवानों को देनी भली नहीं लगती अथवा अर्थियों को देनी प्रमाण है और मित्रको देनी निन्द्य है अथवा सम्बन्धियों को देनी अयोग्य है और २ लोगों को देनी अयोग्य नहीं अथवा कोई पदार्थ स्त्रियों को देना विशेषहै और पुरुषों को देना निन्द्य है तात्पर्य यह कि यद्यपि धन का संचना भी व्यवहार बिषे विशेष है पर जब संचने से अधिक प्रयोजन आन प्राप्तहोवे तब उस संचने से देना विशेष है और जबलग देनेका अधिक प्रयोजन न होवे तबलग धन का रखना प्रमाण है और जो कृपण मनुष्य है वह इस मर्याद बिषे स्थित नहीं होसक्ता जैसे कोई किसी के गृह बिषे अभ्यागत आवे तब भाव और प्रीति करके उसका प्रतिपाल करना धन के संचने से विशेष है पर जब अपने चित्त बिषे यह अनुमान करलेवे कि मैंने तो आगे ही दशांश दिया है और उसके भाव से विमुख रहे सो यह प्रसिद्ध कृपणता व नीचता है अथवा जब पड़ोसी इसका निर्द्धन होवे और इसके पास अन्न बहुत होवे सो जब उसे भूखा देखकर कुछ न देवे तब यह भी कृपणता है पर जबलग यथाशक्ति और दयाभाव संयुक्त देतारहे और इस पुरुष के पास धन इससे भी अधिक होवे तो भी परलोक की भलाई के निमित्त ऐसे कार्य करने के योग्य हैं कि कूप, ताल, पुल और ठाकुरद्वारे आदिक जो धर्म के स्थान हैं और जिन करके चिरकाल पर्यन्त अर्थीजीवों को सुख प्राप्त होता है सो तिनके बनाने बिषे धन को लगावे पर जब ऐसे कार्य भी न करे तब संसारी जीवों के मत बिषे कृपण नहीं कहा जाता और विचारवानों के मत बिषे यह भी कृपणता है तात्पर्य यह कि जब शास्त्र के अनुसार और भाव के अनुसार देतारहे तब कृपणता से मुक्त होता है पर उदार तबहीं कहाजाता है जब उसका देना बढ़ताजावे सो यह भी धनकी मर्याद के अनुसार भिन्न २ अधिकार होताहै पर जिसको देना सुगम होवे सो वह उदार कहाता है और जो पुरुष कठिनता करके देवे सो कृपण है

अथवा जो मनुष्य यश और मान के निमित्त दानकरे अथवा प्रति उपकार की इच्छा राखे तौभी उदार नहीं काहे से कि उदारता निष्काम देने का नाम है पर प्रयोजन से रहित होना इस जीव से कठिन है क्योंकि प्रयोजन विना देना भगवतही का काम है पर जब स्वर्ग अथवा मनकी कामना के निमित्त देवे तब संसारी जीवों के मत बिषे वह भी उदार है और सन्तजनोंके मत बिषे उदारता यह है कि निष्काम होकर जीव और शरीर सर्वस्व भगवत् अर्थ अर्पण कर देवे और महाराज की प्रीति बिषे ऐसा मग्न होवे कि अपने शरीर और जीवके देने को कुछ वस्तुही न जाने और अपने आपके देनेही करके आनन्दवान् होवे (अथ उपाय कृपणता निवारण निरूपण) ताते जान तू कि कृपणता का उपाय बूझ और करतूति के सम्बन्ध करके होताहै सो बूझ यह है कि प्रथमही कृपणता के कारण को पहिचाने क्योंकि जिस रोगका कारण जाना नहीं जाता तब उसका उपाय भी नहीं करसक्ता सो कृपणता का कारण भोगों की प्रीति है सो धन विना इन्द्रियों के भोग सिद्ध नहीं होते १ और दूसरा कारण जीनेकी अधिक आशाहै २ इस करके कि जब यह मनुष्य ऐसा जाने कि मुझको कुछ दिन में अथवा श्वास के उपरान्त मरना है तब स्वाभाविकही धनकी प्रीति क्षीण होजावे पर जिसकी कुछ संतान होती है तब उसका हृदय मरनेके समय भी नहीं खुलता क्योंकि मोह करके पुत्रों का जीनाभी अपने जीने की नाई जानता है ताते कृपणता की गांठि दृढ़ होजाती है इसीपर महापुरुष ने कहा है कि यह संतानही कृपणता और मोहका कारण है पर जो पुरुष भोगों के निमित्त धनको प्रियतम राखे अथवा धनकी प्रीतिकरके जिसको अधिक भोगों की अभिलाष उपजआवे तब उसको तो अधिक जीनेकी आशा करके धन और सम्पदाके संचनेकी वासना दृढ़ होजाती है पर एक ऐसे कृपण पुरुष होते हैं कि वह केवल चांदी सोने ही को प्रियतम रखते हैं और जब रोगी होते हैं तब अपने शरीरका उपचार भी नहीं करते और दशांश भी नहीं देसक्के और उनके मनमें यही प्रिय लगता है कि चांदी सोनाही हमारे निकट दबारहे और यद्यपि ऐसाभी जानते हैं कि जब हम मरेंगे तब हमारे पीछे यह धन हमारे शत्रुही लेजावेंगे तौभी कृपणता करके खर्च नहीं करसक्के सो यह ऐसा दीर्घ रोग है कि इसका उपाय करना महाकठिन होता है पर जब तैंने कृपणता के कारण को जाना तब इस

प्रकार समझना चाहिये कि भोगों की प्रीति का उपाय संयम है ताते जब यह पुरुष संतोष करके भोगों का त्याग करता है तब स्वाभाविकही धन की प्रीति क्षीण होजाती है १ और अधिक जीनेकी आशाका उपाय यह है कि सदैव मृत्यु को चेतता रहे और अपने सम्बन्धियों की ओर विचार करके देखे कि मेरी नाईं वह भी धन को संचते थे और मरने से अचेत थे बहुरि अचानकही पश्चात्ताप संयुक्त मृत्यु को प्राप्तहुये और वह धन सबही उनके शत्रु बांटलेगये बहुरि पुत्रों की निर्द्धनता के भय करके जो कृपणता होती है सो तिसका उपाय यह है कि सर्वजीवोंका उत्पन्न और पालनकर्त्ता भगवत्‌ही को जाने और इस प्रकार समझे कि जिसके भाग्य विषे भगवत् ने निर्द्धनता लिखी है वह मेरी कृपणता करके किसी प्रकार धनवान् न होवेगा और जब मेरी सम्पदा अधिक शेष रहेगी तौभी व्यर्थ ही नष्ट होजावेगी और जब इनकी प्रारब्ध विषे भगवतने धन सम्पदा रची है तब मेरी सम्पदा विनाही उनको धन प्राप्तहोवेगा और यह वार्त्ता भी प्रसिद्ध है कि केते पुरुष पिता की सम्पदा विनाही धनवान् दृष्टि आवते हैं और केते पुरुषों को पिता का धन भी अधिक प्राप्तहुआ तौ भी निर्द्धन होगये हैं ताते इस प्रकार विचार करे कि जो मेरे पुत्र भगवत् के आज्ञाकारी हुये तौ उनको भगवत् की प्रसन्नता ही बहुत है और जब भगवत् की आज्ञा से विमुखहुये तब उनको निर्द्धनताही विशेष है क्योंकि निर्द्धनता करके अनेक पापों से बचेंगे २ बहुरि जितने वचन कृपणता की निषेधता और उदारता की विशेषता बिषे सन्तजनों के आये हैं सो तिनको वारंवार बिचारे और ऐसा जाने कि कृपण मनुष्य यद्यपि भजनवान् होवे तौ भी निस्सन्देह नरकगामी होवेगा ताते जो धन और सम्पदा महाराज की अप्रसन्नता और नरकों का कारण है सो तिस धन करके मुझको क्या लाभ होवेगा ? बहुरि कृपण मनुष्यों की ओर देखे कि कृपण मनुष्य इसी संसार बिषे कैसे अपमान को प्राप्त होते हैं और सब कोई उनका निरादर करता है ताते जब मैं भी कृपणता करूंगा तब अवश्यही सब लोगों के अभाव को प्राप्त होऊंगा सो बूझ करके जो उपाय कृपणता का कहा था सो यही है पर जब ऐसे विचार करके कृपणता दूर न होवे तब करतूति करके इस प्रकार उपाय होताहै कि जिस समय इस मनुष्य के हृदय बिषे कुछ दया दान की श्रद्धा फुरे तब उसी समय श्रद्धा को पूर्णकरे और उस

सात्त्विकी संकल्प को व्यर्थ न डाले इसी पर एक वार्त्ता है कि एक सन्त मल त्यागने के स्थानविषे गये थे उसी समय विषे एक याचक ने आकर कहा कि मुझको कुछ देवो तब उन्होंने उसी स्थान से अपने अङ्ग का वस्त्र उतारकर अपने सेवक को डारदिया और इस प्रकार कहा कि यह वस्त्र इस याचक को देदो बहुरि जब उस स्थान से बाहर निकले तब टहलुवे ने कहा कि तुमने इतना धैर्य क्यों नहीं किया? कि जब बाहर निकलते तब उठायदेते तब उन्होंने कहा कि मैं इस वार्त्ता से डरा था कि अब तो मेरे हृदय विषे देने का संकल्प फुरा है पर जब और संकल्प उपजकर इस श्रद्धा को गिरायदेवे तब मेरा अकाज होवेगा पर यह वार्त्ता भी निस्सन्देह है कि धन के दिये विना किसी प्रकार कृपणता दूर नहीं होती जैसे प्रियतम के बिछुरे विना प्रेमी का मोह नहीं छूटता तैसेही धन की प्रीति को दूर करनेका उपाय यही है कि धन का त्यागकरे ताते जब विचार करके देखिये तब इस धन को समुद्र विषे डालदेना भी कृपणता से विशेष है और धन का संग्रह महानिन्द्य है पर कृपणता को दूर करने का एक उत्तम उपाय यह भी है कि अपने मन को यश और मान का लालच देवे और उदारता विषे सावधान होवे अर्थ यह कि मन की अभिलाषा करके धन की तृष्णा को घटावे बहुरि जब धन की तृष्णा से मुक्तहोवे तब यत्न करके मान की अभिलाषा को भी दूर करे सो इसका दृष्टान्त यह है कि जैसे प्रथम बालक को माता के दूधसे वर्जित किया चाहते हैं तब उसको किसी और खान पान का लालच देकर पुचकार रखते हैं बहुरि जब वह दूध उसको विस्मरण हो जाता है तब उसको उस खानपान का भी अधिक लालच नहीं रहता तैसेही एक यह भी भला उपाय है कि एक स्वभाव की अधिकता करके दूसरे स्वभाव को घटावे और पीछे उस स्वभाव की अधिकता को भी दूर करदेवे जैसे किसी के वस्त्र में रुधिर लगाहोवे तब चाहिये कि प्रथम उसको लद्दीसे धोयलेवे बहुरि जब रुधिर का दाग दूर होजावे तब शुद्ध जल करके लद्दीकी अपवित्रता को भी दूर करदेवे तैसेही जब मान की अभिलाषा विषे बन्धायमान न होजावे तब मान करके कृपणता को दूर करना विशेष है पर जब और भावकरके देखिये तब यह वार्त्ता भी प्रसिद्ध है कि यद्यपि मान विषेही आसक्त होकर कृपणता को दूरकरै है तौभी कृपणता के बन्धन से मानका बन्धन कोमल है क्योंकि

कृपणता और मान दोनों यद्यपि मन के स्वभाव हैं पर तौभी इस विषे इतना भेद है कि जैसे एक स्वप्न का नाश होवे और एक स्वप्न विषे मल का स्थान भासे सो यद्यपि जाग्रत् की अपेक्षा करके वह दोनों ठौर मिथ्या हैं पर स्वप्न विषे उस मलिन स्थान से नाश विशेष है ताते प्रसिद्ध हुआ कि मान के लालच करके उदारता निन्द्य नहीं इस करके कि मान और दिखलावा भजन विषे निस्सन्देह निषिद्ध कहे हं व्यवहार विषे नहीं तात्पर्य यह कि कृपण को मानधारी उदार पर दोष रखना प्रमाण नहीं क्योंकि कृपणता की मलिनता से मानसहित उदारता करनीही उत्तम है ताते जिस पुरुष को कृपणता के दूर करने की इच्छा होवे तब चाहिये कि जबलग उदारता का स्वभाव दृढ़ न होजावे तब लग यत्न करके भी धन को देवे ताते केते सन्तजनों ने इस प्रकार भी किया है कि जिज्ञासु को जब देखते थे कि एक स्थान विषे आसक्त होगया है तब उस स्थान से और स्थान विषे स्थित करते थे और फिर उस स्थान की सामग्री भी अर्थियों को उठादेते थे और जब देखते थे कि इस प्रीतिमान् की सुरति किसी नये वस्त्रविषे आसक्त हुई है तब वह वस्त्र भी किसी याचक को दिवाय देते थे इसी पर एक वार्त्ता है कि एक प्रीतिमान् महापुरुष के पास पाँव का जूता ले आयाथा सो उन्होंने पहरलिया पर जब भजन करनेलगे तब उसी जूते की ओर दृष्टि गई तब ऐसा कहने लगे कि मेरा पुराना जोड़ाही लेआओ ताते प्रसिद्ध हुआ कि धन के त्याग विना धन का मोह नहीं टूटता सो जबलग इस पुरुष का हाथ खुला हुआ नहीं होता तबलग हृदय भी नहीं खुलता इस करके कि जब यह मनुष्य निर्द्धन होता है तब उदार और खुला हृदय रहता है और जब उसके पास कुछ धन इकट्ठा होजाता है तब संचने के रस विषे बन्धायमान होजाता है और ऐसा कृपण होता है कि खर्च नहीं करसक्ता और जो पदार्थ इसके पास नहीं होता तब स्वाभाविकही उससे निर्मोह रहता है इसीपर एक वार्त्ता है कि एक राजा के आगे किसी पुरुष ने रत्नों का जड़ा हुआ कटोरा भेंट राखा था तब राजा ने उस कटोरे को देखकर एक बुद्धिमान् से पूछा कि यह कटोरा कैसा आश्चर्यरूप है? तब उस बुद्धिमान् ने कहा कि यह कटोरा शोक और निर्द्धनताई का बीज है क्योंकि जब टूट जावेगा तब इसके समान और कटोरा पाया न जावेगा सो इसही निर्द्धनताई करके तुमको शोक

होवेगा और जब यह कटोरा तेरे पास न था तब तू निर्द्धनताई और शोक से मुक्त था सो दैवसंयोग कर वह कटोरा टूटगया और राजा को अधिक शोक प्राप्त हुआ तब कहनेलगा कि उस बुद्धिमान् ने सत्य कहाथा (अथ प्रकटकरने मन्त्र धन के) ताते जान तू कि यह धन सर्प की नाईं है कि इस विषे विष और अमृत दोनों पाये जाते हैं ताते मैंने पीछे भी वर्णन किया है कि मन्त्र के सीखे विना धनरूपी सर्प को हाथ लगाना प्रमाण नहीं है पर जब कोई ऐसा कहे कि केते सन्तजन आगे भी हुये हैं सो जब धन का रखना अयोग्य होता तो वे किस निमित्त रखते सो इसका दृष्टान्त यह है कि जैसे कोई बालक किसी सपेरे के हाथमें सर्प को देखे और इस प्रकार कहे कि यह पुरुष सर्प को कोमल जानकर पकड़ता है ताते वह बालक भी सर्पपर हाथ डाले तब शीघ्रही नष्ट होजावे सो धनरूपी सर्प के मन्त्र पांच हैं एक यह है कि प्रथम धनके कार्य को पहिंचाने सो धन की उत्पत्ति का कारण यह है कि इस करके शरीर के खान पान और वस्त्र का कार्य सिद्ध होताहै और शरीर इन्द्रियों का स्थान है और इन्द्रियां बुद्धि की टहल करनेवाली हैं और बुद्धि का काम यह है कि इन्द्रियों करके भगवत् की कारीगरी को देखकर महाराज की सामर्थ्यता को पहिंचाने सो भगवत् की पहिंचान करके जीवात्मा शुद्ध होताहै ताते जिस पुरुष ने इस भेद को समझा है वह कार्यमात्रही धनको रखता है और अधिक आसक्त नहीं होता १ बहुरि दूसरा मन्त्र यह है कि प्रथम धन की उत्पत्ति छल और पाप से रहित करे और विचार की मर्याद अनुसार खर्चे २ बहुरि तीसरा मन्त्र यह है कि शरीर के कार्य से अधिक संग्रह न करे और जब कोई अर्थी देखे तब कृपणता करके उससे दुराय न राखे अथवा जब अधिक उदारता न करसके तबभी मर्याद के अनुसार दानदेवे ३ बहुरि चौथा मन्त्र यह है कि अपनी जीविका संयम के साथ करे और अधिक भोगों के विषे धन को खर्च न करे क्योंकि संयमसहित जीविका करनी निर्दोष व्यवहारसे भी विशेष है ४ बहुरि पांचवां मन्त्र यह है कि धनके संचने और खर्च करने विषे मंशा शुद्ध राखे और शुद्ध मंशा यह है कि जब किसी पदार्थ को अङ्गीकार करे तब उस करके अचिन्त्य भजनविषे दृढ़ होने की मंशा राखे और जब किसी पदार्थ का त्यागकरे तब भी माया की सामग्री से निर्बन्ध होने के निमित्त त्यागे तात्पर्य यह कि सर्वथा अपने चित्त की

चितवनि धर्महीके मार्ग बिषे सावधानकरै ५ ताते जो पुरुष इस भेदको समझ कर धन को रखता है तब उसको धन के संग्रह करके दोष नहीं होता और धन का विषय उसको स्पर्श नहीं करता इसी पर अलीसन्त ने कहा है कि जब कोई पुरुष सर्व पृथ्वी के धनको संग्रहकरे और सर्व मंशा उसकी शुद्ध होवे तब निश्चय निर्दोषही रहता है और वह वैरागी है और जब कोई पुरुष केवल असंग्रही होवे पर मंशा उसकी निष्काम न होवे तब वह वैराग्यवान् नहीं कहाजाता ताते चाहिये कि जिज्ञासु का हृदय सर्वथा भगवत् के भजन की ओर सम्मुखरहे तब उसकी क्रिया सफल होती है और उसका भोजन करना और मल त्यागनाभी पुण्यरूप होता है क्योंकि यह सबही क्रिया शरीर को चाहिये हैं और धर्म के मार्ग बिषे शरीर का सम्बन्ध है ताते शुद्ध मंशाकरके सर्वकर्म फलदायक होते हैं पर बहुत मनुष्य अचेतता करके धनरूपी सर्प के मन्त्रों को जान नहीं सके और मन की शुद्धता को भी नहीं पहिंचानते अथवा जब जानतेभी हैं तब करतूति बिषे दृढ़ नहीं होते ताते उनको यही विशेष है कि धनकी अधिकता का त्यागकरें क्योंकि यद्यपि यह पुरुष धन की अधिकता करके भोगोंकी अधिकता बिषे आसक्त न होवे तौभी संचने और रखने की विक्षेपता को पावता है इसीपर एक वार्त्ता है कि एक प्रीतिमान् महापुरुष के प्रियतम थे और उनके पास धन भी बहुत था सो एकबार उनके बणिज ब्योपार की संप्रदाय मन देश से लेकर लोग आये और ऊंटों के शब्द का नगर में बड़ा शोर हुआ तब वह शोर सुनकर आयशा महापुरुष की स्त्री ने कहा कि महापुरुष ने सत्य कहाथा सो यही वार्त्ता किसी ने उस प्रीतिमान् को सुनाई तब वह अधीन होकर आयशाके निकट आये और पूछनेलगे कि महापुरुष ने क्या कहाथा? तब आयशा ने कहा कि एकबार महापुरुष ने इस प्रकार कहाथा कि जब हमने सूक्ष्मदृष्टि करके ध्यान बिषे स्वर्ग को देखा तब केते वैराग्यवान् वहां दृष्टिआये पर हमने स्वर्गबिषे धन-वान् जाता हुआ कोई नहीं देखा पर सब वैराग्यवानों से पीछे एक अमुक प्रीति-मान् चला जाता था सो चलने को समर्थ न होता था ताते यत्न करके गिरता गिरता स्वर्ग बिषे जाय प्राप्तहुआ सो जब यह वार्त्ता उन प्रीतिमान् ने सुनी तब प्रसन्न होकर सब ऊंट और जो कुछ उनके ऊपर वस्तु थी सो अर्थियों को उठाय दी और जेते दास संग थे सो सब मुक्त करदिये और ऐसा कहनेलगे कि मैंभी

किसी प्रकार वैराग्यवानों के साथ जाय पहुँचूं तो भला है इसीपर एक और प्रीतिमान् ने कहा है कि जब मैं तीनसहस्र रुपया पाप से रहित नित्य प्रति उत्पन्न करूं और उसको धर्मही के अर्थ खर्च करूं और भजन स्मरण विषे भी सावधान रहूं तौ भी मैं धन की विक्षेपता को नहीं चाहता तब किसी ने पूछा कि तुम ऐसे निर्दोष धन को क्यों नहीं चाहते तब उन्होंने कहा कि यद्यपि मैं अपनी बुद्धि के अनुसार ऐसी शुद्धता करूं तौ भी मुझसे परलोक विषे पूछेंगे कि तैंने यह धन क्योंकर उत्पन्न किया था और किस प्रकार लगाया था सो मैं अपने विषे इतने प्रश्नोंके उत्तरों की सामर्थ्य नहीं देखता इसी पर महापुरुष ने कहा है कि जिन पुरुषों ने पापसहित धन उपजा करके पापों विषे खर्चा है सो वे भी नरकगामी होवेंगे और जिन्हों ने पापरहित धन उत्पन्न करके भोगों विषे लगाया है ते भी नरक को प्राप्त होवेंगे और जिन्हों ने पापकृत धन दान किया होवेगा ते भी नरक ते न छूटेंगे बहुरि जिसने पाप से रहित धन उपजाया होवेगा और धर्म ही के अर्थ लगाया होवेगा तब उसको परलोक विषे स्थित करके विचार करेंगे कि मत भजन से विमुख रहाहोवे अथवा अधिक भोगों विषे बिचरा होवे अथवा दान करके अभिमानी हुआ होवे अथवा किसी सम्बन्धी और निर्द्धन पड़ोसी की सुरति न ली होवे अथवा विधि संयुक्त महाराज के उपकार का धन्यवाद न किया होवे इसी प्रकार धनवान् से एक २ वार्त्ता पूछेंगे सो जब कुछ अवज्ञा हुई होवेगी तब निस्संदेह ताड़ना होवेगी बहुरि महापुरुष ने कहा है कि मैंने इसी निमित्त निर्द्धनताई को अङ्गीकार किया है कि और लोग भी निर्द्धनताई को भला जानें बहुरि एकबार महापुरुष अपनी पुत्री के द्वारपर एक प्रीतिमान् के साथ जाय खड़ेहुये और पूछनेलगे कि हम भीतर आवें तब पुत्री ने कहा बहुत अच्छा पर मेरे अङ्गपर वस्त्र थोड़ा है तब महापुरुष ने अपना वस्त्र उतारकर भीतर डाल दिया बहुरि जब भीतर गये तब कहनेलगे कि हे पुत्री! तेरी क्या अवस्था है? तब पुत्री ने कहा कि मैं रोग और भूख करके अति आतुर हूं और आहारमात्र भी हाथ कुछ नहीं लगता ताते अब मेरे विषे भूख सहने की सामर्थ्य नहीं तब महापुरुष ने कहा कि हे पुत्री! तू अधैर्य न कर मुझ को भी तीनदिन भूखेही व्यतीत हुये हैं सो यद्यपि मैं कुछ महाराज से मांगूं तो निस्सन्देह मुझ को प्राप्तहोवे पर मैंने माया के सुखों से विरक्त होकर परलोक

ही के सुखों को अङ्गीकार किया है ताते मैं किसी पदार्थ की याचना नहीं करता बहुरि पुत्री के शीश पर हाथ रखकर कहनेलगे कि तू इसही वैराग्य करके सर्व स्त्रियों से उत्तम होवेगी और परमसुख को पावेगी ताते धैर्य धरकर भगवत् का धन्यवाद कर इसीपर एक और वार्त्ता है कि ईसा महात्मा के साथ एक पुरुष मार्ग विषे संगी हुआ था और तीन रोटी उनके पास थीं सो जब जातेहुये नदी के तीरपर प्राप्त हुये तब दोनों पुरुषों ने दो रोटी भोजन करलीं बहुरि जब ईसाजी नदी की ओर गये तब दूसरे पुरुषने तीसरी रोटी भी खाली सो ईसाजी ने आकर पूछा कि तीसरी रोटी किसने ली है तब उसने कहा कि मैं तो नहीं जानता बहुरि जब आगे चले तब एक मृग मिला सो उसको मारकर दोनों ने भोजन किया और फिर भगवत् का नाम लेकर ईसाजी ने उसको सजीव कर दिया और संगी से कहनेलगे कि जिस महाराज की तैंने इतनी सामर्थ्य देखी है सो तिसकी दुहाई करके कह कि तीसरी रोटी कहां है बहुरि उसने कहा कि मुझको कुछ खबर नहीं फिर वहां से आगे चले तब आगे एक नदी आई सो उस पुरुष का हाथ पकड़कर सूखेही पार उतरगये बहुरि ईसाजी ने कहा कि जिस महाराज की सामर्थ्य करके तू सूखाही उतर आया है सो तिसको अन्तर्यामी जानकर कह कि तीसरी रोटी कहां है तब उस पुरुषने कहा कि मैं तो नहीं जानता बहुरि जब आगे गये तब वहां बहुतसा रेत इकट्ठा किया और भगवत् का नाम लेकर उसको स्वर्ण करदिया तब उस स्वर्ण के तीन भाग करके ईसाजी ने इस प्रकार कहा कि एक भाग मेरा और एक भाग तेरा और एक भाग उसका जिसने तीसरी रोटी खाई है तब वह पुरुष लोभ करके कहने लगा कि वह रोटी तो मैंनेही खाई थी तब ईसाजी ने कहा कि सोनेके तीनों ढेर तूही ले इतना कहकर चलेगये और वह पुरुष वहांहीं बैठारहा बहुरि दो पुरुष और वहां आन प्राप्त हुये और यह मंशा करनेलगे कि इस पुरुष को मारकर सब सोना हमहीं लेजावें तब आधा २ बांटलेवें सो यही वार्त्ता मानकर एक पुरुष नगर विषे गया कि मैं तुम्हारे निमित्त भोजन लेआऊं बहुरि उसके चित्त विषे फुरा कि मैं उसको सोनेके ढेर किस निमित्त देताहूं ताते रोटियोंके विषे विष मिलालाया और वह दोनों पुरुष जो सोनेके ढेरपर बैठेरहे थे तिन्होंने यह मंशा धारी भी कि जब वह पुरुष भोजन लेकर आवे तब उसको मारडालें और सब धन हमहीं बांटलेवें

बहुरि जब वह पुरुष आया तब उन्होंने शीघ्रही मारडाला और पीछे वह मिलकर भोजन करनेलगे तब बिषके प्रवेशकरके वहभी मृतक हुये और सोनेके ढेर तीनों वहांहीं पड़ेरहे बहुरि जब ईसाजी फिर उसी मार्ग आये तो देखा कि सोने के ढेर योंहीं पड़े हुये हैं और तीन पुरुष मृत्यु को प्राप्त हुये हैं तब अपने और प्रियतमों से कहा कि यह माया ऐसीही छलरूप है ताते भयसंयुक्त इसका त्याग करो तात्पर्य यह कि यद्यपि पुरुष बुद्धि और बलसंयुक्त होवे तौभी अधिक धनका अङ्गीकार न करे तो भला है क्योंकि बहुत से सर्प पकड़नेवाले पुरुष सर्पही के डसने करके मृतक होते हैं जिसके ऊपर भगवत् अपनी सहायता करे और उसको सब विघ्नों से बचायलेवे तब उसकी वार्त्ता वचन से अगोचर है॥

सातवां सर्ग॥

मान बड़ाई की प्रीति के उपाय के वर्णन में॥

ताते जान तू कि मान और बड़ाई और अपनी स्तुति की प्रीति करके बहुत से लोगोंकी बुद्धि का नाश हुआ है और मानहीं की प्रीति करके वैरभाव और और अनेक पापों बिषे आसक्त होते हैं क्योंकि जब मान की अधिक प्रीति बढ़ती है तब धर्म के मार्ग से भ्रष्ट होजाता है और उस पुरुष का हृदय झूठ और कपट बिषे यही बध्यमान होताहै इसीपर महापुरुष ने कहा है कि धन और मानकी प्रीति कपट को इस प्रकार बढ़ाती है कि जैसे खेती को जल शीघ्रही बृद्धि करलेता है इसीपर अलीसन्त ने भी कहा है कि सर्वसंसार को दो अव-गुणों ने नाश किया है सो एक वासना के अनुसार भोगोंबिषे बिचरना और दूसरे मान की प्रीतिबिषे आसक्त होना ताते इन दो विघ्नों से कोई बिरला ही छूटता है जो मान और स्तुति की चाह न करे और माया के भोगों से विरक्त रहे इसीपर महाराज ने भी कहा है कि परलोक की भलाई उसही को प्राप्त होती है जिसको मान और बड़ाई की अभिलाष कुछ न होवे और महापुरुष ने कहा है कि जिन पुरुषों की अवस्था बाहर से कुचील भासती है और लोग उनको बावरा जानकर उनका वचन नहीं सुनते और धनवान् भी उनका आदर नहीं करते पर हृदय उनका भगवत् के प्रेम करके ऐसा उज्ज्वल है कि उनकी दया करके सब लोगों को शुद्धता प्राप्त होती है सो परमसुख के वही अधिकारी हैं और योंभी कहा है कि इस संसार बिषे एक ऐसे पुरुष होते हैं कि जब किसीसे

कुछ मांगें तब कोई पुरुष उनको एक पैसा भी नहीं देता पर जब महाराज से वैकुण्ठ की चाहकरें तौभी उनको सुगमही प्राप्त होता है इसीपर उमरनामी सन्त ने कहा है कि मैंने एक प्रीतिमान् को एकान्त ठौर बिषे रोते देखा तब मैंने उस से पूछा कि तू क्यों रोता है? तब उसने कहा कि मैंने महापुरुष के मुख से इस प्रकार सुना है कि थोड़ा कपट भी मनमुखता है और भगवत् ऐसे वैरागियों को प्रियतम रखता है जो आपको लखातेही नहीं और कोई उनको पहिंचान भी नहीं सक्ता पर हृदय उनका महाउज्ज्वल है और संशयरूपी अँधेरे से मुक्त हुये हैं इसी पर इब्राहीम अदहम सन्त ने कहा है कि जिसको इन्द्रियादिक भोग और अपनी स्तुति प्रिय लगती है सो ऐसा मनुष्य धर्म के मार्ग बिषे सच्चा नहीं कहा जाता है इसी पर एक और सन्त ने कहा है कि सच्चे पुरुष का चिह्न यह है कि आपको किसी प्रकार लखावे नहीं इसी पर हसनबसरी सन्त ने कहाहै कि जिस पुरुष की बुद्धि दृढ़ नहीं होती और लोग उसका सन्मान करते हैं तब उस का हृदय स्थिर नहीं रहता बहुरि एकवार अयूबनामी सन्त मार्ग बिषे चलेजाते थे सो बहुत पुरुष उनके लगचले तब कहनेलगे कि भगवत् इस वार्त्ता को भली प्रकार जानता है कि मैं अपने हृदय बिषे जगत् के आदर को भला नहीं जानता और इस आदर को देखकर भगवत् के भय करके सकुच जाता हूं इसी पर सिफयोंसौरी सन्त ने कहा है कि सन्तजनों ने आपको लखानेवाले को वस्त्र भी निन्द्य कहा है अर्थ यह कि जिस वस्त्र नवीन अथवा पुराने करके यह मनुष्य कुछ विशेष भासे सो ऐसा वस्त्र रखना अयोग्य है और जिज्ञासु को इस प्रकार विचारना प्रमाण है कि कोई इसकी वार्त्ता न चलावे इसीपर बशरहाफी सन्त ने कहाहै कि मानधारी पुरुष लोक और परलोक बिषे भ्रष्ट हो जाता है (अथ प्रकट करना रूप मानका) ताते जान तू कि जैसे धनवान् का अर्थ यह है कि सम्पदा और धन की सामग्री उसके पास होती है तैसेही ऐश्वर्यवान् का अर्थ यह है कि लोगों के चित्त उसके वशीकार होते हैं और उसकी शक्ति सर्वहृदयों बिषे प्रवेश करती है सो जिनका हृदय इसके अधीन हुआ तब उन का शरीर और धन भी इसही के वशीकार होता है बहुरि यह हृदय तिसहीके अधीन होता है कि जिसकी भलाई और पूर्णता पर इसकी प्रतीति होती है सो भलाई और पूर्णता विद्या और भले स्वभाव करके होती है अथवा स्थूल ऐश्वर्य

करके भी इस निमित्त बड़ाई होतीहै कि सबलोग मान और ऐश्वर्य को विशेष जानते हैं तात्पर्य यह कि जब यही मनुष्य किसीके सूक्ष्म अथवा स्थूल गुण को निश्चय करता है तब स्वाभाविकही इसका हृदय उसके अधीन होजाताहै ताते चित्त की प्रसन्नतासहित उसकी आज्ञा को मानता है और रसना करके उसकी महिमा करता है और शरीर करके उसकी सेवा विषे सावधान होता है जैसे टहलुआ सर्वप्रकार अपने स्वामी के अधीन होताहै तैसे यह भी उसके अधीन होजाता है पर जब विचार करके देखिये तो और टहलुवे भय करके स्वामी की टहल करते हैं और गुण की प्रतीतिद्वारा प्रीतिसंयुक्त उसके अधीन होता है ताते मान का अर्थ यह है कि लोगोंके चित्त इसके वशीकार होवें पर इस मनुष्य को तीनकारणों करके धनकी अभिलाष से मान की प्रीति अधिक होती है सो प्रथम कारण यह है कि धन भी मनोरथों की पूर्णताई के निमित्त प्रिय लगताहै और मानरूपी पदार्थ ऐसा है कि मानधारी मनुष्यों को स्वाभाविक ही धन प्राप्त होता है और जब कोई नीच पुरुष धन करके मान को प्राप्त किया चाहे तब नहीं होता १ और दूसरा कारण यह है कि धन को चोर और राजदण्ड आदि अनेक भय होते हैं और मानी को ऐसे विघ्न नष्ट नहीं करसके २ बहुरि तीसरा कारण यह है कि धनकी उत्पत्ति बड़े यत्नों करके होती है और मान यत्न विनाही बढ़ता जाता है क्योंकि जब एक पुरुष की प्रतीति दृढ़ हुई होवे तब उसके मुख से महिमा सुनकर देश देशान्तरों विषे यश और मान पसर जाता है अधिक और लोगों के चित्त वशीकार होजाते हैं ताते धन और मान एक तो इस निमित्त जीवको प्रिय लगते हैं कि इन करके सर्व मनोरथों की पूर्णता होती है और दूसरे मनुष्यों का यह भी स्वभाव है कि यद्यपि ऐसा जाने कि मैं अमुक देश में पहुँचूंगाही नहीं तौ भी देशान्तरपर्यन्त अपना मान चाहता है सो इसका भेद यह है कि इस मनुष्य का हृदय देवताओंकी नाईं उत्तम जात है और ईश्वर का प्रतिबिम्ब है जैसे महापुरुष ने कहा है कि ये सर्वजीव महाराज की सत्तारूप हैं ताते प्रसिद्ध हुआ कि सर्व प्रकार इस जीव का सम्बन्ध भगवतही के साथ है इसी कारण से यह भी अपनी बड़ाई को चाहताहै सो जिस मनुष्य विषे कुछ सामर्थ्यता होती है तब स्वाभाविक ही उसके हृदयविषे अपने ऐश्वर्यकी अभिलाष आन फुरती है जैसे फिर औननामी एक

राजा भगवद्विमुख ने कहा था कि मैं सर्व जगत् का ईश्वर हूं सो यह स्वभाव सर्व मनुष्यों पर प्रबल है और ईश्वर का अर्थ यह है कि मेरे समान और कोई नहीं काहे से कि जिसका कोई विरोधी अथवा समान होता है तब उसका ऐश्वर्य खण्डित होजाता है जैसे सूर्य की पूर्णताई इस कारण करके प्रसिद्ध है कि उस की नाईं और कोई नहीं और सबही प्रकाश उसके आश्रित हैं तैसेही सर्वअङ्गों करके पूर्ण एक भगवतही है और सर्व विषे उसही की सत्ता भरपूर है और वह सर्वदा सत्यस्वरूप है ताते उसकी सत्ता बिना कोई पदार्थ सत्य नहीं भासता इसी कारण से कहा है कि सर्व पदार्थ उसही का प्रतिबिम्ब है और उसही के आश्रित हैं जैसे धूप सूर्य के आश्रित होती है इस करके प्रसिद्ध हुआ कि सब का ईश्वर एक महाराज है सो इस मनुष्य का भी यही स्वभाव है कि सर्वथा अपने ऐश्वर्य और पूर्णताई को चाहता है और यही इच्छा करता है कि सब कोई मेरे अधीन होवे पर अविद्या और शरीर के सम्बन्ध करके ऐसी सामर्थ्य को प्राप्त नहीं होसक्ता चैतन्यता के अंश के संयोग करके इस विषे भी ईश्वर का स्वभाव फुरता है पर तौ भी मलिन अहङ्कारों और विकारों करके अत्यन्त पराधीन हो रहा है ताते सर्व पदार्थों को अपने अधीन कर नहीं सक्ता और जीव की पराधीनता इस प्रकार है कि एक सृष्टि तो इसकी बुद्धि और बल से अगोचर है जैसे आकाश की पुरियां देव तारामण्डल और भूत प्रेत आदिक जीव और पाताल विषे जो सृष्टि है बहुरि पर्वतों और समुद्रों विषे जो नाना प्रकार की रचना है सो महाराजही ने रची है सो इन पर मनुष्य की सामर्थ्यता किसी प्रकार नहीं पहुँचती पर यद्यपि यह मनुष्य इस सामर्थ्यता से हीन है तौ भी अपने स्वभाव करके यह यत्न करता है कि मैं इन सृष्टियों के भेदको पहिंचानूं जैसे कोई शतरञ्ज का खेल न जाने तौ भी इसप्रकार चाहता है कि मैं शतरञ्जकी गोटोंको तो पहिंचानूं और जीत हार का ज्ञाता होजाऊं सो यह जानने की अभिलाष भी प्रबलता और ऐश्वर्य का अंग है बहुरि दूसरी सृष्टि ऐसी है कि उसपर इस मनुष्य का बल वर्त्तमान होता है जैसे बनस्पति और पशुआदिक जो २ धरती पर रचना हैं सो तिनको अपने वशीकार करलेता है और सर्व पदार्थों से उत्तम जो मनुष्यों के हृदय हैं सो तिनको भी अपने अधीन किया चाहता है और अपनी सामर्थ्यताके वृद्ध होनेको प्रियतम रखताहै सो मानका अर्थ यही है कि यह मनुष्य

परमेश्वरका अंश है ताते यह भी अपना ऐश्वर्य चाहता है पर इस बिषे अविद्या यह है कि धन करके अपनी असमर्थता जानताहै तातें धन और मानको प्रियतम रखता है पर जब कोई इस प्रकार कहे कि जब मान और ऐश्वर्य की अभिलाष का स्वभाव इस करके फुरता है कि यह जीव महाराज का अंश है और परमेश्वर के साथ इसका सम्बन्ध है तब इस करके प्रसिद्ध हुआ कि मान और बड़ाईकी चाह करनी भी अयोग्य नहीं क्योंकि ईश्वर की पूर्णताई विद्या और समर्थताई करके होती है सो जैसे विद्या का ज्ञाता होना विशेष है तैसेही धन और मान जो समर्थताई का कारणहै सो इनकी अभिलाष करनी भी विशेष हुई तब इसका उत्तर यह है कि यद्यपि बूझ और समर्थता इस मनुष्य की पूर्णताई है और यही गुण महाराज के भी हैं पर तौभी इस मनुष्य को भगवत् ने उत्तम बूझकी ओर चलने का मार्ग दिया है और ऐश्वर्य की ओर मार्ग नहीं दिया क्योंकि जिस समर्थता करके भगवत् सर्व ब्रह्माण्डों को उत्पन्न और स्थित करताहै सो तिस समर्थता को यह जीव अपने यत्न करके पाय नहीं सका और बूझरूपी पदार्थ ऐसाहै कि उसकी वृद्धि करके यथार्थ ज्ञान को पहुँचाताहै पर धन और मानका जो झूठा बल है सो इसकी वृद्धि के साथ समर्थताई की पूर्णता को नहीं पाता और यद्यपि धन और मानकी शक्ति करके आपको यह पुरुष बलवान् जानता है तौभी यह स्थूल बल स्थिर नहीं रहता क्योंकि धन और मान का सम्बन्ध इन्द्रियादिक पदार्थों के साथ होता है ताते मृत्यु के समय इससे दूर होजाते हैं और जो पदार्थ मृत्यु के समय दूर होवे सो तिसको सत्तास्वरूप नहीं कहते ताते उस की प्राप्तिविषे अपना समय व्यतीत करना मूर्खता है पर वह बल जो इसका सर्वदा संगी रहता है सो यह है कि जिस पदार्थ करके बूझकी प्राप्ति होवे क्योंकि बूझ का सम्बन्ध केवल हृदयही के साथ है और हृदय सत्यस्वरूप है ताते बूझ-वान् पुरुष इन्द्रियादिकदेश को त्याग जाता है तब बूझ का प्रकाश सदैव उस के साथ रहताहै और उसही प्रकाश करके महाराजके दर्शन को देखताहै और आनन्द को पावता है सो वह आनन्द कैसा है? कि उसके निकट स्वर्गादिक सुख भी तुच्छ भासते हैं इसी कारण से कहाहै कि बूझ का सम्बन्ध महाराजही के स्वरूप और उसके गुणके साथ होताहै ताते पूर्ण बूझ का परिणाम कदाचित नहीं होता तात्पर्य यह कि नाशवन्त पदार्थका भाव कदाचित् नहीं होता और

जो सत्यस्वरूप है सो तिसका अभाव नहीं होता पर यह विद्या कि जिसका सम्बन्ध स्थूल पदार्थों के साथ है सो तिसका मोलही कुछ नहीं जैसे व्याकरण और ज्योतिषादि विद्या हैं सो यह सबही स्थूल हैं और व्याकरण आदिक की विशेषता भी इस करके होती है कि उसको पढ़कर सन्तजनों के वचनों का वेत्ता होवे और वचनों का वेत्ता होकर भगवत् के स्वरूप को पहिंचाने और भगवत् मार्गविषे जो कठिन घाटियाँ हैं सो तिनको उल्लङ्घन करने के यत्न को समझे तात्पर्य यह कि जिस पदार्थ का परिणाम और नाशता होवे सो तिसकी बूझ भी नाशवन्त होती है और अविनाशी बूझ भगवत्की पहिंचान है सो परिणाम और नाशता से रहित है पर जिस पुरुष को जितनी बूझ प्राप्त होती है सो वह तितनाही भगवत् के निकट पहुँचता है ताते यह बूझ भी यथार्थरूप हैं और यथार्थ सामर्थ्य यह है कि जिसके बल करके भोगों के बंधन से मुक्त होवे काहे से कि जिस पुरुष का हृदय भोगवासनाविषे बंधवान् है वह वासनाही का दास है और वासना ही की प्रबलता इसकी हीनता है और वासनासे मुक्त होना इस जीवकी पूर्णताई है और सम्पूर्णताई करके यह जीव देवतों के निर्मल स्वभाव को पहुँचताहै और परिणाम से रहित होता है ताते इस जीव की पूर्णताई यथार्थ ज्ञान और भोगों से विरक्त होती है सो अविनाशी रूप है और धनवान् की पूर्णताई नाशवन्त है सो प्रसिद्ध हुआ कि सबही मनुष्य अपनी पूर्णताई को जानतेही नहीं और अपनी हीनता को पूर्णता जानकर पड़े ढूंढ़ते हैं और सर्वदा दुःखी रहते हैं और मूर्खता करके स्थूल पदार्थों की ओर सम्मुख हुयेहैं और वास्तव में जो इनकी पूर्णताई है सो तिससे सर्वदा विमुख हैं इसी कारणसे अपनी हानि की ओर चलेजातेहैं पर ऐसे जान तू कि यह मान भी धनकी नाई सर्वदा निंद्य नहीं अर्थ यह कि जैसे जीविकामात्र धन का संग्रह भी प्रमाण है तैसेही कार्यमात्र मान भी लाभदायक होताहै और जब धन और मान की अधिकता बिषे इस मनुष्य का हृदय आसक्त होवे तब निस्संदेह परलोकके मार्ग से दूर रह जाताहै सो मान का कार्य यह है कि मनुष्य को सेवक और मित्र सहायक और राजा रक्षा करनेवाला अवश्यही चाहिये सो यह सब तबहीं सिद्ध होते हैं जब उनके हृदय बिषे इसकी कुछ मानता होवे और इसको भला जानें ऐसेही जब पढ़ानेवाले के हृदयमें विद्यार्थी का मान कुछ न होवे तब उसको पढ़ावेही नहीं

और जब विद्यार्थी के हृदय में पढ़ानेवाले का मान कुछ न होवे तब उससे विद्या पढ़ न सके ताते प्रसिद्ध हुआ कि कार्यमात्र मान का संग्रह भी अयोग्य नहीं पर इस मान की प्राप्ति भी चार प्रकार करके होती है सो दो प्रकार निन्द्य हैं और दो प्रकार प्रमाण हैं पर वह दो प्रकार निन्द्य यह हैं कि एक तो अपने हृदय के भजन का दिखलावा करके मानको ढूंढ़ना और आपको भजनवान् दिखावना सो यह केवल दम्भ है काहेसे कि भजन भगवत् का निष्काम चाहिये सो जब भजन के सम्बन्ध करके मानकी प्राप्ति चाहे तब अयोग्य है १ और दूसरा प्रकार यह है कि जिस विद्याको यह पुरुष जानता न होवे और मान के निमित्त आपको उसका वेत्ता होय दिखावे तब यह भी अयोग्य है जैसे बिदेश बिषे जायकर कहे कि मैं ब्राह्मण हूं अथवा उत्तम जाति हूं अथवा असुक व्यवहार की विद्या जानता हूं पर जब वास्तव में न होवे और मान के निमित्त झूठ कहदेवे तब यह ऐसे होता है कि जैसे कोई पाप और छल के साथ धन की उत्पत्ति करे २ बहुरि दो प्रकार जो मान के निमित्त प्रमाण कहे थे सो यह है कि जिस क्रिया बिषे छल भी न होवे और भजन का दिखलावा भी न होवे तब उस क्रिया को प्रकट दिखावे और व्यवहार के कार्य बिषे अपने मान को वृद्ध कर लेवे तब यह वार्त्ता अयोग्य नहीं १ बहुरि दूसरा प्रकार यह है कि अपने पाप को दुरायकर अपना मान राखे और यह मंशा होवे कि जब मेरा अवगुण प्रसिद्ध होवेगा तब लोग मेरी निन्दा करेंगे तब मैं ढीठ होजाऊंगा सो इस प्रकार अपना मान रखना प्रमाण है पर इस निमित्त पाप को न दुरावे कि मुझको लोग साधु सन्त जानें २ (अथ प्रकट करना उपाय मान की प्रीतिका) ताते जान तू कि जब मान की प्रीति अधिक बढ़ती है तब यह भी हृदय बिषे दीर्घरोग उपजता है बहुरि इस रोग की निवृत्ति का उपाय किया चाहिये क्योंकि जब प्रथम ही इसका उपाय न करिये तब कपट दम्भ झूठ पाखण्ड वैरभाव ईर्षा इत्यादिक और भी अनेक पाप उपजते हैं ताते चाहिये कि धन और मान का इतनाही संग्रह करे जिस करके धर्मके मार्ग का निर्वाह होवे और अधिक आसक्त न होवे तब ऐसा बुद्धिमान् पुरुष रोगी नहीं होता क्योंकि वह धन और मान को प्रियतम नहीं रखता और उसकी मंशा यह होती है कि इन करके निश्चिन्त होकर भजनबिषे सावधान होऊं पर जिस पुरुष को मानही की अभि-

लाप बढ़ती है तब उसके चित्त की चितवनि सर्वदा लोगों की ओर रहती है कि यह लोग मुझको किस प्रकार जानते हैं और क्या कहते हैं और मुझपर कैसी प्रतीति रखते हैं ताते ऐसे रोग का उपाय करना अवश्यही प्रमाण है पर इसका उपाय भी बूझ और करतूति करके होता है सो बूझ यह है कि मानके विघ्नों का विचारकरे कि लोक और परलोक विषे मानी पुरुष दुःखी रहता है सो इस लोक का दुःख यह है कि मान की अभिलाषा करनेवाला पुरुष सर्वदा जगत् की मान और मनोहार विषे खेदवान् रहता है सो जब मान प्राप्त नहीं होता तब निर्लज्जता को पाताहै और जब प्राप्त होताहै तब केते शत्रु ईर्षा करनेवाले उपजआवते हैं और यह भी उनको मारनेके निमित्त वैरभाव विषे दृढ़ होताहै और शत्रुओं के छल से डरता रहता है ताते उसकी मंशा शुद्ध कदाचित् नहीं होती बहुरि जब शत्रुओं पर प्रबल होता है तौभी यह बड़ाई स्थिर नहीं रहती और क्षण विषे दूर होजाती है क्योंकि मान और बड़ाई का सम्बन्ध लोगों के मनके साथ होता है सो लोगों का मन समुद्र की लहरवत् पल २ विषे परिणाम को पावता है तात्पर्य यह कि जिस बड़ाई का मूल संसारी जीवों का मन होवे वह बड़ाई ही कुछ वस्तु नहीं होती काहेसे कि जब किंचित् भी संकल्प उनके चित्त विषे फुरता है तब वह बड़ाई नष्ट होजाती है पर यह मान जो किसी देश के राजसम्बन्ध करके होताहै सो यह तो महातुच्छरूप है क्योंकि जब राजा के हृदय विषे किंचित् भी चितवनि विपरीत फुरे तब अपने प्रधान को दूर करदेता है और उसकी मानता नष्ट होजाती है ताते प्रसिद्ध हुआ कि मानी मनुष्य इस लोक विषे सदैव इस प्रकार दुःखी रहता है और अल्पबुद्धि जीव इस वार्ता को नहीं पहिंचानते और जिनके बुद्धिरूपी नेत्र खुले हैं सो आपही इस प्रकार देखलेते हैं कि जब इस मनुष्य को उदय अस्त पर्यन्त निष्कण्टक राज्य होवे और सबही लोग उसको प्रणाम करें तो भी यह प्रसन्नता कुछ वस्तु नहीं क्योंकि जब यह मृत्यु होती है तब सबही सामग्री दूर होजाती हैं और अल्पकाल विषे वह आप ही नहीं रहता और उसकी प्रजा भी नहीं रहती सो जिस प्रकार बड़े २ चक्रवर्ती राजा आगे भी स्वप्न होगये हैं और कोई उनका स्मरण भी नहीं करता तैसेही यहभी स्वप्न होजावेगा ताते कुछ दिन की प्रसन्नता के निमित्त अमर राज्य को व्यर्थ करना बड़ी मूर्खता है इस करके कि जिस पुरुष का हृदय स्थूल

बड़ाई विषे बध्यमान होताहै सो तिसके हृदय से भगवत् की प्रीति दूर होजाती है और जो मनुष्य भगवत् की प्रीति विना आनकी प्रीति के साथ बांधा हुआ परलोक विषे पहुँचता है तब अवश्यही दीर्घ दुःख का अधिकारी होताहै सो मान को दूर करने का बूझकरके यही उपाय है और करतूति के साथ दो प्रकार करके उपाय होताहै सो प्रथम यह है कि जिस देश विषे इसकी मान प्रतिष्ठा होवे उस देश को त्याग जावे और तहां जायरहै जहां इसको कोई पहिंचानेही नहीं सो यह भी उत्तम उपाय है क्योंकि जब अपने नगर विषे एकान्त ठौर बैठता है तब लोग उसको त्यागी जानकर अधिक मान करते हैं ताते मानके रस विषे आसक्त होजाताहै और जब कोई उसकी निन्दा करताहै तब दुःखी होताहै और अपने दूषण के उतारने के निमित्त झूठसे भी नहीं डरता १ बहुरि दूसरा उपाय यह है कि ऐसे आचार विषे बर्ते जिसकरके लोगोंकी प्रतीति दूरहोजावेपर पापकर्म को अङ्गीकार न करे क्योंकि केते मूर्ख पापों विषे बर्ततेहैं और इस प्रकार कहते हैं कि हमने तो मानके दूर करने के निमित्त इस कर्मको अङ्गीकार किया है सो यह वार्ता अयोग्यहै ताते जिज्ञासु को इस प्रकार वर्तना चाहिये कि जिस करके पापकर्म से भी दूर रहै और लोगों की प्रतीति भी नष्ट होजावे जैसे एक सन्त के दर्शन को एक राजा आया था सो जब उन्होंने राजा को आते देखा तब रोटी और मूली हाथ में लेकर बड़े २ ग्रास खानेलगे बहुरि जब राजाने इस प्रकार देखा तब कहनेलगा कि यह तो तृष्णावान् है ताते वह राजा अपने गृह को लौटगया बहुरि एक और सन्त की भी अधिक मानता हुई थी ताते जब वह सन्त स्नान के स्थानसे स्नानकरके निकले तब किसी और का वस्त्र पहरकर द्वारे पर ठाढ़े होरहे बहुरि जब लोगों ने देखा कि यह तो चोर है तब उनको अधिक ताड़ना करी ऐसेही एक और भी सन्त की अधिक मानताथी तब उन्होंने एक शीशे में शरबत डालकर अपने निकट रखलिया और थोड़ा २ पीते रहे ताते लोगों ने जाना कि यह तो मदिरापान करतेहैं सो मानके दूर करनेके निमित्त जिज्ञासुजनों ने ऐसेही उपाय किये हैं (अथ प्रकट करना उपाय अपनी स्तुति की प्रीतिका) ताते जान तू कि बहुत पुरुषों को जगत् की स्तुति विषे अधिक प्रीति होती है और सर्वदा अपनी महिमा को चाहते हैं सो यद्यपि शास्त्रों की मर्याद से विपरीत कर्म होवे तो भी स्तुति के निमित्त करलेते हैं और जो शुभ

कर्म भी होवे पर उस बिषे लोग निन्दा करते होवें तौभी नहीं करसक्के सो यह भी दीर्घरोग है और जब इस रोग के कारणों को न पहिंचानिये तबलग इसका उपचार करना कठिन होताहै ताते स्तुति की अभिलाष के कारण चार हैं सो प्रथम यह है कि मनुष्य अपनी बड़ाई को चाहता है और अपनी हीनता पर ग्लानि रखता है ताते जब कोई इसकी स्तुति करताहै तब निस्सन्देह अपनी बड़ाई को समझता है और आनन्दित होताहै क्योंकि अपनी महिमा सुनकर अपना ऐश्वर्य निश्चय जानता है और ऐश्वर्य इसको अधिक प्रियतम लगता है बहुरि जब निन्दा सुनताहै तब अपनी हीनता को प्रत्यक्ष देखता है ताते दुःखी होताहै इसी कारण से जब स्तुति अथवा निन्दा किसी बुद्धिमान् पुरुष के मुख से श्रवण करताहै तब अधिक शोकवान् और अप्रसन्न होताहै क्योंकि उसके यथार्थ वचन पर इसको अधिक प्रतीति होती है और जब मूर्ख के मुख से सुनता है तब उसके वचनपर प्रतीति ही नहीं रखता ताते शोक और प्रसन्नता भी अल्प होती है १ बहुरि दूसरा कारण यहहै कि स्तुति करनेवाले को अपना सेवक देखताहै और ऐसा जानता है कि इसके हृदय बिषे मेरे गुण की प्रतीति है ताते आपको स्वामी जानता है इसी कारण से जब अपनी महिमा किसी श्रेष्ठ के मुख से सुनता है तब अधिक प्रसन्न होताहै और जब नीच पुरुष के मुख से श्रवण करता है तब ऐसा आनन्दवान् नहीं होता २ बहुरि तीसरा कारण यह है कि जब किसीको अपनी स्तुति करता देखता है तब यौंभी जानता है कि यह मेरी महिमा सुनकर और लोग भी मुझपर प्रतीति करेंगे और मेरे वशीकार होवेंगे इसी कारण से जब सभाबिषे अपनी महिमा श्रवण करे तब अधिक प्रसन्न होताहै और जब एकांत ठौर बिषे सुनता है तब ऐसा हर्षवान् नहीं होता ३ बहुरि चौथा कारण यह है कि स्तुति करनेवाले को अपने बलके अधीन जानता है और यद्यपि उसको अपना सेवक न जाने तौभी इस प्रकार समझता है कि यह पुरुष भय अथवा प्रयोजन करके मेरी स्तुति करता है सो यह वार्ता भी इसको अधिक प्रियतम है ताते आपको बड़ा जानकर प्रसन्न होताहै इसी कारण से जब उसका वचन सांचाभी न जाने और उसके वचन को कोई प्रमाण भी न करे बहुरि वह प्रतीति के साथ भी स्तुति न करे और प्रयोजन और भयकरके भी न कहता होवे केवल उपहास करके इसकी स्तुतिकरे प्रीतिका

कारण कोई न देखे तब प्रसन्न नहीं होता ४ पर जब तैंने इस रोग के कारणों को पहिंचाना तब इसका उपाय भी सुगमही समझेगा बहुरि जब पुरुषार्थ करेगा तब इस रोगको दूर करडालेगा ताते प्रथम कारण जो कहा है कि स्तुति करनेवाले के वचन करके अपनी बड़ाई को निश्चय करके प्रसन्न होताहै सो उसका उपाय यह है कि इस प्रकार विचार करे कि यद्यपि यह पुरुष बूझ और वैराग्य अथवा और किसी शुभ गुण करके मेरी स्तुति करता है और इसका वचन भी यथार्थ है तौभी तुझको भगवत् के उपकार पर प्रसन्न होना प्रमाण है क्योंकि यह शुभ गुण तुझको महाराजही ने दिये हैं सो किसीकी स्तुति निन्दा करके बढ़ते घटते नहीं बहुरि जब कोई मनुष्य इस प्रकार इसकी स्तुति करे कि तू धनवान् है अथवा महाराजा है अथवा किसी और स्थूल पदार्थ का वर्णन करे तब इस वार्ता पर तो प्रसन्न होनाही अयोग्य है क्योंकि यह सब सामग्री नाशवान् है और जो प्रसन्न भी होवे तो जिस महाराज की दातहै तिसके उपकार को निश्चय जान कर हर्षित होवे पर जब विचारकर देखिये तब अपने गुणों पर प्रसन्न होना भी प्रमाण नहीं क्योंकि इस वार्ता को कोई पुरुष नहीं जानता कि अन्तकाल विषे मेरा निर्वाह क्योंकर होवेगा और जबलग इस वार्ता को न जानें कि परलोक विषे मेरी कैसी गति होवेगी तबलग जिज्ञासु को प्रसन्न होना कदाचित् प्रमाण नहीं बहुरि जब कोई मनुष्य इसको गुणवान् कहे और यह पुरुष ऐसा जाने कि यह गुण मेरे विषे ही कोई नहीं तब ऐसी स्तुति पर प्रसन्न होना भी महा-मूर्खता है सो इसका दृष्टान्त यह है कि जैसे कोई कहे कि अमुक पुरुष का शरीर और सर्व अङ्ग सुगन्धता करके भरपूर है और मल मूत्र की दुर्गन्ध कुछ नहीं पर वह पुरुष जब ऐसा जानता होवे कि मेरे तो सर्वाङ्ग विषे विष्ठा मूत्र थूक आदिक कुचीलता है और उसकी स्तुति सुनकर प्रसन्न होवे तब महामूर्ख कहाता है बहुरि मान और बड़ाई के निमित्त जो इसको अपनी स्तुति प्रिय लगती है सो इसका उपाय मैंने आगेही वर्णन किया है पर जब कोई तेरी निन्दा करे तब उसके ऊपर क्रोध करना और अप्रसन्न होनाही महामूर्खता है क्योंकि जब वह सत्य कहता तब वह देवता है और जब झूठ कहता है तब अ-सुर है और जब वह निन्दक अपने झूठ को भी न जाने तब पशु अथवा गर्दभ है तात्पर्य यह कि सत्य कहनेवाले को अपना गुरुदेव जानि ताते उसका वचन

सुनकर ग्लानि न करिये और अपने अवगुण पर शोकवान् हूजिये बहुरि जो मनुष्य असुर गर्दभ होवे तब उसके वचन को सुनकर प्रतीति करनाही अयोग्य है पर जब कोई तेरे स्थूल पदार्थ की निन्दा करे कि अङ्गहीन है अथवा निर्द्धन है तौभी अप्रसन्न होना प्रमाण नहीं क्योंकि यह तो सन्तजनों के निकट बड़ाई है बहुरि इस प्रकार विचार करना भी विशेष है कि जिस पुरुष ने तेरा अवगुण तुझसे प्रकट करके कहा है सो वह कहना भी तीन प्रकार से बाहर नहीं ताते जब उसने यथार्थ और दयासंयुक्त कहा है तब उसका उपकार जानिये क्योंकि जब कोई तुझ से कहे कि तेरे वस्त्र विषे सर्प है तब उस सर्प लखानेवाले का निस्संदेह यह उपकार होता है तैसेही अवगुणों का दुःख सर्प के डसने से भी तीक्ष्ण है इस करके कि अवगुणों करके बुद्धि का नाश होता है ताते दोष के लखानेवाले को मित्र जानिये जैसे तू किसी राजा के निकट जाने की मंशा करे और कोई पुरुष तुझको लखाय देवे कि तेरा वस्त्र मलिनता से भरा है प्रथम इसको धोयले सो जब तू उसका वचन मानकर अपना वस्त्र धोलेवे तब तुझ को उसका उपकार जानना प्रमाण है क्योंकि जब तू दुर्गन्ध भरे वस्त्र सहित राजा के निकट जाता तब उसकी सभा विषे निस्संदेह लजायमान होता १ बहुरि दूसरा प्रकार यह है कि जब निन्दा करनेवाले पुरुष ने ईर्षा करके तेरा अवगुण प्रसिद्ध किया है तौभी उसने अपने धर्म की हानि करी है पर तेरी हानि तो कुछ नहीं क्योंकि जब तू उसका वचन सुनकर सहनशील होवेगा तब तुझ को धैर्यकी बड़ाई प्राप्त होवेगी अथवा यद्यपि उसने झूठ कहा है और तेरे विषे वह अवगुण नहीं तौभी और अवगुण तो तेरे विषे अधिक हैं ताते यह भी भगवत् का उपकार जानना चाहिये जो महाराज ने तेरे वे अवगुण प्रकट नहीं किये और निन्दक के शुभगुणों का पुण्य भी तुझको प्राप्त होवेगा और जो पुरुष तेरी स्तुति करता है सो विचार करके देखिये तो तेरा दुःखदायक होताहै क्योंकि वह स्तुति सुनकर तू अभिमानी होवेगा ताते तू मूर्खता करके अपने दुःख की वार्तापर प्रसन्न होताहै और अपनी भलाई विषे शोकवान् होताहै सो जिसकी ऐसी अवस्था होवे तब जानिये कि वह पुरुष स्थूलताकोही देखताहै और गुह्यभेद को नहीं पहिचानता और जो पुरुष बुद्धिमान् होताहै वह स्थूलता की ओर नहीं देखता और उसके अन्तर के भेद को समझता है तात्पर्य यह कि

जबलग इस पुरुष की आशा सर्व जगत् से दूर नहीं होती तबलग स्तुति और मान का रोग नष्ट नहीं होता (अथ प्रकट करना भेद सर्व मनुष्यों की अवस्था का कि स्तुति और निन्दा विषे सबही पुरुष एक समान नहीं होते) ताते जान तू कि स्तुति और निन्दा विषे भी जीवों की चार प्रकार की अवस्था होती हैं जो अपनी स्तुति सुनकर प्रसन्न होते हैं और स्तुति करनेवाले का उपकार जानते हैं ऐसेही निन्दा सुनकर क्रोधवान् होते हैं और निन्दक को दुखाया चाहते हैं सो यह अवस्था महानीच है १ बहुरि दूसरी सात्त्विकी मनुष्यों की अवस्था है सो यह है कि यद्यपि हृदय विषे स्तुति निन्दा को समान नहीं जानते तौभी बाह्य व्यवहार विषे निन्दक और महिमा करनेवाले के साथ सम वर्तते हैं २ बहुरि तीसरी अवस्था विचारवानों की यह है कि स्तुति और निन्दा को मन वचन कर्म करके समान रखते हैं ताते निन्दा सुनकर प्रसन्न भी नहीं होते और ईर्षा क्रोधभी नहीं करते बहुरि स्तुति को भी विशेष नहीं जानते क्योंकि उनका हृदय स्तुति और निन्दा से विरक्त ही रहताहै सो यह उत्तम अवस्था है पर केते अल्पबुद्धि जीव इस प्रकार जानते हैं कि हम इसही पद को प्राप्तहुये हैं सो जबलग अपने हृदय की परीक्षा न कर देखिये तबलग उनका कहना झूठ होताहै सो परीक्षा यह है कि जब निन्दक उनके पास बैठरहे तो भी ग्लानि न करे अथवा जब वह किसी कार्य की सहायता चाहे तब स्तुति करनेवाले की नाईं उसकी सहायता करे और प्रियतम राखे बहुरि जैसे स्तुति करनेवाले का चित्त विषे स्मरण करते हैं तैसेही जब निन्दक के मिलाप विषे चिरकाल होजावे तब प्रीति सहित उसको भी याद करे अथवा जब कोई निन्दक को दुखावे तब जिस प्रकार स्तुति करनेवाले के दुःख करके दुःखी होता है तैसेही निन्दक के दुःख करके शोकवान् होवे सो यह अवस्था महाकठिन है कि जिस प्रकार स्तुति करनेवाले के अवगुण को नहीं विचारता तैसेही निन्दक का अवगुण देखकर भी क्रोधवान् न होवे पर अभिमानी मनुष्य ऐसेही कहते हैं कि हम धर्मही के निमित्त क्रोध करते हैं और उस निन्दक के दोष को दूर किया चाहते हैं सो यह भी मन का छल है क्योंकि और भी केते पुरुष अपकर्म करते हैं और अवरों की निन्दा करनेलगते हैं सो जबलग उनको देखकर ऐसी ग्लानि न करे तबलग जानिये कि उनका क्रोध करना भी अपनी वासना के अनुसार है पर ये

तपस्वी लोग ऐसे सूक्ष्म छलों को कब पहिंचानसक्के हैं ताते विचार विना सब ही यत्न उनके व्यर्थ होते हैं ३ बहुरि चौथी अवस्था उत्तम पुरुषों की है सो यह है कि स्तुति करनेवाले को अपना शत्रु मानते हैं और निन्दक को प्रियतम रखते हैं क्योंकि निन्दक के वचन से अपने दोष को पहिंचानते हैं बहुरि उस दोष के निवृत्त करने की श्रद्धा विषे सावधान होते हैं इसीपर महापुरुष ने कहा है कि जो पुरुष दिन को व्रत राखे और रात्रि विषे जागतारहे और नाना प्रकार के वेष करे पर जबलग माया से विरक्त न होवे और अपनी महिमा को बुरी न जाने और निन्दक को प्रियतम न राखे तबलग उसकी सर्व क्रिया व्यर्थ होती है सो जब इस वचन के अर्थ को विचार करके देखिये तब ऐसे पदको प्राप्त होना महाकठिन है क्योंकि जीवों को दूसरी अवस्था भी कठिन होती है कि जो स्तुति करनेवाले और निन्दक को हृदय विषे समान न जाने तो दोनों के साथ बाह्य करतूति विषे तो भेद न राखे और मनुष्य तो सर्वदा अपनी स्तुति करनेवालों को प्रियतम रखते हैं और उनके कार्यों की सहायता करते हैं और निन्दक को दुखाया चाहते हैं ताते बाह्यक्रिया विषे भी पापी होते हैं और हृदय की समता तो दुर्लभ है बहुरि यह चौथी अवस्था जो निन्दक को मित्र और प्रशंसक को शत्रु जानने की कही है सो इस अवस्था को पहुँचना अतिही कठिन है पर इसको वही पावता है जो अपने मनका विरोधी होवे और सर्वदा अपनी वासना के साथ युद्ध करे ताते जब किसीके मुख से अपना अवगुण सुने तब प्रसन्न होवे और निन्दक की बुद्धि को ऐसे उज्ज्वल देखे कि इसने मेरे दोष को किस प्रकार ढूंढ़लिया और ऐसेही प्रसन्न होवे जैसे अपने शत्रु का अवगुण सुनकर प्रसन्न होता है सो ऐसा जिज्ञासु जन भी कोई बिरला होताहै इसीकारण से कहा है कि जो कोई सब आयुष्पर्यन्त यत्न और पुरुषार्थ करताहै तो भी स्तुति निन्दा को समान करना कठिन है ताते जान तू कि जब यह पुरुष अपनी महिमा को प्रियतम रखता है और निन्दा पर ग्लानि रखताहै तब यह अभिलाष ऐसी प्रबल होती है कि अपनी स्तुति के निमित्त भजन विषे भी दम्भ किया चाहता है और जब देखता है कि अमुक पाप करके मेरी स्तुति होवेगी तब पाप की शङ्का भी नहीं करता तात्पर्य यह कि जबलग मान और स्तुति की वासना का बीज मूलही से नष्ट न होवे तबलग शीघ्रही पापकर्मों विषे

आसक्त होजाताहै पर जब बाह्य क्रिया विषे मित्र और शत्रु के साथ समान वर्ते और मन वचन कर्म करके निन्दक को दुखावे नहीं और उसका भलाही चिन्तन करतारहे और हृदय विषे शत्रु मित्रकी समता न करसके तौ भी पापी नहीं होता क्योंकि इस जीवका ऐसाही स्वभाव है अपने स्वभाव से दूर होना महाकठिन है ताते सन्तजनों ने इस प्रकार कहा है कि जब स्थूल पापों से रहित होवे तौभी विशेष है इसकरके कि सबही लोग बहुत से अपकर्म स्तुति की प्रीति और निन्दा की ग्लानि के निमित्त करते हैं और सर्वदा उनके चित्तकी चितवनि इसी अभिलाष विषे बन्धायमान रहती है कि किसी प्रकार हमारी स्तुति लोग करें ताते मन की वासना करके अपकर्मों विषे विचरने लगते हैं इस करके प्रसिद्ध हुआ कि सर्व मनुष्यों को लोगों का सम्मान और मनोहर करना निन्द्य नहीं पर मान के निमित्त कपट और दम्भ करना निन्द्य है और दुःखों का बीज है॥

आठवां सर्ग॥

दम्भ के निषेध और उपाय के वर्णन में॥

ताते जान तू कि भगवत् भजन विषे दम्भ करना महापाप है और महाराज की ओर से विमुखता है ताते इसके समान और कोई रोग नहीं क्योंकि वेषधारियों की मंशा सर्वदा यही रहती है कि किसी प्रकार लोग हमारा भजन देखें और हमको भजनवान् जानें सो जिस भजन विषे ऐसी कामना होती है उसको भगवतभजन नहीं कहते और यह केवल जगतही की पूजा होती है अथवा जब कुछ भजन की कामना भी होवे तो भी दम्भ के साथ मिश्रित हो जाती है सो भगवत भजन विषे दम्भ का मिश्रित होना भी मनमुखता है इसी पर महाराज ने कहा है कि जिस पुरुष को मेरे दर्शन की प्रीति है उसको चाहिये कि मेरे भजन विषे और लोगों की पूजा को मिश्रित न करे अर्थ यह कि दम्भ से रहित होवे और यों भी कहा है कि जो लोग अचेतता और दम्भ सहित मेरा भजन करते हैं सो परलोक विषे पश्चात्ताप करेंगे इसी पर महापुरुष से किसीने पूछा था कि इस जीव की मुक्ति क्योंकर होवे? तब उन्हों ने कहा कि जब यह पुरुष दम्भसे रहित होकर भगवत्की आज्ञा विषे सावधान होवे तब शीघ्रही मुक्ति को पाताहै और योंभी कहा है कि परलोक विषे किसी मनुष्य से पूछेंगे कि तैंने भगवतभजन किस प्रकार किया है तब वह कहेगा कि मैंने

धर्म के निमित्त शीश दिया था बहुरि आकाशवाणी होवेगी कि यह पुरुष झूठ कहता है क्योंकि इसने आपको शूरमा जनाने के निमित्त शीश दिया था तब वह भी नरकगामी होवेगा बहुरि एक और पुरुष से पूछेंगे कि तैंने महाराज की आज्ञा क्योंकर मानी है ? तब वह कहेगा कि मैंने भगवत् अर्थ अपने धन को दान किया है बहुरि आकाशवाणी होवेगी कि यह भी झूंठ कहता है क्योंकि इसने अपनी उदारता के प्रसिद्ध करने को दान दिया था ताते वह भी नरकगामी होवेगा बहुरि एक और पुरुष से पूछेंगे कि तैंने किस प्रकार भजन कियाथा तब वह कहेगा कि मैंने बड़े यत्न करके महाराज के वचनों को पढ़ा है तब आकाशवाणी होवेगी कि यह भी झूंठ कहता है क्योंकि इसने आपको विद्यावान् जनावने के निमित्त पाठ किया था ताते उस को भी नरक बिषे डारेंगे बहुरि एक और पुरुष से कहेंगे कि मैंने तुझको पृथ्वी का राज्य दिया था सो तैंने प्रजा की पालना क्योंकर करी ? तब वह कहेगा कि मैंने शास्त्रों की मर्याद सहित न्याय कियाथा बहुरि आकाशवाणी होवेगी कि यह भी झूंठ कहता है क्योंकि इसने धर्मात्मा जनाने के निमित्त न्याय किया है ताते वह भी नरक बिषे पड़ेगा और महापुरुष ने यों भी कहा है कि प्रीतिमान् को और कोई विघ्न ऐसा मलिन नहीं करता जैसा दम्भ करके शीघ्रही मलिन होजाता है बहुरि परलोक बिषे मनुष्यों को इस प्रकार आकाशवाणी होवेगी कि हे पाखण्डियो ! तुमने जिनके दिखाने के निमित्त मेरा भजन कियाहै सो अब भजन का फल भी उन्हीं सबसे मांगो और महापुरुष ने योंभी कहाहै कि हे प्रियतमो ! दम्भरूपी नरक से आपको बचावो और महाराज के आगे बिनती करो कि हे भगवन् ! इस दम्भरूपी क्लेश से तू हमारी रक्षाकर इसीपर महाराज ने कहा है कि जिन पुरुषों ने मेरे भजन बिषे लोगों की पूजा को मिलाया है अर्थात् दम्भ किया है सो मुझसे अति दूर हैं और मैं उनका भजन लोगों को समर्पण करदेता हूं क्योंकि मुझको किसी के साथ मिश्रित होने की अपेक्षा नहीं इसीपर महापुरुष ने कहा है कि तिस करतूति को भगवत् प्रमाण नहीं करता जिस बिषे रञ्चकमात्र भी दम्भ होता है इसीपर उमरनामी सन्त ने एक पुरुषको देखाथा कि शीश नीचे किये बैठा है तब कहनेलगे कि हे भगवन् ! तू इसकी टेढ़ी ग्रीवा को सीधी कर क्योंकि एकाग्रता हृदय बिषे होती है शीश की कुटिलता किये तो

एकाग्रता प्राप्त नहीं होती बहुरि एक सन्त ने किसी पुरुष को सभा विषे रोते देखा था तब उससे कहा कि जब तू अपने गृह विषे ऐसाही रुदन करता तब अधिक विशेषता को पाता इसीपर अलीनामी सन्त ने कहा है कि दम्भी मनुष्य के दो लक्षण प्रसिद्ध हैं प्रथम यह कि जब अकेला होता है तब अलसाय जाताहै और जब लोगों को देखताहै तब प्रसन्नता सहित भजन करता है बहुरि जब अपनी महिमा सुनताहै तब सब क्रिया विषे अधिक सावधान होता है और जब निन्दा सुनता है तब थकित होजाता है बहुरि एक जिज्ञासु ने किसी सन्त से पूछाथा कि जो पुरुष दान देने विषे कुछ मंशा निष्कामी राखे और कुछ जगत की स्तुति के लिये दान देवे तब उसकी क्या अवस्था होती है तब उन्होंने कहा कि वह मनुष्य भगवत् से विमुख होता है क्योंकि सब करतूतें केवल निष्काम ही चाहिये बहुरि उमरसन्त ने एक पुरुष की अवज्ञा कुछ करी थी तब उससे कहनेलगे कि तूभी मुझको इस अवज्ञा का दण्ड दे तब उसने कहा कि मैंने भगवत् के और तुम्हारे निमित्त तुमको क्षमाकिया बहुरि उमर ने कहा कि तू भगवतही के निमित्त क्षमाकर अथवा मेरे निमित्त क्षमाकर पर दोनोंके सम्बन्ध करके क्षमाकरना काम नहीं आता तब उसने कहा कि मैंने भगवतही के निमित्त तुमको क्षमाकिया इसी पर फुजैल सन्त ने कहाहै कि आगे जिज्ञासुजन दम्भ विना शुभकर्म करते थे और इस समय विषे लोग शुभकर्म किये विनाही दम्भ करते हैं बहुरि एक और सन्त ने कहा है कि जब यह पुरुष दम्भ करता है तब भगवत् इसप्रकार कहता कि देखो यह मेरा जीव मेरे ही साथ किस प्रकार हास्य करता है इसी पर महापुरुष ने कहा है कि सात पुरियों के सात देवता रक्षक भी भगवतही ने बनाये हैं सो जब इस मनुष्य के शुभकर्मों की पत्री प्रथम पुरी पर पहुँचती है तब उस पुरी का देवता कहता है कि इसकी सबही क्रिया निष्फल हैं क्योंकि यह पुरुष लोगों की निन्दा करताथा ताते मैं निन्दक के शुभ कर्म को प्रमाण नहीं करता बहुरि और पुरुष जो निन्दा सेभी रहित होता है सो तिसके कर्मों की पत्री दूसरी पुरी तलक पहुँचती है तब उसका देवता कहता है कि इसकी करतूति इसही के मुखपर डालदो क्योंकि इसने शुभकर्म करके अपनी प्रशंसा करी है ताते मैं इसके कर्म को प्रमाण नहीं करता बहुरि किसी और पुरुष की पत्री तीसरी पुरीपर पहुँचती है कि उस विषे दान, जप, तप, व्रत आदिक

शुभकर्म होते हैं तब उसका देवता कहता है कि इसकी सबही करतूति अभि-
मान करके निष्फल हुईहैं बहुरि एक और की पत्री चौथी पुरी पर्यन्त पहुँचती है
तब वह देवता कहता है कि इसने विद्या और शुभकर्मों विषे लोगोंकी ईर्षाकरी
है ताते मैं इस क्रिया को नहीं मानता बहुरि एक और की पत्री पांचवीं पुरी पर
पहुँचती है तब वह देवता कहताहै कि इसने दुखियों और अनाथों पर दया नहीं
करी और मुझको भगवत् की आज्ञा इस प्रकार है कि यद्यपि सुकर्मी मनुष्य होवे
तौभी तू दयाहीन पुरुष की करतूति प्रमाण न करना बहुरि एक और की पत्री
छठीं पुरी पर पहुँचती है तब वह देवता कहताहै कि इसने स्मरण भजन लोगों
की स्तुति के निमित्त कियाहै अथवा परलोक की कामना रखताहै ताते मैं इस
के कर्मों को भी नहीं मानता बहुरि एक और की पत्री सातवीं पुरी पर पहुँचती
है सो उसके कर्मों का तेज सूर्य की नाईं प्रकाशित होताहै तब उसको देखकर
वह देवता कहता है कि इसके हृदय विषे सूक्ष्म अहंकार है और कर्मों का कर्ता
आपको जानता है ताते मैं इसकी क्रिया को प्रमाण नहीं करता तात्पर्य यह
कि जिसका कर्म केवल निष्काम और सर्व मलिनता से रहित होताहै तब उस
की करतूति सातों पुरी को उलङ्घकर भगवत्के निकट पहुँचतीहै और महाराज
उसको प्रमाण करतेहैं अन्यथा सबही कर्म निष्फल होतेहैं (अथ प्रकट करना
रूप दम्भ का) ताते जान तू कि दम्भ का अर्थ यह है कि आपको वैरागी और
भजनवान् दिखावना और वेष करके जगत् का मिलाप बढ़ाना और अपनी
विशेषता प्रकटकरनी और अपने ऊपर लोगों की प्रतीति बढ़ानी सो ऐसा दम्भ
पांच प्रकार का होताहै प्रथम तौ शरीर करके दम्भ करते हैं जैसे वदनका रङ्ग
पीला करके अपनी जाग्रत् लखानी अथवा देह को दुर्बल करना और भृकुटी
चढ़ाकर आपको भयावन दिखाना बहुरि ऊंचा शब्द न बोलना कि मैं ऐसा
गम्भीर हूं और अधर सूखे रखने कि मैं व्रती हूं सो जब ऐसी क्रिया लोगों के
छलने के निमित्त करे तब जानिये कि केवल दम्भी है १ बहुरि दूसरा प्रकार
यह है कि वस्त्र रङ्गीन अथवा मलिन अथवा अल्प अथवा पुरातन पहिरने और
आपको तपस्वी जनावना अथवा मृगछाला आदिक अम्बर ओढ़ने सो इनकी
वृत्ति ऐसी होती है कि जब कोई इनको किसी संयोग के साथ यत्न करके कहे
कि अमुक वस्त्र पहिरो तब लज्जाके निमित्त पहिरते ही नहीं और एक ऐसे कपटी

होते हैं कि महीन वस्त्रों को फाड़कर बहुरि सिलाय लेते हैं इस करके कि धनवान् और राजालोग भी हमारा सम्मान करें और निरादर न करें और यद्यपि उनके वस्त्रों से मोटा वस्त्र फाड़ा हुआ होवे तौभी पहिर नहीं सके इसकरके कि हमारी कोई निन्दा न करे और इतना नहीं जानते कि ऐसी क्रियाकरके हम लोगों की पूजा करते हैं २ बहुरि तीसरा प्रकार दम्भ का वाणी है सो सदैव अधर हिलायकर आपको भजनवान् दिखाना और मौन करके एकाग्रहो दिखाना अथवा नाना प्रकार शास्त्रों का बखान करना और आपको बुद्धिमान् जनाना अथवा शीतलश्वास निकाल के आप को प्रेमी लखाना अथवा पिछले सन्तों की वार्ता प्रकटकरनी इसकरके कि मैंने बहुत सन्तजनों का सत्संग कियाहै सो यह केवल पाखण्ड होताहै ३ बहुरि चौथा प्रकार का दम्भ भजन विषे होता है कि लोगों के देखते शीश बहुत टेकना अथवा शीश नीचे करके बैठना और किसीकी ओर दृष्टि न करनी अथवा जगत् को दिखाकर दानदेना और मार्ग विषे धैर्य सहित चलना ४ बहुरि पांचवां प्रकार दम्भ का यह है कि अपने शिष्य सखा अधिक दिखाने और अपने ऐश्वर्य को आपही सभा विषे प्रकट करना कि अमुक राजा हमारा सेवक है और अमुक धनवान् हमारा पुजारी है और जब किसी के साथ विरुद्ध करता है तब इस प्रकार कहने लगता है कि तेरा गुरुदेव कौन है और तेरे मिलापी कौन हैं? मैंने तो इतने वर्षपर्यन्त बड़े २ महापुरुषों की सेवा करी है तात्पर्य यह कि दम्भी मनुष्य अपने मान के निमित्त बड़े कष्ट खैंचता है और एकही छोले का आहार करता है अथवा निराहार व्रती रहता है सो यह सबही करतूति महा पापों का रूप है क्योंकि जप, तप, व्रत, भजन भगवतही के निमित्त करना चाहिये पर जब ऐसे कर्मों विषे मान और बड़ाई की कामना होवे तब जानिये कि केवल पाखण्ड है ताते चाहिये कि जब अपना मान वृद्ध करने की मंशा राखे तब व्यवहार के कार्य करके अपनी बड़ाई लखावे सो इसको पाप नहीं कहते जैसे ज्योतिष, वैद्यक, व्याकरण इत्यादिक और विद्या को प्रकटकरना पाखण्ड नहीं होता पर मान के निमित्त आपको वैरागी और भजनवान् दिखाना अयोग्य है अथवा जब स्नान और उज्ज्वल वस्त्र करके शरीर को शुद्ध करलेवे तौभी दम्भ नहीं कहाता है क्योंकि प्रीतिमानों की सभा विषे किसी

को ग्लानि न आवे तब यह भी शुद्ध मंशा होती है और महापुरुष भी ऐसे आचारों बिषे विचरे हैं और भजन बिषे जो दिखलावा निन्द्य कहा है सो यह भी दो कारणों से अयोग्य है प्रथम यह कि जब इस पुरुष की मंशा सकाम होवे और आपको निष्कामी कर दिखावे तब यह भी कपट होता है क्योंकि जब लोग इसकी सकामता को प्रकट जानें तब वह भी प्रमाण नहीं करते १ बहुरि दूसरा कारण यह है कि भजन स्मरण और शुभकरतूति केवल भगवतही के निमित्त करने चाहिये पर जब ऐसी क्रिया जगत् के दिखलाने के निमित्त करे तब यह भी भगवत् के साथ उपहास करना होता है सो इसका दृष्टान्त यह है कि जैसे कोई पुरुष किसी मण्डली के राजा के सम्मुख स्थित होवे और आप को केवल उसका टहलुआ हो दिखावे पर मंशा इसकी यह होवे कि मैं राजा के सुन्दर दास को देखतारहूं ताते इसके नेत्र और सुरति उस रूपवान् दास की ओर अटकी रहे तब निस्सन्देह राजा के साथ हास्यकरना होता है तैसेही जो भजन स्मरण परमेश्वर के निमित्त करना चाहिये है और वह भजन पराधीन जीवों को दिखानेलगे तब इसका नाम केवल कपट है और इस करके जाना जाता है कि वह पुरुष दण्डवत प्रणाम भगवत् को नहीं करता जगत ही की वन्दना करता है क्योंकि उसकी मंशा जगत् के दिखाने बिषे ही दृढ़ होती है ताते जो मनुष्य शरीर करके तो भगवत् की वन्दना करे और मन उसका जगत् की वन्दना बिषे स्थित होवे तब निस्संदेह विमुख होता है (अथ प्रकट करना भेद दम्भकी अवस्था का) ताते जान तू कि दम्भ बिषे भी इस प्रकार भेद होता है कि एक दम्भ अतिदीर्घ है और एक अल्प है सो दीर्घ दम्भ यह है कि जिसकी मंशा केवल दम्भही की होवे अर्थात् जब अकेला होवे तब भजन स्मरण कुछ न करे और लोगों बिषे सावधान होकर भजन बिषे स्थित रहे तब ऐसा पुरुष भगवत् के कोप का भागी होता है और यद्यपि उसकी कुछ अल्पमात्र पुण्य की मंशा भी होवे पर जब एकान्त बिषे कुछही भजन न करे तौभी प्रथम दम्भी की नाईं होता है बहुरि जिस पुरुष के हृदय बिषे पुण्य की मंशा ऐसी प्रबल होवे कि एकान्त बिषे भी मूलही से अलसाय न जावे पर जब लोगों को देखे तब प्रसन्नता सहित भजन करे और भजन करना उसको सुगम होजावे तब इतने दम्भ करके सबही फल उसका व्यर्थ नहीं होता पर जितनी दम्भ की मंशा

भजन विषे मिली है उतनाही दण्ड का अधिकारी होता है अथवा उसका पुण्य क्षीण होजाता है बहुरि जब दम्भ और पुण्यकी मंशा सम होवे तौभी भजन का फल कुछ नहीं होता क्योंकि पुण्य की श्रद्धा को दम्भ की मंशा व्यर्थ कर डालती है १ बहुरि दूसरा भेद यह है कि भगवत् पर जिस पुरुष की प्रतीति कुछ न होवे और यद्यपि शरीर करके भजन स्मरण करता रहै तौभी वह महा-कपटी कहाता है और अत्यन्त विमुख है क्योंकि हृदय विषे प्रतीति से रहित है और बाह्य विषे प्रीति प्रतीति संयुक्त हो दिखाता है सो ऐसा पुरुष सर्वदा नरकों का वासी होवेगा अथवा जिस पुरुष की प्रतीति परलोक और सन्त जनों की मर्याद पर कुछ नहीं और यद्यपि शरीर करके दम्भ के निमित्त शास्त्रों की मर्यादही विषे विचरता है तौ भी नरकों का अधिकारी होता है २ बहुरि ती-सरा भेद दम्भी मनुष्य के प्रयोजन विषे होता है जैसे कोई पुरुष भजन विषे मान का प्रयोजन राखे बहुरि मान करके भोगों और पापों विषे आसक्त होजावे सो यह भी महानिन्द्य है अथवा जब आपको वैरागी और उदार इस निमित्त हो दिखावे कि लोग मुझको त्यागी जानकर अर्थियों और सात्त्विकी मनुष्यों की सेवा के निमित्त धनदेवें और जब वह उस धन को प्राप्त होवे तब अपने शरीर के अर्थ लगायलेवे तब यह भी महापाप है अथवा जब कथाकीर्तन की सभा विषे जाय बैठे कि किसी रूपवान् मनुष्य को जायदेखूं अथवा उसके साथ प्रीति बढ़ाऊं तब इसकी नाईं और भी अपकर्मों का प्रयोजन परमदुःखों का बीज है और अपराधरूप है क्योंकि उसने भगवद्भजनको पापों का मार्ग बनाया है अथवा जब किसी का कुछ दूषण जगत् विषे प्रसिद्ध हो-जावे तब उस दूषणको दूरकरने के निमित्त वैरागी और उदार होकर दिखाना भी महानिन्द्य है और यह सबही प्रयोजन महातामसी हैं पर जिसको राजसी प्रयो-जन होवे जैसे दम्भ करके अपने शरीर और कुटुम्ब का प्रतिपाल कियाचाहे तौभी भगवत् के कोपका अधिकारी होताहै अथवा जब मान के निमित्त मार्ग विषे धैर्य और सकुचसहित चले और शीतल श्वास निकाले और हास्य से रहित होवे बहुरि ऐसा कहै कि इस जीवको अचेत होनेका ठौर इस संसार विषे कहां है क्योंकि सबही मनुष्य काल के मुख विषे चलेजाते हैं अथवा जब कोई पुरुष किसीकी निन्दा करनेलगे तब आपको निन्दासे रहित दिखानेके निमित्त

इस प्रकार कहे कि औरों के अवगुण देखने से अपना अवगुण देखना अधिक विशेषहै सो यद्यपि यह सब करतूति सात्त्विकीहैं पर जिसकी मंशा सात्त्विकी न होवे और राजसी और मान के निमित्त ऐसे कर्म करे तब निस्सन्देह अन्तर्यामी महाराजकी ओरसे विमुख होताहै क्योंकि भगवत् इसके हृदयको जाननेवाला है ताते उसके साथ छलकरना बड़ी विमुखता है और अल्पबुद्धि जीव ऐसे भेदों को पहिंचान नहीं सकते इस करके कि दम्भ तो ऐसा महासूक्ष्म है कि कितने बुद्धिमान् और पण्डित भी इसको पाय नहीं सकते ताते मूर्ख तपस्वियों की क्या वार्ता है (अथ प्रकटकरनी सूक्ष्मता दम्भ की) ताते जान तू कि यह तो प्रकट दम्भहै कि लोगों के देखते भजनकरे और जब अकेला होवे तब अलसाय जावे और इस से सूक्ष्म दम्भ यहहै कि एकान्त विषे भी भजन के नियम को सम्पूर्ण करे पर जब लोगों को देखे तब प्रसन्नता करके वह नियम उसको सुगम होजावे सो यहभी दम्भ स्थूल है और इससे सूक्ष्मदम्भ यह है कि लोगों को देखकर यद्यपि प्रसन्न भी न होवे पर उसके अन्तर ऐसा गुह्य दम्भहोताहै जैसे चकमक पत्थरविषे अग्नि गुप्त होतीहै और वह दम्भ तब प्रकट होताहै जब जगत् विषे उसकी मानता बढ़ जाती है और आपको ऐश्वर्यवान् देखताहै इस करके प्रसिद्ध हुआ कि यद्यपि ऐसे पुरुष की क्रिया में आगे दम्भ न भासता था तौ भी उसके अन्तर गुह्यरूप दम्भ था ताते जब इस मानके रसको दोषदृष्टि करके बुरा न जाने तब अवश्यही दम्भ प्रकट उपज आताहै और यद्यपि मुखसे अपनी स्तुति नहीं करता तौभी लक्षणों विषे आपको भजनवान् दिखावता है बहुरि हृदय की स्थिरता और गम्भीरता और जाग्रत को लखाया चाहताहै पर एक दम्भ इससे भी महासूक्ष्म है कि यद्यपि लोगों की मानता करके हर्षवान् भी न होवे तौभी दम्भसे रहित नहीं होसक्ता क्योंकि जब कोई प्रथमही उसको प्रणाम न करे अथवा अधिक आदर न करे अथवा प्रसन्नता सहित उसका कार्य न करे अथवा व्यवहार विषे और लोगों से उस को अधिक न देवे तब वह पुरुष आश्चर्यवान् होताहै कि यह लोग मुझको जानतेही नहीं सो जब उसने भगवद्भजन दम्भसे रहित किया होता तब इस प्रकार आश्चर्यवान् न होता तात्पर्य यह कि जबलग करतूतिका होना और न होना इसको समान न होजावे तबलग दम्भ दूर नहीं होता अर्थ यह कि दम्भ हृदय से तबही नष्ट होताहै जब अपने करतूति की विशेषता न जाने जैसे कोई पुरुष किसी

को एकरुपया देकर सहस्ररुपये की वस्तु लेवे तब वह उस एकरुपये के देनेको कुछ विशेष नहीं जानता और किसीपर उपकार भी नहीं रखता तैसेही जो पुरुष कुछ दिन भगवद्भजन करके अविनाशी राज्यको प्राप्तहोवे तब वह भजनका उपकार किसी मनुष्यपर नहीं रखता और अपने हृदयविषे भी अभिमानी नहीं होता पर जब शुभकर्म करके लोगोंसे सन्मान चाहे और निरादर विषे आश्चर्यवान् होवे तब यह दम्भ चींटीके चलने से भी अधिक सूक्ष्म है अर्थात् सम्पूर्ण विचार विना लखा नहीं जाता इसीपर अलीसन्त ने कहाहै कि वैरागी लोगोंको भी परलोक विषे इसप्रकार ताड़ना होवेगी कि तुमको लोगोंने व्यवहार विषे मोलसे अधिक वस्तु दी है और हाथ जोड़कर तुम्हारे कार्यों विषे सावधान हुये हैं और सब किसी ने तुमको प्रथमही दण्डवत् कियाहै ताते तुम्हारी करतूति केवल निष्काम नहीं हुई और तुमने शुभकर्मोंके फलको संसार विषेही भोगलिया पर ऐसा कोई विरला ही पुरुष होताहै जो सर्व जगत्को त्यागकर यत्न विषे स्थित होवे और संसार के मिलापरूपी विघ्न से डरतारहे बहुरि जब कोई उसको आदर और दण्डवत् करे तब सकुचजावे और ऐसाही पुरुष दण्डसे छूटताहै इसी कारण से जिज्ञासु जनोंने अपने शुभकर्म को इस प्रकार दुराया है जैसे और जीव चोरी और व्यभिचार को दुराय रखते हैं और उन्होंने इस वार्ताको निस्संदेह पहिंचानाहै कि परलोक विषे निष्कामता विना कोई करतूति प्रमाण न करेंगे जैसे किसीने सुनाहोवे कि अमुकदेश विषे खोटा सोना चांदी नहीं चलता और वहांके लोग खरेही को अङ्गीकार करते हैं सो वह पुरुष जब उस नगर विषे जानेकी मंशा रखताहै तब खरेही सोने चांदी को अपने सङ्ग लेता है और खोटेको वहांहीं डालजाता है तैसेही जो पुरुष अपने कर्मों को इस लोक विषे निष्कामता सहित शुद्धता करलेवे तब परलोक विषे अधिक दुःखी होवेगा और सब करतूति उसके व्यर्थ जावेंगे और अपने निष्काम कर्म के विना और किसीकी सहायता न पहुँचेगी सो निष्कामता का अर्थ यह है कि जैसे यह पुरुष पशुओं के आगे निष्कपट कर्म भजन आदिक करता है और उनकी ओर इसकी सुरत कुछ नहीं पसरती तैसेही मनुष्यों विषे भी दम्भ से रहित होवे पर जबलग पशु और मनुष्य का देखना इसको समान न होवे तबलग वह केवल निष्काम नहीं कहाजाता बहुरि जब इसको कोई भजन करता देखै अथवा सोता देखै और आहार करता देखै तो

भी इन कर्मों विषे जगत् का देखना समझाने अर्थ यह कि जैसे आहार और निद्रा किसीको दिखानेकी मंशा नहीं करता और जब कोई देखभी लेवे तब प्रसन्न भी नहीं होता तैसेही भजनविषे भी समान स्थित रहै इसी पर महापुरुष ने भी कहा है कि रश्चकमात्र भी दिखलावा विमुखता है क्योंकि दम्भी मनुष्य भगवद्भजन विषे लोगों को साक्षी किया चाहताहै और अन्तर्यामी के जानने पर संतुष्ट नहीं होता ताते पराधीन जीवों को दिखाया चाहता हैं इसी कारण से महापुरुष ने दम्भी मनुष्य को विमुख कहाहै तात्पर्य यह कि जबलग लोगों के देखने विषे इसको प्रसन्नता होती है तबलग दम्भसे कदाचित् मुक्त नहीं होता पर जब भगवत् का उपकार जानकर प्रसन्न होवे तब इसको दम्भ नहीं कहते सो यह मंशा तीन प्रकार की होती है प्रथम यह कि जिसने अपने भजन को गुप्त कियाथा और उसकी मंशा बिना भगवत् ने प्रकट करदिया बहुरि उसके अनेक अवगुण जो थे सो महाराज ने प्रकट न किये ताते जिज्ञासु जानता है कि मेरे ऊपर भगवत् ऐसा दयालु है कि मेरे छिद्रों को तो दुराय रखता है और भलाई को प्रकट करताहै ताते महाराज की दया और उपकार को जानकर प्रीतिमान् प्रसन्न होता है १ बहुरि दूसरा प्रकार प्रसन्नता का यह है कि जिज्ञासु ऐसे विचारता है कि जिस भगवत् ने इस संसार विषे मेरे अवगुणों को छिपायाहै सो अपनी करुणा करके परलोक विषे भी प्रसिद्ध न करेगा और क्षमा करलेवेगा २ बहुरि तीसरा प्रकार यह है कि जब इसके शुभकर्म को देखकर और लोग भी शुभ क्रिया विषे दृढ़ होवें तब वहभी बड़भागी होवेंगे सो इस करके भी प्रसन्न होना प्रमाण है पर अपने मानके निमित्त हर्षवान् न होवे और जो पुरुष इसके सुकर्म को देखकर सात्त्विकी आचार विशेष दृढ़ हुआ है सो तिसकी जिज्ञासा और प्रतीति को पहिंचानकर प्रसन्न न होवे सो इसकी परीक्षा यह है कि जब वह जिज्ञासुजन और किसी उत्तम पुरुष की अवस्था को देखकर उसकी संगति करै और महाराज की आज्ञाविषे सावधान होवे तोभी इस पुरुष को ऐसीही प्रसन्नता आवे जैसी अपने संग की जिज्ञासा समय देखकर प्रसन्नता होती है (अथ प्रकट करना इसका कि दम्भ करके किस प्रकार शुभकर्मों का फल व्यर्थ होजाता है) ताते जान तू कि दम्भ भजन के आदि विषे भी होताहै और मध्यभी होता है और अन्तभी होताहै बहुरि जब भजन के आदि विषे दम्भकी मंशा होवे

तब उस दम्भ करके शीघ्रही भजन व्यर्थ होजाता है क्योंकि निष्कामता का स्थान इस जीव की मंशा है सो जब प्रथम ही दम्भ करके मंशा अशुद्ध हुई तब स्वाभाविकही निष्कामता नष्ट होजाती है पर भजन के आदि जिस की मंशा शुद्ध होवे और भजन के करतेहुये लोगों को देखकर भजन अधिक करे तब अधिक भजन करने का फल नष्ट होताहै पर मूलही से सब फल व्यर्थ नहीं जाता इस करके कि प्रथम तो उसकी मंशा शुद्ध थी बहुरि जब निष्कामता सहित भजन के नियम को पूराकरे और पीछे से कुछ दम्भ की मंशा फुर आवे ताते उस भजन को प्रसिद्ध कर बैठे तब इस करके भजन का फल नष्ट नहीं होता पर दम्भ के सम्बन्ध करके कुछ दण्ड का अधिकारी होता है पर इस वचनके निर्णय विषे कितने बुद्धिमानोंने योंभी कहाहै कि जब यह पुरुष अपने शुभकर्म को सम्पूर्ण करके पीछे प्रकट करे तब उसको फल कुछ नहीं होता जैसे इब्नमसऊद नामी सन्त के निकट किसीने इस प्रकार कहाथा कि मैं नित्य-प्रति इतना पाठ करता हूं तब उन्होंने कहा कि तुझको उस पढ़ने का फल इतना नहीं होवेगा बहुरि महापुरुष के निकट भी किसीने ऐसे कहा था कि मैं व्रती हूं तब उन्होंने कहा कि तू व्रती भी नहीं और अव्रती भी नहीं अर्थ यह कि व्रत करके भूखा रहता है और अपने मुख से प्रसिद्ध करके व्रत का फल नष्ट करडालता है सो इब्नमसऊद और महापुरुष का भी वचन यथार्थ है पर इसका प्रयोजन यह है कि उन्होंने इस प्रकार जाना था कि पाठक और व्रती दोनों प्रथमही दम्भ से रहित न थे ताते उनके फल को व्यर्थ कहा क्योंकि जब प्रथम इसका भजन दम्भकी मंशा से रहित होवे और पीछे अकस्मात् कुछ दम्भ होजावे तब इस करके भजन का सबही फल व्यर्थ होना कठिनहै पर जब भजनके मध्य विषे दम्भकी मंशा ऐसी दृढ़ होजावे कि भजन की मंशा को जीतलेवे तब भजन का फल सबही नष्ट होता है और जिसकी मंशा निष्काम होवे और लोगों को देखकर कुछ प्रसन्नता फुर आवे तब वह भजन निष्फल नहीं होता पर दम्भके निमित्त कुछ पापी होता है (अथ प्रकट करना उपाय दम्भ के दूर करने का) ताते जान तू कि यह दम्भरूपी रोग महाप्रबल है इसके निवृत्त करनेका उपाय भी अवश्यही करनाचाहिये और बड़े धैर्य और पुरुषार्थ विना इसका उपाय हो नहीं सक्ता क्योंकि इस दम्भ का स्वभाव मन की

वृत्तिके साथ मिश्रित होरहाहै इस करके कि यह मनुष्य बालअवस्था से लेकर सब किसीको ऐसाही देखताहै कि सर्वसंसार आपको भलाही दिखाया चाहता है और सब करतूति जीवों के इसही निमित्त होते हैं ताते बालअवस्थामें ही इस मनुष्य का यही स्वभाव दृढ़ होजाता है और शनैःशनैः करके ऐसा बढ़जाता है कि इस रोग की बुराई को भी नहीं जानसक्ता और इसी स्वभाव की अधिकता विषे अचेत होजाता है इसी कारण से इस दम्भरूपी रोग का दूर करना महा-कठिन कहाहै और इस रोग से रहित भी कोई बिरला ही होताहै ताते सब किसी को इसका उपाय करना योग्य है पर इसका उपाय भी दो प्रकार का होता है सो एक ऐसा है कि दम्भको मूलही से नष्ट करडालता है सो यह भी बूझ और करतूति के सम्बन्ध करके होताहै पर बूझ इसकी यह है कि दम्भ के विघ्न को पहिंचाने बहुरि योंभी जाने कि यद्यपि दम्भके समय मुझको प्रसन्नता होती है तौ भी परलोक विषे इस दम्भके निमित्त ऐसी ताड़ना होवेगी कि मैं उसको सह न सकोंगा सो जिसने इस वार्त्ता को निश्चय पहिंचाना है तिसको दम्भका त्याग करना सुगम होजाता है जैसे किसी पुरुष ने ऐसे जाना होवे कि इस मधुविषे हलाहल विष मिला हुआ है सो यद्यपि उसको मधु के भोजन करनेकी अधिक तृष्णा भी होवे तौभी सुगमही त्यागदेता है तैसेही जिसको परलोक का भय प्रबल होगा सोभी दम्भ को अङ्गीकार न करेगा और यद्यपि सब किसीको दम्भ विषे धन और मान का प्रयोजन होता है तौभी इसकी वासना के तीन मूल हैं प्रथम यह कि दम्भ करके जगत् की स्तुति को चाहता है और दूसरे निन्दा के भय करके दम्भ करता है २ और तीसरे लोगोंकी पूजा विषे आशा रखताहै ताते जिज्ञासु को चाहिये कि प्रथम स्तुति की अभिलाषा को हृदय से दूर करे और ऐसा जाने कि जब मैं भजन विषे दम्भ करूंगा तब परलोक विषे प्रसिद्धही मेरा अप-मान होवेगा और इस प्रकार कहेंगे कि हे दम्भी! हे कपटी! हे महापापी! तैंने भगवद्भजन को जगत् की स्तुति के निमित्त बेचा है और तू ऐसा निर्लज्ज है कि तुझको इस वार्त्ता से लज्जा भी नहीं आई कि तैंने जगत् को प्रसन्न किया और भगवत् की अप्रसन्नता का भय न किया बहुरि जगत्की निकटता को अङ्गीकार किया और महाराज की दूरी का भय न किया ताते प्रसिद्ध हुआ कि तैंने जगत् के मान को भगवत् के मान से विशेष जाना है और महाराज के कोप को अल्प

जान करके जगत् की स्तुति को अङ्गीकार किया है ताते तेरे समान निर्लज्ज और कोई नहीं सो जब बुद्धिमान् इस अपमान का विचार करता है तब भली प्रकार जानता है कि परलोकविषे संसार की स्तुति मेरे किसी काम न आवेगी क्योंकि यद्यपि भगवद्भजन सर्व भलाई का बीज है तौ भी दम्भ करके पापों का बीज होजाता है बहुरि जब मैं दम्भ से रहित होऊंगा तब सन्तजनों का संगी होऊंगा और दम्भ करके अवश्यही मनमुखोंका संगी होऊंगा और जिस जगत् की प्रसन्नता के निमित्त दम्भ करता हूं सो जगत् की प्रसन्नता भी मुझको कदाचित प्राप्त नहीं होती क्योंकि जब एक पुरुष की प्रसन्नता होती है तब दूसरा अप्रसन्नही रहता है और जब एक मनुष्य स्तुति करताहै तब दूसरा निन्दा करने लगता है बहुरि जब सब कोई इसकी स्तुति करे तौ भी इसकी प्रारब्ध और आयुष् और लोक अथवा परलोक का भलाई किसीके हाथ विषे नहीं ताते ऐसे पराधीन जीवों की स्तुतिके निमित्त अपने चित्तको विक्षेपता देनी बड़ी मूर्खता है और दुःखोंका कारणहै ताते चाहिये कि यह पुरुष बारम्बार इसीप्रकार विचार करे तब स्तुति की अभिलाषा का मूल हृदय से नष्ट होजावे बहुरि जगत् की आशा को दूर करने के निमित्त ऐसा जाने कि प्रथम तो जगत्की आशा फलहीन होतीहै अथवा जब कुछ प्राप्त भी होताहै तो इसके ऊपर बड़ा उपकार रखते हैं और महाराज की प्रसन्नता भी दूर होजाती है बहुरि मनुष्यों के हृदय भी भगवत् की आज्ञा बिना कोमल और वशीकार नहीं होते ताते जिसने भगवत् को प्रसन्न किया है तब स्वाभाविकही सर्व जीवों के चित्त उसके अधीन होजाते हैं और जिसने भगवत् को प्रसन्न नहीं किया तब जगत् बिषे उसके अवगुणही प्रसिद्ध होते हैं ताते सब कोई उसका त्याग करदेता है बहुरि जगत् की निन्दा के भय को दूर करने का उपाय यह है कि आपको सर्वदा इस प्रकार समझावे कि जब मुझको भगवत् ने प्रमाण किया तब लोगों की निन्दा करके मेरी हानि कुछ नहीं होती और जब महाराज के निकट मेरा निरादर हुआ तब इनकी स्तुति भी लाभदायक न होवेगी और जो पुरुष निष्काम होकर जगत् की ओर हृदय न देवे तब सर्व मनुष्यों के हृदय बिषे महाराजही उसकी प्रीति और प्रतीति को दृढ़ करता है और जब ऐसा न करे तब शीघ्रही लोग इसके छल को पहिंचान लेते हैं और जिस निन्दा से भयवान् होता है सो अवश्यही

निन्दाही को प्राप्त होता है और भगवत् की प्रसन्नता से भी विमुख रहता है बहुरि जब भली प्रकार विचार करे और पुरुषार्थ करके निष्कामता बिषे दृढ़ होवे तब जगत् की मनोहरता से मुक्त रहे और चित्त उसका प्रकाशमान होवे और भगवत् की सहायता पाकर निष्कामता के आनन्द को पावे पर करतूति करके इस प्रकार उपाय होता है कि भजन और दान आदिक शुभकर्मों को ऐसा गुप्त राखे जैसे अपने अपकर्मों को दुराता है और अन्तर्यामीही के जानने पर सन्तुष्ट रहे सो यद्यपि प्रथम यह करतूति कठिन होती है पर यत्न और पुरुषार्थ करके शीघ्रही सुगम भी होजाती है तब निष्कामता और भजन के रहस्य को पायकर परमानन्द को पावता है बहुरि ऐसी अवस्था उसको प्राप्त होती है कि यद्यपि लोगों के समूह उसको देखते रहैं तौ भी उसकी सुरत लोगों की ओर नहीं परसती सो यह ऐसा उपाय है कि इस करके दम्भ का बीजही नष्ट होता है १ बहुरि दूसरा उपाय ऐसा है कि उस करके दम्भ का बल क्षीण होता है और मूलही से दूर नहीं होता सो यह है कि जब यह पुरुष भजन बिषे स्थित होता है तब इसके चित्त में यह संकल्प आन उपजता है कि मेरे भजन को लोगों ने जाना है अथवा अब जानेंगे २ बहुरि इसही संकल्प की अधिकता करके यह अभिलाष दृढ़ होजाती है कि जब लोग मुझको भजनवान् जानेंगे तब मेरे ऊपर विशेष प्रतीति करेंगे ताते इस दम्भ के संकल्प और अभिलाषा बिषे मंशा करके ऐसे चाहता है कि लोग मेरे भजन को जानें तो भला है ३ पर जिज्ञासु को ऐसे अवसर बिषे प्रथमही वह संकल्प यत्न करके दूर किया चाहिये सो आप को इस प्रकार समझावे और बारम्बार यह विचारकरे कि जगत् का जानना मेरे किस काम का है और लोगों के जानने करके मेरा कौन कार्य सिद्ध होगा क्योंकि जगत् को उत्पन्न करनेवाला भगवत् सर्वजीवों का अन्तर्यामी है ताते उसकाही जानना मुझको विशेष और लाभदायक है इस करके मेरा कोई कार्य लोगों के हाथ नहीं पर जब लोगों ने विशेषही जाना और महाराज के निकट मुझको ताड़ना हुई तब इनकी मानता मेरी रक्षा क्योंकर करेगी सो जब यह बिचार जिज्ञासु के हृदय बिषे दृढ़ होता है तब दम्भ के ऊपर शीघ्रही इस की दोषदृष्टि उपज आती है अर्थात् दम्भ को निश्चय करके बुरा जानता है और यह दोषदृष्टिही दम्भ की प्रीति के सम्मुख आन स्थित होती है बहुरि जैसे

दम्भ की प्रीति इस जीवको लोगों की ओर खींचती है तैसेही दोषदृष्टि उसको विवर्जित किया चाहती है सो जिस संकल्प का बल अधिक होता है वही संकल्प इसके मनको अधीन करलेता है पर दम्भ के संकल्प और दम्भ की अभिलाष और लोगों की मानता की मंशा जो ऊपर वर्णन हुई सो इन तीनों के सम्मुख तीनों शुभ गुण आते हैं सो प्रथम यह बूझ है कि जिस करके दम्भ की बुराई को जानता है १ और दूसरा गुण दोषदृष्टि है सो यहभी बूझही से उपजती है जिस करके उस दम्भ विषे इस जीव को ग्लानि दृढ़ होती है २ बहुरि तीसरा गुण यह है कि आपको दम्भ की मंशा से और संकल्पों से वर्जिराखना ३ पर जब दम्भरूपी रोग ऐसा प्रबल हुआ होवे कि उस समय विषे बूझही दिखाई न देवे और ग्लानि भी प्रकट न होसके अर्थ यह कि यद्यपि आगे आपको इसने समझ कर बहुत बर्जा होवे तौभी उस समय विषे वह बूझ स्थित न रहे तब स्वाभाविकही मनकी वासना के अधीन होजाता है जैसे कोई आपको क्रोध से आगे सहनशीलता विषे स्थित करता रहै और क्रोध के विघ्नों को विचारता रहे पर जब क्रोध का अवसर आवे तब तमोगुण की प्रबलता विषे सबही विचार भूल जावें तैसेही उस दम्भ की बुराई को जब विचार करके समझता है तौ भी वासना के बल करके दोषदृष्टि नहीं उपजती और जो दोषदृष्टिभी स्थित होवे तो पुरुषार्थ की हीनता करके अपने स्वभाव को दूर नहीं करसक्ता और दम्भ की प्रीति विषे आसक्त होजाता है ताते जगत्की स्तुतिको प्रीति संयुक्त सुना चाहता है इसी कारण से केते पण्डित योंभी जानते हैं कि हम यह वचन दम्भ के निमित्त कहते हैं तौभी उस वचन का त्याग नहीं करसक्ते और दम्भ विषेही बध्यमान रहते हैं तात्पर्य यह कि जेती इस पुरुष को दोषदृष्टि उपजती है तेता ही दम्भके त्याग विषे समर्थ होता है और दोषदृष्टि इस मनुष्य विषे बूझ की मर्याद के अनुसार उपजती है बहुरि बूझका बल इस मनुष्य विषे इतनाही दृढ़ होता है जितनी प्रतीति भगवत् के ऊपर राखता है सो यह शुभगुण भगवत् की सहाय आकरके प्राप्त होते हैं तैसेही दम्भ की अधिकता माया के भोगों की प्रीति करके होती है और भोगों की प्रीति का प्रेरक मन और वासना है बहुरि इस मनुष्य का चित्त इन दोनों विरोधी सेना की खैंच विषे सर्वदा स्थित है पर जैसी इस जीव की वृत्ति और स्वभाव अधिक होता है और जिस पदार्थ

की ओर इसकी प्रीति है तब उसही स्वभाव और वृत्तिको अङ्गीकार करताहै अर्थ यह कि जिस मनुष्यकी वृत्ति भजन के समय आगे ही निर्मल होती है तब वह पुरुष भजन विषे भी निर्दम्भ रहता है और जिसके ऊपर आगेही रज तम का स्वभाव प्रबल होताहै सो भजनके समय बिषे भी दम्भ और मानकी ओर बहजाता है पर भगवत् की नेत और आज्ञा इन सर्व कार्यों से परे है अर्थ यह कि महाराज की आज्ञाके भेदको अपनी बुद्धि करके कोई जान नहीं सक्ता ताते जैसी भगवत की आज्ञा होती है सो तिसही ओर खैंच लेजाती है किसी को दिव्य स्वभावों बिषे स्थित करती है और किसीको मलिन स्वभावों बिषे डालदेती है बहुरि ऐसे जान तू कि जब तैंने दम्भ की खैंच को विपर्यय किया तब हृदय बिषे दोषदृष्टि करके उसको बुरा जाना पर जब इससे उपरान्त कुछ दम्भ का संकल्प तेरे चित्त में शेष रहजावे तब इस करके तुझको पाप नहीं होता क्योंकि अकस्मात् संकल्प इस जीव का स्वतः स्वभाव है और यह मनुष्य स्वतःस्वभाव को दूर नहीं करसक्ता ताते सन्तजनों ने भी इस प्रकार कहा है कि अपने मलिन स्वभाव को प्रथम मलिन जानिये बहुरि पुरुषार्थ के अनुसार उसको विपर्यय किया चाहिये तब नरकों से इस जीवकी रक्षा होवे पर उन्होंने ऐसा नहीं कहा कि सर्वदा अपने स्वभावों से अपनी समर्थता करके मुक्त हूजिये क्योंकि यह वार्ता होनी ही कठिन है ताते जब तैंने सन्तजनों की आज्ञा मानकर यथाशक्ति अपना पुरुषार्थ किया तब निस्संदेह शनैः २ करके वह स्वभाव तेरे वशीकार होजावेगा सो तुझको इतनीही करतूति करनी है कि जैसे तुझको दम्भादिक अवगुणों की प्रीति है और उनके निमित्त उद्यम करता है तैसेही इनको मलिन जानकर यथाशक्ति इनके त्यागने का उपाय करे तब इसही करतूति बिषे तेरी भलाई है इसीपर महापुरुषके प्रियतमों ने इस प्रकार विनती करी थी कि जब हमारे चित्त बिषे कुछ मलिन संकल्प फुरता है तब हम ऐसे दुःखित होते हैं कि जो हमको कोई गिराय कर पाताल बिषे डालदेवे तौभी हम उस संकल्प के दुःख से इसको सुगम जानते हैं तब महापुरुष ने कहा कि जब तुमको ऐसी दोषदृष्टि प्राप्तहुई है तब तुम निश्चय जानो कि धर्म और प्रतीति का उत्तम लक्षण यही है और संकल्पों का दूर करनेवाला भगवत् है ताते उसही की शरण लेवो इस करके प्रसिद्ध हुआ कि धर्म का चिह्न दोषदृष्टि है और जिसको दोषदृष्टि प्राप्त हुई है तिसके मलिन

संकल्प स्वाभाविकही नष्ट होजाते हैं क्योंकि रुचि और प्रीति करके संकल्पकी अधिकता होती है और दोषदृष्टि करके संकल्प क्षीण होजाताहै पर इस विषे एक और भी भेद है कि जिसको मनके स्वभावों से विपर्यय होनेका बल प्राप्त हुआ है तब ऐसी अवस्था करके भी माया इसको छल आनलेती है सो उस छल का रूप यहहै कि इस पुरुष को मलिन संकल्पों के विपर्यय करने विषेही परचाय रखती है और भजन की एकत्रता को प्राप्त होने नहीं देती और संकल्पों के विरुद्ध विषेही बांध छोड़ती है सो यहभी अयोग्य है पर यह अवस्थाभी चार प्रकार की होती है प्रथम यह कि अपना सबही समय संकल्पों के विरुद्ध विषेही खोना और भजन से विमुख रहना १ और दूसरी अवस्था यह है कि मलिन संकल्पों क निषेध विषे कुछ काल बितावना बहुरि उसको झूंठा करके भजन में स्थित होना २ और तीसरी अवस्था यह है कि झूंठे संकल्प की ओर चित्तही न देना और उसके निषेध विषे भी अपनी आयुर्बल व्यर्थ न करनी और भजन के रहस्य विषेही स्थित रहना ३ बहुरि चौथी अवस्था यह है कि झूंठे संकल्प को देखतेही तीक्ष्ण वैराग्यसहित उससे दूर होना और भजन की एकाग्रता विषे चित्तकी वृत्ति को लीन करलेना सो यह उत्तम अवस्था है क्योंकि यह अवस्था छल को भी छल देनेवाली है इस करके कि ऐसा पुरुष आप तो छल से मुक्त रहता है और छल को देखकर इस प्रकार तीक्ष्ण दौड़ताहै कि छलको लज्जावान् करके शीघ्रही अपने कार्य विषे जाय सावधान होता है ४ सो इसका दृष्टान्त यह है कि जैसे चार पुरुष विद्या पढ़ने जावें और कोई और पुरुष ईर्षा करके उनको विवर्जित किया चाहे सो जब ईर्षा करनेवाला पुरुष प्रथम विद्यार्थी को मिले और उसको पढ़ने के निमित्त जानेसे मार्ग में रोके और वह विद्यार्थी ऐसा होवे कि उस शत्रु के वचनको न माने पर पढ़ने का समय वैरीसे विरुद्ध करने विषेही बितावे तब वह तो पढ़ने से दूरही रहजाता है बहुरि जब दूसरे पुरुषको वह बाधक शत्रु रोके तब वह उसको झूठा करने के निमित्त कुछ ढील लगावे पर वहांही अटक न रहे बहुरि शत्रु को निषेध करके विद्या जाय पढ़े बहुरि जब वह शत्रु तीसरे पुरुषको अटकाया चाहे तब वह शत्रुकीओर हृदयही न देवे और उसको दुःखदायक जानकर अपने मार्ग विषे चलाजावे बहुरि चौथा पुरुष ऐसा होवे कि शत्रुको मार्ग में देखकर तीक्ष्ण भाग जावे और विद्या पढ़ने के कामविषे जाय स्थित होवे सो

जब विचार करके देखिये तब दो पुरुषोंसे तो शत्रुने अपना मनोरथ पूर्णकिया और तीसरे पुरुष से उसको प्राप्त कुछ न हुआ बहुरि चौथे पुरुष से शत्रुको प्राप्तभी कुछ न हुआ और लज्जावान् होकर उलटा पश्चात्ताप करने लगा कि जब मैं इसको विद्या पढ़ने से विवर्जित न करता तब यह शीघ्रही दौड़कर विद्या पढ़ने की ओर न जाता ताते भली पुरुष यही है तैसेही दृढ़ पुरुषार्थ उसही जिज्ञासु का कहाजाता है जो संकल्पों के विरुद्ध विषेभी आसक्त न रहे और शीघ्रही भजन के रहस्य में लीन होजावे (अथ प्रकट करना इसका कि ऐसे कार्य करके भजन का दिखलाना भी प्रमाण है) ताते जान तू कि जैसे भजन की गुह्यता विषे यह लाभ प्रसिद्ध है कि दम्भसे मुक्तरहताहै तैसेही भजन की प्रकटता विषे भी यह बड़ा लाभ है कि भजनवान् को देखकर और लोग भी भजन विषे स्थित होते हैं और उनकी श्रद्धा सात्त्विकी क्रियामें वृद्ध होती है इसीपर महाराजने कहा है कि जब शुद्धमंशा सहित प्रकट दानदेवे तौभी विशेष है और जो पुरुष गुह्यदान देवे वह भी उत्तमहै इसीपर महापुरुषने भी कहाहै कि जब यह पुरुष सात्त्विकी कर्म की नीव दृढ़ रखताहै और उसकर्म को देखके और मनुष्यभी शुभक्रिया विषे लगते हैं तब प्रथम पुरुषको अपने करतूतिका फलभी प्राप्तहोताहै और २ मनुष्यों के फलका भाग भी पावता है जैसे तीर्थयात्री को देखकर और लोगभी तीर्थकी मंशा करतेहैं और जो पुरुष रात्रिविषे ऊंचेस्वर से भजन करताहै तब उसकी धुनि सुनकर बहुत मनुष्यों की निद्रा दूर होजाती है तो इसप्रकार के कर्मों करके दूसरों को भी सुकृति का लाभ होताहै और इसको अपनी सुकृति का फल और दूसरों की करतूतिका भाग प्राप्तहोताहै और इन कर्मोंके अर्थ विशेष आज्ञाहै तात्पर्य यह कि जिसकी मंशा दम्भ से रहित होवे और और जीवों के निमित्त भजन और शुभकर्म को प्रकटकरे तब यह भी उत्तम अवस्था है पर जिसके हृदय विषे दम्भ की वासना उपजआवे सो उसका भजन व्यर्थ होता है और शुद्ध वासना करके जो भजन करता है उसही का भजन और करतूति सफल होती है और महापुरुष ने भी ऐसा कहा है कि भजनकरो पर हृदय बिषे दम्भ की वासना न करो शुद्ध मंशा करके भजनकरो और ऐसा भी कहा है कि दम्भ की मंशा करनी मूर्खों का काम है और गुप्तभजन परदे साथ जो करते हैं सो सब फलदायक होता है जैसे धरती में बीज बोवते हैं सो जो धरती में दबाहुआ होता है वही

उगता है और बाहर जो दाना होता है सो नहीं उपजता पर जिसके मन विषे खोटी वासना धनआदिक की होती हैं तब उसको और जीवों के कल्याण के निमित्त भजन को प्रकट करना लाभदायक नहीं होता क्योंकि प्रथम तो दम्भ करके इसकी मंशा मलिन होती है और इसीकारण से और जीवों को भी इसके भजन और उपदेश का प्रवेश नहीं होता ताते ऐसे पुरुष को गुह्य भजन करना विशेष है पर प्रकट भजन करनेवाले को इस प्रकार चाहिये कि अपने हृदय को भली प्रकार देखता रहे और दम्भ की वासना से रहित होवे क्योंकि केते पुरुषों के हृदय में दम्भ की प्रीति गुह्य होती है और अपने चित्तविषे इस प्रकार अनुमान करलेते हैं कि हम जगत् के कल्याण के निमित्त भजनको प्रकट करते हैं बहुरि दम्भ की प्रीति करके अपने धर्म को नष्ट करते हैं सो ऐसे पुरुषार्थहीन पुरुषों का दृष्टान्त यहहै कि जैसे कोई मनुष्य नदी विषे तैरनेलगे और तैरने की विद्या को जानता न होवे तब अवश्यही जल के प्रवाह विषे डूब जाता है अथवा और किसी को उस प्रबल प्रवाहसे निकाला चाहे तब उसको भी अपने संगही डुबावताहै और बलवान् पुरुषोंका दृष्टान्त ऐसाहै कि जैसे कोई तैरने की विद्या विषे चतुर होवे तब वह आप भी तैरजाता है और और मनुष्यों को भी तैरायलेता है सो यह सन्तजनों की अवस्था है पर सब किसी को ऐसा नहीं चाहिये कि महापुरुषों की अवस्था को देखकर यह भी अभिमानी होवे और दम्भसे रहित होकर अपने भजन को गुह्य न राखे तब निस्संदेह उसका अकाज होता है बहुरि जो पुरुष जगत् के कल्याण के निमित्त भजन को प्रकट करता है सो तिसकी परीक्षा यह है कि जब कोई उसको ऐसा कहे कि तू अपने भजन को प्रसिद्ध न कर इस करके कि लोगोंको कल्याणका उपदेश करनेवाला अमुक वैराग्यवान् प्रकट है ताते उसकी संगति करके इनको अधिकलाभ होवेगा और तुझको भी गुह्य भजन करने विषे अधिकलाभ है सो जब वह पुरुष यह वार्त्ता सुनकर भी भजनको प्रकटही किया चाहे तब ऐसा जानिये कि अपने मान और ऐश्वर्य को चाहता है और अर्थ के फल की मंशा से हीनहै बहुरि एक ऐसे पुरुष होते हैं कि भजन के नियमको पूर्ण करके लोगों विषे इस प्रकार कहने लगते हैं कि हमने क्या करतूति कियाहै? सो इस वचन करके भी मनको प्रसन्नता होती है ताते चाहिये कि अपनी स्तुति की रसना को सकुचायराखे अर्थ यह कि जब-

लग मान अपमान और निन्दा स्तुति इसको समान न होवे तबलग किसी प्रकार अपनी बड़ाई को प्रकट न करे बहुरि जब मान की अभिलाषा मूलही से इसके हृदय से दूर होजावे तब उसको अपनी स्तुति करके भी दोष नहीं लगता और उसके वचन सुनकर केते जीवों की मंशा शुभ करतूति बिषे दृढ़ होती है सो केते बलवान् पुरुषों ने इस प्रकार अपनी विशेषता को वर्णन कियाहै जैसे एक सन्त ने कहा है कि मैंने भगवत् का भजन संकल्प सहित कदाचित् नहीं किया और जो वचन मैंने महापुरुषों के मुख से सुना है सो तिसको यथार्थही जानकर निश्चय किया है इसीपर उमरनामी सन्त ने भी कहा है कि जब मैं प्रभात समय उठता हूं तब मुझको किसी सुगम और अगम कार्यविषे भय नहीं होती इसकरके कि देखिये मेरी भलाई किस कार्यमें होवेगी ऐसेही इबनमसऊद सन्त ने कहाहै कि जब जैसा अवसर मेरे ऊपर आता है तब उसको मैं अपनी वासनाके अनुसार कदाचित् विपर्यय नहीं कियाचाहता और सिफ़यांसौरी सन्त जब मृत्युवश होनेलगे थे तब उनके सम्बन्धी रुदन करनेलगे तब उन्हों ने ऐसा कहा कि मेरे मृत्यु होनेपर रुदन न करो क्योंकि जिस दिनसे मैंने महाराज के मार्ग बिषे चरण राखाहै तबसे मैंने पापकर्म नहीं किया इसीपर एक और सन्त ने कहाहै कि जिस प्रकार भगवत् की आज्ञा हुई है उससे मैंने विपर्यय वासना नहीं करी पर निर्बल मनुष्य को इस प्रकार नहीं चाहिये कि उनको देखकर यह भी अभिमानी होजावे बहुरि महाराज के करतूतों बिषे ऐसे भी गुह्यभेद हैं कि उनको अपनी बुद्धि करके पहिचान नहीं सके और केते विघ्नों बिषे ऐसी गुह्य भलाई होती है कि हम उसको जानतेही नहीं जैसे दम्भ करके दम्भी मनुष्य का अकाज होजाता है पर तौभी उसको देखकर केते जीवों की वृत्ति सात्त्विकी आचरण बिषे दृढ़ होजाती है और अपनी शुद्धमंशा करके दम्भी पुरुषको भी निष्काम जानते हैं ताते वह भी निष्कामता बिषे दृढ़होते हैं (अथ आज्ञादेनी अपने पापको छिपानेकी) ताते जान तू कि भजनके प्रकट करने में तो निस्सन्देह दम्भ होताहै पर अपने अवगुणों का छिपाना भी सन्तजनों ने प्रमाण कहा है और इसको दम्भ नहीं कहते क्योंकि अपने पाप को दुराने बिषे पांच प्रकारकी विशेषता प्रसिद्धहै प्रथम यह कि पापकर्म को देखकर लोग निन्दा करते हैं और जब इस पुरुष की वृत्ति निन्दा स्तुति बिषे आसक्त होतीहै तब भजन से विमुख

रहताहै १ बहुरि दूसरी विशेषता यहहै कि निन्दा सुनकर इस मनुष्यका हृदय अप्रसन्न होताहै और निन्दास्तुतिको सम जानना महादुर्लभ है ताते ऐसी अवस्था को प्राप्तहोना भी महाकठिन है बहुरि निन्दा के भय करके भजन करना निष्कामही विशेष होताहै और निन्दा के भय करके निन्द्य कर्मोंको दुरावना अयोग्य नहीं इस करके कि यद्यपि यह पुरुष लोगों की स्तुतिसे विरक्त होसक्ता है तौभी निन्दा विषे धैर्य करना महाकठिन है २ बहुरि तीसरी विशेषता यहहै कि जब किसी का मलिन कर्म प्रसिद्ध होता है तब उसको देखकर और लम्पट मनुष्य भी ढीठ होजाते हैं और शङ्का से रहित होकर निन्द्य आचार विषे विचरने लगते हैं सो इस मंशा करके अपने पाप को दुरावना भी विशेषहै पर जब अपने पाप को इस मंशा करके दुरावें कि ये लोग मुझको वैरागी और भजनवान् जानें तब यह वार्त्ता अयोग्य है ३ बहुरि चौथी विशेषता यह है कि लज्जा करके अपने अवगुणों को दुरावे तौभी भला है क्योंकि सर्व मनुष्यों से लज्जा करनी इस जीव को प्रमाण कही है पर जब कोई इस प्रकार कहे कि लज्जा और दम्भ एक हैं तब ऐसे नहीं क्योंकि लज्जा और है और दम्भ और है पर जब कोई पुरुष ऐसा होवे कि उसका अन्तर बाह्य एक समान होवे तब यह अवस्था महाउत्तम है और यह अवस्था उसही को प्राप्त होती है जिसके हृदय विषे भी पाप की मंशा न फुरे और जब कोई पुरुष पापकर्म करके इस प्रकार कहे कि जब भगवत् मेरे पाप को जानता है तब मैं और जीवों से किस निमित्त दुरावों सो यह बड़ी मूर्खता है क्योंकि महाराज ने भी गुह्य वार्त्ता को छिपानाही विशेष कहा है ४ बहुरि पांचवीं विशेषता यह है कि जब इसका अवगुण इसलोक विषे प्रसिद्ध न हुआ तब महाराज को दयालु जानकर इस प्रकार समझै कि उसकी दया करके परलोक विषे भी मेरा अवगुण प्रसिद्ध न होवेगा ताते अपने पाप को दुरायकर महाराज की दया के ऊपर शुद्ध आशा राखे तब यही बड़ी विशेषता है ५ (अथ प्रकट करना इसका कि दम्भ की भय करके शुभ कर्मोंका त्यागकरना प्रमाण है अथवा नहीं) ताते जान तू कि सब शुभकर्म ..न प्रकार के कहे हैं सो प्रथम यह कि एक कर्म का सम्बन्ध केवल भगवत् के जैसे भजन और व्रत और साधन जो जिज्ञासुजन करते हैं १ और उन कर्मों का सम्बन्ध लोगों के साथ अवश्यही होताहै जैसे

राजनीति की मर्याद बिषे बिचारना और देशों की पालना और रक्षा करनी २ बहुरि तीसरा कर्म इसप्रकार है कि उसका सम्बन्ध लोगों के साथभी होताहै और लोगों बिषे उसका प्रवेश भी पहुँचता है और कर्म करनेवाले को भी उसका गुण प्राप्त होताहै जैसे कथा कीर्त्तन और शुभकर्म जो व्रत भजन आदिक हैं ३ तब दम्भकी भयकरके इनका त्यागकरना प्रमाण नहीं पर जब ऐसे कर्मों बिषे किसी पुरुष को अचानकही दम्भका संकल्प फुरआवे तब चाहिये कि उस मलीन फुरना को विचार करके निवृत्तकरे और भजन की शुद्ध मंशाको हृदय बिषे दृढ़ करे बहुरि लोगों के देखने के निमित्त भजन को बढ़ावे घटावे नहीं और जिस प्रकार आगेही भजन करताहोवे तैसेही करतारहे तो भला है अथवा जब भजन की मंशा कुछही न रहे और दम्भ का संकल्प अत्यन्त दृढ़ होजावे तब यह तो भजनही नहीं कहाजाता पर जबलग इस पुरुष की शुद्ध मंशा का बीज स्थितहोवे तबलग ऐसे कर्मोंका त्याग न करे इसीपर फुजैलनामी सन्त ने कहा है कि लोगों की दृष्टिके भयकरके शुभकर्मों को त्यागदेना ही दम्भ है और जो पुरुष जगत् को दिखावने के निमित्तही भजन करे तब वह तो निस्सन्देह मन-मुख होताहै पर यह मनरूपी दुष्ट ऐसा शत्रु है कि जब और छल करके भजन का त्याग नहीं करायसका तब ऐसा संकल्प आन उपजावता है कि जब तू भजन करता है तब और लोग तुझको देखते हैं तब यह केवल दम्भ होताहै ताते तू भजन ही का त्यागकर पर जब तू मन की आज्ञा मानकर धरती को खोदे और उसबिषे बैठकर भजनकरे तौभी तुझको इस प्रकार कहेगा कि लोग तुझ को भजनवान् जानते हैं ताते तेरा भजन करना प्रमाण नहीं सो इसका उपाय यह है कि मन को इस प्रकार बिचारकर कहिये कि लोगों की ओर चित्त की वृत्ति को पसारना और इस ही भय करके भजन का त्याग करना सो यह भी केवल दम्भ है ताते लोगों का देखना और न देखना मुझको एक समान है क्योंकि मुझको भजन के स्वभाव बिषेही स्थित होना विशेष है और मैं इस प्रकार जानताहूं कि मुझको कोई नहीं देखता ताते दम्भकी भयकरके भजन को त्याग करने का दृष्टान्त यह है कि जैसे कोई अपने टहलुवेसे कहे कि अमुक अनाज को अमानिया करले और वह टहलुवा ऐसा जानकर अनाज को शुद्ध न करे कि जो इस अनाजबिषे अकस्मात् अमानिया करनेके पीछे भी कोई रोड़ी अथवा

कांकर रहजावे तब यह भली प्रकार शुद्ध न होवेगा ताते मैं मूलहीं से अनाज शुद्धकरने का उद्यम नहीं करता तब उससे उसका स्वामी ऐसे कहता है कि हे मूर्ख! जब तैंने मूलही से शुद्ध करनेका उद्यम न किया तब क्या वह अनाज शुद्ध होजावेगा अर्थात् अत्यन्त अशुद्ध रहेगा तैसेही इस जीव को भगवत् ने निष्काम कर्म की आज्ञा करी है पर जब दम्भ के भय करके शुभ कर्मही न करे तब निष्काम क्योंकर होवेगा क्योंकि निष्कामता शुभकर्मों विषेही स्थितहोती है और इब्राहीम सन्तकी वार्त्ता इस प्रकार सुनी है कि सर्वदा अपनी कुटी विषे पोथी का पाठकरते रहतेथे बहुरि जब और किसीको द्वारेपर आता देखते थे तब पोथी को उलटाय रखते थे सो इसका तात्पर्य यहहै कि वे इसवार्त्ता को निश्चय जानते थे कि जब कोई पुरुष हमारे मिलने को आयाहै तब उसके साथ अवश्य ही कुछ वचन वार्त्ता करनी होवेगी ताते पोथी को उलटाय रखनाही विशेष है और हसनबसरी ने इस प्रकार कहा है कि जब जिज्ञासुजनों को महाराज के प्रेम करके रुदन आता था तब निष्काम पुरुष अपने मुख को दुरायलेते थे इस करके कि हमारे आंसू चलने को और लोग न देखें सो यह वार्त्ता भी प्रमाण है क्योंकि गुह्य रुदनकरने से प्रकट रोना कुछ विशेष नहीं होता और उन्होंने भी लोगों के निमित्त रुदन का त्याग नहीं किया पर अपनी प्रीति के प्रवाहको गुह्य करलिया है और जब कोई पुरुष ऐसा होवे कि मार्ग विषे कांटा और पत्थर देखकर उठावे नहीं इस करके कि लोग मुझको दयावान् जानेंगे सो यह अत्यन्त पुरुषार्थ की हीनता है क्योंकि ऐसा पुरुष लोगोंके देखने से अपने चित्त विषेही भयवान् होता रहता है और इसही संकल्प की अधिकता करके भजन नहीं करसक्ता सो यह अवस्था कुछ विशेष नहीं होती ताते चाहिये कि प्रीतिमान् अपने हृदय से दम्भ का निवारण करे और भजन को त्याग न देवे तौ भला है बहुरि दूसरा कर्म जो इस प्रकार वर्णन किया कि अवश्यही उसका सम्बन्ध लोगों के साथ होता है जैसे राजनीति और देशों की पालना करनी सो जब यह पुरुष राजनीति विषे धर्म और विचार की मर्याद संयुक्त विचरै तब यह भी उत्तम भजन होता है और जब धर्म से हीन होजावे तब इसही को महापाप कहा है ताते जिस पुरुष को ऐसी प्रतीति दृढ़ न होवे कि मेरा मन राजनीति विषे विचार की मर्याद सहित न विचरेगा तब उसको राज्या-

दिक व्यवहार को अङ्गीकार करना प्रमाण नहीं क्योंकि जब राजधर्म विषे अनीति सहित विचरे तब महाअपराध को प्राप्त होता है और यह राज्यव्यवहार नियम और व्रतों की नाईं नहीं क्योंकि भजन के नियम और व्रतों विषे इस मन को मूलही से कुछ प्रसन्नता नहीं भासती पर लोगों के देखने करके प्रसन्नता को पाता है और राजव्यवहार विषे सर्वभोग और मानादिकों की अधिकता होती है ताते इस जीव का मन शीघ्रही वृद्धिस्थूलतहै होजाता है इसी कारण से कहा है कि राजनीति विषे कोई विरलाही पुरुष बिचार की मर्याद में स्थित रहता है और यह अवस्था उसही को प्राप्त होती है जिसने आगेही अपने मन की परीक्षा करली होवे पर यद्यपि यह मन राजधर्म से आगेही दिखावे कि मैं जगत् की पालना विषे भलीप्रकार बिचरूंगा और भोगों बिषे आसक्त न हो-ऊंगा तौभी जिज्ञासुजन को भय औ दोषदृष्टि करनी विशेष है क्योंकि मत यह भी मन का छल न होवे और जब सिंहासन पर जाय बैठे तब स्थित न रहे ताते स्थिर बुद्धि विना ऐसे व्यवहार को अङ्गीकार करना प्रमाण नहीं इसी पर अबूबक्र सन्त ने एक अपने मिलापी से कहा था कि जब तुझको दो पुरुषों बिषे मुखिया करें तौभी अङ्गीकार न करना बहुरि जब महापुरुषसे पीछे अबूबक्रको सर्व देशों का राज्य प्राप्तहुआ तब उस प्रीतिमान् ने कहा कि तुम मुझको तो वर्जित करते थे फिर तुमने राज्य को क्यों अङ्गीकार किया तब उन्हों ने कहा कि मैं तुझको तो अबभी वर्ज़ित करता हूं क्योंकि जो पुरुष सिंहासन पर बैठकर न्याय न करे तब वह महाराज के दरबार से विमुख होता है पर अबूबक्रजी ने जो उसको राज्य से वर्जित किया था और आप राज्य को अङ्गीकार किया सो इसका दृष्टान्त यह है कि जैसे कोई पुरुष अपने पुत्र को इसप्रकार कहे कि तू जल के प्रवाह बिषे प्रवेश न कर क्योंकि जब तू तैरनेकी विद्या विना नदी बिषे प्रवेश करेगा तब शीघ्रही डूबजावेगा पर जब वह पुरुष आप तैरनेकी विद्या जानता होवे तब उसको तो नदी का भय कुछ नहीं होता और सुगमही उल्लङ्घित हो-जाता है बहुरि जब वह बालक भी उसको देखकर नदी के प्रवाह बिषे प्रवेश करे तब वह तो निस्संदेह डूबजाता है तैसेही जो पुरुष राजव्यवहार बिषे बि-चार की मर्यादसहित न बिचरै तब दण्ड का अधिकारी होता है ताते ऐसे पुरुष को राजधर्म का अङ्गीकार करना अयोग्य है पर जो कोई ऐसा बिचारवान् होवे

कि जब कोई और पुरुष भलीप्रकार न्याय करनेवाला आवे तब उसके साथ ईर्षा और वैरभाव न करे और उसको देखकर अधिक प्रसन्न होवे और इस भय से रहित होवे कि इसके राज्य करके मेरा राज्य नष्ट होवेगा तब जानिये कि इसने धर्म ही के निमित्त राज्य को अङ्गीकार किया है २ बहुरि तीसरा कर्म इस प्रकार का कहा है कि लोगों को शुभमार्ग का उपदेश करना और वचन वार्त्ता करके जीवों का संशय निवारण करना सो यद्यपि यह कर्म भी अधिक विशेष है तौभी इस विषे मन को दीर्घ प्रसन्नता प्राप्त होती है और दम्भका प्रवेश अधिक होजाता है और यद्यपि मान के सम्बन्ध करके यह कर्म भी राजधर्म के निकट होता है तौभी इस विषे इतना भेद प्रकट है कि शुभमार्ग विषे उपदेश सुननेवाले को भी लाभदायक है और कहनेवाले को भी गुणदायक होता है सो राज का व्यवहार इस प्रकार नहीं होता पर जब किसीको इस धर्म विषे दम्भ की मंशा उपजआवे तौभी विचार करके इसका त्याग करना प्रमाण है पर केते जिज्ञासुजनों की ऐसी अवस्था हुईहै कि जब उनसे कोई पुरुष प्रश्नोत्तर पूछता था तब इस प्रकार कहते थे कि अमुक बुद्धिमान् से पूछलो क्योंकि हम इस वार्त्ता को भलीप्रकार नहीं जानते इसी पर बशरहाफ़ी सन्त ने पोथियों का संदूक धरती विषे गाड़दिया था और कहनेलगे कि मैं अपने हृदय विषे उपदेशरूपी भोग की अभिलाषा देखता हूं ताते मैंने वचन वार्त्ता को त्याग दिया है और जब मैं अपने हृदय को इस अभिलाष से रहित देखता तब मुझको उपदेश करना प्रमाण होता ऐसेही और सन्तजनों ने भी कहा है कि उपदेश करना भी मन का भोग है क्योंकि जिस पुरुष के हृदय विषे मान और बड़ाई की प्रीति होवे तब उसको जगत् का मुखिया होना भी अयोग्य है इसीपर उमर सन्त से किसी प्रियतम ने पूछा था कि जो तुम आज्ञा देवो तो मैं लोगों को शुभमार्ग का उपदेश करूं तब उन्होंने कहा कि जो इस उपदेश करने करके तेरे हृदय विषे मान की अधिकता होजावे और बड़ाई का पवन तुझको उड़ालेजावे तब तेरा अकाज होवेगा ताते मेरे चित्त विषे यही भय आता है इसी पर इब्राहीम सन्त ने भी कहा है कि जब तू अपने हृदय विषे बोलने की अभिलाष देखे तब तुझ को मौन करना विशेषहै और जब मौनको अधिक देखे तब वचन वार्त्ता करनी विशेषहै पर मेरे चित्त विषे इस प्रकार भासता है कि उपदेश करनेवाला पुरुष

अपने हृदय बिषे विचार कर देखे और इस वार्त्ता को भली प्रकार करे कि जब सात्त्विकी मंशा और दम्भका संकल्प दोनों मिलेहुये होवें तब उपदेशका त्याग न करे और यत्न करके सात्त्विकी मंशा को दृढ़करे और दम्भ के संकल्पका निवारण करे क्योंकि उपदेश का करना भी व्रत और भजन के नियम की नाईं कुछ दम्भ के संकल्प करके त्यागना प्रमाण नहीं पर शुद्ध मंशा के बीजको पुष्ट करे और दम्भही निवृत्त किया चाहिये बहुरि जब राजधर्म बिषे कुछ भी मंशा की मलिनता होवे तब राजव्यवहार को त्यागदेना प्रमाणहै क्योंकि राजनीति बिषे मान और भोगों की अधिकता करके शीघ्रही मलिनता बढ़जाती है और शुद्ध मंशा का बीज तत्काल ही नष्ट होजाता है इसी कारणसे जब अबूहनीफा सन्त को राजा का प्रधान करनेलगे थे तब उन्हों ने कहा कि मैं प्रधानता का अधिकारी नहीं बहुरि राजा ने कहा कि तुम तो सम्पूर्ण विद्यावान् हो और नीति अनीति के विचारने योग्यहो ताते तुमहीं उत्तम अधिकारी हो तब उन्हों ने कहा कि जब मैं सत्य कहता हूं तब निस्संदेह अधिकारी न हुआ और जब झूठ कहता हूं तब झूठा मनुष्य राजनीति का अधिकारी नहीं होता तात्पर्य यह कि यद्यपि ऐसे कहकर उन्होंने राजधर्म का अङ्गीकार न किया पर सर्व आयुष् पर्यन्त लोगों को धर्म का उपदेश करतेरहे और वचन वार्त्ता का त्याग नहीं किया बहुरि जब उपदेश करनेवाले के हृदय विषे कुछ भी धर्म की मंशा न रहे और सर्वथा दम्भ की अधिकता बिषे आसक्त होजावे तब उसको उपदेशका त्याग करनाही विशेष कहा है पर जब वह पुरुष मुझ से पूछे कि मैं उपदेश करता रहूं अथवा त्यागदूं तब मैं इस प्रकार विचार की दृष्टि करके देखूं कि जब उसके वचन बिषे लोगों को धर्म के मार्ग का लाभ कुछ न होवे जैसे कवीश्वरों की चतुराई अथवा मत और पन्थों का विवाद वर्णन होवे अथवा संसारी जीवोंको भगवत् की दयाका बखान करके सुनावे और पापों बिषे उनको निश्शङ्क करे तब उसको तो वचन वार्त्ताका त्याग करनाही प्रमाण कहा है क्योंकि उसके मौन रहने बिषे लोगों को गुण होवेगा और वह भी दम्भ और मान से मुक्त रहेगा बहुरि जिसका वचन धर्म की मर्यादा अनुसार होवे और लोग उसको निष्काम जानकर धर्म का अङ्गीकारकरें तब मैं ऐसे पुरुषको उपदेश करने के त्याग की आज्ञा न देऊंगा क्योंकि यद्यपि उपदेश करने बिषे दम्भकी मंशा करके उसको अवगुणही होता

है पर बहुत पुरुषों को उसके वचन सुनकर धर्म की प्राप्ति होती है और जब वह पुरुष उपदेश को त्यागदेवे तब उसको तो प्रसिद्धही गुण व लाभहै पर और बहुत मनुष्यों की हानि होती है ताते ऐसे जान तू कि सहस्र पुरुषों का लाभ एक पुरुष की हानिसे विशेष है इसी कारण से मैं एक उपदेश करनेवाले दम्भीको सहस्र जिज्ञासुओं पर निछावर किया चाहताहूं इसीपर महापुरुष ने कहाहै कि जिज्ञासुजनों को सकामी पण्डितों से भी धर्महीं की प्राप्तिहोती है और वह पण्डित अपने धन और मानादिक प्रयोजनहीको पाते हैं ताते ऐसे पुरुषोंको इतनीही आज्ञा करूं कि तुम शुभ उपदेशका त्याग न करो पर यथाशक्ति दम्भहीको निवृत्त करने में तुम्हारी भलाई है और पुरुषार्थ करके निष्काम श्रद्धा विषे दृढ़ होवो प्रथम आप ही उत्तम उपदेश को अङ्गीकार करो और भगवत् के भय विषे स्थित होवो बहुरि और लोगोंको उपदेश करके भगवत् का भय दो पर जब कोई इसप्रकार प्रश्न करे कि उपदेश करनेवाले की मंशा शुद्ध और निष्काम क्योंकर जानिये ? तब इस का उत्तर यह है कि शुद्ध मंशा तबहीं जानी जासक्ती है जब इस पुरुष की श्रद्धा यही होवे कि किसी प्रकार ये मनुष्य भगवत् के मार्ग को अङ्गीकार करें और माया से विरक्त होवें सो यह केवल दया होती है पर जब कोई ऐसा पुरुष और भी आय प्रकटे कि उसके उपदेश करके जीवों को धर्म का अधिक लाभ होवे और लोग उसपर विशेष प्रतीति राखें तब चाहिये कि इस करके यह पुरुष अधिक प्रसन्नहोवे सो इसका दृष्टान्त यह है कि जैसे कोई मनुष्य अन्धकूप विषे गिरपड़े और कोई पुरुष दया करके उसको बाहर निकाला चाहे पर जब दूसरा पुरुष भी उसके निकालने विषे आय सहाय करे तब प्रथम पुरुष को निस्संदेह प्रसन्नता प्राप्त होतीहै तैसेही जब उपदेश करनेवाला मनुष्य और किसी विवेकी जनको देखकर प्रसन्न न होवे तब जानिये कि यह पुरुष उपदेश करके आपको पुजाया चाहताहै और भगवत् के मार्ग विषे लगाया नहीं चाहता बहुरि शुद्ध मंशा का दूसरा लक्षण यह है कि जब सभा विषे वचन वार्त्ता करतेहुये धनवान् अथवा राजालोग आय प्राप्तहोवें तौभी यथार्थ वचन का त्याग न करे और उन का ऐश्वर्य्य देखकर सकुच न जावे और अपने स्वभावके अनुसार यथार्थ वचन ही पर दृष्टिराखे तब जानिये कि इस पुरुष की मंशा निष्कामहै तात्पर्य यह कि उपदेश करनेवाला पुरुष प्रथमही ऐसे लक्षणों को अपने चित्त विषे विचारकर

देखे सो जब ऐसा चिह्न आप विषे कोई न जाने तब निश्चय इस प्रकार करे कि मैं शुद्ध मंशा से हीनहूं और मेरे चित्त विषे प्रकटही दम्भ है और जब इस प्रकार देखे कि मुझको इस दम्भ विषे दोषदृष्टि आती है तब जानिये कि इसके हृदय में शुद्ध मंशा का बीज भी प्रकट है ताते पुरुषार्थ करके निष्काम श्रद्धा को बढ़ावे और दम्भसे रहित होवे बहुरि ऐसे जान तू कि इस जीव को केते अवसरों विषे भजन करतेहुये और मनुष्योंके मिलाप करके प्रसन्नताभी प्राप्त होती है पर उसको दम्भ नहीं कहते सो प्रसन्नता यहहै जैसे जिज्ञासुजनके हृदय विषे अकस्मात् कुछ संशय उपजआवे और उसही संशय करके भजन विषे विक्षेपता आन प्राप्तहोवे बहुरि जब किसी और सात्त्विकी मनुष्य को देखे तब वह संशय निवृत्त होजावे और चित्तकी वृत्ति प्रसन्नता सहित भजन विषे दृढ़ होवे तब वह दम्भ नहीं कहा जाता जैसे कोई पुरुष अपने गृह विषे आलस्यनिद्रा को त्याग न सके अथवा सम्बन्धियों के वचन सुनताहुआ विक्षेपता को प्राप्तहोवे बहुरि जब अपने गृहसे निकलकर कथा कीर्त्तनकी ठौर विषे जाय बैठे तब शीघ्र ही भजन की रुचि और प्रसन्नता उपज आती है और वह सबही विक्षेपता दूर होजाती है क्योंकि बिराने स्थान विषे निद्रा की अधिकता भी नहीं रहती और भजनवानों को देखकर यह भी जाग्रत् और भजन विषे दृढ़ होजाता है जैसे व्रती और संयमी पुरुषों को देखकर इसको भी संयम की रुचि उपज आती है तात्पर्य यह कि ऐसी प्रसन्नता और भजन की अधिकता सात्त्विकी संगति के प्रवेश करके वृद्ध होजाती है और इस क्रिया को दम्भका कर्म नहीं कहते पर यह मन ऐसे अवसर विषे भी इस प्रकार संशय आन डालताहै कि यह करतूति दम्भके सम्बन्ध करके करता है ताते यह तेरा कर्म फलदायक न होगा सो इस हीका नाम मन का छल कहते हैं क्योंकि इस मनुष्यके हृदय विषे संशय डालकर शुभकर्मसे वर्जित किया चाहताहै ताते जिज्ञासु को चाहिये कि विचार करके इस प्रकार जाने कि एक कर्म निस्संदेह दम्भके आशय करके होताहै और एक कर्म सात्त्विकी संगति के प्रवेश करके होताहै सो इन दोनों को अवश्यही भिन्न किया चाहिये पर इनकी भिन्नताका चिह्न यह है कि जब लोग इसको न देखें और यह पुरुष उनको देखता होवे तब ऐसे स्थान विषे प्रसन्नतासहित भजन करना उनकी संगति का गुण है और जब परस्पर एक दूसरे को देखते होवें

तौभी विचार करके दम्भ और सात्त्विकी संगति के प्रवेश को भिन्नकरे बहुरि शुद्ध मंशा करके दम्भकी अभिलाप को दूर करे और संशय से रहित होकर भजन विषे स्थितहोवे क्योंकि इस मनुष्य का यह भी स्वभाव है कि जब किसी पुरुष को भय या प्रीति संयुक्त रुदन करताहुआ देखता है तब इसका चित्त भी कोमल होआता है और वही वचन सुनकर रुदन करनेलगता है सो यद्यपि एकान्त ठौर विषे ऐसे नहीं होवे तौभी इस कर्मको दम्भ नहीं कहते क्योंकि रुदन करनेवाले को देखकर अवश्यही इसका चित्त द्रवीभूत होहीजाताहै पर इस विषे भी इतना भेद है कि आंसू का चलना हृदय की कोमलता करके होताहै और ऊंची पुकार करनी अथवा धरतीपर गिरपड़ना दम्भका कारणहै ताते चाहिये कि जब अकस्मात् ऊंची पुकार मुखसे निकलजावे अथवा धरतीपर गिरपड़ा होवे तब शीघ्रही सचेत होकर प्रीति के प्रवाह को सकुचायलेवे और जिसके चित्त विषे यह संशय आन उपजे कि मत यह लोग मुझको इस प्रकार कहैं कि इसके चित्त विषे वास्तव प्रीति कुछ नहीं ताते तुरन्तही सचेतता को प्राप्तहुआ है सो जब ऐसा जानकर ऊंचे स्वरसे पुकार करतारहे अथवा धरतीपर गिरारहे तब निस्सन्देह दम्भी होता है तात्पर्य यह कि सबही शुचि कर्म दम्भकरके भी होते हैं और सात्त्विकी संगति करके भी उनकी रुचि उपज आती है ताते जिज्ञासुजन सदैवकाल अपने मन की ओर देखतारहे और दम्भके भयसे रहित न होवे इसीपर महापुरुष ने कहा है कि शुभ कर्मों विषे नाना प्रकार करके दम्भ की मंशा उपजआती है ताते जब अपने मन विषे दम्भकी अभिलाषा को देखे तब इस प्रकार विचार करके जाने कि भगवत् मेरे अन्तर की मलिनता को प्रकटही जानता है ताते जब मैं अशुद्ध मंशा करूंगा तब निस्संदेह महाराज के दण्ड का अधिकारी होऊंगा ऐसेही जानकर दम्भको निवृत्तकरे और इस वचन को चित्त विषे स्मरणकरे जैसे महापुरुष ने कहाहै कि जिस एकाग्रता विषे दम्भ की अभिलाषा मिली होवै तब उस एकाग्रता से भगवत ही रक्षाकरे सो इसका अर्थ यह है कि मन तो चपल होवे और बाहर के अङ्गों करके आपको भजनवान् दिखावे तब वह केवल दम्भी कहाता है बहुरि ऐसे जान तू कि भजन और हृदय की एकाग्रता विषे तो अवश्यही निष्काम होना चाहिये और दम्भ को दूर करना प्रमाण है पर ऐसेही और भी केते सात्त्विकी

कर्म हैं कि जब उनके उत्तम फलों को प्राप्तहुआ चाहे तौभी निष्काम होना विशेष है जैसे किसी मित्र अथवा किसी अर्थी के मनोरथ को पूर्णकरे तब इस प्रकार निष्काम होवे कि बहुरि उससे उपकार और अपनी स्तुति की चाह न करे अथवा जब किसी को विद्या पढ़ावे तब ऐसी अभिलाषा न करे कि यह विद्यार्थी मेरे काम आवेगा अथवा टहल करेगा अथवा मेरे पीछे चलेगा सो ऐसी मंशाभी सकाम होती है और धर्म के लाभ को निष्फल कर डालती है पर जब इसकी मंशा सेवा कराने की न होवे और वह आपही टहल सेवा करता रहे तौभी उत्तम वार्त्ता यह है कि उसकी सेवा पूजा को अङ्गीकार न करे और जब इसकी मंशा विनाही वह पुरुष प्रीतिसंयुक्त आपही सेवा करे बहुरि जब वर्जित करिये तौभी त्याग न देवे तब विद्या पढ़ानेवाले का लाभ निष्फल नहीं होता पर जब अभिमान से रहित होवे और आपको स्वामी न जाने तब दोनों पुरुषों को अपनी शुद्धभावना का फल प्राप्त होता है सो यद्यपि यह वार्त्ता निस्सन्देह है पर केते विद्यावानों ने अपने विद्यार्थी की पूजा से अधिक भय किया है जैसे एक विद्यावान् दैवसंयोग पाकर कूप विषे गिराथा तब केते पुरुष मिलकर रस्से डालकर उस को बाहर निकालने लगे तब उसने कूप में से ही भगवत् की दुहाई देकर कहा कि हे भाई! जिसने मुझसे कुछ विद्या पढ़ी होवे सो वह इस रस्सी में हाथ न लगावे तातें उनका प्रयोजन यह था कि किसी प्रकार मेरी निष्कामता का फल नष्ट न होवे ऐसेही एक और पुरुष सिफ़यांसौरी सन्त के पास कुछ भेंट लेआया था जब उन्होंने अङ्गीकार न किया बहुरि उस पुरुष ने कहा कि मैंने तो तुम्हारे मुख से वचनवार्त्ता कुछ नहीं सुनी तुम इस पूजा को अङ्गीकार क्यों नहीं करते? तब उन्होंने कहा कि तेरा भाई सर्वदा यहां आकर वचन वार्त्ता सुनता है और मैं इस करके डरता हूं कि मत तेरी पूजा लेकर मेरा चित्त उसके साथ अधिक प्रीतिकरे तब यह वार्त्ता अयोग्य है बहुरि एक और पुरुषभी सिफ़यांसौरीजी के पास दो थाल मोहर के भरेहुये लाया था और इस प्रकार कहनेलगा कि मेरा पिता तुम्हारा प्रियतम था और वह शुद्ध ही व्यवहार करता था सो यह धनभी शुद्ध वृत्ति करके उपजाया हुआहै तातें तुम इसको अङ्गीकार करो तब सिफ़यांसौरीजी ने उस धनको ले राखा बहुरि जब वह पुरुष अपने गृह विषे गया तब इन्होंने अपने पुत्र के हाथ सबही धन उसकी ओर भेजा और इस

प्रकार कहला भेजा कि मेरी और तेरे पिता की प्रीति भगवत के निमित्त थी ताते अब तू धनरूपी पटल काहेको डालता है बहुरि जब उनका पुत्र अपने गृहविषे आया तब अधैर्य होकर पिता से कहने लगा कि तुम्हारा हृदय पाथर से भी अधिक कठोर है क्योंकि हमारा कुटुम्ब भी बहुत है और अत्यन्त निर्द्धनताई को भी तुम सर्वदा देखते हो पर हमारे ऊपर तुमको दया नहीं उपजती तब उन्हों ने कहा कि तुझको खान पानादिक सुख चाहिये और मैं परलोक की ताड़ना से डरता हूं ताते मेरे हृदय विषे ऐसी सामर्थ्यता नहीं कि तुमको सुखेन राखूं और उस दण्डको अपने शीशपर धरूं इसी प्रकार विवेकी जनको चाहिये कि अपने सेवक से सेवा पूजा की आशा न राखे और भगवतही की प्रसन्नता को चाहे बहुरि अपना भजन स्मरण भी सेवक के आगे प्रकट न करे क्योंकि इस को भगवत् के निकट सन्मान और आदर चाहिये है और और लोगों का सन्मान इसके किसीकाम न आवेगा बहुरि जब माता पिता की सेवा करे तौभी भगवतही की प्रसन्नता चाहे और उनके निकट अपनी विशेषता को दिखावे नहीं तात्पर्य यह कि सर्व शुभकर्मों विषे इस जीवको ऐसी निष्कामता प्रमाण है कि भगवत् की प्रसन्नता विना और कुछ प्रयोजन न राखे ॥

नववांसर्ग ॥

अभिमान अहंकार के उपाय के वर्णन में ॥

ताते जान तू कि अभिमान और आपको विशेष जानने का स्वभाव महा निन्द्य है क्योंकि जब विचार कर देखिये तब अभिमानी मनुष्य भगवत् का शरीक हुआ चाहता है इसकरके कि ऐश्वर्य और बड़ाई भगवतही को शोभित है और अभिमानी अपना ऐश्वर्य बढ़ाता है इसीकारण से महाराजके वचनों विषे अभिमान की अधिक निषेधता वर्णन है और महापुरुषने भी कहा है कि जिसके हृदय विषे रञ्चकमात्र भी अभिमान होताहै सो आत्मसुख को नहीं पाता और योंभी कहाहै कि अपनी बड़ाई जनावनेहारे मनुष्यको पापियों की नाईं ताड़ना होवेगी इसीपर एक वार्त्ता है कि एकबार सुलेमाननामी महापुरुष ने अपनी सेना को इकट्ठा किया तब कई लाख मनुष्य और देव, परी, पक्षी, भूत आदिक जीव आन प्राप्तहुये बहुरि सबोंको पवन के वेग साथ उड़ाकर आकाश में लेगये और देवतों की पुरियों के ऊपर जाय स्थितहुये बहुरि अपनेही बल

करके उनको धरती पर लेआये और समुद्रों के तले पर्यन्त प्रवेश करगये तब सुलेमानजी को आकाशवाणी हुई कि जब तुमको रञ्चकमात्रभी अपने बलका अभिमान होता तो मैं तेरी सर्व सेनाको तेरे साथही रसातल बिषे लीन करडालता इसी पर महापुरुष ने भी कहा है कि परलोक बिषे अभिमानी मनुष्यों का आकार चींटी के समान होवेगा अर्थ यह कि निर्माण करके लोगों के चरणोंतले मर्दन होजावेंगे और योंभी कहा है कि नरकों बिषे एक महाकुम्भी नरक है और अत्यन्त भयानकरूप है सो महापापी और अभिमानी मनुष्य उसही नरक बिषे पड़े जलेंगे ऐसेही सुलेमानसन्तने भी कहा है कि जिस पाप को कोई शुभ करतूति नष्ट नहीं करसकी सो अभिमान है और महापुरुष ने भी कहा है कि जो मनुष्य बड़ाई करके अपने वस्त्र को धरतीपर घसीटता है और लटक चलता है तब उसकी ओर भगवत् कदाचित् दया दृष्टि करके नहीं देखता इसी पर एकवार्त्ता यह भी वचनों विषे आई है कि कोई पुरुष महासुन्दर वस्त्र पहिनकर अपनी ओर देखताथा और बड़ाई करके लटक २ चलता था तब इसी पाप करके भगवत् के क्रोध से धरती बिषे लीन होगया और योंभी कहते हैं कि प्रलयकाल पर्यन्त ऐसेही रसातलों के नीचे चलाजावेगा इसी पर इब्नवासासन्त ने अपने पुत्रको लटक २ चलता देखा था तब उससे पुकारकर कहनेलगे कि हे पुत्र! तू आपको जानता है कि मैं किस की सन्तानहूं तेरी माता तो मैंने कुछ रुपये देकर मोल ली थी और मैं जो तेरा पिता हूं सो महा अधम और नीच हूं ऐसेही एक और सन्त ने किसी अभिमानी पुरुष को लटक२ चलते देखा था सो उसको जब वर्जित किया तब वह कहनेलगा कि तुम मुझ को नहीं जानते बहुरि उन्होंने कहा कि मैं तो तुझको जानता हूं कि आदि तेरी मलिन जल की बूंद है और अन्त को महाकुचील मृतक होवेगा ऐसेही मध्यकाल विषे भी तू लंघी और बिष्ठा की पोट उठानेवाला है (अथ प्रकट करनी स्तुति नम्रता की) महापुरुषने भी इस प्रकार कहा है कि जिस मनुष्य ने नम्रता को अङ्गीकार किया है सो तिसको अवश्यही भगवत् ने बड़ाई दीन्ही है और योंभी कहा है कि सर्व मनुष्यों के गले बिषे महाराज ने रस्सी डाली है पर जो पुरुष दीन होता है तब देव उसकी रस्सी को आकाश की ओर खींचते हैं और कहते हैं कि हे महाराज! तुम इसको उत्तमगति देहु और जो पुरुष अभि-

मान करता है तब देव उसकी रस्सी को अधोगति की ओर खींचते हैं और इस प्रकार विनती करते हैं कि हे भगवन्! तू इस मनुष्य को महानीच गति को प्राप्तकर ताते उत्तम पुरुष वही है कि सामर्थ्यता सहित दीनता और ग़रीबी को अङ्गीकार करे और अपने धनको सात्त्विकी वृत्ति करके उपजावे और शुभ ही अर्थ बिषे लगावे और अनाथों पर सर्वदा दयाराखे बहुरि विवेकी जनों के साथ सर्वदा प्रीति और मिलाप राखे इसी पर एक सन्त ने कहा है कि एकबार महापुरुष हमारे गृह में आये थे तब हमने उनके व्रत खोलने के निमित्त दूध और मधु का शर्बत करलिया बहुरि उन्हों ने जब शर्बत का रस चाखा तब कटोरा धरतीपर धर दिया और शर्बत को पान न किया और इस प्रकार कहने लगे कि यद्यपि मैं इस शर्बत के पानकरने को पाप नहीं कहता पर यह वार्त्ता निस्सन्देह है कि जब यह पुरुष भगवत् के भयकरके ग़रीबी को अङ्गीकार करता है तब भगवत उसको बड़ाई देता है और प्रसन्न रखता है और जो पुरुष अभिमान करके वर्तता है तब महाराज उसको लज्जावान् और नीच करते हैं ऐसेही जो पुरुष खानपान का व्यवहार संयम साथ करता है सो संसारी जीवों के आधीन कदाचित् नहीं होता और जो पुरुष मर्याद से रहित वर्तता है सो सर्वदा निर्द्धनताई और अपमान को प्राप्त होता है बहुरि जो पुरुष भगवत् का स्मरण अधिक करता है तब उसके साथ भगवत् भी अधिक प्रीति करता है इसी पर एक वार्त्ता है कि एकबार किसी कुष्ठी पुरुष ने महापुरुष के द्वारेपर आयकर याचनाकरी और महापुरुष आगे से भोजन कररहे थे तब उस याचक को भीतर बुलाय लिया सो जब वह कुष्ठी वहां आया तब सबही लोग उसकी कुचीलता से डरकर अपने वस्त्र को सकुचानने लगे और महापुरुष उसको अपने आसन पर बैठायकर भोजन करावनेलगे तब एक महापुरुष के सम्बन्धी ने उसपर ग्लानि दृष्टि देखी सो कुछ काल से पीछे उसही कुष्ठ के रोग करके मृत्युको प्राप्तहुये और महापुरुषने योंभी कहा है कि एकबार मुझको महाराज ने इस प्रकार आज्ञाकरी कि तू दास हुआ चाहता है अथवा आचार्य और राजा होना चाहता है तब मैंने आधीन होकर कहा कि मुझको अपना दास करिये इसीपर मूसानामी महापुरुष को आकाशवाणी हुईथी कि मैं उसही पुरुष के भजन को प्रमाणकरता हूं जो यद्यपि बड़ाई संयुक्त होवे तौभी सर्वदा मेरे आधीन रहे और मेरे जीवों के साथ

अभिमान न करे और अपने चित्त को सदैव मेरे भयविषे राखे बहुरि एकक्षण भी मेरे भजनसे अचेत न होवे और मेरी प्रीति करके भोगों से आपको बचाय राखे इसी पर महापुरुष ने कहा है कि उदारता का कारण वैराग्य है और इस मनुष्य के हृदय का निश्चयही सर्व सम्पदा का कारण है ऐसेही ईशा महापुरुष ने कहाहै कि दीनता और नम्रतावान् पुरुष इसलोक विषे भी सुखी रहते हैं बहुरि परलोक विषे भी ऊंची पदवी को प्राप्तहोवेंगे और जिनका चित्त मायासे विरक्तहै सो महाउत्तम पुरुष हैं और भगवत् का दर्शन भी उनहीं को प्राप्तहोता है और जो पुरुष इस लोक विषे जीवों के विरुद्ध को दूर करते हैं सो तिन को परम सुख की प्राप्ति होवेगी इसी पर महापुरुष ने कहा है कि जिसको भगवत ने सात्त्विकी धर्म की ओर मार्ग दिखाया है और जिसका स्वभाव महाकोमल है बहुरि ऐसे गुणों संयुक्त जिसका हृदय निरहंकार है सो निस्सन्देह भगवत् का प्रियतम है बहुरि महापुरुष ने एकबार अपने प्रियतमों को इस प्रकार कहा था कि मुझको तुम्हारे हृदय विषे भजन का रहस्य नहीं दृष्टि आवता सो इस का कारण कौन है ? तब प्रियतमों ने पूछा कि भजन का रहस्य क्या है ? तब महापुरुष ने कहा कि भजन का रहस्य दीनता और ग़रीबी है और योंभी कहा है कि जब दीनपुरुष को देखो तब दीनता करो और जब अभिमानी पुरुष को देखो तब तुम भी बड़ाई करो उनके साथ अर्थ यह कि उनके आगे आधीन न होवो तब वह भी अपनी नीचता को प्रसिद्ध जानैं इसी पर महापुरुष की स्त्रीने भी कहाहै कि सर्व शुभकर्मों से विशेष ग़रीबी और नम्रता है और तुम ऐसे विशेष कर्म से अचेत हुये हो बहुरि फुजैलसन्त ने कहाहै कि यद्यपि कोई बालकही यथार्थ वचन कहे तब उसको अङ्गीकार करलेनाही ग़रीबी का चिह्नहै और एक और सन्त ने ऐसे कहा है कि जब तू निर्द्धनों को देखकर आपको उन से भी नीच हो दिखावै तब जानिये कि तू धनादिक पदार्थों के अभिमान से रहित है और जब धनवान् को देखकर उसके आगे आधीन होवे तब प्रसिद्ध होवे कि तेरे निकट धन और माया की निषेधता कुछ नहीं और ईसा महापुरुष को भी आकाशवाणी हुईथी कि हे ईसा ! मैंने तुझको अनेक प्रकार के सुख दिये हैं और जब तू मेरे दिये सुखों को दीनता सहित अङ्गीकार करेगा तब मैं उनको सर्वदा बढ़ावताही रहूंगा और तू सदैव सुखी होवेगा इसीपर एक और सन्त ने

एक राजा को इसप्रकार उपदेश किया था कि हे राजन्! तू दीनता और ग़रीबी बिषे स्थित हो तब यह ग़रीबी तुझको राज्य की बड़ाई से भी विशेष है बहुरि राजा ने कहा कि यह वचन तुम ने बहुत उत्तम वर्णन किया है पर कुछ और भी उपदेश मुझको सुनावो तब वह सन्त कहनेलगा कि जिस पुरुष का चित्त धन बिषे विरक्त रहे और बड़ाई बिषे नम्रता सहित रहे और सुन्दरताई बिषे कामादिक विकार से निष्पाप रहे तब उसको महाराज की सभा बिषे विशुद्ध आचरणवाला मानते हैं सो जब राजा ने ऐसे वचन सुने तब इसही उपदेश को काग़ज़ पर लिख लिया बहुरि सुलेमान सन्त अपनी राज्य के समय बिषे इस प्रकार बिचरते थे कि प्रथम धनवानों के साथ कुछ अल्पही वचन वार्त्ता करतेथे और ग़रीबों की सभा बिषे जाय बैठते थे और मुख से यह वचन वर्णन करते थे कि मैं भी अनाथ और ग़रीब हूं और यह लोग भी ग़रीब हैं बहुरि हसनबसरी ने इसप्रकार कहा है कि जब आप से सर्व मनुष्यों को विशेष देखै तब जानिये कि इस बिषे नम्रता का चिह्न प्रकट है और मालिकदीनार सन्त ने ऐसे कहा-है कि जब कोई सभा बिषे आयकर इसप्रकार कहै कि जो सब से नीचे मनुष्य है सो बाहर आवे तब मैंहीं सबसे आगे उठखड़ा होऊं क्योंकि मैं आपको महा अधम और नीच जानता हूं पर जब यह वार्त्ता मुबारिक नामी सन्तने सुनी तब कहने लगे कि इसही ग़रीबी करके मालिकदीनार की विशेषता प्रसिद्ध है इसी पर एकवार्त्ता है कि किसी पुरुष ने शिवली सन्त के निकट आकर इस प्रकार कहाथा कि तुम आपको क्या कुछ जानते हो ? तब उन्होंने कहा कि जैसे अक्षरों के ऊपर बिन्दु होतीहै सो मैं उससे भी आपको लघु जानताहूं बहुरि जब जुनैदनामी सन्तने यह वचन सुना तब कहनेलगे कि महाराज उनके अहङ्कार को दूरकरे तौ भलाहै क्योंकि अब भी आपको कुछ जानते हैं और केवल अहंकारसे रहित नहींहुये बहुरि एक पुरुष प्रीतिमान्ने अलीसन्तसे पूछाथा कि मुझको कुछ उपदेशकरो तब उन्होंने कहा कि जब कोई धनवान् पुरुष होकर आधीन चित्तहोवे तब यह बड़ी सुन्दरताई है पर जो पुरुष निर्द्धन होवे और भगवत् का आश्रय करके धनवानों का आधीन न होवे तब यह उससे भी अधिक सुन्दरताई है सो इसी पर एक और सन्तने कहाहै कि जब कोई उत्तम मनुष्य वैराग्यवान् होता है तब दीनता और ग़रीबी को अङ्गीकार करता है और जो नीचपुरुष कुछ वैराग्यवान्

होता है तब अभिमानी होजाता है इसीपर बायजीद सन्तने कहा है कि जबलग यह मनुष्य किसी को आपसे नीच जानता है तब निस्सन्देह अहङ्कारी जाना जाताहै और जुनैद सन्त ने एकवार अपनी सभाविषे इस प्रकार कहाथा कि जब मैंने इस वचन को सुना न होता कि कलियुग विषे नीच मनुष्य ही उपदेश करनेवाले और मुखिया होवेंगे तब मैं सभा विषे उपदेश कदाचित् न करता और जुनैदजी ने योंभी कहा है कि ज्ञानवान् पुरुषों के निकट आप को दीन जानना अहंकार होता है अर्थ यह कि दीन जानना भी आप का कुछ प्रसिद्ध करना होता है और अहंकार से रहित पुरुष आपको कुछ नहीं जानता बहुरि एक जिज्ञासु जनकी ऐसी अवस्था हुई है कि जब अँधेरी अथवा बिजली का चमत्कार अथवा कोई और विघ्न होनेलगता था तब वह पुकार करके अपने शीश पर हाथ मारते थे और इस प्रकार कहते कि मेरेही पापों करके जीवों को दुःख प्राप्त होता है बहुरि सुलेमान सन्त के निकट आयकर कुछ पुरुष उनकी स्तुति करनेलगे थे तब सुलेमान ने कहा कि आदि हमारी वीर्य है और अन्तको मृतक होवेंगे बहुरि उससे पीछे ताड़ना और दण्डको परलोक विषे प्राप्तहोवेंगे सो जब उस दुःख से हमारी मुक्ति हुई तब कुछ विशेषता प्राप्त होवेगी और जब उसही दुःख विषे लीनरहे तब हम परमनीचों से नीच रहेंगे। (अथ प्रकट करना रूप अभिमान का और प्रसिद्ध करने विघ्न उसके) ताते जान तू कि यद्यपि प्रथम अभिमान का स्वभाव हृदय विषे उपजता है पर इसका प्रवेश सर्व अङ्गों पर प्रकट भी दृष्टि आताहै सो अभिमान का अर्थ यह है कि और मनुष्यों से आप को विशेष जानना और अपनी बड़ाई प्रकट कर दिखावनी बहुरि इसी बड़ाई की वायु जब किसी के हृदय विषे चलने लगती है तब उस करके अधिक प्रसन्न होताहै और अभिमान भी इसही का नाम है इसीपर महापुरुष ने भी कहा है कि अभिमानरूपी वायु के वेग से भगवतही रक्षाकरे क्योंकि जिस मनुष्य के मनविषे अभिमान का प्रवेश होताहै तब और लोगों को आपसे नीच जानता है और इस प्रकार समझता है कि यह सबही मनुष्य मेरे दास की नाईं हैं और मैं सबों का स्वामी हूं अथवा जब अभिमान की प्रबलता होती है तब योंभी जानता है कि यह लोग मेरी सेवा के अधिकारी नहीं और लोगों से कहता है कि भला तू मेरी सेवा और टहल का अधिकारी कब होसकता है जैसे यह राजा

लोग भी अपने सिंहासन के निकट किसी को दण्डवत् करने नहीं देते और पत्री बिषे किसी को अपना गुलाम भी नहीं लिख सकते इस करके कि अमुक पुरुष हमारी सेवा का अधिकारी कब होसक्ता है अथवा जब कोई अधिकारी ऐश्वर्यवान् होवे तब उसको अपने निकट आवने देते हैं और कुछ वचन वार्ता करते हैं नहीं तो और सम्पूर्ण मनुष्यों पर मस्तक संकुचित रखते हैं सो यह उन का अभिमान ऐसा दृढ़ हुआहै कि महाराज से भी अपना ऐश्वर्य अधिक किया चाहते हैं क्योंकि सर्व ईश्वरों का ईश्वर जो भगवन्त है सो सर्व जीवों पर सर्वदा दया की दृष्टि से देखता है और सब किसी की दीनता को सुनता और प्रमाण करता है और अभिमानी मनुष्य ऐसे नहीं करता पर जिसका ऐश्वर्य ऐसा प्रबल नहीं होता तौभी अभिमानी मनुष्य सबों से आगे चला चाहता है अथवा ऊंचे स्थान पर स्थित हुआ चाहता है और सर्व मनुष्यों से सन्मान और आदर की अभिलाषा रखता है बहुरि जब कोई उसको यथार्थ उपदेश सुनावता है तौभी अङ्गीकार कर नहीं सकता और उलटा क्रोधवान् होता है बहुरि जब आप किसी को उपदेश करने लगता है तब क्रोध और ताड़ना संयुक्त वचन कहता है और सर्व मनुष्यों को पशुवत् देखताहै इसीपर महापुरुष से किसी ने इस प्रकार पूछाथा कि अभिमानी पुरुष का लक्षण क्या है? तब उन्हों ने कहा कि जो पुरुष यथार्थ वचन के आगे अपने शीश को नम्र न करे और सर्व जीवोंपर ग्लानिदृष्टि देखे तब उसको अभिमानी कहते हैं सो यह दोनों स्वभाव जीव और भगवत् बिषे बड़े पटल हैं क्योंकि इन करके सबही अपलक्षण उपजते हैं और सर्व गुणों से अभाव रहता है ताते जिस पुरुषपर बड़ाई और अभिमान की प्रबलता होती है तब वह किसीको अपने समान हुआ नहीं चाहता और किसीके आगे मस्तक नहीं नवावता सो यह चिह्न प्रीतिमानों का नहीं होता इस करके कि ऐसा पुरुष ईर्षा करके अपने क्रोध को शान्त नहीं कर सकता बहुरि निन्दा और कपट आदिक स्वभावों से भी रहित नहीं होसकता जब कोई उसका आदर नहीं करता तब हृदय बिषे क्रोध की गांठ दृढ़ करलेता है और सदैवकाल अपनी बड़ाई और ऊंचता को दिखावता रहताहै ताते झूंठ और कपट दम्भबिषे आसक्त होजाताहै और सर्वप्रकार आपको विशेष किया चाहता है और जब कोई उसके दर्शन को नहीं आवता तब प्रसन्न नहीं रहता इसी

कारण से इसलोक विषे भी दुःखी रहताहै और परलोक के सुखको भी नहीं पावता क्यों कि जबलग यह पुरुष अपने आपको विस्मरण नहीं करता तबलग इस को धर्म की गन्ध भी प्राप्त नहीं होती इसीपर एक सन्तने कहा है कि जब तू आत्मसुख की सुगन्धिको सूंघा चाहताहै तब सर्व मनुष्यों से दीन हो और दासभाव को अङ्गीकारकर बहुरि जब कोई विचार की दृष्टि करके देखे तब इस वार्त्ता को प्रसिद्ध जाने कि जब दो अभिमानी पुरुषों का मिलाप आपस विषे होताहै तब दुर्गन्ध आन पसरती है और हृदय उनका कूकरों की नाईं दुःखदायक होजाता है बहुरि स्त्रियों की नाईं अपना शृङ्गार बनावने विषे मग्नहोते हैं और प्रीतिमानों के मिलाप विषे जो रहस्य और प्रसन्नता परस्पर उपजती है तो अभिमानी मनुष्यों को कदाचित् प्राप्त नहीं होती इस करके जब तू किसी प्रीतिमान् को देखे तब उत्तम वार्त्ता यह है कि अपने आपको त्यागकर उसही विषे लीन होजावे और सर्वथा दासभाव को प्राप्त होवे तात्पर्य यह कि तू उस की बड़ाई विषे समाप्त होजावे अथवा वह तेरे विषे समाय जावे तब दूसरा भाव कुछ न रहे और एकमेव होकर दोनों भगवन्त विषे लीन होवो और अपने आपकी चितवनी मिटावो तब तू परमसुख को प्राप्त होवे सो पूर्ण एकता इसही का नाम है और परमसुख भी यही है और जबलग अभिमान के संयोग करके द्वैत दूर नहीं होता तबलग यह पुरुष एकता के सुख रहस्य को कदाचित् नहीं पावता अभिमान का रूप और उसके विघ्न ऐसेही प्रकट वर्णन किये हैं (अथ प्रकट करने भेद अभिमान की अवस्था के) ताते जान तू कि एक अभिमान अतिप्रकट और दीर्घ है और एक अवस्था अभिमान की उससे कुछ क्षीण होती है सो इनका भेद इस करके प्रसिद्ध जाना जाताहै कि एक पुरुष ऐसे अभिमानी होते हैं कि आपसे भिन्न और ईश्वर नहीं मानते जैसे फ़रऊन और नमरूद ऐसे बिमुख हुये हैं कि उन्हों ने आपही को भगवन्त कहायाहै और उन का निश्चय इस प्रकार हुआहै कि जब कोई और भगवत् होता तो प्रत्यक्षही दृष्टि आवता ताते हमहीं जगत् के ईश्वर हैं और इसी कारण से उन्हों ने इस प्रकार जाना है कि जब हमहीं भगवत् हुये तब हम भजन किसका करें ? सो यह अभिमान महादीर्घ है क्योंकि सबही देवता और आचार्य और सन्तजन तो आपको भगवत् नहीं मानते और आपको दास जानकर महाराज की सेवा

विषे लीनहुये हैं ताते ऐसा अभिमान महानिन्द्य है १ बहुरि दूसरी अवस्था अभिमान की यह है कि एक पुरुष यद्यपि ऐसे जानते हैं कि हम भगवत् के उत्पन्न कियेहुये हैं पर तौभी सन्तजनों पर ग्लानिदृष्टि रखते हैं और इस प्रकार कहते हैं कि अमुक सन्त की जाति नीच है अथवा उसका कुल नीच है ताते हम उसके आगे मस्तक क्योंकर नवावें अथवा ऐसे जानते हैं कि सन्तजन भी हमारी नाईं शरीरधारी हैं और खान पान आदिक व्यवहारों विषे बन्धवान् हैं ताते हमको इनका दास होना अयोग्य है पर ऐसे मनुष्य भी दो प्रकार के होते हैं सो एक तो अभिमान के पटल करके सन्तजनों की विशेषता को जानते ही नहीं और विचार से रहित होते हैं जैसे महाराज ने भी कहा है कि अभिमानी मनुष्यों को यथार्थ की बूझ का मार्ग कदाचित् नहीं खुलता ताते सन्तजनों के लक्षणों को देख नहीं सक्के बहुरि एक मनुष्य और ऐसे होते हैं कि यद्यपि अपने चित्तविषे सन्तजनों की बड़ाई को समझते हैं पर तौभी दासभाव को ग्रहण नहीं करसक्के सो यह भी उनकी बुद्धि की हीनता है २ बहुरि तीसरी अवस्था अभिमान की यह है कि यद्यपि सन्तजनों को तो आपसे विशेष जानते हैं पर और जीवों पर अपनी बड़ाई प्रकट दिखावते हैं और सब लोगों पर ग्लानिदृष्टि देखते हैं ताते किसी के यथार्थ वचन को अङ्गीकार नहीं करसक्के और आपही को स्वामी जानते हैं सो यद्यपि अभिमान प्रथम की दोनों अवस्था से कुछ क्षीण है पर तौभी दो कारणों करके बड़ा पटल है और परम दुःखों की खानि है सो प्रथम कारण यह है कि ऐश्वर्य और बड़ाई का अधिकारी एकही महाराज है और यह मनुष्य जो महादीन और पराधीन है सो इसको बड़ाई का अधिकार क्योंकर प्राप्त होसक्का है? पर जब अभिमान करके आपको कुछ समर्थ जाने तब यही प्रसिद्ध होताहै कि भगवत् का शरीक हुआ चाहताहै सो इसका दृष्टान्त यह है कि जैसे कोई चक्रवर्त्ती राजा का टहलुवा होकर राजा के सिंहासनपर जाय बैठे और अपने शीशपर छत्र चँवर ढुरायाचाहे तब तू विचार करके देख कि वह टहलुवा कैसे दण्डका अधिकारी होताहै इसीपर महाराजने भी कहा है कि समर्थता और बड़ाई मुझही को शोभती है क्योंकि मैं किसी के पराधीन नहीं पर जो पुरुष पराधीन होकर मेरा शरीक हुआ चाहे तब मैं शीघ्रही उसको नष्ट करताहूं ताते प्रसिद्ध हुआ कि उत्पन्न करनेहारे महाराज के विना किसी

मनुष्य को किसी जीव पर अभिमान करना प्रमाण नहीं बहुरि दूसरा कारण यह है कि अभिमान करके यथार्थ वचन को अङ्गीकार करना कठिन होजाता है इसी कारण से जब दो पुरुष आपस विषे धर्ममार्ग का प्रश्नोत्तर करने लगते हैं और एक पुरुष सत्यही वचन कहताहै तौभी अभिमानी मनुष्य उसको प्रमाण नहीं करसक्ता इसी करके कि मेरा मान घटजावेगा सो यह चिह्न मनमुखों और कपटियोंका है क्यों कि जब कोई इसको इस प्रकार कहै कि तू भगवत् से नहीं डरता और यथार्थ वचन का नतकार करताहै तौ भी अभिमान करके अपने झूठे वचन को गिराय नहीं सक्ता और प्रमाणही मानता है ताते महापापी होता है इसी पर इबनमसऊद सन्त ने कहा है कि जब कोई इस मनुष्य को ऐसे कहे कि तू महाराज का त्रासकर और वह पुरुष इस प्रकार कहनेलगे कि तू मुझको क्यों डरावता है क्यों कि तुझको तो अपनाही कार्यकरना चाहिये है सो यह वचनही महापाप है ताते जान तू कि जिस प्रकार शैतान को धिक्कार हुई है और उसका वृत्तान्त भगवत् ने अपने वचनों विषे कहाहै सो उसका तात्पर्य यही है कि तुझ को अभिमान का विघ्नप्रकट आनपड़े अर्थात् शैतान को जब आज्ञा हुई कि मनु को शीश नवावो तब उसने कहा कि मैं तेजतत्त्व से उत्पन्न हुआ हूं और मनु पृथ्वीतत्त्व से हुआ है ताते मैं इसके आगे शीश क्योंकर नवाऊं प्रयोजन यह कि उसको अभिमान ने ऐसा विमुख किया कि भगवत् की आज्ञा को न मानताभया और मस्तक नीचा न किया ताते महाराज ने उसको धिक्कार करी और सदैव काल के वियोग को प्राप्तहुआ (अथ प्रकट करने कारण अभिमान के और उपाय उनके निवृत्त करनेका) ताते जान तू कि जब यह मनुष्य अपने विषे कोई गुण देखताहै और वह गुण इसको और मनुष्यों विषे नहीं भासता तब उसही गुण के सम्बन्ध करके अभिमान करनेलगता है सो अभिमान के उत्पन्न होनेके सात कारण प्रसिद्ध हैं पर प्रथम तो अभिमान का कारण विद्या है क्योंकि विद्यावान् मनुष्य आपको विद्यासंयुक्त देखता है तब विद्याहीन पुरुषों को पशुवत् जानताहै ताते उसके ऊपर अभिमान प्रबल होजाता है और अभिमान् की प्रबलता का लक्षण यह है कि लोगों से सेवा पूजा और मान बड़ाई की आशा रखताहै बहुरि जब वह लोग इस प्रकार नहीं करते तब अपने चित्त विषे आश्चर्यवान् होताहै अथवा जब किसी के गृहविषे पूजा

प्रसाद को जाता है तब उनके ऊपर उपकार रखताहै और ऐसे जानताहै कि मैं भगवत् का निकटवर्त्ती हूं और विद्या करके अपना मुक्तहोना समझता है और और लोगों को ऐसे नहीं जानता अथवा इस प्रकार देखताहै कि यह लोग मेरी सेवा और प्रसन्नता करके नरकों से बचेंगे इसी पर महापुरुष ने कहाहै कि यह विद्याभी निस्संदेह अभिमान का कारण है और विचार की दृष्टि विषे ऐसे विद्यावान् को मूर्ख कहना विशेष है क्यों कि यथार्थ बुद्धिमानों के मत विषे विद्यावान् उसही को कहते हैं जो परलोक के मार्ग की कठिनताई को जाने और उसही के भयविषे स्थितहोवे क्योंकि जिसने इस भेद को भली प्रकार समझा है वह सर्वदा विकारों से दूर रहताहै और अपने बल की हीनता को देखकर भयवान् होताहै और योंभी समझता है कि यह विद्याही मुझको परलोक विषे अधिक ताड़ना का कारण होवेगी इस करके कि जब जाननेवाले मनुस्यसे कोई कार्य विगड़ताहै तब उसको अज्ञान पुरुष से भी अधिक दण्ड होताहै ताते इस प्रकार समझनेवाला मनुष्य कदाचित् अभिमान विषे आसक्त नहीं होता पर जिस विद्यावान् को अभिमान की अधिकता होजातीहै तब इसके भी दो कारण प्रकट हैं प्रथम यह कि वह पुरुष निवृत्तिमार्ग की विद्या को पढ़ते ही नहीं सो निवृत्तिविद्या यह है कि जिस करके भगवत् को और आपको पहिंचाने बहुरि जीव और भगवत् विषे जो पटल है सो तिसको भलीप्रकार समझे ताते यह विद्या ऐसी है कि प्रीति और दीनता को बढ़ावनेवाली है और अभिमान को नष्टकरडालती है पर वैद्यक, ज्योतिष, व्याकरण और कोष आदिक विद्या को पढ़े अथवा परस्पर मतों के विवाद विषे स्थित होवे तब ऐसी ऐसी विद्या करके अवश्यमेव अभिमान उपज आवता है बहुरि यह विद्या अल्पकाल विषेही नष्ट होजाती है क्यों कि यह विद्या भी स्थूल है और स्थूलता को ही दृढ़ करनेवाली है ताते इस करके जीवको भय नहीं उपजती और भय विना इस मनुष्य का हृदय अन्ध होजाताहै ऐसेही पुरातन कथा और कविता आदिक जितनी विद्या हैं सो यद्यपि यह लोग इनकी नीचता को नहीं जानते पर जब तू विचार करके देखे तब इस वार्त्ता को प्रसिद्धकर जाने कि यह सबही विद्या अभिमान का बीज है और ईर्षा और वैरभाव को बढ़ावनेवाली है ताते इस करके प्रेम प्रीति का अंकुर नहीं उपजता और मान बड़ाई की वायु इसके

मन विषे दृढ़ होजाती है १ बहुरि दूसरा कारण विद्या के अभिमान का यहहै कि यद्यपि निवृत्ति विद्याही पढ़े और धर्ममार्ग की सूक्ष्मताईको भी समझे तौभी जिस पुरुष की मंशा प्रथमही मलिन होती है तब वह ऐसी विद्या को पढ़कर भी अभिमानी होताहै क्योंकि ऐसे पुरुष की कामना विद्या पढ़कर करतूति करने की नहीं होती अपनी बड़ाई के निमित्तही विद्या को पढ़ता है ताते वचन वार्त्ताही को अपना पुरुषार्थ जानताहै सो यद्यपि यह विद्या निर्मलहै पर उसकी मलिन मंशाविषे प्रवेश करके विद्याभी मलिन होजातीहै जैसे कोई पुरुष महारोगी होवे पर जबलग प्रथम यत्न करके उसके मैल को दूर न करिये और आगेही रोग के निवृत्त करने की औषध उसको दीजिये तब उसके शरीर विषे वह औषध भी रोगही का स्वभाव ग्रहण करती है अथवा जैसे आकाश से निर्मल जलही मेघ बरसते हैं पर जब जल कटुक ओषधियों को पहुँचता है तब कटुताही बढ़ावता है और जब ऊखआदिक मिष्ट खेतीविषे प्रवेश करता है तब मिष्टता की वृद्धि होती है और जब कण्टकों के वृक्षों को पहुँचता है तब कांटेही बढ़ते जाते हैं और कमलादि फूलों विषे जायकर सुगन्ध ही बढ़ावता है इसीपर महापुरुष ने कहा है कि कलियुग विषे एक ऐसे मनुष्य होवेंगे जो रात्रिदिन निवृत्त शास्त्रों का पाठकरेंगे और कोई उनके निकट न जाय सकेगा इसकरके कि सर्वदा यही वचन कहतेरहेंगे कि हमारी नाईं पाठ कौन करताहै ? और जैसे हम सर्व वचनोंका अर्थ समझते हैं इस प्रकार कौन समझसक्ताहै ? पर ऐसे पुरुष निस्सन्देह नरकोंका ईंधन होवेंगे और ऐसेही उमरसन्त ने कहा है कि धर्म से रहित विद्यावान् न होवो क्योंकि करतूति विना विद्याका गुण कुछ नहीं होता और अभिमान ही बढ़जाता है इसी कारणसे आगे जो महापुरुषके प्रियतम हुयेहैं सो उन्हों ने दीनताही को अङ्गीकार किया है और सदैव काल अभिमान से डरते रहे हैं जैसे एकबार हदी नामी सन्तको सबलोग मिलकर विशेष स्थान विषे बैठाने लगे तब उन्होंने कहा कि मुझको इस स्थानपर बैठना प्रमाण नहीं क्योंकि इतनेही आदर करके मेरे चित्त विषे यह संकल्प फुर आया है कि मैं और मनुष्यों से विशेष हूं तात्पर्य यह कि जब ऐसे उत्तम पुरुष भी अभिमान के संकल्प से रहित नहीं हुये तब अल्पबुद्धि जीव अभिमान से क्योंकर मुक्त होसक्ते हैं और ऐसे समय विषे निरभिमान पण्डितों को कहां पायसक्ते हैं क्योंकि ऐसा विद्यावान् भी कोई विरला होता है

जो अभिमान की मलिनताको पहिंचानकर इसका त्यागकरे पर बहुत पण्डित तो ऐसे पायेजाते हैं कि वह अभिमानही को अपनी विशेषता जानते हैं और इस प्रकार कहनेलगते हैं कि मैं अमुक पुरुष को क्या जानताहूं और उसकी ओर कब देखता हूं ताते सर्वदा इसही अभिमान विषे वच्यमान रहते हैं और जिन विद्यावानों ने ऐसे मलिन स्वभावोंकी नीचताको भली प्रकार पहिंचाना है सो तिनका दर्शनही उत्तम भजन है और उनकी प्रसन्नता करके जीवों को भलाई प्राप्त होती है १ बहुरि दूसरा कारण अभिमान का तप और वैराग्य है क्योंकि वैरागी और तपस्वी और अतीतजन भी अभिमानसे रहित नहीं होसक्के और ऐसे जानते हैं कि सर्वजीवोंको हमारी सेवा और दर्शन विषे भलाई प्राप्तहोवेगी ताते अपने तपका उपकार और जीवों पर रखते हैं अथवा इस प्रकार जानते हैं कि गृहस्थलोग और मायाधारी जीव सबही डूबेहुयेहैं और इन विषे हमहीं मुक्त होवेंगे बहुरि जब कोई ऐसे तपस्वी जन को दुखावे और दैवसंयोग करके उसको भी कुछ दुःख प्राप्तहोजावे तब ऐसे जानता है कि मेरीही शक्ति करके और सिद्धता करके इसको दुःख प्राप्तहुआ है इसीपर महापुरुष ने कहा है कि जो पुरुष अभिमानकरके इतर जीवोंको नाशहुआ जानताहै सो निस्सन्देह आपही नष्ट होता है क्योंकि किसीपर दोषदृष्टि देखनाही महापाप है बहुरि जब कोई इसकी सेवा पूजा भगवत् अर्थकरे और इसको प्रसन्न कियाचाहे और यह पुरुष अभिमान करके उसका निरादर करे तब यह भय होता है कि मत महाराज इसकी विशेषता उसही पुरुषको देवे और अभिमानी पुरुष शुभगुणों के फलोंसे अप्राप्त रहजावे इसीपर एक वार्त्ता है कि एक नगर के निकट बड़ा तपस्वी रहताथा और उसी नगर में एक बड़ा अपकर्मी रहताथा पर वह तपस्वी ऐसाथा कि उसके शीश पर सर्वदा बादलों की छाया रहतीथी ऐसा शक्तिमान् था बहुरि वह अपकर्मी मनुष्य जो अधीन होके उसके निकट आया और उसको विशेष जानकर यह मंशा करता भया कि इसकी संगति करके मैं भी पापोंसे मुक्त होऊंगा और वह तपस्वी इस प्रकार विचार करनेलगा कि मेरे समान तो तपस्वी कोई नहीं और इसके समान अपकर्मी भी कोई नहीं ताते यह पुरुष मेरी संगति का अधिकारी कब होसकताहै ऐसे जानकर तपस्वीने उसको बैठने न दिया और कठोर वचन कहकर उसका निरादर करता भया बहुरि जब वह पुरुष दीन और लज्जावान्

होकर उठचला तब मेघकी छाया भी उसके शीशपर से चलीगई और एक महा-पुरुष को आकाशवाणीहुई कि तपस्वी मनुष्यका जप तप अभिमान करके सब ही व्यर्थहुआ है और शुद्धभावना करके अपकर्मी के पाप सबही नष्टहुये हैं ताते तुम मेरा यही संदेशा दोनों पुरुषों को पहुँचावो जिस करके तपस्वी का अभि-मान और अपकर्मी की निराशता दूर होजावे पहुरि एक और वार्त्ता है कि दैव-योग करके एक तपस्वी के शीश में किसी पुरुष का पाँव लगगयाथा तब वह तपस्वी क्रोधवान् होकर कहने लगा कि भगवत् की दुहाई है कि यह अवज्ञा महाराज तुझको क्षमा न करेगा तब आकाशवाणी हुई कि हे तपस्वी! तू जो मेरे क्षमा करने और न कराने के विषे निःशङ्क होकर दुहाई करता है ताते मैं भी अपनी दुहाई करके कहता हूं कि तुझपर कदाचित् क्षमा न करूंगा और दया करके अवज्ञा करनेवाले के सब पाप क्षमा करलूंगा तात्पर्य यह कि जब कोई मनुष्य तपस्वी जनको दुखावताहै तब वह ऐसेही अनुमान करलेते हैं कि महाराज इस अवज्ञा को क्षमा न करेगा इसी कारण से जब क्रोधवान् होते हैं तब शीघ्रही शाप देने लगते हैं सो यह बड़ी मूर्खता है क्योंकि आगे केते वि-मुखों ने सन्तजनों को प्रकटही दुखाया है और उन शत्रुओं को कुछ भी दुःख प्राप्त नहीं हुआ और उलटा उनका हृदय शुभमार्ग की ओर आया है पर यह मूर्ख अभिमान करके आपको विशेष जानता है इस करके जो ऐसा मनुष्य अपने शत्रुपर क्रोधवान् होता है तब प्रकटही कहनेलगता है कि मेरी अवज्ञा करके तेरा धर्म और धन और कुल सबही नष्ट होजावेंगे अथवा जब अकस्मात् उसको दुःखी देखता है तब ऐसे जानता है कि मेरेही कोप करके इसको कष्ट प्राप्त हुआ है सो मूर्ख तपस्वियों की ऐसी अवस्था होती है और बुद्धि-मान् वैरागीजनों का लक्षण यह है कि जब किसी प्रजा को खेदवान् देखते हैं तब वह इस प्रकार समझते हैं कि हमारेही पाप करके इनको खेद प्राप्त हुआ है तात्पर्य यह कि जिज्ञासुजन वैराग्य विषे भी भयवान् रहते हैं और जो बुद्धि-हीन तपस्वी होते हैं सो यद्यपि शरीर करके करतूति शुभ करते हैं तौभी उन का हृदय अभिमान करके अन्तर से मलिन रहता है और उस मलिनता से ड-रते ही नहीं पर जब यथार्थदृष्टि करके देखिये तब जो पुरुष किसीप्रकार आपको विशेष जानता है सो निस्संदेह अपने तप और भजन के फल को व्यर्थ करता

है क्योंकि अभिमान के समान कोई और बड़ा पापही नहीं इसीपर एक वार्त्ता है कि एक बार महापुरुष के प्रियतम किसी पुरुष की प्रशंसा करते थे सो महापुरुष ने जब उसको देखा तब कहनेलगे कि इस विषे तो मुझको दम्भ का चिह्न दृष्टि आवता है यह सुनकर स्तुति करनेवाले प्रीतिमान् विस्मित होगये तब महापुरुष ने उस पुरुष को अपने निकट बुलायकर इस प्रकार पूछा कि तू इन लोगों से आपको विशेष जानता है कि नहीं तब उसने कहा कि मैं आपको विशेष तो जानता हूं सो यह अभिमान का चिह्न महापुरुष ने हृदय के प्रकाश करके उस विषे प्रकटही देखलिया था और लोगों ने उसको भली प्रकार नहीं जाना था ताते यह अभिमानरूपी विघ्न विद्यावानों और तपस्वियों के विषे निस्सन्देह अधिक होता है और इस विषे भी मनुष्य की अवस्था तीनप्रकार की होती है सो एक पुरुष ऐसे हैं जो यद्यपि हृदय करके अभिमान से रहित नहीं होसके तौभी यत्नसहित दीनता और ग़रीबी को अङ्गीकार करते हैं और कर्मों विषे भी दासभाव को लिये रहते हैं ताते व्यवहार और वचन करके उन विषे किसी प्रकार अभिमान नहीं दृष्टि आवता सो इसका दृष्टान्त यह है जैसे कोई पुरुष मूलही से वृक्ष को काट न सके पर उसकी शाखा सबही काटडाले तौ भी उसको बलवान् कहते हैं बहुरि दूसरे पुरुष ऐसे होते हैं कि वचन करके अपनी बड़ाई नहीं वर्णन करते और सर्व प्रकार आपको नीच कहते हैं पर उनके हृदय का अभिमान कर्मों विषे प्रकट भासता है जैसे विशेष स्थानपर बैठना और सबसे आगे है चलना अथवा किसीकी ओर दृष्टि न करनी वा भृकुटी चढ़ाये रखनी सो सबही अभिमान के लक्षण हैं पर यह पुरुष ऐसे नहीं जानते कि विद्या और करतूति भृकुटी चढ़ावने विषे तो नहीं होती क्योंकि यह तो हृदयके अङ्ग हैं और इनका प्रकाश जो सर्व इन्द्रियों पर वर्त्तमान होता है सो दासभाव और दीनता और सर्वजीवोंपर दया है इसी कारणसे यद्यपि महापुरुष विद्या और वैराग्यकरके सर्व मनुष्योंसे विशेष थे पर उनके समान नम्र और कोमलस्वभाव किसी विषे पाया नहीं जाता ताते सर्वजीवों की ओर प्रसन्नता और दयाकी दृष्टि से देखतेथे और सदैव काल अपना मस्तक खुला रखतेथे इसही करके महाराज ने भी उनकी स्तुति करी थी कि तेरा स्वभाव अति कोमल और प्रसन्न वदन है ताते तुझ से कोई मनुष्य भयवान् होकर दूर नहीं हुआ चाहता २ और तीसरे

मनुष्य ऐसे होते हैं कि अपने मुखसे अपनीही स्तुति वर्णन करते हैं बहुरि अपनी सिद्धता और अवस्था वर्णन करते हैं और इस प्रकार कहने लगते हैं कि अमुक तपस्वी क्या है ? मैं तो सर्वदा दिन बिषे व्रत रखताहूं और इतना पाठ करता हूं और रात्रि बिषे जागरण करता हूं अथवा जब किसी को भजन करता देखता है तब उससे विशेषही नियम किया चाहता है ऐसेही विद्यावान् भी कहते हैं कि अमुक पुरुष क्या विद्या पढ़ा होवेगा ? हम तो इतनी विद्या जानते हैं और प्रश्न उत्तर बिषे दूसरेको निर्बलही कियाचाहते हैं अथवा आप भूठही कहते होवें तौ भी अपने वचनको गिरा नहींसक्के और सभाबिषे नूतन वचन चतुराई संयुक्त उच्चारण करते हैं और अपनी बड़ाई को प्रसिद्ध किया चाहते हैं सो यह सबही तपस्वी और विद्यावान् अभिमान से रहित कब होसक्के हैं ? पर जिन्होंने अभिमान को भली प्रकार निन्द्य जानाहै तब वह प्रीति और नम्रता बिषेही स्थित होते हैं जैसे महाराज ने भी कहा है कि जब तू आपको नीच जानेगा तब मेरे निकट तेरी बड़ाई होवेगी और जबलग तू आपको विशेष जानता है तबलग तू मेरे निकट अति नीच है पर जिसने इस भेदको नहीं समझा सो विद्यावान् भी महामूर्ख है बहुरि तीसरा कारण अभिमान का उत्तमकुल है जैसे ब्राह्मण और उत्तमजनों की सन्तान जो होती है सो यद्यपि विद्यावानों और बैरागी को देखें तौभी अभिमान करके उनको अपना टहलुवा जानते हैं अथवा तब भी वह अपने अभिमान को प्रकट नहीं करते पर क्रोध के अवसर बिषे आपही प्रसिद्ध ह्वै आवताहै जैसे एक सन्त ने किसी को क्रोधवान् होकर दासीसुत कहा था सो जब यह वार्त्ता महापुरुष ने सुनी तब उनसे कहते भये कि भगवत् के निकट दासीसुत और रानीसुतकी विशेषता ऊनता कुछ नहीं ताते तुम अभिमानी न होवो यह वचन सुनकर वह सन्त उसके घरगये और उसके चरण अपने मस्तक पर रखकर अपनी अवज्ञा को क्षमा कराया तात्पर्य यह कि जब उन्होंने अभिमान के वचन को निन्द्य जाना तब ऐसी नम्रता को अङ्गीकार करते भये ऐसे ही दो मनुष्य महापुरुष के निकट विवाद करनेलगे थे कि मैं तो अमुक का पुत्र और अमुक का पौत्र हूं और तू कौन नीच है ? जो मेरे सम्मुख वचन बोलता है ऐसेही नवपीढ़ी पिता पितामह पर्यन्त वर्णन करगया तब महापुरुष को आकाशवाणी हुई कि इसके नवो पितामह आगेही नरक बिषे जलते हैं और यह

भी उनके निकट जाकर जलेगा तातें इससे कहो कि तू इतना मान क्योंकर करता है ? क्योंकि जो तू कुल का मान करेगा तब विष्ठाके कीट की नाईं महा नीच गतिको प्राप्तहोवेगा बहुरि चौथा कारण मान का रूप है पर यह रूप और शृङ्गार का बनावना स्त्रियों विषे अधिक होता है जैसे आयशानामी महापुरुष की स्त्री ने कहाथा कि यह स्त्री ठिंगनी है तातें इस वचन विषे यही अभिमान सिद्ध होताहै कि मेरा शरीर इससे दीर्घ है बहुरि पांचवां कारण अभिमान का धन है इस करके कि जब धनवान् पुरुष किसी निर्धन पर क्रोधवान् होता है तब इस प्रकार कहने लगताहै कि मैं इतना धन और सामग्री रखताहूं तातें तू कौन नीच है ? जो मेरे समान बोलता है जब मैं चहूं तब तेरे समान केते दास मोल लेआऊं बहुरि छठा कारण अभिमान का बल है तातें बलवान् पुरुष भी निर्बल मनुष्य को देखकर अवश्य ही अभिमानी होताहै और सातवां कारण अभिमान का यह है कि सम्बन्धियों और विद्यार्थी और टहलुवों और अपने सेवकों पर अभिमान करताहै तात्पर्य यह कि जिस पदार्थ को यह मनुष्य विशेष जानता है सो तिस पदार्थ को पाकर अवश्यही अभिमानी होता है अर्थात् यद्यपि वह पदार्थ नीचही होवे तौ भी अपनी बूझ विषे उसको उत्तम जानकर बड़ाई किया चाहता है जैसे खुसरे भी अपनी निर्लज्जता पर अभिमान करते हैं पर अभिमान की उत्पत्ति के कारण श्रेष्ठ येही सात हैं बहुरि अभिमान का प्रकट होना भी ईर्षा और वैरभाव करके होता है अथवा दम्भके निमित्तभी यह मनुष्य आपको विशेष कर दिखावता है अथवा प्रश्नोत्तर के विवाद विषे भी अभिमान का चिह्न प्रकट भास आवता है पर जब तैंने अभिमान के कारणों को भली प्रकार पहिंचाना तब इसके निवृत्त करने के उपाय भी अवश्यही समझने चाहिये हैं और रोगके कारण को पहिंचानकर उसका दूर करनाही रोग को नष्ट करताहै (अथ प्रकट करना उपाय अभिमानके निवृत्त करने का) तातें जान तू कि जिस अभिमान का अंशभी आत्मसुखसे अप्राप्त करनेवाला होवे सो ऐसे अभिमानरूपी रोगका उपाय करना अवश्यही प्रमाणहै और यह रोग ऐसा प्रबल है कि इसकी व्यथा से रहित कोई विरलाही पुरुष होता है पर इसके दूर करने का उपायभी दो प्रकार का है सो एक उपाय ऐसा है कि वह मूलही से सर्वप्रकारके अभिमान को दूरकर डालता है और दूसरा उपाय यहहै कि उसमें अभिमानके कारणों को पहिंचानकर

भिन्न २ उनको निवृत्तकरना होता है सो यह दोनों उपाय बूझ और करतूतिके साथ मिलकर सिद्ध होते हैं सो प्रथम उपाय यह है कि भगवंत के ऐश्वर्य को पहिंचाने और ऐसे जाने किवड़ाई का अधिकारी एक महाराजहीहै बहुरि आपको इस प्रकार समझे कि मेरे समान नीच और कुचील और पराधीन और मूर्ख कोई नहीं है सो यह उपाय ऐसा विशेष है कि अभिमान के रोग को मूलही से काट डालताहै ताते इस जीव की नीचता के पहिंचानने को एकही वचन बहुत है जैसे महाराज ने कहा है कि इस मनुष्य का आदि वीर्य है सो इस वचन का अर्थ इस प्रकार जानना चाहिये कि इस मनुष्यके समान और नीच वस्तु कोई नहीं क्योंकि प्रथम तो इसका नाम रूपही कुछ प्रकट न था बहुरि रज और वीर्य जो पृथ्वी और जल का विकार हैं सो इनके सम्बन्ध से शरीर की उत्पत्ति रची है पर जब भली भांति देखिये तो रज और वीर्य के समान और मलिनता क्या है? बहुरि उससे पीछे मांस का आकार प्रकट होता है सो तिस विषे नेत्र और श्रवण और बुद्धि आदिक चैतन्यताही कुछ नहीं होती ताते यह पाथर की नाईं जड़रूप भासता है अर्थ यह कि जो अपने आपहीसे अचेत होवे तब और किसी पदार्थ को क्योंकर पहिंचाने ताते भगवत्ने अपनी समर्थता करके उसही मांस को सर्व इन्द्रिय और बुद्धि दीनी है सो यह वार्त्ता प्रसिद्ध है कि इन्द्रिय और बुद्धि की चैतन्यता जल और पृथ्वी का धर्म नहीं पर यह सबही आश्चर्य महाराज ने उत्पन्न किये हैं इस करके कि यह मनुष्य भगवत् की बूझ और बलको पहिंचाने और अभिमानके निमित्त तो इसको ऐसे अङ्ग और ऐसा बल भगवत् ने नहीं दिया सो इस मनुष्य की आदि तो यही है पर जब विचार करके देखिये तब यह अवस्था इस जीवको लज्जावान् करनेवाली है ताते यहां अभिमानका ठौर कौन है? बहुरि मध्य अवस्था मनुष्य की यहहै कि जब सर्वगुणों और सर्व इन्द्रियों संयुक्त होकर इस संसार विषे आया तौभी महादीन और पराधीन है सो जब इस जगत् विषे आकर यह जीव स्वेच्छित होता तौभी इसको अभिमान का अधिकार होता क्योंकि भ्रम करके ऐसे जानता है कि मैं आपही करके उत्पन्न हुआहूं पर इस संसार विषे भूख, प्यास, शीत, उष्ण, दुःख, चिन्ता आदिक जो अनेक विघ्न हैं सो सबही इस जीव के ऊपर प्रबल किये हैं ताते एक क्षण भी इनके दुःख से रहित नहीं होसक्ता सो यह सबही कष्ट ऐसेहैं कि वर्णन करनेमें

नहीं आते बहुरि इस जीव के रोगोंका उपचार कटु औषधियों विषे राखा है और शरीर के भोगों विषे रोगों की उत्पत्ति राखी है सो जब वासना अनुसार सुखों को भोगता है तब अवश्य ही दुःखी होता है तात्पर्य यह कि इस जीवका कोई कार्य इसकी चाह अनुसार नहीं रचा है ताते जब किसी पदार्थ को जानना चाहता है तब नहीं जानसक्ता और जब अपने संकल्प को विसमरण कियाचाहे तब विसारने को समर्थ नहीं होता इस करके प्रसिद्ध हुआ कि यह मनुष्य सर्व अङ्गों और बलसंयुक्त रचाहुआ यद्यपि है तौभी महादीन और पराधीन और अत्यन्त नीच है बहुरि इस मनुष्य की अन्त अवस्था यह है कि जब मृतक होताहै तब नेत्र श्रवण बल रूप आदिक गुण कोई नहीं रहता और कुचील मृतक शरीर रह जाता है ताते सब कोई उसको देखकर ग्लानि करते हैं बहुरि इसही दुःख विषे भी नहीं छूट सक्ता क्योंकि जब परलोक विषे पहुँचता है तब अनेक प्रकार के भयानक रूप देखता है बहुरि दण्ड का अधिकारी होताहै और अपनी सर्व आयुर्बल के अपकर्म देखकर लज्जावान् होता है और देवता इस प्रकार पूछते हैं कि अमुक आहार और और करतूति और संकल्प तैंने किस निमित्त कियाथा? ताते सबका उत्तर न दे सो जब झूठा होता है तब महानरकों विषे प्राप्त होता है और उस समय विषे इसप्रकार कहने लगताहै कि जो मैं कूकर शूकर अथवा माटी होता तौ भला था क्योंकि पशुओं को परलोक का दण्ड तो नहीं होता ताते जिस पुरुष ने इस प्रकार जड़ पदार्थ और पशुओं से भी आप को नीच जाना है यह बड़ाई और अभिमान विषे क्योंकर आसक्त होगा इस करके कि जब धरती और आकाश के रेणु इस मनुष्य की नीचता और पापों को पहिंचानकर रुदन करें तौभी इस जीव के दुःखोंका अन्त कदाचित् नहीं आता सो इसका दृष्टान्त यह है कि जैसे किसी चोर को कोई कोतवाल पकड़कर बन्दीखाने विषे डाले और उस चोरको शूली चढ़ने का भय होवे तब वह अभिमान क्योंकर करता है तैसेही यह सब मनुष्य पापरूपी चोरी करते रहते हैं और संसाररूपी बन्दीखाने विषे बँधेहुये हैं बहुरि नरकों का भय शूली चढ़ने की नाई है सो जिस पुरुष ने इस भेद को भली प्रकार समझा है तब यह जाननाही अभिमानरूपी रोगको मूलही से नष्ट करडालता है क्योंकि ऐसा मनुष्य आपको सबसे नीच जानता है पर करतूति करके अभिमान का उपाय इस प्रकार होता है कि मन वचन

करके दास भाव को अङ्गीकार करै इस करके कि भगवद्भजन का तात्पर्य नम्रता और दीनता है जैसे अरबदेश के लोग अभिमान करके मस्तक किसी के आगे नीचा न करते थे ताते महापुरुष ने उनको धरती पर माथा टेकना प्रमाण कहा था सो जिज्ञासु जनको ऐसेही चाहिये कि जो अभिमानके स्वभावके अनुसार कोई कर्म करे तो उससे विपर्यय होकर विचरै यह अभिमानरूपी रोग ऐसा प्रबल है कि नेत्र और रसना और वस्त्र और शरीर के सर्व अङ्गों बिषे प्रकट होता है ताते चाहिये कि जिज्ञासु जन पुरुषार्थ करके सर्व अङ्गों बिषे दासभाव को ग्रहण करें जैसे यह भी अभिमान का चिह्न है कि मानी पुरुष अकेला नहीं चल सक्ता ताते नम्रतावान् पुरुष को चाहिये कि ऐसे न बर्तें इसी करके हसनबसरी सन्त किसी को अपने पीछे चलने नहीं देतेथे और इस प्रकार कहते थे कि लोगों के आगे चलने बिषे इस जीव का मन स्थिर नहीं रहता ऐसेही अबूदरदा सन्त ने कहा है कि जितना इस मनुष्य को लोगों के साथ मिलाप अधिक होता है उतनाही भगवंत् के मिलाप से दूर रहता है इसी कारण से जब महापुरुष मार्ग बिषे चलते थे तब कभी प्रियतमों के मध्य बिषे चले जाते थे और कभी आप पीछे होकर प्रियतमों को आगे करलेते थे बहुरि जब उनके आगे लोग उठखड़े होतेथे तब उनको इस बिषे ग्लानि उपज आती थी और वर्जित करते थे इसीपर अलीसन्त ने कहा है कि जब कोई नरकगामी मनुष्य को देखना चाहे तब उसको देखे जो आप तो बैठा होवे और लोग उसके आगे खड़ेहो रहें बहुरि यह भी अभिमान का लक्षण है कि आप से विशेष पुरुष के दर्शन को न जायसके और दीन पुरुष को निकट बैठने न देवे इसी कारण से महापुरुष सब किसी से भावसंयुक्त मिलते थे अथवा जब कोई रोगी मनुष्य अपवित्र होताथा तब उसको निकट बैठाकर भोजन कराते थे बहुरि जो अभिमानी मनुष्य होता है वह अपनी क्रिया भी आप नहीं करसक्ता और महापुरुष आपही अपने घर की सब क्रिया करलेते थे इसी पर एक वार्त्ता है कि एक भगवद्भक्त राजा के घर बिषे एक मित्र आया था सो रात्रि के समय बिषे जब दीपक बुझनेलगा तब उस मित्र ने दीपक बिषे तेल डालने की मंशा करी तो राजा ने कहा कि महमान से टहल करानी भली नहीं ताते तुम बैठे रहो बहुरि उस मित्र ने कहा कि टहलुवे को जगादूं तब राजा ने कहा कि टहलुवा भी

अबहीं सोया है इतना कहकर आपही उठकर दीपक विषे तेल डाला बहुरि वह मित्र कहनेलगा कि तुम आपही उठे तब राजा ने कहा कि जब मैं बैठा था तब भी वही था और अब भी वही हूं ताते मेरा गया तो कुछ नहीं इसी कारण से अबूहेरा भक्त जो राज्य करतेथे तौ भी जीविका के निमित्त लकड़ियों का बोझा बाजार विषे बेंचलेते थे बहुरि अभिमानी मनुष्यों का यह भी स्वभाव है कि सुन्दर वस्त्र पहिरे विना घर से बाहर नहीं निकलते पर अली हरिभक्त राजधर्म विषे भी छोटाही जामा पहिरते थे तब किसीने कहा कि तुम इतनी कृपणता क्यों करते हो ? तब उन्होंने कहा कि इस करके अपना चित्तभी प्रसन्न होताहै और इस क्रिया को देखकर और जिज्ञासु जन भी संयम विषे रहेंगे और निर्द्धन पुरुषों का संकोच भी दूर रहताहै ऐसेही एक और हरिभक्तराजा जब राजपुत्र थे तब सहस्र रुपये का पहरावा पहिरते थे और उसको भी मोटा कहते थे बहुरि जब आप राज्य करनेलगे तब दो रुपये का एक पहरावा पहिरकर भी इस प्रकार कहते थे कि जो इससे भी अधिक मोटा पहिरिये तो भला है तब किसीने कहा कि आगे तो तुम सुन्दर वस्त्रों की इतनी अभिलाषा करते थे और अब किस निमित्त मोटा पहिरते हो तब उन्होंने कहा कि भगवत् नें मेरा मन रसग्राही बनाया है ताते जिस वस्तु विषे कुछ सुख देखता है तब उसीकी ओर दौड़ताहै अर्थ यह कि आगे स्थूल भोगों को देखकर और उनको विशेष जानकर प्रीति करता था अब सच्चे सुख की अभिलाष करता है पर सर्वथा ऐसे नहीं कहाजाता कि सुन्दर वस्त्रों करही अभिमान होता है क्योंकि केते पुरुष पुरातन वस्त्र पहिरकर अभिमान करते हैं और आपको वैरागी जानते हैं इसी पर ईसा महापुरुष ने कहाहै कि पुरातन वस्त्र पहिरेहुये वैराग्य नहीं प्राप्त होता ताते जब तुम्हारा हृदय भगवत् के भय करके कोमल होवे तब उज्ज्वल वस्त्र के पहिरने करके भी दोष कुछ नहीं होता तात्पर्य यह कि जिस पुरुष को नम्रता और दीनता की चाह होवे तब महापुरुषों के आचरणों को भली प्रकार जाने और उनकी नम्रता पहिचानकर यह भी नम्रताही को अङ्गीकार करे सो महापुरुष का ऐसाही स्वभाव था कि अपने वस्त्र को आपही सींवते थे और गृह विषे झाड़ूआदिक क्रिया करते थे और जब उनका टहलुवा थकित होता था तब उसके अङ्ग चाप देतेथे बहुरि धनवान् और निर्द्धन और बालक वृद्ध को देखकर प्रथमही प्रणाम

करतेथे और ऊंच नीच तथा सुन्दर कुरूप विषे भेद न रखते थे और जब कोई उनसे भाव करके प्रसाद पावने को कहता था तब उसकी थोड़ी बहुत वस्तु को ग्लानि विना ग्रहण करते थे ऐसेही अतिकोमल और उदार और प्रसन्नवदन चपलता से रहित थे बहुरि भगवत के भय करके सकुचे हुये थे पर मस्तक कठोर न रखते थे और प्रयोजन विना अधीन चित्त थे और संयम सहित उदार थे और सब किसी पर दया रखते थे और सर्वदा अपने शीश को झुका रखते थे ताते जो पुरुष अपनी भलाई को प्राप्त हुआ चाहे तब महापुरुष के आचार अनुसार विचरे १ बहुरि दूसरा उपाय जो अभिमान का भिन्न २ विचार करके कहा था सो यह है कि प्रथम अपने अभिमान के कारण को पहिंचाने सो जब उत्तम कुलका अभिमान फुरे तब ऐसा जाने कि मेरा तो कुल रज और वीर्य है क्योंकि यह शरीर इनहीं से उत्पन्न है ताते माता इसकी रक्त है और पिता वीर्य है और माटी इसकी पितामह है सो यह सबही पदार्थ महाअपवित्र और तुच्छ हैं ताते विचारवान् को ऐसाही जानकर अभिमान का निवृत्तकरना योग्य है क्योंकि जब कोई नाऊ वा कुम्हार का पुत्र होवे तब वह उनकी नीच क्रिया को देखकर अभिमानी कदाचित् नहीं होता पर जब विचारकर देखिये तब यह मनुष्य भी रज और वीर्य की संतान होकर काहे को मान करताहै सो इसका दृष्टान्त यह है जैसे कोई पुरुष आपको ब्राह्मण कहावे और दो साखी आनकर कहें कि यह तो नाऊ का पुत्र है तब यह वचन सुनकर कैसा लज्जावान् होता है तैसेही जिसने अपने शरीर की उत्पत्ति को भली प्रकार जाना है वह कदाचित् मानी नहीं होता (अथ रूपाभिमानोपायः) बहुरि दूसरा कारण अभिमान का रूप है ताते जो मनुष्य अपने रूप का अभिमान करे तब उसको चाहिये कि अपने शरीर की मलिनता को पहिंचाने और शरीर के सर्व अङ्गों विषे जो दुर्गन्ध भरपूर है सो तिसका विचार करे कि यह शरीर ऐसा मलिन है जो यह मनुष्य नित्यप्रति अपनी मलिनता को दोवार धोता है और उस मलिनता के देखने व सूंघने का बल नहीं रखता सो इसके शरीर का रूप उसही के आश्रित है और इसकी उत्पत्ति भी रज और वीर्यकर हुई है इसी पर ताऊससन्त ने किसी पुरुष को ऐंड़ता देखा था तब उससे कहने लगे कि जिस पुरुष ने अपने उदर की मलिनता को पहिंचाना है वह इस प्रकार कभी लटकमटक कर नहीं चलता

क्योंकि यह शरीर मल मूत्र के स्थान से भी मलिन है और मल मूत्र के स्थानों में भी इसही की मलिनता करके मलिनता होती है बहुरि यह मनुष्यरूप का जो अभिमान करता है सो इसने अपना रूप आप तो नहीं बनाया और कोई पुरुष आप करके कुरूप भी नहीं होसक्ता ताते ग्लानि और अभिमान करना व्यर्थ है बहुरि यह रूप ऐसा क्षणभंगुर है कि एकही रोग अथवा फोड़े करके कुरूप होजाता है ताते इसका अभिमान करना बड़ी मूर्खता है (अथ बलम्) पर जब बल का अभिमान फुरे तब इस प्रकार बिचारे कि जब एक नाड़ी विषे पीड़ा उपजती है तब महानिर्बल और दीन होजाता है बहुरि माखी और मच्छड़ और चींटी के काटने से भी आपको बचाय नहीं सक्ता अथवा जब यह मनुष्य अधिक बली होवे तौ भी वृषभ और गर्दभ और हस्ती और ऊंट इससे अधिक बली होते हैं ताते ऐसे नीच पदार्थ का अभिमान करना क्या है (अथ ऐश्वर्यम्) बहुरि जब धन और दास और दासी अथवा राज्य का अभिमान करे तब यह तो सबही पदार्थ इसके शरीर से बाहर हैं ताते धन को चोर आदिक विघ्न दूर करडालते हैं और राज्यभी क्षण विषे नष्ट होजाता है तब उस समय विषे कैसी अधीनता को प्राप्त होता है बहुरि केते विमुख लोग भी इससे अधिक धनी और राजा होते हैं ताते ऐसे धन और राज्य का अभिमान करना क्या है क्योंकि जितने पदार्थ तुझसे भिन्न हैं वे तेरे कदाचित् नहीं होते ताते तू जितने पदार्थों का अभिमान करता है सो सबही मिथ्या हैं (अथ विद्या) पर जब एकभाव कर देखिये तब इस मनुष्य को विद्या और तप के अभिमान का अधिकार होता है क्योंकि स्थूलदृष्टि विषे भली प्रकार करके यह दोनों कर्म इसही के पुरुषार्थ से ऐसे उत्तम हैं जो भगवत् के निकट प्राप्त करनेवाले हैं और भगवतही के लक्षण हैं ताते यह वार्त्ता महाकठिन है कि विद्यावान् होकर अभिमान से रहित रहे पर इस अभिमान के दूर करने का उपाय भी दो प्रकार का होता है प्रथम तो इस प्रकार जाने कि परलोक विषे विद्यावान् को पकड़ और भय अधिक होता है क्योंकि जब अजान पुरुष से कोई कार्य बिगड़ जाता है तब उसको इतनी ताड़ना नहीं करते और सुजान को अधिक होती है ताते करतूति हीन विद्यावानों के निषेध बिषे जो वचन आये हैं सो तिनका विचार करे जैसे महाराज ने कहा है कि करतूति से हीन विद्यावान् गर्दभ की नाईं है जो गर्दभवत् पुस्तकों

का भार उठाता है और उनकी विशेषता को नहीं जानता अथवा कूकुर की नाईं है क्योंकि अपने मलिन स्वभाव को त्याग नहीं सक्ता ताते गर्दभ और कूकुर से अधिक नीच कौन है ? जो उसकी संज्ञा दीजे इस करके कि जब यह पुरुष परलोक के दुःख से मुक्त न होवे तब जड़ पदार्थ भी इससे विशेष हैं इसी कारण से कितनेही प्रीतिमानों ने कहा है कि जो हम पक्षी मृग और घास होते और परलोक के दुःख से छूटते तौभी भला था तात्पर्य यह कि परलोक का भय जिसके हृदय बिषे स्थित होता है तब स्वाभाविक ही उसको अभिमान नहीं उपजता ताते जब किसी अजान को देखता है तब ऐसे समझता है कि यहभी मुझसे विशेष है क्योंकि इसने तो पापों की बुराई को भली प्रकार नहीं पहिंचाना ताते इसको अधिक ताड़ना न होवेगी बहुरि जब किसी अधिक विद्यावान् को देखताहै तब ऐसे जानता है कि यह भी मुझसे विशेष है इस करके कि जिस भेद को यह समझाता है सो तिसको मैं नहीं जानता ऐसे ही जब वृद्ध पुरुष को देखता है तब ऐसे जानता है कि इसने भगवद्भजन मुझसे अधिक किया होवेगा और बालक को देखकर कहता है कि इसने पाप मुझसें अल्प किये होवेंगे ताते ऐसा पुरुष अपकर्मी को देखकर भी अभिमानी नहीं होता क्योंकि जो यह अन्तकाल बिषे शुभकर्मी होजावे और मैं उस समय बिषे अपकर्मी होजाऊं तो क्या आश्चर्य है ? बहुरि दूसरा उपाय यह है कि इस प्रकार विचारकरे कि यह बड़ाई महाराजही को शोभती है और ऐसे समर्थ महाराज का साझी होना बड़ी मूर्खता है इसी कारणसे भगवत् ने सर्वजीवों को यही आज्ञा करी है कि जब तुम आपको नीच जानोगे तब मेरे निकट उत्तम होवोगे ताते सर्व सन्त जो नम्रतावान् और दीनचित्त हुये हैं सो ऐसेही समझ कर उनका अभिमान दूर होगया है (अथ तप) बहुरि तपस्वी को भी इस प्रकार चाहिये कि यद्यपि विद्यावान् को वैराग्यसे रहित देखे तौभी उसके ऊपर ग्लानि न करे और ऐसे जाने कि जो यह उत्तम विद्याही इसको क्षमा करालेवे तब इस बिषे क्या आश्चर्य है ? ऐसे ही जब विद्याहीन को देखे तब इस प्रकार समझे कि मैं तो इसकी अवस्था को नहीं जानता ताते जब यह मुझ से भी अधिक भजनवान् होवे तब मुझको इसपर अभिमान करना क्योंकर प्रमाण है ऐसेही जब किसी अपकर्मी को देखे तब इस प्रकार समझे कि यह तो प्रकट ही पाप

करता है और मेरे चित्त विषे भी अनेक पापों के सङ्कल्प उपजते हैं ताते यह वार्त्ता निस्सन्देह है कि जिसके अन्तर पापों की चितवनी होवे और निष्पाप होइ दिखावे तब वह प्रकट पाप करनेवाले से अधिक नीच होता है बहुरि एक पाप ऐसे बली होते हैं कि वह अनेक जप तपों का नष्टकर डालते हैं और एक गुण ऐसा बलवान् होताहै जो अनेक पापों को दूर करदेता है तात्पर्य यह कि यथार्थ की बूझ विषे देखिये तो अभिमान करना बड़ी मूर्खता है इसी कारण से महापुरुष और सन्तजन और बुद्धिमान् पुरुष अभिमान से रहित हुये हैं (अथ प्रकट करनी निषेधता अहङ्कार की और प्रसिद्ध दिखावने उसके विघ्न) ताते जान तू कि सर्व विघ्नों और अशुभ कर्मों का बीज अहङ्कार है इसीपर महापुरुष ने कहा है कि तीन स्वभाव इस जीवके महादुःखदायक हैं सो एक कृपणता दूसरा वासनाकी प्रबलता तीसरा अहङ्कार है बहुरि महापुरुष ने अपने प्रियतमों से इस प्रकार कहा था कि यद्यपि तुम पापकर्म नहीं करते तौभी मैं इस करके डरताहूं कि तुम अहङ्कारी न होजावो तब महानीचता को प्राप्त होवोगे क्योंकि अहङ्कार सबही पापों से बुरा है इसी पर इब्नमसऊद सन्त ने कहा है कि भगवत् की दया से निराशता और आपको देखकर अहङ्कारी होकरके यह मनुष्य विमुख होजाता है क्योंकि अहङ्कारी और निराश पुरुष के हृदय से प्रीति और पुरुषार्थ दूर होजाता है इसी पर एक और सन्त ने कहा है कि जब मैं सारी रात्रिभर जागरण करके भजन करताहूं और प्रभात समय उठकर अहङ्कारी होऊं तब इससे मैं यह वार्त्ता विशेष जानताहूं कि यद्यपि मैं सर्व रैन सोरहूं पर प्रभात समय आधीनचित्त और लज्जावान् होकर उठूं तो भला है ताते जान तू कि इस अहङ्कार से केते विघ्न उपजते हैं सो एक तो अभिमान है कि आपको सब से विशेष जानता है बहुरि अपने अवगुणों को नहीं जानता अथवा ऐसे जानता है कि सुकृतरूप हूं बहुरि भगवद्भजन से अलसाय जाता है और यद्यपि कुछ जप तपभी करताहै तो भी उसके विघ्नों को नहीं विचारता ताते भगवत् के भय से रहित होता है बहुरि ऐसे जानता है कि भगवत् के निकट कुछ विशेष हूं और भजन स्मरण जो भगवत् की दात है सो तिसको अपना पुरुषार्थ समझता है और अहङ्कार करके प्रश्न उत्तर किसी से पूछ नहीं सक्ता बहुरि जब उसको कोई यथार्थ वचन कहता है तो भी अङ्गीकार नहीं करता ताते मूर्ख और नीचही

रहता है (अथ अहङ्कार का रूप प्रकट करना) ताते जान तू कि विद्या और शुभकर्मों के पदार्थादिक जेते गुण हैं सो सबही महाराज की दात हैं पर जो पुरुष ऐसे गुणों को पायकर दाता की ओर दृष्टि रखता है और अपने आपको कुछ नहीं जानता तब पुरुष अहङ्कार से रहित कहाजाता है और जो मनुष्य किसी गुण को प्राप्तहोकर अपना पुरुषार्थ जानताहै और उस करके प्रसन्न होता है तब इसही का नाम अहङ्कार है और जब अपनी करतूति को विशेष जान करके किसी पद को प्राप्त हुआचाहे और आपको उत्तम अधिकारी जाने तब इसही का नाम भ्रम है अर्थ यह कि भ्रम करके और का और जानता है और यथार्थ को नहीं जानता इसी पर महापुरुष ने कहा है कि जब तुम प्रीतिसंयुक्त रुदन करके अहङ्कारी होवो तब इससे यह वार्त्ता विशेष है कि हास्य करके अपनी अवज्ञा देखतेरहो क्योंकि अविद्या का मूल अहङ्कारहै जिस करके आपको शरीर और वर्णाश्रम और कर्मोंका कर्त्ता जानता है सो भगवत् और इस जीवविषे यही अहङ्कार पटल है (अथ प्रकट करना उपाय अहङ्कार का) ताते अहङ्काररूपी रोग का कारण केवल अज्ञान है ताते इसका उपाय भी केवल ज्ञानहै और बूझ है सो बूझ यह है कि जब कोई पुरुष रात्रि दिवस विद्या और वैराग्य विषे स्थित होवे और इस करतूति करके कुछ अहङ्कार करे तब मैं उससे इस प्रकार कहूं कि यद्यपि तू आपको कर्त्ता जानकर अहङ्कारी होता है तौभी तेरा कर्म तेरे पुरुषार्थ के आश्रित नहीं क्योंकि तुझ को महाराज ने करतूति करने का शस्त्र बनाया है जैसे लिखारी के हाथ विषे क़लम होती है अथवा जैसे दरज़ी के हाथ विषे सुई होती है सो लिखना और सीवना क़लम और सुई की करतूति नहीं क्योंकि वह दोनों पराधीन हैं बहुरि जब तू ऐसे कहे कि कर्मों का कर्त्ता मैं हूं क्योंकि मेरीही श्रद्धा और बलकरके कर्म सिद्ध होते हैं तब इसका उत्तर यह है कि जिस श्रद्धा और बल करके कर्म सिद्ध होते हैं सो तू कहां से लायाहै और कुछ इस वार्त्ताको भी जानताहै कि जिस चाह और उद्यम के आधीन होकर तू कर्मों विषे लगता है सो तिस चाहको तेरे ऊपर किसने प्रेरा है और श्रद्धारूपी रस्सी तेरे गले विषे डालकर तुझको करतूति की ओर किसने चलाया है ताते जान तू कि यह चाह और श्रद्धा ही महाराज का दूत है सो जिस पुरुष को जैसी आज्ञा होती है तब वह किसी प्रकार उलटाय नहीं सक्ता ताते प्रसिद्धहुआ

कि श्रद्धा और पुरुषार्थ और और जेते गुण हैं सो सबही महाराज की दात हैं पर तू जो किसी गुण का अहङ्कारी होता है सो यह बड़ी मूर्खता है क्योंकि तेरे बल करके कोई कार्य सिद्ध नहीं होता ताते तुझको किसी गुण का अहङ्कारी होना प्रमाण नहीं बहुरि जब तू प्रसन्नहोवे तौभी भगवत्के उपकार को जानकर प्रसन्न और आश्चर्यवान् होना प्रमाण है इसकरके कि बहुत मनुष्यों को धर्म के मार्ग से अचेत किया है और उनका पुरुषार्थ अपकर्मों विषे लगता है और तुझ को महाराज ने अपनी दया करके सात्त्विकी श्रद्धारूपी दूतको प्रेरा है ताते दण्ड करके तुझको अपनी ओर खींचता है सो यह भगवतही का उपकार है जैसे कोई राजा किसी अपने एक टहलुवे को हेतु रहित अपनी कृपा करके शिरोपाव और नाना पदार्थ देवे तब उसको अपने स्वामी का उपकार माननाही प्रमाण होता है और अपने ऊपर अहङ्कारी होना अयोग्य है क्योंकि उसको अधिकार से विनाही बखशीश प्राप्तहुई है पर जब वह टहलुवा कहै कि राजा ने मुझको अधिकारी जानकर बखशीश करी है तब उससे पूछिये कि तुझको अधिकार किसने दिया है ताते अधिकार और बखशीश दोनों राजाही की दातहैं जैसे प्रथम तो तुझको राजा घोड़ा देवे और पीछे उस घोड़े का टहलुवा देवे और इस करके तू अहङ्कारी होवे कि मुझको टहलुवा इस निमित्त प्राप्तहुआ है कि मैं घोड़ा रखता था सो यह अहङ्कार करना मूर्खता है क्योंकि यह घोड़ाभी उसीने दिया है और टहलुवा भी उसही की बखशीश है ताते तू व्यर्थ अहङ्कारी होता है तैसेही जब यह मनुष्य इस करके अहङ्कारी होता है कि मुझको भगवत् ने भजन का बल इस निमित्त दिया है कि मैं उसको प्रियतम रखता था तब उससे कहिये कि तेरे हृदय विषे प्रीति किसने उपजाई है ? बहुरि जब वह ऐसे कहे कि मेरे हृदयविषे प्रीति इस करके दृढ़ हुई थी कि मैंने उसके स्वरूप को भली प्रकार पहिंचाना था तब उससे कहिये कि वह पहिंचान और बूझ किसने दी थी तात्पर्य यह कि जब सर्वगुणों का दाता महाराजही हुआ तब सर्व प्रकार उसही का उपकार जानना विशेष है क्योंकि तुझको भी उसहीने उत्पन्न किया है बहुरि श्रद्धा और पुरुषार्थ आदिक गुण भी तेरे विषे उसही ने उपजाये हैं ताते तू आप करके कुछही नहीं और तेरे आश्रय भी कोई कार्य नहीं महाराज की समर्थता के हाथ विषे तू भी पराधीन है बहुरि जब तू इस प्रकार प्रश्नकरे कि

जब मैं किसी कर्म का कर्त्ता नहीं तब हमारे कर्मों करके पुण्य क्यों लिखाजाता है ? ताते यह तो प्रसिद्ध जानाजाता है कि कर्म हमारे पुरुषार्थकर उपजता है इसी कारण से पुण्य के अधिकारी भी हमहीं होते हैं तब इसका उत्तर यहहै कि निस्सन्देह तू आप करके कुछ नहीं और महाराज की समर्थता विषे ऐसा पराधीन है कि तुझ करके कोई कार्य सिद्ध नहीं होता पर जब तेरे हृदय विषे बूझ और श्रद्धा व बल आन फुरते हैं तब तू इस प्रकार जानता है कि यह कर्म मैंने किया है सो इस वचन का भेद ऐसा गुह्य है कि तू इस बुद्धि करके समझ न सकेगा पर मैं तेरी अल्पबुद्धि अनुसार कुछ वर्णन करता हूं कि तेरे सबही करतूति की कुंजी बूझ और श्रद्धा व बल हैं इस करके कि इनके विना करतूति सिद्ध नहीं होती सो यह तीनों भगवत् की दात हैं पर इसका दृष्टान्त यह है जैसे खज़ाने विषे अनेकप्रकार की सम्पदा होवे और उसकी कुंजी तेरे पास न होवे बहुरि जब दयाकरके खज़ानची तुझको कुंजी देवे तब तू उसके ताले को खोलकर अधिक सम्पदा को प्राप्तहोवे सो यद्यपि वह सम्पदा तैंने अपने हाथों करके लीन्ही है तो भी अधिक उपकार कुंजी देनेवाले का होता है और तेरे कर्मकी बड़ाई कुछ नहीं होती तैसेही तेरे सर्वकर्मोंकी कुंजी महाराज की बख़शीशहै तो चाहिये कि तू सर्वप्रकार उसही का उपकार जानकर प्रसन्न होवे जो उसही महाराज ने अपनी दया करके तेरे अधिकार विना तुझसे शुभकर्म कराया है और पापी जीवों को भलाई रूपी खज़ाने से अप्राप्त राखाहै सो उनकी अवज्ञा विनाही अपनी आज्ञानुसार उनको अशुभ मार्ग विषे डाला है तात्पर्य यह कि जिसने सबका प्रेरक महाराजही को पहिंचाना है तब वह कदाचित् अहङ्कारी नहीं होता पर यह बड़ा आश्चर्य है कि जब सुजान मनुष्य निर्द्धन होता है तब इस प्रकार आश्चर्य करने लगता है कि अमुक मूर्ख को इतनी सम्पदा प्राप्तहुई है और मुझ ऐसे बुद्धिमान् को कुछ प्राप्त नहीं होता सो वह ऐसे नहीं जानता कि यह विद्यारूपी पदार्थ जो मेरे पास है सो यह भी तो भगवत् की बड़ी दात है पर जब महाराज विद्या भी मूर्ख धनी को देता तब भगवत् का ऐश्वर्य और नीति कुछ खण्डित तो नहीं होती थी ताते यह विद्यावान् ऐसेही आश्चर्य करताहै जैसे रूपहीन स्त्रीको देखकर रूपवती स्त्री आश्चर्य करे कि इस कुरूपा को इतने भूषण मिले हैं और मुझ रूपवती को कोई भूषण

नहीं प्राप्तहुआ पर मूर्खता करके इतना नहीं जानती कि जब रूप और भूषण दोनों उसही को मिलते तब भगवत् की समर्थता विषे क्या विषमता होती ? बहुरि जैसे राजा किसी चाकर को घोड़ा देवे और एकको एक गुलाम देवे पर जब घोड़ेवाला चाकर आश्चर्यवान् होवे कि घोड़ा तो मैं रखता हूं और राजा ने दूसरे चाकर को गुलाम किस निमित्त दिया है सो यह बड़ी मूर्खता है इसी पर एक वार्ता है कि दाऊद महात्मा ने इस प्रकार अहङ्कार किया था कि हे महाराज ! मैं तेरा भजन सारी रात्रि करता हूं और सर्व दिनों विषे व्रती रहता हूं तब उनको आकाशवाणी हुई कि हे दाऊद ! तैंने ऐसा पुरुषार्थ कहां से मेरे विना पाया है ताते अब मैं एकक्षण तुझ को अपनी सहायता से दूर रखता हूं तब उसीक्षण विषे उनसे एक ऐसा पाप हुआ कि उसही अवज्ञा करके और उस की लज्जामानी करके सर्व आयुष् पर्यन्त रुदन करते रहे बहुरि अयूब महात्मा ने भी ऐसेंही अहंकार किया था कि हे महाराज ! जितना कष्ट तैंने मेरे ऊपर भेजा है सो मैं कितनेही वर्षों से उसही विषे धैर्यकर रहा हूं तब उनको भी बड़े भयानक शब्द के साथ आकाशवाणी हुई कि तू मेरी दया विना ऐसा धैर्य कहां से ले आया यह वचन सुनकर अयूब जी भयवान् हुये और अपने शीश पर धूलि डालकर कहनेलगे कि हे महाराज ! सब कुछ तेरीही दयाकरके प्राप्त होताहै ताते मैंने अपने अहंकारका त्यागकिया इसीपर महाराज ने कहाहै कि जो मेरी दया न होती तो कोई मनुष्य शुद्धपद को न पहुँचता बहुरि महापुरुष नेभी कहाहै कि कोई पुरुष अपनी करतूतिकरके मुक्तिको नहीं पाता तब किसी ने पूछा कि क्या तुम भी अपने पुरुषार्थ करके मुक्त नहीं हुये तब उन्होंने कहा कि मैं भी महाराज की दया का भरोसा रखताहूं ताते प्रसिद्ध हुआ कि जिन्हों ने इस भेदको भलीप्रकार समझाहै सो वह कदाचित् अहंकारी नहीं होते बहुरि ऐसे जान तू कि केते मनुष्य मूर्खता करके उस पदार्थ पर अहङ्कारी होते हैं कि जिस पदार्थका सम्बन्ध उनके साथही कुछ नहीं जैसे बल और रूप और उत्तम कुल सो इस पर अहंकारी होना महामूर्खता है ताते केते मनुष्य जो धनवान् और राजाओं के कुलका अभिमान करते हैं सो उनके पिता पितामह को परलोक विषे ऐसी नीचगति होतीहै कि जब यह अहंकारी प्रसिद्ध देखें तब अधिक लज्जावान् होवें और केते मूर्ख तो उत्तम कुल के आश्रय ऐसे कहने लगते हैं

कि हम को पापही स्पर्श नहीं करते पर वे बुद्धिहीन इतना नहीं जानते कि यद्यपि हमारे पिता पितामह निष्पाप हुये हैं पर जब हमने पाप किये तब हमारा और उनका क्या सम्बन्ध रहा ? क्योंकि वह सन्तजन तो वैराग्य और नम्रता करके विशेष हुयेथे कुछ कुलकी बड़ाई करके तो विशेष नहीं हुये ताते जिन्होंने निन्द्य कर्मों को अङ्गीकार किया है सो वह यद्यपि महापुरुषों की सन्तान होवें तो भी नरकों के कीट होवेंगे इसीकारण से महापुरुष ने भी कुल के अभिमान से वर्जित कियाहै और ऐसे कहाहै कि हम सबही मनुष्यजाति हैं और मनुष्य का मूल माटी है बहुरि महापुरुष ने अपनी पुत्री से कहा था कि हे बेटी ! अब तू शुभमार्ग बिषे सावधान हो क्योंकि परलोक बिषे मेरे आश्रय करके मुक्त न होवेगी सो यद्यपि प्रीतिमान् और महापुरुषों के सम्बन्धी भी उनको दया का आश्रय रखतेहैं पर जब पापकर्म अधिक होजावें तब स्थूल सम्बन्ध का आसरा किस काम आता है इसी पर महापुरुष ने कहा है कि मेरे और सन्तजनों के आश्रय होकर पापों बिषे निश्शङ्क विचरना ऐसे है जैसे किसी बड़े वैद्य का पुत्र रोगी होवे और पिता के वैद्यक की बड़ाई जानकर कुपथ्य का त्याग न करे सो बड़ी मूर्खता है क्योंकि जब कुपथ्य की अधिकता करके असाध्य रोग होजावे तब पिताकी वैद्यकी उसके किस काम आवेगी अथवा जो धर्मज्ञ राजा होवे तब उसके निकट कोई मन्त्री और प्रधान भी अवज्ञावान् के दोष को क्षमा कराय नहीं सक्ता क्योंकि वह तो आपही यथायोग्य न्याय करताहै तैसेही यह पापही भगवत् के कोप का वचन है और इस पाप को तू अल्प जानता है ताते जो पुरुष निश्शङ्क होकर पापों बिषे आसक्त होताहै तब किसी सम्बन्ध और कुलके आश्रयकरके दुःखसे नहीं छूटता तात्पर्य यह कि यद्यपि जिज्ञासु जनको सन्त जनों का भरोसा है तौ भी भगवत् की बेपरवाही से डरतेरहते हैं और जो पुरुष उदास हुआ तब उसके चित्त बिषे अहङ्कार कदाचित् फुरता नहीं ॥

दशवां सर्ग ॥

अज्ञानता और भ्रम और छल के उपाय के वर्णन में ॥

ताते जानतू कि जो पुरुष आत्मसुख से अप्राप्त रहताहै सो तिसका कारण यह है कि वह मार्ग बिषेही नहीं चला और शुभमार्ग बिषे न चलने का कारण यह है कि उसने शुभमार्ग को जानाही नहीं अथवा चलही न सका पर चलने

की असमर्थता भोगों की बन्धमानी कर होती है क्योंकि भोगों विषे बँधाहुआ पुरुष विषय वासनाको विपर्यय नहीं करसक्ता और अजानता का कारण यह है कि जिस मनुष्यको सन्तजनोंके वचन की पहिंचान और श्रवण नहीं होती तब वह स्वाभाविकही अजान रहताहै अथवा भ्रम करके कुमार्ग विषे चलने लगताहै अथवा कोई ऐसा छल आन प्राप्त होता है जो इसको शुभमार्ग से गिराय देताहै पर भोगोंकी बन्धमानी जो इस जीवको शुभमार्ग विषे चलने नहीं देती सो तिसका उपाय मैंने पीछे वर्णन कियाहै जैसे मान धन की प्रीति और काम क्रोध आदिक जितने मलिन स्वभाव हैं सो यह सबही धर्ममार्ग विषे कठिन घाटियां हैं ताते यह मनुष्य इनसे उल्लङ्घित नहीं होसक्ता अथवा जब एक घाटी से उतरता है तब दूसरी अथवा तीसरी विषे अटक जाताहै पर ऐसेही जबलग सब घाटियों से उल्लङ्घित न होवे तबलग परमपद को नहीं प्राप्तहोता बहुरि अजानता जो इस जीवके मन्दभागों का कारणहै सो यह भी तीन प्रकार की होती है प्रथम तो केवल अजानता और अचेतता है और मूर्खताई भी इसही का नाम है कि सन्तजनों के वचन के श्रवण से रहित होकर भले बुरेको न जाने पर इसका दृष्टान्त यह है जैसे कोई पुरुष मार्गविषे सोताही रहजावे सो यह वार्ता प्रसिद्ध है कि जब लग उसको कोई आयकर जगावे नहीं तबलग वह संगियों का साथी नहीं होता और अकेला मृत्यु होताहै १ बहुरि दूसरा प्रकार अजानता का भ्रमहै अर्थ यह कि जैसे कोई पुरुष पूर्वदिशा को जाना चाहै और भूलकर पश्चिम दिशा की ओर चलाजावे तब यह वार्ता निस्सन्देह है कि जितनाही तीक्ष्ण वेगकर दौड़ता है उतनाही अपने मार्ग से दूर रहताहै सो इसको घोर भ्रम कहते हैं पर जब अपने मार्ग से बायें दाहिने होजावे तब इसका नाम क्षीण भ्रम है २ बहुरि तीसरी अजानता का नाम छल है सो इसका दृष्टान्त यह है कि जैसे कोई पुरुष तीर्थयात्रा को चले और मार्गके खर्च के निमित्त कुछ सोना रूपा घर से उठाय लेवे बहुरि मार्ग विषे जब किसी नगर में उस धनको दिखावे तब वह सब खोटाही निकसे पर वह पुरुष आगे उसको खरा जानकर प्रसन्न होताथा और जब उसको खोटेको प्रसिद्ध जानता है तब पश्चात्ताप करने लगताहै और तीर्थयात्रा से अप्राप्त रहता है सो इसीपर महाराज ने कहाहै जिन पुरुषों ने इस लोक विषे जप तप आदिक साधन बहुत किये हैं पर हृदय उनका शुद्ध और निष्काम नहीं हुआ सो जब परलोक

विषे जायकर अपनी करतूतोंके फलसे रहित देखेंगे तब अत्यन्त पश्चात्ताप करेंगे और परमहानि को प्राप्त होवेंगे सो इनकी हानिका कारण यह है कि जिस पुरुष ने सराफी की विद्या भी न सीखी होवे और किसी सराफ को दिखाकर भी सोना रूपा न लेवें बहुरि जब उसको कसौटी पर भी लगाय न लेवे तब ऐसाही पुरुष खोटेही सोने को पाताहै और खरेसे अप्राप्त रहताहै तैसेही सराफी की विद्याका सीखना विवेक और वैराग्य है सो जब ऐसे विवेक को न प्राप्त होसके तब विवेकी जनों की संगति विषे मिलकर भलाई बुराई के भेद को पहिंचाने बहुरि जब ऐसी संगति से भी दूरहोवे तब कसौटी की नाई इस वार्ता को समझे कि जिस भोग विषे इसके मनकी अभिलाष उपजे तब उसको झूठा और खोटजाने सो यद्यपि पूर्ण विवेक और विवेकियों की संगति बिना वैराग्यरूपी कसौटी विषे छलों का भय होताहै पर अधिक तो यहहै कि मनकी वासनाको विपर्यय करके सूधेही मार्ग को पाताहै ताते यह जो तैंने तीनप्रकार की अजानता का वर्णन कियाहै सो इन का उपाय भी जिज्ञासुको जानना चाहिये क्योंकि प्रथम सीधे मार्ग को जानना प्रमाण है बहुरि पुरुषार्थ से उसी मार्ग में चलना चाहिये सो जिस पुरुष को पहिंचान और पुरुषार्थ प्राप्त हुआहै तब उसको परमपद पहुँचने में संशय कुछ नहीं रहता इसी पर एक महात्मा महाराज के आगे प्रार्थना करते थे कि हे महा-राज! प्रथम तो मुझको यथार्थ के मार्गकी पहिंचानदे बहुरि दया करके उसही कर्म का पुरुषार्थ दे २ ताते अब मैं इस सर्ग विषे अजानता का उपाय वर्णन करता हूं (अथ प्रकट करना उपाय प्रथम अजानता और मूर्खता का) ताते जान तू कि बहुत मनुष्य अजानता करकेही भगवत् से दूररहे हैं पर अजान उसको कहते हैं कि जिसको परलोक के सुख दुःख की सुधि कुछ न होवे क्योंकि जिसको परलोक की बूझ प्राप्त होती है तब वह ऐसे मार्ग विषे आलस्य नहीं करता इस करके कि जब यह मनुष्य किसी वार्ता विषे हानि देखता है तब दुःख को अङ्गीकार करके भी उससे दूर रहताहै पर परलोक के सुख दुःख की जो बूझ है सो तिसको सन्तजन की समझ के प्रकाश करके देखताहै अथवा उनके वचनों करके जानसक्ताहै अथवा विद्यावानों के वचन सुनकर भी इस जीव को भले बुरेकी पहिंचान होती है जैसे कोई पुरुष मार्ग विषे सोता होवे तब उसका उपाय यही है कि कोई जाग्रत् पुरुष उसको जगाय देवे तब अपने देशको जाय पहुँचे

सो जाग्रत पुरुष सन्तजन हैं अथवा उनके वचनों के जाननेवाले विद्यावान् हैं इसी कारण से महाराज ने सन्तजनों को जगत्विषे भेजाहै कि जीवों को अ-ज्ञानतारूपी निद्रासे सचेत करावें और इस प्रकार जीवों को सुनावें कि महा-राज ने सर्व जीवों को नरक के किनारे पर स्थित किया है ताते जो पुरुष मन की वासना के अनुसार स्थूल भोगों की ओर सम्मुख होवेगा तब वह निस्स-न्देह नरकों विषे गिर पड़ेगा और जो पुरुष मनकी वासना से विपर्यय विचारेगा तब वह परम सुखको प्राप्त होवेगा ताते प्रसिद्ध हुआ कि यह स्थूल भोग नरकों विषे डालनेकी जंज़ीर हैं और परम सुख के मार्ग विषे कठिन घाटी हैं इसी पर महाराजने भी कहा है कि मैंने स्वर्ग को दुःखों के साथ लपेट राखा है और नरकों की अग्नि को मैंने इन्द्रियादिक भोगों के साथ लपेटा है पर जेते मनुष्य वनों और जङ्गलों और पर्वतों विषे रहनेवाले हैं सो सबही अचेतता की निद्रा विषे सोयेहुये हैं काहेसे कि उनविषे ऐसा विद्यावान्ही कोई नहीं होता जो उन को यथार्थ वचनों करके सचेत करे इसी कारण से धर्म के मार्ग विषे चलनेकी श्रद्धाही नहीं रखते ताते सन्तजनों ने कहा है कि विद्यावानों की संगति से दूर रहनेवाले पुरुष ऐसे हैं जैसे श्मशानों विषे भूत होवें बहुरि नगरों विषे य-द्यपि वचन वार्ता सुनानेहारे पण्डित रहते हैं तौभी वे पण्डित सकामी और लोभी होते हैं सो तिनके वचन सुनकरभी अचेतता दूर नहीं होती क्योंकि जो पुरुष आपही घोरनिद्रा विषे सोता होवे वह और किसी को क्योंकर जगायसके बहुरि केते विद्यावान् तो ऐसे होते हैं कि यद्यपि वचन वार्ता भी कहते हैं तोभी जीवों के कल्याण का उपदेश नहीं करते नाना प्रकार की चतुराई और अर्थ-रहित इतिहासों को उच्चारण करते हैं अथवा ऐसे वचन कहते हैं कि इस मनुष्य को गृहस्थ धर्मही विशेष है अथवा भगवत् की दया का वर्णन करके जीवों का भय दूर कर देते हैं सो ऐसे वचन सुननेहारे मनुष्यों की अवस्था अजान पुरुषों से भी नीच होजाती है ताते इसका दृष्टान्त यह है कि जैसे कोई मनुष्य सोते हुये पुरुष को जगाकर ऐसा मद्पान करावे कि जो उसको महाउन्मत्त करडारे ताते उसकी निद्रा महाघोर होजाती है क्योंकि जब मद्पान किये विना सोता हुआ था तब थोड़ेही वचन कर सचेत होता और मद्पान करके ऐसा अचेत होता है कि पचास लाठियों करके भी उसकी निद्रा नहीं खुलती तैसेही जब

अजान पुरुष ऐसी संगति विषे बैठताहै तब उसका यही निश्चय दृढ़ होजाता है कि हमारे पापों करके महाराज को क्या स्पर्श होवेगा और उसको सुख देने की कृपणता कब होती है क्योंकि वह तो परमदयालु है ऐसे जानकर परलोक के भयसे निडर होजाते हैं ताते इस प्रकार के उपदेश करनेहारे भी जीवों के धर्म को भ्रष्ट करते हैं क्योंकि यह ऐसे मूर्ख हैं जैसे कोई अजान वैद्य सन्निपाती को शरद ओषधि देवे तब वह रोगी शीघ्रही मृत्यु होताहै तैसेही भगवत् की कृपा और दया का जो उपदेश है सो यह भी दो प्रकार के मनुष्यों को कल्याण करता है प्रथम वह जो अधिक पापों करके निराश हुआ होवे और निराशता के भयकरके पापों का त्याग न करे तब वह भी भगवत् की दया के वचन सुनकर निराशता से रहित होता है और पापों के त्यागने की श्रद्धा रखताहै और दूसरा मनुष्य इस वचन का अधिकारी वह है जिसके ऊपर भय की अधिक प्रबलता होवे और ऐसी कठिन तपस्या को अङ्गीकार करे जो भूख और जागरण करके आपको नष्ट किया चाहे तब उसको भी भगवत् की दया का भरोसा करना विशेष है पर भोगी मनुष्यों को इस प्रकार के वचन सुनाने ऐसे हैं जैसे कोई पुरुषके कटेहुये अङ्गपर लोन लगावे तब अवश्यही पीड़ा अधिक होती है इसीकारण से कहाहै कि आत्मज्ञान के उपदेश करनेहारे परिडत और महाराज की दया सुनानेहारे विद्यावान् विषयी जीवोंको अधिक लम्पटकर डालते हैं और जीवोंका धर्म नष्ट करते हैं पर जिस उपदेश करनेहारे का वचन धर्म की मर्याद के अनुसार होवे और उसकी करतूति वचनों से विपर्यय होवे तिसके उपदेश करके भी जीवोंकी अचेतता दूर नहीं होती सो इसका दृष्टान्त यह है जैसे कोई पुरुष मिठाई का थाल आगे रखकर भोजन करताजावे और मुख से इसप्रकार कहे कि इस मिठाई विषे हलाहल विषहै ताते इस भोजन की अभिलाष न करो तब उसका वचन सुनकर लोगोंकी तृष्णा दूर नहीं होती क्योंकि प्रथम तो उसको रुचि सहित भोजन करते देखते हैं बहुरि ऐसे जानते हैं कि यह पुरुष अपनेही खाने के निमित्त हमको विषकरके सुनाताहै तैसेही तृष्णावान् परिडतके वचन सुनकर जीवोंके हृदयसे माया की प्रीति दूर नहीं होती पर जिस विद्यावान् का वचन और करतूति एक समान होवे तिसके उपदेश करके निस्सन्देह अचेतता की नींदसे जीव सचेत होते हैं ताते जब ऐसे मनुष्य का ऐश्वर्य

जगत् विषे प्रसिद्ध होवे तब सब किसी को लाभदायक होताहै तात्पर्य यह कि यह सबही मनुष्य मूढ़ताकी निद्रा विषे सोते हुये हैं और सहस्रों पुरुषों विषे कोई एकही जागताहै जो परलोक की भलाई बुराई को भलीप्रकार पहिंचाने पर यह अज्ञानतारूपी रोग ऐसा कठिनहै कि जो आप करके इसका उपाय नहीं होसक्ता क्योंकि अचेत पुरुष तो अपनी अजानताही को नहीं जानता ताते उसका उपाय कैसे करसके इसी कारण से कहा है कि अज्ञानी जीवों का उपाय ज्ञानी पुरुषों की दयाकरके होताहै जैसे बालक को प्रथम माता पिता और पाधा सचेत करते हैं तैसेही अचेत मनुष्य विद्यावानों के उपदेश करके सचेत होते हैं पर इस समय विषे जो वैराग्यवान् विद्यावान् दुर्लभ पाये जाते हैं ताते अजानतारूपी रोगने सर्व जगत् को घेरलियाहै और यद्यपि कोई मनुष्य परलोक की वार्ता मुख से कहताहै तो भी उसके हृदय विषे भय और त्रास कुछ नहीं होती सो भय से रहित कहनि करके कुछ विशेषता नहीं प्राप्त होती (अथ प्रकटकरना रूप भ्रम का और उपाय भ्रम के दूर करने का) ताते जान तू कि केते मनुष्योंने भ्रम करके और का औरही निश्चय दृढ़कियाहै इसीकारण से यथार्थ के मार्ग से दूररहे हैं और विपरीत निश्चयही उनको प्रबल हुआ है सो यद्यपि ऐसे मत और पन्थ भी अनेक हैं पर मैं पांच प्रकार के भ्रम का वर्णन करताहूं तब उनके अनुसार और भी समझे जावें सो प्रथम भ्रम का निश्चय यह है कि केते पुरुष परलोक को ही नहीं मानते और इस प्रकार कहते हैं जब यह मनुष्य मृत्यु होताहै तब मूलही से नष्ट होजाताहै जैसे पृथ्वी पर घास सूखजाती है अथवा जैसे दीपक बुझजाता है ऐसे जानकर उन्होंने धर्म और वैराग्य को डालदियाहै और सुखेन जीवने कोही प्रियतम रखते हैं बहुरि वह ऐसे जानते हैं कि आचार्योंने लोगोंकी मर्याद ठहराने के निमित्त परलोक का भय वर्णन कियाहै अथवा उन्होंने अपने मानके निमित्त जीवोंको त्रास दियाहै ताते प्रसिद्ध इस प्रकार कहते हैं कि नरकों का भय मनुष्यों से ऐसे कहाहै जैसे माता पिता बालक को डरदेवें कि जब तू विद्या न पढ़ेगा तब तुझको मूसाके बिलमें डालदेवेंगे पर जब भाग्यहीन इसही दृष्टान्त को विचारके देखें तौभी विशेष है कि जब वह बालक विद्या से रहित होकर मूर्ख होवेगा तब वह मूर्खता मूसेके बिलसे भी बुरी है तैसेही बुद्धिमानों से इस प्रकार समझाहै कि भगवत्के वियोग का दुःख नरकों से भी अधिक दुःखरूपहै सो भगवत् का वियोग

वासना के सम्बन्ध करके होताहै ताते यह स्थूलभोग जो बहुत मनुष्यों के चित्त विषे दृढ़ होगये हैं इस कारण करके यद्यपि प्रसिद्ध में परलोक का नतकार नहीं करते तौभी उनकी करतूतों विषे परलोक का न मानना प्रकट दृष्ट आता है क्योंकि व्यवहार के कार्यों विषे आगेही उद्यम उठाते हैं और बड़े दुःखों को खींचते हैं पर जब उनके हृदय विषे परलोक की प्रतीति दृढ़ होती तब वासना के आधीन होकर पापों विषे न विचरते सो परलोक के लखानेहारे मार्ग भी तीन कहे हैं प्रथम तो उत्तम मार्ग यह है कि जो महापुरुष अपने अनुभव की दृष्टि करके नरक स्वर्ग और धर्मी पापी की अवस्था को प्रत्यक्ष देखते हैं और यद्यपि वह सन्तजन इन्द्रियादिक व्यवहार विषे विचरते हैं तौभी उनको हृदय की एकत्रता करके इन्द्रिय अगोचर पदार्थ प्रत्यक्ष दृष्ट आते हैं क्योंकि वह सन्तजन विषयों की खैंचसे सम्पूर्ण मुक्त हुये हैं और इतर जीवोंको इन्द्रियादिक भोगोंने परलोक की अवस्था देखने विषे पटल डाला है सो इन्द्रियादिक भोगों से सर्वथा मुक्त रहना महाकठिन है पर जिनको परलोकही की वार्तापर प्रतीति नहीं वह ऐसी उत्तम अवस्थापर प्रतीति और प्रीति क्योंकर करें १ बहुरि दूसरा मार्ग परलोक के जानने का यह है कि युक्ति सहित मनुष्य का यथार्थ स्वरूप पहिंचाने और ऐसे जाने कि यह जीवात्मा क्या वस्तु है? तब इस प्रकार समझावे कि यह चैतन्यरूप अविनाशी है और शरीर इसका घोड़ा है ताते शरीर के नाश होने करके जीव का नाश नहीं होता सो यह मार्ग भी अति दुर्लभ है और कठिन है पर यह मार्ग भी यथार्थ विद्याकी प्रतीति करके प्राप्त होता है २ बहुरि तीसरा मार्ग यह है कि सन्तजनों और विद्यावानों की संगति करके भी इस बूझ का प्रकाश प्राप्त होता है सो यह सर्व जीवों का अधिकार है पर जो पुरुष पूर्ण सद्गुरु और वैराग्यसंयुक्त विद्यावानों की संगति से दूर हुआ है तब वह भी निस्सन्देह मन्दभागी रहता है और सन्तसंगति करके जो परलोक की बूझ प्राप्त होती है सो इसका दृष्टान्त यह है जैसे बालक अपने माता पिताको प्रकट देखे कि जब अचानकही सर्पको देखते हैं तब भयवान् होकर भागजाते हैं सो केतेबार ऐसे देखने करके वह बालक भी सर्प से डरने लगता है और यद्यपि बूझकरके सर्प के विष को नहीं जानता तौ भी स्वाभाविकही सर्प को देखकर भाग जाता है ताते सन्तजनों का देखना ऐसा है जैसे कोई पुरुष देखे

कि अमुक पुरुष को सर्प ने डसाथा ताते वह शीघ्रही मृतक होगया सो यह परम निश्चय है बहुरि विद्यावानों का देखना ऐसे है जैसे कोई पुरुष वैद्यक की युक्ति करके सर्प के विष का स्वभाव पहिंचाने और मनुष्य के शरीर की कोमलताई को भी भली प्रकार समझे कि इसके शरीर विषे इसप्रकार सर्प का विष प्रवेश करजाता है तब इसकरके भी सर्प के डसने का दुःख प्रत्यक्ष जानाजाता है सो यह मध्यम निश्चय कहाता है बहुरि सन्तजनों की संगति विषे जो परलोक का भय उत्पन्न होता है सो यह माता पिता की संगति के समान है जो देखने करके बालक को सर्प से डर उपजता है और यह सर्व जीवों का उत्तम अधिकार है पर यह कनिष्ठ निश्चय है २ । १ बहुरि दूसरे आमिकबुद्धि ऐसे होते हैं कि यद्यपि परलोक की प्रतीति से केवल रहित नहीं होते और प्रसिद्ध नतकार भी नहीं करते पर इसप्रकार कहते हैं कि परलोक की वार्ता को भली प्रकार समझा नहीं जाता ताते इस संसार के सुख प्रकट हैं और परलोक का दुःख सुख संशय विषे है सो प्रकट सुख को संशय के दुःख निमित्त त्यागा नहीं जाता पर यह उनका वचन केवल मनही का मतहै और अन्त को भूल है क्योंकि प्रतीतिमानों की दृष्टि विषे परलोक अति प्रकट है और इस संसार के सुख कुछ वस्तुही नहीं ताते उनको इस प्रकार समझना प्रमाण है कि केते कार्यों विषे संशय करके भी सुखका त्यागना विशेष होता है और दुःख को अङ्गीकार करते हैं जैसे अरोगता का सुख संशय विषे होता है पर उस सुख की आशा करके प्रकटही कटु औषधियों को खाते हैं अथवा जैसे धन का लाभ संशय विषे होताहै पर केते पुरुष लाभ की आशा के निमित्त समुद्रों और परदेशों विषे फिरते हैं और दीर्घ दुःखों को खैंचते हैं अथवा जब तुझको अधिक प्यास होवे और कोई पुरुष ऐसे कहे कि इस जल विषे सर्पने मुख डालदिया है तब जल का स्वाद तो प्रत्यक्ष है और सर्पका विष संशय विषे होताहै ताते तू उस जलको किस निमित्त त्याग देताहै सो इसका प्रयोजन यहहै कि यद्यपि जल का स्वाद प्रकटहै पर उसका त्यागना तुच्छमात्र है और यद्यपि सर्प का विष संशय विषेहै तौभी उसका दुःख अतिदीर्घ है इसी कारणसे संशय करके भी प्रकट पदार्थ का त्यागना सुगम होता है तैसेही इस संसार के सुख कुछ दिनके हैं और जब बीत जाते हैं तब स्वप्नवत् भासते हैं और परलोक का सुख दुःख अविनाशी है ताते

सदैवके दुःखसे डरकर स्थूलसुखों का त्यागना विशेषहै बहुरि जो तेरी बुद्ध्यनुसार परलोक का सुख दुःख झूठ भासताहै तौभी तुझको इस प्रकार समझना चाहिये जैसे तू आदि अन्त इससंसार विषे न था और न होवेगा तैसे मध्यकाल विषे भी आपको न हुआ जान और परलोक का दुःख जब तू यथार्थ जानताहै तब तो वैराग्यकरके ऐसे परमदुःख से निस्सन्देह मुक्त होवेगा २बहुरि तीसरे भ्रामिकबुद्धि ऐसे हैं कि वह यद्यपि परलोक को सत्य जानते हैं तौभी इस प्रकार कहते हैं कि संसार का सुख नक़द हैं अबहीं और परलोक का सुख दुःख उधार की नाईं है ताते नक़द पदार्थ उधारसे विशेष होताहै पर यह मूर्ख इतना नहीं जानते कि उधारसे नक़द की विशेषता तबही होती है जब दोनों की मर्याद एक समान होवे और जब समान न होवे तब वह उधारही भला होता है क्योंकि व्यवहार का देना लेना इसही समझ करके सिद्ध होता है पर जो पुरुष इसवार्ता को भी न समझ सकै तब वह केवल भ्रामिकबुद्धि कहाता है ३ बहुरि चौथे भ्रामिकबुद्धि ऐसे होते हैं जो परलोक के सुख दुःखको यथार्थ मानते हैं पर स्थूल सुखों की संपदा को पाकर अधिक प्रसन्न होते हैं ताते अपने चित्तविषे इस प्रकार अनुमान करलेते हैं कि जैसे भगवत् ने हमको यहां अपनी कृपाकरके उत्तम सुख दिया है सो परलोक विषे भी ताड़ना न करेगा क्योंकि वह महाराज परम दयालु है और उसने हमको अधिक प्यारा जानाहै ऐसे जानकर ढीठ और निडर होजाते हैं ताते उनको इस प्रकार समझाया चाहियेहै कि जैसे किसी पुरुषको पुत्र अति प्रियतम होवे और एक उसका दास होवे और वह पुरुष अपने पुत्रको सर्वदा पाठशाकी ताड़ना विषे रखता होवे और टहलुवे को कुछ कहैही नहीं बहुरि वह टहलुवा ऐसे अनुमान करे कि मुझको स्वामी पुत्र से भी अधिक प्यारा जानता है इस करके कि मुझको कुछ कहताही नहीं और पुत्र को सदैव ताड़ना विषे रखता है सो ऐसे उसका जानना मूर्खता है क्योंकि पुत्रको प्रीतिसंयुक्त शुभगुण सिखाया चाहता है और टहलुवेकी ओर चित्तही नहीं देता तैसेही भगवत् भी अपने प्रियतमों को माया के भोगों से विरक्त रखताहै और मनमुखों को अधिक भोग भोगाता है ताते भ्रामिकबुद्धि जो वैराग्यादिक साधनों से आलसी होता है सो ऐसा है जैसे कोई पुरुष बीजही न बोवे तब उसकी खेती क्योंकर सफल होवेगी तैसेही जो पुरुष इन्द्रियादिक भोगों का त्याग न करे तब परमानन्द को

कैसे प्राप्त होवेगा ४ बहुरि पांचवें अामिकबुद्धि ऐसे कहते हैं कि भगवत् सर्व जीवों पर परम दयालु है और उस विषे कृपणता का अंशही पाया नहीं जाता ताते अपने सुख को कब दुराय रखता है और हमारे कर्मों की ओर कब देखता है पर यह मूर्ख ऐसे नहीं जानते कि यह मनुष्य पृथ्वी विषे एकदाना बोवता है और उससे सहस्रदाने उत्पन्न होते हैं सो जिस महाराज ने ऐसे संयोग तुझको बनादिये हैं तब इससे अधिक कृपा क्या है? तैसेही कुछदिन साधन करके इसजीव को अविनाशी पद की प्राप्ति होती है सो यही भगवत् की परम कृपा है और जब कृपा का अर्थ यह है कि बोये विनाही खेती वृद्धि होजावे तब नाना प्रकारके उद्यम और व्यवहार किस निमित्त करता है ताते चाहिये कि तू केवल निरुद्यमहो बैठे क्योंकि महाराज तो परम कृपालु है तेरे उद्यम विनाही तुझको लाभ देवेगा और महाराज ने तो ऐसे भी कहा है कि सर्वजीवों का प्रतिपालक मैं हूं सो जब यह प्रतीति तेरे हृदयविषे दृढ़ नहीं तब शुभकर्मों विषे क्यों आलस्य करता है क्योंकि साधन विना सिद्धि की चाहना ऐसे है जैसे कोई गृहस्थ विना संतान की उत्पत्ति चाहे सो यह बड़ी मूर्खता है और भगवत् को कृपालु जानने का अर्थ यह है कि प्रथम विधिसंयुक्त उद्यम करे बहुरि विघ्नों की रक्षा के निमित्त भगवत् का भरोसा करे तब उसको बुद्धिमान् कहते हैं और जो पुरुष भगवत् पर प्रतीतिही न करे अथवा शुभकर्मों विषे दृढ़ न होवे तब वह निस्सन्देह अामिकबुद्धि है पर केते मनुष्य माया के पदार्थों को देखकर अामिकचित्त हुयेहैं व केते पुरुषों ने भगवत् की कृपाके अर्थ को भ्रम करके उलटा पहिंचाना है सो महाराज ने दोनों प्रकार के भ्रम से वर्जितकिया है और इस प्रकार आज्ञाकरी है कि जब कोई शुभ करतूति करेगा सो उत्तमफल को प्राप्त होवेगा और जो पुरुष अशुभकर्म करेगा सो बुरेही फलको पावेगा ताते सुचेत होकर इस वार्ता को श्रवणकरो और किसी पदार्थ को देखकर अामिकबुद्धि न होवो और मेरी दया के आश्रय अशुभ कर्म न करो (अथ प्रकट करना रूप छलों का और उपाय छलों से रहित होने का) ताते जान तू कि बहुत पुरुष कर्मों की शुद्धता और अशुद्धता को भली प्रकार नहीं पहिंचानते इसी कारण से अपने कर्म को निर्विघ्न जानकर हर्षवान् होते हैं और विघ्नों से निर्भय रहते हैं सो तिसको छलाहुआ कहाजाता है क्योंकि उनको विवेकरूपी सराफी प्राप्त नहीं

हुई ताते कर्मों की स्थूलता पर छलेगये हैं बहुरि यह छल भी ऐसे अमित हैं कि कोई एक पुरुष सहस्रों विषे निर्विघ्न रहता है सो ऐसे पन्थों और मतों की मिति भी गिनती विषे नहीं आती पर तौभी सबही लोग चारप्रकार के होते हैं विद्यावान् १ तपस्वी २ अतीतजन ३ धनवान् ४ सो प्रथम तो विद्यावान् इस प्रकार छलेहुये हैं कि वह अपनी सर्व आयुष् विद्या के पढ़ने विषेही बितावते हैं और सब इन्द्रियों को पापों से रोक नहीं सके और अपने चित्तविषे ऐसा अनुमान करतेहैं कि हम इस विद्याही करके परलोक के दुःखों से मुक्त होवेंगे और हमारी प्रसन्नता पायकर और लोग भी दुःख से छूटेंगे सो इनका दृष्टान्त यह है जैसे कोई पुरुष रोगी रात्रि दिन वैद्यक का अभ्यास करे रोगों और औषधियों को भली प्रकार विचार करके लिखलेवे पर ओषधियों को कड़वी जानकर अङ्गीकार न करे तब ओषधियों के लिखलेने और विचार करने करके उसका रोग कब दूर होता है इसीपर महाराज ने कहा है कि अपने मनको वासनासे वर्जित करो ताते परमसुखको सोई पाता है जो मन और इन्द्रियों को विकारों से शुद्धकरे पर ऐसे तो नहीं कहा कि विकारों से शुद्धहोने की विद्या पढ़नेवाले सुखी होवेंगे सो जब वह पुरुष विद्यावानों की विशेषता सुनकर प्रसन्न होताहै तब करतूतिहीन विद्यावानों की नीचता को क्यों नहीं विचारता जैसे महाराज ने वैराग्य रहित परिडतों को गर्दभ की भाँति कहा है इस करके कि यद्यपि पुस्तकों का भार अपनी पीठपर लिये फिरता है पर उनके तात्पर्य से अचेत है और योंभी कहाहै कि करतूतिहीन विद्यावान् निस्संदेह नरकोंकी अग्नि विषे जलेंगे बहुरि इस प्रकार कहेंगे कि हमने लोगों को धर्म का उपदेश कियाहै और आप उन कर्मों से विमुख रहेहैं ताते इसी नीचगति को प्राप्तहुये हैं इसीपर एक सन्त ने कहा है कि अजान पुरुष को परलोक विषे एकगुणा पश्चात्ताप होगा और करतूतिहीन विद्यावानों को उनसे दशगुणा पश्चात्ताप होवेगा क्योंकि यह तो जानबूझकर विमुख हुयेहैं बहुरि एक और विद्यावान् ऐसे होतेहैं कि यद्यपि स्थूल नियम धर्म विधिसंयुक्त करते हैं पर अपने हृदय से मलिन स्वभावों को दूर नहीं करते और सर्वदा दम्भ ईर्षा मानकी अभिलाष विषे आसक्त हैं सो ऐसे वचनों को नहीं विचारते कि जैसे कहा है कि जिसके अन्तर रञ्चकमात्र दम्भ और अभिमान होता है वह परमसुख को कदाचित् नहीं प्राप्तहोता और ईर्षा

रूपी अग्नि इस जीवके धर्म को घास की नाईं जलादेती है और महाराज ने इस प्रकार भी कहाहै कि मैं सदैव तुम्हारे हृदय की ओर देखताहूं और स्थूल करतूतों की ओर नहीं देखता ताते ऐसे विद्यावानों का दृष्टान्त यहहै जैसे कोई पुरुष कांटों के वृक्षको मूलही से नष्ट न करे और उसके पत्रों को तोड़तारहे तब वह कांटे कभी दूर नहीं होते तैसेही मलिन कर्मों का बीज बुरे स्वभाव हैं ताते इनको हृदय से निर्मूल किया चाहिये और जिसका अन्तर अशुद्ध होवे और बाहर से आप को शुद्धकर दिखावे तब वह ऐसे होता है जैसे कोई पुरुष मन्दिर के ऊपर दीपक जगायराखे और भीतर उस घरके अँधेरा रहे बहुरि एक और विद्यावान् ऐसे होते हैं कि यद्यपि उन्होंने हृदय की शुद्धता को भली प्रकार समझा है पर अभिमानके छलकरके आपको पापों से रहित जानतेहैं अथवा इस प्रकार अनुमान कर लेते हैं कि हमारा मान महद्धर्म की दृढ़ता का कारण है क्योंकि हमारी बड़ाई देखकर धर्महीन मनुष्य लज्जावान् होते हैं और प्रीति-मानों की रुचि धर्म विषे होतीहै ताते अपने रजोगुणी स्वभाव को राजसी नहीं जानते पर यह मूर्ख ऐसे विपरीतबुद्धि हैं कि इन्होंने सन्तजनोंके वैराग्य और संयम को विस्मरण किया है और इतना नहीं समझते कि उनके वैराग्य करके धर्म की वृद्धि होती थी ऐसेही ईर्षा और दम्भ को भी इसप्रकार समझते हैं कि हमारे दम्भ करके सात्त्विकी कर्मोंविषे जीवों की रुचि अधिक होतीहै बहुरि जब राजसभाविषे जाते हैं तब ऐसे जानते हैं कि हमारी संगति करके इनका भला होता है पर जब यथार्थ विचार करके देखें तब ऐसे जानें कि माया से विरक्त होनाही धर्मकी वृद्धिता है सो जिसके राजसीस्वभाव को देखकर और जीवों का चित्त चपल होवे तब जानिये कि ऐसे पुरुष का न होनाही धर्म की वृद्धिता है और इनकी संगति करके उलटी धर्म की हानि होती है इसीकारणसे ऐसे जानने हारे विद्यावान् सबी छलेहुये होते हैं बहुरि एक ऐसे विद्यावान् हैं जो निवृत्ति विद्याही से अप्राप्तरहे हैं जिस विद्याविषे वैराग्य और निष्कामता का और भगवत् का पहिचानना और अपना पहिचानना और धर्ममार्ग के विघ्नोंका पहिचानना वर्णन होताहै सो तिसको पढ़तेही नहीं और अपनी सर्वआयुष् पन्थों के विवाद और चतुराई की विद्या विषे व्यर्थ खोते हैं और इतना नहीं जानते कि विद्याका तात्पर्य यह है कि मायासे विरक्त होना और तृष्णा को त्यागकर

संतोष करना और दम्भ को छोड़कर निष्काम होना बहुरि अचेतता को दूर करके भय और वैराग्य बिषे स्थित होना पर जो पुरुष ऐसे वचनोंको नहीं विचारते और चतुराई के सम्मुख हुये हैं सो सबही महामूर्ख हैं बहुरि केते विद्यावान् धर्मशास्त्र और राजनीति के व्यवहार को पढ़ते रहते हैं और इतना नहीं समझते कि यह विद्या तो जगत की मर्याद ठहरावनेहारी है और परलोक मार्ग की विद्या ही भिन्न है क्योंकि जितने कर्म शास्त्रकी मर्याद अनुसार जगत् बिषे निर्दोष हैं सो सन्तजनों के मत बिषे पाप हैं बहुरि यह प्रवृत्ति पण्डित जो पाप पुण्य का बखान करनेहारे हैं सो यह कर्मों की स्थूलता को देखतेहैं और सन्तजन हृदय की ओर देखते हैं जैसे कोई पुरुष किसीसे कुछ मांगलेवे तब जगत् बिषे इसको पाप नहीं कहते पर जब विचार करके देखिये तब यह मांगलेनाभी ऐसे होता है जैसे कोई अनीति करके किसीको लाठीमारे और धन हरलेवे तैसे ही मांगना भी लज्जारूपी लाठी के मारने की नाईं है इसी प्रकार स्थूलविद्या पढ़नेहारे पुरुष ऐसे सूक्ष्मभेदों को कब समझसक्केहैं ताते इनका सम्पूर्ण कहना अधिक विस्तार होता है बहुरि तपस्वी इस प्रकार छले हुये हैं कि वह शरीरकी शुद्धता के निमित्त भजन से बिमुख रहते हैं और जब किसी को स्थूल शुद्धता से हीन देखते हैं तब ग्लानि करके कठोर वचन कहते हैं और अशुद्धजीविका को नहीं त्यागसक्के सो यहभी महा मूर्खता है और यद्यपि आप को पवित्र कर दिखावते हैं तो भी सन्तजनों के मत बिषे महाभ्रष्ट हैं इसीपर उमरसन्त ने कहा है कि मैंने केतिकबार अशुद्ध आहार के भय करके शुद्ध जीविका को भी त्याग किया है तात्पर्य यह कि सन्तजनों ने जीविका की शुद्धता बिषे अधिक यत्नकिया है और स्नानादिक क्रिया बिषे आसक्त नहीं हुये सो इन मूर्खों ने उनके आचार को विस्मरण किया है और शरीर ही की शुचिता बिषे बन्धवान् हुये हैं ताते जो पुरुष अपनी जीविका शुद्ध न करे और स्थूल पवित्रता बिषे डूबा है तब निस्संदेह उसको झूंठा जानिये बहुरि एक और तपस्वी ऐसे पाठक होते हैं कि उनके चित्तकी वृत्ति सर्वथा अक्षरों के बिषे आसक्त रहती है और लगमात्रों कोही सुधारते रहते हैं पर इस वार्ता को नहीं जानते कि वचनों के पाठ बिषे और उनके अर्थों में चित्तको एकत्र किया चाहिये है बहुरि एक ऐसे पाठक होते हैं कि उनकी मनसा अधिक पाठकरने की होती है और अर्थ से

अचेत रहते हैं सो ऐसे नहीं समझते कि पढ़ने का तात्पर्य भले बुरे की पहिचान है ताते चाहिये कि भय के वचनों बिषे भयवान् होजावें और महाराज की दया के वचनों बिषे आशावन्तहोवें और उसकी बड़ाई के बखान बिषे अधीन चित्त होजावें तब इसका पाठकरना सफल होता है पर यह मूर्ख रसना के हलावनेही को पुरुषार्थ जानते हैं सो अर्थ की पहिचान बिना ऐसे पाठ बिषे लाभ कुछ नहीं होता जैसे कोई पुरुष अपने स्वामी की पत्री को वारंवार पढ़ता रहे और उस बिषे जो कार्य लिखा होवे सो कुछ न करे तब निस्सन्देह दण्ड का अधिकारी होता है बहुरि केते मनुष्य व्रत और तीर्थों के अटन बिषे अधिक पुरुषार्थ करते हैं और इन्द्रियों को पापकर्मों से वर्जित नहीं करते और वह सर्वदा आपको पुजावने की मनसा रखते हैं बहुरि एक ऐसे तपस्वी होते हैं जो खान पान और वस्त्रादिकों का संयम करते हैं पर मानके रसका त्याग नहीं करसके और लोगों के मिलाप बिषे प्रसन्नहोते हैं सो इस भेद को नहीं पहिचानते कि मनका विघ्न सर्व भोगों से अधिक दुःखदायक होता है पर मानी मनुष्य तो अपनी बड़ाई के निमित्त सर्वदा अधिक यत्न करते हैं और यद्यपि स्थूल नियम धर्म बिषे अधिक सावधान हैं पर हृदय की शुद्धता को पहिचानतेही नहीं ताते अभिमान और ईर्षा और दम्भ बिषे आसक्त रहते हैं और महाराज के जीवों को कठोर वचन कहते हैं और क्रोध से युक्त भृकुटी चढ़ी रखते हैं सो इतना नहीं समझते कि कठोर स्वभावकरके शीघ्रही शुभकर्मों का नाश होजाता है और सर्वतपों का फल कोमलताई है पर यह भाग्यहीन तो अपने जप तपका उपकार लोगों पर रखते हैं और ग्लानि करके आपको लोगों से सकुचाय रखते हैं पर जब यह पुरुष महापुरुष के वैराग्य और कोमलताई को भलीप्रकार पहिचानैं तब इनका अभिमान निवृत्त होजावे सो वह तो कुचील पुरुष से भी ग्लानि नहीं करते थे और सर्व जीवोंपर दया की दृष्टि से देखते थे सो उनके स्वभाव से विपर्यय होनाही भाग्यकी हीनता है और सर्व छलों का रूप है बहुरि अतीत जनों को इस प्रकार छलाहुआ कहा है कि सब लोगों से इनमें अधिक अभिमान होता है क्योंकि जितनीही किसी पदार्थ की विशेषता होती है तब उसका पहिचानना भी उतनाही कठिन होता है और जो पुरुष उसकी पहिचान से अचेत है वह निस्संदेह छलाजाता है ताते यथार्थ के मार्गबिषे उत्तम अतीत

उसीको कहते हैं जिसमें तीन लक्षण पायेजावें सो प्रथम लक्षण यह है कि जिसने अपने मन को जीता है बहुरि मन और भोगों के रससे विरस हुआ है और विचार की मर्याद बिना किसी स्वभाव की प्रबलता नहीं फुरती जैसे कोई राजा अपने शत्रुको जीतकर वशीकार करलेवे तब उस गढ़की प्रजा और सेना भी उसी राजा के अधीन होजाती है बहुरि दूसरा लक्षण यह है कि जिसके मनसे लोक परलोक की चितवनी दूर होजावे अर्थ यह कि इन्द्रिय और संकल्प के देशसे उल्लङ्घित होकर परमपद विषे स्थित होवे क्योंकि जितने पदार्थ इन्द्रिय और संकल्प करके सिद्ध होते हैं सो तिनमें पशुभी इनके समान हैं और यह स्थूलपदार्थ इन्द्रियों के भोगों का नाम है सो स्वर्ग विषे भी यही स्थूल भोग पाये जाते हैं इस करके कि स्वर्ग भी इन्द्रियों और संकल्प का देश है ताते उत्तम अतीत वही है जिसके चित्तविषे इन्द्रियों और संकल्प के ग्राह्य पदार्थों की सत्ता न रहे जैसे अमृतपान करनेहारे को घास का स्वादु कुछ नहीं भासता पर जैसे घास के अधिकारी पशु हैं तैसेही स्वर्ग के भी अधिकारी मूर्ख हैं २ बहुरि तीसरा लक्षण यह है कि जिसका चित्त महाराजही के शुद्धस्वरूप विषे लीन होवे अर्थ यह कि दिशा और स्थान और अहंकार की फुरना कुछ न रहे जैसे नेत्र राग और शब्द से अचेत होते हैं तैसेही उसको सर्व पदार्थ विस्मरण होजावें ३ सो जिस विषे यह तीनलक्षण सम्पूर्ण पायेजावें तब जानिये कि उस को अतीतजनों का पद प्राप्त हुआ है और उसकी अवस्था वचन से अगोचर होती है पर जिज्ञासु के समझावने के निमित्त सन्तजनों ने इस अवस्था को जीव और ब्रह्म की एकता कहा है बहुरि जिस मनुष्य की बुद्धि दृढ़ नहीं होती वह इस भेद को समझ नहीं सक्ता क्योंकि जब ऐसे पदको वचन करके सिद्ध किया चाहे तब शास्त्रों और लोककी मर्याद नहीं रहती ताते इस आनन्द को अनुभव करके पायसक्ता है सो उत्तम अतीतजनों की अवस्था यही है पर अब तू वेष-धारियों के छलों को पहिचानकरके देख कि केते पुरुष गुदड़ी और आसन को वेष बनायलेते हैं और वचन भी सन्तजनों की नाई सूक्ष्मही कहते हैं बहुरि आप को स्थिर चित्तकर दिखावते हैं जैसे दृढ़ आसन करके शीश को नीचाकर बैठते हैं और किसी संकल्पके वेग विषे शीश को हलावने लगते हैं और अपने चित्त विषे ऐसा अनुमान करलेते हैं कि हमने पावने योग्य पदार्थ को पाय लिया है

सो इनका दृष्टान्त यह है जैसे वृद्ध स्त्री सिपाहीकी नाईं वस्त्र पहरलेवे और वीर विद्याको जानतीही नहीं कि शूरमा किस प्रकार परस्पर पुकारकर शस्त्र प्रहार करते हैं तब वह स्त्री संग्राम के समय अवश्यंही लज्जावान होती है और राजा उसके कपट को पहिचानकर अधिक ताड़ना करता है क्योंकि इसकी नाईं और कोई कपट न करे तैसेही भगवत् भी वेषधारियों के कपट को उघार देताहै और अधिक ताड़ना करताहै बहुरि केते मनुष्य ऐसे नीच होतेहैं जो स्थूल वेष और संयम भी नहीं करसक्ते ताते महीन वस्त्र फाड़कर गुदड़ी बनावते हैं और ऐसे जानते हैं कि रंगीन वस्त्रों का पहरनाही वैराग्य है पर इतना भेद नहीं समझ सकते कि प्रथम अतीतजनों ने रंगीन वस्त्रों की मर्याद इस निमित्त राखी है कि जो वारम्बार धोवने का खेद न होवे अथवा उन्होंने भगवत्‌के विरह करके श्याम वस्त्र पहर लिये हैं और शोकवानों के आचार को ग्रहण किया है पर यह मूर्ख तो महाराज के विरह और शोक से अप्राप्त हैं ताते इनको रंगीन वस्त्रों करके क्या लाभ होवेगा ? इसकरके कि ऐसे असंग्रही भी तो नहीं जो पुरातन वस्त्रों को सीवते २ गुदड़ी होजावे इसीकारण से नवीन वस्त्र फाड़ते हैं और उसकी गुदड़ी बनाकर पहरते हैं बहुरि एक और पुरुष ऐसे मन्दबुद्धि हैं कि उनके विषे पापों के त्यागने की समर्थता भी नहीं और भजन स्मरण विषेभी आलसी हैं बहुरि अभिमान करके आपको दीन भी नहीं मानते ताते भोगोंकी वृद्धता करके इसप्रकार कहते हैं कि उत्तम करतूति हृदय की एकाग्रता है और स्थूल कर्मों की विशेषता कुछ नहीं सो हमारा चित्त सर्वदा भजनविषे लीन रहता है इसी कारण से हमको स्थूलकर्मोंकी अपेक्षा कुछ नहीं और सन्तजनों ने जो स्थूल कर्मोंकी विशेषता कही है सो विषयी जीवों का अधिकार है और हमारा मन तो विषय वासना से मृतकहुआ है ताते हमको पापका प्रवेश कुछ नहीं होता बहुरि जब तपस्वीजनों को देखते हैं तब इस प्रकार कहते हैं कि यह तो व्यर्थ कष्ट खींचनेहारे और विद्यावानों को देखकर कहते हैं कि यह भी प्रश्नोत्तर विषे बँधेहुये हैं और यथार्थ बूझसे अप्राप्तहैं पर इस प्रकार कहनेहारे पुरुष निस्सन्देह राजदण्ड के अधिकारी हैं काहेसे कि ऐसे मूर्ख उपदेश करके कदाचित नहीं समझते बहुरि एक और पुरुष ऐसे होतेहैं जो विषयों से विरक्त होकर विधिसंयुक्त साधन करते हैं और चित्तकी वृत्ति को सकुचायकर भजन विषे स्थित होते हैं

तब अन्तर्मुख के अभ्यास से उनकी ऐसी अवस्था होती है कि भविष्य वार्ता को प्रत्यक्ष देखते हैं और उनको देवतों और ईश्वरों के आकार प्रकट भासते हैं सो यद्यपि यह अवस्था सांच होती है पर स्वप्नकी नाईं अकस्मात् दूरभी होजाती है और वह पुरुष इतनी शक्ति पायकर ऐसे अभिमानी होते हैं कि हमको चौदहों लोक की खबर प्राप्तहुई है और इस प्रकार जानते हैं कि उत्तम अवस्था सन्तजनों की यही है पर जब यथार्थ दृष्टिकर देखिये तब उन्होंने भगवत के आश्चर्य भेदों का एक बाल भी नहीं देखा और अभिमान करके तुच्छ ऐश्वर्य को पायकर अधिक प्रसन्न होते हैं और अपनी बड़ाई को प्रसिद्ध किया चाहते हैं बहुरि मान और बड़ाई के सम्बन्ध करके उनके मनकी वृत्ति पसरने लगती है और वह जानतेही नहीं सो यह छल अतिदीर्घ है और इसका पहिंचानना भी कठिन है ताते जिज्ञासु को चाहिये कि किसी शक्ति और सिद्धतापर प्रतीति न करे और अपने मनकी वासना के विपर्यय करने विषे सावधान होवे बहुरि जब मनके स्वभाव उलटकर विचारके अधीन होजावें किसी स्वभाव की वृद्धिमानी न रहे तब इसको उत्तम अवस्था जाने इसीपर एक सन्त ने कहाहै कि जलोंपर चलना और आकाश विषे उड़ना और आगम की खबर देनी भी सिद्धता कुछ नहीं और उत्तम सिद्धता यह है कि इस जीवका मन सन्तजनों की आज्ञानुसार होजावे अर्थ यह कि जब विचार की मर्याद विना किसी स्वभाव विषे आसक्त न होवे तब इस अवस्था पर प्रतीति करनी योग्य है और सबही ऐश्वर्य छलरूप हैं क्योंकि केते असुरों को भी तप करके आगम की खबरहुई है और उन्होंने नाना प्रकार की शक्ति को पाया है पर उनके मन की मलिनता दूर नहीं हुई ताते प्रतीति योग्य अवस्था यह है कि इस जीवके मनकी वासना सर्वथा दूर होजावे और विचार की मर्यादा आनि स्थित होवे इसीकारण से कहा है कि जब तू सिंहोंपर सवार न होसके तौभी संशय कुछ नहीं पर क्रोधरूपी कूकुर को जो अधीन करे तौ विशेष है और जब तैंने अपने अवगुणों को पहिंचाना तब इसको आगम की खबर से भी विशेष जान ऐसेही जब तू इन्द्रियों और संकल्प के देश से उल्लङ्घित होवे तब जलों पर चलने और आकाश विषे उड़नेसे भी इस अवस्था को विशेष जान बहुरि जब तू सिद्धि करके एक रात्रिविषे सहस्र योजनों का पन्थ न काटसके तौ भी संशय न कर क्योंकि जब तू संसार के भोगों और जंजालों

से उल्लङ्घित हुआ तब तैंने सहस्रयोजनों के पन्थ को पीछे डालाहै और जब तू एक चरण साथ पर्वत पर चढ़ न सके तो भी शोकवान् न होहु इस करके कि जब तैंने पापसे उत्पन्न हुये पैसेका त्याग किया तब पहाड़के लङ्घने से विशेष है पर इस प्रकार के छलों का बखान सम्पूर्ण करना अधिक विस्तारकर होता है ताते धनवान् भी अनेक प्रकार छलेहुयेहैं क्योंकि केते पुरुष धनको प्रथम पापों करके उपजावते हैं बहुरि उसही धन करके कूप और ताल और पुल बनाते हैं और इसी कर्म को अपना पुरुषार्थ जानते हैं सो उत्तम वार्ता यहहै कि जिस मनुष्य का धन पाप अथवा छल साथ लीजिये तब वह धन तिसही को फेरदेना विशेष है पर यह अभिमानी पुरुष अपने मान के निमित्त ऐसे नहीं करते ताते छलेहुये कहेजाते हैं बहुरि एक और धनवान् ऐसे होते हैं जो शुद्ध व्यवहार करके धनको उपजावते हैं और उस करके नाना प्रकारके धर्मस्थान बनवाते हैं पर उनके चित्त विषे मान और दम्भका ही प्रयोजन होता है ताते स्थानों के द्वारपर अपना नाम लिखते हैं और जब कोई उन से कहे कि भगवत् अन्तर्यामी है तुम अपना नाम क्यों लिखावते हो तब इसका त्याग नहीं करते सो यह प्रसिद्धही लक्षण दम्भकाहै क्योंकि अर्थी को एक पैसाभी नहीं देसक्के और मान के निमित्त कितने सहस्र रुपया खर्चते हैं इस करके कि अर्थी का माथा पृथ्वी के घरकी नाईं नहीं तजा उसके ऊपर अपना नाम लिख राखें बहुरि एक और धनवान् ऐसे होते हैं जो दम्भ और मान के प्रयोजन विनाही धर्मस्थान बनावते हैं पर उनमें नाना प्रकार की चित्रकारी रचते हैं सो यह भी बड़ी मूर्खताहै क्योंकि जब भजन के स्थानविषे अधिक चित्रकारी होती है तब प्रथम तो उस को देखकर लोगों के चित्त बहुत विक्षेपता को प्राप्त होते हैं बहुरि और लोगभी देखकर चाहते हैं कि ऐसे गृह हम भी बनावें सो इस करके वह दोनों पाप प्रसिद्ध जगत् में होते हैं और चित्रकारी करावनेहारे पुरुष इस भेद को नहीं जानते इसीपर महापुरुष ने कहाहै कि भजनके स्थानों विषे चित्रकारी करना और पोथियों पर स्वर्ण लगावना बड़ी अवज्ञा है क्योंकि इस करके भजन की एकाग्रता और वचनों के अर्थ से शून्य रहजाते हैं सो भजन का मूल यह है जो इस का मन माया से विरक्त होकर स्थिर होजावे पर जिस स्थान को देखकर चित्त की चपलता अधिक होवे तब जानिये कि उसने भजन के स्थान को उजाड़

किया है और मन्दबुद्धि जीव ऐसे भेद को पहिचान नहीं सके बहुरि एक और धनवान् ऐसे होते हैं जो आपको उदार जनावनेके निमित्त यज्ञ और क्षेत्र सदाव्रत करके अतीतों को अपने द्वारपर इकट्ठा करते हैं इस करके कि नगरों विषे हमारी उदारता की बड़ाई होवेगी सो ऐसे पुरुष सर्वथा मान और दम्भ करके छलेहुये होतेहैं क्योंकि गुप्त तो भूखे को एक रोटी भी नहीं देसके और प्रसिद्ध स्थानों विषे नाना प्रकार के यज्ञ और दान करतेहैं इसीपर एक वार्ता है कि किसी ने बशीरहाफी सन्त से कहाथा कि सहस्र रुपया मेरे पास हैं पर मैं इसको तीर्थों के मार्ग विषे खर्चना चाहताहूं तब उन्होंने पूछा कि तू तीर्थों पर भगवत् की प्रसन्नता के निमित्त जाता है अथवा तमाशा देखने के निमित्त चलाहै तब उस पुरुष ने कहा कि मुझको भगवत् की प्रसन्नताही की प्रीतिहै यह सुनकर उन्होंने कहा कि तू यह धन किसी ऋणी अथवा धनहीन कुटुम्बी को देडाल तब उसके हृदय की प्रसन्नता सहस्र तीर्थों के फलसे विशेष है बहुरि उस पुरुष ने कहा कि मुझको तीर्थयात्रा की रुचि अधिक है तब उन्होंने कहा कि तेरा धन पापोंकरके उपजाहुआ जानाजाताहै ताते जबलग तू अशुभ मार्ग विषे न खर्चेगा तबलग तेरे मनको शान्ति न आवेगी बहुरि एक और धनवान् ऐसे कृपण होतेहैं कि यद्यपि दशवां अंश देकरभी अपनी स्तुति और टहलकराय लेतेहैं और इतर अर्थीको नहीं देसके सो ऐसा दान निष्फल होताहै क्योंकि उसके फलको टहल और स्तुतिकी कामना नष्ट करडालती है और दानदेनेवाला पुरुष मूर्खता करके ऐसे जानताहै कि मैंने शास्त्रकी मर्याद अनुसार दशवां अंशदिया है पर दान की युक्ति समझे विना धनको व्यर्थही खोतेहैं और झूठाही अभिमान करतेहैं बहुरि एक और धनवान् ऐसे कृपण होतेहैं जो दशवां अंश भी नहीं देसके ताते धन को इकट्ठा करके अपने पास रखते हैं और भजन स्मरण विषे रात्रि दिन सावधान रहते हैं पर उनको पैसा खर्चना कठिन होता है और वह आपको भजनी जानते हैं सो तिनका दृष्टान्त यह है जैसे किसी के शीश विषे पीड़ा होवे और चरणों पर औषध का लेपकरे तब ऐसी औषधकर उसकी पीड़ा कब दूरहोती है तैसेही कृपण तपस्वी जो विपरीतबुद्धि हैं सो इतना भेद नहीं समझ सकते कि हमारे हृदयविषे कृपणता का रोग प्रबल है अथवा अधिक आहार का रोग प्रबल है ताते व्रत और संयम करके आहार को घटावते जाते हैं और

दया दानरूपी जो कृपणता की औषध है तिसको अङ्गीकार नहीं करते पर यह जेते छल मैंने वर्णन किये हैं और और भी जो नानाप्रकार के छल हैं सो धनवान् पुरुष इनसे रहित नहीं होसक्ते अथवा जिसको कुछ धर्म की बूझ प्राप्तहुई होवे तब ऐसाही पुरुष इन छलों से मुक्त होता है और मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि जिज्ञासुजन मन के छलों और भजन के विघ्नों को भलीप्रकार पहिंचाने तब हृदय बिषे उसके निष्काम प्रीति भगवत् की प्रबल होवे और छलों से आपको बचाय राखे और शरीर के कार्यमात्र से अधिक माया की प्रीति से विरक्त होवे और सर्वथा अपनी मृत्यु को निकट देखे और परलोक मार्ग के तोशे बिना किसी पदार्थ बिषे आसक्त न होवे और जिस पुरुष के ऊपर भगवत् की सहायता होती है तब उसको यह वार्ता सुगम होती है अन्यथा नहीं होसक्ती ॥

इति निषेधप्रकरण नाम तृतीयम्प्रकरणं समाप्तम् ॥

चौथा प्रकरण ॥

प्रथम सर्ग ॥

त्यागके वर्णन में ॥

तातें जान तू कि जिज्ञासु की आदि अवस्था पापों का त्याग है और धर्म के मार्ग बिषे सर्व मनुष्यों को अवश्यही त्याग की अपेक्षा होती है क्योंकि यह मनुष्य प्रथमही निष्पाप नहीं होता सो केवल निष्पाप और निर्मल देवते कहे हैं और सर्वथा पापरूप असुर हैं तातें प्रसिद्ध हुआ कि भगवत् के भय करके पापों का त्यागकरना मनुष्यही का अधिकार है और सर्व आयुष्पर्यन्त पापों बिषे आसक्त रहना असुरों का लक्षण है सो जिस पुरुष ने पापों की मनसा का त्याग किया है और व्यतीतहुये पापों के पुनश्चरण बिषे सावधान हुआ है सो उत्तम मनुष्य वही कहावता है पर प्रथम इस जीव की उत्पत्ति नीच और मलिन है इसकरके कि आदि उत्पत्ति बिषे भगवत् ने इसके ऊपर भोगों को प्रेरा है और भोगों की शत्रु जो बुद्धि है सो वह पीछे किशोर अवस्था बिषे प्रकट होती है तातें भोगों ने बालक अवस्था बिषेही हृदयरूपी गढ़ को घेरलिया है और मन का स्वभाव इनही के साथ मिलाहुआ है बहुरि जब निर्मल बुद्धि प्रकट होती है तब इस जीव को अवश्यही भोगों के त्याग और पुरुषार्थ की अपेक्षा होती है

इसी कारण से कहा है कि प्रथम सर्व मनुष्यों का अधिकार पापों का त्याग है और जिज्ञासु की आदि अवस्था यही है सो त्याग का अर्थ यह है कि अशुभ मार्ग की ओर से अपने मुख को फेरना और शुभ मार्ग विषे सम्मुख होना (अथ प्रकट करनी महिमा त्यागकी) ताते जान तू कि भगवत् ने सर्व मनुष्यों को त्यागही विशेष कहा है और इसप्रकार आज्ञा करी है कि जिस पुरुष को मुक्त होने की इच्छा होवे तब चाहिये कि प्रथम पापों का त्यागकरे और महापुरुष ने कहा है कि भगवत् इस जीव के त्याग को अन्तकाल पर्यन्त प्रमाण करता है और जब इस मनुष्य से कुछ पाप होजावे तब उसका पश्चात्ताप करनाही त्याग है और यों भी कहा है कि जिस स्थानविषे विषयीजीव इकट्ठे होवें और नानाप्रकार के चञ्चल वचन कहें सो तिस स्थानविषे कदाचित् स्थित न होवो क्योंकि ऐसे ठौरविषे अवश्यही इस जीव का धर्म नष्ट होजाता है ताते नरकों का अधिकारी होता है और जो पुरुष उस स्थान को त्याग देता है सो तिसका धर्म दृढ़ रहता है और जो पुरुष पापकर्म करके आपको भूला मानता है तब चित्रगुप्त को भी वह पाप भूल जाताहै और यों भी कहाहै कि जिससे इस लोक में दिन विषे कुछ पाप होजावे और रात्रि में आपको भूलाजान उसे त्यागे तब भगवत् वह त्याग प्रमाण करलेता है और दया के द्वारे को इसके ऊपर बन्द नहीं रखता ऐसेही जबलग इस जीव के प्राण नहीं जाते तबलग वह द्वार खुलाही रहता है और योंभी कहा है कि जो पुरुष पापकरके आपको भूलाजाने और उसका त्याग करे तब निस्सन्देह उसकी गति उत्तमहोती है क्योंकि पापकर्म करके उसको त्याग देना ऐसे है जैसे किसी ने पाप क्रियाही न होवे पर पापों का त्याग करना यही है कि फिर उस पापकी मंशाही न करे और योंभी कहा है कि त्यागी पुरुष भगवत् का अतिप्रियतम है और त्यागी जनको देखकर भगवत् अधिक प्रसन्न होता है और जो पुरुष पाप कर्म करके आपको क्षमा कराया चाहता है सो भगवत् निस्सन्देह तिसपर क्षमा करता है पर जो पुरुष मन्मथके विषे सर्वदा दृढ़ होता है और मन्मथ के त्यागने की श्रद्धाही नहीं रखता सो ऐसा पुरुष सर्वदा सन्तजनों की सहायता से दूर रहता है इसीपर एक वार्ता है कि इबराहीम सन्तने किसी पापी को देखकर ग्लानि करीथी तब उनको आकाशवाणी हुई कि तू इसके ऊपर ग्लानि न कर क्योंकि जब यह मेरे भयकरके पाप-

कर्मों का त्याग करेगा तबहीं मैं इसके त्यागको प्रमाण करूंगा और जब आपको भूला जानकर मेरे आगे दीनचित्त होवेगा तौ भी मैं उसको क्षमा करलूंगा इस करके कि मेरा नाम दीनदयालु है (अथ प्रकट करना अर्थ त्यागका) ताते जान तू कि त्याग से आगे ही जिज्ञासुके चित्तविषे धर्म का प्रकाश प्रकट होता है तब उस प्रकाश करके पापको हलाहल विषवत् जानता है बहुरि ऐसे जानता है कि मैंने इस विष को बहुत अङ्गीकार किया है और मरने के निकट प्राप्त हुआ हूं ऐसे जानकर अपने चित्त विषे अधिक भयवान् होता है और पश्चात्ताप करने लगता है जैसे किसी मनुष्य ने मूर्खता करके मधु के संग विष खालिया होवे बहुरि जब विष का निश्चयकरे तब अधिक त्रास को पावता है और यत्न करके वमनकिया चाहता है और उसही के उपचार विषे सावधान होता है तैसेहीं जिज्ञासुजन को यह बूझ प्राप्तहोती है कि मैंने जितने भोगों को मीठे जानकर प्रीतिसंयुक्त भोगा है सो सवों विषे पापरूपी विष मिला हुआ था ताते भय और पश्चात्ताप की अग्नि विषे जलने लगता है और उसी अग्नि करके भोगवासना जलजाती है बहुरि जेते पापकर्म आगे किये थे सो तिनके पुनश्चरण की मंशा करता है ताते रजोगुण तमोगुणी पहरावे को दूर करता है और सात्त्विकी धर्म का पहरावा पहरता है तिससे पीछे जो आगे विषयी जीवों की संगति करताथा सो अब ज्ञानवानों की संगति को ग्रहण करता है तात्पर्य यह कि त्याग का रूप भय और त्रास है और मूल इसका धर्म का प्रकाश है और पापों का पुनश्चरण करना इसकी शाखा है बहुरि सर्व इन्द्रियों को पापों से रोक रखना और भगवत् भजन विषे सावधान होना इसका फल है (अथ प्रकट करना इसका कि त्याग करना सर्व मनुष्यों का अधिकार है और सबको सब समय विषे त्याग करना प्रमाण है) ताते जान तू कि प्रथम तो इस मनुष्य को प्रतीति की हीनता का त्याग करना कहा है और यद्यपि लोगों के मुख से सुनकर यह भी भगवत् के ऊपर प्रतीति करता है पर हृदय करके उससे अचेत है ताते चाहिये कि उस अचेतता का त्यागकरे और धर्म के अर्थको भलीप्रकार पहिंचाने सो धर्म का पहिंचानना विद्या की अधिकता करके नहीं कहा ताते धर्म की दृढ़ता का लक्षण यह है कि सर्व कर्मों विषे धर्म और विचार की मर्याद अनुसार विचरे और सन्तजनों की आज्ञा को प्रीतिसंयुक्त प्रमाणकरे और अपने मनकी वासना

का आज्ञाकारी न होवे ताते जानिये कि जिस पुरुष की करतूति मलिन होवे तिसकी प्रतीतिही दृढ़ नहीं क्योंकि जिस पुरुष ने पापों को विषरूप जाना है वह ऐसी दुःखदायक वस्तु को क्योंकर अङ्गीकार करताहै पर इस मनुष्यसे पापकर्म तबहीं होता है जब भोगों की प्रीति विषे प्रथमही इसकी प्रतीति स्पष्ट होजावे अथवा शुद्ध बुद्धि का प्रकाश वासना के अन्धकार विषे छिपजावे तात्पर्य यह कि प्रथम इस मनुष्य को प्रतीति की हीनता का त्यागकरना प्रमाण कहा है बहुरि इन्द्रियों के पापकर्म का त्यागकरना चाहिये है और जब इन्द्रियों करके पापों से रहित हुआ तब मान और दम्भ और ईर्षा और अभिमान आदिक जो हृदय के मलिन स्वभाव हैं सो तिनका त्याग करना भी अवश्यही प्रमाण है क्योंकि यह बुरे स्वभाव बुद्धि के आवरण करनेहारे हैं और सर्व पापकर्मों के बीज हैं ताते चाहिये कि सम्पूर्ण स्वभावों को अपने वशीकार करे सो यह साधना भी बड़े पुरुषार्थ करके सिद्ध होती है बहुरि इससे पीछे जिज्ञासु को व्यर्थ चितवनी और मनके संकल्पों का त्याग करना प्रमाण कहा है और महाराज के भजन से जो किसी समय विषे अचेत होता है सो तिस अचेतता को दूर किया चाहिये है इस करके कि एक क्षणभी भगवत् का बिसारना सर्व विघ्नों का बीज है बहुरि यह मनुष्य सर्वदा भगवत् भजनही करे और भगवत् भजन की अवस्था विषे बड़े भेद हैं अर्थ यह कि एक भजन स्थूल है और एक सूक्ष्म है और एक उससे भी अतिसूक्ष्म होता है ऐसेही सूक्ष्मता से अधिक सूक्ष्मता चली जाती है ताते चाहिये कि स्थूलता को त्यागकर सूक्ष्मही की ओर होवे किसी स्थान और अवस्था पर अटक न रहे क्योंकि उत्तम पद को त्यागकर नीचपद विषे अटक रहना भी हानि का कारण है ताते पूर्ण पदके मार्ग विषे जितने और स्थान हैं सो सबों का त्याग करनाही प्रेम की दृढ़ता है इसीपर महापुरुष ने कहा है कि मैं एक दिन विषे सत्तरबार आपको भूला जानता हूं और उस अवस्था का त्याग करके महाराज के आगे दीन होता हूं सो इसका अर्थ यह है कि उनकी अवस्था क्षण क्षण विषे बढ़तीजाती थी और और पद विषे स्थित होते थे सो जब एक पद को त्यागकर दूसरे पद विषे पहुँचते थे तब प्रथम पद को अपनी अवज्ञा जानते थे और आपको भूला जानकर क्षमा करावने लगते थे सो इस अवस्था का दृष्टान्त यह है कि जैसे कोई पुरुष प्रथम पांच पैसे

की मज़दूरी करता होवे तब उसी विषे प्रसन्न होता है बहुरि जब ऐसे जानता है कि अमुक व्यवहार करके इतनेही काल में पांच रुपये प्राप्त होते हैं तब शोकवान् होकर प्रथम मज़दूरी को त्यागदेता है और दूसरे व्यवहार को ग्रहणकरता है तब पांच रुपये पायकर प्रसन्न होता है बहुरि जब इस प्रकार जानता है कि रत्नों का व्यवहार करके एक दिन विषेही सहस्रों रुपये का लाभ होता है तब दूसरे व्यवहारको भी त्यागदेता है और रत्नों के व्यवहारही को अङ्गीकार करता है सो इसी पर सन्तजनों ने कहा है कि जिज्ञासु की आदि अवस्था के जेते शुभकर्म हैं सो ज्ञानवानों के निकट वही पापरूप हैं पर जब कोई इस प्रकार प्रश्न करे कि यद्यपि प्रतीति की हीनता और पाप और अचेतता तो अवश्य त्यागकरने के योग्य है क्योंकि जबलग इनका त्याग न करे तब निस्सन्देह पापी होता है और ऊन पदको त्यागकर ऊंचपद विषे स्थितहोने को विशेष कहना भी प्रमाण है पर उत्तम पुरुषों ने जो ऊंचपद विषे ठहरने को अवज्ञा कहा है सो तिसका कारण क्या है ? ताते इसका उत्तर यह है कि योग्य और अयोग्य कर्म भी दो प्रकार के कहे हैं सो प्रथम तो संसारी जीवों को स्थूल पापों का त्यागकरना प्रमाण कहा है इसकरके कि अल्पबुद्धि भी नरकों से मुक्त होवें बहुरि दूसरी भलाई और बुराई जिज्ञासुओं का आधार है और संसारीजीव उस अवस्था विषे स्थित हो नहीं सके सो यह है कि यद्यपि ज्ञानीजनों को नरकों का दुःख तो कदाचित् नहीं होता पर जब अपने से उत्तम अवस्थावालों को देखते हैं तब अपनी न्यून अवस्थापर शोकवान् होते हैं और इस प्रकार कहते हैं कि हमने ऐसा पुरुषार्थ क्यों न किया इसी कारण से कहा है कि उत्तम अवस्था से अप्राप्त रहना और न्यूनपद विषे स्थित रहना भी अयोग्य है ताते चाहिये कि जिज्ञासुजन पुरुषार्थ करके किसी पद विषे अटक न रहें और उत्तम से उत्तम पदवी की ओर चलाजावे तब ऐसे दुःख से मुक्त होवे इसीपर सन्तजनों ने कहा है कि परलोक विषे सब किसी को पश्चात्ताप होवेगा पापी मनुष्य तो अपने पापों को देखकर पश्चात्ताप करेंगे और भजनवान् इस प्रकार कहेंगे कि हमने अधिक भजन क्यों न किया ऐसे जानकर बुद्धिमान् पुरुष परमार्थ के मार्ग विषे आलस नहीं करते और यथाशक्ति आगे ही को चले जाते हैं और पापरहित भोगों को अङ्गीकार नहीं करते इसीपर आयशाने महापुरुष से पूछा

था कि तुम तो निष्पाप हो ताते तुम निद्रा और आहार का इतना संयम क्यों करते हो तब उन्होंने कहा कि मेरे भाई महापुरुष मुझ से आगे गये हैं और उन्हों ने पुरुषार्थ करके उत्तम पदको पाया है ताते मैं भी इसीप्रकार चाहताहूं कि संसार के सुखों में आसक्त होकर उनसे पीछे न रहूं तो भला है और कुछ दिन जो जगत् का जीवना है सो वैराग्य त्याग बिषे ही व्यतीत करूं उसीपर एक वार्ता है कि एकबार एक महापुरुष पत्थर को शीश तले रखकर सोयरहे थे तब माया मनुष्यरूप धरकर उनसे कहनेलगी कि हे सन्तजी ! तुम माया का त्याग करके बहुरि पश्चात्ताप को प्राप्तहुये हो इस करके कि पत्थर को शीश तले रख कर सुखसे नींद लिया चाहते हो तब यह सुनकर उन्हों ने पत्थर को उठाडाला और कहनेलगे कि माया के सुखों के साथ पत्थर भी तू ले तात्पर्य यह कि जिसप्रकार जिज्ञासुजन परलोक के भय करके परमवैराग्य के बिषे स्थित हुये हैं सो संसारी जीव उस अवस्था को कब पासक्के हैं ताते तू अपने चित्त बिषे ऐसा अनुमान न कर कि उन्होंने यह यत्न व्यर्थ ही किया है और दृढ़ प्रतीति करके उसी मार्ग को अङ्गीकार कर और संसारी जीवों के पुण्य का पीछा न ले क्योंकि इनका मार्गही भिन्न है इस करके प्रसिद्ध हुआ कि यह मनुष्य सब समय और सर्व अवस्था बिषे त्याग की अपेक्षासे रहित नहीं होसक्ता इसीपर एक सन्तने कहा है कि जब यह मनुष्य किसी पदार्थ की ओर प्रीति सहित देखताहै तब निस्संदेह अपना समय व्यर्थ खोवता है और वह प्रीति अन्तकाल बिषे इसको अवश्य पश्चात्ताप देती है पर यह बड़ा आश्चर्य है कि यह पुरुष व्यतीत हुये समय की नाईं आगे भी अपनी आयुष् को खोवता है और मूर्खता करके जानता नहीं और जब विचार करके देखिये तब जिस प्रकार इस मनुष्य के श्वासरूपी रत्न व्यर्थ ही चले जाते हैं ताते सर्वकाल इसको रुदनही करना प्रमाण है और यद्यपि इस समय बिषे अचेतता करके रुदन नहीं करता तब परलोक बिषे दुःखित होकर अधिकही रोवता रहेगा क्योंकि यह आयुषरूपी पदार्थ अमोल है और इसी करके परमपद को पहुँच सक्ता है सो भोगों की प्रीति बिषे व्यर्थही चली जाती है और यह मूर्ख सर्वदा उससे अचेत है पर यह मनुष्य तबहीं सुचेत होता है जब इसकी सुचेतताका लाभ कुछ न होवेगा इसी पर महाराज ने कहा है कि जब यह मनुष्य अन्तकाल बिषे यमगणों को देखताहै तब ऐसे जानताहै कि मेरे

चलने का समय आया है और अधिक पश्चात्ताप करके रुदन करने लगताहै पर उस पश्चात्ताप करके फल कुछ नहीं होता बहुरि यमगणों से इस प्रकार कहता है कि एक दिन अथवा एक घड़ी मुझको अवकाश देवो तब मैं कुछ भजन कर-लेवों तब वह यमगण ऐसे कहने लगते हैं कि आगे महाराज ने तुझको दिन और पहर बहुत दिये थे पर अब तो तेरी आयुष् पूर्ण होचुकी और कोई पल घड़ी शेष नहीं रही बहुरि जब यह प्राणी निराश होताहै तब निराशता करके धर्म-हीन होजाताहै और दुःखों का अधिकारी होताहै और जिसके ऊपर श्रीरघुनाथ जी सहायता करते हैं तब उसका धर्म नष्ट नहीं होता ताते परमसुखों को पा-वताहै इसी पर सन्तजनों ने कहाहै कि भगवत् दोबार इस मनुष्य के साथ वचन करताहै सो प्रथम तो गर्भ बिषे इसप्रकार आज्ञा करताहै कि हे मनुष्य! मैंने तुझको भजन स्मरण का अधिकारी बनाया है और आयुष्रूपी पदार्थ तुझको दिया है ताते तुझको चाहिये कि भलीप्रकार मेरे भजन बिषे सावधान होवे और मेरी बखशीश को पापों बिषे न लगावे बहुरि दूसरीबार मृत्यु हुये पीछे इस प्रकार पूछता है कि हे मनुष्य! जब तैंने मेरे दिये पदार्थों को शुभकर्मों बिषे लगायाहै तब उसके फल को प्राप्त हो और जब तैंने वह पदार्थ पापों बिषे लगाये हैं तब नरकों के दुःखों को भोग (अथ प्रकट करना इसका कि जब यह मनुष्य युक्तिपूर्वक त्याग करता है तब उसको भगवत् अवश्य प्रमाण क-रता है) ताते जान तू कि जब तैंने युक्ति अनुसार पापों का त्याग किया तब उसके प्रमाण होने बिषे संशय न कर और इस वार्त्ता को भलीप्रकार विचार करके देख कि मेरा त्याग युक्ति अनुसार है अथवा युक्ति से रहित है सो जिस पुरुष ने इस जीव के भेदको भलीप्रकार पहिंचाना है बहुरि जीव और देहके सम्बन्ध को भी जिसने समझाहै और भगवत् के साथ जो इस जीव का सम्बन्ध है सो तिसको भी भलीप्रकार पहिंचाना है तब उसको इस वार्त्ता बिषे संशय कुछ नहीं होता कि भोग और पाप आवरण करनेहारे हैं और इनका त्याग करना महाराज की निकटता का कारण है इस करके कि इस जीव की उत्पत्ति का कारण निर्मल स्वरूप है ताते जब इसका हृदय दर्पण की नाईं जंगाल से रहित होवे तब इस बिषे महाराज के शुद्धस्वरूप का प्रतिबिम्ब भासे सो जब यह पापकर्म करताहै तब हृदयरूपी दर्पण मलिन होजाताहै और जब शुभकर्म बिषे

स्थित होताहै तब वह प्रकाश पापों के अन्धकार को दूर करडारता है सो इस जीव के हृदयपर रज तमरूपी अन्धकार और सात्त्विकी प्रकाश सर्वदा ही वर्त्तमान रहते हैं पर जब पापों का अन्धकार अधिक होजावे और यह पुरुष भगवत् का भयकरके पापों को त्यागदेवे तब निस्सन्देह इस अन्धकार को उसका प्रकाश नष्ट करडारता है और हृदयरूपी दर्पण निर्मल होताहै पर जिस का चित्त पापोंके अन्धकार करके ऐसा मलिन होजावे कि इसकी बुराई को समझ न सके तब ऐसे पुरुष से त्यागरूपी उपाय कदाचित् नहीं होता और यद्यपि मुख से इस प्रकार कहता है कि मैंने भोगों का त्याग किया है तौभी उसका कहना व्यर्थ होताहै क्योंकि जैसे वस्त्रको जल और साबुन साथ धोइलीजै तब वह शीघ्रही उज्ज्वल होइ आवता है पर जब वस्त्रके धोवने की वार्त्ताही करता रहे तब कदाचित् निर्मल नहीं होता इसी पर महापुरुषने कहा है कि जब तुझ से कुछ पाप होजावे तब उससे पीछे शीघ्रही भला कर्म कर जो वह बुराई नष्ट होजावे और जब तेरे पाप इतनेहोवें कि अधिकता करके आकाश को छिपालेवें पर जब तू श्रीराघवजी का भयकरके उनका त्यागकरे तौभी उस त्यागको श्रीजानकीनाथ अपनी दया करके प्रमाण करलेतेहैं और योंभी कहाहै कि केते मनुष्य पापही के सम्बन्ध करके स्वर्गको पाते हैं तब किसीने पूछा कि हे महा॰ पुरुष! यह मनुष्य पाप करके परमसुखका अधिकारी क्योंकर होसक्ता है ? तब उन्होंने कहा कि प्रथम जिससे कुछ अवज्ञा होजावे और फिर वह त्रासमान होकर उसका त्यागकरे और भयकरके अपनी अवज्ञाको बिस्मरणकरे और सर्वदा अधीन चित्तरहे तब वह निस्सन्देह परमसुखका अधिकारी होताहै औरयोंभी कहा है कि जैसे जलकरके मैल उतर जाताहै तैसेही शुभकर्म करके अशुभकर्मों का नाश होताहै इसीपर एक वार्त्ता है कि जिससमय शैतान को धिक्कारहुई थी तब क्रोध करके कहने लगा कि हे महाराज ! तेरी दुहाई करके कहता हूं कि जबलग यह मनुष्य मृत्यु न होवेगा तबलग इसके हृदय से मैं बाहर न निकसूंगा बहुरि महाराज ने कहा कि मैं भी अपनी बड़ाई की दुहाई करके कहताहूं कि जबलग इस मनुष्य का शरीर न छूटेगा तबलग मैंभी त्याग के द्वारेको बन्द न करूंगा इसीपर एक सन्त ने भी कहाहै कि सर्व महापुरुषों को श्रीरामजी ने इस प्रकार आज्ञा करी है कि तुम पापी मनुष्यों से हमारी ओरसे कहो कि जब तुम ग्लानि

और भय मानकर पापों का त्याग करोगे तब मैं सब पाप तुम्हारे क्षमा करके तुमको अपनायलूंगा और धर्मात्मा पुरुषों को इस प्रकार भय देवो कि जब मैं यथार्थ न्याय करूं तब वह भी दण्ड के अधिकारी होवेंगे और एक और सन्त ने भी कहा है कि रसना करके भगवत् के उपकार को कोई गिन नहीं सक्ता ताते चाहिये कि जिज्ञासुजन रात्रिदिन अपने अवगुणों को क्षमा कराता रहै तौ महाराज अपनी दया करके इस जीवके पापों को क्षमा करताहै इसीपर एक वार्त्ता है कि एक तामसी मनुष्य ने एक तपस्वी से पूछाथा कि मैंने पाप बहुत किये हैं और निन्यानवे मनुष्यों का घात कियाहै सो जब इससे आगे पापों का त्याग करूं तब भगवत् क्षमा करेगा कि नहीं तपस्वी ने कहा कि तू क्षमा का अधिकारी नहीं क्योंकि तू महापापी है यह वचन सुनकर वह निराश हुआ और उस तपस्वी को मारडाला बहुरि एक विद्यावान् से पूछताभया कि मैंने सौ मनुष्यों का घात किया है पर जब मैं आगे को पापों से रहित होवौं तब महाराज मेरी अवज्ञाको क्षमा करेगा कि नहीं करेगा तब उस बुद्धिमान्ने कहा कि जिस नगर विषे तू रहता है सो सबही तामसी मनुष्य तहां रहते हैं ताते जब तू इनकी संगति को त्याग कर अमुक नगरमें सात्त्विकी संगति विषे जायरहै तब तेरा त्याग प्रमाण होवेगा बहुरि वह पुरुष पापकर्मों को त्यागकर अपने नगर को छोड़ चला और महाराज की इच्छा करके मार्ग विषेही शरीर उसका छूटगया तब यमगण और श्रीरामपार्षद उसका जीव लेनेको आये और अपनी अपनी ओर खैंचनेलगे तब उनको आकाशवाणी हुई कि यह पुरुष एक हाथ प्रमाण अपने नगर की भूमि से श्रीरामभक्तों के नगरकी पृथ्वीपर अधिक आया है ताते यह मुक्ति का अधिकारी है तात्पर्य यहकि यद्यपि शरीरधारी मनुष्य सर्वदा पापों से रहित नहीं होसक्के पर जब अल्पमात्र भी शुभकर्मों विषे इसकी रुचि अधिक होवे और पापों की अभिलाषा हीन होवे तौभी मुक्ति का अधिकारी होता है (अब प्रकट करना भेद लघु दीर्घपापों का) ताते जान तू कि एक लघु पाप है और एक दीर्घ पाप कहे हैं पर जब इस मनुष्य से अकस्मात् लघु पाप होजावे और उस पाप विषे अधिक न विचरे तब त्यागकरके वह पाप सुगमही क्षमा होजाता है इसी पर महापुरुष ने कहा है कि जब तुम दीर्घपापों से रहित होओ तब लघुपाप तुम्हारे मैं क्षमाकरलूंगा ताते दीर्घ पापों का पहिंचाननना अवश्यही प्रमाण हुआ

सो इस निर्णय विषे भी विद्यावानों ने बहुत वचन कहे हैं पर मेरे चित्त विषे इस प्रकार भासताहै कि चार दीर्घ पाप तो मन विषे होते हैं सो प्रथम यह कि भगवत् और परलोकपर प्रतीति की हीनता करनी १ और दूसरा यह कि पापों विषे दोषदृष्टि न करनी २ बहुरि तीसरा यह है कि भगवत् की दया से निराश होना ३ और चौथा दीर्घपाप यहहै कि महाराजकी बेपरवाही का भय न करना और आप को निष्पाप जानकर निडर होना ४ बहुरि चार दीर्घ पाप रसना विषे कहेहैं सो एक तो झूठी सीखदेनी १ और दूसरा लोभ के निमित्त झूठी दुहाई देनी अथवा केवल झूंठ बोलना २ बहुरि तीसरा यह कि मन्त्र यन्त्र पढ़ कर किसी मनुष्य को दुःख देना ३ और चौथा महापाप निन्दा है ४ और दो दीर्घ पाप उदर विषे होतेहैं सो एक तो निषिद्ध और कठोर आहार करना १ और दूसरा महापाप यहहै कि अनाथों को दुखायकर अथवा छल करके अपनी जीविका करनी २ बहुरि काम इन्द्रिय विषे व्यभिचारही महापाप है और दो दीर्घ पाप हाथों कर होतेहैं सो एक तो मनुष्य का घातकरना १ और दूसरा किसी की वस्तु चुरायलेनी २ बहुरि चारों विषे दीर्घपाप यह है कि अशुभकर्मों की ओर गमन करना और सर्वशरीर विषे महापाप यहहै कि माता पिता की सेवा से रहित होना सो मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि इत्यादिक दीर्घ पापों विषे जिज्ञासुजन को अधिक भय करना चाहिये और योंभी जानना प्रमाण है कि यद्यपि भजन के नियम विषे इस मनुष्य से कुछ अवज्ञा होजावे तब महाराज उसको क्षमा करलेता है पर जब इसको किसी पुरुष का एक पैसा देना होवे तब वह पैसा दिये विना कदाचित् न छूटेगा इसीपर सन्तजनों ने कहा है कि सब पापकर्म तीन प्रकार के हैं सो एक तो मनमुखता और प्रतीति की हीनता है ताते जबलग यह मनुष्य इस पाप का त्याग न करे तबलग क्षमा का अधिकारी कदाचित् नहीं होता १ और दूसरे पाप ऐसे होते हैं कि जैसे भगवत् के भजन वा पाठके नियम विषे कुछ अवज्ञा होवे सो इस अवज्ञाको दीनता करके भगवत् क्षमा करलेताहै २ और तीसरा पाप यह है कि लोगों को किसी प्रकार दुखाना सो इस पाप को भगवत् क्षमा कभी नहीं करता ताते इस का पुरश्चरण यही है कि उस दुःखी पुरुष से क्षमा करावे वा जिसका धन हर लिया होवे तब उसही को फेरदेवे और किसी पुरुष को धर्म से विमुख न करे

क्योंकि अभयता के वचन सुनाकर लोगों को निश्शङ्क करना भी महापाप है २ (अथ प्रकट करना इसका कि केते कारणों करके लघुपाप भी दीर्घ होजाते हैं) ताते जान तू कि यद्यपि लघुपापों के क्षमा होनेकी जिज्ञासुजन को आशा होती है पर केतेही कारण करके लघुपाप भी दीर्घ होजाते हैं सो इनका क्षमा कराना कठिन होताहै सो प्रथम यह कि जिस पापकर्म का स्वभाव चिर-कालपर्यन्त दृढ़ होजावे तब वह भी वृद्धता को पाताहै जैसे सुन्दर वस्त्र पहरने अथवा रूपवानों के मुख से राग सुनने का स्वभाव दृढ़ होजावे तौ रजोगुणकी प्रबलता करके इसका चित्त मलिन होजाता है और शीघ्रही तमोगुण उपज आता है जैसे सदैवकालके भजन करने विषे निस्संदेह हृदय उज्ज्वल होजाता है तैसेही नित्य प्रतिके पाप करके अवश्यही हृदय अन्ध होजाताहै इसीपर महा-पुरुष ने कहा है कि यद्यपि किञ्चितमात्रही शुभ कर्म होवे पर जब उसको सदैव करता रहै तब वह भी अधिक विशेष होजाताहै जैसे पाथरपर शनैःशनैः जलकी बूंद पड़तीरहे तब पाथर विषे भी छिद्र होजाताहै पर जब उसके ऊपर इकट्ठाही जल एकबार बहजावे तब पाथर में रञ्चकमात्र भी छिद्र नहीं होता ताते चाहिये कि जब जिज्ञासुजन से कोई लघुपाप होजावे तब आपको भूला जानकर पश्चा-त्तापकरे और आगेको उसकी मनसासे रहित होवे तब निस्संदेह वह पाप क्षमा होजाताहै इसीपर सन्तजनों ने कहाहै कि भय और पश्चात्ताप करके दीर्घपाप भी लघु होजाता है और स्वभाव की दृढ़ता करके लघुपाप भी दीर्घता को पावता है १ बहुरि दूसरा कारण यह है कि जब यह पुरुष अपने पापको थोड़ा जानता है तब वह पाप भी बढ़जाता है और अपने पापको दीर्घ जानता है तब वह पाप घटजाता है क्योंकि अल्प पाप को दीर्घ जानना भय और प्रतीति करके होताहै ताते इस पुरुष का हृदय प्रकाश को पावता है और पापके प्रवेश का अन्धकार नहीं होता ऐसेही अपने पाप को अल्प जानना अचेतता और भोगों की प्रीति करके होता है तात्पर्य यह कि सर्व कर्मों का प्रेरक इसका मन है सो जिस कर्म विषे इस मनकी वृत्ति बध्यमान होती है तब उसही पर आवेश अधिक होजाता है इसीपर सन्तजनों ने कहा है कि प्रीतिमान् पुरुष किंचित् पापको भी पर्वत की नाईं जानता है और ऐसा जानता है कि जब यह पाप मुझसे हुआ तब मैं इसके नीचे दब जाऊंगा और मनमुख अपने पापोंको माखी

की समान तुच्छ जानता है ताते वह पाप उससे कदाचित् नहीं छूटता इसीपर एक महापुरुष को आकाशवाणी हुईथी कि तुम अपने पापों को थोड़ा न देखो और ऐसे जानो कि हम इस पाप करके कैसे महाराज से बिमुख हुये हैं ताते जो पुरुष महाराज की समर्थता और बेपरवाही को अधिक समझताहै तब वह थोड़े पापको भी अधिक जानता है क्योंकि सर्व पापों बिषे महाराज का क्रोध छिपा हुआ है २ बहुरि तीसरा कारण यह है कि जो पुरुष पापकर्म करके प्रसन्न होवे और उसको बड़ा पदार्थ जानकर बड़ाई करे तब वह पापभी बढ़ता जाता है जैसे कोई मूर्ख मनुष्य इस प्रकार कहता है कि हमने कैसा छलकरके उसका धन हरलिया बहुरि सभा बिषे दुर्वचन और हास्यकरके उसको कैसा लज्जावान् किया ताते जो मनुष्य अपनी बड़ाई ऐसे पाप करके करते हैं तब इस करके जानाजाता है कि उनका हृदय मलिन होगया है और उसही पाप करके मृत्युको पावेंगे ३ बहुरि चौथा कारण यहहै कि जिस पुरुष का पाप जगत् बिषे प्रसिद्ध होवे और वह ऐसे जाने कि मेरे ऊपर भगवत दयालु है ताते उस कर्म का त्याग न करे तौ भी उस पाप से कदाचित् नहीं छूटता ४ बहुरि पांचवां कारण यह है कि जब यह पुरुष किसी विद्यावान् अथवा श्रेष्ठ पुरुषको पापकर्म करता देखता है तौ भी ढीठ और निश्शङ्क होजाता है और इस प्रकार कहता है कि असुक विद्यावान् सुन्दर वस्त्र पहरता है और राजसभा बिषे जाता है और उनका धन अङ्गीकार करता है सो जब यह कर्म बुरा होता तब वह काहे को करता ऐसे जानकर यहभी पापों बिषे बर्तताहै निश्शङ्क और ऐसे और केते लोगभी अपने धर्म से भ्रष्ट होजाते हैं ताते सब का पाप उसी विद्यावान् को लगता है क्योंकि प्रथम पापकी नींव उसही ने राखी है इसीपर एक वार्त्ता है कि एक विद्यावान् प्रथम पाप कर्म बिषे आसक्त था बहुरि उसने पापों का त्याग किया तब उसको आकाशवाणी हुई कि मैंने तेरे पाप तुझको क्षमा किये पर तेरे करतूति और बचन करके और केते मनुष्य जो पाप बिषे आसक्त हुये हैं सो तिन को क्योंकर क्षमा करावेगा इसी कारण से सन्तजनों ने कहा है कि विद्यावानों को और लोगोंसे अधिक भय होता है काहे से कि उनका पाप सहस्रगुणा बढ़ता है और भलाकर्म भी सहस्रगुणा होता है ताते विद्यावान् को चाहिये कि प्र० तो पापकर्मही न करे और जब अकस्मात् होजावे तब उसको प्रकट न करे

और शरीर के व्यवहार विषेभी संयमसहित विचरे तौ भलाहै क्योंकि उसको देख- कर और लोगभी अचेत न होवें इसीपर एक सन्तने कहा है कि आगे में हँसने खेलने की शङ्का न करता था पर जब मेरा ऐश्वर्य जगत विषे प्रकट हुआ है तब मैं देखता हूं कि मुझको कार्य विना मुसक्यान भी प्रमाण नहीं तात्पर्य यह कि और मनुष्यों का छिद्र प्रकट करना तो भला नहीं पर विद्यावान् के छिद्र को दुरा- वना अधिकही विशेष है और सन्तजनों नेयोंभी कहा है कि जिस पुरुष के मृत्यु होनेसे पीछे उसका पाप शेष न रहजावे तब वह मनुष्य भी उत्तम कहावता है और जिसका पाप सहस्रों वर्षपर्यन्त पीछे चलाजावे सो तिसकी गति महानीच होती है अर्थ यह कि जिसके पाप को देखकर और लोगभी पापों विषे निश्शङ्क होवें सो तिसका पाप दीर्घकालपर्यन्त चलाजाता है (अथ प्रकट करनी युक्ति त्यागकी) ताते जान तू कि त्याग का मूल यह है कि पापों से त्रासमान होना और फल इसका सात्त्विकी श्रद्धाहै और त्रास का लक्षण यह है कि अपने पापोंको देखकर सर्वदा दीनचित्त और शोकवान् और भजन करता रहे क्योंकि जिस पुरुष को अपना मरना निकट भासता है सो पश्चात्ताप और रोवने से रहित कब होसक्ता है अथवा जिसको कोई लोभी वैद्य इस प्रकार कहै कि इस रोग करके तेरा पुत्र अबहीं मृत्यु होताहै तब उसको कैसी चिन्ताकी अग्नि जलाने लगती है तैसेही यह वार्त्ता प्रसिद्ध है कि बुद्धि का नाश होना पुत्र के मरने से अधिक दुःखदायक है और सन्तजनों के वचन लोभी वैद्य के वचनोंसे अधिक संशयरहित हैं और शरीर के नाश का कारण जो रोग है सो पापरूपी रोग इस की बुद्धि को स्थूल रोग से भी शीघ्रही नाश करता है ताते जो पुरुष ऐसे वचनों को सुनकर त्रासवान् न होवे तब जानिये कि उसकी प्रतीतिही दृढ़ नहीं अथवा उसने पापों के विघ्नोंको भलीप्रकार समझाही नहीं और जिस पुरुष की बुद्धि तीक्ष्ण होती है सो तिसके हृदयविषे शीघ्रही विचार उपजआता है और भयरूपी अग्नि अधिक होतीजाती है बहुरि उसी अग्नि करके पापों का अन्धकार नहीं रहता और हृदय उसका उज्ज्वल होआता है इसीपर सन्तजनों ने कहा है कि त्यागी पुरुषों की संगति करनी विशेष है क्योंकि उनका हृदय निर्मल और स्थिर होता है और जितनाही इस मनुष्य का हृदय उज्ज्वल होता है उतनाही पापों [illegible] ग्लानि करनेलगता है और भोगों की प्रसन्नता को भय और पश्चात्ताप नष्ट

हारता है तब उसका त्याग प्रमाण होता है इसीपर एक पुरुष ने महाराज के आगे प्रार्थना करी थी कि हे अन्तर्यामिन्! मेरे त्याग को अङ्गीकार कर तब उसको आकाशवाणी हुई कि यद्यपि तेरे निमित्त सर्व सृष्टि प्रार्थना करे पर जबलग तेरे चित्तसे भोगों की अभिलाषा दूर न होवे तबलग तेरे त्याग को कदाचित् प्रमाण न करूंगा ताते जान तू कि यद्यपि इस मनुष्य को भोग और पाप माखी की नाईं लगते हैं पर त्यागीपुरुष उनको ऐसे जानता है जैसे मधुविषे हलाहल विष मिला हुआ होवे अर्थ यह कि जब कोई उसको अकस्मात् खाकर दुःखी होता है तब स्वाभाविक ही उसको देखकर ग्लानि करता है और उसके रोम त्रास करके खड़े होआते हैं ताते उस मिठाई की अभिलाषा नष्ट होजाती है ऐसे ही जिज्ञासुजन को चाहिये कि सब पापों विषे भगवत् के कोपरूपी विष को प्रसिद्ध देखे बहुरि सात्त्विकी श्रद्धा जो फल त्याग की कही थी सो इसका सम्बन्ध भी तीन लक्षणों के साथ होता है प्रथम तो जिस समय विषे सर्व पापों से विरक्त होताहै और करणीय कर्मों विषे सावधान रहता है १ बहुरि दूसरा लक्षण इसका यह है कि आगे भी यही श्रद्धा करता है कि मैं यह पापकर्म कदाचित् न करूंगा और भगवत् को अन्तर्यामी जानकर त्यागके निर्वाह की मंशा रखता है बहुरि एकान्त और शुद्ध जीविका को अङ्गीकार करताहै तात्पर्य यह कि जबलग सर्व पापों और भोगों की अभिलाषा से विरक्त न होवे तबलग संपूर्ण त्यागी नहीं कहाजाता इसीपर सन्तजनों ने कहा है कि जिसके ऊपर किसी भोग की प्रबलता होवे तब चाहिये कि सातबार यत्न और हठकरके उसका त्यागकरे तब वह कठिनताई दूर होजाती है २ बहुरि सात्त्विकी श्रद्धा का लक्षण तीसरा यह है कि व्यतीत हुये पापों के पुरश्चरण विषे सावधान होवे और इस वार्त्ता को भली प्रकार पहिंचानै कि मुझसे भगवत् की अवज्ञा क्या क्या हुई है सो भगवत् की अवज्ञा दो प्रकार की होती है प्रथम तो करणीय कर्मों से विमुख होना दूसरे पाप कर्मों विषे आसक्तरहना ताते चाहिये कि बालक अवस्था से लेकर जिस २ नियम से अचेतहुआ होवे अथवा दशबन्ध न दिया होवे अथवा अधिकारी बिना दशबन्ध दिया होवे तब सबों का पुरश्चरण ऐसे करे कि भजन और दान की अधिकता बढ़ावे बहुरि पापों का पुरश्चरण इस प्रकार करे कि बालकअवस्था पर्यन्त जो २ दीर्घ पाप किया होवे तब उसको स्मरण करके भयसंयुक्त भगवान्

से क्षमाकरावे बहुरि अपने शरीरपर तप और यत्न अधिक राखे ऐसेही लघुपापों का पुरश्चरण इस प्रकार करे कि जब अधिक बोला होवे तब मौनविषे स्थितरहे और जब अशुभ ओर दृष्टिकरी होवे तब लज्जा करके नेत्रों को मूंदराखे ऐसेही सर्वोंविषे विपर्यय भावको अङ्गीकार करे तब विकारों की अशुद्धता दूर होजावे इसी पर महापुरुष ने कहा है कि दुष्कृत के पीछे सुकृत करो तब वह सुकृतही बढ़जावेगी ताते विषयीराग सुनने का पुरश्चरण यह है कि सन्तजनों के वचन सुनता रहे और जब किसीके सम्मुख निश्शङ्क बोला होवे तब सबका भय और सम्मानकरे तात्पर्य यह कि पापकर्म करके जितनाही इसका हृदय मलिन होजाता है उतनाही पुरश्चरण करने से मलिनता दूर होजाती है ताते चाहिये कि जब इसने माया के पदार्थों की ओर प्रसन्नता की दृष्टिकरी होवे तब यत्न और कष्टों को अंगीकार करे क्योंकि भोगों की अभिलाष करके इसका हृदय बन्धमानी होजाता है बहुरि ग्लानि और यत्न को अङ्गीकार करने करके वह बंधवान् दूर होती है इसीपर सन्तजनों ने कहा है कि जब सात्त्विकी मनुष्यों के चरणों विषे कांटा चुभ जाता है तब भी उसके पापों को क्षीण करता है और महापुरुष ने भी कहा है कि शोक और चिन्ता करके भी केते पापों का पुरश्चरण होजाता है पर जब तू इस प्रकार कहे कि शोक और चिन्ता तो इसके पुरुषार्थ करके नहीं होती ताते इसके पापों का पुरश्चरण क्योंकर कहिये तब इसका उत्तर यह है कि जिस संयोग करके इस पुरुष का हृदय माया के पदार्थों से विरक्त होवे तब उसको निस्संदेह भला जानिये सो यद्यपि इसके पुरुषार्थ करके प्राप्त होवे अथवा महाराज की आज्ञा पायकर अकस्मात् होजावे पर वह संयोग अवश्यमेव इस जीव के कल्याण का कारण बहुरि जब इसने किसीको दुखाया होवे अथवा किसी का धन हरलिया होवे अथवा किसी की निन्दाकरी होवे तब चाहिये कि स्मरण करके सबसे क्षमाकरावे और जिसका धन देना होवे तब उसको धनही देवे और जिसका घात किया होवे तब उसके सम्बन्धियों को अपना शरीर अर्पण करे पर यह वार्ता राजाओं और बजारियों को कठिन होती है क्योंकि इनके व्यवहारों का सम्बन्ध बहुत पुरुषों के साथ होताहै ताते जब इनका पुरश्चरण न होसके तब वैराग्य और भगवत्भजनविषे यही अधिक दृढ़ होवे और जिस पुरुष से कोई पाप नित्यप्रति होता है तब शीघ्रही उसका पुरश्चरण करता रहे तो भला

है इसीपर सन्तजनों ने कहाहै कि जब यह मनुष्य पापकर्म करके उसको त्याग देवे अथवा त्यागने की मंशाकरै और उसके दुःख से भयवान् होवे और भगवत् की दया का आशावन्त होवे बहुरि यथाशक्ति दानदेवे और साधुसंगति विषे आपको स्थितकरे तब इतने कर्मों करके पापों की क्षीणता होजाती है पर जब भय और प्रीति विना मुख से त्राहि २ करतारहै तब इस कहनेका लाभ कुछ नहीं होता क्योंकि लाभ का कारण भय और पश्चात्ताप और हृदय की कोमलताई है पर जब कुछ भयसंयुक्त भी श्रीराघवजी का नाम लेवे और प्रार्थना करके क्षमा करावता रहे तो भी निन्दा और वाद विवाद से मुक्त रहता है ताते यह भला कर्म है इसीपर एक जिज्ञासुजन ने अपने सद्गुरु से पूछा था कि जब मैं मुखसे श्रीराम राम कहताहूं तब मेरा मन एकत्र नहीं होता तब उन्होंने कहा कि तू यहभी श्रीरामजी का उपकार जान क्योंकि एक इन्द्रिय तो तेरी शुभमार्ग विषे स्थित हुई है ताते रघुनाथजी की सहायता करके शनैःशनैःकरके मनभी एकत्र होजावेगा पर यह मन ऐसा कपटी है कि जब जिज्ञासुजन को भजनविषे स्थित हुआ देखता है तब इस प्रकार कहता है कि हृदय की एकत्रता विना श्रीराम नाम लेना व्यर्थ होता है ताते तू भजन ही को त्यागदे पर एक तो ऐसे उत्तम मनुष्य होते हैं जो मनको इस प्रकार करके उत्तर देते हैं कि हे भाई! तैंने यथार्थ कहा ताते मैं अब हृदय को भी एकत्र करलेताहूं तब यह भजन सफल होवेगा सो यह उत्तर ऐसा है कि मनके छल को नष्ट कर डालता है बहुरि एक मध्यमपुरुष इस प्रकार मनको कहतेहैं कि यद्यपि मैं हृदय को एकत्र नहीं करसक्ता तौभी वाद विवाद और आलस निद्रा से श्रीरामनाम लेनाही विशेष है ताते मैं इसका त्याग क्योंकर करूं? जैसे शराफी के व्यवहारसे राज्य करना विशेष है पर जबलग राज्य प्राप्त न होवे तबलग शराफी को त्यागकर चाण्डालों का व्यवहार करना तो भला नहीं बहुरि एक ऐसे मनुष्य नीच होतेहैं कि वह मनका कहना मानकर भजनको त्याग देते हैं और ऐसे जानते हैं कि चित्त की एकत्रता विना भजन विषे क्या लाभ होता है ताते हमने जो भजन का त्याग किया है सो यह भी बुद्धिमानों का कर्म है पर जब विचार करके देखिये तब वह मनके अधीन होकर भजन से विमुख हुये हैं ताते परमभाग्यहीन हैं (अथ प्रकट करना उपाय त्याग के प्राप्त होने का) ताते जान तू कि जो पुरुष पापों का त्याग नहीं करते और सर्वदा

भोगों बिषे आसक्त हैं सो प्रथम इसके कारण को पहिंचानना चाहिये कि उनके हृदय बिषे त्याग की श्रद्धा क्यों नहीं उपजती सो त्याग की मंशा से वर्जित करनेहारे पांच कारण हैं और सबके भिन्न २ उपाय हैं ताते प्रथम कारण यह है कि जिनके हृदय बिषे परलोक की प्रतीति नहीं होती अथवा संशयवान् होते हैं तब वह भी पापों का त्याग नहीं करते सो तिनका उपाय मैंने तृतीय प्रकरण के अन्त भ्रामिक बुद्धियों के सर्ग विषे प्रसिद्ध करके कहा है १ और दूसरा कारण यह है कि जिनके हृदय करके भोगों की अधिक प्रबलता होती है तब वह भी त्याग नहीं करसक्के इसी कारण से परलोक के दुःख का स्मरण नहीं करते सो बहुत मनुष्यों को तो भोगों की प्रीति ने घेरलिया है इसीपर महापुरुषने कहा है कि जब भगवत् ने नरकों को उत्पन्न किया था तब देवतों से पूछा कि यह कैसा दुःखरूप है तब देवतों ने कहा कि हे महाराज! जो पुरुष इनके दुःखों को श्रवण करेगा तब भयकरके सर्वप्रकार इससे आपको बचाया चाहेगा बहुरि महाराज ने नरकों के चारोंओर भोग उत्पन्न किये तब देवतों ने कहा कि हे महाराज! कोई पुरुष इनकी अभिलाषा से छूट न सकेगा ताते हम डरते हैं कि भोगों की प्रीतिकरके बहुतही मनुष्य नरकगामी होवेंगे बहुरि भगवत् ने स्वर्ग को उत्पन्न किया तब उसको देखकर देवता कहनेलगे कि हे महाराज! जो इसकी महिमा सुनेगा तब वह अवश्यही उसही को प्राप्तहुआ चाहेगा बहुरि महाराज ने स्वर्ग के मार्ग विषे बड़े यत्न और दुःख उत्पन्न किये तब देवतों ने कहा कि हे महाराज! कोई विरलाही पुरुष ऐसे दुःखों को खैंचकर स्वर्ग की ओर आवेगा और अधिक मनुष्य तो भय करके विमुख होजावेंगे ताते प्रसिद्ध हुआ कि भोगों की प्रीति नरक का मार्ग है और स्वर्ग का मार्ग दुःखों का खैंचना है २ बहुरि तीसरा कारण यह है कि यह मनुष्य जग में आयकर भोगों को प्रसिद्ध देखता है और परलोक को उधार जानता है ताते भोगों के साथ अधिक प्रीति करता है और परलोक का दुःख स्मरणही नहीं करता सो यह भी बुद्धि की हीनता है ३ बहुरि चौथा कारण यह है कि यद्यपि यह मनुष्य कछुक त्याग की मंशा रखता है तौ भी अचेतता करके ढीलाही रहता है और जब कोई भोग इसको प्राप्त होता है तब इस प्रकार कहता है कि अब तो इस भोग को भोगलेवों फिर इसका त्याग करलेऊंगा ४ और पांचवां कारण यह है कि

जिस मनुष्य ने भगवत् की दया को श्रवण किया होता है तब अपने चित्तविषे ऐसा अनुमान करलेता है कि मुझको भगवत् क्षमाकरलेवेगा पर जो मनुष्य भोगों को नक़द जानता है और परलोक को उधार देखता है सो तिसका उपाय यह है कि जिस समय में अवश्य आवना है सो तिस को निस्सन्देह आया जाने क्योंकि जो अभी इसकी मृत्यु आन घेरे तो परलोक नक़द होजावे और स्थूल भोग स्वप्न होजावें बहुरि भोगों की प्रीति का उपाय इस प्रकार जानना प्रमाण है कि जब मेरे चित्त विषे भोगों के त्यागने की सामर्थ्य ही नहीं तब मैं नरकों के दुःख सहने को क्योंकर समर्थ होऊंगा ताते जिस प्रकार रोगी मनुष्य की रुचि यद्यपि किसी भोग विषे अधिक होती है तो भी वैद्य की आज्ञानुसार उसको त्याग देता है तैसेही जिज्ञासुजन को चाहिये कि भगवत् और सन्तजनों की आज्ञानुसार यत्न सहित भोगों को त्यागदेवे तो भला है बहुरि जो पुरुष पापों के त्यागविषे ढीलकरता है तिसको ऐसे समझना योग्य है कि जब काल्हही मेरी मृत्युआवे तब मैं क्या करूंगा काहे से कि जीवना तो मेरे हाथ नहीं इसीपर सन्त-जनों ने कहाहै कि जिन पुरुषों ने त्यागविषे ढीलकरी है सो परलोक विषे दुःखित अधिक होकर पुकार करेंगे ताते चाहिये कि यह मनुष्य पुरुषार्थ करके शीघ्रही भोगों का त्याग करे और जब इस निमित्त ढीलाहोवे कि अब भोगों का त्यागना कठिनहै तब सो जाने कि काल भी आजकी नाईं कठिन होवेगा ताते ढील करने-हारे पुरुष का दृष्टान्त यह है जैसे कोई बुद्धिमान् किसी पुरुष को कहै कि तू जब इस बबूर के वृक्ष को अबहीं उखाड़डाले तो भला है बहुरि वह पुरुष ऐसे कहै कि अब तो मैं निबल हूं और इस वृक्ष का मूल दृढ़ है ताते मैं इसको एक वर्ष पीछे उखाडूंगा तब उसको समझाना चाहिये कि हे मूर्ख! वर्ष से पीछे तू तो अधिक निबल होवेगा और यह वृक्ष अधिक दृढ़ होताजावेगा तैसेही सर्वदाकाल भोगों के स्वभाव प्रबल होते जाते हैं और तेरी बुद्धि का बल क्षीण होताजाता है इसी कारण से जो तू शीघ्रही त्याग का उद्यम करे तो भलाहै बहुरि जो पुरुष भगवत् को दयालु जानकर पापों का त्याग न करे सो तिसको ऐसे समझना विशेष है कि भगवत् की दया तो तेरे अधीन नहीं और जब तेरा धर्महीं पापोंकी प्रबलता करके नष्ट होजावे तब निस्संदेह अन्तकाल पश्चात्ताप को प्राप्तहोवेगा इसीपर सन्तजनोंने कहा है कि धर्मरूपी वृक्ष तबहीं वृद्धहोता है जब उसको भजनरूपी

जलसे सींचिये और जब भजनरूपी जल इसको न पहुँचे तब निस्संदेह धर्मरूपी वृक्षही नष्ट होजाताहै, ताते सन्तजनों के आवने का प्रयोजनभी जगत में येही है कि जीवों को पापोंका फल जो दुःख है सो प्रसिद्ध करके दिखावें तात्पर्य यह कि भगवत् की दया के आश्रित होकर पापों विषे विचरना बड़ी मूर्खता है और इसका दृष्टान्त यह है जैसे कोई पुरुष अपना सर्वस्व लुटायदेवे और चित्तविषे यह आशाराखे कि मुझको स्वाभाविकही वन विषे धन का खज़ाना मिलजावेगा अथवा कोई धनवान् मेरे गृह विषे आकर मरजावेगा तब उसका धन मेरेही पास रहेगा सो यद्यपि अकस्मात् ऐसा संयोग भी होजाता है पर अपना धन लुटाकर ऐसी आशा करके निश्चिन्त होना बड़ी मूर्खता है बहुरि ऐसे जान तू कि केते मनुष्य इस प्रकार कहते हैं कि जबलग सम्पूर्ण पापों का त्याग न करे और किञ्चितही पापों का त्याग करे तबलग उसको त्यागी नहीं कहते जैसे कोई दुराचार का त्यागकरे और मद्पान का त्याग न करसके तब उसको त्यागी क्योंकर कहिये क्योंकि पापकर्म तो सबही निन्द्य हैं और त्यागने योग्य हैं पर मेरे चित्त विषे इसका उत्तर इस प्रकार भासता है कि जिसने दुराचार को मदके पीवने से अधिक बुरा जाना है अथवा ऐसे समझा है कि मद्पान करने से दुराचार भी होताहै ताते मद का पीवनाही अधिक निन्द्य है सो जिसने अधिक बुराई का त्याग किया तब उसका त्याग प्रमाण होता है जैसे कोई पुरुष इस प्रकार जाने कि निन्दाकरके जीवों का हृदय दुखता है और मद करके अपने चित्त की चपलता होती है ताते निन्दाको त्यागदेवे और मद से रहित न होसके तो भी इसका त्याग प्रमाण है क्योंकि जितनेही अधिक पापकर्म करता है उतनाही उसको दण्ड भी अधिक होता है और यह भी प्रमाण नहीं कि जब एक पापकर्म का त्याग न करसके तब जिस पाप का त्याग करसक्ता होवे तिसका भी न करे तात्पर्य यह कि जितनाही पापकर्म से रहित होवे तितनाही भलाई को पावता है पर सम्पूर्ण पाप त्यागी उसीको कहते हैं जो सर्व पापों से रहित होवे और सम्पूर्ण त्यागी होने का अर्थ यह है कि शनैः शनैः करके प्रथम दीर्घ पापों का त्याग करता जावे बहुरि सर्वथा निष्पाप रहे इस करके कि इस मनुष्य से सर्व पापोंका त्याग एकहीबार नहीं होसक्ता ताते चाहिये कि तू क्रम करके त्यागही के मार्ग विषे चलाजावे तब शीघ्रही सम्पूर्ण त्याग को पावता है॥

दूसरा सर्ग ॥

संतोष और धन्यवाद के वर्णन में ॥

ऐसे जान तू कि यद्यपि मूलधर्म का त्याग है पर त्याग भी सन्तोषके विना सिद्ध नहीं होता और कोई शुभ करतूति करनी और किसी पाप का त्याग करना भी सिद्ध नहीं होता ताते इसीपर महापुरुषने भी कहा है कि संतोष आधा धर्म है और किसी पुरुष नें महापुरुष से पूछा था कि धर्मका रूप क्या है? तब उन्होंने कहा कि संतोषही धर्म है सो विशेपता संतोष की इस कारण है कि महाराज ने अपने वचनों विषे संतोषकी बहुत प्रशंसा करी है और जो २ उत्तमपद हैं सो सबही संतोष करके सिद्धहोने कहेहैं और धर्मके मार्ग विषे अगवानी भी संतोष हीको कहा है और योंभी कहा है कि संतोषवालों के अतिनिकट हूं और मेरी सहायता और दया और उत्तम बूझभी संतोषवालों को प्राप्त होती है यह तीनों पदार्थ इकट्ठे किसी को प्राप्त नहीं होते और योंभी कहा है कि उनहींके पाप क्षमा होते हैं और परलोक विषे पापियों के पाप भी वही क्षमा करावते हैं और भगवत् का मार्गभी उनहीं को प्राप्त हुआहै जिनके हृदय में संतोष है और इस कारण करकेभी संतोषकी विशेपता है कि भगवत्ने संतोषको आप प्याराकिया है अर्थ यह कि किसी विरले भक्त को प्राप्त किया है इतर जीवों को नहीं दिया और ऐसेही महापुरुष ने भी कहाहै कि जिस पुरुष को शुभ अङ्गों विषे विश्वास और सन्तोष प्राप्त हुआ है उससे कहदो कि निर्भय होवे यद्यपि व्रत और तप बहुत नहीं करता तो भी सन्तोषवाला पुरुष निर्भय है और महापुरुष ने अपने प्रियतमोंसे इस प्रकार कहा है कि जैसा तुम्हारा निश्चय है सो जब उसी विषे संतोष करो और दृढ़ होवो तब इस बातको मैं बहुत प्रियतम राखूं सो यद्यपि जितना भजन तुम सबही करतेहो तितना भजन और तप एक एकही करो तौ भी जब तुम्हारे विषे संतोष की दृढ़ता देखूं तब अधिकही प्रियतम राखूं पर मैं डरताहूं कि मेरे पीछे तुम्हारे ऊपर माया बल पावेगी तब तुम परस्पर युद्ध करोगे और जो देवता तुम्हारी सहायता करते हैं सो भी विरुद्ध करेंगे क्योंकि तुम्हारे विषे सन्तोषकी दृढ़ता नहीं भासती और योंभी कहा है कि जो कोई सन्तोष करता है और पुण्य की आशारखताहै सो निस्संदेह पूर्ण पुण्य को प्राप्त होताहै ताते तुम संतोष करो क्योंकि पदार्थ जो तुम्हारे निकट हैं सो नाश को पावेंगे अर्थ यह

कि माया की सामग्री नाश होवेगी और जो कुछ महाराज के निकट है सो स्थिर है और सत्यपदार्थ है और योंभी कहाहै कि संतोष परलोक का खज़ाना है और योंभी कहते थे कि संतोष का जो पुरुष स्वरूप होता तो उदार होता और योंभी कहते थे कि संतोषवाले पुरुष महाराज के प्रियतमहैं और एक महात्मा को आकाशवाणी हुई थी कि मेरे स्वभाव की नाईं तूभी अपना स्वभाव कर सो मेरा स्वभाव एक यह है कि मैं संतोष करनेवालाहूं और एक महापुरुष ने कहाहै कि जबलग तू अपनी वासना से संतोष न करेगा तबलग जिस पदको तू चाहताहै तिस पद को प्राप्त न होवेगा और एक जमात को देखकर महापुरुष ने उनसे पूछा कि तुम वैष्णवहो तब उन्होंनें कहा कि हम वैष्णव हैं बहुरि महापुरुष ने कहा कि तुम्हारी वैष्णवता का चिह्न क्या है तब उन्होंने कहा कि हम सुख विषे धन्यवाद करते हैं और दुःखों विषे सन्तोष करते हैं और श्रीरामरजाय विषे प्रसन्न रहते हैं तब महापुरुष ने उनसे कहा कि तुम निस्सन्देह वैष्णव हो और योंभी कहा है कि जैसे शरीर के अङ्गोंविषे शिर उत्तम है तैसेही सर्व शुभगुणों विषे सन्तोष उत्तम है ताते जिस पुरुष विषे संतोष नहीं तिसका धर्मभी दृढ़ नहीं (अथ प्रकट करना रूप संतोष का) ऐसे जान तू कि संतोष करना मनुष्य का स्वभाव है क्योंकि पशुओं विषे संतोष की सामर्थ्य नहीं सो पशु अतिनीच हैं और देवतों को संतोष की अपेक्षाही नहीं क्योंकि वह आगेही से शुद्ध हैं और भोगों से मुक्त हैं और पशु भोगों के बन्धन विषे पराधीन हैं कि उनके हृदय में और कुछ नहीं भासता ताते पशु भोगरूप हैं और देवता भगवत् के प्रेम विषे लीन हैं और कोई पदार्थ उनको विक्षेप देनेहारा नहीं जिसके दूरकरने विषे संतोष करें ताते संतोष करना मनुष्यही का अधिकार है क्योंकि आदि उत्पत्ति विषे मनुष्य भी पशु की नाईं होताहै सो इस कारण करके होता है कि प्रथम खान पान और खेलना और सुन्दरताई का बनावना मनुष्यपर प्रबल होता है बहुरि किशोर अवस्था विषे देवतों का प्रकाश आइ प्रकट होता है सो उस करके भलाई बुराई के फल को पहिंचानता है सो प्रयोजन यह है कि महाराज दो देवता मनुष्य की रक्षाके निमित्त भेजते हैं सो एक देवता मनुष्य को मार्ग देखावता है अर्थ यह कि उस देवता का प्रकाश जब मनुष्य विषे प्रकट होता है तब उसी प्रकाश करके कर्म के फल को पहिंचानता है और करतूति की विशेषता विधिसंयुक्त

देखताहै बहुरि उसी प्रकाश करके आपको और महाराज को पहिंचानताहै और योंभी जानता है कि यह भोग सब अन्त में नाश को पावेंगे यद्यपि इस काल विषे रमणीक भासते हैं तौभी विनाशरूप हैं और सुख इनका वेगही विरस हो जाता है और परिणाम इनका परमदुःख है सो चिरकाल पर्यन्त रहता है पर यह बूझ पशुओं को प्राप्त नहीं होती इस बूझ का अधिकारी केवल मनुष्यही है सो केवल इस बूझ करके भी कार्य सिद्धि नहीं होती क्योंकि यद्यपि ऐसे भी जाने कि यह पदार्थ मेरी हानि करनेहारा है पर जबलग इसके त्यागने का बल न होवे तबलग इस जानने करके लाभ कुछ नहीं होता जैसे रोगी जानताहै कि यह रोग मुझको दुःख देता है पर जबलग उस रोग के दूर करने की समर्थता न होवे तबलग रोगी को सुख नहीं प्राप्त होता ताते श्रीजानकीनाथजू की दया करके दूसरा देवता मनुष्य को बल देता है और सहायता करता है जैसे प्रथम देवताके प्रकाश करके इस पुरुष ने जानाथा कि यह पदार्थ मुझको दुःखदायक है तैसेही दूसरे देवता के बल करके उस पदार्थ का त्याग करता है और जैसे मनुष्य को प्रथम भोग भोगने की इच्छाथी तैसेही उन भोगोंको त्यागने की इच्छा आन फुरती है और ऐसे चाहता है कि भोगों के दुःखसे मुक्त होकर सुखी होवों ताते भोग भोगने की जो इच्छाथी सो आसुरीसेना थी और भोगों की निवृत्ति करनेहारी जो इच्छा है सो देवतों की सेना है सो भोगों के भोगनेकी इच्छाका नाम वासनास्तम्भहै और भोगों के दूरकरने की इच्छाका नाम धर्मस्तम्भहै सो इन दोनों सेना विषे सदा विरोध और लड़ाई रहती है क्योंकि असुरों की सेना कहती है कि इन भोगों को भोगिये और देवतों की सेना कहती है कि इनका त्यागकरिये सो यह मनुष्य इन दोनों सेनाकी खैंच विषे रहताहै पर जब यह पुरुष धर्म की दृढ़ता विषे अपने चरण ठहरावे और भोगवासना से लड़ाई विषे सावधान होवे सो इसी सावधानता का नाम संतोष है और जब भोगों को वशीकारकरे और उनपर समर्थता पावे तब इसी का नाम परमजीत है और जब लग इनकी लड़ाई विषे रहताहै तिसीका नाम मनका युद्ध कहते हैं ताते सन्तोष इसीका नामहै कि धर्म की दृढ़ता विषे अपने चरण ठहरावे और भोगोंकी वासनाके सम्मुख होकर स्थित होवे सो जहां यह दोनोंसेना नहीं होतीं तहां सन्तोषभी नहीं होता इसीकारण करके कहा है कि देवताओं को भी संतोष का अधिकार नहीं

और पशुओं और बालकों विषे संतोष की समर्थता नहीं ताते जान तू वह दोनों देवता मनुष्य की रक्षा के निमित्त महाराज ने किये हैं सो तिनका नाम चित्र और गुप्त है ताते जिसको श्रीरामजी की दयाकरके बूझका अर्थ खुलता है और युक्ति करके तात्पर्य को समझता है वह ऐसे जानता है कि कारण बिना कोई पदार्थ उत्पन्न नहीं होता ताते बूझवान् देखता है कि प्रथम बालक को बूझ और पहिंचान कुछ नहीं होती जो कर्म के फल को विचारै और सन्तोष की श्रद्धा और बलभी नहीं होता बहुरि किशोर अवस्था विषे बूझ और बलके कारण यह दोनों देवताहैं सो बूझ और उत्पन्न करते हैं पर बूझ सबका मूल है क्योंकि प्रथम यही होती है बहुरि श्रद्धा और बल और करतूति उसके फूल फलहैं ताते वह देवता जो इस मनुष्य को मार्ग दिखाता है सो विशेष और उत्तम है इसी कारण करके उसका स्थान दाहिने ओर कहा है कि तेरी रक्षा करता है सो रक्षा इस प्रकार करता है कि तुझको शुभमार्ग दिखाता है सो जब तू उसके वचन की ओर श्रवण राखे तब उससे बूझ और पहिंचान तुझको प्राप्त होती है और जब तू उसकी ओर सावधान होवे तब यही सावधानता उस देवता पर तेरा उपकार होता है क्योंकि उसके वचनों को तैंने व्यर्थ न किया और इसी सावधानता को वह देवता तेरी भलाई लिखता है और जब तू उस देवता के वचन से विमुख होवे जो उसकी ओर सावधान न होवे तब तू भी पशुओं के समान होवेगा क्योंकि बूझ और करतूतिके फलकी पहिंचानसे निष्फल रहेगा सो यह तेरी विमुखता को वह देवता बुराई लिखता है तैसेही वह दूसरा देवता जो तुझको भोगों के दूर करनेका बल देताहै सो जब तू उसके अनुसार पुरुषार्थ कर तब इसी तेरे पुरुषार्थ को वह देवता भलाई लिखता है और जब उससे विपर्यय करतूति करे तब यही बुराई होती है सो यह दोनों अवस्था तेरे ऊपर वह देवते लिखते हैं सो यह लिखना तेरे हृदय विषेही है पर तेरे जनावने से गुप्त है क्योंकि वह देवते और उनका लिखना इस जगत की नाई आधिभौतिक नहीं सो इनको नेत्रों करके देख नहीं सक्ता पर जब मृत्यु का समय आवताहै तब यह स्थूल नेत्र मूंदजाते हैं और परलोक के देखनेवाले नेत्र खुलजाते हैं तब उनका लिखा प्रकटही पायाजाताहै और परलोक विषे अपने कर्मों को विस्तार संयुक्त देखताहै अर्थ यह कि चिरकाल पर्यन्त नरक स्वर्ग विषे दुःख सुख भोगताहै सो

हमने और ग्रन्थों विषे तिसका निर्णय बहुत कहा है और यहां मेरे कहने का प्रयोजन यहहै कि सन्तोष वहां होता है जहां परस्पर दोनों सेनाओं का विरोध होताहै सो एक देवतों की सेना है और एक असुरों की सेना है सो यह दोनों विरोधी सेना इस मनुष्य के हृदय विषे इकट्ठी रहती हैं ताते प्रथम चरण धर्म विषे रखना यही है कि इनकी लड़ाई विषे सावधान होवे काहे से कि आदिही बालक अवस्था विषे आसुरी सेना ने हृदयरूपी गढ़को वशीकार करलिया है और देवतों की सेना पीछे किशोरअवस्था विषे प्रकट होती है सो जबलग यह पुरुष दैत्यों की सेनाको वशीकार न करे तबलग उत्तम भोगों को प्राप्त नहीं होता और जबलग पुरुषार्थ करके युद्ध न करे और इसी युद्ध विषे संतोष न करे तबलग भोगों की सेना वशीकार नहीं होती और हृदयरूपी गढ़ दुष्टों से नहीं छूटता ताते जो पुरुष इस लड़ाई विषे सावधान नहीं हुआ वह पुरुष ऐसे हैं जैसे अचेत राजा होवे जो अपना देश शत्रुओं को अर्पिदेवे और लुटवावे पर जब यह भोग इस पुरुषके वशीकार होवें और विचारकी आज्ञा विषे वर्तें तब जानिये कि इसकी सम्पूर्ण जीतहुई है सो ऐसा कोई विरलाही होता है और बहुत पुरुषों की अवस्था ऐसी होतीहै कि कभी उनकी जीत होतीहै और कभी हार होती है अर्थ यह कि कभी भोग प्रबल होते हैं कभी धर्मकी प्रबलता होती है पर संतोष की दृढ़ता बिना इस गढ़की कदाचित् जीत नहीं होती (अथ प्रकट करना इसका कि सन्तोष को जो अपारधर्म कहा है सो किसप्रकारहै और व्रतकरना आधाधर्म किसप्रकार है) ताते जान तू कि धर्म एक पदार्थका नाम नहीं सो धर्म के लक्षण और शाखा बहुतहैं जैसे महापुरुषने भी कहाहै कि धर्म के अनेक द्वारहैं पर सबोंसे विशेष यहहै कि श्रीरामजीको एक पहिचानना और एकताही विषे चित्त को स्थितकरना और नीचे द्वारा धर्मका यहहै कि पापोंका त्याग करना सो यद्यपि धर्म के लक्षण बहुत हैं पर मूल सबके यह तीन पदार्थहैं एक बूझ १ दूसरा चित्तकी अवस्था २ तीसरा करतूति ३ सो इन तीनों बिना कोई लक्षण धर्मका सिद्ध नहीं होता जैसे त्याग का मूल यहहै कि पापोंको विषवत जानना सो यह बूझहै और अवस्था यह है कि आगे जो पाप कियाहोवे तिस का पश्चात्ताप करना सो यह शाखाहै और फल यह है कि पापोंका त्यागकरना और भजन विषे सावधान होना सो यह त्यागकी करतूति है ताते बूझ और

अवस्था और करतूति यह तीनों धर्म के रूप हैं पर इन तीनों विषे बूझ विशेष है क्योंकि यह बूझ सबका मूल है सो चित्तकी अवस्था भी बूझही करके रहती है और अवस्था के अनुसार करतूति प्रगट होती है ताते बूझ वृक्षकी नाईं हैं और चित्त की अवस्था उसकी शाखा है और अवस्था के अनुसार जो करतूति होती है सो सब फल हैं ताते निस्संदेह धर्म दो पदार्थों का नाम हुआ सो एक बूझ दूसरा करतूति सो सन्तोष बिना सिद्ध नहीं होती इस प्रकार संतोष को आधा धर्म कहा है और संतोष के भी दो भेद हैं सो जब विषयों के त्याग विषे संतोष कहिये तब इसका नाम संतोष है और जब क्रोध को संतोष कर सहिये तब इसका नाम धैर्य है और व्रतकरने विषे भोगों का संयम होता है ताते व्रत करना आधा संतोष कहा है और जब सम्पूर्ण दृष्टि करतूति की ओर करिये कि करतूति के करने विषे कठिनाई अधिक है और संतोष बिना करतूति सिद्ध नहीं होती तब सम्पूर्ण धर्म संतोषही से सिद्ध होता है पर जबलग यह पुरुष वासना के विरुद्ध विषे है तबलग भोगों के त्याग और दुःख के सहने विषे सन्तोष ही चाहिये है और यों भी कहा है कि धर्मवान् पुरुष की करतूति इस प्रकार होती है कि दुःखविषे संतोष करना और सुख विषे धन्यवाद करना सो इस प्रकार कर देखिये तो आधा धर्म धन्यवाद हुआ और आधा धर्म संतोष हुआ ऐसे ही महापुरुष ने भी कहा है कि धर्म के दो भाग हैं सो एक भाग संतोष है और एक धन्यवाद है और जो कठिनाई की ओर देखिये कि संतोष करना बहुत कठिन है तब सम्पूर्ण धर्म संतोषही से सिद्ध होता है (अथ प्रगट करना इसका कि सर्व अवस्था और सर्वकाल विषे संतोष ही चाहिये) ताते जान तू कि यह मनुष्य दो अवस्था से रहित कदाचित् नहीं होता सो एक इष्ट है और दूसरी अनिष्ट है सो इन दोनों विषे संतोष चाहिये है पर इष्ट विषे संतोष करना यह है कि सम्पदा भोग मान आरोग्यता स्त्री पुत्र और और इसकी नाईं जो पदार्थ हैं सो इन विषे संतोष करना बहुत कठिन है क्योंकि जब यह पुरुष अन्तर्मुख होवे और भोगों को सत्य जाने और इन विषे प्रसन्न होकर बर्ते तब इस जीव को विमुखता और अचेतता प्राप्त होती है इसी कारण कर सन्तजनों ने कहा है कि निर्धनता विशेष है क्योंकि निर्धनता विषे संतोष करसक्ते हैं और धन और सम्पदा विषे संतोष करना कठिन है ताते ऐसा पुरुष दुर्लभ है

जो सर्व सम्पदा विषे संतोष करे जैसे महापुरुष से उनके प्रियतमों ने कहा था कि जब हमारे पास सम्पदा कुछ न थी तब भोगों से संतोष किया जाता था और अब बहुत माया करके संतोष नहीं किया जाता सो ऐसे ही महाराजने भी कहा है कि धन और मान और संतान तुम्हारे धर्म को विघ्न करनेहारे हैं और इनही ने तुम को पटलडाला है सो मेरे कहने का तात्पर्य यही है कि जो सर्व भोग होवें तो उन विषे सन्तोष करना कठिन है क्योंकि भोगों की प्राप्ति विषे संतोष तब होता है जब हृदय की निर्लेपता का बल अधिक होवे और सुखों विषे संतोष करना यह है कि माया के पदार्थों विषे हृदय बन्धवान् न होवे और इनको देखकर प्रसन्न न होवे और यों जाने कि ये पदार्थ कुछ दिन मेरे पास हैं फिर दूर होजावेंगे ताते सुखों को सुख न जाने क्योंकि ये भोग श्रीरामजी से विमुख करनेहारे हैं ताते जब इस प्रकार जाने तब जो २ सुख इसको महाराज ने दिये हैं सो तिनके धन्यवाद विषे दृढ़ होवे तब महाराज की ओर सम्मुख होता है सो इनका धन्यवाद करना यह है कि धन और तन और सब सुख श्रीरामहेतु लगावे सो यह धन्यवाद भी संतोष के साथ सिद्ध होता है और दूसरी अवस्था जो अनिष्ट कही थी सो वह तीन प्रकार की होती है सो एक यह कि यह पुरुष अपने पुरुषार्थ करसक्ता है और अपने आधीन है जैसे भजन करना और पापों का त्याग करना १ और दूसरी अवस्था इसके पुरुषार्थ करके नहीं होती भगवत् की आज्ञा करके होती है जैसे रोग और विपत्ति सो यह इसके बल करके नहीं होती २ और तीसरी अवस्था यह है कि प्रथम तो उस विषे इसको बल नहीं चलता पर पीछे इसके आधीन होता है जैसे कोई पुरुष इसको दुखावे सो उसका दुखावना इसके आधीन नहीं पर उसके साथ बदला न लेना इसके आधीन होता है ३ सो प्रथम अवस्था जो इसके आधीन कही थी कि भजन करना और पापों का त्यागना सो इस विषे निस्संदेह संतोष चाहिये क्योंकि भजन, तप, व्रत, दान यह सब संतोष विना सिद्ध नहीं होते और इनके आदि, मध्य, अन्त विषे सन्तोषही चाहिये सो भजन के आदि में यों चाहिये कि भजन विधि संयुक्त और मलिनता से रहित करे और दृष्टि को समेट राखे और मन को संकल्पों से शुद्धकरे बहुरि भजन के अन्त संतोष इस प्रकार किया चाहिये कि किसी के आगे अपना भजन प्रकट न करे और अभिमान

से रहित होवे और यह तो निस्संदेह प्रसिद्ध है कि संतोष विना पापों का त्याग नहीं होता क्योंकि जिस भोग की जितनी तृष्णा बढ़ती है उतना पाप बिषे सुगमही वर्त्तमान होताहै और उस बिषे संतोष करना कठिन होता है जैसे जिह्वाकरके जो पाप होताहै सो उस बिषे संतोष नहीं कियाजाता क्योंकि जिह्वा का बोलना बहुत सुगम है और यत्न से रहित है सो जब अधिक बोलने का स्वभाव दृढ़ होजाताहै तब ऐसा कठिन होताहै कि जो यत्न करके भी नहीं छूटता और बहुत बोलनाभी अविद्याकी सेना का भट है और बहुत बोलनेवाला पुरुष जानता है कि मेरे वचन सुनकर लोग प्रसन्न होते हैं ताते बहुत बोलने का त्याग नहीं करसक्ता और मौन करना उसको कठिन होता है इस कारण करके बहुत बोलनेहारे पुरुषों का उपाय यही है कि प्रथम जगत् के मिलाप का त्यागकरे और एकान्त बिषे रहे तब अधिक बोलने के पापसे मुक्त होता है अन्यथा नहीं १ और दूसरी अवस्था यह है कि वह प्रथम महाराजकी आज्ञा करके होती है और पीछे उस बिषे इस पुरुष का भी बल होता है जैसे कोई पुरुष इसको शरीर अथवा वचन साथ दण्डदेवे तब उसका बदला करना इसीके बल करके होगा ताते इस बिषे भी संतोष चाहिये जिस करके उससे बदला न लेवे और जो बदला करेभी तो मर्यादसे अधिक न लेवे सो यह वार्त्ता इसके आधीन है इसीपर एक सन्तने कहाहै कि जबलग हमने लोगोंके दुखावने बिषे संतोष न किया तबलग हमको सम्पूर्ण धर्म प्राप्त नहीं हुआ और महाराज नेभी महापुरुषसे कहाथा कि जो कोई तुमको दुखावे तब तुम उसका बदला न करो और मेरा भरोसा करो बहुरि योंभी कहाहै कि जो कोई पुरुष तुमको दुर्वचन कहे तब तुम इस बिषे संतोष करो और उनकी संगति का त्यागकरो और योंभी कहा है कि मैं जानता हूं कि दुर्जनों के वचनों करके तेरा हृदय अप्रसन्न होवेगा पर तू मेरे भजन बिषे प्रसन्न हो और उनकी ओर चित्तही न दे सो इसीपर महापुरुष की वार्त्ता है कि एकसमय कुछ धन लोगों को बांटकर देते थे तब किसी दुष्ट ने कहा कि यह धन को भगवत् अर्थ और विचार साथ नहीं बांटते सो जब यह वचन महापुरुष ने सुना तब उनका माथा कुछ लाल होता भया और बहुरि कहनेलगे कि अगले महापुरुष बड़े धन्य थे क्योंकि उनको इससे भी अधिक लोग दुखावते थे और वह सब सहलेते थे और महाराज ने कहा है कि जब

कोई पुरुष तुमको दुखावे तब तुम सहनशील होवो तो भला है और जो बदला भी करो तो मर्याद अनुसार करो अधिक न करो और ईसा महापुरुष ने अपने प्रियतमों से कहा था कि यद्यपि आगे किसी नीतिशास्त्र में योंभी कहा है कि जो कोई किसीका हाथ काटे तब उसका भी हाथ काटिये और जो किसीके नेत्रों वा कानों को दुखावे तब उसकेभी नेत्रों को और कानोंको दुःख दीजिये सो इस वचनकोभी मैं झूठा नहीं कहता पर मैं तुमको इस प्रकार उपदेश करताहूं कि बुराईके बदले बुराई न करो और जो तुमको दाहिने ओर मारे तो बावां अङ्ग भी उसकी ओर राखो और जो कोई तुम्हारी पाग उतार लेवे तब तुम उसको जामाभी देदो और जो कोई तुमको बेगार पकड़कर एक कोस लेजावे तब तुम आपही दो कोस चले जाओ और महापुरुषने कहाहै कि जो कोई तुमको कुछ भाव करके न देवे तब तुम उसको भावसंयुक्त देवो और जो कोई तुम्हारे साथ बुराईकरे तब तुम उसके साथ भलाईही करो सो सांचे पुरुषोंका संतोष यहीहै २ और तीसरी अवस्था यहहै कि उसके बिषे मनुष्यका बल कुछ नहीं चलता जैसे किसीका पुत्र मरजावे अथवा धन नष्ट होजावे अथवा कोई शरीरका अङ्ग काटा जावे सो इसको आकाशी दुःख कहते हैं सो इस बिषे भी संतोष करना बहुत कठिनहै और जो इन बिषे संतोष करे तब उसको उत्तम फल प्राप्त होता है ऐसेही एक सन्तने भी कहाहै कि संतोष तीन प्रकारका है सो प्रथम यह कि सन्तजनों की आज्ञानुसार भजन बिषे दृढ़ होवे तब इस पुरुष को अधिक फल होताहै १ और दूसरा संतोष यहहै कि जो पदार्थ सन्तजनोंने निन्द्य कहे हैं सो तिन बिषे न बर्ते और संतोषकरके उनका त्यागकरे तब पूर्व फलसे भी द्विगुण फलको पाता है २ और तीसरा संतोष यह है कि जो महाराज की इच्छा करके कोई दुःख अथवा संकट आइ प्राप्तहोवे तब तिसको संतोष करके सहे तो त्रिगुण फल को प्राप्त होता है क्योंकि दुःख बिषे संतोप करना सांचेही पुरुषों का काम है ३ इसी कारण करके महापुरुष भी महाराज के आगे प्रार्थना करते थे कि हे महाराज! मुझको ऐसा निश्चय दो कि जिस करके जगत् के दुःखों को मैं प्रसन्न होकर सहों और महापुरुष ने यों भी कहा है कि यह महाराज का वचन है कि जिस पुरुष को मेरी आज्ञा करके कोई कष्ट होवे और वह पुरुष धैर्य कररहै और किसी के आगे उस दुःख को प्रसिद्ध करके न कहे तब उसको मैं सदैव काल की

अरोगता देताहूं और जो उसका शरीर मृत भी होजावे तौभी मैं उसके ऊपर दया करता हूं और दाऊद सन्त ने महाराजके आगे प्रार्थना करीथी कि हे महाराज! जिसको तू कुछ दुःख भेजता है और वह पुरुप प्रसन्न होकर सहे तब तू उसको कैसा फल देता है तब महाराज ने कहा कि उसको मैं धन का सिरोपाव देता हूं जो किसी विघ्न करके उसका धर्म खण्डित नहीं होता और महाराज ने यों भी कहा है कि जिस मनुष्य को मैं दुःख भेजताहूं और वह पुरुप उस विषे प्रसन्न होकर संतोप करता है तब मैं उसके अपकर्मों का लेखा नहीं करता और यों भी कहा है कि जिसके नेत्र की ज्योति मैं हरलेऊं और वह पुरुप प्रसन्नरहे तब मैं उसको अपना दर्शन प्राप्त करताहूं और एक सन्त से किसी जिज्ञासु ने यह वचन लिख लिया था कि अपने स्वामी की आज्ञा विषे संतोप करना विशेप है सो जब उस जिज्ञासु को कोई संकट प्राप्त होता था तब उसी कागज़ को बांचकर संतोप विषे दृढ़ होता था और इसी पर एक और भी वार्त्ता है एक माई मार्ग विषे गिरपड़ी थी और उसके पांव के अँगूठे का नख उतरगया और रुधिर चलने लगा तिसी समय वह माई प्रसन्न होकर हँसने लगी तब लोगों ने पूछा कि दुःख के समय तू क्योंकर हँसी तब उस माई ने कहा कि संतोप के फल की प्रसन्नता ने मेरा दुःख भी भुलादिया ताते मुझको खेद कुछ नहीं भासा ऐसेही महापुरुष ने भी कहा है कि महाराज की बड़ाई जाननी यह है कि जो कुछ दुःख और कष्ट इसको आय प्राप्तहोवे तब उस पुरुप को चाहिये कि लोगों के आगे प्रसिद्ध न करे और प्रसन्न रहे और एक सन्त ने यों भी कहा है कि दुःख करके रुदन करने अथवा मुख का रङ्ग पीत होने विषे संतोष दूर नहीं होता क्योंकि दुःखविषे रुदन और मुख का फिरना अवश्यही होताहै पर संतोप तबहीं दूर होता है जब ऊंचे पुकार करके रोवे अथवा मुख से भगवत् की निन्दाकरे कि महाराज ने मुझको कैसा दुःखी किया है सो इसी पर महापुरुष की वार्ता है कि जब महापुरुष का पुत्र मृत हुआ था तब उनके नेत्रों में कुछ आंसू भर आये तब प्रियतमों ने उनसे कहा कि रुदन करना सब किसी ने वर्जित किया है सो तुम किस निमित्त रोते हो तब महापुरुप ने कहा कि यह रोना नहीं यह दया है सो दया करके मेरा हृदय कोमल हुआ है और दया करनेहारे पर महाराज भी दया करते हैं और एक सन्त ने यों भी कहा है कि जो किसी का कोई

सम्बन्धी मरे तब शोक के वस्त्र न पहिरे और किसी प्रकार अपने शोक को लखावे नहीं तब सम्पूर्ण संतोष होता है और जब अपना मुख पीटै और शोक का पहरावाकरे और ऊंचे पुकारकर रोवे तब इस करके संतोष दूर होजाता है ताते यों जानना चाहिये कि यह सबही जीव श्रीरामजू के हैं और श्रीरामही के उत्पन्न किये हैं और मृत भी श्रीरामही की आज्ञा कर होते हैं ताते शोक करना व्यर्थ है इसी पर एक माई का वृत्तान्त है कि उस माई का एक पुत्र था सो मृत्यु को प्राप्तहुआ और पति उस माई का कहीं गया था सो जब घर आया तब पूछनेलगा कि तेरा पुत्र जो रोगी था सो अब उसका क्या हाल है? तब स्त्री ने कहा कि आज बहुत विश्राम में है ऐसे कहकर पति को भोजन करवाया और आपभी भोजन किया बहुरि पति से कहनेलगी कि मेरी असुक वस्तु पड़ोसी ने मांगली थी पर जब मैं मांगती हूं तब आगे से वह शोर करती है और देती नहीं तब पति ने कहा कि वह महामूर्ख है जो बिरानी वस्तु मांगलेवे और देने के समय पुकार करती है बहुरि स्त्री ने कहा कि तुम्हारा पुत्र भी महाराज की थाती थी सो अब अपनी वस्तु महाराज ने संभारलीनी है ताते शोक करना प्रमाण नहीं तब पति ने कहा कि इसी प्रकार निस्संदेह है जब हमारे पास था तब भी महाराज की थाती थी और अब भी उसी ने संभार लिया है बहुरि इनके संतोष की वार्त्ता जब महापुरुष ने सुनी है उन दोनों को बधाई दीनी और कहा कि भगवत् की इच्छा तुमको मीठी लगी है और इसी करके महाराज ने तुमको भी प्रियतम किया है और मैंने ध्यान विषे देखा है कि उत्तम सुख विषे तुम्हारा निवास हुआ है ताते निस्संदेह यही प्रसिद्ध हुआ कि सर्व अवस्था और सर्वकाल विषे जिज्ञासु को संतोषही चाहिये क्योंकि यद्यपि सर्व त्याग करके एकान्त विषे जायरहे और सर्वभोगों से मुक्तहोने पर वहां भी संतोष चाहिये इसकरके कि जब एकान्त ठौरविषे बैठता है तब भी नानाप्रकार के संकल्प फुरने लगते हैं तब उन संकल्पों करके भजन विषे विक्षेपता होती है और समय व्यर्थ होता है और आयुरूपी जो इस मनुष्य की पूंजी है सो जब यह पूंजी इसकी व्यर्थ गई तब इस करके मनुष्यकी परमहानि होती है ताते इसका उपाय यह है कि आपको भजन विषे परचावे और संतोष विषे दृढ़ होवे तब संकल्पों से मुक्त होवे पर जबलग इस पुरुष का हृदय भजन विषे एकत्र न होवे तबलग आन संकल्पों

से नहीं छूटता सो इसी कारण से महापुरुष ने कहा है कि जो पुरुष युवा और अरोग होवे और शुभाशुभ क्रिया से रहित होकर बैठरहे तब वह भगवत् की ओर से विमुख होता क्योंकि यद्यपि इन्द्रियों कर निष्कर्म हुआ है पर मन करके संकल्पों से रहित नहीं होसक्ता ताते जानिये कि निष्कर्म नहीं हुआ क्योंकि मन उसका संकल्प विषे आसक्त रहताहै और अविद्या उसके निकट है और बुद्धि उसकी संकल्पों का घर होती है सो जो भजन की दृढ़ता करके संकल्पों को दूर न करसके तब चाहिये कि सेवा अथवा किसी शुभ क्रिया विषे इन्द्रियों को लगावे और ऐसे पुरुष को एकान्त विषे बैठना प्रमाण नहीं सो जिसके हृदय विषे भजन का बल न होवे तब चाहिये कि शरीरकरके शुभक्रिया विषे स्थित होवे तौ भला है (अथ प्रकट करना उपाय संतोष के प्राप्त होनेका) ताते जान तू कि संतोष के द्वारे बहुत हैं और सब द्वारों विषे कठिनता करकेही संतोष होता है ताते संतोष के प्राप्त होने के उपाय भी अनेक हैं पर सर्व उपायों का मूल ये दो हैं एक विद्या दूसरे करतूति सो बुरे स्वभावों का जो दूर करना कहा है सो सब संतोष करके सिद्ध होतेहैं पर यहां भी मैं एक दृष्टान्त करके प्रकट करताहूं ताते जान तू कि संतोष का अर्थ आगे यही कहाहै कि भोगोंकी वासनासे विरुद्ध करना और शुभवासना विषे सावधान होना और इन दोनों की वड़ाई विषे संतोष करना सो इनका दृष्टान्त यह है जैसे किसी पुरुषके दो पहलवान होवें और वह पुरुष यों चाहे कि एक पहलवान प्रबल होवे और दूसरे को निर्बल किया चाहे तब इसका उपाय यह है कि जिसको निर्बल किया चाहताहै तिसकी सहायता नहीं करता और बलदायक आहार भी उसको नहीं देता ताते वह निर्बल होजाता है तैसेही जो पुरुष काम के बल को तोड़ न सके तब तिसका उपाय यह है कि प्रथम काम उपजानेहारे आहारों का त्याग करे और दिन को व्रत राखे और जब रात्रि को भोजनकरे तब आधा खावे और आधा भूखा रहे और आहारभी रूखाकरे बहुरि दूसरा उपाय यहहै कि सुन्दररूप देखने करकेभी काम उत्पन्न होताहै ताते चाहिये कि एकान्त ठौर विषे बैठे और जहां सुन्दर स्त्री और लड़का होवें तहां न जावे और नेत्रों को सुन्दररूप देखने से रोक राखे और तीसरा उपाय यह है कि मनके संकल्पों को विचारकर ठहरावे और यों जाने कि यह शरीर रुधिर, मांस, विष्ठा, मूत्र और और सर्वदुर्गन्धों का घर है ताते काम

का सुख महामलिन है सो ऐसे वचनों कर मन को समझावे क्योंकि यह मन कठोर पशुकी नाईं है ताते इसको कष्ट देना प्रमाण है जैसे कठोर पशु को इस प्रकार घास और पानी देते हैं कि वह पशु मरभी न जावे और अधिकबलीभी न होवे तब वह पशु दण्डकरके कोमल होजाता है तैसेही आहार और नेत्र और संकल्पों के रोकने करके काम का बल क्षीण होजाताहै बहुरि इस पुरुषको चाहिये कि धर्मकी वासना को दो प्रकार का बलदेवे सो एक यह है कि त्याग के फल का लाभ मन को समझावे और जिन पुरुषों ने भोगोंका त्याग किया है उनके वचनों को पढ़े सो जब इस प्रकार करके प्रतीति दृढ़ होती है तब यह पुरुष जानता है कि भोगों का सुख क्षणमात्र है और इनके त्यागने का सुख अविनाशी है ताते ऐसे जानकरके धर्मकी वासना प्रबल होजाती है बहुरि दूसरा यह है कि शनैःशनैः करके भोगों की वृत्ति को विपर्यय करे सो इसका दृष्टान्त यह है कि जैसे कोई पहलवान चाहे कि मेरा बल अधिक होवे तब प्रथम शरीर को आहार करके पुष्ट करता है बहुरि बलवान् कार्य करताहै तब क्रम करके बल उसका बढ़जाता है और जो आपसे निर्बल होवे प्रथम उसके साथ वीरविद्याभी करता है तब इस करके भी बल अधिक होताहै और बलवान् कार्य करने करके भी बल अधिक होता है तैसेही संतोष के प्राप्त होनेका उपाय भी इसी प्रकार है कि जब शनैःशनैः करके भोग वासनाको विपर्ययकरे तब पीछे सब वासनाओं के दूर करने को समर्थ होजाता है और संतोप की विद्या जो कहीथी सो बलदायक आहार की नाईं है सो इस करके भी संतोष दृढ़ होताहै (अथ प्रकट करनी महिमा धन्यवाद की) ताते जान तू कि धन्यवाद उत्तम पदार्थ है और अति प्रियतम है ताते धन्यवादके सम्पूर्णरूप को प्राप्तहोना कठिनहै इसीपर महाराज ने भी कहा है कि मेरे सृष्टि विषे धन्यवाद करनेहारे दुर्लभहैं और योंभी कहाहै कि मुक्तिदायक लक्षण दो प्रकार के होते हैं सो एक लक्षण भगवत् मार्ग का साधन है जैसे त्याग और संतोप और वैराग्य और संग्रह और अपने मन के साथ विरुद्ध करना सो यह सबही परमपद के साधन हैं और परमपद इनसे परे है पर इन लक्षणों करके प्राप्त होता है बहुरि दूसरे लक्षण ऐसे हैं कि वह लक्षण आपही सुखरूप हैं और इस पुरुष के सदैव काल संगी हैं और वह किसी पद के साधन नहीं जैसे प्रेम और एकता और भरोसा और धन्यवादभी इन्हीं विषे

है सो यह पद थे परमपदरूप है ताते धन्यवाद का बखान पोथी के अन्त में कहना था पर इस कारण करके यहां कहा है कि संतोष के साथ धन्यवाद का सम्बन्ध है और धन्यवाद की बड़ाई बहुत विशेष है और धन्यवादही भजन है इसीपर महाराज ने भी कहा है कि धन्यवाद का करनाही भजन है और योंभी कहा है कि तुम मेरा भजन करो तब मैं तुम्हारा स्मरण करूं बहुरि योंभी कहा है कि मेरा धन्यवाद करो मनमुखता मतकरो इसीपर महापुरुष ने भी कहा है कि जो पुरुष भोजन पाकर धन्यवाद करे तब ऐसे फल को प्राप्त होता है जैसा फल संतोष के व्रत करनेहारे को होवे और योंभी कहा है कि परलोक विषे महाराज कहेंगे कि धन्यवाद करनेहारे जीव कहां हैं और जिन्हों ने धन्यवाद किया होवे वे उठ खड़े होवें तब धन्यवाद करनेहारे उठेंगे और उनके ऊपर महाराज अतिप्यार और दया करेंगे बहुरि महाराज की महापुरुष को भी आज्ञा हुई थी कि अपने प्रियतमों से कहो कि बहुत धन इकट्ठा न करो तब यही वचन सुनकर एक प्रियतम ने महापुरुष से पूछा था कि फिर इकट्ठा क्या करें? तब महापुरुष ने कहा कि जिह्वा श्रीसीताराम जपनेहारी और हृदय धन्यवाद करनेहारा और मित्र सतसंगी जो भजन की युक्ति सिखावे और माया के जंजालों से काढ़कर भजन विषे दृढ़ करावे और भगवत् मार्ग विषे लगावे सो यह तीनों इकट्ठे करो बहुरि एक और सन्तने भी कहा है कि धन्यवाद करके भरोसा प्राप्त होताहै और एक सन्तने कहा है कि मैंने एक दिन महापुरुष की धर्मपत्नी से पूछा कि कोई आश्चर्यवार्त्ता महापुरुष की मुझको सुनावो तब उन्हों ने कहा कि महापुरुष की वार्त्ता सबही आश्चर्यरूप हैं पर एक दिन उन्होंने संध्याकाल का भजनकिया और सारी रात्रिभर खड़े रोतेरहे तब मैंने कहा कि तुम्हारे पाप तो भगवत् ने सबही क्षमा किये हैं अब तुम किस निमित्त रोतेहो तब महापुरुष ने कहा कि मैं महाराज का धन्यवाद करकेही रोताहूं और महाराज ने मुझको इस प्रकार आज्ञा करी है कि सोते जागते बैठते उठते भजन विषेही दृढ़ रहो और जो कुछ धरती आकाश विषे मैंने रचना बनाई है तिसको देखकर आश्चर्यवान् मत होनो बहुरि यह जो अवस्था तुमको दीनी है तिसका धन्यवाद करो और धन्यवाद ही के प्रेम करके रुदन करो भय करके न रोवो इसी पर एक वार्त्ता है कि एक समय में कोई एक महापुरुष हुये थे सो किसी पहाड़ में जाय निकसे तब एक पत्थर को उन्हों ने

रोते देखा तब उस पत्थर से पूछा कि तू क्यों रोता है? तब वह पत्थर महाराज की आज्ञा करके बोलताभया कि जब से मैंने सुना है कि महाराज ने यों कहा है कि पत्थर और मनमुखों को मैं नरक बिषे डालकर जलाऊंगा तबसे मैं रोता हूं बहुरि उन महापुरुष ने महाराज से प्रार्थना करी कि हे महाराज! इस पत्थर को अभय करो सो यह प्रार्थना महाराज ने मानकर उसको अभय किया बहुरि दूसरीबार वह महापुरुष तहां आये तब फिर भी उसको रुदन करते देखा तब पूछा कि तू अब क्यों रोता है नरक से तो अभय होचुका तब उस पत्थर ने कहा कि आगे तो मैं भयकरके रोता था और अब धन्यवाद करके रोता हूं ताते जान तू कि मनुष्यों का हृदय पत्थर से भी कठोर हैं पर जब उस पत्थर की नाईं कभी भय करके रोवे और कभी प्रेम करके रुदन करे तब कोमल हृदय होताहै अन्यथा नहीं होता (अथ प्रकटकरना रूप धन्यवाद का) ताते जान तू कि धर्म का मूल तीन पदार्थ आगे कहे थे एक बूझ दूसरे अवस्था तीसरा करतूति सो यह तीनों धर्म के मूल हैं पर प्रथम बूझ है और बूझ से अवस्था उत्पन्न होती है और अवस्था से करतूति प्रकट होती है सो धन्यवाद की बूझ यह है कि जितने सुख और पदार्थ श्रीराघवजी ने इसको दिये हैं सो उनकी दया करके जाने और अवस्था धन्यवाद की यह है कि महाराज के उपकार की प्रसन्नता इसके हृदय बिषे होवे और करतूति यह है कि वह पदार्थ उसी की ओर लगावे जिस करके महाराज प्रसन्न होवें सो धन्यवादकर्त्ता का सम्बन्ध बुद्धि और जिह्वा और इन्द्रियों के साथ होताहै सो जबलग भलीप्रकार इस सम्बन्ध को पहिंचाने नहीं तबलग सम्पूर्ण धन्यवाद नहीं कहसक्ता और जबलग सम्पूर्ण सुख महाराजकी ओरसे न जाने तबलग सम्पूर्ण बूझ धन्यवाद की नहीं प्राप्तहोती जैसे राजा किसी को शिरोपाव देवे और वह पुरुष यों जाने कि प्रधान की प्रसन्नता से मुझको शिरोपाव मिला है तब ऐसे जानने करके पूर्ण धन्यवाद राजा का नहीं हुआ अर्थ यह कि उसकी प्रसन्नता राजा के शिरोपाव देनेपर न हुई पर जब इस प्रकार जाने कि मुझको राजा के आज्ञापत्र करके शिरोपाव मिला है और पत्र कलम और मसी करके लिखा होता है सो पत्र और कलम और स्याही को वसीला जानने करके धन्यवाद खण्डित नहीं होता क्योंकि कागज़ और कलम और स्याही आप करके सिद्ध नहीं होते केवल पराधीन होते हैं जैसे खज़ानची किसी को राजा

की आज्ञा करके कुछ देवे तब खज़ानची का उपकार नहीं होता खज़ानची राजा की आज्ञा के वशीकार होता है आप करके देनेको समर्थ नहीं होता ताते कलम और खज़ानची पराधीनता विषे समान हैं तैसेही सर्वसुख जो श्रीजानकीनाथ महाराज ने इस मनुष्य को दिये हैं और अन्न आदिक जो अनन्त पदार्थ जीवों के सुख और जीवने के हेतु पृथ्वीपर प्रकट किये हैं सो जब उनकी उत्पत्ति वर्षा करके जाने और वर्षा मेघों से जाने और जहाजों का निर्विघ्न चलना पवन करके जाने तब इस करके महाराज का केवल धन्यवाद नहीं होता पर जब यों जाने कि इन्द्र, मेघ, पवन, सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र और और इनकी नाईं जो सर्व देवताहैं सो सब श्रीरामही की शक्ति करके चलते हैं और यह सब उसके हाथ की कलम हैं आप करके समर्थ कुछ नहीं तब ऐसे जानने करके धन्यवाद पूरा होता है ताते जब कोई मनुष्य तुझको कुछदेवे और तू उसी मनुष्य से जाने तब यह मूर्खता होती है और इस करके धन्यवाद खण्डित होताहै पर जब यों जाने कि इस मनुष्यने यह पदार्थ मुझको तब दियाहै जब महाराज ने उसकी ओर अपना प्यादा भेजा है और तिस प्यादे ने बरबस दिवाया है सो वह प्यादा श्रद्धा है जो उस मनुष्य के अन्तर विषे प्रेरी है और उस पुरुष ने जिस करके यों जानाहै कि लोक परलोक विषे मेरा भला तब होवेगा जब मैं इस पुरुष को अपना पदार्थ देऊंगा ताते उसने अपने प्रयोजन करके दियाहै और लोक अथवा परलोक विषे अपना भला चाहाहै ताते उसने आपही को दिया है और किसी को नहीं दिया सो जब इस प्रकार देखिये तब महाराजही ने दियाहै और महाराजने किसी प्रयोजन करके नहीं दिया केवल अपनी दया करके दियाहै सो जब तुमने ऐसा जाना कि सबही मनुष्य महाराज के खज़ानची हैं और महाराज ही की आज्ञा करके देते हैं तब ऐसे जानने करके धन्यवाद पूर्ण होताहै और महाराज की ओर तू सम्मुख होताहै इसीपर महाराज से मूसा महापुरुष ने पूछाथा कि हे महाराज! तुमने आदि में मनु महाराज को उत्पन्न किया था और नानाप्रकारके सुख उनको दिये तब उन्होंने आपका धन्यवाद किस प्रकार किया तब महाराज ने कहा कि उसने सब सुखोंको मेरी ओरसे जाना और और किसी की ओर अपना हृदय न दिया सो इस करके उसका धन्यवाद पूर्णहुआ ताते जान तू कि धर्म के द्वारे बहुत कहे हैं सो प्रथम यहहै कि श्रीरामको निर्लेप और

अकर्त्ता जानना और सर्वस्वभावों से रहित और संकल्प से परे जानना १ और दूसरा द्वारा यह है कि महाराजको एक जानना और ऐसा जानना कि श्रीरामजी की नाईं और कोई नहीं २ और तीसरा द्वारा यह है कि सर्व पदार्थों के उत्पन्न करनेहारे श्रीरामहैं और प्रतिपालकभी वही हैं ताते सर्वप्रकार महाराजका धन्य-वादहै सो ऐसे जानना विशेषहै ३ इसीपर महापुरुषने भी कहाहै कि महाराज को निर्लेप और अकर्त्ता जानने करके दशभाग भलाई होती है और जब यों जाने कि महाराज एकहै और उसकी नाईं और कोई नहीं तब बीसभाग भलाई होती है और महाराज को सर्व पदार्थों का कर्त्ता जानकर धन्यवाद करने बिषे तीस भाग भलाई होतीहै सो यह जो तीन वचन हैं इनके केवल पढ़ने से फल प्राप्त नहीं होता पर जब इनका अर्थ चित्त बिषे दृढ़होवे तब निस्संदेह फल प्राप्त होताहै सो धन्यवादकी विद्या यहीहै और इस जानने करके जो प्रसन्नता उत्पन्न होती है सो धन्यवाद की अवस्था भी यही है जैसे कोई पुरुष किसी मनुष्य से कोई पदार्थ अथवा सहायता पावे तब उसके ऊपर प्रसन्न होता है सो प्रसन्नता तीन प्रकार की है जैसे कोई राजा किसी दास को घोड़ा देवे और वह दास इस करके प्रसन्न होवे कि मुझको भला पदार्थ प्राप्तहुआ है क्योंकि मुझको घोड़ा अवश्यही चाहिये था और मैं घोड़े बिना दुःखी था सो अब घोड़ा पायकर सुखी होऊंगा तब यह प्रसन्नता राजाके उपकारकी नहीं होती क्योंकि जब उस दास को वन बिषे दैवयोग करके प्राप्त होजाता तबभी ऐसाही प्रसन्न होता १ बहुरि दूसरी प्रसन्नता यहहै कि राजा जिसको घोड़ा देवे वह पुरुष इस करके प्रसन्न होवे कि मेरे ऊपर राजा दयालु हुआ है ताते मुझको अपनी दयाकरके और भी अनेक पदार्थ देवेगा सो यह प्रसन्नता पदार्थ देनेहारे के ऊपर होती है उस पदार्थ के प्रयोजन की प्रसन्नता नहीं ताते जब उस पुरुषको वन बिषे घोड़ा प्राप्त होता तब ऐसा प्रसन्न न होता क्योंकि राजा से एक घोड़ा पायकर नानाप्रकार का आशावन्त होताहै और प्रसन्न होताहै सो यह भी धन्यवादहै पर सकामी है ताते सम्पूर्ण धन्यवाद नहीं २ और तीसरी प्रसन्नता यह है कि जिस दास को राजा घोड़ा देवे वह इस करके प्रसन्न होवे कि मैं इस घोड़ेपर सवार होकर राजाको प्राप्त होऊंगा और उसके साथ रहूंगा और टहल करूंगा सो यह प्रसन्नता सम्पूर्ण धन्य-वाद करके होती है ३ तैसेही श्रीजानकीश महाराज ने जो इस मनुष्य को सुख

दिये हैं सो उन सुखों करके आपको सुखी मानकर प्रसन्न होवें तब महाराज का धन्यवाद नहीं होता और जब इस करके प्रसन्न होवे कि जिस महाराजने दया करके इतने सुख मुझको दिये हैं सो और भी सुख देवेगा और सुखकी प्राप्तिको महाराजकी दया जाने और और सुखोंकी आशा करे तब यहभी सकामी धन्यवाद होताहै बहुरि जो पुरुष इस करके प्रसन्नहोवे कि यह सर्वसुख महाराजकी दातहै और मेरे धर्म का वसीलाहै क्योंकि सुख को पायकर मैं विद्या और भजन विषे दृढ़ होऊंगा और सर्वपदार्थों को महाराजके अर्थ लगाऊंगा और इस करके महाराज के दर्शन को प्राप्त होऊंगा सो इस करके प्रसन्न होना सम्पूर्ण धन्यवाद है और सम्पूर्ण धन्यवाद का लक्षण यह है कि जिस पदार्थको देखकर इसको मोह उत्पन्न न होवे तिस पदार्थ को विपत्ति जाने और जब वह पदार्थ दूर होवे तब सुख और भलाई जाने और उसके दूर होने विषे धन्यवाद करे और जो पदार्थ भगवत् के मार्ग विषे सहायता न करे तिसको देखकर शोकवान् होवे प्रसन्न न होवे इसीपर शिवलीसन्तने कहा है कि महाराज के उपकार का धन्यवाद यह है कि सुखदानी महाराज को देखे सुखकी ओर दृष्टि न राखे और जिसके नेत्र सुन्दररूप देखने और जिह्वा स्वादों को और इन्द्रियां अपने २ भोगों को चाहती होवें सो ऐसे विषयी पुरुष को विचार नहीं होता और विचार बिना संतोष सिद्ध नहीं होता और सन्तोष बिना धन्यवाद नहीं होसक्ता बहुरि धन्यवाद की करतूति इसप्रकार है कि वह मन और जिह्वा और शरीरके साथ सम्बन्ध रखता है सो मनकरके धन्यवाद की करतूति यह होती है कि सर्वसृष्टिका भला चाहे और किसी के धन और मान को देखकर ईर्षा न करे और जिह्वा की करतूति यों होतीहै कि सर्व अवस्था और सर्व समय विषे धन्यवाद का उच्चारणकरे और सुखदेनेहारे महाराज पर चित्त की प्रसन्नता प्रकटकरे इसीपर एक वार्त्ता है कि किसी पुरुष से महापुरुष ने पूछा कि तुम्हारा क्या हालहै? तब उसने कहा कि कुशल है बहुरि महापुरुष ने कहा कि तेरा क्या हाल है? फिर भी उसने कहा कि बहुत सुख है और महाराज का धन्यवाद है तब महापुरुष ने कहा कि मेरा फिर फिर पूछने का प्रयोजन यही है कि महाराज का धन्यवाद प्रकटहोवे तातें मनुष्यों को ऐसे चाहिये कि जब कोई इससे पूछे कि तेरा क्या हाल है? तब धन्यवाद ही का उत्तर देवे तो दोनों पुरुष उत्तम फल को प्राप्तहोते हैं और जब

कोई किसी से कुछ पूछे और कहनेहारा अपना दुःख और ग्लानि वर्णन करे तब दोनों पापी होते हैं ताते यद्यपि यह पुरुष दुःखी भी होवे तो भी महाराज का धन्यवाद ही वर्णनकरे क्योंकि यह सबहीलोग पराधीन हैं और इनके हाथ कुछ नहीं सो तिनके आगे महाराज की निन्दा करनी कैसे प्रमाण होवे ताते सर्वप्रकार संकट और दुःख में भी धन्यवाद करना विशेष है क्योंकि यद्यपि यह जीव नहीं जानसक्ता पर महाराज की दृष्टि बिषे उसही दुःख से इसकी भलाई होवे तो आश्चर्य नहीं ताते धन्यवाद करना भला है और जो धन्यवाद न कर सके तो संतोष करे बहुरि धन्यवाद की करतूति शरीर करके इस प्रकार होती है कि सर्व इन्द्रियां जिस निमित्त इसको महाराज ने दीनी हैं तिनको उसी अर्थ बिषे लगावे तब स्वामी की प्रसन्नता को प्राप्त होता है सो यद्यपि इसकी भलाई बुराई से महाराज निर्लेप हैं पर जीव की भलाई को देखकर महाराज भी प्रसन्न होते हैं जैसे राजा अपने दास पर दयालु हो और वह दास राजासे दूर देशमें रहता होवे सो राजा उसके पास घोड़ा और खर्च भेजे जिस करके वह दास हमारे पास आवे तब मैं उसकी बड़ी पदवी करूं सो राजा को उस दास का दूर और निकट होना समान है पर केवल उसही का सुख चाहताहै और राजाको अपना प्रयोजन कुछ नहीं पर जब वह दास उस घोड़े पर सवारी करके राजा की ओर आवे तब जानिये कि उसने राजा का सम्पूर्ण धन्यवाद किया है और जब घोड़े पर सवार होकर राजा की ओर से पीठ करके चले तब निस्सन्देह राजा से दूर होता है और उसी घोड़े करके दूसरी दिशा को जावे तब राजा से विमुख होता है बहुरि जब यों करे कि घोड़ेपर चढ़े नहीं और व्यर्थही छोड़देवे तो भी मनमुख होताहै पर यद्यपि उस दूरही दिशा जानेहारे की नाईं नहीं तो भी राजा को प्राप्त नहीं होता तैसेही इस मनुष्य को इन्द्रिय और नाना प्रकार के सुख जो महाराज ने दिये हैं सो जब यह पुरुष उनको धर्म के मार्ग बिषे लगावे तब इस करके भगवत् के निकट पहुँचता है और सम्पूर्ण धन्यवाद को प्राप्त होता है और जब इन्द्रियों को पाप कर्मों बिषे लगावे तब महाराज से दूर होता है और मनमुखता को प्राप्त होता है और जब इन्द्रियों को पाप और धर्म बिषे न लगावे और शरीरके सुखोंबिषे आसक्तहोवे तो भी मनमुख होताहै ताते सम्पूर्ण सुखों का धन्यवाद तब होता है जब प्रथम महाराज की आज्ञा को पहिं-

चाने और उसी आज्ञा विषे इन्द्रियों को लगावे सो ऐसी अवस्था महाकठिन है और सूक्ष्महै क्योंकि सब कोई इसको पहिंचान भी नहीं सक्ता कि महाराज इस करके प्रसन्न होता है और इन्द्रियां और सर्व पदार्थ इसको किस निमित्त दिये हैं ताते प्रथमही यों जानना चाहिये कि सर्व सृष्टि और सकलपदार्थ महाराजने कार्य विना नहीं उत्पन्न किये सो जब इन सबके प्रयोजन को समझे तब धन्यवाद का अधिकारी होताहै (अथ प्रकट करना रूप मनमुखता का) ताते जान तू कि मनमुखता यह है कि पदार्थ के प्रयोजन को न समझना और जिस कार्य के निमित्त यह पदार्थ उत्पन्न हुये हैं तिस से विपर्यय में लगाना और जिस प्रकार महाराज की आज्ञा हुई है सो जब उसी आज्ञा विषे दृढ़ होवे तब धन्यवाद होता है और अन्यथा कार्य विषे लगावने करके मनमुख होता है और भगवत् की आज्ञा का समझना भी सम्पूर्ण विद्या विना नहीं होता सो विद्या यह है कि भगवत् ने जो पदार्थ दिये हैं सो भगवत् के भजन विषे लगावने और भजन विषे दृढ़ तब होता है जब बुद्धि के नेत्र खुलते हैं ताते यथार्थ के मार्ग विषे चलताहै और अनुभव करके सर्व पदार्थों के तात्पर्य को समझता है तब धन्यवाद का अधिकारी होताहै और जिस २ कार्य के निमित्त भगवत् ने पदार्थ उत्पन्न किये हैं सो इनका समझना भी कठिन है यद्यपि अपनी बुद्धि के अनुसार सब कोई कछुक समझताहै पर सब भेदों को समझना कठिन है जैसे सब कोई जानताहै कि वर्षा खेती के निमित्त होती है और खेती आहार के निमित्त है और सूर्य करके रात्रि और दिन प्रकट होता है सो रात्रि विश्राम के निमित्त बनाई है और दिन व्यवहार के निमित्त बनायाहै ऐसेही इसकी नाईं जो बहुत पदार्थ और भी प्रकट हैं सो तिनका ज्ञान सर्व मनुष्यों को प्रसिद्ध है पर सूर्य विषे रात्रि दिवस विना और भी केते कार्य हैं कि उनका ज्ञान किसी को नहीं और आकाश विषे जो तारामण्डलहैं सो तिनकी बात भी कोई नहीं जानता और यों भी नहीं जानता कि उनकी उत्पत्ति का भेद क्या है ? जैसे सब कोई जानता है कि हाथ ग्रहण करने को उत्पन्न कियेहैं और नेत्र देखने के निमित्त किये हैं पर यों नहीं जानसक्ता कि नेत्रों के साथ परदे किस कारण को बनाये हैं और योंभी नहीं जानता कि जिगर और तिल्ली को किस निमित्त उत्पन्न किया है क्योंकि यह भेद सूक्ष्म है और एक ऐसे भेद हैं कि वह सूक्ष्म से भी

अतिसूक्ष्महैं ताते उनको कोई विरला बुद्धिमान् समझताहै और इसका बखान करना भी बहुत विस्तारहै ताते मैं तात्पर्य को प्रकट करके कहताहूं कि मनुष्य को भगवत् ने अपनी बूझ और पहिंचान के निमित्त उत्पन्न किया है ताते चाहिये कि परलोक को जाने और शरीर और इन्द्रियों को भगवत् मार्ग विषे लगावे और परलोक ही का चिन्तन चित्त विषे दृढ़करे और हृदय विषे यों न जाने कि भगवत ने सब पदार्थ मेरेही निमित्त उत्पन्न किये हैं क्योंकि जब यों जानता है तब जिस पदार्थ विषे अपना लाभ नहीं देखता है तो कहता है कि यह पदार्थ किस कार्य को उत्पन्न किया है और इसके उत्पन्न होनेका भेद क्या है और कहता है कि माखी और चींटी के उत्पन्न होने का कारण क्या है? सो यह बड़ी मूर्खता है क्योंकि ऐसेही माखी और चींटी भी कहते हैं कि मनुष्य काहे को उत्पन्न हुआ है और इसके उपजने विषे क्या लाभ था? जो हमको लताड़ मारता है और व्यर्थही भटकता फिरता है ताते जैसा अनुमान मकोड़ा करताहै तैसाही मनुष्य भी करताहै पर जब भलीप्रकार विचार करके देखिये तो श्रीराघवजी की दया सर्व विषे भरपूर है और समान है ताते महाराज की समर्थता ऐसी है कि जो पदार्थ जिस प्रकार चाहिये था उसी प्रकार उत्पन्न कियाहै जैसे पशु और वृक्ष और खानि और और जो स्थावर जङ्गम सर्व सृष्टि है सो अपनी दया के साथ भलीप्रकार बनाये हैं और जो कुछ इनको चाहिये था सो सबही दिया है जैसे शिर और हाथ पांव और सुन्दरताई सो सबही को दियाहै क्योंकि महाराज के निकट कोई पदार्थ ऐसा नहीं जो न होवे और कृपणता भी नहीं जो न देवे ताते सब किसीको सुन्दर और सम्पूर्ण करके बनायाहै और जो पदार्थ उत्पन्न न किया सो उत्पत्ति का अधिकारी न था जैसे अग्नि विषे शीतलता उत्पन्न नहीं हुई सो अग्नि विषे उष्णताही चाहिये थी और जल विषे शीतलता ही चाहिये थी ताते जलको अग्नि पर विरोधी करके बनाया है सो इनके विरुद्ध विषेही प्रयोजन है जैसे अग्नि विषे उष्णता का प्रयोजन है तैसे जल विषे शीतलता भी प्रयोजन है और दोनोंही चाहिये हैं सो जब अग्निकी उष्णता दूर होजावे तब अपने कार्य को समर्थ नहीं होसक्ता ताते जान तू कि जो पदार्थ उत्पत्ति का अधिकारी था सो उत्पन्न किया है और जो उत्पत्ति का अधिकारी न था सो नहीं किया जैसे माखी को तरीसे बनाया है सो माखी को

तरीही का अधिकार था ताते उसका अधिकार उसको भी दियाहै क्योंकि श्रीजानकीजीवनजू की दया विषे कृपणता नहीं ताते अपनी परम उदारता करके माखी को भी जीव और बल और इन्द्रिय और सर्व अङ्ग सुन्दर दियेहैं बहुरि पंख और हाथ, पांव, नेत्र, मुख, नाक, शिर और आहार के पचने का स्थान और मल त्यागने का स्थान और और भी जो कुछ उसको चाहिये था सो सब ही दिया है दुराय कुछ नहीं राखा बहुरि उसको नेत्र भी चाहते थे और शिर उसका छोटा था ताते पलकोंके उठाने का अधिकारी न था इसीकारणसे माखी के नेत्र पलकों विना बनाये हैं और पलकों की उत्पत्ति का प्रयोजन यहहै कि वह धूरि से नेत्रों की रक्षा करते हैं जैसे दर्पण को सिकलीगर शुद्ध करता है तैसेही पलक नेत्रों को शुद्ध करते हैं सो माखीके नेत्र पलकों से रहित थे ताते उसको दो हाथ अधिक दिये हैं जो उनसे नेत्रों को मर्दन करके शुद्ध करती है बहुरि हाथों को भी झाड़ लेती है सो मेरे कहने का प्रयोजन यह है कि भगवत् की दया केवल मनुष्यपर नहीं सर्व विषे भरपूरहै ताते कीट पतङ्ग और अवर जीवों को जो कुछ चाहिये था सो सबको दिया है और जो कुछ हस्ती को दिया सो और को भी दिया है और इनको मनुष्य के निमित्त नहीं किया जैसे मनुष्य को इनके निमित्त नहीं किया तैसे सब किसी को अपने अपने ही निमित्त किया है क्योंकि उत्पत्ति के आदि में महाराज के साथ मनुष्य का सम्बन्ध न था जो उस करके मनुष्य ही उत्पन्न होने का अधिकारी होता और न होते सो यों नहीं क्योंकि श्रीराघवेन्द्रजू की दया समुद्र की नाईं भरपूर है और सर्वपदार्थ उसही विषे हैं ताते मनुष्य भी उसी विषे हैं और अवरभी अनेक पदार्थ उसही विषे हैं पर इस विषे इतना भेद है कि उत्तम पदार्थ पर नीच पदार्थ निछावर किया चाहिये है और जो कुछ धरतीपर सृष्टि है सो तिस विषे मनुष्य उत्तम है इसीकारण से और जीव मनुष्य के टहलुवे बनाये हैं सो यद्यपि ऐसे भी हैं पर तौ भी समुद्रों विषे ऐसे जीव उत्पन्न किये हैं कि उनको परम दया करके सर्व प्रकार सुन्दर बनाया है और उन से मनुष्य का कुछ प्रयोजन सिद्ध नहीं होता और सब मनुष्य उनकी सुन्दरताई को पहिंचान भी नहीं सके बहुरि वही पहिंचानता है जो समुद्रों की विद्या का वेत्ता होवे सो मेरे कहने का प्रयोजन यह है कि तू सर्वथा यों न जाने कि भगवत् ने सब कुछ मेरे निमित्त बनाया है

और जिस विषे अपने कार्य की सिद्धता न देखे तब यों न कहे कि यह पदार्थ काहे को उत्पन्न किया है सो जब तैंने यों जाना कि मकोड़ा मेरे वास्ते उत्पन्न नहीं हुआ तैसेही चन्द्र सूर्य तारे और देवता भी तेरे अर्थ नहीं बनाये यद्यपि इन करके तुम्हारे कार्य भी सिद्ध होते हैं पर केवल तुम्हारे निमित्त उत्पन्न नहीं किये जैसे माखी यद्यपि तेरे शरीर की दुर्गंध को चूस लेती है और दुर्गन्धता को घटाती है पर माखी को केवल इसीकारण नहीं बनाया और जब तू यों जाने कि सब कुछ मेरेही निमित्त सिरजा है तब इसका दृष्टान्त यह है जैसे माखी अपने चित्त विषे जाने कि शीरीं मिठाई हलवाई लोग मेरेही अर्थ करते हैं सो यद्यपि उनकी मिठाई करके माखी को भी आहार प्राप्त होताहै पर वह हलवाई अपने व्यवहार विषे ऐसा मग्न है कि माखी उसके स्मरण विषे भी नहीं होती तैसेही तू भी जानता है कि सूर्य मेरेही अर्थ नित्यप्रति उदय होते हैं और सूर्य भगवत् की आज्ञा विषे ऐसे मग्न होते हैं कि तुझको स्मरण विषेभी नहीं लाते ताते जान तू कि सूर्य को तेरे निमित्त नहीं बनाया यद्यपि सूर्य के प्रकाश से तेरे नेत्रभी प्रकाशित होते हैं पर तौ भी तेरेही निमित्त नहीं बनाया बहुरि सूर्य की उष्णता करके धरती का स्वभाव समान होता है तब जल को खैंचती है और उस विषे नाना प्रकार के आहार उत्पन्न होते हैं सो सर्वदा पदार्थों के उत्पन्न होने का भेद वर्णन किया नहीं जाता पर मैं कछुक दृष्टान्तमात्र प्रकटकर कहताहूं जैसे तेरे नेत्रहैं सो दो कार्यों को बनाये हैं एक कार्य यह है कि नेत्रों करके तेरे शरीर का व्यवहार सिद्ध होताहै और दूसरा कार्य यह है कि नाना प्रकार की रचना को देखकर महाराज की बड़ाई और समर्थता और पूर्णता को पहिंचाने पर जब तू इन नेत्रों करके परस्त्री को देखे तब यह तेरा देखनाही भगवत् के पदार्थ की मनमुखता होती है बहुरि नेत्रों का देखना सूर्य करके सिद्ध होता है और सूर्य धरती और आकाश विषे होता है पर जब तू नेत्रों करके कुदृष्टि देखे तब धरती और आकाश और सूर्य और नेत्र इन सर्वपदार्थों की मनमुखी होती है इसी पर महापुरुष ने भी कहा है कि जब यह मनुष्य पाप करने लगता है तब इसको धरती और आकाश भी धिकार करते हैं बहुरि हाथ और पांव तुझको महाराज ने इस निमित्त दिये हैं कि इन करके खाना पीना स्नानादिक क्रिया सिद्धकरे सो जब तू इन करके पापकर्म करे तब यह भी मनमुखी होती है क्योंकि महाराज

की प्रसन्नता विचार करके होती है सो विचार यह है कि उत्तम पदार्थ को उत्तम कार्य बिषे लगाना और नीच पदार्थ को नीच बिषे लगाना जैसे यह जो दोनों हाथ हैं सो एक इनमें से सबल और उत्तम है सो दाहिना हाथ है और बावां हाथ निर्बल और नीच है ताते चाहिये कि उत्तम हाथ से उत्तम कार्य करिये और नीच हाथ से नीच कार्य करिये तब विचार पूर्ण होताहै और जब ऐसे न करे तब पशुकी नाईं मूर्ख होता है जैसे मूर्ख का थूक शुद्धस्थान बिषे डारे तब यह शुद्धस्थान की मनमुखता होती है अथवा किसी वृक्ष की शाखा अथवा फल फूल को प्रयोजन विना तोड़े तौ यह भी मनमुखता होती है क्योंकि महाराज ने शाखाबिषे नाड़ी बनाई हैं सो तिस करके रसको खैंचकर पुष्ट होती है ताते फल उत्पन्न होते हैं और उसी फलबिषे अनेकगुण उपजते हैं पर जब तैंने उसको प्रयोजन विना तोड़ा तब यह भी मनमुखी होती हैं और जब तुझको किसी कार्य का प्रयोजन होवे तब उसका काटना भी प्रमाण है क्योंकि तेरी बड़ाई पर उसकी बड़ाई निछावर है बहुरि इस बिषे एक और भी भेद है कि जब वह वृक्ष किसी दूसरे पुरुष का होवे तब भी तुझको काटना प्रमाण नहीं यद्यपि उस बिषे तेरा प्रयोजन भी होवे क्योंकि जिसका वह वृक्ष है तिसका कार्य तेरे प्रयोजन से विशेष है जब भली प्रकार विचार करके देखिये तब किसी मनुष्य का मिल्क कुछ नहीं क्योंकि महाराज ने यह माया थार की नाईं बनाई है और इसबिषे सर्वपदार्थ भोजन की नाईं हैं और सर्व जीव उसके ऊपर अभ्यागत हैं पर वह भोजन किसी एक पुरुष के दावे बिषे नहीं होता और यद्यपि ग्रास भिन्न २ सबही लेते हैं तौ भी वह भोजन सबही का साझा है पर जब कोई पुरुष ग्रास को अपने हाथ बिषे लेवे तब दूसरे पुरुष को यों भी नहीं चाहिये कि उसके हाथ से ग्रास को छीन लेवे तैसे ही सर्वजीवों की मिल्क ग्रास की नाईं है अधिक कुछ नहीं ताते किसीकी वस्तु को हरलेना भी प्रमाण नहीं और यों भी प्रमाण नहीं कि उस थाल से भोजन लेकर गुह्यस्थान बिषे रखता जावे सो इस निमित्त जो किसी और के हाथ में न आवे तैसेही इस मनुष्य को भी प्रमाण नहीं कि प्रयोजन से अधिक धन का संचयकरे और खज़ाना इकट्ठा करके घर राखे और जिनको चाहता होवे तिन को न देवे तौ यह भी अयोग्य है पर यह वचन भी जगत् बिषे प्रसिद्ध नहीं कहाजाता क्योंकि सब किसीका प्रयोजन भी प्रत्यक्ष नहीं जानाजाता पर जब

यों कहिये कि कार्य से अधिक संचय करना अयोग्य है और जिनको उसका विशेष प्रयोजन है तिनसे बचाकर रखना प्रमाण नहीं तब सर्व कोई निडर होकर एक दूसरे की वस्तु हरलेवे और कहे कि तेरे पास अधिक है और मुझको चाहिये है ताते इस बचन को धर्मशास्त्र बिषे भी प्रसिद्ध नहीं कहा क्योंकि इस का समझना कठिन है पर अधिक धन संचना महाराजने भी वर्जित किया है और विचार बिषे भी अयोग्य है तैसेही अनाज का संचना भी अयोग्य है क्योंकि अनाज जीवों का जीवन है और जो पुरुष यह मन्शा करके अनाजको इकट्ठाकरे कि जब महँगा होवेगा तब बेचेंगे तब उसको महाराज भी धिक्कार करतेहैं क्योंकि जिनको चाहिये तिनको नहीं देना और अपने लोभके निमित्त इकट्ठाकर रखना सो यह भी महानिन्द्य है तैसेही रूपे और स्वर्ण का इकट्ठा करना भी अयोग्य कहा है क्योंकि इनको महाराज ने दो कार्यों के निमित्त उत्पन्न किया है सो प्रथम यह है कि सर्व पदार्थों का मोल इनहीं करके प्रकट होता है और इनके बिना जाना नहीं जाता कि घोड़े का मोल क्या है और दास का मोल क्या है और कपड़े का मोल क्या है सो इन पदार्थों को एक दूसरेके हाथ बेच नहींसक्ता सो जब किसी पुरुष को किसी वस्तु का प्रयोजनहोवे तब मोल किये बिना लेना देना सिद्ध नहीं होता ताते महाराज ने चांदी सोना बनाया है सो इसको इकट्ठा करके दाब रखना ऐसा है जैसे कोई धर्मवान् राजा को क़ैद करराखे ताते निस्संदेह पापी होताहै और जब कोई पुरुष सोने चांदी के बासन बनावे तब ऐसे होताहै जैसे कोई श्रेष्ठ पुरुष को नीचटहल बिषे लगावे अथवा राजा से मजदूरी करावे क्योंकि बासन माटी और काष्ठ और और धातु के भी होते हैं ताते चांदी सोने अयोग्य हैं १. और दूसरा कार्य यह है कि रूपा सोना दुर्लभ पदार्थ बनाये हैं क्योंकि इन करके सर्व पदार्थ प्राप्त होते हैं इसी कारण से इन को सब कोई प्यारा रखता है और सबका व्यवहार इनहीं करके सिद्ध होता है और जब विचार करके देखिये तब वस्त्र और अन्नआदि पदार्थ खाने पीने शीत उष्णके कार्य करते हैं पर एक दूसरे का कार्य नहीं कर सक्के जैसे वस्त्रसे क्षुधा प्यास और अन्न से शीत उष्ण दूर नहीं होसक्के और सोना चांदी करके सब कुछ प्राप्त होताहै ताते जगत् बिषे इनकी बड़ाई और दुर्लभता है ताते जान तू कि जो कुछ प्रभु ने बनाया है सो प्रयोजन बिना नहीं बनाया पर इसबिषे ऐसे गुह्य

भेद हैं कि उनको कोई नहीं पहिंचान सक्ता कोई विरले सन्त ही पहिंचानते हैं और एक ऐसे भेद हैं कि उनको बुद्धिमान् पण्डितही समझते हैं और जीव नहीं समझते पर जब अज्ञानी पुरुष किसी वृक्षकी शाखा कार्य विना तोड़े अथवा कोई और कार्य विचार से विपर्ययकरे तब मैं उसपर ऐसा दोष नहीं रखता क्योंकि वह मूर्ख है और पशु की नाईं नीच है पर बुद्धिमान् जिज्ञासु को यही चाहिये कि अज्ञानियों की नाईं न वर्तै और सर्व क्रिया विचारके साथ करे और परलोक के मार्ग विषे सावधान होवे और सर्व कार्यों के भेद को पहिंचाने तब देवतों के स्वभाव को पावेगा और जब यों न करे तब पशुओं के स्वभाव को प्राप्त होता है (अथ प्रकट करना रूप सुख का) ताते जान तू कि भगवत ने जो कुछ इस मनुष्य के निमित्त उत्पन्न किया है सो सर्व पदार्थ चार प्रकार के हैं सो एक पदार्थ ऐसे हैं कि वह इसलोक और परलोक विषे सुख देनेहारे हैं सो बूझ और भला स्वभाव है सो सांचा सुखही है १ बहुरि दूसरे पदार्थ ऐसे हैं कि इसलोक और परलोक विषे दुःखदायक हैं सो मूर्खता और बुरा स्वभाव है सो परमदुःख यही है २ और तीसरे पदार्थ ऐसे हैं जो इसलोक विषे सुखरूप भासते हैं और परलोक विषे दुःख देनेहारे हैं सो यह माया के भोग हैं कि मूर्ख इनको सुख जानते हैं और बुद्धिमान् इनको दुःख जानकर त्यागदेते हैं जैसे कोई क्षुधावन्त पुरुष होवे और विष मिला हुआ शहद उसको प्राप्तहोवे सो जब वह मूर्खता करके विषको मधु विषे नहीं जानता तब उसको सुख जानकर भोगता है और जब विष को मधु विषे पहिंचानता है तब दुःख जानकर उसका त्यागकरता है तैसेही माया के सुखों को मूर्ख सुख जानते हैं और बुद्धिमानों ने दुःख जानकर त्याग दिया है ३ और चौथे प्रकार के पदार्थ ऐसे हैं कि इस लोक विषे दुःख भासते हैं और परलोकविषे सुखरूपहैं सो तप और वैराग्य और भोगों से विपर्यय होना है सो मूर्ख इनको दुःख जानते हैं और बुद्धिमानों के निकट यही परमसुख है जैसे करुई औषध को बुद्धिमान् रोगी प्रसन्न होकर अङ्गीकार करता है और मूर्ख कडुआ जानकर त्याग देता है पर इस जगत विषे सर्वपदार्थ आपस विषे मिलेहुयेहैं अर्थात् उन विषे बुराई भलाई दोनोंका सम्बन्ध होता है पर जिस पदार्थ विषे लाभ अधिक होवे और हानि अल्प होवे तिसको भला जानिये सो यह भी अधिकार प्रति होता है पर शरीर के कार्यमात्र जो

धन है सो तिस विषे लाभ बहुत है और हानि थोड़ी है और प्रयोजनसे अधिक जो धन है सो तिस विषे लाभ अल्प है और हानि अधिक है सो बहुत मनुष्यों का अधिकार ऐसाही होता है पर कोई पुरुष ऐसे भी होते हैं कि उनको थोड़ा धन भी दुःख देता है क्योंकि जब उनके धन कुछ नहीं होता तब तृष्णा से रहित होते हैं और जब थोड़ा धन भी उनको प्राप्त होता है तब बहुत धन की तृष्णा करनेलगते हैं और एक ऐसे भी ज्ञानवान् पुरुष होते हैं जिनको बहुत धन भी दुःख नहीं देता क्योंकि वह धन के प्रयोजनवालों को देने को समर्थ होते हैं और विचार के विना धन को नहीं लगाते ताते प्रसिद्ध हुआ कि एक ही पदार्थ किसी को सुखदायक होताहै और किसीको दुःख देता है सो अपने२ अधिकार प्रति होताहै बहुरि जिस पदार्थ को सुखदायक जानिये सो भी तीन प्रकार के होते हैं सो प्रथम वह जो आदि विषे सुखदायक होते हैं १ दूसरे अन्त काल विषे सुख देनेहारे हैं २ और तीसरे आपही सुखरूप होते हैं और सुन्दर होतेहैं ३ और जिन पदार्थों को बुरा जानिये सोभी तीन प्रकारके होते हैं अथवा आदि में दुःखदायक होते हैं १ अथवा पीछे दुःख देते हैं २ अथवा आप करके वह पदार्थ नीच और मलिन होता है ३ पर जो पदार्थ अब भी सुखदेवे और पीछे भी सुखदायक होवे और मध्यकाल विषे भी सुन्दर और विशेष होवे सो बुद्धि और अनुभव है और परमसुखरूपभी यही है इसके समान और कोई पदार्थ नहीं बहुरि आदि अन्त मध्य विषे जो दुःखरूप है सो मूर्खता है क्योंकि मूर्खताकरके आदिभी दुःख होताहै और अन्तभी दुःख पाताहै और मूर्खता आपही महाकुरूप है सो मूर्खताविषे आदिमें यह दुःख प्रसिद्ध है कि जब मूर्ख मनुष्य चाहता है कि मैं इस पदार्थ को जानूं और जानने को समर्थ नहीं होसक्ता तब निस्संदेह दुःखको प्राप्त होता है और मूर्खता को जो कुरूप कहा है सो कुरूपता प्रकट स्थूल नहीं भासती पर मूर्खता करके चित्तविषे अंधेरा होजाता है सो अन्तर की कुरूपता बाह्यकी कुरूपता से भी अधिक बुरी है और मूर्खता के साथ जो कार्य किया जाता है सो तिस करके अन्तभी परमदुःख प्राप्त होता है बहुरि कोई पदार्थ ऐसाभी होताहै जो प्रथम उस विषे दुःख प्राप्त होताहै और पीछे वही सुखदायक होताहै जैसे कोई पुरुष इस निमित्त अँगुरीको काटे कि दुःख करके सारे हाथको कष्ट न होवे और अँगुरी के काटने करके सर्प के बिषसे हाथकी रक्षाहोवे बहुरि

एक पदार्थ ऐसे भी होते हैं कि जब उनको एकभाव करके देखिये तौ सुखस्व-रूप हैं और जो और दृष्टि करके देखिये तौ वही दुःखरूप हैं जैसे किसी पुरुष का जहाज़ डूबनेलगे तब वह पुरुष निश्शङ्क होकर धन और सामग्री को जल विषे डारने लगताहै और यों चाहता है कि किसी प्रकार मेरी रक्षाहोवे सो जब धन और संपदा की ओर दृष्टि करिये तौ जल विषे डारने करके धन का नाश होता है और जब शरीर की रक्षा की ओर देखिये तो धन का त्यागही सुखरूप है ताते इस जगत् विषे जितने सुख हैं सो तीन प्रकार के हैं सो प्रथम यह है जैसे भोजन और कामादिक भोग हैं सो यह सुख महानीच है और बहुत म-नुष्य इसही को सुख जानते हैं और जो कुछ किया करते हैं सो इसही सुख के निमित्त करते हैं और मैंने जो इस सुखको नीच कहा है सो तिसकी युक्ति यह है कि कामादिक भोग तो पशुवों को भी प्राप्त होते हैं और यह भोग पशुवों विषे मनुष्यों से अधिक पाये जाते हैं और माखी और मकोड़ा और अवर कीट भी इस सुख विषे मनुष्य के समानहैं ताते जिस पुरुषने अपने आपको इसही सुख विषे अर्पा है सो वह मनुष्य भी धरतीपर कीट है और उस विषे मनुष्यता कुछ नहीं १ बहुरि दूसरा सुख मान और बड़ाई है जो क्रोध और अहंकार की प्रबलता करके होती है और यद्यपि कामादिक भोग से यह सुख विशेष है तौ भी नीच है क्योंकि इस विषे भी केते पशु शरीक हैं जैसे सिंह और चीते भी बड़ाई की तृष्णा रखते हैं और अपनी प्रबलता को चाहते हैं २ बहुरि तीसरा सुख विद्या और अनुभव और भगवत् की कारीगरी का पहिंचानना है सो परमसुख यही है और उन दोनों सुखसे विशेष है ताते यह सुख किसी पशु विषे पाया नहीं जाता क्योंकि विद्या और बूझ देवतों का लक्षण है अथवा भगवत् का गुण है ताते जिस मनुष्य विषे बूझ और ज्ञान का रहस्य ऐसा होवे कि किसी और सुख को सुख न जाने तब सम्पूर्ण मनुष्य वही कहाजाता है और जिस मनुष्य को विद्या और ज्ञान का रहस्य कुछ न होवे वह मनुष्य पशु की नाईं नीच है और रोगी है अर्थ यह कि जैसे रोगी को मरना निकट होता है तैसे उस पुरुष को बुद्धि का नाश निकट है पर बहुत पुरुष ऐसे भी होते हैं कि उनमें कुछ स्वाद विद्या और अनुभव का होता है और कुछ स्वाद मान और भोगों का भी होता है पर जिनको बूझ और ज्ञान का रहस्य प्रबल होता है तिनको सर्व

विषय स्वर्ग पर्यन्त महाविरस होजाते हैं और जिसको विषयों का रस प्रबल होता है तिसको विद्या और बूझ का रस कुछ नहीं आवता और महानीच अवस्था को प्राप्त होता है ताते इस पुरुष को यही पुरुषार्थ करना प्रमाण है कि भोगों के रससे विद्या के रस को बढ़ावै सो सन्तजनों ने भी योंहीं कहा है कि परम भाग्यवान् वही पुरुष होता है जिसकी भली करतूति अधिक होवे और वही परलोक विषे सुखी होता है सो इस वचन का अर्थ यही है कि भोगों के रस से बूझ का रस अधिक होवे तब सुख को प्राप्त होता है (अथ प्रकट करना इसका कि जिसको सुख चाहिये है सो सुखों विषे भी बड़ा भेद है) ताते जान तू कि पूर्ण सुख परलोक की भलाई है और वह परलोक की भलाई इस जीव को आपही सुखदायक है और किसी और पदार्थ के आश्रय को नहीं चाहती है क्योंकि यह आपही परमसुखरूप है और यह परलोक की भलाई चार लक्षणों करके सिद्ध होती है सो प्रथम यह है कि जहां सत्ता ऐसी होवे कि नाश कदाचित् न पाया जावे और महा आनन्द ऐसा होवे कि उस विषे शोक का प्रवेश कदाचित् न होवे बहुरि चैतन्यता ऐसी होवे कि मूर्खतारूपी मैल से रहित होवे और सामर्थ्य ऐसी होवे कि जिस विषे दीनता और पराधीनता न होवे सो यह सम्पूर्ण सुख श्रीसीतारामजू के दर्शन करके प्राप्त होते हैं और इस सुख का परिणाम कदाचित् नहीं होता ताते सांचा सुख यही है और सदा एकरस है बहुरि और जो पदार्थ हैं सो तिनको इस निमित्त सुख कहा है कि वह इस परमसुख के साधन हैं पर परमसुख यही है जो अपने आप करके प्रियतम होवे और उसको किसी और सुख के निमित्त अपेक्षा न होवे और जिस सुख को किसी और पदार्थ के निमित्त चाहा जाता है तिसको पूर्ण सुख नहीं कहाजाता इसी पर महापुरुष ने भी कहा है कि पूर्ण सुख परलोक की भलाई है सो यह वचन महापुरुष ने तब कहा था जब लड़ाई विषे नास्तिकों से संकट को प्राप्त हुये थे और जब शत्रुओं को जीत आये और प्रताप बढ़ा और बहुतलोग धर्म रीति के जिज्ञासु हुये और धर्म पूछनेलगे और आप सवार हुये चलेजाते थे तब भी कहने लगे कि सांचा सुख परलोक का है सो उनके कहने का प्रयोजन यह था कि हमारा मन माया के पदार्थों को देखकर प्रसन्न नहीं और दुःख को देखकर दुःखी नहीं होता बहुरि इसीपर एक और भी वार्ता है कि एक पुरुष महाराज

के आगे प्रार्थना करके कहता था कि हे महाराज ! मुझको संपूर्ण सुखदेवो तब महापुरुष ने सुनकर पूछा कि तू सम्पूर्ण सुख को जानता है कि क्या है तब उसने कहा कि मैं तो भली प्रकार नहीं जानता ताते तुमहीं कहौ तब महापुरुष ने कहा कि सम्पूर्ण सुख परलोक की भलाई का नाम है ताते जान तू कि जो पदार्थ परलोक की भलाई का द्वारा न होवे तब विचार विषे उसको सुख नहीं कहते हैं और यह सुख परमदुःखरूप होता है और जो पदार्थ परलोककी भलाई के सहायक हैं और इसलोक विषे पाये जाते हैं सो सोलह पदार्थ हैं चार मन के बीच हैं और चार शरीर विषे हैं और चार शरीर से बाहर हैं और चार इन सबके विषे हैं सो प्रथम जो मनके बीच हैं तिनको सुनो एक धर्म के निश्चय की विद्या है १ और दूसरी वर्त्तने की विद्या है २ तीसरा संयम है ३ और चौथा विचार है ४ पर प्रथम निश्चय की विद्या यह है कि श्रीरघुनन्दन स्वामी के स्वरूप को पहिंचानना और उनके गुणों को समझना और सन्तजनों के लक्षण पहिंचानने १ बहुरि वर्त्तने की विद्या यह है कि भक्तिमार्ग विषे जितने पटल हैं सो तिनको पहिंचाने और जो परलोक मार्ग का तोशा श्रीरामभजन है तिसको अङ्गीकार करे और जितने शुभ गुण हैं सो उस मार्ग की मंजिलें हैं सो तिनको पहिंचाने और उसी मार्ग विषे चले २ बहुरि संयम यह है कि भोग और क्रोधकी प्रबलता को दूरकरे ३ और विचार यह है कि जब सर्व भोगों का त्यागकरता है तब शरीर नाश को प्राप्त होजावेगा और जब भोग वासना और क्रोध की प्रबलता होगी तब मनसुखता होती है ताते चाहिये कि इनको नाश भी न करे और अधिक प्रबल भी न होने देवे ताते इनको विचार की तराजू विषे तोल राखे ४ पर यह चारों विद्या तब प्राप्तहोती हैं जब प्रथम शरीर विषे जो चार सुख हैं सो तिनको प्राप्त होवें सो शरीर के सुख यह हैं एक आरोग्यता १ दूसरा बल २ तीसरा सुन्दरताई ३ चौथा आयुर्बल है ४ सो परलोक की भलाई के सहायक आरोग्यता और बल आयुर्बल तो निस्सन्देह हैं और प्रत्यक्ष हैं क्योंकि विद्या और करतूति और और जो शुभगुण हैं सो इनके विना प्राप्त नहीं होते पर सुन्दरताई विषे प्रयोजन कुछ अल्पमात्र है जैसे धन और मान भी कार्यमात्र प्रमाण कहे हैं तैसेही सुन्दरताई भी है सो भगवतमार्ग विषे इनकी अधिकता विशेष नहीं पर कार्यमात्र कछुक चाहते हैं और इस लोक के कार्य को सिद्ध

करनेहारे हैं और योंभी है कि जो पदार्थ इस लोक विषे सुखदायक होता है सो जब इस पुरुष की मंशा भली होती है तब उस करके परलोक विषे भी सुख होता है क्योंकि इस लोक की करतूति परलोक की खेती है अर्थ यह कि जो यहां बोवता है सो परलोक विषे भोगता है और यह सुन्दरताई इस कारण भली कही है कि यह भी हृदय की सुन्दरताई को लखावनेहारी है ताते इस मनुष्य को चाहिये कि जिस प्रकार शरीर को सुन्दर बनावता है तैसेही हृदय को भी शुभ गुणों करके सुन्दरकरे इसी पर महापुरुष ने भी कहा है कि टहलुवा कुरूप न राखे ताते जान तू कि मैंने ऐसी सुन्दरताई प्रमाण नहीं कही कि जिसको देखकर काम उत्पन्न होवे और हृदय मलिन होवे क्योंकि यह सुन्दरताई स्त्रियों विषे अधिक होती है ताते इस वचन का तात्पर्य यह है कि सुन्दर पुरुष वही है जिसको देखकर ग्लानि न आवे और जिसका मस्तक प्रसन्नता सहित खुला हुआ होवे और समान डील होवे और शरीर को दुर्गन्ध और मलिनता से शुद्ध राखे तो यह भी शरीर की उत्तमताई है और सरीर से बाहर जो चार पदार्थ विशेष कहे हैं सो यह हैं एक धन १ दूसरा मान २ तीसरा टहलुवा ३ चौथा उत्तम कुल ४ सो धन का संग्रह तो इतनाही प्रमाण है जिस करके परलोक मार्ग की वृद्धता होवे क्योंकि जब इसके पास धन कुछ नहीं होता तब सारा दिन आहार की उत्पत्ति विषेही बितावता है ताते विद्या और करतूति की सिद्धता को नहीं पहुँच सक्ता इसी कारण कर धनकी विशेषता कही है कि इस करके शुभ कार्य विषे निस्संकल्प होकर लगता है और तब धन भी इसका मित्र रूप होताहै १ बहुरि मान भी इस निमित्त ही प्रमाण कहा है कि जिस पुरुष का मान कुछ नहीं होता तो वह भी निरादर करके दुःखी रहता है और अपने शत्रुओं से निर्भय नहीं होसक्ता ताते उसका हृदय विक्षेपता विषे रहता है और शुभ कार्य उससे कोई नहीं होसक्ता ताते धन और मान को जो निन्द्य कहाहै सो इनकी अधिकाई ही निन्द्य है और विघ्नरूप है और कार्यमात्र सुखदायक और निर्विघ्न है इसीपर महापुरुष ने भी कहा है कि जो पुरुष प्रातसमय उठे और उसको किसीका भय न होवे बहुरि एक दिन का आहार भी उसके पास होवे तब जानिये कि पूर्ण पदार्थ उसके पास है ताते जान तू कि निर्भय होना और आहारमात्र संग्रह रखना धन और मान के बिना सिद्ध नहीं होता ऐसेही

महापुरुषने कहा है कि जिस पुरुषकी मंशा शुद्धहोती है उसको धनभी मित्र होता है २ बहुरि तीसरा जो टहलुवा कहा है सो टहलुवा इस कारण करके चाहिये है कि टहलुवे करके भी शरीर की बहुतसी क्रिया से छूटता है और भजन विषे सावधान होताहै और जब सब क्रिया अपनी आपही करने लगताहै तब इसका समग्र इसी क्रियाविषे बीतता है ३ बहुरि कुल को जो भला कहा है सो तिसका प्रयोजन यह है कि किसी राजा अथवा किसी महन्त का कुल मैंने नहीं कहा पर जिसका कुल विद्यावान् और सात्त्विकी होताहै तब उस पुरुष विषे भी सात्त्विकी गुण का प्रवेश होताहै ताते इस प्रकार उत्तमकुल भी भगवत् के मार्ग की सहायता करताहै पर वह चार पदार्थ जो इन बारहपदार्थ को सिद्ध करते हैं सो यह हैं कि प्रथम भगवत् का मार्ग जानना १ और दूसरा सर्ग २ और तीसरा बल ३ चौथे खैंच भगवंत की सो जब यह चारों इकट्ठे होते हैं तब उसीको सहायता करते हैं क्योंकि सहायता का अर्थ यही है जो भगवत्की भेंट और जीव की श्रद्धा का सम्बन्ध और मिलाप होवे तब सहायता इसीका नाम है पर प्रथम जो भगवत् के मार्गकी पहिचान कही है सो यह पहिचान सब किसीको अवश्यचाहिये क्योंकि जो पुरुष परलोक की भलाई की श्रद्धा भी राखे और उसके सुमार्ग व अपमार्ग को पहिंचान न सके तब उसको लाभ कुछ नहीं होता ताते प्रसिद्ध हुआ कि इस जीवके सर्व कार्य बूझ और पहिंचान करके सिद्ध होते हैं इस बिना सिद्ध नहीं होते इसीपर सन्तजनों ने कहाहै कि भगवत् ने सर्व जीवोंपर दो उपकार किये हैं सो प्रथम यह है कि सर्व जीवों को उत्पन्न किया है १ और दूसरा यह कि सब को अपनी २ क्रिया की बूझ दीनी है २ सो बूझ भी तीन प्रकार की है प्रथम यह कि भले और बुरेको पहिंचानना सो भगवत् ने यह बुद्धि सर्व मनुष्योंको दीनी है पर कोई तो भले बुरेको अपनी बुद्धि के अनुसार समझता है और कोई सन्त जनों के वचनों करके समझता है ऐसे महाराज ने भी कहाहै कि सम्पूर्ण मनुष्यों को उनके भोगों की भलाई और बुराई की पहिंचान मैंने दीनी है पर जो इससे विमुख हैं सो जानबूझकर अन्धे हुये हैं १ पर जिस पुरुष को बूझ प्राप्त नहीं भई तिसका कारण यहहै कि वह ईर्षा और अभिमान और व्यवहार के जञ्जाल विषे बन्धायमान हुआ है और इस करके सन्तजनों के वचनों को श्रवण भी नहीं करता ताते इस बूझसे शून्य रहता है पर तौ भी भले और बुरे

की पहिंचान का बीज सर्व मनुष्यों विषे पाया जाता है १ बहुरि दूसरी बूझ यह है कि वह बूझ शनैःशनैः करके धर्म के मार्ग विषे यत्न करके प्राप्त होती है और उसको अनुभव का मार्ग खुल जाता है इसी पर महाराज ने भी कहा है कि जो पुरुष दृढ़ होकर पुरुषार्थ करता है तिसको मैं अपना मार्ग दिखावता हूं सो इस वचन विषे यही भेद है कि महाराज ने अपना मार्ग दिखावना कहा है पर अपने आप प्रयत्न विना मार्ग दिखावना नहीं कहा ताते तीसरी बूझ इससे भी विशेष है सो उसका प्रकाश सन्तजनों के हृदय और अवतारों विषे प्रकट होता है और इस बूझ करके महाराज का दर्शन होता है पर इस बूझको अपनी बुद्धि और बल करके पहुँच नहीं सकता और यह बूझही जीवनरूप है बहुरि दूसरी जो श्रद्धा कही थी सो यह है कि जो कुछ बूझ करके जाना था सो तिसके मार्ग विषे चलने की मंशा प्रकट होती है जैसे बालक जब किशोर अवस्था को प्राप्त होता है तब धन के संग्रह और व्यवहार को भली प्रकार समझता है पर जब बुद्धि के अनुसार करे तब उसको श्रद्धावान् कहते हैं और व्यवहार की विद्या समझकर भलीप्रकार से न बरते तब उसको श्रद्धाहीन कहते हैं बहुरि बल यह है कि जिस पदार्थ को जाना और उसकी श्रद्धा भी उत्पन्न हुई तब उसके प्राप्त होनेके यत्न विषे बल करके सर्व इन्द्रियों को प्रवेश करावे और तत्काल अपने प्रयोजन को प्राप्तहोवे बहुरि भगवत की खैंच जो कही थी सो यह है कि उस मनुष्य के हृदय विषे खैंच करके सहायता पहुँचती है और बुद्धि उज्ज्वल होती है और सर्व इन्द्रियों को शुभमार्ग विषे चलने का बल प्रकट होताहै और वह सहायता ऐसी है कि जैसे कोई पुरुष किसी को प्रत्यक्ष मार्ग दिखावे और कुमार्ग से बरजे तैसेही भगवत की सहायता करके मनुष्य के हृदय विषे पापकर्मों का भय उपजता है और शुभमार्ग प्रसिद्ध होकर भासताहै ताते जान तू कि यह जो सोलह पदार्थ मैंने कहे हैं सो सबही इस लोक विषे प्राप्त होते हैं और परलोक के सहायक हैं और इनका परस्पर सम्बन्ध भी है बहुरि इन विषे केते और पदार्थोंका सम्बन्ध भी मिलता है तब परलोककी भलाई को पहुँचता है और यह पुरुष सांचे सुखको पहुँचता है और श्रीसीतानाथ के दर्शनको देखता है सो श्रीरघुनन्दन स्वामी कैसे हैं जो सर्व जीवों को मार्ग दिखावनेहारे हैं और सर्वप्रकार सहायता भी वही करते हैं (अथ इसका प्रकट करना कि भगवत

का धन्यवाद किस कारण नहीं कियाजाता है) ताते जान तू कि दो कारण करके यह मनुष्य भगवत् का धन्यवाद नहीं करसक्ता सो प्रथम यह है कि महाराज के उपकार अगणित हैं और इस जीवको महाराजने इतने सुख दिये हैं कि यह मनुष्य उनको पहिंचान भी नहीं सकता इसी पर महापुरुषने भी कहा है कि जितने उपकार और सुख श्रीरघुनन्दन स्वामी ने दिये हैं सो किसी प्रकार गने नहीं जासकते और यह जीव उनको जानते ही नहीं ताते यह वार्त्ता प्रसिद्ध है कि जब कोई पुरुष किसी के उपकार को न जाने तब उसका धन्यवाद भी नहीं कह सकता जैसे यह प्राण भी सुखरूप हैं और जिस पवन को यह मनुष्य श्वास के साथ खैंचता है सो यह भी परमसुखरूप है क्योंकि इसी पवन करके हृदय स्थल को सुख प्राप्त होता है और जठराग्नि की उष्णता मन्द होती है और योंभी है कि जब इस पुरुष का एक श्वास बन्द होजावे तब निस्संदेह मरण की नाईं दुःख को पावता है पर यह मनुष्य ऐसे सुख को सुखही नहीं जानता और ऐसे महाराज के उपकार अनन्त हैं पर तिनको नहीं जानता बहुरि इस श्वास के उपकार को भी तब जानता है जब किसी मलिन स्थान अथवा दुर्गन्ध अथवा उष्ण स्थान विषे जापहुँचता है और वहां इसका श्वास बन्द होजाता है तब पवन की शीतलताई और श्वास के सुखको पहिंचानता है तैसेही जब नेत्रों की दृष्टि सम्पूर्ण होती है तब इसका भी कुछ उपकार और सुख नहीं जानता पर जब नेत्रों विषे कुछ पीड़ा अथवा दृष्टि मन्द होती है तब जानता है कि यह नेत्र ऐसे सुखरूप हैं और जिसकी ओषधियों कर नेत्रों का दुःख दूर होता है तब उसका बड़ा उपकार जानता है सो ऐसे मनुष्य का दृष्टान्त यह है कि जैसे किसी पुरुष का टहलुवा बुरा होता है तब वह दण्ड करके अपने स्वामी की टहलविषे सावधान रहता है और जब उसको दण्ड न करिये तब मूर्खता करके अचेत होरहता है और टहल भी कुछ नहीं करता तैसे यह मनुष्य भी जबलग दुःख को प्राप्त नहीं होता तबलग महाराज के उपकार को नहीं जानता ताते इसका उपाय यह है कि अपने चित्त विषे श्रीजानकीनाथ के उपकारों का स्मरण करता रहै और बिसारै नहीं पर यह उपाय भी किसी बुद्धिमान् से होसकता है और इतरजीवों को यों चाहिये है कि जहां रोगी होवें अथवा बन्दीखाने अथवा मृतकों के स्थानविषे जावे और उनके दुःखको देखे.

और चित्तविषे ऐसे जाने कि यह सब मृतक योंहीं चाहते हैं कि जो हमको एक दिन भी मनुष्यतनु फिर मिलजावे तो हम अपने पापों का पुरश्चरण करलेवें पर इनको एकदिन भी जीवना नहीं प्राप्त होता और मुझको केते दिन आयुर्बल को प्राप्त हुये हैं पर मैं इस उपकार को जानता ही नहीं सो यह मेरी बड़ी मूर्खता है १ बहुरि दूसरा कारण मनमुखता का यह है कि यह मनुष्य उन उपकारों को भी नहीं जानता जो पदार्थ महाराज ने सर्व जीवों को दिये हैं और सब किसी को सुगमही प्राप्तहोते हैं जैसे प्राण और नेत्र और सूर्य और ऐसे और भी इनकी नाईं अनेक पदार्थ हैं सो इनके सुख को सुख नहीं जानता और केवल धनही को सुखरूप जानता है अथवा उस पदार्थ को सुख नहीं जानता है जो और किसीके पास न होवे और इसी को प्राप्त होवे सो यहभी बड़ी मूर्खता है क्योंकि जो पदार्थ सुखरूप होवे और भगवत् ने अपनी परमउदारता करके सर्व जीवों को प्राप्त किया होवे तब इस करके उस पदार्थ का सुख तो दूर नहीं होता पर जब यह पुरुष विचार कर देखे तब इसको भगवत् ने ऐसे सुख भी बहुत दिये हैं जो और किसी के पास नहीं और केवल इसी को दिये हैं जैसे सब कोई योंहीं जानता है कि मेरी नाईं और किसी की बुद्धि नहीं और मेरे स्वभाव की नाईं और किसी का स्वभाव भला नहीं इसी करके और मनुष्यों को मूर्ख और अपलक्षणी कहता है ताते प्रसिद्धहुआ कि अपनी बुद्धि और स्वभाव को भला जानता है सो जब ऐसे हुआ तब चाहिये कि अपने स्वामी के उपकार का धन्यवाद करे और और किसी के अवगुणों को न देखे क्योंकि जगत्‌विषे ऐसा मनुष्य कोई नहीं कि जिस विषे अवगुण न होवे बहुरि जितनी मलिनता और अवगुण इस जीवविषे पाये जाते हैं सो यह आपही जानता है और कोई नहीं जानसक्ता सो भगवत् ने अपनी दया करके गुह्य कर राखे हैं और प्रकट नहीं किये बहुरि जैसे कोई बुरे संकल्प इसके हृदय विषे फुरते हैं सो ऐसे मलिन होते हैं कि जब कोई और भी उनको जाने तब अधिक निरादर और अपमान को प्राप्त होवे सो यह भी श्रीरघुनन्दन स्वामी का बड़ा उपकार है जो और कोई नहीं जानता और यह उपकार महाराज ने सब किसी पर किया है ताते इसका भी धन्यवाद करना प्रमाण है और जो पदार्थ इसके पास न होवे तब उसकी अभिलाषा करनी अयोग्य है क्योंकि यह महाराज का धन्यवाद नहीं होता

और निस्संदेह मनमुखी होती हैं ताते ऐसे जानना योग्य है कि मेरे साथ महाराज ने ऐसे उपकार किये हैं जिनका मैं अधिकारी ही न था और महाराज ने मेरे ऊपर सबप्रकार दयाकरी है सो इसी पर एकवार्त्ता है कि एक पुरुष किसी सन्तजन के पास आया था और अपनी निर्द्धनता को प्रकट करनेलगा तब उस सन्त ने कहा कि जब तू विचार कर देखे तब तू निर्द्धन तो नहीं क्योंकि जब कोई पुरुष तुझको दशसहस्र रुपया देवे और तेरे नेत्रों को लियाचाहे तब तू देवेगा तब उस पुरुष ने कहा कि मैं तो यह नहीं चाहता बहुरि सन्त ने कहा कि भला जब तेरी बुद्धि अथवा श्रवण अथवा हाथ पांव दूर करिये तब तू चालीस सहस्र रुपया लेवेगा तब उसने कहा कि मैं योंभी नहीं करसक्ता तब सन्त ने उस को कहा कि पचाससहस्र की सामग्री तो तेरे पास है तू आपको निर्द्धन क्यों मानता है और धन की चिन्ता क्यों करता है? और योंभी है कि जब किसीसे कहिये कि तू अपनी अवस्था को अमुक पुरुप की अवस्था के साथ बदललेवो तब कोई नहीं करता और इस करके प्रसिद्ध होता है कि अपनी अवस्था को विशेष जानता है सो जब इसकी अवस्था विशेष हुई तब चाहिये कि इसकरके भी धन्यवाद करे और अपने स्वामी के सम्मुख होवे (अथ प्रकट करना इसका कि दुःख विषे भी धन्यवाद करना विशेष है.) ताते जान तू कि इस जीव को दुःख विषे भी धन्यवाद करना प्रमाण है क्योंकि दुःख करके भी इसके पाप क्षमा होते हैं पर मनमुखता और पाप ऐसे परमदुःखरूप हैं कि भगवत् का कोप भी यही है और इससे इतर जेते और शरीर के दुःख हैं सो सबही विषे इस जीव की भलाई है और यद्यपि इस भलाई को यह मनुष्य नहीं जानसक्ता पर महाराज भलीप्रकार जानते हैं ताते पांचप्रकार करके दुःख विषे धन्यवाद करना प्रमाण है सो प्रथम यह है कि दुःख इसको शरीर विषे होताहै अथवा धन विषे होताहै पर जबलग इस का धर्म अरोग है तबलग इसको धन्यवाद करना ही विशेष है जैसे एक पुरुष सुहेलनामी सन्त के पास आकर कहने लगा कि मेरे घर एक चोर आकर सब संपदा चुरालेगया तब सन्त ने कहा कि दुर्वासनारूपी चोर जब तेरे हृदय विषे आय पड़ता और तेरे धर्म को चुरा लेता तब तू क्या करता? ताते तू धन्यवाद कर १ बहुरि दूसरा कारण यह है कि जो कोई पुरुप सहस्र लकड़ी मारने का अधिकारी होवे और उसको बीस लकड़ियां मारकर छोड़ दीजिये तब उसको भी

धन्यवाद करना प्रमाण होता है तैसे ही ऐसा दुःख कोई नहीं कि जिससे अधिक दुःख न होवे ताते चाहिये कि जब कोई दुःख इसको प्राप्त होवे तब यों जाने कि जब मुझको इससे भी अधिक दुःख होता तब मैं क्या उपाय करता ताते धन्यवाद ही करना विशेष है जैसे एक सन्त बहुत सत्संगी प्रेमियों के संग नगर की गली विषे चलेजाते थे तब किसीने उनके ऊपर कोठा पर से राख का थार डाल दिया तब वह सन्त अपने वस्त्र झाड़कर धन्यवाद करनेलगे बहुरि किसी ने पूछा कि तुम धन्यवाद क्यों करतेहो तब उन्हों ने कहा कि मैं तो अग्नि विषे जलावने का अधिकारी था पर श्रीजानकीनाथ ने अपनी दया करके राख परही निवेरा करदिया है ताते मैं धन्यवाद करता हूं २ बहुरि तीसरा कारण यह है कि इस मनुष्य को जो दुःख होता है सो इसी के पाप करके होता है और जब वह दुःख इसलोक विषे न होवे तब परलोक विषे इस जीव को अधिक दुःख प्राप्त होता है इसीपर महाराज ने भी कहा है कि इसलोक के दुःख से परलोक का दुःख अतिकठिन है ताते इस प्रकार भी धन्यवाद करना प्रमाण है जो इसलोक विषे अल्प दुःख भोगने करके परलोक के बड़े दुःख से छूटता है इसीपर महापुरुष ने भी कहा है कि जिस पुरुष को इसलोक में कुछ दुःख भोगावते हैं तब वह परलोक के दुःख से मुक्त होताहै क्योंकि दुःखही करके इस जीव के सम्पूर्ण पापों का पुरश्चरण होता है और जब यह पुरुष दुःख भोगने करके निष्पाप होजाता है तब परलोक विषे फिर दुःख को नहीं प्राप्त होता है जैसे कोई वैद्य किसी रोगी को कड़वी औषध पिलावे अथवा उसका रुधिर निकासे सो यद्यपि प्रथम इस करके दुःख भी होता है तौभी उस रोगी को धन्यवाद करना प्रमाण है क्योंकि अल्पमात्र दुःख भोगने करके बड़े कष्ट से मुक्त होताहै ३ बहुरि चौथा कारण यह है कि यह दुःख जो भोगता है सो इसके प्रारब्ध विषे लिखा हुआ था और यह दुःख अवश्यही आना था सो जब उस दुःख का अवसर तेरे ऊपर आया और तू दुःख को भोगकर उससे उल्लङ्घित हुआ तौभी निस्संदेह धन्यवाद करना प्रमाण है जैसे एक सन्त सवारहुये चलेजाते थे तब अकस्मात् सवारी से गिरपड़े बहुरि उठकर धन्यवाद करने लगे तब लोगों ने पूछा कि यहां धन्यवाद करने का समय कौन था तब उन्होंने कहा कि, महाराज की आज्ञा अवश्य ही होती है सो किसी प्रकार अन्यथा नहीं होती ताते इस सवारीपर से

गिरपड़ना मेरे लेख विषे लिखा हुआ था और अब मैं उसको भोगकर उल्लासित हुआ हूं ताते धन्यवाद करताहूं ४ और पांचवां कारण यह है कि इसलोक विषे दुःख और कष्ट भोगने करके परलोक विषे पुण्यको प्राप्त होता है सो भी दोप्रकार है प्रथम यह है कि जैसे सन्तजनों के वचनों विषे आया है कि दुःख भोगने करके इस जीव के पाप क्षीण होते हैं और पुण्य को प्राप्त होता है बहुरि दूसरा प्रकार यह है कि मूल सर्वपापों का माया की प्रीति है क्योंकि माया की प्रीति करके भोगों को सुखरूप जानता है और इस संसार के जीवने को स्वर्गकर मानता है और परलोक विषे जानेको बन्दीखाना समझता है पर जब इस पुरुष को इस जगत् विषे दुःख प्राप्त होता है तब दुःख करके संसार की प्रीति नष्ट होजाती है और इस संसार को बन्दीखाना जानकर निकला चाहताहै और उसको संसार का मृत्यु होना सुखरूप भासताहै ताते जान तू कि यह सर्व दुःख ऐसे हैं जैसे माता और पिता बालक को दण्ड देकर बुद्धि सिखावते हैं पर जब वह बालक बुद्धिमान् जानता है तब उस सिखाने को भला जानता है और धन्यवाद करता है क्योंकि उसी दण्ड करके बालक को अनेक गुण प्राप्त होते हैं तैसेही इस जीव को सिखाने के निमित्त महाराज भी दुःखरूपी दण्ड भेजता है और इसी जीव को बुद्धि सिखाता है ताते बुद्धिमान् पुरुष दुःख विषे भी धन्यवाद करते हैं जैसे सन्तजनों ने कहाहै कि महाराज जब अपने प्रीतिमानों को कुछ दुःख भेजते हैं तब मानों उनके साथ वचन करते हैं कि मैं इससे पीछे तुमको अधिक सुख देऊंगा जैसे कोई उत्तम वैद्य रोगी के साथ वचनकरे कि जब तू अमुक आहार का त्याग करे और जब तेरा रोग दूर होवेगा तब तुझको मैं बहुत भोजन खवाऊंगा सो इस पर एकवार्त्ता है कि कोई पुरुष महापुरुष के पास आकर कहनेलगा कि मेरा धन और सामग्री चोर लेगये तब महापुरुष ने कहा कि जिसका धन चोर लेजावे अथवा जिसका तन रोगी होवे तब उसको अधिक भलाई प्राप्त होती है बहुरि महापुरुष ने योंभी कहाहै कि भगवत जिसको अपना प्रियतम किया चाहता है तब प्रथम उसके ऊपर दुःख भेजता है और योंभी कहाहै कि बहुत स्थान सुख के ऐसे भी हैं कि यह पुरुष अपने यत्न करके उनको नहीं पहुँचसक्ता और महाराज दुःख को भोगाने करके तहां पहुँचाते हैं बहुरि एकबार महापुरुष आकाश की ओर देखकर कहनेलगे कि मैं भगवत् की नेतको देखकर आश्चर्यवान्

हुआहूं कि जब महाराज इस जीव को सुख देते हैं और यह पुरुष उस करके भी प्रसन्न होताहै तब इसको भलाई प्राप्त होती है और जब महाराज की आज्ञा करके कुछ दुःख होवे और यह पुरुष धैर्य उसमें करे तौभी भलाई को प्राप्त होता है अर्थात् सम्पत्ति में धन्यवाद और बिपत्ति में धैर्य दोनों करके जीव की भलाई है और महापुरुष ने योंभी कहा है कि सुख भोगनेहारे पुरुष परलोक बिषे यों कहेंगे कि जो मृत्युलोक बिषे हमारा शरीर नखों करके कटता तो भला था क्योंकि जिन्हों ने मृत्युलोक में दुःख सहा है उनको परलोक बिषे उत्तम सुख प्राप्त होते हैं और जब इसलोक के सुख भोगनेहारे उन स्थानों को देखेंगे तब कहेंगे कि हम भी वहां दुःखही भोगते तो यहां सुख के स्थानों को प्राप्त होते इसीपर एक सन्त ने महाराज से विनय करी कि हे महाराज! तुम मनमुखों को नाना प्रकार के सुख देतेहो और सात्त्विकी मनुष्यों को दुःख भोगातेहो सो यह क्या कारण है तब महाराज ने कहा कि यह सबही जीव मेरे हैं और दुःख सुख भी मेरे किये हुये हैं पर जब सात्त्विकी मनुष्यों बिषे कुछ पाप देखता हूं तब चाहता हूं कि मृत्यु के समय यह पुरुष विशुद्ध निर्लेप होकर मेरे निकट प्राप्तहोवे ताते उसको मृत्युलोकमेंही दुःख भोगाकर उसके पापों का पुरश्चरण करलेताहूं और जो तामसी मनुष्य है सो उस बिषे जब कोई गुण होताहै तौभी उसको शरीर के सुखों की कामना होती है ताते मैं उसको शरीर के सुख भोगाता हूं और उसकी कामना पूर्ण करताहूं बहुरि जब वह पुरुष परलोक बिषे जाता है तब महादुःख का भागी होता है क्योंकि अल्पमात्र जो उस बिषे गुण था सो उस पुण्य का बदला उसने मृत्युलोक बिषेही भोगलिया और उसके अवगुण ही शेष रहे थे ताते महानरक को भोगता है और जब महाराज ने यह वचन महापुरुष को कहा था कि जो कोई पुरुष बुराई करता है सो तिसका फल भी बुराई ही देखता है तब एक महापुरुष के प्रियतम ने भयवान् होकर पूछा कि हे महाराज के प्यारे! ऐसे दण्ड से कैसे छूटेंगे? तब महापुरुष ने कहा कि सात्त्विकी मनुष्यों को जो रोग होता है सो इसही दण्ड करके उसके पाप क्षमा होते हैं और परलोक के दुःखों से छूटता है जैसे एक महापुरुष के पुत्र का शरीर छूटा था तब उनके हृदय में कुछ शोक आया तब महाराज की आज्ञा करके दो देवता मनुष्य का रूप धरकर आय खड़ेहुये और उनकी सभा में झगड़ा करनेलगे तब एक ने कहा

कि मैंने धरती विषे बीज बोया था सो इसने मेरी खेती खूंदडारी है बहुरि दूसरे पुरुष ने कहा कि इसने बीज मार्ग विषे बोया था और बायें दाहिने ओर उसके कहीं मार्ग न था ताते वह खेती अवश्य लथाड़ी गई है तब उन महापुरुष ने प्रथम पुरुष से कहा कि तू जानता न था कि मार्ग विषे खेती नहीं बोनी चाहिये क्योंकि पन्थी जनों से मार्ग खाली नहीं रहता बहुरि उस पुरुष ने कहा कि क्या तू नहीं जानता है कि सर्व मनुष्य काल के मार्ग विषे हैं और मृत्यु को प्राप्त होते हैं ताते पुत्र के मरने करके शोकवान् क्यों होताहै तब उन महापुरुष ने जाना कि मैं भूला हूं और श्रीरघुनन्दन स्वामी की ओर प्रार्थना करके उस भूल को क्षमा करावने लगे और ऐसेंही एक और सन्त थे सो जब उन्हों ने अपने पुत्र को मरते देखा तब कहनेलगे कि हे पुत्र! तू आगे चलता है पर मैं इस बात को प्रिय रखता हूं क्योंकि मैं इसकरके तेरे तराजूविषे तोला जाऊंगा अर्थात् मेरे धैर्यकी परीक्षा होवेगी तब पुत्र ने कहा कि हे पिताजी! मैं भी योंहीं चाहता हूं जैसे तुम चाहते हो बहुरि एक और सन्त से किसीने कहा कि तुम्हारी पुत्री मृत हुई है तब उन्होंने कहा कि जब हमारे पास थी तब भी रघुनन्दन स्वामी की थी और अबभी उन्हीं की ओर गई है बहुरि यह कहकर भजन करनेलगे और कहते भये कि स्वामी की यही आज्ञा है कि तुम सर्व अवस्था विषे भजन और धैर्यविषे दृढ़ होवो और मेरी सहायता चाहो और एक सन्त ने कहा है कि महाराज चार प्रकार के पुरुषों से चार महात्माओं का लक्ष देकर परलोक विषे पूछेंगे प्रथम धनवानों से पूछेंगे कि तुम सुलेमान की नाईं धन और राज विषे क्यों नहीं बर्त्ते १ और दूसरे यूसुफ की साख देकर रूपवानों की परीक्षा करेंगे २ बहुरि तीसरे वैरागियों से पूछेंगे कि ईसाकी नाईं तुम त्यागी और निःस्पृही क्यों न हुये ३ और चौथे रोगी और दुःखियों को अयूबकी साख देकर पूछेंगे और उनसे धैर्य की परीक्षा चाहेंगे ४ ताते धन्यवाद की विद्या का खोलना इतना ही बहुत है॥

तीसरासर्ग॥

भय और आशा का वर्णन॥

ताते जान तू कि भय और आशा दोनों जिज्ञासु के पंख हैं अर्थ यह कि सर्व शुभ गुणों को और उत्तमगतियों को इनहीं करके पहुँचता है क्योंकि भक्तिमार्ग विषे जितने उपाय और साधन हैं सो शुद्ध आशा विना कदाचित् सिद्ध

नहीं होते और जेते इन्द्रियादिक भोग हैं सो सर्वदा इस जीव को छलनेहारे हैं तातें श्रीजानकीनाथ के भय बिना इनका त्यागना महाकठिन है इसी कारण से सर्व सन्तोंने भय और आशा की विशेषता कही है सो आशारूपी बाग जिज्ञासु को महाराज की ओर खैंचती है और भयरूपी कोड़ा किसी स्थान विषे अट-कने नहीं देता तातें मैं शुद्ध आशा का बखान करूंगा। बहुरि भय का स्वरूप वर्णन करूंगा तातें जान तू कि भगवत् की आशा सहित भजन करना अधिक विशेष है क्योंकि इस करके भगवत् की प्रीति उत्पन्न होती है और महाराज की प्रीतिही उत्तम अवस्था है और भय करके भजन करना इसके समान नहीं होता क्योंकि भय का कारण दुःख है तातें भय करके प्रीति नहीं उपजती इसी पर महापुरुष ने कहा है कि मनुष्य को मरने के समय भगवत् की आशा ही लाभ-दायक है और महाराज ने भी कहा है कि जैसा कोई मुझको जानता है मैं भी उसके साथ तैसाही वर्त्तता हूं और महापुरुष ने एक प्रीतिमान् को मृत्यु के समय कहाथा कि अब तेरे चित्त विषे क्या अवस्था है? तब वह कहता भया कि मैं अपने पापों को देखकर भयवान् होता हूं और महाराज की दया का आसरा रखताहूं यह वचन सुनकर महापुरुष ने कहा कि जिसको श्रीसीतारामजी अभय किया चाहते हैं तिसको ऐसे अवसर विषे अपना भय और आशा देते हैं इसी पर एक महात्मा को आकाशवाणी हुई थी कि मैंने तेरे और तेरे परमप्यारे पुत्र विषे इस निमित्त वियोग डारा है जो तैंने कहाथा कि इसको कहीं भेड़िया न मारजावे और भाई इसके अचेत होजावें तातें तैंने चित्त विषे उनका भय किया और मेरी रक्षा का आसरा तुझको न आया इसी कारण से मैंने तुझको सजा दीन्हीं है इसी पर एक महात्मा ने एक पुरुष को देखा था कि अपने पापों की अधिकता करके श्रीजानकीनाथ की दया से निराश हुआ था तब उसको महात्मा ने कहा कि तू निराश मत होहु क्योंकि तेरे पापों से स्वामी की दया अति बड़ी है और महापुरुष ने अपने प्रियतमों से एकबार ऐसे कहा था कि जैसे मैंने महाराज की बेपरवाही को जाना है सो जब तुमभी जानो तब सर्वदा रोवतेरहो और अधिक भयवान् होवो यह वचन सुनकर सबही प्रियतम रुदन करनेलगे तब महापुरुष को आकाशवाणी हुई कि तुम मेरे जीवों को इतना क्यों डरवाते हो इनको मेरी दया के वचन सुनाओ और दाऊद महात्मा को भी

आकाशवाणी हुई थी कि तू मेरे साथ प्रीतिकर और और मनुष्यों के हृदय में भी मेरी भक्ति दृढ़कर इसी करके कि जब तू इनको मेरी दया के वचन सुनावेगा तब निस्संदेह मेरे साथही प्रीति करेंगे इसीपर एक वार्त्ता है कि एक तपस्वी अपनी सभा विषे लोगों को अधिक ताड़ना के वचन सुनावता था और भयवान् करता था तब उसको आकाशवाणी हुई कि जैसे तू मेरे जीवों को मेरी दया से निराश करता है तैसेही मैं भी तुझको परलोक विषे निराश करूंगा (अथ प्रकट करना रूप आशा का) ताते जान तू कि एक शुद्ध आशा है और एक आशा अशुद्ध है सो केवल मूर्खता और छल है पर अल्पबुद्धि जीव इस भेद को नहीं समझसके ताते जो पुरुष धरती को कोमल करके शुद्ध बीज बोवे और समय अनुसार जल सींचता रहे बहुरि कण्टकों को दूरकरे और सर्व विघ्नों की रक्षाके निमित्त भगवत् का आसरा करे तब इसका नाम शुद्ध आशाहै और जब धरती कोमलही न करे अथवा बीजही भला न बोवे अथवा समय अनुसार जब जलही न देवे और खेती के वृद्धि होने की आशा राखे तब इसका नाम मूर्खता और छल है तैसेही जो पुरुष हृदय विषे दृढ़ प्रतीति राखे और मलिन स्वभाव से चित्त को शुद्ध करे और भजनरूपी जलसे प्रतीतिरूपी खेती को सींचता रहे और नाना प्रकार के माया के छलों से भगवत् की रक्षा चाहे तब इसको सन्त जनों ने शुद्ध आशा कही है तात्पर्य यह कि महाराज का आसराभी करे और करणीय कर्मों से रहित भी न होवे क्योंकि करणीय कर्मों से रहित होनाही निराशता का लक्षण है और जिस पुरुष की प्रतीतिही दृढ़ न होवे अथवा श्रीराम भजनविषे सावधान न होवे और चित्तविषे मुक्ति की आशा राखे तब इसका नाम केवल मूर्खताहै इसीपर महापुरुष ने कहा है कि जो मूर्ख अपने मनकी वासना के अनुसार वर्त्तताहै और महाराज की दया की आशा रखता है सो महामूर्ख है जो कर्म इस मनुष्य को करने योग्य हैं सो जब वह कर्म इसने किया तब भगवत् की दया का आसरा रखना प्रमाण है इसीपर महापुरुष ने कहा है कि मन की चितवनी के साथ धर्म की दृढ़ता नहीं प्राप्त होती ताते जो पुरुष पापों का त्याग करे तब उस त्याग के प्रमाण होने का आशावन्त रहै अथवा जो पुरुष पापों का त्याग न करसके पर अपने अवगुणों को देखकर शोकवान् होवे और चित्तविषे यह आशा राखे कि मुझ से भगवत् पापों का त्याग करावे तब यह भी शुद्ध

आशा कहाती है पर जब पापों को देखकर शोकवान् ही न होवे और त्याग किये बिना आपको बख्शाया चाहे तब इसका नाम मनही का छल है यद्यपि मूर्ख मनुष्य इसको शुद्ध आशा कहते हैं पर विचारवानों के मन विषे इसका नाम व्यर्थ चितवनी है इसीपर एक सन्त ने कहा है कि जो पुरुष नरकों का बीज बोवे और स्वर्ग की आशा राखे सो महामूर्ख है और एक प्रीतिमान्‌ने महापुरुष से पूछा था कि मन्दभागियों का लक्षण क्या है? और भाग्यवानों का लक्षण क्या है? तब उन्होंने कहा कि जब तू प्रभातसमय उठताहै तब तेरे चित्त की अवस्था क्या होती है? तब उस पुरुष ने कहा कि मैं भले कर्म और भले मनुष्यों को प्रियतम रखता हूं बहुरि शुद्धकर्म को प्रतीति संयुक्त फल सहित देखताहूं और शीघ्रही अङ्गीकार करलेताहूं और जब मुझसे शुभकर्म का अवसर चूकजाता है तब शोकवान् होताहूं तब महापुरुष ने कहा कि भाग्यवानों के लक्षण भी यही हैं और जिनकी अवस्था इनसे विपर्यय है सो मन्दभागी कहाते हैं (अथ प्रकट करना उपाय शुद्ध आशा के प्राप्त होनेका) ताते जान तू कि यह आशारूपी औषध के अधिकारी दो मनुष्य होते हैं प्रथम तो जिसने अधिक पाप कियेहोवें और निराशता करके ऐसे जाने कि मेरा त्याग प्रमाण न होवेगा सो तिसको भी भगवत् की दया का आसरा चाहिये १ और दूसरा अधिकारी वह है जो कठिन तपविषे आपको नाश करता होवे तब उसको भी भगवत् की आशा सुखदायक होती है २ पर आशारूपी औषध में लम्पट मनुष्यों का अधिकार नहीं और उनको हलाहल विष की नाईंहै बहुरि यह आशाभी दो प्रकार करके प्राप्त होती है सो प्रथम तो हृदय की प्रतीति है सो विचार करके भगवत् की दया को पहिंचाने और जिस २ प्रकार महाराज ने सर्व जीवों को आश्चर्यरूप बनाया है सो तिसको भी भलीप्रकार समझै और ऐसे जाने कि महाराज के विना कोई मनुष्य कुछ नहीं करसक्ता ताते भगवत्‌के उपकारों का वेत्ता होवे तब अवश्यही इसको भगवत् की कृपा के ऊपर प्रतीति उपज आवती है क्योंकि भगवत् ने इसको चाहते पदार्थ भी दियेहैं और केवल दया करके सुन्दरताई के निमित्तभी केते पदार्थ दिये हैं सो ऐसेही उसकी दया सर्व सृष्टि विषे भरपूर है मच्छर और मकोड़ों को भी उसने आश्चर्यरूप बनाया है और सबको अपने २ व्यवहारकी बुद्धि दीनी है ताते जो पुरुष ऐसे महाराज के उपकारों को पहिंचानता है सो

कदाचित् उससे निराश नहीं होता और ऐसे जानताहै कि भगवत् की कृपा अपार है १ बहुरि दूसरा उपाय यह है कि जब अपनी बुद्धि करके महाराज के उपकारों को जान न सके तब भगवत् और सन्तजनों के वचनों का विचारकरे जैसे महाराज ने भी कहाहै कि मैं अत्यन्त दयालु कृपालु हूं और महापुरुष ने भी कहाहै कि जब इसलोक बिषे सात्त्विकी मनुष्यों को कुछ रोग आवताहै तब उनके पापों का पुरश्चरण होताहै ताते नरकोंके दुःख से वह मुक्त रहतेहैं और यों भी कहाहै कि जब इस मनुष्य से कुछ अवज्ञा होती है और आपको भूला जानकर क्षमा कराया चाहता है तब महाराज प्रसन्न होकर देवतों से इस प्रकार कहते हैं कि यह मनुष्य धन्यहै इस करके कि मुझको अन्तर्यामी जानकर भय-वान् हुआहै ताते इसको क्षमा करूंगा और योंभी कहा है कि जब इस मनुष्य से कुछ पापकर्म होता है और दीनचित्त होकर उसको क्षमा कराया चाहता है तब देवता उस पाप को लिखतेही नहीं अथवा उस दुष्कृत का पुरश्चरण हो-जाता है और योंभी कहा है कि जबलग यह पुरुष अपने पाप को क्षमा कराने से थकित न होवे तबलग महाराज भी क्षमा करते रहते हैं और थकित कदा-चित् नहीं होते इसीपर एक प्रीतिमान् ने महापुरुष से पूछाथा कि मैं यथाशक्ति भजन स्मरण तो करताहूं पर मेरे पास धन कुछ नहीं ताते दया दान के पुण्य से अप्राप्त रहताहूं सो हे स्वामीजी ! परलोक बिषे मेरी गति कैसे होवेगी तब महा-पुरुष हँसकरके कहनेलगे कि तू सन्तजनों की सभा बिषे प्राप्त होवेगा पर जब चित्तको ईर्षा और अभिमान से शुद्ध राखे बहुरि रसना को झूठ और निन्दा से विवर्जित करे और नेत्रोंको कामादिक दृष्टिसे रोके और किसी की ओर ग्लानि करके न देखे तब तू निस्संदेह परमसुख को पावेगा बहुरि उस प्रीतिमान् ने पूछा कि परलोकबिषे जीवों के पाप पुण्यका न्याय कौन करेगा ? तब महापुरुष ने कहा कि सबका न्याय आप भगवतही करेगा यह वचन सुनकर वह पुरुष अ-धिक प्रसन्न हुआ और हँसकरके कहनेलगा कि जब न्याय करनेहारा पुरुष उदार और दयावान् होता है तब अधिक तो क्षमा और दयाही करता है और अधिक ताड़ना नहीं करता तब महापुरुषने कहा कि ऐसेही यथार्थ है क्योंकि श्रीजानकी-जीवन के समान उदार और दयालु और कोई नहीं और महाराज ने भी कहा है कि मैंने जीवों को सुख और लाभ देने के निमित्त उत्पन्न किया है और इन

को इस निमित्त तो नहीं उपजाया कि मैं इन करके किसी सुख और लाभ को प्राप्त होऊं और योंभी कहा है कि मेरे कोपसे मेरी दया अति बड़ी है ताते जिस पुरुष की प्रतीति मुझ बिना और किसी पदार्थपर नहीं होती सो नरकोंके दुःख को नहीं देखता इसीपर महापुरुष ने कहा है कि भगवत् अपने जीवों पर पिता और मातासे भी अधिक दयालु है क्योंकि सर्व मनुष्यों और पशुवोंबिषे जेती दया वर्त्तमान है सो महाराज के दयारूपी समुद्र की एक बुन्द है और यों भी कहा है कि श्रीराम पतितपावन हैं इस करके कि पुण्यवान् तो स्वाभाविकही सुख के अधिकारी होतेहैं और यों भी कहाहै कि परलोक बिषे दो पापी मनुष्य महाराज के सम्मुख आवेंगे तब उनको आज्ञा होवेगी कि मैं किसी के ऊपर अन्याय नहीं करता ताते तुम अपने अशुभ कर्मोंके अनुसार नरकों बिषे जावो तब वह दोनों पापी बांधे हुए नरक की ओर चलेंगे पर एक दौड़ता जावेगा और एक ढीला होकर चलेगा तब उनको फिर आज्ञा होवेगी कि तू ढीला क्यों चलता है और तू क्यों दौड़ता है तब एक पुरुष कहेगा कि हे महाराज! तेरी आज्ञा से विमुख होने करके मैं नरकगामी हुआ हूं ताते दौड़ता हूं कि अब तो आज्ञा से विमुख न होऊं और दूसरा पुरुष इस प्रकार कहेगा कि मैं तेरी दयाका आसरा रखताहूं सो इसीकारण से ढीला चलताहूं कि अबहीं हम पर क्षमा करता है यह वचन उनके सुनकर महाराज प्रसन्न होवेंगे और इस प्रकार कहेंगे कि तुम्हारी भावना निर्मल है ताते मैंने तुम दोनों को मुक्त किया बहुरि एक बार एक सन्त ने महाराज के आगे बिनती करी थी कि हे महाराज! मुझको पापों से क्षमा करो तब आकाशवाणी हुई कि तेरी नाईं सबही पुरुष निष्पाप हुआ चाहते हैं पर जब सब ही निष्पाप होवें तब मेरी दया और क्षमा क्यों कर प्रगट होवे तात्पर्य यह कि भगवत् की दया और कृपा के वचन और भी अनेक हैं पर जिस पुरुष के हृदयबिषे भयकी प्रबलता होवे सो तिसको ऐसे वचनों का विचार लाभदायक होताहै और जो पुरुष आगेही भोगों बिषे आसक्त और अचेत होवे सो तिसको भगवंत् का भय और वैराग्य का मार्ग अङ्गीकार करना प्रमाण है इसी पर एक सन्त ने कहा है कि जब कोई इस प्रकार कहै कि परलोक बिषे एकही पुरुष नरकगामी होवेगा तब मुझको भय करके ऐसे भासता है कि वह पुरुष मैं हीं न होऊं और जब कोई इस प्रकार कहे कि परलोक बिषे एकही मनुष्य उत्तम

पद का अधिकारी होवेगा तब भगवत् की दया का आसरा करके ऐसे जानता हूं कि जो महाराज मुझको ही परमपद का अधिकारी करें तो क्या आश्चर्य है ताते बुद्धिमानों के हृदय विषे आशा और भय समान होते हैं (अथ प्रकट करना परत्व भयका) ताते जान तू कि श्रीरघुनन्दन स्वामी का भय उत्तम अवस्था है बहुरि इसकी विशेषता और फल भी अधिक है और कारण इसका बूझ है इसीपर महापुरुष ने कहा है कि सर्व शुभगुणों की कुञ्जी भगवत् का भय है बहुरि संयम और वैराग्य इसका लाभ है इस करके कि भय विना भोगों का त्याग नहीं होता और भोगों के त्याग विना परमार्थ के मार्ग विषे चल नहीं सक्ता और यों भी कहा है कि परलोक विषे सर्वजीवों को इस प्रकार भगवत् की आज्ञा होवेगी कि मैंने जब से तुमको उत्पन्न किया है तब से ही मैं तुम्हारे सब वचन सुनता रहा हूं पर अब एक वचन मेरा भी सुनो कि मैं तुम्हारी करतूति तुमको प्रसिद्धकर दिखाताहूं क्योंकि तुमने सम्बन्धियों को विशेष करके पूजा है और मेरे सम्बन्ध से विमुख हुये हो सो मेरे सम्बन्धी वैरागी वैष्णवहैं ताते मैं अब भयवानों और वैष्णवों की विशेषता प्रकट करताहूं इतना कहकर सब वैरागी और भयवान् पुरुषों को मुक्ति को प्राप्त करेंगे और महाराज ने योंभी कहा है कि दो निर्भयता और दो भय किसी मनुष्यके हृदयविषे में इकट्ठे नहीं करता अर्थ यह कि जो इस संसार विषे मुझसे डरताहै तब मैं उसको परलोक विषे अभय करताहूं और जो संसार विषे अभय रहता है सो परलोक विषे दीर्घ भय को पाता है और महापुरुष ने भी कहा है कि जिस पुरुष को भगवत् का भय है सो तिसके भयकरके सर्वसृष्टि डरती है और जिसको भगवत् की भय कुछ नहीं सो सर्व पदार्थों से डरता रहता है ताते उत्तम बुद्धिमान् वह है जिसको भगवत् का भय अधिक है और जो पुरुष भगवत् के भय करके कुछ रुदन करता है सो निस्संदेह नरक के दुःख से छूटता है और जिसके अपने पापों के स्मरण से और भगवत् के भय करके रोम खड़े हो आते हैं सो तिसके पाप ऐसे झड़जाते हैं जैसे शरदऋतु विषे वृक्षों के पात गिरते हैं और यों भी कहा है कि भगवत् को प्रीति और भय संयुक्त रुदन के समान और कोई पदार्थ प्रियतम नहीं और जो पुरुष एकान्त विषे भगवत् का भजन करके भयसंयुक्त होवे सो परलोक की तपनि विषे भगवत् की छाया तले रहेगा उसीपर एक सन्तने कहा है कि जिसे

दिन मुझको भगवत् का भय अधिक हुआ है तिस दिन मैंने अवश्यही उत्तम बूझ को पायाहै और एक और सन्तने कहाहै कि जैसे दो सिंहों की झपटविषे आया हुआ किसी प्रकार नहीं छूटता तैसेही भगवत् की आशा और भय करके जिज्ञासु के पाप शीघ्रही नष्ट होजाते हैं और एक और सन्त ने भी कहाहै कि जैसे यह मनुष्य निर्द्धनता से डरता है पर जब ऐसेही नरकों का भयकरता तब निस्संदेह परमसुख को प्राप्त होता क्यों कि जो पुरुष इसलोक विषे महाराज का भय करता है सो परलोक विषे अभय होवेगा और हसनबसरी सन्त ने कहाहै कि जिस संगति विषे तुमको भगवत् भय उपजे सोई संगति करो तब परलोक विषे निर्भय होवोगे और जिनके वचन सुन करके तुम्हारा भय दूर होजावे तिन की संगति को दुःखदायक जानो इसी पर आयशा ने महापुरुष से पूछाथा कि महाराज ने जो यह वचन कहाहै कि जो करते हैं और डरते हैं सो इसका क्या अर्थ है तब महापुरुष ने कहा कि जिज्ञासुजन भजन और दानादिक शुभकर्म करते हैं और चित्त विषे भयवान् रहते हैं कि मत यह हमारा कर्म प्रमाण न होवे और एक सन्तने भी कहाहै कि भगवत् के भय संयुक्त रुदनकरो और जो स्वाभाविकही तुमको रोना न आवे तब यत्नकरके भी चित्तको कोमल करो (अथ प्रकटकरना रूपभय का) ताते जान तू कि भयरूपी अग्नि इस मनुष्य के हृदय विषेही प्रकट होती है पर इसका कारण विद्या और बूझ है जब इस मनुष्य को परलोक के दुःख की बूझ प्राप्त होती है और स्थूल भागों को अपनी हानि का कारण जानताहै तब स्वाभाविक ही भयरूपी अग्नि उपज आती है पर वह बूझ भी दो प्रकार होती है प्रथम तो जिसको अपनी पराधीनता और अवगुण प्रत्यक्ष भासते हैं और भगवत् के उपकारोंको जानताहै तब स्वाभाविकही भयवान् होता है जैसे किसी पुरुष ने राजा से बहुत बखशीस पाई होवे बहुरि जब उससे चोरी और व्यभिचारादिक अवज्ञा होजावे और ऐसे जाने कि मेरा यह धन चुराना राजा ने देखा है और मेरी अवज्ञा को क्षमाकरानेहारा भी और कोई नहीं और राजा का स्वभाव महातेजस्वी है तब ऐसे जानकर अवश्यही उसको दीर्घ भय उपजता हैं १ बहुरि दूसरी बूझ यहहै कि जिसने श्रीरघुवंशमणि के ऐश्वर्य और बेपरवाही को भली प्रकार पहिंचाना है सो तिसको भी अधिक भय होता है जैसे कोई पुरुष अचानक ही सिंह के निकट जापहुँचे तब स्वाभाविकही भय संयुक्त

कांपने लगताहै सो यद्यपि उसका डरना अवज्ञा निमित्त नहीं होता पर सिंहकी प्रबलता और अपनी निर्बलता को देखकर कम्पायमान होताहै तैसेही जिसने महाराज के ऐश्वर्यको ऐसे समझा है कि जो सर्व ब्रह्माण्डों को नाश करडारे तो भी उसका कुछ घटता नहीं और जब सबको नरकों विषे डारदेवे तौभी उसको कुछ दोष नहीं लगता और यद्यपि उसको कृपालु दयालु कहते हैं तौ भी उसका शुद्ध स्वरूप कृपा और कोपसे परे है और सर्व स्वभावों से निर्लेप है ताते ऐसे जानने करके वह पुरुष सर्वदा भयविषे स्थित होताहै और यद्यपि सन्तजन सर्व पापों से निर्दोष हैं पर महाराज के ऐश्वर्य का भय उनको भी होता है इसी पर महापुरुष ने भी कहाहै कि जिसको भगवत् की पहिंचान अधिक है सो तिसको अधिकही भय होता है और महाराज ने भी कहा है कि जिसने मुझको नहीं जाना सो मुझसे निडर होताहै और दाऊद महात्मा को भी आकाशवाणी हुई थी कि हे दाऊद! मुझसे ऐसा भयवान् हो जैसे और मनुष्य मेघ की घोर गर्ज और सिंहसे भयवान् होते हैं ताते भयका कारण यही बूझ है बहुरि इसका फल हृदय विषे उपजताहै और सर्व इन्द्रियों विषे भी प्रकटताहै पर हृदय विषे भय का लक्षण यह है कि उसको सर्वभोग विरस होजाते हैं जैसे सिंह के निकट राजा के कठिन बन्दीखाने विषे भोगों की चपलता नहीं रहती और अत्यन्त भयवान् हो-कर दीनचित्त और एकत्र होजाताहै अथवा उसको यही भय होताहै कि देखिये मुझको कैसी ताड़ना होवेगी इसी कारण से अभिमान, ईर्षा, तृष्णा, अचेतता कुछ नहीं रहती बहुरि भय का लक्षण शरीर और इन्द्रियों विषे इस प्रकार होताहै कि प्रथम तो शरीर क्षीण और दुर्बल होजाताहै और इन्द्रियां भी पापों विषे प्रवेश नहीं करतीं और शुभकर्मों विषे सावधान होती हैं पर भयकी अवस्था विषे भी बड़ा भेद है कि जब पापकृत भोगों से आपको बचाय राखे तब उसको त्यागी कहते हैं और जब राजसी भोगोंसे रहित होवे तब वैरागी कहाताहै और जब सात्त्विकी भोगों विषे आसक्त न होवे तब उसको सांचा पुरुष कहाजाता है पर जो पुरुष किसी अवसर तो रुदन करनेलगे और मुखसे भी त्राहि त्राहि करतारहे बहुरि भोगों की प्राप्तिविषे अचेत होजावे तब उसको संशयबुद्धि कहते हैं और इसको नाम भय नहीं कहते क्योंकि जो पुरुष किसी पदार्थ से भयवान् होताहै तब फिर उसको अङ्गीकार नहीं करता जैसे किसी को अपने वस्त्र विषे सर्प दृष्टि आवे तब

शीघ्र उसको डारदेताहै और मुखसे त्राहि त्राहि करने नहीं लगता इसीपर एक सन्त से किसीने पूछाथा कि भयवान् का लक्षण क्याहै ? तब उन्होंने कहा कि जैसे रोगी मरने के भय करके सर्व भोगोंको त्याग देताहै तैसेही भयवान् पुरुष वह है जो परलोकके भय करके सर्व सुखों को विरस जाने (अथ प्रकट करना भेद भय की अवस्था का) ताते जान तू कि भयकी तीन अवस्था हैं सो एक अति तीक्ष्ण है १ और दूसरी समान है २ और तीसरी अतिनिर्बलहै ३ पर सर्व विषे समान अवस्था विशेष है क्योंकि निर्बल करके इस जीव का कार्य कुछ नहीं होता और यद्यपि कोई पल घड़ी उसकरके सचेत होता है पर तौभी शीघ्रही अचेत होजाता है और तीक्ष्ण भय इसका नाम है कि भयकी प्रबलता करके निराश और बराबर होजावे और शरीर की मृत्यु को जाय पहुँचे इसीकारण से यह दोनों अवस्था निन्द्यहैं कि इन करके पापों का त्याग और शुभकर्मों की दृढ़ता नहीं होती और इस निमित्त भी भयकी अधिकता नहीं चाहिये कि भय का सुख ज्ञान और भरोसे और प्रेमकी नाईं नहीं क्योंकि भरोसा आदिक लक्षण सबही सुखरूप हैं और भय इनकी प्राप्ति के निमित्त चाहिये है इसी कारण से कहाहै कि भय का कारण पराधीनता और अजानता है इस करके कि असमर्थता और अजानता के अंश विना भय नहीं उपजता ताते महाराज को निर्भय स्वरूप कहा है कि उस विषे अजानता और असमर्थता का अंशही नहीं पाया जाता पर भगवत् मार्ग की साधना के निमित्त इस जीवको अवश्यही भय चाहिये और अचेत पुरुषों को भयही सुचेत करता है जैसे बालक और पशु किसी प्रकार भय विना सुचेत नहीं होते ताते निर्बल भयका दृष्टान्त यह है कि जैसे पाधा बालक को वस्त्र करके मारे अथवा पशुको अंगुली करके मार्गविषे चलाया चाहे तब बालक और पशु की अचेतता रंचक भी दूर नहीं होती और तीक्ष्ण भय का दृष्टान्त यह है जैसे बालक और पशुको ऐसा शस्त्र चलावे कि उसका अङ्गही कटजावे अथवा मृत्यु को प्राप्त होजावे सो जैसे यह दोनों प्रकार की ताड़ना निष्फल होती हैं तैसेही तीक्ष्ण और निर्बल भय करके इस जीवका कार्य कुछ नहीं होता और जब यह पुरुष भयकी समान अवस्था को पाता है तब पापों से डरने लगता है और शुभकर्मों की श्रद्धा उपजती है ताते बुद्धिमान् पुरुष समान भय विषेही स्थित होते हैं और जब भयकी अधिकता होने लगती है तब

भगवत् का आसरा चितवते हैं और जब भयकी निर्बलता होती है तब भगवत् की बेपरवाही को स्मरण करते हैं पर जो पुरुष भय से रहित होवे और आपको बुद्धिमान् कहावे तब जानिये कि उसकी बुद्धिही मन्द है और झूठही अभिमान करता है जैसे कोई मनुष्य वैद्यक पढ़े विना आपको वैद्य कहावे तब वह केवल झूठही कहाता है तैसेही भय विना और विद्या सबही झूठी है क्योंकि सर्व विद्या का मूल अपना और भगवत् का पहिंचानना है अर्थात् अपने अवगुणों को भली प्रकार देखना और भगवत् को सर्व गुणनिधान समर्थ और बेपरवाही जानना ताते जिस पुरुष ने अपनी अधीनता और भगवत् की समर्थता को भली प्रकार समझा है सो तिसके हृदय विषे अवश्य भयही उपजता है इसी पर महापुरुष ने कहा है कि प्रथम इस जीवको भगवत् की बड़ाई और बेपरवाही को पहिंचानना प्रमाण है बहुरि उसी महाराज का दास हुआ चाहिये कि सर्वदा आपको दीन पराधीन देखता है सो जिस पुरुष ने इस भेद को भली प्रकार समझा है तब वह भयसे रहित क्योंकर होवेगा (अथ प्रकट करने भेद भय के) ताते जान तू कि यद्यपि भय का उपजना किसी त्रास करके होता है पर वह त्रासभी भिन्न २ भाव करके उपजती है केते पुरुष नरकों के त्रास करके भयवान् होते हैं और केते पुरुषों को अपने अवगुणों का भय होता है और ऐसे जानता है कि मत पापों के त्यागकिये विना शरीर छूटजावे तो हमारा अकाज होवेगा और किसीको यह भय होता है कि भगवत् मेरे संकल्पों का अन्तर्यामी है ताते जब मुझ से कुछ अवज्ञा होजावे और उसकी अप्रसन्नता को प्राप्तहोऊं तब अविनाशी दुःखविषे दुःखितरहूंगा तात्पर्य यह कि इस मनुष्य को जिस जिस प्रकार भय उत्पन्न होवे तब चाहिये कि उसी के उपाय विषे सावधान होवे जिस को अपने मलिनस्वभाव का भय होवे कि मत मैं अपने मन के अधीन होकर पापों विषे आसक्त होजाऊं सो तिसको चाहिये कि मलिनस्वभाव से विपर्यय होकर भलेस्वभाव विषे विचरे और जो पुरुष महाराज को अन्तर्यामी जानकर भयवान् होवे तब चाहिये कि मलिन संकल्पों से अपने हृदय को शुद्ध राखे पर जिज्ञासुजनों को अधिक भय यही होता है अन्तकालपर्यन्त मेरे धर्म का निर्वाह होवे अथवा न होवेगा और इससे भी विशेष भय यह है कि देखिये महाराज ने मेरे भाग्य विषे क्या लिखा है ? क्योंकि जैसा २ महाराज ने जिस

जिस के भागों विषे लिखाहै सो कदाचित् उलटता नहीं इसी कारण से कितने पुरुष प्रथम पापकर्मों विषे आसक्त होते हैं और भगवत् की आज्ञा करके पीछे उनकी अवस्था निर्मल होजाती है और केते मनुष्य प्रथम चिरकाल पर्यन्त सात्त्विकी कर्म करते रहते हैं और पीछे उनकी बुद्धि विपरीत होजाती है और कुमार्ग को अङ्गीकार करते हैं ताते भाग्यवान् वही है जिसको महाराज ने आदिही संकेत विषे भाग्यवान् किया है और अति मन्दभागी वही है जिसको आदि नेतविषे भाग्यहीन रचा है इसकारण से बुद्धिमानोंको आदि नेतका भय होता है सो यह भी महाविशेष है क्योंकि जिसको अपने पापों का भय होता है सो वह पापों के त्यागने करके निडर और अभिमानी होजाता है और महाराजकी बेपरवाही का जो भय है सो कदाचित् दूर नहीं होता इस करके कि यद्यपि भगवत ने सन्तजनों को उत्तम अवस्था विषे स्थित किया है और दुर्बुद्धियों को अधोगति विषे डारा है पर जब विचार करके देखिये तो जगत् की उत्पत्ति के आदि में किसी ने भगवत् की अवज्ञा भी नहीं करीथी और किसी ने सेवा करके उसको रिझायाभी न था ताते कारण बिना जिसपर वह दयालु हुआ है तिस को भला मार्ग दिखाया है और कारण बिना ही किसी को पापों की अभिलाषा विषे आसक्त किया है सो जैसा २ किसी को महाराज ने लखाया है तैसाही उसने लखा है जिसको स्थूलभोग सुखरूप दिखाये हैं सो वह उनका त्याग नहीं करसका और जिसको विषयरूप लखाये हैं सो तिसने उनको अङ्गीकार नहीं किया जिसके नेत्रों को उसने मूंदाहै सो दुखको भी दुख नहीं जानसक्ता और जिसके नेत्रोंको प्रभु ने खोला है सो वह दुखके मार्ग विषे चल नहीं सक्ता ताते धर्मी और पापी दोनों पराधीन हैं और भगवत् की आज्ञानुसार पुण्य पाप को ग्रहण करते हैं महाराज ने जिसको मन्दभागी कियाहै सो अधोगति को प्राप्त होताहै और जिसको भाग्यवान् किया है सो परमसुख को पाता है तात्पर्य यह कि जिस महाराज को किसी का भय नहीं और जिस प्रकार चाहता है तैसेही कर लेता है और जिसके हुक्म को कोई नहीं फेरसक्ता सो ऐसे महाराज से सर्वदा भयवान् होना प्रमाण है इसीपर दाऊदजीको आकाशवाणी हुईथी कि जैसे गर्जते सिंह को देखकर त्रास उपजता है तैसेही मुझ से भयवान् होवो क्योंकि जब किसीको सिंह मारताहै तब सिंहको भय कुछ नहीं आवता और किसी अवज्ञा

के सम्बन्ध करके भी नहीं मारता और जब छोड़देवे तौभी किसी गुण अवगुण करके नहीं छोड़ता ताते उसका मारना और छोड़ना कारण विनाही कहा है तैसेही जिसने महाराज की बड़ाई और तेज को इस प्रकार समझा है सो कदाचित् निर्भय नहीं होता (अथ प्रकट करना भेद अन्तकाल का) ताते जान तू कि बहुते भयवान् पुरुष अन्तकाल के भय करके डरते हैं सो इसका कारण यह है कि अन्तका समय महाकठिन होताहै और इस मनुष्य का मन क्षण २ विषे चलायमान है ताते जाना नहीं जाता कि उस समय विषे इसीका चित्त किस स्वभाव विषे स्थित होवेगा इसीपर एक बुद्धिमान् ने कहा है कि जब मैं पचास बर्ष पर्यन्त किसी के संगहीऊं और उसकी अवस्था को देखतारहूं बहुरि जब वह पुरुष एकघड़ी मुझ से दूर होजावे तबभी मैं उसकी अवस्था की साखी न देऊं क्योंकि इस मनुष्य के मनकी बृत्ति महाचपल है ताते जाना नहीं जाता कि एक घड़ी के अन्तकालविषे कैसे स्वभाव को प्राप्त होवेगा इसीपर एक सन्त ने महाराज की दुहाई करके कहाहै कि किसी पुरुष को अन्तकाल के भय से निडर होना प्रमाण नहीं इस करके कि देखिये उस समय धर्म का निर्वाह होवेगा अथवा न होवेगा और सुहेल सन्तने कहा है कि जिज्ञासुजन अन्तकाल के भय से श्वास २ विषे डरते रहते हैं बहुरि एक सन्त मृत्यु के समय रोनेलगे थे तब लोगोंने उनसे कहा कि तुम्हारे पापोंसे भगवत् की बड़ाई और दयालुता अति बड़ी है ताते तुम रुदन मतकरो तब उन्होंने कहा कि यद्यपि मैं जानता हूं कि जिस समय विषे मेरी प्रतीति भली प्रकार स्थितरहेगी तब मैं पापों को देखकर भयवान् न होऊं पर मैं तो इतना भी नहीं जानता कि अन्तपर्यन्त मेरे धर्मका निर्वाह क्योंकर होवेगा और सुहेलसन्त ने कहाहै कि प्रीतिमान् को मनमुखता का भय रहता है अर्थ यह कि ज्ञानवान् अहंकार के फुरनेको भी मनमुखता जानते हैं और ऐसे मनमुखी से डरते रहते हैं क्योंकि अहंकार और कपट अन्तकाल विषे इसकी प्रतीति को नष्ट करडालते हैं इसीपर हसनबसरी सन्त ने कहा है कि मनके संकल्पों और शरीर की क्रिया को भिन्नभावकर दिखानाही कपट है ताते अन्तकाल विषे ऐसे पुरुषकी अवस्था स्थिर नहीं रहती पर मृत्यु के समय जो इस जीव का सम्बन्ध चलाजाता है सो इसके भी बहुत कारण हैं और इनका विस्तार प्रकट करना प्रमाण नहीं ताते मैं दो कारणों को प्रसिद्ध

कहता हूं प्रथम तो जिसने सन्तजनों की मर्याद से विपर्य्यय क्रिया ग्रहण कीन है और अपनी सर्व आयुष् मनमत के मार्ग विषे विताई है और उस मार्गको झूठा भी नहीं जानता होवे सो जब उसकी मृत्यु का समय आता है तब उसके कपाट खुल जाते हैं और अपनी क्रिया को झूठा जानने लगता है ताते उस अवस्था के विपर्ययभाव विषे यद्यपि कुछ अल्पमात्र आगे भगवत् की प्रतीति होती है पर उस समय वह भी निस्संदेह विचल जाती है क्योंकि वह प्रतीति आगेही निर्बल थी और जो पुरुष अनेक शास्त्रों के मतों को पढ़ता सुनता है सो तिसका निश्चय अवश्यही स्थिर नहीं रहता और जिन पुरुषों की बुद्धि यद्यपि थोड़ी है पर सन्तजनों के वचनों को यथार्थ जानकर दृढ़ प्रतीति कर लेता है तब उसका निश्चय अन्तकाल विषे भी नहीं लेता इसीकारण से महापुरुष ने अधिक शास्त्र पढ़ने से वर्जित किया है और भोले भाव की प्रतीति को उन्होंने विशेष कहा है बहुरि दूसरा कारण यह है कि जिस मनुष्य की प्रीति भोगों विषे अधिक होती है तिसके हृदयविषे भी भगवत् की प्रतीति दृढ़ नहीं होती ताते जब अन्तकाल विषे स्थूल पदार्थों का वियोग होता देखता है और इसकी इच्छा विनाही इसको परलोक की ओर ले जाते हैं तब ऐसी दीर्घ ताड़ना और भोगों के वियोग करके वह निर्बल प्रतीति भी दूर होजाती है जैसे किसी पुरुष की प्रीति पुत्र के साथ अल्प होवे और वह पुत्र पिता की अधिक प्यारी वस्तु को लिया चाहे तब उस पुत्र के साथ पिता की अल्प प्रीति भी नहीं रहती और विरुद्ध उपज आता है और जो पुरुष भगवत् की अधिक प्रीति करके आगेही सर्व पदार्थों से विरक्त हुआहै सो तिसको अन्तकाल का भय नहीं होता क्योंकि उसको भोगों का वियोग सुखरूप भासता है और उसकी प्रीति सूक्ष्मपद विषे अधिक होतीहै ताते उसको शरीर के नष्ट होने विषे ग्लानि नहीं होती और अन्तकाल की भलाई का लक्षण यही है पर जो पुरुष ऐसे चाहे कि अन्तके अवसर विषे मेरे चित्त की वृत्ति अडोल रहे तब चाहिये कि प्रथम तो सन्तजनों की मर्याद से विपरीत निश्चय को अङ्गीकार न करे और उनके यथार्थ वचनों पर दृढ़ प्रतीति राखे बहुरि और सर्व पदार्थों से विरक्तहोकर भगवतही की प्रीति विषे स्थित होवे पर माया के पदार्थों से विरक्त तबहीं होताहै जब प्रथम धर्मकी मर्याद को ग्रहण करे और पापों से रहित होवे

और भगवत् की प्रीति इस करके अधिक होती है कि जो सन्तजनों की संगति और भगवत् भजनविषे सावधान होवे और कुसंगियों का त्यागकरे पर जिसके हृदय से माया की प्रीति दूर न होवे सो अन्तकाल के भयसे किसी प्रकार मुक्त नहीं होता (अथ प्रकटकरना उपाय भय की प्राप्ति का) ताते जान तू कि प्रथम जिज्ञासुजन को धर्मके मार्ग की बूझ प्राप्त होती है और उसही बूझ करके भगवत् का भय प्राप्त होता है बहुरि भय करके त्याग वैराग्य और संतोष उत्पन्न होते हैं और संतोष करके निष्कामता और भगवत् के भजन का रहस्य बढ़ता जाताहै ताते प्रसिद्ध हुआ कि सर्व शुभगुणों का कारण भगवत् का भय है और भय की प्राप्तिके मार्ग तीन हैं प्रथम तो उत्तम मार्ग विद्या और बूझ है इसकरके कि जिसने महाराज के ऐश्वर्य और तेज और बेपरवाहीको भलीप्रकार समझा है और जीवों की पराधीनता को भी जाना है कि मन्दभागी और भाग्यवान् सब विना किसी कारणके केवल श्रीमहाराजकी आज्ञाकरके हुये हैं तब उसको अवश्यही भय उपज आता है जैसे सिंह के निकट मनुष्य का चित्त भयरूप होजाता है इसी पर सन्तजनों ने कहा है कि जिस मनुष्य की जेतीही अधिक बूझ होतीहै तेताही उसको अधिक भय उपजताहै और एकवार महापुरुष रुदन करतेथे तब उनको आकाशवाणी हुई कि तुम काहे को रोतेहो तुमको तो मैंने अभय कियाहै तब महापुरुष ने बिनती करी कि हे महाराज ! मैं तेरे भेदों को समझ नहीं सक्ता ताते इसी निमित्त रोताहूं कि मत यह भी परीक्षा होवे बहुरि आकाशवाणी हुई कि ऐसेही यथार्थ है ताते मेरे भयकरके रोतेरहो और कदाचित् अचेत न होवो बहुरि एकवार मनमुखों की लड़ाई विषे महापुरुष की बहुत सेना मारीगई थी तब महापुरुष भय संयुक्त होकर प्रार्थना करनेलगे कि हे महाराज ! सात्त्विकी मनुष्योंकी सहायता करनेहारे तुमहीं हो उससमय विषे एक महापुरुष के प्रियतम ने कहा कि तुम धैर्य करो इस करके कि महाराज ने तो तुम्हारी ही जयहोनी कही है सो भगवत् सर्वदा अपने वचनों का निर्वाह करनेहारा है पर जब सूक्ष्म दृष्टिकरके देखिये तो उससमय विषे उसकी अवस्था महाराज की दया सहित महापुरुषके ऊपर दृढ़ थी और महापुरुष ने महाराजकी वेपरवाही को इस प्रकार समझा था कि जब वह हमारी जीत न करे तब उसका क्या घटता है और यद्यपि उसने आपही कहाहै पर जब वह वचनभी परीक्षाहीके निमित्त होवे तब

क्या आश्चर्य है? क्योंकि उसके वचन और करतूतिके भेदोंको कोई पुरुष जान नहीं सक्का १ बहुरि दूसरा मार्ग भय की प्राप्ति का यह है कि भयवानों की संगति करके भी अवश्यही भय उपजता है जैसे माता पिता को सर्प से डरता देखकर बालक भी सर्पसे डरने लगताहै पर यह जो भयवानों की संगति विषे भय उपजता है सो प्रथम बूझके भयसे न्यून है क्योंकि जैसे बालक देखादेखी करके सर्प से डरने लगताहै तैसेही जब किसी मन्त्रवाले सपेरे के हाथ विषे सर्प देखता है तब वह भी सर्प को पकड़ा चाहता है ताते चाहिये कि जबलग इस मनुष्य की बूझ दृढ़ न होवे तबलग अचेत पुरुषों की संगति न करे और निडर विद्यावानों का संग तो कदाचित्‌ही न करे २ बहुरि तीसरा मार्ग यह है कि जब भयवान् पुरुषों की संगति को पाय न सके तब भयवानों की अवस्था और उन के वचनों को श्रवणकरे और अपने चित्त विषे ऐसे जाने कि जब ऐसे बुद्धिमान् और वैराग्यवान् पुरुष डरते रहे तब हमको अवश्यही भय चाहिये इसीपर महा-पुरुष ने कहा है कि जब मुझको आकाशवाणी होने लगती है तब भय करके मेरा शरीर कांपता है कि देखिये महाराज की मुझको कैसी आज्ञा होवेगी और जब दाऊद रोनेलगे थे तब उनके अश्रुप्रवाह से पृथ्वी पर घास उपज आई थी और दाऊदजी ने महाराज के आगे यों प्रार्थना करी थी कि हे महाराज! मेरे पापों को मेरे हाथों पर लिखदो तब मैं अपनी अवज्ञा को सर्वदा देखता रहूं सो भगवत् ने ऐसेही किया तब वह अपने हाथों को देखकर सर्वक्रिया विषे रोतेरहे और जब जलपान करने लगते तब आंसू के जल से कटोरा भरजाताथा बहुरि एकबार दाऊद ने योंभी कहाथा कि हे प्रभो! तुम मेरे रोनेकी ओर नहीं देखते तब आकाशवाणी हुई कि तू अपने रोने की वार्त्ता करताहै और अपना स्वरूप तुझको विस्मरण होगया है इस करके कि मैं तो ऐसा बेपरवाह हूं कि जब मैंने आदि मनु को उत्पन्न किया था तब सबही देवता उसके दास करदिये थे और और भी नाना प्रकार की बखशीस उसको दीन्हींथी और उसको अपना प्रधान बनायाथा पर जब उससे एकही अवज्ञा हुई तब उसको शीघ्रही अपने द्वार से गिरादिया ताते जो कोई मेरी आज्ञा मानता है तब मैं भी उसको अङ्गीकार करताहूं और जो पुरुष मुझसे विमुख होता है तब अवश्य ही वो क्रोध को देखता है ताते जब तू मेरेही सम्मुख होवे तब मैं तुझको मुक्त करदूंगा बहुरि दाऊदजी

का रुदन सुनकर सहस्र मनुष्यों के शरीर छूटजाते थे और केते मूर्च्छा को प्राप्त होते थे और यहियासन्त की कथा है कि जब उनकी बालअवस्था थी तब बालक उनको खेलने के निमित्त बुलाते और वह बालकों से इसप्रकार कहते थे कि मुझको भगवत् ने खेलने के निमित्त तो नहीं उत्पन्न किया बहुरि महाराज के भय करके इतना रुदन करते थे कि उनके कपोलों का मांस आंसुओं करके गल गया था और एक महापुरुष के प्रियतम ऐसे थे कि जब पक्षी को देखते तब भय करके कहते थे कि जो मैं भी पक्षी होता तो भला था और एक सन्त ऐसे कहते कि जो मैं वृक्ष होता तौभी केते पापों से मुक्त रहता और एक सन्त जब भय के वचन सुनते थे तब अचानकही गिरपड़ते थे और मूर्च्छित होजाते थे और आयशा इसप्रकार कहती थी कि मैं मूलही से उत्पन्न न होती तौभी इस अचेतता के जीवने से विशेष था और एक और सन्त जब भजन करने को बैठते थे तब उनके मुख का रङ्ग पीत होजाता था तब किसी ने पूछा कि भजन के समय तुम्हारी ऐसी अवस्था किस निमित्त होजाती है तब उन्होंने कहा कि श्रीराम नाम स्मरण के समय महातेजवान् अखिल ब्रह्माण्डनायक श्रीरामजू के सम्मुख होना होता है ताते मेरा चित्त भयवान् होजाता है इसीपर एक सन्त ने कहा है कि शुभस्थान पायकर अभिमानी न होवो काहेसे कि किंचित् अवज्ञा करके बड़े २ महात्माओं को उत्तम पद से गिराय दिया है और भजन की अधिकता का भी अभिमान न करो क्योंकि केते पुरुषों ने केते लाख वर्ष पर्यंत जप तप किया और अभिमान करके धिक्कार के अधिकारी हुये बहुरि विद्या करके भी अभिमानी न होवो क्योंकि एक विद्यावान् ने सर्वविद्या अधिक ही पढ़ी थी पर एक विमुख राजा के सङ्ग रहने करके महाराज ने उसको कूकुर की नाईं कहा है और अपने द्वारे से विमुख किया बहुरि सन्तजनों के दर्शन करने करके भी अभिमान न करो इस करके कि केते मनमुख महापुरुष के सम्बन्धी महापुरुष को देखते रहे हैं पर उनको भगवत् की प्रीति प्राप्त नहीं हुई और एकसन्तने कहा है कि मैं सर्वदा उठकर अपने मुख को देखता हूं इस भय करके कि पापों करके मेरा मुख श्याम न होगया होवे और एक सन्त चालीस वर्ष पर्यन्त हँसे न थे और संसार बिषे जब दुर्भिक्ष काल अथवा कोई और विघ्न प्रकटता था तब वह ऐसे कहते थे कि मेरेही पापों करके जीवों को दुःख होता है और हसनबसरी

सन्त से किसी ने पूछा था कि तुम्हारी क्या अवस्था है? तब उन्होंने कहा कि, बड़े समुद्र विषे जिसकी नौका टूटजावे तब उसकी क्या अवस्था कहिये अर्थ यह कि मेरी भी ऐसेही अवस्था है इसी कारण से हसनबसरी सर्वदा ऐसे शोकवान् रहते थे जैसे कोई राजा के बन्दीखाने विषे बांधाहुआ पुरुष दुःखित होवे पर अब विचार करके देखना चाहिये कि ऐसे उत्तमपुरुष तो इस प्रकार डरते रहतेहैं और तुझको किंचित् भय भी नहीं उपजता सो इसका यह कारण नहीं कि तू निष्पाप है और वह पापी थे ताते ऐसे जानाजाता है कि तू अतिमलिनता और मूर्खता और पापों की अधिकता करके निडर है और वे सब बूझ की अधिकता करके सर्वगुणों संयुक्त होकर भी भयवान् रहे हैं बहुरि जब कोई इस प्रकार प्रश्न करे कि सन्तजनों के वचनों विषे भय और आशा की स्तुति तो अधिक है पर इन दोनों विषे विशेष क्या है जिसकी प्रबलता रहनी चाहिये तब इसका उत्तर यह है कि भय और आशा दोनों औषध हैं और औषध को एक दूसरे से विशेष नहीं कहाजाता क्योंकि जैसा किसीको रोग होताहै तब उसीके अनुसार उसका उपाय कियाजाता है और जिस उपाय करके रोग का नाश होवे तब उसको वही औषध विशेष होता है और मैंने आगे वर्णन किया है कि भय और आशा जिज्ञासुजन के मार्ग के साधन हैं और इन दोनों से उत्तम अवस्था यह है कि यह मनुष्य सर्वदा श्रीजानकीवल्लभजू के प्रेम विषे लीनरहे और भूत, भविष्य, वर्तमान के प्रेरक की ओर दृष्टिराखे काल की स्मृति भी न रहे सो जिसको ऐसी अवस्था प्राप्तहुई है तिसको भय और आशा पटल होते हैं पर यह अवस्था महा- दुर्लभ है और सब जीवों का अधिकार इस प्रकार है कि जिसको मरने का समय निकट होवे तब चाहिये कि महाराज की दया की आशा अधिक राखे इसकरके कि शुद्ध आशा करके प्रीति उपजती है और जो पुरुष भोगों विषे आसक्तहोवे तिसको भयकी प्रबलता चाहिये है और जो पुरुष शुद्धबुद्धि और वैराग्य संयुक्त होवे तब उसको भय और आशा दोनों समान चाहियेहैं बहुरि भजन और शुभ करतूति के समय विषे आशा की अधिकता विशेषहै काहेसेकि शुद्ध आशा प्रीति का कारण है और प्रीति करके भजन का रहस्य अधिक होता है और पापकर्म के समयविषे भयकी अधिकता सुखदायकहै बहुरि खान पान आदिक जेते श- रीर के व्यवहार हैं सो तिनविषे भी भयसंयुक्त विचरना प्रमाण है तात्पर्य यह कि

भय और आशा का गुण मनुष्यों की वृत्ति के अनुसार प्रकट होता है और ऐसे नहीं कहसक्के कि सर्वथा भयही विशेष है अथवा आशाही विशेष है॥

चौथा सर्ग॥

निर्द्धनता और वैराग्य का वर्णन॥

तातें जान तू कि धर्म के मार्ग का मूल अपना और भगवत् का पहिंचानना है बहुरि माया और परलोक का पहिंचानना है सो आपको पहिंचानकर अपने आपका त्यागना है और श्रीजानकीनाथ की ओर सम्मुख होना प्रमाण है बहुरि ऐसेही माया को छलरूप जानकर त्यागना और परलोक की ओर सावधान होना है तातें सर्व शुभगुणों का फल यही है कि इसका अपना आपा श्रीरामजू बिषे लीन होजावे और माया के पदार्थों से विरक्त होकर परलोक के अविनाशी सुख बिषे स्थित होवे क्योंकि माया की प्रीति इस जीव की बुद्धि को नाश करती है और जो पुरुष इससे विरक्त हुआ है सो मुक्तरूप है तातें मैं प्रथम तो निर्द्धनता की विशेषता कहता हूं (अथ फ़क़ीरी अर्थात् निर्द्धनता निरूपण) ऐसे जान तू कि जिस पुरुष को किसी पदार्थ की चाह होवे और वह पदार्थ उसके पास न होवे उसको फ़क़ीर अर्थात् निर्द्धन पुरुष कहते हैं सो जब इस भाव करके देखिये तो सबही मनुष्य संग्रह से रहित हैं और निर्द्धन हैं क्योंकि प्रथम तो इसको अपना जीवना चाहिये और जीवने के सम्बन्ध बिषे खान पान आदिक और भी अनेक पदार्थ चाहते हैं सो इतने पदार्थ में कोई वस्तु इसके हाथ बिषे नहीं और यह मनुष्य इन सबके आधीन है तातें प्रसिद्ध हुआ कि यह सबही जीव अतिनिर्द्धन और दीन हैं और सबों के धनी एक श्रीअवधचन्द्र महाराज हैं क्योंकि धनी उसको कहते हैं जो और किसी के आधीन न होवे अपने आप करि संतुष्ट होवे सो ऐसा धनी एक श्रीरामही हैं और सबही निर्द्धन हैं इसीपर महाराज ने कहा है कि मैं एकही धनीहूं और तुम सबही निर्द्धन हो और ईसा महापुरुष ने कहा है कि मैं आप करके अत्यन्त पराधीन हूं और मेरे सर्वकार्यों की कुञ्जी महाराजही के हाथ है तातें मैं अतिनिर्द्धन हूं पर ज्ञानवानों के मत बिषे असंग्रही पुरुष उसको कहते हैं जो अपनी ममता से रहित होवे और सर्व कार्यों बिषे आपको पराधीन जाने बहुरि केते पुरुष इस प्रकार कहते हैं कि जब यह मनुष्य भजन स्मरण भी करे तब केवल असंग्रही कहाता

है क्योंकि जिसने शुभकर्म को अङ्गीकार किया तब उसके फल का अधिकारी होताहै ताते उसको संग्रह से रहित नहीं कहसक्के सो ऐसे वचन का कहना मंत-मतियों का भ्रम है और मन्दभागों का बीज है बहुरि यद्यपि ऐसे पुरुष आपको बुद्धिमान् जानते हैं तो भी मनके अधीन होकर धर्ममार्ग से बिगड़जाते हैं और अशुभ अर्थ को शुभ अक्षरों विषे लपेटकर वर्णन करते हैं इस करके कि अल्पबुद्धि जीव हमको बुद्धिमान् जानें और वह मूर्ख इतना नहीं समझते कि जब भजन अथवा शुभकर्मों करके मायाधारी होते हैं तब चाहिये कि भगवत् से भी विरक्त हूजिये क्योंकि जिसको भगवत् का आसरा है सो सर्व पदार्थों का धनी होताहै ताते संग्रह से रहित वह पुरुष कहिये जो निरभिमान होकर भजन विषे सावधान होवे इसी पर एक महापुरुष ने कहा है कि भगवत् का भजन भी मेरे बल करके नहीं होता और वह आपही मुझसे भजन कराता है और इस मार्ग विषे जो मैंने असंग्रह का वर्णन किया है सो यहां निर्द्धनता का भाव राखा है ताते मैं निर्द्धनता का निर्णय कहताहूं सो ऐसे जान तू कि निर्द्धनता दो प्रकार की होती है प्रथम तो जो अपने पुरुषार्थ करके धन को त्यागदेवे सो वह वैराग्य कहाता है १ और दूसरे जिसको धन प्राप्तही न होवे सो उसको निर्द्धन कहते हैं २ पर निर्द्धन मनुष्य भी तीन प्रकार के होते हैं सो जिसको धनके संचने की अभिलाषा है और धन उसको प्राप्त नहीं होता तब वह तृष्णा-वान् कहाता है १ और जो पुरुष धन के निमित्त यत्न और याचना करे और जब उसको कोई कुछ देवे तब प्रसन्न होकर अङ्गीकार करे और जो न देवे तौ भी प्रसन्न रहे सो तिसको सन्तोषी कहते हैं २ और जिस पुरुष को धन की अभिलाषा भी न होवे और यद्यपि उसको धनकी प्राप्ति भी होवे तौ भी अङ्गी-कार न करे सो वैराग्यवान् कहाता है ३ और जिस पुरुष को धन की अभिलाषा है और उसको प्राप्त कुछ न होवे तौभी विशेष है पर सन्तोषी जनों की विशे-षता तो निस्सन्देह है (अथ प्रकट करना परत्वसंतोषी निर्द्धन का) ताते जान तू कि महापुरुष ने भी ऐसे कहा है कि भगवत् संतोषी निर्द्धन को अधिक प्रिय-तम रखता है और योंभी कहा है कि हे प्रियतमो ! ऐसाही पुरुषार्थ करो जिस करके निर्द्धनता करके परलोक विषे जावो और धनवान् मृत न होवो और एक बार महापुरुष को आकाशवाणी हुई थी कि जब तू चाहे तब मैं तेरे निमित्त

सबही पहाड़ सोने के करदूं तब महापुरुष ने बिनती करी कि मैं इस वार्त्ता को नहीं चाहता क्योंकि माया निर्द्धन का धन है और निघरा घर है और इसके संचनेहारे महामूर्ख हैं बहुरि ईसा महापुरुष ने मार्ग विषे किसी को सोता देखा था तब उससे कहते भये कि उठकर भगवत् का भजनकर तब उस पुरुष ने कहा कि तू मुझ से क्या कहता है मैंने माया तो मायाधारियों को सौंपदी है तब उन्होंने कहा कि जब तैंने ऐसे किया है तब अचिन्त होकर सोरह और मूसा महापुरुष को आकाशवाणी हुई थी कि जब निर्द्धनता तेरे निकट आवे तू उसको प्रसन्न होकर अङ्गीकारकर और महापुरुष ने कहा है कि जब मैंने ध्यान विषे स्वर्ग को देखा था तब वहां अधिक तो निर्द्धन दृष्टि आये थे और नरकों विषे धनवान्ही विशेष देखे थे और योंभी कहा है कि अमुक सन्त मेरे सब प्रियतमों से पीछे उत्तमपद को प्राप्त होवेगा इस करके कि वह अधिक धन रखता है यह वार्त्ता सुनकर उस सन्तने केते सहस्रभार संयुक्त ऊंट अर्थियों को उठाय दिये बहुरि जब महापुरुष ने सुना तब प्रसन्न हुये और कहनेलगे कि उसने अपना भला किया और योंभी कहा है कि भगवत् जिसको अपना प्रियतम करता है तब उसके सम्बन्धियों और धन को दूर करदेता है और उसके ऊपर नाना प्रकार के दुःख भेजताहै और एक महापुरुष ने कहाहै कि धनवान् यत्न करके स्वर्ग को पावेंगे और निर्द्धन सुखसेही स्वर्ग को प्राप्त होवेंगे और एक महापुरुष ने महाराज के आगे प्रार्थना करीथी कि हे प्रभो ! इस जगत् विषे तेरे प्रियतम कौन हैं जो मैं भी उनके साथ प्रीतिकरूं तब उनको आकाशवाणी हुई कि जो निर्द्धनता विषे संतोष संयुक्त रहते हैं सोई मेरे प्रियतम हैं और महापुरुष ने कहा है कि परलोक विषे निर्द्धनों को भगवत् इस प्रकार कहैंगे कि हे मेरे प्रियतमो ! मैंने तुमको नीच जानकर निर्द्धन नहीं किया पर अपनी बखशीस देने के निमित्त धन से बचाइराखा है इस करके कि भोगों और पापों से तुम्हारी रक्षा होवे ताते जिस जिसने तुमको कुछ खान पान दिया है तिनको अपने साथ लेकर सुखके स्थानों विषे जावो और योंभी कहा है कि निर्द्धनों के साथ प्रीतिकरो और यथाशक्ति उनकी सेवाकरो इस करके कि ऐसे पुरुष उत्तम भाग्यवान् होते हैं और योंभी कहाहै कि जिन्होंने निर्द्धनों की सेवा का त्याग कियाहै और धन के संचने विषे आसक्त हुये हैं सो तिनके ऊपर चार विघ्न अवश्यही आवते हैं एक

दुर्भिक्ष १ और दूसरा राजदण्ड २ तीसरा भोगों की अधिकता ३ चौथा रोग ४ और एक सन्त ने कहा है कि जो पुरुष निर्द्धनों को निर्द्धनता के निमित्त नीच जाने और धनवानों के साथ प्रीति करे सो तिसको सर्वदा धिक्कार है और सिफयांसन्त का यह स्वभाव था कि निर्द्धनों को अपने निकट बैठाते थे और धनवानों को सबोंसे पीछे बैठाते थे और एक सज्जन ने अपने पुत्र को इस प्रकार कहा था कि हे पुत्र! निर्द्धनों को ग्लानिदृष्टि से न देखना क्योंकि तेरा और उनका भगवत् एकही है और एक सन्तने कहा है कि जैसे यह मनुष्य निर्द्धनता से डरताहै सो जब ऐसेही नरकों से भयवान् होता तब दोनोंसे अभय रहता और जैसा पुरुषार्थ माया के कार्यों विषे करता है सो जब ऐसा पुरुषार्थ आत्मसुख के निमित्त करता तब परलोक विषे सुखी रहता और जैसे लोगों से संकोच करताहै सो जब ऐसेही अन्तर्यामी महाराज से संकोच करता तब दोनों ओर सम्मुख होता और किसी पुरुष ने चार सहस्र रुपया एक सन्त को आन दिया था तब उन्होंने अङ्गीकार न किया बहुरि जब उसने अधिक विनती करी तब कहतेभये कि तू मुझको कछुक धन करके निर्द्धनों की समाज से दूर किया चाहता है सो मैं ऐसा तो न करूंगा और महापुरुष ने आयशा से कहाथा कि जब तू परलोक विषे मेरे संग उत्तमपद को चाहती है तो निर्द्धनों की नाईं जीवन व्यतीतकर और जबलग तेरा वस्त्र अत्यन्त पुराना होजावे तबलग तिस को उतार कर नवीन मत पहर और धनवानोंकी संगति का त्यागकर और योंभी कहाहै कि जिस पुरुष को धर्मके मार्ग की प्रीति है और अल्पमात्र जीविका विषे संतोष सहित अपना समय बिताता है सो पुरुष धन्य है और यों भी कहा है कि हे निर्द्धनो! निर्द्धनताको विशेष पदार्थ जानकर प्रसन्न होवो तब तुम्हारी निर्द्धनता सफल होवे सो यद्यपि इस वचन विषे इसप्रकार भासताहै कि तृष्णावान् निर्द्धनको कुछ फल प्राप्त नहीं होता पर और वचनों विषे ऐसेही प्रसिद्धहै कि और निर्द्धन भी मूलही से निष्फल नहीं क्योंकि निर्द्धनता करके केते पापों से उनकी रक्षा होती है बहुरि यह वार्त्ता निस्संदेह है कि संतोषी निर्द्धन को अधिक फल होता है इसी पर महापुरुष ने कहा है कि संतोषी निर्द्धनों के साथ प्रीति करनी उत्तम सुखकी कुञ्जी है इस करके कि ऐसे पुरुष भगवत् के निकटवर्ती हैं और योंभी कहा है कि परलोक विषे सबलोग यही पश्चात्ताप करेंगे कि जो संसार

बिषे हमको जीविकामात्र धन प्राप्त होता तो भला था और ईसा महापुरुष को आकाशवाणी हुई थी कि अधीन हृदयों बिषे ही मेरा निवास है ताते तू मुझको वहांही पावेगा और एक सन्त ने कहा है जो पुरुष धन की अधिकता करके प्रसन्न नहीं होता और आयुष् के घटने करके शोकवान् नहीं होता सो महापुरुषहै और एक प्रीतिमान् को किसीने लवण साथ रोटी खाते देखाथा तब उस ने पूछा कि तुम ने इतनीही जीविका के ऊपर संतोष किया है तब वह प्रीतिमान् कहते भये कि जिसने परलोक के सुख को त्यागकर माया को अङ्गीकार कियाहै सो तिसने इससेभी अल्पबातपर संतोष कियाहै और एकबार एक सन्त को स्त्री ने सभा बिषे इसप्रकार आइ कहाथा कि आज तो तेरे गृह बिषे आहारमात्रही कुछ नहीं और तू महाअचिन्त बैठा है तब उन्होंने कहा कि हमारे मार्ग बिषे एक घाटी महाकठिनहै ताते हलकेही उससे उल्लङ्घित होतेहैं और भारी गिरपड़ते हैं इतना सुनकर वह स्त्री प्रसन्न होकर घर को चली गई (अथ प्रकट करना उत्तर पूर्वपक्ष का) ताते जान तू कि केते बुद्धिमानों ने आगेभी इस प्रकार प्रश्नोत्तर कियेहैं कि धनवान् उदार विशेष है अथवा निर्द्धन संतोषी विशेष है पर मेरे चित्त बिषे इस प्रकार भासता है कि निर्द्धन संतोषी विशेष हैं क्योंकि निर्द्धन संतोषी के स्वभाव सर्वदा टूटते रहतेहैं और शरीर के दुःखों को देखकर सर्वदा विरक्तचित्त होताजाता है और भगवत्तही की प्रीति को बढ़ावता है ताते मृत्यु के समय भी और किसी पदार्थ के साथ उसका मोह नहीं रहता और धनी पुरुष यद्यपि उदार और सात्त्विकी होवे तौभी नाना प्रकार के सुखों को भोगता है इसी कारण से विरक्तचित्त नहीं होसकता बहुरि भजन स्मरण के नियम बिषे भी धनवान् पुरुष विक्षेपसहित रहता है और संतोषी निर्द्धन का चित्त स्वाभाविकही दीन और एकत्र रहता है पर जब धनी और निर्द्धनी पुरुष दोनों तृष्णावान् होवें तब दोनों धन के अर्थी कहावते हैं और उसी बिषे बन्धायमान हैं और जब सूक्ष्मदृष्टि करके देखिये तब भगवत् से अचेत होनाही निन्द्यहै सो किसीको धन करके अचेतता होती है और किसीको निर्द्धनता ही पटल डारती है ताते सन्त जनों ने जीविकामात्र को भी निन्द्य नहीं कहा इसकारके जिस बिषे भगवत के भजन में इसका चित्त स्थिर रहे सोई उत्तम पदार्थ है बहुरि धनवान् भी जब सात्त्विकी और उदार होवे और निर्द्धन पुरुष को कुछ धन की अभिलाषा होवे

तब दोनोंकी अवस्था परस्पर निकट होतीहै इस करके कि यद्यपि सुखोंके भोगने करके धनवान् का चित्त मलिन होजाता है पर उदारता करके उसको निर्मलताई भी प्राप्त होतीहै बहुरि जैसे निर्द्धन पुरुष का हृदय तृष्णा करके मलिन होताहै तैसेही दुःखोंके खैंचने करके उसको निर्मलताई भी प्राप्त होती है तात्पर्य यह कि मलिनता बन्धमानी को कहते हैं और निर्वन्धता का नामही निर्मलता है इसी कारण से जिस धनवान् को होना और न होना धन का समान होवे और अर्थियों के निमित्तही धन को संचय करता होवे और चित्त उसका सर्वपदार्थों से विरक्त होवे सो निस्संदेह सबमे उत्तम है जैसे आयशा को तीस सहस्र रुपया किसी ओर से भेंट आया था तब उन्होंने एकही दिन विषे अर्थियों को बांटदिया और अपने निमित्त एकपैसा भी न राखा सो यह अवस्था महाउत्तम है पर जब धनवान् और निर्द्धन दोनों के चित्त की वृत्ति समान होवे तब निर्द्धनताही विशेष है क्योंकि जब निर्द्धन पुरुष एकबार श्रीराम कहता है तब दीनता करके ऐसा एकाग्रचित्त होताहै कि धनवान् का मन बहुत भजन और केते दान करके भी ऐसा आधीन नहीं होता इस करके कि धनवान् का चित्त पदार्थों की प्रसन्नता करके कठोर होजाताहै और भजनरूपी बीज कठोरचित्त विषे उपजताही नहीं ताते जिस पुरुष का चित्त किसी पदार्थ विषे आसक्त न होवे और प्रीति संयुक्त भजन में स्थित रहे सो निस्संदेह महाराज की निकटता को पाता है पर जब कोई ऐसा अनुमान करलेवे कि धन विषे निर्लेप रहताहूं सो यह बड़ी मूर्खता है क्योंकि परीक्षा किये विना अभिमान करना व्यर्थ है सो परीक्षा इसकी यह है कि जैसे आयशा ने एकबारही धन को बांटदिया और उनके चित्त विषे संचय करने का संकल्पही न फुरा पर जब इस अवस्था का प्राप्त होना सुगम होता तब सन्तजन और प्रीतिमान् राज धन का त्याग काहेको करते और वैराग्य की वृत्तिविषे काहेको रहते इसीपर एक महापुरुष ने कहा है कि धनवानों की ओर दृष्टि न करो क्योंकि वह प्रसन्नता की दृष्टिही तुम्हारे धर्म का नाश करेगी और भजन की प्रसन्नता दूर होजावेगी इस करके कि दोनों ओर की प्रीति एक हृदय विषे समाय नहीं सकती ताते एक वस्तु सत्य है और एक असत्य है सो जिस का चित्त असत्य वस्तु विषे बन्धवान् हुआ सो शुभपदार्थ की ओर से विमुख होता है और जेताही असत्य वस्तु से निर्मोह रहता है तेताही सत्यस्वरूप की

और सम्मुख होताहै इसी पर एक सन्त से किसी ने कहाथा कि मेरा कुटुम्ब बड़ा है और मैं अत्यन्त निर्द्धन हूं ताते तुम मेरे निमित्त भगवत् से प्रार्थना करो तब उन्होंने कहा कि जिस समय विषे तेरे पुत्र आहार के निमित्त रुदन करने लगें और तेरा चित्त अत्यन्त आधीन और शोकवान् होवे तब तू मेरे निमित्त प्रार्थना कियाकर क्योंकि ऐसे समय विषे तेरी प्रार्थना मेरी प्रार्थना से अधिक सफल होवेगी (अथ प्रकटकरनी युक्ति निर्द्धनताकी) ताते जान तू कि निर्द्धनता भी इस युक्ति करके सफल होती है कि चित्त जिसका प्रसन्नरहे और किसी के आगे अपना दुःख वर्णन न करे प्रथम तो महाराज का उपकार जानकर प्रसन्न होवे और इस प्रकार समझे कि श्रीरामजी निर्द्धनता अपने भक्तों को देते हैं और जब ऐसी प्रसन्नता को प्राप्त न होसके और निर्द्धनता करके दुःखित होवे तौभी महाराज की आज्ञा विषे ग्लानि न करे सो यह वार्ता प्रसिद्ध है कि दुःख करके दुःखित होना भिन्न है और ग्लानि करनी भिन्न है जैसे रुधिर कढ़ावनेहारा पुरुष पीड़ा करके दुःखित होता है पर रुधिर काढ़नेहारे पर ग्लानि नहीं करता तैसेही जो पुरुष निर्द्धनता विषे दुःखित होवे और रामरजाय जानकर उस दुःख विषे अपना कल्याण समझे तो यहभी विशेष अवस्थाहै बहुरि जो पुरुष रामरजाय को न समझे और निर्द्धनता के दुःख विषे ग्लानि करे अथवा प्रभुकी दया पर प्रतीतिही न करे तब यह वार्ता अयोग्य है और इस करके निर्द्धनता फलदायक कभी नहीं होती ताते चाहिये कि सर्वसमय और सर्व अवस्था विषे भगवत् का उपकार जाने और इस प्रकार समझे कि भगवत् की करतूति निष्फल कभी नहीं होती व सर्वदा फलदायक है ताते उसकी करतूति विषे ग्लानि करनी प्रमाण नहीं और चाहिये कि रसना करके भी अपनी निर्द्धनता का बखान न करे और धैर्यकरके गुसरावे इसीपर एक सन्त ने कहा है कि एक निर्द्धनता भी दुःखों का कारण होती है सो तिसका लक्षण कठोरता और ग्लानि है बहुरि एक निर्द्धनता सुखदायक होतीहै तिसका लक्षण कोमलताई और धन्यवाद है और सन्तजनों ने योंभी कहा है कि अपनी निर्द्धनता विषे दूसरी युक्ति यह चाहिये कि धनवानों की संगति कदाचित् न करे और धनके निमित्त उनके आगे दीन न होवे और उनका बहुत आदरभी न करे इसीपर एक सन्तने भी कहाहै कि जो पुरुष अतीत होकर धनवानों की संगति करे तब जानिये कि कपटी है और जब

राजाओं की निकटता को चाहे तब उसको बटमार जानिये २ बहुरि तीसरी युक्ति यह है कि यथाशक्ति अपनी अभिलाषाओं को सकुचायकर दानभी करे इसीपर महापुरुष ने कहाहै कि जिस पुरुषके पास दो पैसे होवें और एक पैसा किसीअर्थी को उठायदेवे तब धनवान् के सहस्र रुपयेके देनेसे भी अधिक विशेषहै बहुरि दान लेनेकी युक्ति यहहै कि सकाम और अशुद्ध पूजाको अङ्गीकार न करे और शरीरके निर्वाह से अधिकभी न लेवे पर जब और अर्थियों के निमित्त लेवे तब यह भी प्रमाण है काहे से कि प्रकटही पूजा का अङ्गीकार करना और भगवत् के निमित्त अर्थियोंको पहुँचाना यह सांचे पुरुषों की अवस्था है और जिस विषे ऐसी समर्थता न होवे तब उसको चाहिये कि दान देनेहारे से इस प्रकार कहे कि तूही किसी अधिकारी को देदे पर दान देनेहारेकी अवस्था को विचारना अधिक प्रमाण है कि यह पुरुष मुझको भाव करके देताहै अथवा किसी कामना और मान के निमित्त देता है सो जब वह पुरुषभाव करके देवे और लेनेहारे पर उपकार भी न राखे तब उसीकी पूजा अङ्गीकार करनी विशेष है पर तौ भी जेती उसकी श्रद्धा होवे तिससे अधिक अङ्गीकार न करे इसी पर एक वार्त्ता है कि एक पुरुष ने एक सन्त के आगे पचास रुपये पूजा के राखे थे और ऐसा कहतेभये कि जब कोई भाव करके याचना विनाही कुछ आनिदेवे तब उसका निरादर करना प्रमाण नहीं यह वचन सुनकर सन्तने एक रुपया काढ़लिया और उनचास रुपये उसके फेर दिये ऐसेही एक और पुरुष हसनबसरी के पास कुछ धन लेआयाथा तब उन्होंने अङ्गीकार न किया और कहनेलगे जो पुरुष धर्म का उपदेश करनेहार होवे और किसी की पूजा को अङ्गीकार करे तब उसकी निष्कामता नष्ट होजाती है और भगवत् के दर्शन को नहीं पावता पर यह वचन उन्होंने इस निमित्त कहा था कि वह पुरुष उनका ऐश्वर्य देखकर पूजा देता था और उसके हृदय विषे निष्काम प्रीति न थी बहुरि एक और सन्तजन को एक मित्र कुछ भेंट देनेलगा तब उन्हों ने ऐसे कहा कि जब यह वस्तु देने करके तेरा भाव अधिक बढ़े तब मैं इसको अङ्गीकार करताहूं और जब इस वस्तुके देने करके तेरी प्रतीति भाव घटजावे तब मैं इस वस्तु को अङ्गीकार नहीं करता तूही किसी अधिकारी को देदे इसी कारण से सिफयां सन्त किसीकी पूजा नहीं लेतेथे और इस प्रकार कहतेथे कि जब मैं इनकी पूजा विषे केवल निष्कामता देखूं तब इनकी पूजा का

निरादर न करूं पर जब लोग किसीको कुछ देने लगते हैं तब अपनी उदारता वर्णन करने लगते हैं और उसके ऊपर अपना उपकार राखतेहैं ताते सन्तजनों ने निष्काम मित्रोंकी पूजाही का अङ्गीकार कियाहै और उपकार राखनेहारे पुरुषों की पूजा से विरक्तरहेहैं इसीपर वशरसन्तने कहाहै कि मैं और किसी से कुछ नहीं मांगता पर सिर्री सन्त से मांगभी लेताहूं इस करके कि जब वह किसीको कुछ देते हैं तब वह अधिक प्रसन्न होते हैं तात्पर्य यह कि जब कोई इसको मान और दिखलावे के निमित्त देवे तब उसका अङ्गीकार न करे इसीपर एक वार्त्ता है कि एक सन्त ने किसीकी पूजा का नतकार किया था तब लोग कहनेलगे कि तुम ने इसका निरादर क्यों किया तब वह कहते भये कि हमने तो इसके ऊपर दया कीनी है क्योंकि यह संसारी जीव जब किसी को कुछ देते हैं तब पीछे अपनी बड़ाई वर्णन करनेलगते हैं इसी कारण से इनका धन भी व्यर्थ होता है और फल भी नष्ट होजाता है पर जब कोई प्रसन्नता के निमित्त इसको कुछ देवे तब होते बल उसका अङ्गीकार न करे और जब आप अत्यन्त अर्थी होवे तब नतकार भी न करे और योंभी कहाहै कि जब कोई इसको याचना विनाही भाव प्रीति करके कुछ देवे और यह पुरुष उसका अभिमान करके निरादर करे तब भगवत् उसके ऊपर ऐसे ताड़ना करताहै कि उसको लोगों से याचना करावताहै और वह उस को देतेही नहीं इसीपर एक वार्त्ता है कि सिर्री सन्त ने कुछ धन एक सन्त के पास भेजाथा तब उन्हों ने अङ्गीकार न किया बहुरि सिर्री ने कहा कि तुम नतकार के विघ्नसे भय क्यों नहीं करते यह वचन सुनकर वह विचार करनेलगे और ऐसे कहतेभये कि एक रात्रिकी जीविका मेरे पास है ताते तुम इस धनको अपने निकट राखो जब वह जीविका पूर्ण होचुकेगी तब मैं तुमसे मांगलेवोंगा (अथ याचना की निषेधता प्रकट करनी) ताते जान तू कि महापुरुष ने कहा है कि याचना करना महामलिनहै ताते अत्यन्त प्रयोजन विना इस बिषे विचरना अयोग्यहै और इसकी मलिनता तीन प्रकार करके जानीजाती है प्रथम तो याचना करने से स्वामी की निन्दा प्रकट होतीहै और इस करके भगवत् के उपकार का कृतघ्नी होताहै जैसे कोई दास अपने स्वामी विना और किसीसे कुछ मांगे तब वह स्वामी भी निन्दा पावताहै ताते अत्यन्त प्रयोजन विना याचना न करे तो भला है १ बहुरि दूसरी मलिनता यह है कि याचना करके अपनी निर्मानता

होतीहै और जिज्ञासु जनको यह वार्त्ता प्रमाण नहीं कि भगवत् विना लोगोंके आगे लोभ के निमित्त आपको निर्मानकरे पर जब अत्यन्त प्रयोजन होवे तब निष्काम मित्र अथवा किसी परम उदार से मांगलेवे तो प्रमाण होवे इस करके कि उदार पुरुष और निष्काम मित्र देने करके ग्लानि नहीं करता और इसके ऊपर उपकार भी नहीं रखता पर तौभी होते बल याचना करनी महा अयोग्य है २ बहुरि तीसरी मलिनता यह है कि जिसके आगे याचना करिये सो तिसको दुखावना होताहै क्योंकि जब उसका चित्त देने करके प्रसन्न न होवे और लज्जा अथवा अपमान के डर करके कुछ देवे तब उसका हृदय दुःखित होता है ताते चाहिये कि यद्यपि अवश्यही मांगना होवे तौ भी प्रसिद्ध याचना न करे और सैनकरके अपना अर्थ लखाइ देवे तौ भला है इस करके कि जब देनेहारे पुरुष की मंशा देनेकी न होवे तब लज्जा और संकोच करके न देवे और जब प्रसिद्ध ही मांगनाहोवे तब एक पुरुष की ओर दृष्टि करके न कहे और सभाविषे सभों से कहे ताते जिस की इच्छा होवेगी सो देवेगा पर जब किसी और अर्थी के निमित्त प्रसिद्ध भी मांगलेवे तब यह भी प्रमाण है तात्पर्य यह कि जब कोई पुरुष लज्जा और अपमान के भय करके इसको कुछदेवे तब उसके दानका अङ्गीकार करना अयोग्य है क्योंकि यह भी दण्डकरके लेना होता है सो यद्यपि स्थूलबुद्धि जीव इस भेद को नहीं समझते पर विचारवान् बुद्धि करके हृदय की ओर देखलेते हैं कि ग्लानिसहित दानदेना दण्ड की नाईं होता है इस करके प्रसिद्धहुआ कि अत्यन्त प्रयोजन विना याचना करनी महानिन्द्य है और मांगना उसहीका अधिकारहै जो केवल निर्धन और दीन होवे और कोई व्यवहार न करसक्ता होवे पर जिज्ञासु जनको यहभी चाहिये कि जब जीविका की अधिकही अपेक्षा होवे तब आसन अथवा बासन अथवा वस्त्र को बेंचलेवे और अपने वश चलते याचना न करे इसी पर महापुरुष ने कहा है कि जो पुरुष कुछ संग्रह होते भी किसीसे कुछ मांगताहै सो निस्संदेह नरकों का अधिकारी होता है ताते जब विचार करके देखिये तब शरीरके निर्वाहमात्र तीनही पदार्थ इसको चाहिये हैं सो कुछ आहार जिस करके प्राण बनेरहैं १ बहुरि एताही वस्त्र जिस करके नग्नता दूर होवे २ और शीतोष्ण वर्षा की रक्षाके मात्र स्थान ३ सो जिसने इस भेद को समझा है वह जिस तिस प्रकार अपने शरीर का निर्वाह संयमसहित

करलेता है पर जो पुरुष नाना प्रकार के भोजनों और शृङ्गारों के निमित्त याचना करे सो तो निस्संदेह पापी होता है (अथ तापसों की अतीत अवस्था का भेद प्रकटकरना) ताते जान तू कि अतीत जनों की अवस्था तीन प्रकार की है सो एक तो ऐसे उत्तम हैं जो किसी से कुछ मांगते भी नहीं और जब कोई उनको कुछ देवे तौभी नहीं लेते सो केवल अचाहरूप हैं १ बहुरि दूसरे पुरुष ऐसे हैं जो याचना नहीं करते पर जब कोई श्रद्धा सहितदेवे तब अङ्गीकार कर लेते हैं सो यह भी परम सुख के अधिकारी होते हैं २ और तीसरे ऐसे प्रीतिमान् पुरुष हैं कि जब अत्यन्त प्रयोजन होवे तब याचना भी करलेते हैं पर भोगों के निमित्त कदाचित् नहीं मांगते सो यह भी सात्त्विकी जनों की अवस्था है पर प्रथम दो अवस्था से अल्प है ३ इसी पर इबराहीम ने एक सिद्ध से पूछा था कि तैंने बलख के अतीतों को किस प्रकार देखाहै तब उसने कहा कि उनकी उत्तम अवस्था है क्योंकि जब कुछ पावते हैं तब भगवत् का धन्यवाद करते हैं और जब कुछ नहीं पावते तब संतोष कर रहते हैं यह वचन सुनकर इबराहीम ने कहा कि यह तो कूकुरों की अवस्था है बहुरि उस सिद्ध ने पूछा कि तुमने अतीतों की अवस्था कैसी देखी है ? तब इबराहीम कहतेभये कि जब उनको कुछ प्राप्त नहीं होता तब धन्यवाद करते हैं और जब कुछ पावते हैं तब उदारता करते हैं यह वार्त्ता सुनकर उसने मस्तक टेका और कहनेलगा कि सांचे पुरुषों की अवस्था यही है बहुरि एक और वार्त्ता है कि एक सन्त को किसी ने मांगता देखा था तब वह संशयवान् होकर जुनेदसे पूछता भया कि यह तो याचना करनेहारे नहीं ताते इनके मांगने के विषे क्या प्रयोजन है तब जुनेद ने कहा कि इन के मांगने की ओर देखकर ग्लानि न कर क्योंकि यह मांगने विषे भी लोगों का कल्याण करते हैं और इनके हृदय की दृष्टि सर्वदा भगवत् की ओरही है ताते इनका मांगना भी कल्याणदायक ही है तात्पर्य यह कि सांचे पुरुषों की ऐसी अवस्था हुई है और उनका हृदय ऐसा निर्मल हुआ है कि कहे विनाही एक दूसरे के संकल्प को पहिंचान लेते थे और जिस पुरुष को ऐसी अवस्था प्राप्त न होवे तब चाहिये कि ऐसे पद की अभिलाषा को हृदय विषे दृढ़करे बहुरि जब प्रीति और श्रद्धा से हीन होवे तब उनकी अवस्था पर प्रतीति ही दृढ़ राखे तो भला है (अथ प्रकट करना परत्व और अर्थ वैराग्य का) ताते

जान तू कि जैसे ग्रीष्मऋतु विषे किसी पुरुष के पास बर्फ होवे तब उसको शीतलता के निमित्त वह बर्फ प्रियतम होता है पर जब कोई उसको अधिक स्वर्ण देकर मोल लिया चाहे तब धन करके उसको बेंच लेता है और अपने शीतल जलके पीने की अभिलाषा को त्याग देता है और यों जानता है कि यह बर्फ क्षण २ विषे गलता जाता है और स्वर्ण करके मेरे केते कार्य पूर्ण होवेंगे तैसेही जिस पुरुष ने इस प्रकार समझा है कि इस संसार के सुख क्षण २ विषे परिणाम को पाते जाते हैं और मृत्यु के समय कुछही न रहेंगे ताते आत्मसुख की प्रीति करके संसार के सुखों को शीघ्रही त्याग देताहै और उसकी दृष्टि विषे सबही भोग तुच्छ भासते हैं सो इसही अवस्थाको वैराग्य कहते हैं पर वैरागी की परीक्षा दो प्रकारकी होती है प्रथम तो जिसने पुरुषार्थ और निष्काम प्रीति करके धन और मान आदिक पदार्थों को त्याग दियाहै और सर्वभोगों से विरक्त होकर महाराज की ओर सावधान हुआ है तब वह भी उत्तम वैरागी कहाताहै १ और जो पुरुष आदि विषे धन कुछ नहीं रखता तब उसके वैराग्य की परीक्षा यह है कि जो उसको धन आदिक पदार्थ प्राप्त होवें तो अङ्गीकार न करे तब उसके वैराग्य का चिह्न प्रकट होताहै २ पर जो पुरुष ऐसी परीक्षा किये विना आपको वैरागीजाने सो महामूर्ख है क्योंकि भोगों की प्राप्ति विना इसका मन स्वाभाविकही सकुचा रहता है और जब भोगों की प्राप्ति होती है तो महाचपलता को पाता है बहुरि एक यह भी वैराग्य की परीक्षा है कि जैसे धन आदिक पदार्थों का त्याग करताहै तैसे मानरस से भी विरक्त होवे इस करके कि वैरागी तिसको कहते हैं जिसकी प्रीति भगवतभक्ति विना और किसी पदार्थ विषे कुछ न होवे पर रामभक्ति के निमित्त स्थूल सुखों को त्याग करना बहुत लाभदायक है इसीपर महाराज ने कहा है कि जब तुम तन और धन मेरे अर्थ लगावो तब मैं परम सुखरूप अपनी भक्ति तुमको प्राप्तकरूं ताते हे जिज्ञासुजनो! इस करके तुम को अधिक प्रसन्न होना प्रमाण है कि यह व्यवहार बहुत लाभदायक है और जो पुरुष अपने मान के निमित्त अथवा किसी और अर्थ करके धन आदिक पदार्थों का त्यागकरे तब उसको वैरागी नहीं कहते और स्वर्ग के सुखकी चाह करके जो पुरुष संसार के सुखों को त्यागता है सो ज्ञानवानों के निकट यह भी कुछ पुरुषार्थ नहीं क्योंकि श्रीरामभक्त जैसे इस संसार के सुख को तुच्छ

जानते हैं तैसेही स्वर्ग के सुखों को भी तुच्छरूप जानते हैं क्योंकि स्वर्ग विषे भी इन्द्रियादिकही भोग हैं ताते उनको भी विरस समझते हैं और इन्द्रियादिक भोगों विषे आसक्त होना पशुवों का धर्म है इसी कारण से ज्ञानवान् श्रीजानकीवल्लभजू के शुद्धस्वरूप प्राप्ति विना और किसी पदार्थ करके सन्तुष्ट नहीं होते और और सर्व पदार्थों को कुछ वस्तुही नहीं जानते ताते ज्ञानवान् धन का त्याग भी नहीं करते और जो कुछ संग्रह भी रखते हैं तौ भी अधिकार अनुसार खर्च करदेते हैं जैसे पिछले केते सन्तों की अवस्था हुई है कि वह केती पृथ्वी का राजभी करते थे और धन भी अधिक रखते थे पर उनका चित्त किसी पदार्थ विषे आसक्त न था तात्पर्य यह कि ज्ञानवान् के पास लाखों रुपये होवें तौ भी वैरागी है और ज्ञानहीन पुरुष यद्यपि एक पैसा भी न रखता होवे तौभी वैरागी नहीं कहाजाता ताते उत्तम अवस्था यह है कि इस पुरुष का चित्त सर्वपदार्थों से निर्मोह होवे और किसी पदार्थ के ग्रहण अथवा त्याग की इच्छाही न करे और किसी पदार्थ से प्रीति और विरोध भी न करे क्योंकि जैसे प्रियतम पदार्थ चित्त से कदाचित् नहीं विसरते तैसेही विरोधी पदार्थ भी विस्मरण नहीं होते और उत्तम अवस्था यही है कि इस पुरुष के हृदय से सबही पदार्थ विस्मरण होजावें और जैसे समुद्र के जलविषे किसी को कृपणता नहीं होती तैसेही धन विषे भी उदारचित्त होवे और धन का होना न होना इसको समान होजावे सो यद्यपि यह उत्तम अवस्था है पर मूर्खों के गिरनेका अधिकार भी यही है अर्थ यह कि जिस पुरुष से धन का त्याग नहीं होसक्ता तब वह ऐसाही अभिमान करलेता है कि मैं धनके हर्ष शोक से रहितहूं पर इसकी परीक्षा यह है कि जब उसका धन कोई अधिकारी लेजावे अथवा और किसी विघ्न करके नष्ट होजावे और उसका चित्त समानताविषे न रहे तब जानिये कि झूठाही अभिमान करताहै और उसका चित्त धन से विरक्त नहीं हुआ तब उसका अधिकार यह है कि पुरुषार्थ सहित धन का त्यागकरे तो माया के विघ्नों से मुक्तरहे इसीपर एक वार्त्ता है कि एक त्यागीजन को किसी ने कहा था कि तुम वैराग्यवान् हो तब उन्होंने कहा कि वैरागी तो अमुक सन्तहैं क्योंकि वह सर्व पदार्थों का संग्रह रखते हैं और हृदय उनका निर्लेप है और मेरे पास तो धनही कुछ नहीं ताते मेरा वैराग्य क्योंकर जानाजावे बहुरि एक विद्यावान् ने ईर्षा करके कहा था कि अमुक सन्त तो

जुलाहे का पूत है और हमारे वचन को प्रमाण नहीं करता तब एक और प्रीतिमान् ने कहा कि हम तो इतना नहीं जानते कि वह जुलाहा है अथवा कौन जाति है पर इतना जानते हैं कि माया उनके सम्मुख आती है और वह माया की ओर पीठ देते हैं और हम सदैव काल माया को ढूंढ़ते हैं सो हमको प्राप्त नहीं होती बहुरि माया का सुख बर्फ़ के समान तुच्छ है और आत्मसुख स्वर्ण के समान है सो बर्फ़ को स्वर्ण के साथ बेंचडालना कुछ बड़ी बात नहीं और सब बुद्धिमान् यह काम करसक्ते हैं तैसेही माया के सुखों को आत्म सुख पर निछावर करना प्रमाण है पर जब विचार करके देखिये तो बर्फ़ और स्वर्ण विषे थोड़ाही भेदहै और माया के सुख और आत्मसुख विषे अधिक से अधिक ही भेद है इस करके कि आत्मसुख के निकट माया के सुख कुछ वस्तुही नहीं पर अल्पबुद्धि मनुष्य इस वार्ता को नहीं समझते क्योंकि प्रथम तो इन की प्रतीतिही निर्बल है बहुरि दूसरा कारण यह कि माया के भोग इन्द्रियों के विषे प्रकटही रमणीक भासते हैं और तीसरा कारण यहहै कि यद्यपि सन्तजनों के वचन सुनकर भोगों के त्याग की कुछ श्रद्धा भी उपजतीहै तौभी अचेतता करके ढीलकर रहते हैं और कहते हैं कि अब तो इस भोग को भोगलेवें बहुरि इसको त्यागदेवेंगे पर अधिक भोगों की प्रीति की प्रबलता है जो प्रकटसुखका त्यागकरना कठिन है (अथ वैराग्य की स्तुति प्रकट करनी) ताते जान तू कि जैसे माया की प्रीति करके इस जीव की बुद्धि का नाश होता है तैसेही माया का त्यागना मुक्ति का कारण है इस पर सन्तजनों ने कहाहै कि जो पुरुष चालीस दिन पर्यन्त भोगों से विरक्त होताहै तब निस्संदेह उसके हृदय में अनुभव का प्रकाश प्रकट होताहै और महापुरुष ने भी कहाहै कि जब तू भगवत् का प्रियतम हुआ चाहता है तो माया के पदार्थों से विरक्त होहु और किसीने महा पुरुष से पूछाथा कि प्रीतिमानों के लक्षण क्या हैं ? तब उन्होंने कहा कि जिस का चित्त माया से विरक्त होवे और स्वर्ण माटी जिसको समान होजावे तब उसको प्रीतिमान् कहते हैं और योंभी कहाहै कि भगवतके प्रकाश करके जिस का हृदय निर्मल है तब उसका चित्त छलरूप संसार से विरक्त होजाता है और अविनाशी स्थानकी प्रीतिविषे सावधान होताहै और मरने से आगेही परलोक का तोशा बनाता है और महापुरुषने योंभी कहाहै कि हे प्रीतिमानो ! भगवतकी

लज्जाकरो तब प्रियतमोंने पूछा कि क्या आगे से हम लज्जा नहीं करते हैं बहुरि महापुरुषने कहा कि जब तुम्हारे हृदय विषे लज्जा होती तब जीविका से अधिक धन का संचय क्यों करते और जिन मन्दिरों विषे तुमको नित्य रहनाही नहीं तो प्रीतिसंयुक्त उसको क्यों बनातेहो बहुरि योंभी कहा है कि जिसने भगवतही को सत्यस्वरूप जानाहै और और पदार्थों को नाशवन्त समझा है सो आत्मसुख का अधिकारी होता है तब एक प्रियतम ने पूछा कि भगवत को सत्यस्वरूप जानने विषे पटलहै क्योंकि केते पुरुष सन्तजनों की नाईं निवृत्त वचन कहते हैं और करतूतें उनकी महा मलिन हैं और योंभी कहा है कि जिसका चित्त माया से विरक्त हुआ है उसके हृदयविषे अनुभव का प्रकाश उपजता है तातें सुखसेही परमपद को पाता है बहुरि ईसा महापुरुष से लोगोंने पूछाथा कि जो तुम आज्ञा करो तो तुम्हारे निमित्त एक घर बनावें तब उन्होंने कहा कि जल के प्रवाहपर मेरा घर बनाओ बहुरि लोगों ने पूछा कि जल के प्रवाहपर मन्दिर क्योंकर बनाइये ? तब उन्हों ने कहा कि संसार का जीवना जलके प्रवाहवत् है तातें इसविषे घर बनाना बड़ी मूर्खता है इसी पर एक सन्तने भी कहा है कि वैराग्यवान् का अल्प भजन भी और लोगों के अधिक भजन से विशेष होताहै और सुहेल सन्त ने कहा है कि जबलग यह मनुष्य भूख और नग्नता और निर्धनता और अपमानसे निर्भय नहीं होता तबलग इसकी करतूति कदाचित शुद्ध नहीं होती (अथ प्रकटकरना भेद वैराग्यकी अवस्था का) तातें जान तू कि वैराग्य की तीन अवस्था हैं सो प्रथम यह है कि जिसने स्थूल माया का त्याग किया है और चित्त विषे माया को रमणीक जानताहै और यत्न और हठ करके अङ्गीकार नहीं करता सो तिसको कनिष्ठ वैरागी कहते हैं १ बहुरि दूसरी अवस्था यह है कि चित्तविषे भी माया को रमणीक नहीं जानता है पर अपने वैराग्यको विशेष समझता है कि मैंने बड़ा वैराग्य किया है सो यह मध्यम अवस्थाकहाती है २ बहुरि तीसरी अवस्था यह है जो वैराग्य से भी वैरागी होवे अर्थ यह कि अपने वैराग्यका भी अभिमानी न होवे जैसे कोई पुरुष राजा के निकट जानेकी मंशा करे और उसको राजा से बखशीस की आशा होवे और राजा के द्वारपर कूकुर भूंकनेलगे तब रोटी का टूक कूकुर को डालदेवे बहुरि आपको उससे बचाय कर राजा के निकटजावे और उत्तम बखशीस उसको प्राप्त

होवे तब वह पुरुष अपने चित्तविषे रोटी के डारने को कुछ वस्तुही नहीं जानता तैसेही भगवत् के दर्शन की प्रीति विषे माया का त्यागकरना महातुच्छ वार्त्ता है क्योंकि उस सुख के निकट माया का सुख रोटी के ग्रास से भी तुच्छहै इस करके कि माया के सुख सबही परिणामी हैं और आत्मसुख परिणाम से रहित है ताते नाशवान् और अविनाशी सुख का सम्बन्ध किसी प्रकार नहीं मिलता इसीपर वायजीद को किसी ने कहाथा कि अमुक पुरुष अपने वैराग्य की स्तुति करता है तब उन्हों ने कहा कि उसने किससे वैराग्य किया है बहुरि वह पुरुष कहता भया कि उसने सर्व माया को त्यागा है तब वायजीदजी ने कहा कि माया तो कुछ वस्तु ही नहीं ताते इसके त्यागने विषे क्या पुरुषार्थ है? क्योंकि त्याग तो किसी वस्तु का होता है ताते माया के त्याग का अभिमानी होना क्या है? पर यह जो वैराग्य का वैराग्य वर्णन कियाहै सो सबसे उत्तम अवस्था है ३ बहुरि वैराग्य की उत्पत्ति भी तीन कारण करके होतीहै सो केते पुरुष तो नरकों के भय करके माया के भोगोंका त्यागकरते हैं १ और केते पुरुष परलोक के सुखनिमित्त भोगों को त्यागते हैं २ और कोई पुरुष ऐसे निष्कामी होते हैं कि उनको नरकों का भय भी नहींहोता और किसी सुखकी आशा भी नहीं रखते पर केवल भगवतकी प्रीति विषे ऐसे लीन होते हैं कि लोक परलोककी सत्ता उनके हृदय से दूर होजातीहै ताते महाराज के दर्शन विना आन पदार्थ की ओर देखने विषे उनको लज्जा आवतीहै जैसे किसी पुरुष ने राबिआबाई के आगे वैकुण्ठकी स्तुति करीथी तब उन्होंने कहा कि घरवाला पुरुष घरसे विशेष होताहै अर्थ यह कि भगवत् के दर्शन के निकट वैकुण्ठ का सुख क्याहै ३ तात्पर्य यह कि जिस को आत्मसुखका साक्षात्कार हुआहै वह स्वर्गादिक सुखोंको ऐसे जानताहै जैसे राज्यसुख के निकट बुलबुल के खेलका सुख तुच्छ होताहै पर यह वार्त्ता प्रसिद्ध है कि बालकों को राज्यसुख से बुलबुल का खेल अधिक प्रियतम लगता है क्योंकि बालकोंकी बुद्धि अतिसामान्य होती है ताते राज्य के सुखको समझही नहीं सकते तैसेही जिस पुरुषको भगवत् विना और पदार्थ प्रियतम लगते हैं सो तिसकी बुद्धि अतिनीच है और ज्ञानवानों की दृष्टिविषे वह भी बालकही है क्योंकि उत्तमबुद्धि और पुरुषार्थ नहीं प्राप्तहुआ तात्पर्य यह कि वैराग्यवानों की भिन्न २ अवस्था होती है पर सम्पूर्ण वैरागी तिसही को कहते हैं जो शरीर के

निवाह से जेते अधिक भोग हैं तिन सबोंसे विरक्त होवे जैसे धन, मान, निन्दा, आहार और वस्त्र उपदेश व लोगोंके मिलापआदिक जेते मनके भोगहैं सो सबही मायारूप हैं और त्यागने योग्यहैं इसीपर एक सन्तने भी कहा है कि बुद्धिमानों ने वैराग्य के वचन बहुत कहे हैं पर मैं उसही को वैराग्य जानताहूं जो जिस पदार्थ से भगवत् से विक्षेप प्राप्तहोता होवे सो तिसही का त्यागदेना उत्तम वैराग्य है ताते प्रीतिमान् वही है जिसके चित्तबिषे श्रीरामरूप विना और किसी पदार्थकी प्रीति न होवे इसीकारण से यहियासन्त टाट का चोला पहरते थे क्योंकि वस्त्रकी कोमलता करके स्पर्शका भोग होताहै तब माताने यत्न करके रुईका वस्त्र पहराया कि टाट करके उनका शरीर करेर होगया था बहुरि आकाशवाणी हुई कि हे यहिया ! तैंने मुझ को त्यागकर भोगों को अङ्गीकार किया है यह वचन सुनकर यहिया रोवने लगे और फिर उसही टाट को पहरलिया पर यह ऐसा कठिन वैराग्य है कि सब कोई इस अवस्था बिषे स्थित नहीं होसक्ता ताते जेता जेता किसीने यथाशक्ति भोगों को त्यागा है सो तेताही लाभ को पावता है (अथ प्रकट करनी मर्यादा वैराग्य की) ताते जान तू कि संसार एक महाअगाध कूप है और संसारी जीव सबही इस कूप बिषे पड़े हैं पर जब विचार कर देखिये तब इसको शरीर के निर्वाह-मात्र एते पदार्थ अवश्यही चाहते हैं जैसे आहार वस्त्र स्थान गृह की सामग्री धन मान सो सबों से प्रथम आहार की अपेक्षा शरीर को अधिक होती है ताते चाहिये कि प्रथम तो आहार की वस्तु का विचार करे सो उत्तम वैराग्यवानों का आहार वल्कल फल मूल होता है क्योंकि उदर पूर्ण इन करके भी होता है बहुरि और जेते नीच अन्न हैं सो तिनका आहार इनसे राजसी है बहुरि कणक और चावल आदिक जेते अनाज हैं सो महाराजसी हैं और जब मैदा और घृत और मिष्टान्नादिकों का आहार करे तब वैराग्यही नष्ट होजाता है और आहार का प्रमाण जिज्ञासुजन को एता चाहिये कि जो अधिक तृप्त न होवे और अधिक भूखा भी न रहे बहुरि अधिक संचय करना भी अयोग्य है क्योंकि वैराग्य का मूल निराशता है और तृष्णा का मूल आशा की वृद्धि है सो जिस पुरुष की आशा दीर्घ होती है तिससे वैराग्य नहीं होसक्ता और महापुरुष भी सम्बन्धियों के निमित्त एक वर्ष की जीविका रखावते थे और अपने निमित्त कुछ संचय न करते थे बहुरि वैराग्यवान् को योंभी चाहिये कि भोजन के निमित्त तर्कारी को बहुत न

ढूंढ़े और साग अथवा खटाई के साथ रोटी खाइलेवे और जब नाना प्रकार के व्यञ्जनों विषे आसक्त होवे तब भी वैराग्य नष्ट होजाता है बहुरि वैरागीको रात्रि दिनविषे एकही बार आहार करना प्रमाण है और जब दो दिनमें एकबार खावे तो अतिही भलाहै पर जब एकही दिन बिषे दोबार खावे तब इस करके वैराग्य नहीं रहता तात्पर्य यह कि जब कोई पुरुष वैराग्य की वार्त्ता श्रवण किया चाहे तब महापुरुष और उनके प्रियतमोंकी वार्त्ता श्रवणकरे उनके गृह विषे केते दिन दीपक न जगता था और खजूर के फलों विना और कोई आहार न होता था और ईसाजीने भी कहाहै कि जिस पुरुष को भगवत् सुखकी प्रीति होवे तिसको यवकी रोटी और धरतीपर सोना विशेष है बहुरि वैरागी को पहिरावा भी एकही चाहिये इस करके कि जो पुरुष दो पहिरावे रखता है सो वैरागी नहीं होता और पहिरावे का अर्थ यह है कि एक कटिबेरा और एक चोला अथवा एक चादर भी राखे तो भी प्रमाण है पर तौ भी विशेष तो कम्बलादिक वस्त्र का पहिरना है अथवा रुई का वस्त्र पहिरे तो मोटाही भला है और जब रङ्गीन और कोमल वस्त्र पहिरा चाहे तब वैरागी नहीं रहता इसीपर सन्तजनों ने कहा है कि जो पुरुष नाना प्रकार के वस्त्रों को पहरता है तब भगवत् से विमुख होता है इसीकारण से कबहूं महापुरुष के वस्त्र मैले ऐसे होजाते थे जैसे तेली का वस्त्र होता है और एकबार कोई पुरुष सुन्दर वस्त्र महापुरुष के निकट ले आया था तब उन्हों ने उसकी प्रसन्नता के निमित्त प्रथम तो पहरलिया बहुरि शीघ्रही उतारकर कहने लगे कि यह वस्त्र अमुक पुरुषको देवो और मुझको वही पुरातन गुदड़ी भली है क्योंकि यह वस्त्र मेरे चित्त को विक्षेपता देताहै और एक पात्रों का जोड़ाभी अतिसुन्दर किसी ने आन राखाथा उसको पहिरकर कहतेभये कि मुझको वही पुराना जोड़ा आनदेवो इस करके कि मेरे नेत्रों बिषे यह जोड़ा जूता सुन्दर भासता है और भजन की एकाग्रता बिषे पटलडालता है और उमरसन्त के चोलापर चौदह थेगली लगी हुई थीं और एक सन्त ने अपने चोले की बाँह जेती कुछ अधिक थी सो हाथ से फाड़डारी थी औ कहने लगे कि महाराज का धन्यवाद है और योंभी कहतेभये कि मैं छोटा चोला इस निमित्त पहरता हूं कि जो धनवान् भी मर्याद बिषे विचरें और निर्धनों के चित्तकी सकुच दूर होवे और एक प्रीतिमान् एक सन्त के निकट पुरातन वस्त्र पहरकर गयेथे तब

उन्होंने पूछा कि तुमने ऐसे पुरातन वस्त्र क्यों पहिरे हैं तब वह प्रीतिमान् मौन कररहे बहुरि उन्होंने कहा कि तुमने इस वचन का उत्तर क्यों नहीं दिया ? तब वह प्रीतिमान् कहतेभये कि इस वचन के उत्तर विषे अपना वैराग्य जनावना होताहै अथवा निर्धनता प्रकटकरनी होतीहै सो यह दोनों वार्ता अयोग्य हैं ताते मैं मौनकर रहाहूं और एक सन्त को किसीने कहाथा कि तुम उज्ज्वल वस्त्र क्यों नहीं पहरते हो ? तब उन्होंने कहा कि सेवक को उज्ज्वल वस्त्र के साथ क्या प्रयोजन है ? और एक राजा का भक्त रात्रि विषे टाट को पहिरकर भजन करते रहते थे बहुरि दिन विषे और वस्त्र पहिरकर अपनी राजनीति विषे सावधान होते थे बहुरि शरीरधारी मनुष्य को शीतोष्ण की रक्षा के निमित्त स्थान की अपेक्षा होती है पर उत्तम वार्त्ता यह है कि जिज्ञासुजन स्थान बांधकर न रहे और किसी निरदावे ठौर विषे काल व्यतीत करलेवे अथवा शरीर के निर्वाहमात्र एक कुटी अथवा कोठरी करलेवे पर चित्रशाला और गचकारी के मन्दिरों विषे निवास न करें और जो पुरुष अपने स्थान को चित्रकारी करके सुन्दर बनावता है वह वैरागी नहीं कहावता क्योंकि स्थान का प्रयोजन शीतोष्ण की रक्षा है ताते चाहिये कि प्रयोजन विना और कार्यों विषे आसक्त न होवे इसीपर सन्तजनों ने कहाहै कि नाना प्रकार के मन्दिर बनावने भी जीवने की आशा की दीर्घता का लक्षणहै इसी पर एक वार्ता है कि एक प्रीतिमान् ने अपने गृहपर ऊँचा बँगला बनवाया था सो जब महापुरुष ने वह बँगला देखा तब उस प्रीतिमान् से बोलना छोड़ दिया बहुरि जब उस प्रीतिमान् ने इस वार्त्ता को जाना कि मेरे ओर बँगले के निमित्त दृष्टि नहीं करते तब उसने वह बँगला गिरादिया तब उसको महापुरुष ने प्रसन्नचित्त होकर बुलाया और महापुरुष ने योंभी कहा है कि जिसको भगवत् अपनी ओरसे विमुख किया चाहता है तिसका धन मन्दिरों के बनावने विषे खर्च करावता इसीकारण से महापुरुष ने अपनी आयुष् पर्यन्त चाह करके कोई मन्दिर न बनाया था और एकबार अपने नगर विषे चलेजाते थे तहां एक प्रीतिमान् गृह को बनावता था तब उससे पूछते भये कि तुम क्या करते हो बहुरि उसने कहा कि हमारा घर गिरपड़ा था ताते उसको भली प्रकार बनाया चाहताहूं तब महापुरुष कहनेलगे कि उत्तम वार्त्ता तो यहहै कि अविनाशी गृह की ओर प्रीति करिये और योंभी कहा है कि

कार्य जो कुछ मनुष्य करता है और उस बिषे खर्च करता है तिसका परलोक में फल मिलता है पर अधिक मन्दिरों का बनावना अत्यन्त निष्फल होताहै और ऐसे पुरुष को परलोक बिषे भी ताड़ना होती है इसी कारण से नूह महात्मा ने तृण की कुटी बनाइ लीनीथी जब किसी ने कहा कि तुमभी जो ईंट माटी का घर बनाइ लो तो इसमें क्या दोष है ? बहुरि उसको कहतेभये कि जिसको अन्त मरना है तिसको ऐसे घर के साथ क्या प्रयोजन है सो नवशतवर्ष की उनकी आयुष् हुई थी और योंभी कहा है कि जब यह मनुष्य ऊंचा मन्दिर बनावता है तब देवता इस प्रकार कहते हैं कि हे मूर्ख ! तुझे तो पृथ्वी में समावना है ताते आकाश की ओर काहेको चला आवता है इसी पर एक सन्त ने कहा है कि जो सुन्दर मन्दिर बनाइकर मरजाते हैं सो तिनको मुझको आश्चर्य नहीं आवता पर उनपर आश्चर्य आवता है जो इस वार्त्ता को देखते हैं और भय मानकर समझते नहीं और बहुरि मन्दिरों को बनावते हैं और इस मनुष्यको गृहकी सामग्री भी कुछ अवश्य चाहती है पर उत्तम वैरागी वह है जो कुछ ही न राखे जैसे ईसा महापुरुष प्रथम एक कंघी और एक करवा राखते थे सो जब उन्होंने एक पुरुष को ऐसे देखा कि वह हाथोंसे केश और डाढ़ी को बनावता था और हाथही से जल पीता था तब उन्होंने कंघी और करवा भी फेंक दिया और कहनेलगे कि यह तो दोनों पदार्थ मेरे संग थे ताते जिज्ञासु को जो किसी बासन की अधिकही अपेक्षा होवे तो काष्ठ अथवा माटी का पात्र राखे और जो पुरुष धातुका पात्र रखताहै तिसका वैराग्य हीन होजाता है इसीकारण से विचारवानोंने ऐसे यत्नकिया है कि उन्होंने एकही पात्र से केते कार्य करलिये हैं और कोई पुरुष एक सन्त के गृहबिषे आया था तब उसने घर में कुछ सामग्री न देखी ताते पूछता भया कि तुमने अपना घर ऐसा शून्य किस निमित्त किया है तब उन्होंने कहा कि हमारा एक घर और है ताते सर्व सामग्री उसीघर बिषे इकट्ठी करतेजाते हैं यह कि सर्व सामग्री काम करके परलोक का तोशा बनावते हैं बहुरि उस पुरुष ने कहा कि जबलग इस संसार बिषे जीवना है तबलग कुछ सामग्री तो अवश्य ही चाहती है तब उन्होंने कहा कि हमको भगवत् दया करके संसार बिषे न राखेगा और एक दिन महापुरुष अपनी पुत्री के घर गयेथे सो दरवाजे के दरपर परदे में रूपे की कुण्डी देखतेभये ताते ग्लानि करके वहांसे चलेआये

और भीतर न गये बहुरि जब पुत्रीने यह वार्त्ता सुनी तब दरका परदा और रूपे की कुण्डी किसी अर्थीको उठायदी सो जब महापुरुषने सुना तब पुत्रीपर प्रसन्न भये और आयशाजी ने इस प्रकार कहा है कि महापुरुष सर्वदा दोहरे वस्त्रपर सोवते थे सो मैंने एक रात्रि को चार तह करके बिछादिया बहुरि प्रभात समय उठकर कहनेलगे कि मुझको सारी रैन घोरनिद्रा रही है ताते फेर कभी वस्त्र को चार पर्त करके न बिछावना बहुरि एकबार किसीओर से बहुत धन आयाथा सो महापुरुष ने एकही दिनविषे बांटदिया और छः रुपये शेष रहगये ताते विश्राम नहीं किया और रात्रिभर चित्त को चैन न पड़ा बहुरि जब वह भी किसी अर्थीको दे डारे तब निश्चिन्त होकर सोये और हसनवसरी ने कहा है कि मैंने सत्तर वैराग्यवानों को देखा है पर वह सबही एक २ वस्त्र रखते थे और धरतीही पर सोइ रहते थे बहुरि उसी वस्त्र को ओढ़लेते थे बहुरि शरीरधारी मनुष्यों को धन और मानकी अपेक्षाभी अवश्यही होती है सो मैंने तीसरे प्रकरण विषे इन सब वचनों को भलीप्रकार विस्तार करके कहाहै कि धन और मानकी अधिकता तो हलाहल विष है पर जब कार्य के निर्वाहमात्र इनको अङ्गीकार करिये तब यह भी अमृतके समान होजातेहैं क्योंकि जिस पदार्थ करके धर्म के मार्गकी सहायता होवे तिसको भी धर्मरूपही कहते हैं ताते जो पुरुष स्थूल पदार्थों को कार्यमात्र अङ्गीकार करता है और भोगों के निमित्त अधिकता को नहीं चाहता सो पुरुष मुक्तस्वरूप है क्योंकि उसका हृदय तो सर्व पदार्थों से विरक्त रहता है और जिसकी प्रीति मायाके साथ अधिक होती है सो यद्यपि परलोक विषे जाताहै तो भी उसका हृदय भोगों की ओर खिंचा रहताहै ताते उसको अधोगति कहते हैं और जो पुरुष इस संसार को मल त्यागने की नाई जानता है सो जब मृत्यु को पावता है तब ऐसे समझता है कि भलाहुआ जो मलिनस्थान से मेरी मुक्ति हुई ताते माया के हेती का दृष्टान्त यह है कि जैसे कोई पुरुष बिराने घर की जंजीर साथ अपने बालों को दृढ़बांधे बहुरि जब घरवाला पुरुष आइकर उसको बाहर निकाला चाहे तब उसके केश उखड़ते हैं और रुधिर निकलता है और दुःखित होता है तैसेही भोगी मनुष्य जब इससंसार को त्यागजाता है तबभी उसका हृदय वासना करके घायल रहताहै ताते एक महात्मा ने कहाहै कि जैसे संसारीजीव सम्पदा पाइकर प्रसन्न होते हैं तैसेही विचारवान् पुरुष आपदा विषे प्रसन्न होते हैं

पर यह बड़ा आश्चर्य है कि संसारीजीव उन विचारवान् पुरुषों को बावरा जानते हैं और वह सन्तजन भी संसारीजीवों को भूत प्रेत के समान देखते हैं तात्पर्य यह कि विचारवान् आपदा को सुखरूप इस निमित्त जानते हैं कि दुःखों करके इस मनुष्य का हृदय संसारसे विरक्त होता है और किसी स्थूल पदार्थ बिषे आसक्त नहीं रहता (अथ पांचवें सर्गबिषे निष्कामता और सचाई का वर्णन) ताते जान तू कि बुद्धिमानों ने इस वार्त्ता को प्रत्यक्ष देखा है कि जगत् सबही नाश हुआ है और कोई विरला सुकर्मीही बचा है और शुभकर्मी भी सबही नाशहुये हैं विरला कोई विद्यावान्ही बचाहै और विद्यावान् भी सबही नाश हुये ताते कोई निष्काम पुरुषही बचा है तात्पर्य यह कि निष्कामता विना सबही कर्म दुःखरूप हैं पर निष्कामता और सचाई जो है सो मंशा की शुद्धता विना कोई पाय नहीं सक्ता और जो पुरुष मंशाही के भेद को न जाने सो तिसको निष्कामता क्योंकर प्राप्त होवे इसीकारण से मैं प्रथम विभाग बिषे मंशा का रूप वर्णन करताहूं बहुरि दूसरे विभाग बिषे निष्कामता वर्णन करूंगा और तीसरे विभाग बिषे सचाई का वर्णन होवेगा (अथ प्रथम विभागबिषे मंशाके निर्णय में) ताते प्रथम तो मंशा की विशेषता को समझा चाहिये इस करके कि सर्व करतूतों का जीव मंशा है और भगवत् भी मंशाही की ओर देखता है इसी पर महापुरुष ने कहाहै कि भगवत् तुम्हारे धन और शरीर और कर्मों की ओर नहीं देखता केवल हृदयही की ओर देखताहै क्योंकि मंशा का स्थान हृदय है और करतूतों की प्रेरक मंशा है बहुरि योंभी कहाहै कि जैसे किसीकी मंशाहै तैसाही उसको फल प्राप्त होताहै और योंभी कहाहै कि यह मनुष्य कुछ शुभकर्म करता है और देवते उसको लिखते हैं तब उसको आकाशवाणी होती है कि अमुक कर्म इसकी चिट्ठी से दूर करदेवो क्योंकि इसने वह कर्म मेरे निमित्त नहीं किया और अमुक कर्म किये विनाही लिखलेवो क्योंकि इसने उस कर्म की दृढ़ मंशा करी थी बहुरि योंभी कहा है कि एक धनवान् पुरुष ऐसे होते हैं जो विचार के साथ खर्च करते हैं और एक पुरुष उनको देखकर ऐसी मंशा करते हैं कि जब हमारे पास भी धन होवे तब हम भी ऐसेही खर्च करें ताते मंशा करनेहारे को भी प्रथम पुरुष की नाईं उत्तम फल की प्राप्ति होती है बहुरि एक ऐसेही बुद्धिहीन हैं जो पापों बिषे धन को लगावते हैं और एक और पुरुष उनको देखकर

ऐसी मंशा रखते हैं कि जब हमभी धनको पावते तब इसी प्रकार खर्च करते ताते यह भी दोनों पुरुष पापों विषे समान हैं क्योंकि मंशा दोनों की समान है इसीपर एक वार्त्ता है कि एक प्रीतिमान् रेतके ढेरपर जाय बैठाथा और उस देश विषे बहुत दुर्भिक्ष था तब वह प्रीतिमान् दया करके कहने लगा कि जब ऐसाही ढेर अनाज का होता तब मैं सबही क्षुधावानों को बांटदेता बहुरि उसको आकाशवाणी हुई कि तेरा दान सफल हुआ और मैंने तेरी मंशाही को प्रमाण किया और महापुरुष ने भी कहा है कि जिसकी मंशा और पुरुषार्थ माया के कार्यों विषे दृढ़ होती है सो तिसका हृदय सदा अतृप्त रहता है पर अन्तकाल विषे भी उसकी प्रीति मायाही की ओर रहती है बहुरि जिसकी मंशा और पुरुषार्थ भगवत् के मार्ग विषे दृढ़ होती है सो तिसका हृदय भी सर्वदा सन्तुष्ट रहता हैं और अन्तकाल विषे भी विरक्त होकर संसार को त्यागता है इसीपर सन्तजनों ने कहाहै कि प्रथम मंशा की विद्या का पढ़ना प्रमाण है और पीछे करतूति करना प्रमाण है क्योंकि जो पुरुष किसीसे कुछ उधार लियाचाहै और चित्त विषे यह मंशा करे कि मैं फिर इसको न दूंगा सो निस्संदेह चोर है और एक जिज्ञासु ने ऐसे कहाथा कि मुझको ऐसी विद्या पढ़ावो जिस करके मैं किसी शुभकरतूति से रहित न होऊं तब उन्हों ने कहा कि जब शुभकर्म का अवसर होवे तब उसी क्रिया विषे दृढ़ होवे और जब करतूति का समय न होवे तब भली मंशाविषे सावधान रहो ताते किसी समयविषे पुण्य के फलसे अप्राप्त न होवेगा इसीपर एक और सन्त ने भी कहा है कि परलोक विषे भी सबको मंशा के अनुसार सुख दुःख प्राप्ति होवेगी और एक महात्मा का वचन है कि आत्मसुख की प्राप्ति शरीर के करतूति कर नहीं होसक्री ताते उसका पावना शुद्ध मंशा करके होता है क्योंकि जैसे आत्मसुख सूक्ष्म और अनन्त है तैसेही शुद्ध मंशा भी सूक्ष्म और अनन्त से रहित है (अथ प्रकट करना रूप मंशा का) ताते जान तू कि सर्व करतूतों का बीज बूझ और श्रद्धा और बल है जैसे यह मनुष्य जबलग किसी आहार को नहीं देखता तबलग उसको पावता भी नहीं और यद्यपि उसको देखता है तौ भी श्रद्धा विना अङ्गीकार नहीं करता और यद्यपि श्रद्धा भी होवे तौ भी हाथ और मुख के हलाये विना खाय नहीं सक्ता तात्पर्य यह कि सर्व कर्मों की सिद्धता बूझ और श्रद्धा और बल करके होती है

पर बल श्रद्धा के आधीन है और श्रद्धा ही बलको करतूति बिषे सावधान करती है बहुरि श्रद्धा बूझके आधीन नहीं क्योंकि यह मनुष्य जेते पदार्थों को जानता है उन सबकी श्रद्धा नहीं रखता पर यह वार्ता भी निस्संदेह है कि बूझ बिना श्रद्धा का कुछ रूपभी प्रकट नहीं होता क्योंकि प्रथम जिस पदार्थ को जानेही नहीं सो तिसकी श्रद्धा क्योंकर करे तो इसभाव करके श्रद्धा को बूझ के आधीन कहसकते हैं पर जब बूझ और श्रद्धा और बल एकत्र होते हैं तब इसही को दृढ़मंशा कहते हैं सो करतूति की सिद्धता उसी मंशाकरके होती पर वह मंशा जो करतूति को प्रेरती है सो कबहूं केवल होती है और कबहूं मिश्रितभी होती है सो इसका दृष्टान्त यह है जैसे कोई पुरुष अचानक सिंहको देखे तब उसकी मंशा केवल भागने बिषे होती है अथवा जब कोई ऐश्वर्य-वान् मनुष्य किसीके गृह बिषे आवे तब उसके सन्मानके निमित्त शीघ्रही उठखड़ा होताहै सो यह केवल मंशा कहाती है १ और मिश्रित मंशा तीन प्रकार की होती है प्रथम तो यह है कि वे दोनों मंशा कार्य को समर्थ होती हैं जैसे निर्द्धन सम्बन्धी किसीसे कुछ मांगे तब उसको अवश्यही देताहै सो अथवा सम्बन्ध के निमित्त देता है अथवा निर्द्धन और अर्थी जानकर देताहै ताते इसका नाम मिश्रित मंशाहै १ बहुरि दूसरा प्रकार यह है कि दोनों मंशा निर्बल होती हैं जैसे सम्बन्धी निर्द्धन होता तौभी उसको कुछ न देता और जब वह केवल निर्द्धनही होता और सम्बन्धी न होता तौभी उसको कुछ न देता पर जब निर्द्धनता और सम्बन्ध दोनों इकट्ठे आनिहुये तब इसका मन देने को समर्थ हुआ २ सो प्रथम प्रकारका दृष्टान्त यह है कि जैसे दो बलवान् पुरुष किसी पाथर को उठाने लगें और दोनों पुरुष ऐसे बलीहोवें कि जब पृथक् २ उस पाथर को उठावते तौ उठाय सक्तेथे पर मिलके उठाने कर सुगमही उठाय सक्ते हैं बहुरि दूसरे प्रकार का दृष्टान्त यहहै जैसे दो पुरुष ऐसे निर्बल होवें कि पृथक् २ पत्थरको उठाय न सकें और परस्पर मिलकर उठाइ लेवें २ बहुरि तीसरा प्रकार यह है कि मंशाबिषे एक मिलौनी सबल होती है और एक निर्बल होती है पर दोनों के मिलाप करके सुगमताई होजाती है जैसे कोई पुरुष रात्रि बिषे प्रीति-संयुक्त भजन करता होवे और कोई और पुरुष उसको देखे तब वह भजन उसको सुगम होजाता है ताते इसका दृष्टान्त यह है जैसे कोई पुरुष अपने बल साथ

भी पाथर को उठाय सक्ता होवे पर जब निर्बल मनुष्य भी उसको हाथ लगा देवे तब उसका उठावना कुछ सुगम होजाताहै सो यह सबकी भिन्न २ अवस्था है ३ तात्पर्य यह कि तू मंशाकी केवलता और मिलौनी को भी जाने और करतूतों का प्रेरक मंशाही को पहिचाने अब इससे आगे ऐसे जान तू कि महापुरुष ने भी इस प्रकार कहा है कि प्रीतिमानों की शुद्ध मंशा करतूति के करनेसे भी विशेष है सो इस वचन का अर्थ यह नहीं कि श्रद्धाहीन करतूति से मंशा विशेष है क्योंकि यह वार्ता तो प्रकट है कि शुद्ध श्रद्धा विना करतूति निष्फल होती है और शुद्ध मंशा करतूति विना भी फलदायक है ताते महापुरुष के वचन का प्रयोजन यह है कि करतूति शरीर करके होतीहै और मंशा का सम्बन्ध केवल हृदयही के साथ होताहै इसी कारण से मंशाको कर्मसे विशेष कहाहै जो शरीर की करतूति विषे भी हृदयही के स्वभाव का उलटावना प्रयोजन होताहै और हृदयकी मंशा विषे जिज्ञासु का प्रयोजन ऐसा नहीं होता जो शरीर के स्वभाव को उलटाइकर सीधा कीजिये पर जबलग मंशा अनुसार शरीरका सम्बन्ध नहीं मिलता तबलग करतूति प्रकट नहीं होती इसी कारण से अल्पबुद्धि जीव ऐसे जानते हैं कि मंशा करतूतों के निमित्त चाहती है पर जब भली प्रकार विचार करके देखिये तब करतूति विषे भी मंशाही उलटावने का प्रयोजन है क्योंकि शुद्धमंशा करके जीव का हृदय शुद्ध होताहै और परलोक विषे भी इसी जीवको जाना है ताते उत्तम भागों और मन्दभागों का अधिकारी भी जीवहै और यद्यपि परलोक के सुख दुःख विषे शरीर का सम्बन्ध भी होता है तौभी यह शरीर जीव के आधीन है जैसे तीर्थयात्रा के मार्ग विषे घोड़ा भी अवश्य चाहिये पर घोड़ेको तीर्थयात्रा का फल कुछ नहीं होता और फल का अधिकारी मनुष्य है ताते हृदय के स्वभाव को उलटावना सर्व धर्मों का फल है कि माया के पदार्थों की ओरसे हृदय के मुखको फेरना और भगवत्की ओर सम्मुख होना सो हृदय का मुख श्रद्धाही का नाम है ताते जिसकी श्रद्धा माया के पदार्थों विषे बन्धायमानहै तिसका मुख मायाही की ओर है पर आदि उत्पत्ति विषे इस जीव को मायाही की अभिलाषा अधिक होती है बहुरि जिसके हृदय विषे भगवत् के दर्शन की श्रद्धा उत्पन्न हुई तब जानिये कि उसका मुख उलटकर महाराज की ओर सीधा हुआ है ताते प्रसिद्ध हुआ कि सर्व कर्मों का प्रयोजन हृदय की मंशा

का उलटावना है जैसे मस्तक टेकने विषे यह प्रयोजन नहीं होता कि शीशको धरती पर राखिये पर इसविषे भी यही प्रयोजन होता है कि इसजीव का हृदय अभिमान से उलटकर दीनता को ग्रहणकरे ऐसेही भगवत्को बड़ा कहने विषे भी रसना के हलावने का प्रयोजन नहीं होता ताते वड़ा कहने विषे भी यही प्रयोजन है कि यह मनुष्य अपनी बड़ाई का त्यागकरे और भगवत् की बड़ाई जानकर उसके आधीन होवे ऐसेही सर्व शुभकर्मोंका फल यही है कि जिज्ञासुजन अपनी वासना को त्यागकर सन्तजनों का आज्ञाकारी होवे इसकरके कि दास को सर्व प्रकार अपना आपा दूर करनाही प्रमाण है पर इस मनुष्य विषे भगवत् ने यह स्वभाव उत्पन्न कियाहै कि जब इसके चित्तविषे किसी कर्मकी श्रद्धा उपजे और शरीर करके भी वही करतूति करलेवे तब वही स्वभाव हृदय विषे दृढ़ होजाता है जैसे कि पुरुष के मन विषे किसी अनाथ बालक पर दया आन उपजे पर जब उसके ऊपर द्रवीभूतकर हाथ फेरता है तब वह दया मन विषे दृढ़ और मूर्त्तिमती होजाती है बहुरि जब चित्त इसका दीन होवे और धरती पर मस्तक टेके तब वह दीनता भी दृढ़ताको पावतीहै ताते शुद्ध मंशा यह है कि भलाई की चाह करनी बहुरि शरीर की करतूति करके वही मंशा दृढ़ और परिपक्क होती है इस करके प्रसिद्ध हुआ कि सर्व शुभगुणों की बीज मंशा है और करतूति का फल मंशा की दृढ़ता है इसीकारण से महापुरुष ने कहा है कि शरीर के करतूति से मंशा विशेष है क्योंकि मंशा का चिह्न हृदय विषे दृढ़ होता है और शरीर की करतूति हृदय से भिन्न है ताते जब मंशा साथ मिलकर करतूति का प्रवेश हृदय विषे पहुँचे तब करतूति भी सफल होतीहै और जो कर्म अचेतता करके होता है सो निस्संदेह फल से रहित होता है पर करतूति बिना शुद्ध मंशा कदाचित् व्यर्थ नहीं होती इसका दृष्टान्त यह है कि जैसे किसी के उदर विषे पीड़ा शूल की होवे तब उसको चाहिये कि औषध खावे जो उदर में पहुँचकर पीड़ा को दूर करे पर जब वह बाह्य उदर की औषध का लेप करे कि इसी का प्रवेश भीतर उदर के होकर गुण करेगा सो यद्यपि बाह्य के लेपसे भी गुण होता है परन्तु जो औषध खाई जातीहै तिसका गुण भीतर पहुँचकर निस्संदेह अधिकही होता है तैसेही शरीर की करतूति बाह्यलेप की नाईं है और हृदय की मंशा औषध खाने की नाईं है (अथ प्रकट करना इसका कि केते संकल्पों करके इस मनुष्य

को बन्धमानी नहीं होती है और केते संकल्प बन्धन का कारण होते हैं) ताते जान तू कि सन्तजनों के वचनों विषे इस प्रकार भी आया है कि जब इस मनुष्य के हृदय विषे मलिन संकल्प फुरताहै तब देवता उस संकल्प के पाप को नहीं लिखते और जब शरीर करके वही कर्म करताहै तब एक पाप लिखते हैं और जब भले कर्म की मंशाही करता है तब भी एक भलाई लिखते हैं चाहे उस भलाई को नहीं भी करे और जब मंशा के अनुसार उस भलाई को करे तब दश भलाई लिखते हैं पर यह वचन सुनकर केते पुरुषों ने इस प्रकार समझा है कि इस मनुष्य के हृदय विषे जेते मलिन संकल्प फुरते हैं तिनकरके इसको दोष कुछ नहीं लगता पर ऐसे जाननेहारे पुरुष भूले हैं क्योंकि शरीर का प्रेरक जीव है और पुण्य पाप का अधिकारी भी वही है इसीपर महाराज ने कहा है कि तुम जैसी मंशा हृदय विषे रखते हो सो गुप्तराखो अथवा प्रकटकरो पर उसका फल तुमको अवश्यही प्राप्त होवेगा और योंभी कहाहै कि भगवत् मुख के कहने को नहीं प्रमाण करता और हृदयही की मंशा को मानता है और यह वार्त्ता भी प्रसिद्ध है कि अभिमान कपट अहंकार ईर्षा दम्भादिक जेते मलिन स्वभाव हैं सो सबही इस जीव के बन्धन करनेहारे हैं और यह पाप सबही मन के संकल्प करके होते हैं सो ऐसे पापों के होतेहुये मनुष्य को निर्बन्ध क्योंकर कहिये ताते इस वचन का तात्पर्य यह है कि इस जीव के संकल्प का फुरनाभी चार प्रकार का होताहै सो दो प्रकार का फुरना इसके पुरुषार्थ करके होताहै और दोप्रकार का फुरना इसके आधीन नहीं इसी कारण से पराधीन फुरने का इसको दोष कुछ नहीं लगता और पुरुषार्थ सहित फुरना बन्धनरूप होता है जैसे कोई पुरुष मार्ग विषे जाताहै और अचानकहीं पीछे से कुछ शब्द सुनलेवे बहुरि जब पीछे नेत्र करके देखे तब उसको स्त्री दृष्टि आवे सो तिसको तुच्छ फुरना कहते हैं और इस फुरने करके मनुष्य को दोष कुछ नहीं लगता क्योंकि यह स्वाभाविक दृष्टि है बहुरि जब दूसरीबार कुछ रुचि करके देखे तौभी कुछ पाप नहीं कहा जाता क्योंकि यह भी मन का स्वभाव है और इसी जीव के ऊपर प्रबल है ताते भगवत् बख्श लेता है पर जब निलज्ज होकर तीसरीबार उसके रूप और अङ्गों को देखनेलगे और उसी संकल्प विषे दृढ़होवे तब वही संकल्प बन्धन का कारण होता है क्योंकि यद्यपि उस देखनेको बुराई जानताहै तौभी त्याग नहीं कर

संज्ञा बहुरि चौथा संकल्प उसको कहते हैं जो उस पापकर्म की बुराई भी विस्मरण होजावे और कामकी अभिलाषा विषे मंशा दृढ़करे तब यह संकल्प सम्यक् बन्धनरूप होजाता है तात्पर्य यह कि प्रथम दो प्रकार का फुरना पराधीन और अकस्मात् होता है ताते निर्दोष कहाजाता है इसी कारण से जिज्ञासुजन को चाहिये कि भगवत् के भय करके मनके संकल्प को होने न देवे और हठ करके आपको नाशभी न करे क्योंकि विचार और भगवत् की प्रार्थना करके शनैःशनैः मनके स्वभाव को दूर करना विशेष है इसीपर एक प्रीतिमान् ने महापुरुष से पूछाथा कि मैं कामादिक संकल्प की विक्षेपतासे दुःखित होकर आपको नपुंसक कियाचाहताहूं तब उन्होंने कहा कि नपुंसक होनेसे व्रत और तप करके शरीर को निर्बल करना विशेष है बहुरि वह प्रीतिमान् कहताभया कि मेरा मन लोगों के मिलाप से विक्षेपता को पावताहै ताते किसी पहाड़ की कन्दराविषे निवासकिया चाहताहूं तब उन्हों ने कहा कि मेरे मतविषे एकान्त रहने से साधुसंगति विषे रहना विशेषहै सो इसका प्रयोजन यहहै कि जबलग इस मनुष्य के हृदय विषे पापकर्मकी मंशा दृढ़ न होवे तबलग मनके स्वाभाविक फुरने करके पापी नहीं होता पर,जब वही संकल्प दृढ़ होजावे अथवा उस पापकी मंशाकरे तब निस्संदेह पापी होताहै यद्यपि भगवत्के भय विना अपने मान अथवा लोगोंके संकोच करके वह कर्म न करे तौभी पापसे रहित नहीं होता और ताड़नाका अधिकारी होता है क्योंकि ताड़ना का अर्थ यह नहीं कि इसके पाप करके भगवत् को क्रोध उपजताहोवे और इसको दण्ड देने सो ऐसे नहीं इस करके कि महाराज क्रोधकरने और दण्ड देनेसे निर्लेपहै पर जब इस मनुष्य के हृदय विषे पापकी मंशा दृढ़ होती है तब आपही भगवत्की ओर से विमुख होता है और वही विमुखता इस जीव के मन्दभागों का बीजहै जैसे मैंने पीछे भी वर्णन किया है कि जब इस जीव की श्रद्धा स्थूल पदार्थों विषे बन्धायमान होती है तब हृदय की निर्मलता और भगवत्के दर्शन से इसको पटल होजाताहै सो धिक्कार और भगवत् के क्षोभ का अर्थ यहीहै कि उसकी प्रीतिसे विमुखहोना और अन्यपदार्थों की प्रीति विषे आसक्त रहना सो यह मलिन स्वभाव इसी जीव के मनही से उत्पन्न होता है और सर्वदा इसके संग रहता है ऐसे ही भला स्वभाव भी इसके मनसे उपजताहै ताते सन्तजनों ने कहाहै कि इस मनुष्य के भले कर्मपर ईश्वर

को प्रसन्नता भी कुछ नहीं उपजती और इसके पाप करके उसको क्रोधभी नहीं उपजता पर जिज्ञासु को समझावने के निमित्त बुद्धिमानों ने इस प्रकार कहा है कि भले कर्म विषे भगवत् प्रसन्न होता है और पापियों के ऊपर कोप करता है सो जिसने इस भेद को भली प्रकार समझा है तिसको यह वार्ता प्रत्यक्षदृष्टि आवती है कि जब हृदय की मंशा पापकर्म विषे दृढ़हुई तब वही मंशा हृदयको मलिन करदेती है इसी पर महापुरुष ने कहा है कि जब दो मनुष्य क्रोधसंयुक्त एक दूसरे को मारा चाहते हैं बहुरि एक पुरुष माराजाता है और दूसरा जीवता रहे तब दोनों नरकगामी होते हैं क्योंकि जो पुरुष मृत होगया है सो तिसकी मंशा भी शत्रुके मारनेविषे दृढ़ थी ताते जब उसका बल पहुँचता तब वह भी दूसरे को मारता सो इन सर्व वचनों और युक्तियों करके प्रत्यक्ष मंशाही की प्रबलता है पर जब इसके हृदयविषे पाप का संकल्प उपजे और भगवत् के भयकर के वह कर्म न करे तब देवता उसकी भलाई लिखते हैं इस करके कि उस संकल्प का उठना मनका स्वतःस्वभावहै और उसका त्यागना यत्न और पुरुषार्थ करके होताहै ताते वह पुरुषार्थ ही हृदयको उज्ज्वल करताहै और भलाई लिखने का अर्थ यही है पर जब यही मनुष्य भगवत् के भय विना मान अथवा असमर्थता करके पाप कर्म का त्यागकरे तब उसका गुण कुछ नहीं होता और पापही की मंशा विषे बन्धायमान रहता है इसीकारण से हृदय का अन्धकार भी दूर नहीं होता (अथ प्रकटकरना इसका कि मंशाके उलटने करके करतूति क्योंकर विपर्यय होती है) ताते जान तू कि कर्म सब तीन प्रकारके कहेहैं एक सात्त्विकी है १ और एक राजसी २ एक तामसी ३ सो इसीपर महापुरुषने कहाहै कि इस मनुष्य की मंशा के अनुसार करतूति भी उलटजाती हैं पर केते पुरुषों ने इस वचन को इसप्रकार समझा है कि जब भली मंशा धारकर पापकर्म करिये तब वह पापही पुण्यरूप होजाता है सो ऐसे जानना मूर्खता है क्योंकि मंशा का अनुमान धारने करके तामसी धर्म की बुराई दूर नहीं होसकती और उलटा वह कर्म हृदय को मलिन करताहै जैसे कोई कहे कि मैं अमुक पुरुषकी प्रसन्नताके निमित्त उसके शत्रुकी निन्दा करताहूं अथवा अशुद्ध धनलेकर धर्मशालादिक स्थान बनायाचाहे और अपने चित्त विषे यह अनुमान करलेवे कि मेरी मंशा शुद्धहै बहुरि इस वार्त्ताको न जाने कि भली मंशा का अनुमानकरके अपकर्म

करना भी बड़ा विघ्न है और ऐसे कर्म बिषे अवश्य केते विघ्न उपज आवतेहैं सो ऐसा मनुष्य महामूढ़ कहाजाता है इसी कारणसे सन्तजनोंने कहा है कि प्रथम सर्व कार्यों की विद्याका पढ़ना प्रमाणहै क्योंकि बहुत लोगोंका धर्म मूर्खताही करके नाश होताहै इसीपर एक सन्त ने कहा है कि मूर्खता समान और पाप ही कोई नहीं ताते जो मनुष्य आपही अजान होवे और अपनी मूर्खता को और किसी बुद्धिमान् से पूछकरके निवृत्त न करे तब वही अज्ञानता उसको पटल होती है और वह भलाई बुराई को पहिंचान नहीं सकता ऐसेही जो पुरुष धन और मानकी कामना करके विद्याको पढ़ाचाहे तब उसको पढ़ावनाही महापाप है पर जब पढ़ावनेहारा पुरुष ऐसे कहै कि मैं तो उसको विद्या पढ़ावता हूं ताते मेरी मंशा शुद्धहै और उसकी मलिन कामनाके साथ मुझको प्रयोजन कुछ नहीं सो यहभी बड़ी मूर्खता है क्योंकि जैसे कोई पुरुष चोर के हाथ तरवार देवे और ऐसे जानें कि मैंने तो उदारता कीन्हीं है ताते मुझको दान का फल होवेगा सो यह भी बुद्धि की हीनता कहावती है तैसेही सन्तजनों ने भी जिस विद्यार्थी की मंशा मलिन देखी है तिसको उन्होंने पढ़ायाही नहीं तात्पर्य यह कि भली मंशा करके पापकर्म भला नहीं होता इस करके कि भलाई तिसका नाम है जो सन्तजनोंकी आज्ञानुसार कर्म होवे १ बहुरि दूसरा कर्म सात्त्विकी कहा है सो इस बिषेभी दो भेद हैं प्रथम तो सात्त्विकी कर्म का मूल मंशाकी शुद्धता करके दृढ़ होताहै १ और दूसरा भेद यह है २ कि जिसकी शुद्धमंशा अधिक बढ़तीजावे तिसका एक कर्मही दशगुण भलाई को पावता है जैसे कोई पुरुष भली मंशाधारकर धर्मशाला आदिक स्थान बिषे जावे तब एक तो उसका वहां जानाही भलाई होता है १ बहुरि दूसरी भलाई यह है कि जब एक नियम भजन का पूर्ण करलेता है तब दूसरे नियम की वाञ्छा करता है सो यह वार्त्ता निस्संदेह है कि भजन के नियम की वाञ्छा करनाही भजनहै २ और तीसरी भलाई यहहै कि ऐसे स्थान बिषे जाय सर्व इन्द्रियों को रोंक बैठता है सो यहभी उत्तम व्रत है ३ और चौथी भलाई यह है कि सर्व कार्यों के संकल्पों को सकुचावता है और चित्त को एकत्र करके भगवद्भजन बिषे सावधान होताहै ४ और पांचवीं भलाई यह है कि कुसङ्गी मनुष्यों के मिलापसे मुक्त रहता है ५ और छठी भलाई यह है कि किसी मनुष्य को उपदेश करके पापकर्म से बरज रखता है

और उसको भलाई का मार्ग दिखाता है ६ बहुरि सातवीं भलाई यह है कि जब किसी प्रीतिमान् को देखता है तब उसके साथ मिताई करता है ७ आठवीं भलाई यह है कि शुभस्थान विषे बैठने करके भगवत् का भय उपजता है ताते किसी अपकर्म की चितवनीही नहीं करता ८ तात्पर्य यह कि जब जिज्ञासुजन की मंशा किसी शुभ करतूति विषे विधिसंयुक्त दृढ़ होती है तब सबही करतूति अधिक से अधिक बढ़ती जाती है बहुरि तीसरे कर्म राजसी जो कहेथे सो शरीर का व्यवहारहै ताते बुद्धिमान् को चाहिये कि शरीर के व्यवहार बिषे भी पशुवों की नाई अचेत होकर न विचरे और किसीसमय भलाई से रहित न होवे इस करके कि शरीर की क्रिया विषे मग्न होकर भली मंशा से अचेत होना भी बड़ी हानि है क्योंकि परलोक बिषे सर्व व्यवहारों का लेखा होवेगा और ताड़ना करेंगे सो जिसकी मंशा व्यवहार विषे मलिन होवेगी तिसको दण्ड देवेंगे और जिसकी मंशा शुद्ध है सो मुक्ति का अधिकारी होवेगा बहुरि जिसकी मंशा शुद्ध और मलिन भी न होवेगी तिसको यही बड़ा विघ्न है कि उसकी आयुर्बल व्यर्थ ही व्यतीत हुई और मनुष्य जन्म बिषे उसने परमपद को प्राप्त न किया और भगवत् की आज्ञा से विमुख हुआ इसीपर महाराज ने भी कहा है कि यह आयुर्बलरूपी प्रवाह सर्वदा चलाजाता है सो यह समय मैंने तुमको इसनिमित्त दिया है कि तुम इस नाशवन्त समय विषे शुद्ध मंशा करके अविनाशी पदको प्राप्त होवो ऐसेही महापुरुष ने भी कहा है कि जब यह मनुष्य नेत्रोंबिषे अञ्जन डारताहै अथवा मृत्तिका के साथ हाथ धोवता है अथवा हाथ पसारकर किसी के वस्त्र को देखता है सो परलोक विषे ऐसे कर्मोंका हिसाब होवेगा और इस प्रकार पूछेंगे कि तैंने अमुककर्म किस मंशा करके किया था इसी कारण से सन्तजनों ने कहा है कि प्रथम सब किसीको मंशा की विद्या पढ़नी प्रमाण है पर व्यवहार के कर्मों बिषे जिस प्रकार मंशा की शुद्धता कही है सो यह विद्या भी अपार है जैसे वस्त्रों को सुगन्ध लगावनी भी कुछ पाप नहीं पर जब आपको बड़ा जनावने की मंशा न होवे और स्त्री आदिकों के चित्त को चपल करनेकी मंशा न होवे बहुरि अपने चित्त बिषे यही मंशा राखे कि जब किसीको सुगन्ध पहुँचेगी तब उसका चित्त प्रसन्न होवेगा ऐसेही अपने शरीर के मैल को इस निमित्त धोवे कि मुझको देखकर ग्लानि किसी को न आवे इस प्रकार जिसका

चित्त निर्मल होता है सो सर्व कर्मों विषे निर्मल मंशाहीं को बढ़ावता है ताते उसका आहार और व्यवहार और लोकों का मिलाप और और सबही कार्य भलाई का कारण होते हैं क्योंकि जिसकी मंशा शुद्धहै तिसकी क्रिया कदाचित् भी भलाई से रहित नहीं होती जैसे सिफयां सन्त ने एकबार उलटा जामा पहिरा था बहुरि जब उसको सीधा करनेलगे तब चित्त विषे विचारतेभये कि यह वस्त्र तो मैंने शीतनिवारण के निमित्त पहिरा है सीधा क्योंकरूं बहुरि एकसन्त किसी के गृहविषे मजूरी करते थे तब भोजन के समय कुछ लोग उसके दर्शन को आये सो तिनसे उन सन्त ने ऐसे न कहा कि तुमभी प्रसाद पावो जब सम्पूर्ण प्रसाद आप पाइचुके तब कहने लगे कि मैंने इस निमित्त तुमको भोजन का सत्कार नहीं किया कि जब मैं तृप्त होकर भोजन न पावता तब मजूरी न करसक्ता और मालिक का ऋणी रहता तात्पर्य यह कि जिज्ञासुजनों ने खानपान आदिक व्यवहारों विषे भी ऐसे शुद्ध मंशा कीनी है सो उस करके उत्तम फलों को प्राप्तहुये हैं और अचेतता सहित नहीं विचरे ॥ अथ प्रकट करना इसका कि शुद्ध मंशा अपने पुरुषार्थ करके उपजाय नहीं सक्ते ॥ ताते जान तू कि जब यह मनुष्य मंशा की विशेषता को सुनता है तब चित्त विषे ऐसा अनुमान करलेता है कि मैं भी भगवद्भजन के निमित्त भोजन करता हूं और जीवों के कल्याण निमित्त वचन वार्ता करताहूं ताते मेरी मंशा शुद्ध है पर जब विचार करके देखिये तब इसकी मंशा करके केवल मनहीं का संकल्प होता है क्योंकि मंशा दृढ़ अभिलाषा और भगवत् की खैंच को कहते हैं सो जब इस जीवके हृदय विषे भलीप्रकार करके उत्पन्न होती है तब प्रबल होकर मनुष्य की करतूति विषे प्रेरती है जैसे किसी पुरुष को राजा का प्यादा खैंचलेजावे तैसेही मंशा बल करके शरीर को करतूति विषे सावधान करती है सो ऐसी दृढ़ता तबहीं उपजतीहै जब प्रथम किसी कार्य विषे इसकी प्रीति प्रबल होतीहै और जबलग ऐसी प्रबलप्रीति और खैंच न होवे तबलग मनुष्यका कहना व्यर्थ होता है जैसे कोई पुरुष तृप्त होकर भोजनकरे और कहे कि मैंने अल्प आहार की मंशा कीनीहै तब उसका कहना व्यर्थ होता है ताते जिस २ पुरुष का धर्म प्रथम निर्बल होवे वह सन्तजनों के वचनों को विचारकर शुभ कर्मों की विशेषता को समझे और बहुरि भगवत् की प्रसन्नता के निमित्त सात्त्विकी

करतूति विषे दृढ़ होवे तिसका नाम शुद्ध मंशा है पर जिसका चित्त भोगों विषे बद्धयमान होवे तब ऐसे पुरुष के मनविषे परलोक मार्गकी मंशा का उपजनाही कठिन है और यद्यपि मुखसे भी कहे कि मैं शरीर का व्यवहार शुद्ध मंशा सहित करताहूं तौभी उसका वचन कहनेमात्र होताहै जैसे कोई क्षुधितपुरुष कहे कि मैं क्षुधानिवारने की मंशा निमित्त भोजन करताहूं तब ऐसी मंशाही निष्फल कहातीहै काहेसे कि आहार तो सब कोई क्षुधानिवारण निमित्तही खाता है ताते ऐसे वचन कहनेविषे क्या यत्न होता है तात्पर्य यह कि शुद्ध मंशा इस जीव के संकल्प करके नहीं उपजती और वह मंशा भगवत् की प्रेरणा है सो तुझको करतूति विषे सावधान करतीहै पर उस करतूतिका सम्बन्ध तेरे पुरुषार्थ के साथ भी निस्संदेह है इस करके कि पुरुषार्थ विना करतूति सिद्ध नहीं होती ताते प्रसिद्धहुआ कि श्रद्धा का उपजना तेरे अधीन नहीं जिस प्रकार भगवत् चाहताहै सो तैसेही श्रद्धा इसजीव के हृदय विषे उपजाता है पर श्रद्धा की उत्पत्ति का मार्ग प्रीति है इस करके कि जब किसी कार्य विषे तेरी प्रतीति दृढ़ होती है तब निस्संदेह उस पदार्थ की प्राप्ति के निमित्त तुझको श्रद्धा उपज आती है और तुझको सर्वथा वही पदार्थ प्रियतम भासताहै सो जिन पुरुषों ने इस भेद को भली प्रकार समझा है तिन्होंने जिस समय विषे अपने चित्त विषे शुद्ध मंशा न देखी तब वह कर्म कियाही नहीं क्योंकि यद्यपि वह करतूति भलाही होवे तौ भी शुद्ध मंशाविना फलदायक नहीं होता इसी कारणसे एकसन्त किसी समयविषे वचन वार्त्ता करतेथे और किसी समय मौनकर रहतेथे बहुरि जब उनसे कोई प्रश्न करता तब कहते कि जब मेरे चित्त विषे शुद्ध मंशा उपजेगी तब मैं तुझको उत्तर देऊंगा और एक और सन्तने भी कहा है कि मैं अमुक रोगी को पूछने के निमित्त जाना चाहताहूं और एक मास व्यतीत होगया है पर अभी मैं अपने चित्तविषे मंशाकी शुद्धता नहीं देखता ताते वहां नहीं जाता तात्पर्य यह कि जबलग अपने धर्म के मार्ग विषे इसकी प्रीति और प्रतीति दृढ़ न होवे तबलग शुद्ध मंशा उपजतीही नहीं यद्यपि कुछ शुभकर्म करता है ताते बुद्धिमान् पुरुष परलोक के दुःखोंको विचार करके स्मरण करताहै और भगवत्के आगे प्रार्थना करनेलगता है तब महाराजकी दया करके अचानकही शुद्ध मंशा उपज आती है बहुरि वही मंशा दृढ़ होजाती है तब वह करतूति भी सुगम होजाती

है सो जो पुरुष मंशा के भेद को भलीप्रकार समझता है तिसको यह वार्त्ता प्रत्यक्ष भास आती है सो जब शुद्ध मंशा विना जाग्रत् और भजन करिये तिससे सोय रहना विशेष है पर जब सोने विषे यह मंशा होवे कि प्रभात समय निद्रा और आलस्य से रहित होकर भजन करूंगा तब जाग्रत् से विशेष होगा ऐसेही जब भजन की अधिकता विषे हृदय थकित होजावे तब चाहिये कि एक दो घड़ी प्रमाण चित्तको वचनवार्त्ता विषे परचावे पर मंशा यही राखे कि जब हृदयका श्रम दूर होजावेगा तब स्वस्थचित्त होकर भजन विषे लीन होऊंगा इसीपर एक सन्त ने कहा है कि जिस क्रिया विषे चित्त को यत्नकरके रोक रखते हैं तब अवश्यही हृदय श्रमित होकर मूर्च्छित होजाताहै ताते उस क्रिया को त्यागकर चित्तका श्रम दूर करना और फिर उसी करतूति विषे चित्त को सावधान करना ऐसे है जैसे कोई वैद्य किसी रोगी को बलवान् आहार प्रथम देवे कि जब इसके शरीर विषे बल होवेगा तब औषध को भलीप्रकार पचावेगा अथवा जैसे युद्ध विषे कोई शूरमा पुरुष अपने शत्रु के आगेसे भागचले बहुरि जब शत्रु उसके पीछे आवे तब अचानक ही उसको मारलेवे तैसेही धर्म के मार्ग विषे जिज्ञासुजन सदैव अपने मन के साथ युद्ध करते हैं और ऐसेही दांव खेलते रहते हैं सो यद्यपि स्थूलविद्या पढ़नेहारे पण्डित ऐसे भेद को समझ नहीं सकते पर ज्ञानवान् सन्त भलीप्रकार पहिंचानते हैं बहुरि जब तैंने मंशाही को करतूति का प्रेरक जाना तब ऐसेभी जान कि किसी पुरुष की करतूति नरकों के भय करके होती है और कोई स्वर्गों की आशा के निमित्त शुभकर्म करते हैं सो जो पुरुष स्वर्ग के निमित्त शुभ करतूति करता है वह भी इन्द्रियों का गुलाम है अर्थ यह कि इन्द्रियादिक भोगों को ही चाहता है और जो पुरुष नरकों के भय करके जप तप करता है सो भी बुरे गुलाम की नाईं है अर्थ यह कि ताड़ना किये विना अपने स्वामी की सेवा नहीं करता यह दोनों पुरुष भगवत् से विमुख हैं और भगवत् को वही मनुष्य प्रियतम लगते हैं जिनकी क्रिया केवल भगवत् ही की प्रसन्नता के निमित्त होवे और नरक स्वर्ग की आशा कुछ न राखे सो तिसको निष्कामभक्त कहते हैं जैसे कोई प्रेमीपुरुष अपने प्रियतम के साथ प्रीति करता है तब उसको रूपे और सोने की कामना कुछ नहीं होती और जिसके सोनेरूपे का लोभ है तिसको प्रेमी नहीं कहते कांहेसे कि जब भलीप्रकार देखिये तब सोना रूपा ही उसका प्रियतम

है तैसेही भगवत् के दर्शन और स्वरूप के साथ जिसकी अधिक प्रीति नहीं तिसके चित्त में ऐसी निष्काम मंशा कभी नहीं उपजती और जिसकी प्रीति भगवतही के स्वरूप में है तिसका चित्त सर्वदा महाराज के दर्शन में लीनरहता है और विचारके नेत्रों के साथ सदैव महाराज को देखता है बहुरि शरीर करके करतूति इस निमित्त करताहै कि मेरे प्रियतम ने इस प्रकार आज्ञा करी है ताते मुझको अवश्य ऐसे करणीय है इस करके कि जैसे चित्त को आनपदार्थों में लगाना प्रमाण नहीं तैसेही शरीर भी अपने प्रियतम की टहल में लगाया चाहिये है ऐसे जानकर प्रेमी पुरुष यथाशक्ति महाराज के दर्शन विषे चित्तको ठहराताहै और एकत्र होकर उसही को देखता है बहुरि पापकर्मों का त्याग भी इस निमित्त करता है कि इन करके मुझको प्रियतम के दर्शन में पटल और विक्षेपता होवेगी सो जिसके चित्त में ऐसी समझ दृढ़हुई है तिसको ज्ञानवान् यथार्थबुद्धि कहते हैं इसी पर एक प्रीतिमान् को आकाशवाणी हुईथी कि और सब मनुष्य मुझसे आन पदार्थ मांगते हैं और एक बायज़ीद मुझसे मुझही को मांगता है और शिबली सन्तने भी कहा है कि एकबार मेरे मुखसे यह वचन निकला था कि स्वर्ग के सुख से अप्राप्त रहना बड़ी हानि है तब भगवत ने मुझको ताड़ना करके कहा कि तैंने मेरे दर्शन से अप्राप्त रहने को बड़ी हानि क्यों न कहा और स्वर्ग की ओर हृदय क्यों दिया (अब दूसरे विभाग विषे निष्कामता का स्वरूप और स्तुति वर्णन होवेगी निष्कामता की स्तुति) ताते जान तू कि इस प्रकार महाराज ने कहा है कि तुझको मैंने निष्काम भजनही के निमित्त आज्ञा कीनी है और योंभी कहा है कि जिस पुरुष को मैं अपना प्रियतम किया चाहता हूं तिसके हृदय विषे निष्कामता स्थित करता हूं बहुरि महापुरुष ने भी एक प्रीतिमान् से ऐसे कहाथा कि जब तू निष्काम करतूति करे तब तेरा अल्प कर्म भी बहुत वृद्ध होजावे और दम्भ को जो मैंने निन्द्य कहा है सो तिसका कारण भी यही है कि दम्भ करके निष्कामता नष्ट होजाती है और दम्भ की निन्दा ही निष्कामता की स्तुति है इसीकारण से एक सन्त अपने तनुमें चाबुक मारकर ऐसे कहतेथे कि हे मन ! तू निष्काम हो तब मुक्तिको पावेगा और एक और सन्त ने कहा है कि धन्य वह पुरुष हैं जिनकी सर्व आयु विषे एक संकल्प भी निष्काम फुरा है जिस करके उसने चाह कुछ

नहीं करी बहुरि अयूबसन्त ने कहा है कि मंशा के उपजने से भी मंशा को निष्काम रखना अतिकठिन है इसीपर एक वार्त्ता है कि एक प्रीतिमान् ने तीर्थयात्रा के मार्गविषे एकडोल मोललियाथा कि इस करके अपनी क्रिया मार्ग में करूंगा बहुरि आगे बेचलूंगा तब असुक नगर बिषे कुछ लाभ भी प्राप्त होवेगा तब रात्रिके समय स्वप्न बिषे उनको दो देवता दृष्टि आये और इस प्रकार यात्रियों के नाम लिखने लगे कि अमुक पुरुष तमाशा देखने आया है और अमुक पुरुष दम्भ के निमित्त आया है बहुरि उस प्रीतिमान् की ओर देखकर कहते भये कि यह सौदागरी को आया है तब उस प्रीतिमान् ने कहा कि तुम भलीप्रकार देखो मेरे पास तो सौदागरी की कुछ वस्तुही नहीं ताते भगवत्की दुहाई करके कहता हूं कि मेरी मंशा निष्काम है तब देवतों ने कहा कि तैंने डोल लाभ के निमित्त लिया है बहुरि उसने कहा कि मेरी मंशा तो व्यवहार की न थी पर अकस्मात् मैंने ले लियाथा यह वार्त्ता सुनकर एक देवता दूसरे से कहता भया कि ऐसे लिखलो कि यह घर से तीर्थयात्रा की मंशा धरकर चला और मार्ग विषे इसने डोलभी लियाहै आगे जिसप्रकार महाराज की आज्ञा होवेगी सो करेंगे इसी कारणसे सन्तजनोंने कहाहै कि एक निष्काम संकल्पकरके भी अविनाशी सुख को पाय सक्ते हैं पर एक घड़ीपर्यन्त निष्काम रहना अति दुर्लभ और यों भी कहाहै कि विद्यारूपी बीज है और करतूति उसकी खेती है और निष्कामतारूपी जल है ताते मुक्तिरूपी फल उत्पन्न होता है इसी पर एक और वार्त्ता है कि एक नगर बिषे किसी प्रीतिमान् ने सुनाथा कि वहां लोग अमुक वृक्ष को परमेश्वर मानकर पूजते हैं तब उसने यह मंशाकरी कि मैं उस वृक्ष को काटडारूं तो भला है बहुरि जब शस्त्रलेकर चला तब मार्ग बिषे उसको कलियुग आनमिला और कहनेलगा कि तुम महाराज के भजन बिषे स्थित होवो वृक्षके काटने से तुमको क्या लाभ होगा? तब प्रीतिमान् ने कहा कि वृक्ष को काटनाहीं मेरा भजन है बहुरि कलियुग कहताभया कि मैं तो तुमको जाने न दूंगा ऐसे कहकर आपस में लड़नेलगे तब कलियुग को प्रीतिमान्ने गिराय दिया बहुरि कलियुग ने कहा कि एक वचन मेरा और भी सुनो कि तुमको महाराज ने वृक्ष काटने की आज्ञा नहीं करी और महाराज जब उस वृक्ष को काटना चाहता तब किसी महापुरुष को आज्ञा करता ताते तुम क्यों इस संकल्प बिषे

आसक्त हुयेहो बहुरि प्रीतिमान्ने कहा कि मैंतो निस्संदेह उस वृक्षको काटूंगा ऐसे कहकर फिर लड़नेलगे और फिरभी प्रीतिमान् ने उसको गिरादिया तब कलियुग ने कहा कि एक और वचन मेरा सुन लो आगे जो तुम्हारी इच्छा होवेगी सो कीजियो कि जो तुम वृक्ष काटने का त्यागकरो तो तुमको प्रभात समय नित्यप्रति पांचरुपये प्राप्त हुआकरें ताते तुम्हारी जीविका सुखसे होवेगी और भगवत् अर्थ भी दीजियो यह वचन सुनकर प्रीतिमान्ने विचार किया कि यह भी तो भली बात है बहुरि जब घरमें गये तब पांच रुपये उनको प्राप्तहुये पर दूसरे दिन कुछ न पाया तब क्रोधवान् होकर वृक्ष को काटनेचले बहुरि मार्ग विषे कलियुग ने उन से कहा कि अब कहांचले मैंतो तुमको जाने न दूंगा ऐसे कहकर परस्पर लड़ाई करनेलगे तब कलियुग ने प्रीतिमान्को गिरायदिया बहुरि प्रीतिमान्ने आश्चर्य होकर पूछा कि आगे तो मैं तेरे ऊपर प्रबल था अब तैंने मुझको कैसे गिराय दिया तब उसने कहा कि प्रथम तुम्हारी मंशा निष्काम थी ताते तुम प्रबल थे और अब माया के निमित्त क्रोधवान् हुयेहो ताते मैंने तुमको जीतलिया और तुम्हारा बल क्षीण होगयाहै (अथ निष्कामता स्वरूप निरूपण) ताते जान तू कि जब इस पुरुष की मंशा केवल शुद्ध होतीहै तब उसको निष्काम कहते हैं और जिसकी मंशा मिश्रित होती है तिसको सकाम कहते हैं मिश्रित मंशा इसका नाम है जैसे कोई पुरुष संयम के निमित्त व्रत राखे पर उसके चित्तबिषे यह मंशा भी होवे कि अल्पआहार करके मेरा शरीरसुख से रहेगा अथवा रसोई करनेका खेद न होवेगा अथवा जीविकाही अल्प चाहिये बहुरि जैसे गुलाम को मुक्त करनेका भी पुण्य कर्महै पर जब उस मंशाकरके गुलामको छोड़े कि मैं इसके बुरेस्वभाव से छूट जाऊंगा तब यहभी मिश्रित मंशा कहाती है बहुरि जैसे कोई पुरुष रात्रिको जागकर भजन करतारहे पर यह भी मंशा राखे कि जाग्रत् करके मेरे धनको चोरका भय न होवेगा बहुरि जैसे कोई तीर्थों को पुण्य के निमित्त जावे और उसकी यहभी मंशा होवे कि परदेश के अटन करके मेरा शरीर आरोग्य होवेगा अथवा नाना प्रकार के नगरों को देखूंगा अथवा कोई दिन गृहस्थी के जंजाल से छूटूंगा अथवा कोई इस निमित्त विद्यापढ़े कि मेरी जीविका सुख से होवेगी अथवा विद्या करके मेरे धन की रक्षाहोवेगी अथवा जगत् बिषे मेरा आदर होवेगा अथवा लोगों के साथ वचन वार्त्ता बिषे परचारहूंगा अथवा इस-

निमित्त लिखारी होवे कि मेरे अक्षर अच्छे होवेंगे अथवा इस निमित्त स्नाना-
दिक क्रियाकरे कि मेरा शरीर शुद्धरहेगा अथवा इस कामना करके दानदेवे
कि याचकों की निन्दा से छूटूंगा अथवा रोगी को पूछने जावे कि कभी वह
भी मुझको पूछने आवेगा अथवा जगत् विषे मेरी भलाई प्रसिद्ध होवेगी सो
यह सबही कर्म दम्भ के साथ मिले हैं और दम्भ के साथ की क्रिया को मैंने
दम्भ के सर्ग विषे विस्तार करके कहा है कि अल्प अथवा अधिक दम्भ भी
निष्कामता को खण्डित करदेता है और निष्कामता का रूप यह है जिस विषे
मन की वासना कुछही न मिले और केवल भगवत् ही के निमित्त होवे इसीपर
किसी हरिभक्त ने महापुरुष से पूछा था कि निष्कामता क्या है ? तब उन्हों ने
कहा कि एक भगवतही को अपना स्वामी जानकर उसकी आज्ञा विषे स्थित
होनाही निष्कामता है तात्पर्य यह कि जबलग यह मनुष्य मन के स्वभावों
से दूर न होवे तबलग निष्काम होना महाकठिनहै इसीप्रकार केते सन्तजनों
ने कहा है कि निष्कामता के समान कोई करतूति अतिकठिन और दुर्लभ
नहीं इस करके कि अविद्याबद्ध जीव के हृदयविषे निष्कामता का उपजना ऐसे
है जैसे विष्ठा रुधिर के पुतले से दूध निकलना अर्थ यह कि विष्ठा और रुधिर का
पुतला जो शरीर है सो इस विषे दूध उत्पन्न करना भगवतही का काम है और
किसी मनुष्य के बलकरके नहीं होसक्ता इसी पर महाराज ने भी कहा है कि
मैंने जीवों के प्रतिपाल करनें को विष्ठा और रुधिर में से दूधको उत्पन्न किया है
ताते जिज्ञासु जन को चाहिये कि माया के सर्वपदार्थों से अपने चित्त को विरक्त
करे और सर्वप्रकार भगवतही की प्रीति को बढ़ावे तब स्वाभाविक ही इसकी
सर्व करतूति अपने प्रियतम की प्रसन्नता के निमित्त होवें सो जिस पुरुष की
ऐसी अवस्था हुई है तिसका आहार और व्यवहार और मलत्यागना भी भगवत्
ही के निमित्त होता है अर्थ यह कि मन की वासनानुसार उसका कोई कर्म नहीं
होता और जिसके हृदय में माया की प्रीति प्रबल है सो भगवत् के भजन में
निष्काम हो नहीं सक्ता इस करके कि जिस पदार्थ विषे इस जीव की प्रीति होती
है और जैसा जैसा इसका स्वभाव होताहै तब शरीर की करतूति भी उसही
प्रीति और स्वभाव को बढ़ावती है जैसे कि जिसको मान और बड़ाई की प्रीति
है तिसके सबही कर्म मान के निमित्त होते हैं पर उपदेश और वचन वार्त्ता की

क्रिया विषे निष्काम होना अत्यन्त कठिन है क्योंकि ऐसे कर्मोंका सम्बन्ध लोगों के साथ अधिक होताहै इसी कारण से मान की कामना मिश्रित होजाती है पर कबहूं तो मान की कामना अधिक होती है और कभी धर्मकी कामना प्रबल होजाती है ताते मन आदिक संकल्प के दूर करने विषे बहुरि विद्यावान् भी समर्थ नहीं होते और अल्पबुद्धी जीव मूर्खता करके आपको निष्काम ही जानते हैं इसी कारण से अभिमानी होकर अपने अवगुणों को देखतेही नहीं इसी पर एक सन्तने कहाहै कि मैंने यथार्थ दृष्टि करके देखा तब मैं तीस वर्ष के भजन को व्यर्थही जानता भया इस करके कि तीस वर्ष पर्यन्त मैंने सबलोगों से आगे ठाढ़े होकर भजन किया था बहुरि एक दिन विषे अकस्मात् मुझको कुछ विलंब होगया ताते लोगों के पीछे स्थित होने करके मेरा मन लजायमान होनेलगा तब निस्संदेह मैंने जाना कि वह प्रसन्नता और रहस्य मुझ को मुखिया होनेकर उपजाताथा तात्पर्य यह कि निष्कामतारूपी पदार्थका समझनाही महाकठिन है ताते स्थित होना तो अतिही दुर्लभ है और निष्कामता बिना जेते सात्त्विकी कर्म यह मनुष्य करता है तेतेही निस्संदेह व्यर्थ होते हैं और भगवत् उनको रंचमात्र भी प्रमाण नहीं करता इसी कारण से सन्तजनों ने कहा है कि यद्यपि बुद्धिमान् पुरुष अल्पमात्र ही भजन स्मरण करे तौ भी मूर्ख मनुष्यों के केते वर्षोंके भजनसे अधिक लाभदायक होताहै इस करके कि मूर्ख मनुष्य करतूतों के विघ्नों को नहीं जानता ताते उसकी मनसा मान और दम्भादिक स्वभावों विषे मिलजाती है और वह उस कर्म को निष्कामही जानता है और ऐसे नहीं समझता कि भजन विषे और कामना करनी ऐसे है जैसे स्वर्ण विषे और धातुकी मिलौनी होवे ताते जो पुरुष शराफी नहीं जानता सो अवश्यही छलाजाता है और कोई उत्तम शराफही आपको खोटे से बचाय रखता है क्योंकि मूर्ख तो सोनेको पीलेही रङ्ग करके पहिचानताहै तैसे ही भजन विषे जो सकामतारूपी खोट है सो वह भी चार प्रकार का होता है एक प्रकट है १ और एक अति प्रकट है २ एक सूक्ष्म है ३ और एक सूक्ष्म से भी अतिसूक्ष्म है ४ ताते मैं इसको युक्ति साथ प्रकटकर कहता हूं सो प्रथम तो जब यह पुरुष भजन करने लगता है और अधिक लोगों को अपने निकट देखता है तब इसके मन विषे यह संकल्प आन फुरता है कि भजन के नेम को

जब विधिसंयुक्त सम्पूर्ण करिये तो भलाहै तब लोग मेरे ऊपर ग्लानि न राखैं सो यह दम्भ अतिप्रकट है १ बहुरि दूसरा प्रकार यह है कि जब इस दम्भ को पहिंचानकर त्याग करता है तब मन इस प्रकार की रीतिकर संकल्प उठाता है कि जब यहलोग तुझको भलीप्रकार भजन करता देखेंगे तब इनको भी भजन की प्रीति और दृढ़ता उपजेगी ताते उस भजन के पुण्य का लाभ तुझको भी होवेगा सो यह संकल्प ऐसा छलरूप है कि इस बिषे अवश्यही छलाजाता है और ऐसे नहीं जानता कि और लोगों के भजनकी पुण्य इसको तबहीं होती है जब इसकी एकाग्रता उनके बिषे जाय प्रवेश करे अन्यथा नहीं होती क्योंकि जब इस मनुष्य का चित्त एकत्र न होवे और और लोग इसको निष्काम और एकाग्रचित्त जानकर भजन बिषे प्रीति करें और दृढ़ होवें तब उनको तो निस्संदेह भलाई प्राप्त होती है पर सकामी पुरुष जो आपको निष्कामी दिखाता है सो अपनी वासना और दम्भरूपी रस्सी साथ बांधा ही रहता है ताते यह भी प्रकट दम्भ कहाता है २ बहुरि सूक्ष्मदम्भ तीसरा यह है कि जिसने इस वार्त्ता को जाना होवे कि एकान्त और लोगों बिषे एक सारिखाही भजन करना विशेष है पर जब एकान्त में भली प्रकार भजन कर न सके और लोगों बिषे विधिसंयुक्त करे तब यहभी कपट होताहै अथवा ऐसे जानकर एकान्त बिषे ही भजन के नियम को भलीप्रकार यत्न करके पूर्णकरे कि मैं लोगों बिषेभी ऐसा ही भजन करूंगा ताते दम्भी न होऊंगा सो एक यह सूक्ष्म दम्भ है क्योंकि वह उसको अपना दम्भही एकान्त बिषेभी लजायमान करता है कि जब एकान्त और लोगों बिषे बिपरीतभाव करूंगा तब निस्सन्देह पाखण्डी होऊंगा पर इस दम्भ का चिह्न लखा नहीं जाता और आपको निष्कामी जानकर वह पुरुष एकान्त बिषे भी दम्भही करता है ३ बहुरि चौथा दम्भ इससे भी सूक्ष्म है कि जिसने ऐसेभी जाना होवे कि अन्तर बाह्यलोगों के निमित्त एकाग्र चित्त होना लाभदायक नहीं होता ताते मन उसको इस प्रकार छलदेता है कि जिस भगवत् का तू भजन करता है सो परम ईश्वरों का ईश्वर है ऐसे महाराज की बड़ाई और तेज को स्मरणकर भयवान् होवो और उसके सम्मुख संकुचकर स्थितहोवो यह संकल्प धारकर जो पुरुष मन की वृत्ति को रोकता है तिसको इस निमित्त दम्भी कहते हैं कि जिसके चित्त में एकान्त बिषे ऐसा संकल्प न उपजे और

लोगों विषे इस संकल्प को बढ़ायकर एकत्र होवे कि लोग मुझको स्थिरचित्त जानें ताते वहभी दम्भी कहाता है पर यह दम्भ अतिसूक्ष्म है बहुरि लोगों को देखकर भगवत् की बड़ाई को स्मरण करना भी व्यर्थ होताहै इसपर सन्तजनों ने कहाहै कि जबलग यह पुरुष भजनके समय पशुओं और मनुष्यों के देखने विषे भेद जानता है तबलग केवल निष्काम नहीं होता और शुद्ध निष्काम वही पुरुषहै जिसको पशु और मनुष्य का देखना समान भासे तात्पर्य यह कि जिसको ऐसे सूक्ष्मों की पहिंचान नहीं प्राप्त हुई सो जप तप विषे भी व्यर्थ ही कष्ट को खैंचता है ४ ताते यों जान तू कि जब दम्भ और मानकी मंशा भजन की मंशा से प्रबल होवे तब वह भजन भी खेददायक होता है और जब दोनों मंशा समान होवें तब लाभ हानि कुछ नहीं होती अर्थ यह कि हृदयकी अवस्था ज्योंकी त्यों रहती है बहुरि जब भजन की मंशा प्रबलहोवे तब कुछ लाभ ही होता है यद्यपि सन्तजनों के वचनों विषे इस प्रकार आया है कि सकामी पुरुषों को भगवत् इस प्रकार कहेगा कि जिसके निमित्त तुमने जप तप किया है फल भी उसीसे मांगो पर मेरे चित्त विषे यह वचन दोनों मंशा की समानता पर भासता है इस करके कि जब शुभ और अशुभ मंशा समान होती है तब उसका पुण्य पाप कुछ नहीं होता और जिन वचनों विषे कामनामयी करतूति को खेद का कारण कहा है सो केवल दम्भही की मंशा प्रति कहाहै पर जिस की मंशा प्रथमही धर्म के निमित्त होवे और पीछे कुछ दम्भ की मंशा मिल जावे तब उसकी करतूति मूलही से व्यर्थ नहीं होती यद्यपि निष्काम कर्म के समान फल को नहीं पावता और अत्यन्त निष्फल भी नहीं होता सो इस वचन को दो युक्तियों कर समझ सकते हैं प्रथम तो बुद्धि की युक्ति यह है कि भगवत् की ओर से विमुख होनाही परम दुःख है और बड़ी सजा भी यही है और मंशा की निष्कामताही इस जीव को उत्तम भागों का बीजहै तैसेही माया के पदार्थों की प्रीति मन्दभागों का बीजहै ताते दोनों मंशा की समानता ऐसे है कि जेताही शुद्ध मंशा इस जीव को भगवत् के निकट खैंचती है तेताही स्थूल कामना इसको उस पदसे दूर डारतीहै ताते उसकी अवस्था ज्योंकी त्यों रहजाती है और लाभ हानि कुछ नहीं पावता जैसे कोई रोगी पुरुष शीतल और उष्णदायक औषध समानही खावे तब उसका रोग ज्यों का त्यों रहता है

पर जब शीतल औषध अधिक खावे तब उसकी गरमी क्षीण होजाती है और जब उष्णदायक औषध को खावे तब शरदी क्षीण होती है तैसेही पाप की अधिक मंशा हृदय को मलिन करलेती है और शुद्ध मंशा हृदय को निर्मल करती है रञ्चकमात्र भी दोनों मंशा व्यर्थ नहीं होतीं जैसे रञ्चक पथ्य और रञ्चक कुपथ्य भी शरीरविषे रोग और आरोग्यता उपजावता है पर यथार्थ नीतिकी तराजू विषे इनका गुण और अवगुण तोल सकते हैं इसीपर महाराजने भी कहाहै कि जो पुरुष राईके समान भलाई करता है वह भी निस्संदेह उसके सुख को भोगता है और जो पुरुष एक राई सम बुराई करता है सो तिसके दुःखरूपी फलको भी अवश्यही पाता है इसी कारण से जिज्ञासुजन को चाहिये कि यत्न करके सात्त्विकीही श्रद्धा को बढ़ावे और स्थूलकामना को जिस तिस प्रकार क्षीणकरे बहुरि दूसरी युक्ति यह है कि जैसे तीर्थयात्रा विषे यात्रीपुरुष मार्ग विषे सौदागरी भी करलेवे तौ भी उसकी यात्रा निष्फल नहीं होती यद्यपि निष्कामता करके अधिक फल को पावता है पर यह भी मूलही से निष्फल नहीं होती तैसेही कलुक संकल्प की मिलौनी करके भजन का समूह फल नष्ट नहीं होता सो इस वार्त्ता को भी सब कोई प्रमाण करताहै क्योंकि मूल से उसकी मंशा शुद्धहै और जब ऐसे न होवे तब केवल निष्काम करतूति इस जीव से होनाही कठिन है इस करके कि जबलग सर्वथा देहाभिमान से मुक्त न होवे तबलग सात्त्विकी कर्मों विषे भी केते संकल्प राजसी फुर आवते हैं ताते इसका उपाय यही है कि सात्त्विकी श्रद्धा के बीज को नष्ट होने न देवे और शनैः शनैः और संकल्पों को निर्बल करता है तब पुरुषार्थ करके निष्कामता को भी प्राप्त होताहै (अथ तीसरा विभाग सचाई का वर्णन) ताते जान तू कि सचाई और निष्कामता एक ही रूप हैं पर जो पुरुष निष्काम अवस्था को पावता है तिसको सांचा कहते हैं इसीपर महाराजने भी कहाहै कि परलोक विषे सर्व जीवों से सांचही की दृढ़ता पूछेंगे और किसीने महापुरुष से पूछाथा कि मनुष्य की उत्तम अवस्था क्या है तब उन्होंने कहा कि वचन और करतूति की सचाईही को उत्तम अवस्था कहा है इसीकारण से जिज्ञासु को सचाई का अर्थ पहिंचानना अवश्य ही प्रमाण है ताते सचाईरूपी पदार्थ के पांच लक्षण प्रसिद्ध हैं जिसको यह पांच लक्षण प्राप्त हुये हैं सो यथार्थी पुरुष कहाता है प्रथम तो जिह्वाकी सचाई है जो झूठ कभी

न कहै अर्थात् व्यतीत वार्त्ता विषे भी झूठ वर्णन कदाचित् न करे और आगे को भी किसी के साथ झूठा वचन न करे और वर्त्तमान कालविषे भी सांचही बोले इस करके कि जैसा वचन जिह्वा से बोलिये हृदय भी तैसाही स्वभाव पकड़ता है ताते चाहिये कि अवश्यही कार्य विना झूठ कदाचित् न कहे पर जब किसी का विरुद्ध दूर करना होवे तौभी युक्ति करके ऐसा वचन बोले जिस विषे झूठा अक्षर न आवे अथवा जब सांची मंशाकरके ऐसे कार्य विषे झूठही बोले तौभी प्रमाण है बहुरि जब भगवत् के आगे विनयकरे तौभी सांचा ही वचन उचारे अर्थ यह कि जब मुख से इस प्रकार कहे कि हे भगवत्! मेरा मुख तेरीही दया की ओर है अथवा जब ऐसे कहे कि मैं तेरा दास हूं और तुझहीको पूजताहूं बहुरि जब हृदय करके भोगोंकी ओर मुख राखे और जबलग अपनी बासना का आज्ञाकारी और गुलामहै तब उसकी विनयभी झूठी होती है क्योंकि जबलग सर्व माया के बन्धनों से मुक्त न होवे तबलग भगवत् का पुजारी और दास नहीं होता और मुक्तहोना यह है कि अपने आपसे भी मुक्त होवे अर्थ यह कि भगवत विना और किसी पदार्थ को न चाहे बहुरि महाराजही की आज्ञा विषे सदैव प्रसन्नरहे तब जानिये कि भगवत् का सांचा सेवक है १ और दूसरा लक्षण सांच का मन विषे होता है कि जिस पदार्थ को अङ्गीकार करे तिसमें सांचही की मंशा राखे और और किसी कामना के साथ मिश्रित न करे सो निष्कामता का अर्थ भी यही है पर निष्कामता और सांच को इस निमित्त एक कहते हैं कि जिस पुरुष के करतूति विषे दम्भ की मंशा होती है सो झूठा है क्योंकि जैसा वह पुरुष आपको बाहर से देखावता है तैसा हृदय विषे नहीं होता २ बहुरि तीसरा लक्षण सांच का यह है कि जब प्रथम सात्त्विकी मंशा धारकर किसी कर्म को अङ्गीकार करे जैसे धर्म के निमित्त राजा होवे अथवा उदारता के निमित्त धन राखे तब उस अवस्था विषे भी वही मंशा दृढ़रहे मान और भोगोंकी अधिकता करके विचल ना जावे सो ऐसा पुरुष निस्संदेह सांचा कहावता है जैसे एक महात्मा ने कहा है कि अमुक सन्त ने सम्मुख उपदेश करने से मुझको अपना मरना सुगम भासताहै अर्थयह कि आपसे विशेष पुरुष के आगे अपनी विशेषता प्रमाण नहीं ताते इस वचन विषे महात्मा की सांची मंशा की दृढ़ता प्रकट होती है कि मन वचन कर्म करके उनको यथार्थ की

मर्याद प्रियतम थी और अपनी वासना से रहित थे सो वासना से रहित पुरुष और वासना बन्धायमान विषे बड़ा भेद होता है ३ बहुरि चौथा लक्षण सांच का यहहै कि जो गुण उसके अन्तर न होवे तिसको बाह्य भी दिखावे नहीं इस करके कि जिस पुरुषकी क्रिया और होती है और हृदय का स्वभाव क्रिया से विपर्यय होताहै वह भी निस्संदेह झूठहै ताते अन्तर बाहर एक होनाही परम सांचहै और सांचे पुरुषों का हृदय बाह्य की क्रिया से भी अतिनिर्मल होता है और क्रिया भी उनकी भलीही होती है इसीपर महापुरुष ने भी प्रार्थना करीथी कि हे महाराज ! मेरे हृदय को मेरी क्रियासे भी विशेष करो और बाह्य की क्रिया भी भली ही देहु ४ बहुरि पांचवां लक्षण सांचका यह है कि जेते धर्ममार्ग के गुण हैं जैसे वैराग्य भरोसा और भय और प्रेम इत्यादिक जो सब भले स्वभावहैं सो तिन करके पूर्ण होवे सो यद्यपि जिज्ञासु विषे यह गुण अधिक अथवा अल्प निस्संदेह होते हैं पर जबलग सम्पूर्ण न होवे तबलग पूरा सांचा नहीं कहाजाता जैसे अधिक भय का लक्षण यह है कि भयवान् पुरुष का मुख पीत होजाता है और थर २ कांपता है बहुरि भूख प्यास और नींद भी उसकी दूर होजाती है तैसेंही भगवत् भय करके जिस पुरुषकी ऐसी अवस्था हुई है तिसको सांचा भयवान् कहा है पर जब कोई मनुष्य ऐसे कहे कि मैं पापों से डरताहूं और पापोंका त्याग न करे तब उसका डरना भी झूठ होताहै ऐसेही सर्व शुभगुणों की अधिकता अल्पता विषे बड़ा भेद है पर जिस विषे यह पांच लक्षण पूर्णहोवें तिसकी अवस्था अपने अधिकार प्रति होती है ॥

छठवां सर्ग ॥

अपने मनके हिसाब और ध्यान के वर्णन में ॥

ताते जान तू कि महाराज ने भी ऐसे कहा है कि मैं परलोक विषे यथार्थ तराजू राखूंगा और किसी पर अन्याय न करूंगा और भगवत् ने सर्व जीवों के प्रति इसीकारण से यह आज्ञा कीनी है कि तुम इसी संसार विषे अपने मन का हिसाब आपही करो बहुरि महापुरुष ने भी कहा है कि बुद्धिमान् पुरुष वही है जिसका समय इस प्रकार बीते एक समय विषे अपनी जीविका उत्पन्नकरे और एक समय अपने मनका हिसाब करे बहुरि एक समय अपने शरीर की क्रिया विषे बितावे और एक समय भगवत् के आगे अधीनचित्त होकर बिनती करे

ऐसेही चार भाग करके जिसकी आयुष् व्यतीत होवे सोई बुद्धिमान् विशेष है इसीपर एक सन्त ने कहा है कि परलोक विषे तुम्हारे कर्मोंका हिसाब करेंगे ताते तुम आगेही अपना हिसाब करो इसीकारण से विचारवान् पुरुषों ने इसप्रकार निश्चय किया है कि हम इस संसार विषे शुभगुणों की सौदागरी के निमित्त आये हैं और यह मन हमारा साभीहै बहुरि जब सौदागरी करचुके तब लाभको प्राप्तहूजिये ऐसे समझकर उन्होंने मनको अपना साभी बनायाहै सो जैसे कोई पुरुष सौदागरी करने लगता है तब प्रथम तो साभी के साथ युक्तियां ठहरावता है बहुरि उसकी ओर ध्यान रखताहै उससे पीछे हिसाब करताहै जब कुछ साभी ने चुराया होताहै तब उसको दण्डदेता है बहुरि उसके ऊपर यत्न रखता है और सिखावने के निमित्त झिड़क देता है तैसेही विचारवान् पुरुष भी अपने मन के साथ यही षट मर्याद रखते हैं सो युक्ति इसप्रकार ठहरावते हैं कि जैसे व्यवहार का साभी भी सर्व कार्यों की सहायता करनेहारा होताहै तब दुःखदायक भी वही होताहै इसीकारण से उसके साथ युक्ति कीजाती है कि तू इस प्रकार रहना और अमुक कार्यकरना तब तेरा मेरा निर्वाह होवेगा तैसेही मनके साथभी युक्ति ठहरावनी अवश्यही प्रमाणहै क्योंकि स्थूल व्यवहारका लाभ नाशवान् है और शुभगुणोंके वणिज का लाभ सत्य स्वरूपहै और बुद्धिमान् पुरुषों के निकट नाशवन्त पदार्थ कुछ वस्तुही नहींहोता इसीपर विचारवानों ने कहाहै कि नाशवन्त सुख से अविनाशी दुःखभी भलाहै इस करके कि उसका वियोग नहींहोता बहुरि यह श्वासरूपी रत्न ऐसा अमोल है कि इन करके अविनाशी पदको प्राप्तहोता है ताते इनको विचार करके व्यतीतकरना प्रमाणहै और बुद्धिमान् पुरुष वही है जो प्रभातसमय उठकर कुछकाल चित्तको निस्संकल्पकरे और इसीविचारमें सावधान होकर मनको समझावे कि हे मन! मेरे पास इस आयुष् के कुछही दिन उत्तम धनहै और जो श्वासबीतजाताहै सो किसी प्रकार नहींआता बहुरि इनश्वासोंको भगवत् ने मितराखा है उससे न घटते हैं न बढ़ते हैं और जबयह आयुष् अचेतता विषे बीतगई तब भजन स्मरण कुछ न होवेगा इसीकारण से चेतनेका समय और भजन का अवसर यही है सो इस जगत् विषे जीवना थोड़ा है और परलोक विषे कुछ करतूति न होइसकेगी ताते आजही तेरे पुरुषार्थ का दिन है जो तुझ को महाराज ने आयुषरूपी पदार्थ दियाहै बहुरि जो अबहीं तेरे मृत्यु का समय

आजावे और तब तू एकदिन मांगे कि मैं इस एक दिनमें कुछ भजन स्मरण करलूं तो एकपल कभी तेरे हाथ न आवेगा और पश्चात्ताप बिषे पड़ा जलेगा ताते इसीसमयको उत्तमपूंजी जानकर वृथा न खोवो तो भलाहै और ऐसेही समझ ले कि आजही मेरी मृत्यु पहुँचीथी पर यह एकदिन मुझको मांगे मिलाहै, इस करके कि आयुरूपी पूंजीको वृथा खोवना और परमपदसे अप्राप्त रहनेके समान और हानि क्याहै ? इसीपर सन्तजनों ने कहाहै कि जब परलोक बिषे इस मनुष्य के कर्मों का विचार करेंगे तब एक २ घड़ीकी क्रिया को भिन्न २ देखेंगे सो जिस घड़ी बिषे इसने भला कर्म किया होवेगा तब वह घड़ी महाप्रकाशमान निकलेगी और उस पुरुष को भी अधिक प्रसन्नता उपजेगी और उस घड़ी की शीतलता नरकों की अग्नि के बुझावनेको समर्थ होवेगी बहुरि जिसघड़ी इसने पाप किया होवेगा वह घड़ी महाअँधेरी और मलिन निकलेगी और महादुर्गन्ध प्रकट होवेगी सो उस दुर्गन्धसे सबही नाक मूंदेंगे ताते उस पुरुषको ऐसी लज्जा और भय उत्पन्न होवेगा कि उसका वर्णन नहीं कियाजाता बहुरि जिस घड़ी बिषे पाप और पुण्य कुछ न किया जावेगा आलस प्रमाद अथवा व्यर्थ खेलने में व्यतीत होवेगी सो घड़ी न अँधेरी निकलेगी न प्रकाशित पर उसको देखकर यह मनुष्य अधिक पश्चात्ताप करेगा जैसे किसी को बड़ेखजाने को प्राप्त करना था और उससे अप्राप्त रहा तब बड़े पश्चात्ताप बिषे जलता है तैसेही आयुष के व्यर्थ खोवनेकरके प्राणी महादुःखित होवेगा इसीप्रकार सर्व आयुर्बलकी घड़ीको भिन्न २ करके देखेंगे ताते चाहिये कि जिज्ञासुजन ऐसेही सदैवकाल अपनेमन को समझावे कि आजही उस लेखे का दिन है इसी कारण से एक घड़ी भी अचेत होकर व्यर्थ खोवनी अयोग्य है और जब तू अबहीं सचेत न होवेगा तब परलोक बिषे बड़े खेद और पश्चात्ताप को देखेगा इसी पर सन्त जनों ने कहा है कि यद्यपि भगवत् ने अपनी दया करके तेरे पाप क्षमाकिये तौभी तू महा पुरुषों की अवस्था से अप्राप्त रहेगा सो यह भी तुझको अधिक पश्चात्ताप होवेगा ताते चाहिये कि तू सब इन्द्रियों को भगवत् के भजन बिषे लगावे तो भला है और अपकर्मों से रोक राखे तब तेरी रक्षा होवेगी इसी पर सन्तजनों ने कहा है कि जब इन्द्रियों के साथ अपकर्म करता है तब इसी द्वारे यह मनुष्य नरकों बिषे जाय प्रवेश करता है इस करके कि एक २ इन्द्रिय बिषे नरक का द्वारा

छिपाहुआहै ताते एक २ इन्द्रिय के पापों का विचार करके लज्जावान् होवे और अपने मन को भी त्रास देवे कि जब तैंने सन्तजनों की आज्ञा से विपर्यय कर्म किया तब मैं तुझको अधिक दण्ड देऊंगा सो यद्यपि यह मन अत्यन्त कठोरहै पर तौ भी उपदेश का अधिकारी भी यही है ताते जब भली प्रकार इसको समझाइये तब प्रयत्न करके सीधेमार्ग विषे लगता है नित्यप्रति यह युक्ति जिज्ञासु जन को करतूति से आगेही दृढ़ करनी प्रमाण है इसी पर महाराज ने भी कहा है कि मैं तुम्हारे मन के संकल्पों का अन्तर्यामी हूं ताते सर्वदा मेरे भय विषे स्थित होवो और महापुरुष नें कहा है कि उत्तम पुरुष वही है जो सदैव अपने करतूति का विचार करताहै और उसी क्रिया को अङ्गीकारकरे जो परलोक विषे इसको दुःखदायक न होवे और यौंभी कहाहै कि जिस कर्म का फल अवश्य तेरे आगे आवनाहै तब उसको प्रथमही विचार देख ताते भले कर्मको अङ्गीकारकर और बुराई को त्याग दे इसी प्रकार नित्यप्रति अपने मन के साथ प्रभातसमय ऐसी युक्तियां अवश्यही ठहरानी योग्य हैं पर जिसका मन आगेही शुद्धहुआ है तिसको किसीयुक्ति की अपेक्षा नहीं होती (अब इसके आगे मन की ओर दृढ़ होकर ध्यानकिया चाहिये) सो ध्यान का अर्थ यह है कि जैसे साझी को पूंजीदेकर युक्तिस्थापन करते हैं तब पीछे उसकी ओरसे अचेतहोना प्रमाण नहीं होता तैसेही मनकी ओर भी पल २ विषे ध्यान रखना विशेषहै इसी करके कि जब जिज्ञासुजन मन की ओर से एकक्षण भी अचेत होता है तब मन मर्याद को त्याग कर अपनेही स्वभाव विषे बहिजाता है आलस और भोगों के प्रमाद करके उन्मत्त होरहता है ताते मन की ओर ध्यान रखना यही है कि भगवत् को अपने करतूतों का ज्ञाता जाने कि लोग मेरी बाह्यक्रिया को देखते हैं और महाराज मेरे हृदय का अन्तर्यामीहै सो जिसने इस भेद को भलीप्रकार समझा है और जिसके चित्त विषे यही बूझ प्रबल हुई है तब उसके अन्दर और बाहर की क्रिया दोनों निर्मल होती हैं इस करके कि जिस पुरुष ने महाराज को अन्तर्यामी जाना है सो ऐसे महाराज के सम्मुख पापकर्म करे तब यह भी बड़ी ढीठता और हृदय की कठोरता है इसी पर भगवत् ने भी कहा है कि तुम मुझ को अन्तर्यामी नहीं जानते ताते महाढीठ हो बहुरि एक प्रीतिमान्ने महापुरुष से पूछाथा कि मैंने पाप बहुत किये हैं पर जो अब मैं पापों का त्यागकरूं तब

मेरा त्याग प्रमाण होवेगा अथवा न होवेगा तब महापुरुष ने कहा कि अब भी तेरात्याग प्रमाण होता है बहुरि उस प्रीतिमान् ने कहा कि जब मैं पापकर्म करताथा तब महाराज मुझको देखता था महापुरुष ने कहा कि देखता था इस वचन को सुनकर उस प्रीतिमान् ने ऊंचेस्वर से हायकरी बहुरि शरीर को त्याग दिया और महापुरुष ने योंभी कहा है कि भगवत् को साक्षात् सम्मुख जानकर पूजो और जब ऐसे न जानसको तब इस प्रकार समझो कि भगवत् हमको देखता है ताते जब तैंने भगवत् को सर्व अवस्था और सर्व समय विषे अन्तर्यामी जाना तब तेरा कार्य सुफल भया पर इससे भी उत्तम अवस्था यह है कि तूही सदैव भगवत् का दर्शन प्रकट देखे और उसी स्वरूप के आनन्द विषे लीन होवे इसी पर एक वार्त्ताहै कि एक सन्त अपने सर्व मिलापियों विषे एक प्रीतिमान् को अधिक प्रियतम रखता था इसी कारण से और मिलापियों को ईर्षा उत्पन्न हुई कि हम में क्या अवगुण है और उसमें कौन गुण अधिक है ? सो जब उस सन्त ने इस वार्त्ता को जाना तब उनकी परीक्षा के निमित्त सब के हाथ विषे एक २ फल देदिया और इस प्रकार आज्ञाकरी कि जहां तुम को कोई न देखे तहां इसको छीलकर ले आवो तब सब मिलापी एकान्त वन में जाकर फलको छील ले आये और जिस जिज्ञासु के साथ सन्त की अधिक प्रीति थी सो बिना छीला ले आया तब उस से सन्तजनों ने कहा कि तैंने फल को क्यों नहीं छीला बहुरि वह जिज्ञासु कहता भया कि जिस स्थान विषे कोई देखनेहारा न होवे सो ऐसा स्थान मैंने कोई नहीं देखा अर्थ यह कि भगवत् सर्व स्थानों विषे देखता है ताते इसी परीक्षा करके सन्त ने उस जिज्ञासु की विशेषता को लखाया कि यह सर्वदा महाराज को अपने निकट जानता है इसी कारण से इस की अवस्था उत्तम है और मुझको भी अधिक प्रियतम लगता है बहुरि एक और प्रीतिमान् ने जुनेदसन्त से पूछाथा कि मैं अपने नेत्रों को रूप की दृष्टिसे रोक नहीं सक्ता ताते इसका उपाय क्या है ? तब उन्होंने कहा कि जब तू किसीकी ओर देखनेलगे तब उससे भी अधिक अपनी ओर भगवत् को देखता जान ताते भय करके स्वाभाविकही तेरे नेत्र रोकेजावेंगे अन्यथा न रोकसकेंगे इसी पर महाराज ने भी कहाहै कि जो पुरुष अकस्मात् पापकर्म की चितवनी करते हैं बहुरि मेरी बड़ाई को स्मरण करके उस कर्म को त्यागदेते हैं सो निस्सन्देह

परमसुख को पावते हैं इसीपर एक और वार्त्ता है कि एकसन्त ने मार्ग में एक चरवाहा को बकरी चरावते देखा तब उससे कहतेभये कि तू एक बकरी बेंचता है तब अजापाल ने कहा कि मैं तो इनका चरावनेहाराहूं और इनका स्वामी और है बहुरि वहसन्त उसको कहनेलगे कि इनका स्वामी अब तो यहां नहीं देखता है ताते उससे ऐसे कहदेना कि एक बकरी को भेड़िये ने मारडाला तब अजापाल ने कहा कि जो बकरियों का धनी नहीं देखता तो श्रीराम तो सब कुछ देखते और जानते हैं यह वचन सुनकर वह सन्त रुदन करनेलगे और बकरियों के धनी को बुलाकर उसी दास को मोल लिया बहुरि उस दास को मुक्त करदिया फिर उससे ऐसे कहतेभये कि जैसे इस वचन ने तुझको यहां मुक्तकराया है तैसेही परलोक विषेभी तुझको यह वचन नरकों से बचावेगा तात्पर्य यह कि मैंने जिस ध्यान की स्तुति करी है सो ध्यान भी दो प्रकार का है पर उत्तमध्यान यथार्थी पुरुषों का यही है कि उनका हृदय भगवत् की बड़ाई विषे लीन होताहै और उसकी समर्थता पहिंचानकर सर्वदा सकुचे रहतेहैं ताते उनका मन और किसी पदार्थ की ओर देखही नहीं सक्ता सो जिसको ऐसा ध्यान प्राप्त हुआ है तिसकी इन्द्रियां भी स्वाभाविकही संकुचजाती हैं और यत्न विनाही भोगों की अभिलाषा उसको नहीं रहती तब पापकर्मों विषे क्योंकर विचरे इसीपर महापुरुष ने कहा है कि जो पुरुष प्रातसमय उठकर महाराज की ओर दृढ़चित्त और सावधान होवे तिसके सर्वकार्य आप महाराज सिद्ध करदेते हैं सो केते सन्तजन इसी ध्यान विषे ऐसे लीनरहते हैं कि किसीकी वार्त्ताही नहीं सुनते और किसीको देखतेही नहीं यद्यपि नेत्र उनके खुलेरहते हैं तौ भी चित्त उनका सर्वदा स्थिर होताहै इसीपर एकसन्त से किसी ने पूछाथा कि तुम तो अब बाज़ार के मार्ग से चले आवतेहो पर किसी को तुमने बाज़ार विषे देखा भी है तब उन्होंने कहा कि मैंने तो किसीको नहीं देखा और एकसन्त अचानक किसी स्त्रीपर हाथरख बैठेथे तब लोगोंने पूछा कि तुमने यह कर्म क्यों किया तब वह कहतेभये कि मैंने इसको भीत जानाथा ताते मेरा हाथ इसके ऊपर निश्शङ्क पड़ा इसीपर एक हरिभक्त ने कहाहै कि मैंने एकबार अमुकसन्त को नगर से बाहर बैठा देखा था तब मैंने उसके निकट जाके कुछ वार्त्ता पूछने की मंशा करी तो आगेही उसने कहा कि और वार्त्ता के कहने सुनने से श्रीराम

भजनही विशेष है बहुरि मैंने पूछा कि प्रथम मनुष्यों बिषे उत्तम कौन है तब उन्हों ने कहा कि जिसको श्रीरामजी आप विशेष करें सोई उत्तम पुरुष है बहुरि मैंने कहा कि तुम यहां अकेलेही रहते हो तब उन्होंने कहा कि श्रीराम सर्वदा मेरे संगी हैं बहुरि मैंने कहा कि सुख का मार्ग कौनहै तब आकाश की ओर दृष्टि करके उठखड़े हुए और कहने लगे कि हे महाराज! बहुतलोग अपनी ओर परचाइकर तुमसे विक्षेप डारते हैं इतना कहकर आगे को चलेगये और शिवलीसन्त ने भी अमुक सन्त को देखाथा कि उनके शरीर का एक रोम भी हलता न था और श्रीरामरूप अनूप के ध्यान विषे मग्न थे तब शिवलीजी ने पूछा कि तुमने ऐसा ध्यान किससे सीखाहै तब वह कहतेभये कि मैंने बिल्ली को चूहा के बिलपर इससेभी अधिक स्थिर देखाथा ताते मैंने यह ध्यान उससे सीखाहै और एक और सन्त ने कहा है कि मैंने अमुक नगर विषे एक युवा और एक वृद्ध दो पुरुष महाएकाग्रचित्त सुनेथे ताते मैं उनके दर्शन को गया और उनको देखकर तीनवार प्रणामकरी पर वह कुछ न बोले बहुरि मैंने भगवत् की दुहाई देकर कहा कि मेरेसाथ राम राम तो करो तब युवा पुरुष ने ऊँचाशीश करके कहा कि इस संसार विषे जीवना अल्प है और अल्प से भी अल्पशेष रहा है ताते इसी थोड़े समय विषे अधिक लाभ को प्राप्त करलेवो पर ऐसे जानाजाता है कि तुमको अपने कार्यकी खबर कुछ नहीं इसी कारण से हमारे साथ राम राम करके परचा चाहता है इतना कहकर बहुरि उसने अपने शीश को नीचा कर लिया तिस समय विषे मैं भी भूखा प्यासा था पर मुझको भूख प्यास भुलाय गई और मेरी सब सुरति उन्हीं विषे जायरही ताते मैं रात्रिपर्यन्त उनके पास खड़ा रहा बहुरि ऐसे कहा कि मुझको कुछ उपदेश करो तब युवा सन्त कहते भये कि हम दुखारे लोग हैं इस कारण से हमारी रसना उपदेश की अधिकारी नहीं इतना कहकर बहुरि मौन कररहे ऐसेही तीन दिन पर्यन्त मैंने देखा कि उन्हों ने निद्रा और आहार न किया तब मैंने भगवत् की दुहाई देकर कहा कि मुझ को कुछ उपदेश सुनावो बहुरि उसने कहा कि जिसके देखने करके तुझ को भगवत् चित्त में आवे तिसही की संगति कर इस करके कि जिसकी करतूतिही उपदेशकरे और जिसकी ताड़ना विनाही तुझको भय उत्पन्न होवे तिस ही की संगति करनी विशेष है सो यथार्थी पुरुषों की अवस्था यहीहै कि सर्वदा

उनके चित्त की वृत्ति श्रीरघुनन्दन के स्वरूप बिषे लीन रहतीहै १ बहुरि दूसरी अवस्था जिज्ञासुजनों के ध्यान की यह है कि भगवत् को अन्तर्यामी जानकर मलिन संकल्पों से सकुचे रहते हैं पर तिनके चित्त की वृत्ति महाराज के रूप बिषे लीन नहीं रहती इसी कारण से इन्द्रियादिक व्यवहार के संकल्प से सम्पूर्ण मुक्त नहीं होते सो इस का दृष्टान्त यह है कि जैसे कोई पुरुष अपने घर बिषे नग्न होकर कोई कार्य करता होवे और अचानकही कोई बालक आजावे तब वह पुरुष सचेत होकर वस्त्र को ओढ़ता है पर अत्यन्त विस्मयवान् नहीं होता बहुरि उत्तम पुरुषों के ध्यान का दृष्टान्त यहहै कि जैसे अकस्मात् किसीके घर में राजा आवे और आगे वह पुरुष नग्नही बैठाहोवे तब राजाको देखकर उसकी सुधि बुधि ही भूल जाती है और उसके तेज करके मूर्च्छित होरहता है तैसेही ज्ञानवान् पुरुष महाराजके ऐश्वर्य को देखकर विस्मय को प्राप्त हुये हैं और उन बिषे मन की चपलता कुछ नहीं रही पर जिज्ञासुजनके सबही संकल्प नष्ट नहीं हुये ताते उसकी वृत्ति कभी स्थिर होती है और कभी विक्षेप पावती है इसी कारण से चाहिये कि जिज्ञासु सर्वदा अपने मन की ओर ध्यान राखे और सर्व करतूतों से दो प्रकार की दृष्टि से देखता रहे सो एक दृष्टि यह है कि करतूति बिषे आगेही मनके संकल्प को विचार करके पहिंचाने कि यह मंशा मेरे चित्त बिषे किस निमित्त फुरीहै ताते जब वह मंशा सात्त्विकी और निष्काम होवे तब उसको सम्पूर्ण करे और जब मान अथवा भोगों की वासना का संकल्प उपजा होवे तब धैर्य कररहे और महाराज को निकट जानकर बुरे कर्मसे लज्जावान्होवे बहुरि अपने मनको धिक्कार करे कि यह संकल्प तैंने किस निमित्त किया और इसकरके तुझको क्या लाभ होवेगा? बहुरि सन्तजनों ने जो परलोक बिषे पाप कर्मों की ताड़ना कही है तिसको स्मरण बिषे लेआवे सो सर्व कर्मों के आदि मेंही ऐसीही दृष्टि रखनी सर्वदा प्रमाण है कि संकल्प के फुरने की ओर ध्यान करके प्रथमही उसको विचार लेवे इसी पर महापुरुष ने कहा है कि यह मनुष्य जेते कर्म करता है सो परलोक बिषे देवता सर्व करतूतों को भिन्न २ करके पूछते हैं और तीन प्रकार के वचन करके इस जीव को त्रास दिखावते हैं कि अमुक कर्म तैंने क्यों किया १ और किस प्रकार किया २ और कौन की मंशा साथ किया ३ सो प्रथम वचन का अर्थ यह है कि कर्म तो भलाही तुझको कर-

णीय था और तैंने अपने मन की वासना करके पाप क्यों किया १ बहुरि जब उसने वह कर्म वासना के निमित्त न किया होवे तब इस प्रकार पूछते हैं कि यद्यपि तैंने कर्म तो सात्त्विकी किया होवे पर तैंने उस करतूति को भय और विचार करके विधि संयुक्त सम्पूर्ण नहीं कियाहै अथवा मूर्खतासहित बिना युक्ति किया है इस करके कि सर्व कर्मों की युक्ति भिन्न २ होती है ताते तैंने कर्म का निर्वाह क्योंकर किया २ बहुरि जब उस पुरुषने वह करतूति विधिसंयुक्त किया होवे तब इस प्रकार पूछते हैं कि शुभ कर्म तो केवल निष्कामही करनाथा सो अब वह करतूति तैंने दम्भ के निमित्त किया है अथवा केवल निष्काम मंशा के साथ किया है इस से कि जब मंशा तेरी निष्काम थी तब इस काल में उस के उत्तम फल को पावेगा और जो किसी और कामना के हेतु कियाहै तो उस कर्म के फल से अप्राप्त रहेगा और तुझ को तो ऐसी आज्ञा हुई थी कि महाराज निष्काम कर्महीको प्रमाण करते हैं ३ सो जिसने इसभेदको भलीप्रकार समझा है वह एकक्षण भी मनकी ओरसे अचेत नहीं होता और पुरुषार्थ करके अशुभ संकल्प के बीजही को निर्मल करताहै बहुरि जो पुरुष ऐसे न करे तब शीघ्रही अशुभ संकल्प विषे स्थूल पदार्थों की अभिलाषा उपज आवती है और पीछे उसी विषय की मंशा दृढ़ होजातीहै बहुरि उसी मंशाका प्रवेश सर्व इन्द्रियोंपर आन फैलताहै इसीपर महापुरुषने भी कहाहै कि जब तुम्हारे हृदयविषे किसी पापकर्मका संकल्प फुरे तब प्रथमही भगवत्‌के भयके साथ उसको दूर करना विशेष है पर योंभी जान तू कि केते संकल्प मनकी वासना के अनुसार फुरते हैं और केते संकल्प शुद्धवृत्ति विषे उपजते हैं सो उनके पहिचानने की विद्या भी महाकठिन और दुर्लभ है ताते जिस मनुष्य विषे ऐसी बूझ और पुरुषार्थ की दृढ़ता न होवे तिसको वैरागी और विचारवान् पुरुषों की संगति विषे रहना भला है कि उसके प्रकाश करके इसका हृदयभी निर्मल होताहै और जो विद्यावान् मायाकी तृष्णा विषे आसक्तहोवे तिसकी संगति कदाचित् न करे क्योंकि उनका दर्शनही इसके धर्म को नष्ट करता है इसीपर दाऊदजी को आकाशवाणी हुईथी कि हे दाऊद ! जो विद्यावान् मायाकी प्रीति विषे आसक्तहोवे तिसके साथ वचनवार्त्ता भी न कर इस करके कि ऐसा पुरुष तेरे हृदय से मेरी प्रीति को नष्ट कर डारेगा क्योंकि ऐसे मनुष्य जीवों के धर्म का नाश करनेको बटपार हैं और महा-

पुरुष ने भी कहाहै कि जो पुरुष शुद्ध अशुद्ध वार्त्ताको प्रथमही तीक्ष्णदृष्टि करके देखता है और भोगों की प्रबलता के समय विषे जिसकी बुद्धि प्रमाद को नहीं पाती तिसको भगवत् अपना अधिक प्रियतम रखता है इस करके कि जिसने वर्त्तमान अवसर को शराफ़ की नाईं उज्ज्वल बुद्धिके नेत्रों करके पहिंचाना और फिर पुरुषार्थकी दृढ़ता करके जिसने मलिन स्वभाव की प्रबलताको गिरायदिया सो ऐसा मनुष्य परम भाग्यवान् कहाताहै पर बुद्धि और पुरुषार्थका ऐसा सम्बन्ध है कि जिस विषे पुरुषार्थ की दृढ़ता नहीं होती तिसकी बुद्धि भी प्रवृत्तिके अवसर विषे भली प्रकार यथार्थको नहीं लखावती इसपर महापुरुष ने भी कहाहै कि जिस मनुष्य ने पापकर्मको अङ्गीकारकिया तब जानिये कि उसकी बुद्धिही नष्ट हुई है और एक और महात्मा ने भी कहाहै कि प्रसिद्ध यथार्थ को अङ्गीकार करना प्रमाण है और प्रसिद्ध झूंठ को त्यागदेना विशेष है बहुरि जो वार्त्ता आप करके समझी न जावे सो किसी बुद्धिमान् से पूछकर उसका ग्रहण व त्याग किया जावे तो भला है और जिज्ञासु को दूसरी दृष्टि करतूति के समय विषे इस प्रकार रखनी प्रमाण है कि सबही कर्म तीन प्रकार के होते हैं राजसी १ तामसी २ सात्त्विकी ३ पर सात्त्विकी कर्मोंविषे ऐसा ध्यान राखिये कि उनको निष्कामता और हृदय की एकाग्रता के साथ सम्पूर्ण करिये १ बहुरि तामसी कर्मोंविषे ध्यान यह है कि भगवत् के त्रास करके पापकर्मों को त्यागदेवे और जो आगे कियाहोवे तिसका पुरश्चरण २ और राजसी कर्मोंविषे ध्यान करना ऐसे है कि शरीर के सर्व व्यवहार का निर्वाह संयम और युक्ति के साथ कीजिये और सर्व पदार्थों का दाता श्रीरामही को जानिये और अपने चित्तविषे यही विचार करके समझे कि सर्व अवसर विषे अन्तर्यामी महाराज के सम्मुख वर्तता है ऐसे जानकर बैठने और चलने और बोलने और सोवनेके समय भी अभय होकर न विचरे और चाहिये कि भोजन करने के समय भी विचार से रहित न होवे सो उस समय श्रीजानकीनाथ के उपकारका विचारना इस प्रकार योग्यहै कि महाराजने अपनी दया करके एक आहार विषे भी अमित कारीगरी रची हैं प्रथम तो अनाज का आकार और रङ्ग और सुगन्ध और स्वाद कैसा अनूप बनाया है बहुरि इस मनुष्य के शरीर विषे भिन्न २ अङ्ग किस प्रकार रचे हैं जिन करके आहार को अङ्गीकार करताहै जैसे हाथ, मुख, दांत, कण्ठ, हृदय, उदर, नाभि इत्यादिक जो

अङ्ग आहार को धारते हैं और पचावते हैं और मल को उतारते हैं सो यह सबही उस महाराज की आश्चर्य कारीगरी है ताते ऐसे आश्चर्यों का विचारना ही उत्तम भजन है पर यह अवस्था बुद्धिमानों की होती है और एक ऐसे भी उत्तम पुरुष होते हैं जो कारीगरी को देखकर कारीगर की ओर ध्यान रखते हैं बहुरि उसके स्वरूप की सुन्दरता और समर्थता बिषे चित्त को लीन करते हैं सो यह अवस्था सांचे ज्ञानवानोंकी प्रकटहै बहुरि एक जिज्ञासु नाना प्रकार के भोजनोंको ग्लानि की दृष्टि के साथ देखते हैं और इस प्रकार चाहते हैं कि जो हम किसी भांति ऐसे बन्धनों से मुक्त होवें तो भला है इस करके कि इसी शरीर के बन्धनों बिषे हमारा चित्त बन्धायमान होरहाहै सो यह अवस्था वैराग्यवानों की होती है बहुरि एक और मनुष्य आहारादिकों को अभिलाषा के नेत्रों के साथ देखते हैं और यही चाहते हैं कि अमुक भोजन अङ्गीकार करिये और अमुक विधि करके अमुक भोजन खाइये तब अधिक स्वादिक होताहै बहुरि जब रसोई किसी विधि से हीन होजाती है तब रसोई करनेहारे पर क्रोध करते हैं सो यह अचेत पुरुषों की अवस्था है पर शरीर के व्यवहारों विषे जीवोंको ऐसी भिन्न२ अवस्था होती हैं ताते चाहिये कि कोई समय विषे ऐसे ध्यान से अचेत न हूजिये अब इससे आगे अपने कर्मका हिसाब किया चाहिये कि जिससमय करतूति करचुके तब जिज्ञासुजन एकान्त ठौरविषे बैठकर अपने कर्मों का लेखाकरे और दिनके सर्व करतूतों को विचारकर लाभ और हानि और पूंजी को भली प्रकार पहिंचाने सो जेते सात्त्विकी कर्म सन्तजनों ने इस मनुष्य को करणीय कहे हैं वह तो इसी जीव की पूंजीहै और निष्कामपदका पावना परमलाभ है और पापकर्मों बिषे विचारनाही बड़ी हानिहै इसी कारण से जैसे व्यवहार के साभी के साथ लेखा करते हैं कि मत वह पुरुष कुछ धन चुरायलेवे तो बुरा है तैसेही जिज्ञासुजन भी अपने मन का सदैवही लेखा करता रहै इस करके कि यह मन भी महा-चतुर चोर है और छल करके अपने राजसी तामसी मनोरथ को सात्त्विकीरूप दिखावता है ताते तू इसको भलाई जानता है और पीछे उसका फल बुराई निकलती है इसी कारण से शरीर के खानपान आदिक कर्मों का लेखा करना अवश्यही प्रमाणहै सो लेखा इस प्रकार होता है कि हे मन! तैंने अमुक कर्म किस निमित्त कियाथा और क्योंकर किया था बहुरि जब ऐसे हिसाब बिषे देखिये कि

मेरेमन ने अमुक कर्म अन्यथा कियाथा तब उसको दण्ड देवे इसीपर एक हरिभक्त ने अपनी सर्वआयुष् का लेखा कियाथा कि मेरी आयुष् साठि वर्ष की व्यतीत हुई सो यद्यपि मैंने एक २ दिन विषे एक २ ही पाप किया होवेगा तौभी इकीस सहस्र २१००० पाप इकट्ठेहुये होवेंगे और मैंने तो एकही दिन विषे सहस्रों पाप किये हैं ताते मेरी क्योंकर मुक्ति होवेगी ऐसे कहकर गिरपड़े और शरीर को छोड़दिया पर यह मनुष्य इस निमित्त अचेत रहता है कि अपने कर्मोंका लेखा कभी नहीं कर देखता और जब हिसाब करके एक २ पाप का एक २ पत्थर हो गृह विषे डारतारहे तब थोड़ेही दिन विषे वह घर पत्थरों करके भरजावे बहुरि जो चित्रगुप्त भी पापों के लिखने की मजूरी मांगें तब तुरन्त इसका धन सबही लेजावें पर यह मनुष्य ऐसा दुर्बुद्धिहै कि जो आलस और अचेततासहित केतिकबार श्रीरामनाम लेताहै तो माला की मणियों के साथ गनती करता रहता है कि आज मैंने एते नाम लिये हैं और सारादिन व्यर्थवचनों में वाद विवाद बोलताहै सो इनकी गनती कभी नहीं करता पर जब अपने बोलनेका लेखा करके देखे तब सहस्रों वृथा वचन गनती में आवें और ऐसे कर्मकरके जो अपने मुक्त होनेका भरोसा रखता है सो यह उससे भी अधिक मूर्खता है इसी कारण से उमरसन्त ने कहा है कि परलोक विषे तो देवता तुम्हारे कर्मोंका हिसाब करेंगे ताते तुम आगेही अपनी करतूतोंको विचार करके देखो और भली प्रकार इनका लेखाकरो और यही सन्त आप भी अपने चरणों में चाबुक मारकर रात्रि के समय कहते थे कि हे मन ! आज तैंने अमुक बुरा कर्म क्यों किया इसीपर एक वार्त्ता है कि एकसन्त ने शरीरकी मृत्यु के अवसरविषे ऐसे कहाथा कि अमुक सन्त से अधिक मेरा कोई प्रियतम नहीं ऐसे कहकर बहुरि कहतेभये कि मैंने यह वचन भूल करके कहा है क्योंकि मुझको अपना मनही अधिक प्रियतम है तात्पर्य यह कि उन्हों ने ऐसे समय विषे अपने एक वचन का भी हिसाब करलिया बहुरि उसीवचन का पुरश्चरण किया और अपराध क्षमा कराया और एक सन्त ने कहा है कि उमरसन्त को मैंने एकबार एकान्त ठौर विषे स्थित देखा सो वह आपको इसप्रकार कहरहेथे कि हे मन ! तुझे सर्वसन्त मुखिया और श्रेष्ठ कहते हैं ताते मैं महाराज की दुहाई देकर कहताहूं कि तूभी अन्तर्यामी महाराज का भयकर अथवा दण्ड और त्रास का आशावन्त हो इसी

पर एक महात्मा ने कहाहै कि जब यह मन सात्त्विकीभाव में स्थित होताहै तब आपको ताड़ना करके समझावताहै कि तैंने अमुककर्म क्यों किया और अमुक आहार क्यों खाया ताते प्रसिद्धहुआ कि करतूति के पीछे जिज्ञासुजनको अपने कर्मका लेखा करना भी अवश्य प्रमाण है (अथ मनको दण्ड देने का वर्णन) ताते जान तू कि यद्यपि तैंने अपने आगे मनका हिसाब करलिया पर जब मन का अवगुण देखकर इसको दण्ड न देवे तब उलटा ढीठ होजावेगा और उपदेश करके वशीकार न करसकेगा इसीकारण से चाहिये कि यह मन जैसाही पाप करे तैसाही इसको दण्ड दीजिये जब कुछ अशुद्ध आहार अङ्गीकार किया होवे तब भूख और संयम की ताड़ना राखिये और जब कभी बुरी दृष्टि देखा होवे तब नेत्रों को मूंदकर ध्यान विषे स्थित हूजिये ऐसेही सर्व इन्द्रियों के पापों का पुरश्चरण करके मन को दण्ड दीजिये इस करके कि आगे भी जिज्ञासुजनों ने इसी प्रकार कियाहै जैसे एक प्रीतिमान् ने किसी स्त्री की ओर हाथ पसारा था ताते उसने अपने हाथ को अग्नि विषे डारकर जलादिया बहुरि एक भजनानन्दी सर्वदा एकान्त कोठरी विषे बैठे रहतेथे सो संयोग पाकर उसीमार्ग में कोई स्त्री आनिकली तब उस भजनी ने अपना पांव कोठरी से बाहरराखा और उसको देखने की मंशा करी बहुरि सचेत होकर महाराज का त्रास करते भये और उस पाप का पश्चात्ताप करके आपको बखशावने लगे बहुरि जो चरण कोठरी के द्वारसे बाहरगया था तिसको भीतर न लिया और कहनेलगे कि इस मेरे पांव ने पापकर्म की ओर गमन किया है ताते इसको कोठरी विषे लेआवना प्रमाण नहीं ऐसेही उनका चरण द्वारसे बाहर शीतकाल की बरफ करके गिर पड़ा इसीपर एक प्रीतिमान् ने कहा है कि एकरात्रि विषे मुझको कामका स्वप्न आया था बहुरि जब जागा तब मैंने स्नान की मंशा करी पर शीतकाल की अधिकता देखकर मेरे मन ने आलस किया कि दिनहुये तप्तजल विषे स्नान करियेगा तिससमय मैंने गुदड़ी सहित स्नान किया और अपनेही ऊपर उस गुदड़ी को सुखाया और मैंने यही विचारकिया कि जो मन ऐसा भगवत् धर्म से विमुख होवे तिसको ऐसीही सजाय देनी योग्यहै ऐसेही एक और प्रीतिमान् ने भी किसी स्त्री की ओर कुदृष्टि करी थी बहुरि सचेत होकर पश्चात्ताप करनेलगे और भगवत् की दुहाई देकर यही दृढ़ता राखी कि अब इससे आगे शीतलजल

न पियूंगा और इसी ताड़ना विषे मन को दुःखित करूंगा ताते वह दशवर्ष पर्यन्त जीवतेरहे पर शीतलजल कभी पान न किया बहुरि एक और जिज्ञासु नें सुन्दर मन्दिर को देखकर ऐसे पूछाथा कि यह घर किसने बनाया है फिर आपको समझावने लगे कि इस घरके साथ तो तेरा प्रयोजनही कुछ नहीं ताते तू काहेको पूछता है इसी कारण से उन्हों ने मन की ताड़ना के निमित्त एकवर्ष पर्यन्त व्रत राखा और एक सन्त अपने खजूर के बाग़ विषे बैठे भजन करते थे सो वृक्षों की सुन्दरता को देखकर विक्षिप्तचित्त होता भया और वचनों का पाठ उनको भूलगया बहुरि जब सचेतहुये तब वह बाग़ सबही दान करदिया और एकबार एक सन्त किसी पुरुष के मिलने के निमित्त गये थे सो जब उसके घर में जा पहुँचे तब उसके पुत्र ने कहा कि वह तो सोते हैं यह वचन सुनकर उन्हों ने कहा कि दिनके तीसरे पहर में सोवने का समय कौन है ? इतना कहकर चल दिये और उस पुरुष का पुत्र इनके पीछे लगचला तब मार्ग विषे उनको ऐसे कहते जाते देखा कि हे मन ! तू मर्याद से हीन है इस करके कि तू बिराने सो- वनें का समय काहेको विचारताहै और इस वार्त्ता विषे तेरा प्रयोजन क्या है ? ताते मैं तुझको दण्ड देनेके निमित्त एक वर्षपर्यन्त तकिया शीशतले न राखूंगा ऐसे कहते और रुदन करते चलेजाते थे बहुरि ऐसे कहते थे कि हे मन ! तू भगवत् से क्यों नहीं डरता ऐसेही एक और भजनवान् भी अकस्मात् अधिक सोरहा था ताते रात्रि के भजन का नेम उससे खण्डित हुआ इसी कारण से उसने अपने साथ यह वचन किया कि मैं एक वर्षपर्यन्त रात्रि विषे नींद न करूंगा बहुरि एक प्रीतिमान् भी नग्न होकर तप्तकांकड़ों पर पड़े लोटते थे और इस प्रकार कहते थे कि हे मेरे मन ! तू दिन विषे झूंठ बोलनेहारा और रात्रि में मृतक समान सो रहता है ताते मैं अनाथ तेरी बन्धन से कब छूटूंगा तब अचानकही महापुरुष तहां आ निकले और उससे कहते भये कि तैंने ऐसा कष्ट काहेको धाराहै तब उस प्रीतिमान् ने कहा कि मेरा मन अत्यन्त प्रबल है और मुझको कभी नहीं छोड़ता यह वचन सुनकर महापुरुष ने कहा कि निस्संदेह तू परमसुख का अधिकारी है और अपने सङ्गियों से कहनेलगे कि तुमभी इससे कुछ अशीसमांगो तब महा- पुरुष के सब प्रियतम उससे अशीसें मांगतेभये और वह प्रीतिमान् भगवत् के आगे उनके निमित्त प्रार्थना करनेलगे कि हे महाराज ! तू इन सबको वैराग्य

दें और यथार्थ के मार्ग से इनको दूर न कर जाते परमसुख को प्राप्त होवें बहुरि एक और जिज्ञासु की दृष्टि भी ऊंचे मन्दिर पर जा पड़ीथी तहां स्त्री के रूप को देखा तब वह भयवान् होकर यह दृढ़ता करतेभये कि मैं जन्मपर्यन्त आकाश की ओर कभी न देखूंगा और एक और हरिभक्त भी नित्यप्रति रात्रि के समय दीपक जगावते थे और उसकी शिखा पर अपनी अँगुरी रखकर ऐसे कहते थे कि तैंने अमुक दिन बिषे अमुक कर्म क्यों किया था और अमुक आहार क्यों खाया? तात्पर्य यह कि जिनको अपने मन पर दोषदृष्टि उपजी है तिन्हों ने इस प्रकार मन को ताड़ना बिषे राखा है और उन्हों ने मन को ऐसा कुटिल जाना है कि जब इसको कठिन सज़ा न दीजिये तब हमारे धर्म को नाशकरेगा (अथ यत्न निरूपण) ताते जान तू कि जिन पुरुषों ने भजनबिषे मन को आलस करता देखा है तब उन्हों ने मन के ऊपर भजन के नेम की अधिकताही का यत्न राखा है जैसे उमर के पुत्र से जब भजन का नेम एकभी खण्डित होताथा तब उस रात्रि बिषे दिनपर्यन्त सोवता न था और भजनही करता रहताथा बहुरि एकबार उमरजी का भी एक नेम खण्डितहुआ तब केते सहस्र रुपया दानकिया सो ऐसेही जिज्ञासुजनों की साक्षी बहुत हैं और तात्पर्य यह कि जब इस मनुष्य का मन रुचिसहित श्रीरामनाम स्मरण बिषे सावधान न होवे तब चाहिये कि किसी दृढ़ भजनवान् की संगति बिषे रहे ताते उसको देखकर इसके हृदय बिषे भी प्रीति उत्पन्न होवे इसीपर एक हरिभक्त ने कहाहै कि जब मेरा मन भजन बिषे कुछ आलस करताहै तब मैं अमुक भजनवान् की ओर देखताहूं सो उनकी अवस्था के देखने करके सात दिन पर्यन्त मेरी श्रद्धा नूतन होरहती है पर जब ऐसे पुरुषों की संगति को पाय न सके तब चाहिये कि उनके वचन और अवस्था को श्रवणकरे अथवा नित्यप्रति पाठकरता रहे तो भला है इसीकारणसे मैंभी कुछ साक्षी कथा भजनानन्द पुरुषों की वर्णन करता हूं जैसे दाऊदसन्त अनाज की रोटी नहीं सेंकते थे और आटा भिगोकर पान करलेते थे सो इस प्रकार कहते थे कि जेता बिलम्ब रसोई करने में लगताहै सो मैं तितनी देर में केते वचनों का पाठकरलेता हूं ताते ऐसा समय व्यर्थ क्यों खोऊं बहुरि एक पुरुष ने उनसे कहा कि जिस मन्दिर में तुम बैठेहो तिसकी लकड़ी टूट गई है तब उन्हों ने कहा कि मैं बीसवर्ष से यहांही रहताहूं पर मैंने इसकी ओर कभी नहीं देखा इस करके कि

प्रयोजन विना देखना भी निन्द्य है बहुरि एक और श्रीरामानुरागी भी किसी स्थान विषे बैठेथे और उन्हों ने तीन पहर पर्यन्त किसी ओर दृष्टि न करी तब लोगों ने पूछा कि तुम नेत्र खोलकर नहीं देखते तब वह कहते भये कि श्री रामजू ने नेत्रों को इस निमित्त उत्पन्नकिया है कि आश्चर्य कारीगरी को देख-कर कारीगर का विचारकरें और उसकी समर्थता पहिंचानकर विस्मित होवें बहुरि जो पुरुष विस्मय और विचार के साथ दृष्टि न करे तिसका देखनाही पाप होता है और एकसन्त ने कहा है कि मैं अपना जीवना तीन पदार्थों करके प्रिय-तम रखता हूं सो एकतो शीतकाल की दीर्घ रात्रियों में महाराज के आगे दण्ड-वत् करना १ और दूसरा ग्रीष्मऋतु के दिनों विषे व्रत करके भूख औ प्यास सहनी २ बहुरि तीसरा पदार्थ यह है कि जिन पुरुषों के वचन रसीले यथार्थ वस्तु को लखावनेहारे हैं सो तिनकी संगति करनी ३ बहुरि एक और यत्नवान् जिज्ञासु को लोगों ने कहा था कि तुम मनके ऊपर ऐसा कठिन कष्ट क्यों रखते हो तब वह कहतेभये कि अपने मन के साथ मेरी अधिक प्रीति है ताते इसको ऐसे यत्नों करके नरकों की आंच से बचाया चाहता हूं बहुरि लोगों ने कहा कि तुम अपने बल करके मनको नरकों से बचाय सकोगे तब वह कहनेलगे कि मैं यथाशक्ति यत्न सर्वदा करता रहता हूं इस करके कि परलोक विषे मुझको यह पश्चात्ताप न होवे कि मैंने होते बल भला कर्म क्यों न करलिया ? इसी पर जुनेदसन्त ने कहा है कि मैंने सिड़ीसमान यत्न करनेहारा कोई नहीं देखा उनकी नव्वेवर्ष की आयुर्दाय हुई थी पर शरीर के मृतक हुये विना उन्होंने धरतीपर लम्बाआसन न किया ताते मैं उनकी अवस्था को देखकर महाविस्मितहूं बहुरि हरीरीसन्त एक वर्षपर्यन्त बोले न थे और चरण पसारकर सोये भी नहीं औ तकिया लगाकर बैठे भी नहीं तब एकसन्त ने उनको कहा कि तुमने ऐसे यत्न का निर्वाह क्योंकर किया ? तब वह कहते भये कि श्रीरामजू ने मेरेहृदय की श्रद्धा देखके शरीर को भी पुरुषार्थ दिया है बहुरि किसी ने एक रामभक्त को रुधिर के आंसू रोवते देखा था ताते उनसे पूछा कि तुम ऐसा रुदन क्यों करते हो तब उन्होंने कहा कि मैं आगे केती आयुर्दाय अपने पापों पर रुदन करता रहाहूं पर अब इस निमित्त रुधिर के आंसू रोवता हूं कि जो आंसू सकाम निकले होवेंगे सो वह मेरा रोवनाही निष्फलहुआ होवेगा और दाऊदजी से भी लोगों

ने कहा था कि जो दाढ़ी और केश अपने में कंघी करो तब क्या पाप होवे ? तब उन्हों ने कहा कि जो मुझको धर्म का कर्म कुछ न होवे तो इसी क्रिया में परचारहूं पर मैं ऐसा विकार तो कदाचित् न करूंगा बहुरि आवेश-करनी सन्त ने ऐसा नियम किया था कि एकरात्रि में तो दिनपर्यन्त श्रीजानकीजीवन को दण्डवत् करते रहते थे और एकरात्रि में ठाढ़े होकर स्मरण करते थे और एकरात्रि में श्रीरामनाम लिखते रहते थे ऐसे ही सर्व आयुष् को व्यतीत करते भये बहुरि एक सन्त का शरीर यत्न की अधिकता करके क्षीण होगया था ताते माता ने उनसे कहा कि तू कुछ दया तो अपने ऊपर भी कियाकर तब वह कहनेलगे कि मुझको श्रीरामजीकी दया चाहिये है इस कारण से कुछ यत्न करता हूं कि किसी प्रकार अविनाशी सुखको प्राप्त होऊं और एक सन्त ने कहा है कि मैं आवेशकरनी के दर्शन को गया था और वह भजन विषे स्थित थे ताते मैं उनको भय करके बुलवाय न सका ऐसेही तीनदिन बीतगये कि उन्होंने निद्रा और आहार कुछ न किया बहुरि चौथे दिन उनके नेत्रों विषे कुछ ऊंघआई तब सचेत होकर कहनेलगे कि हे महाराज ! मैं इस उदर संयमहीन और नेत्र अधिक निद्रा ग्रसित से तेरी रक्षा चाहताहूं यह वचन सुनकर मैंने ऐसा विचार किया कि मुझको तो इनका इतनाही उपदेश बहुत है बहुरि एक और सन्त ने चालीस वर्ष पर्यन्त् लम्बाआसन न किया था इसी कारण से उनके नेत्रों से कालाजल चलनेलगा था पर यह अवस्था बीस वर्षपर्यन्त अपने सम्बन्धियों को भी लखावते न भये और भजन का नियम कभी खण्डित न किया बहुरि एकसन्त ने कहा है कि मैं एकबार रात्रि के समय राबियाजी के पास गया था और वह अपने भजन विषे मग्न थीं ताते मैं भी भजन करनेलगा ऐसेही सारी रैन बीत गई बहुरि जब दिनहुआ तब कहनेलगीं कि जिस महाराज ने हम को ऐसा पुरुषार्थ दियाहै सो तिसके उपकार का धन्यवाद कैसे करिये ? बहुरि ऐसे कहत भई कि इस उपकार के धन्यवाद निमित्त व्रत रखना प्रमाण है तात्पर्य यह कि यत्न-वान् पुरुषों की ऐसीही अवस्था दृढ़ हुई है ताते चाहिये कि जब यह मनुष्य अपने विषे ऐसा पुरुषार्थ न देखे तब उनके वचनों को सुने और अपनी नीचता को पहिंचाने तब इसके हृदय विषे भी भलाई की श्रद्धा उपजे और मनके ऊपर यत्न राखने को समर्थ होवे (अथ मनके झिड़क देने के वर्णन में) ताते

जान तू कि इस मन की आदिउत्पत्ति विषे महाराज ने यही स्वभाव रचा है जो अपनी भलाई से दूर भागता है और बुराई को प्रीतिसंयुक्त अङ्गीकार करता है अर्थ यह कि भगवत् के भजन से आलसी होताहै और भोगों को भोगा चाहता है और तुझको इसप्रकार आज्ञा हुई है कि मनको इस स्वभाव से उलटकर सीधा करो और कुमार्ग से वरजकर सुमार्ग की ओर लगावो सो यह कार्य तवहीं सिद्ध होता है जब मन के साथ कठोरता करिये और कुछ प्यार भी रखिये पर मन को समझावना इस निमित्त प्रमाण कहा है कि इस मन को महाराज ने समझने का अधिकारी बनायाहै ताते यद्यपि यह मन अत्यन्त कुटिल है पर जब किसी कार्य विषे निस्संदेह अपनी भलाई देखता है तब उस विषे प्रीतिसंयुक्त सावधान भी होताहै और यद्यपि यह कार्य अत्यन्त कठिन होवे तौ भी उस के खेद को सहकर सम्पूर्ण किया चाहता है पर यह मूर्खता और अचेतताही इस मन को बड़ा पटल हुआ है ताते जब तू मन को अचेतता की नींद से भली प्रकार सचेत करे और सन्तजनों के वचनरूपी दर्पण इसको दिखावे तब अपनी भलाई को अङ्गीकार कर लेवे इसी पर महाराज ने कहा है कि निस्संदेह जिज्ञासु जनों को मेरे वचनों का विचारना लाभदायक होताहै ताते तुझको चाहिये कि मन को भली प्रकार समझावे और कभी इसके शीश पर से ताड़ना दूर न करे और इसको ऐसे कहे कि हे मन ! तू आपको तो महाचतुर जानता है और जब कोई तुझे मूर्ख कहता है तब उसपर क्रोधवान् होताहै पर तेरे समान और मूर्ख कौन है ? इस करके कि ऐसे समय विषे तू हँसी और खेल विषे परचा हुआहै जैसे किसी पुरुष को पकड़ने के निमित्त बड़ा लश्कर आइ उतरा होवे और उनके दूत उसको बांधने लगें बहुरि मूर्खता और अचेतता करके ऐसे दुःख को न जाने और हँसी खेल विषे मग्न होरहे सो तिसके समान बुद्धिहीन कौन होताहै तैसे ही जेते मनुष्य मृतक हुयेहैं सो तेरे पकड़नेहारा लश्कर है और श्मशान भूमि विषे तुझको लेआया चाहते हैं बहुरि नरक और स्वर्ग भी तेरेही निमित्त रचा है और योंभी नहीं जानसकता कि मत आजही तेरी मृत्यु का दिनहोवे तो इस विषे क्या आश्चर्य है ? इस करके कि जिस कार्य को अवश्यही होवना होवे तिसको अबहीं हुआ जानिये और कालने किसी के साथ ऐसा वचन नहीं किया कि मैं अमुक दिन अथवा अमुक ऋतु विषे तेरा आहार करूंगा क्योंकि अचानक

ही सबको आन पकड़ता है और इस मनुष्य को इसकी कुछ चितवनीही नहीं होती ताते जब तू ऐसे भयानक काल के आवने से आगेही सचेत न होवे तब इससे बड़ी मूढ़ता क्या है? और हे मन! तू जो सर्वदा पापकर्मों विषे आसक्त रहता है सो जब तू भगवत् को अन्तर्यामी नहीं जानता तब तो निस्संदेह विमुख है और जब उसको अन्तर्यामी जानकर बहुरि पाप किया चाहता है तब महाढीठ और निर्लज्ज है क्योंकि महाराज के देखने करके तुझको त्रास नहीं आवता और हे मन! जब तेरा टहलुवा तेरी आज्ञा से विपर्यय कर्म करता है तब तू उस के ऊपर कैसे क्रोधवान् होताहै तैसेही तूभी भगवत् के कोप से त्रास क्यों नहीं करता? सो जब तू ऐसे जाने कि मैं परलोक के दण्ड को सहसकूंगा ताते अबहीं एक अँगुरी को अग्निपर रख देख अथवा एक मुहूर्त्त ग्रीष्मऋतु की धूप विषे स्थित हो तब अपनी निर्बलता और अधीरता को भली प्रकार जाने अथवा तू यह अनुमान करता होगा कि मुझको पापकर्मों करके सज़ा न होवेगी तब सन्तजनों के वचनों से विमुख हैं और महाराज ने पुण्य पाप लखाने के निमित्त सन्तजनोंको इस संसार विषे भेजाहै और यह आज्ञा कीन्ही है कि बुरा करनेहारे मनुष्य बुरेफल को भोगेंगे सो तू इन सर्व वार्त्ताओं को झूठ जानकर निडर होताहोगा तो यह भी तेरीही जड़ता है और मूर्खता है बहुरि जब तू ऐसे जाने कि श्रीरामजी दयालु कृपालु हैं इस कारण से मुझको सज़ा न देवेंगे तब यह भी विचारकरके देख कि असंख्यजीवों को नाना प्रकार के भोग और दुःख क्यों भोगावते हैं? और जो पुरुष खेती नहीं बोतासो अनाज क्यों नहीं काटता? बहुरि तू इन्द्रियादिक सुखों के निमित्त यत्न क्यों करता है? और माया की प्राप्ति के निमित्त उद्यम क्यों उठावता है? बहुरि जब तू ऐसे कहे कि तुम्हारा वचन तो यथार्थ है पर मैं वैराग्यादिक साधनों के दुःखों को नहीं खींचसकता तब तू इस वार्त्ता को नहीं समझता कि जो पुरुष बड़े कष्ट को नहीं सहसकता तिसको चाहिये कि थोड़ाही दुःख खींचकर दीर्घ दुःख से अपनी रक्षाकरे तैसेही जिन्हों ने जपतपरूपी दुःख को अङ्गीकार किया है ते नरकों के बड़ेकष्ट से छूटते हैं और जिन्हों ने इस दुःख का सहारना नहीं किया ते मनुष्य चिरकालपर्यन्त नरकों की अग्नि विषे जलेंगे ताते जब तू अब इस अल्पदुःख को नहीं सहसकता तब परलोक विषे अधिक दुःखों को कैसे सहेगा बहुरि जब तू दुःखों से डरता है तब

मायाकी प्राप्ति के निमित्त बहुत यत्न और बड़े खेद क्यों खैंचता है और शरीर की आरोग्यता के निमित्त लोभी वैद्यों की आज्ञा मानकर सब स्वाद काहेको त्यागदेता है हे मूर्ख ! तू इस वार्ता को नहीं जानता कि इस शरीर के रोग से नरकों का दुःख अतिदीर्घ है और इस शरीर के कछुक जीवने से परलोक विषे चिरकाल पर्यन्त रहनाहै बहुरि जब ऐसे कहे कि मैं अपने चित्त विषे पापों के त्यागने की मंशा रखता हूं पर अमुक कार्य संपूर्ण करके धर्ममार्ग विषे चलूंगा तब तुझको येती समझ भी नहीं आवती कि जब अचानकही तुझको काल मारलेवै और पापों के त्यागने से अप्राप्त रहजावे तब क्या पुरश्चरण करेगा ? ताते जाना जाताहै कि पश्चात्ताप विषे पड़ा जलेगा और जब तू ऐसे जाने कि अब तो पापों का त्यागना कठिन है और काल्हि कुछ सुगम होजावेगा तब यहभी बड़ी मूर्खता है क्योंकि तू जेती ढील करता है तेताही पापों और भोगों को त्यागना कठिन होताजाता है पर जब तू ऐसे चाहे कि मैं अन्तकाल के विषे भजन करलूंगा सो इसका दृष्टान्त यह है जैसे कोई पुरुष पहाड़ की घाटीपर चढ़ने के समय अनाज अथवा घीव देवे तब घोड़ा उस घाटी पर चढ़ नहीं सक्ता और बलवान् भी नहीं होता अथवा जैसे कोई पुरुष परदेश विषे विद्या पढ़ने के निमित्त जावे और वहांपर जाकर अलसाइ रहे इस करके कि मैं जब अपने नगर को चलने लगूंगा तब जाती बार विद्या भी पढ़लूंगा बहुरि जब इतना न जाने कि एक दो दिन विषे तो विद्याका पढ़ना होही नहीं सक्ता और कितने काल करके उसका पढ़ना संपूर्ण होताहै ताते ऐसा अजान और आलसी पुरुष विद्याहीन ही रहताहै तैसेही यह मनभी अनेक विकारों करके भरपूर है सो जबलग इसको यत्न की यन्त्री विषे डालकर चिरकाल पर्यन्त शुद्ध न करिये तबलग भगवत् की प्रीति और उसके दर्शन के देखने का अधिकारी नहीं होसक्ता ताते जब ऐसाही बड़ा यत्न करके सर्व घाटियों को उतर जावे तब परमपद को जाइ पहुँचे पर जब यह आयुर्बल वृथाही बीतगई तब अन्तकाल विषे भजन में क्योंकर स्थित होवेगा ? इसीपर बुद्धिमानों ने कहा है कि यौवन को वृद्धता के आगे और सम्पदा को आपदा के आगे और अरोगता को रोग के आगे बहुरि सावकाशी को विक्षेपता के आगे और मरने से आगे जीवने को बड़ा पदार्थ जानिये पर हे मन ! तू ग्रीष्मऋतु विषे अपने देह के निमित्त शीतकाल की ऋतु के कार्यों के उद्यम उठावता है और

श्रीरामजू को दयालु जानकर ऐसे मनोरथ को नहीं त्यागता बहुरि आलस करके त्याग और भजन का कार्य महाराज की दया पर रखता है सो इस आलस्य का कारण यह है कि परलोक के दुःख सुख विषे तुझको प्रतीतिही नहीं पर इस विमुखता को तू हृदय विषे गुह्यही रखता है सो इस करके तू सदैव काल के दुःखों को प्राप्त होवेगा बहुरि जब तू यथार्थ बूझ विना मुक्तहुआ चाहे तब इसका दृष्टान्त यह है जैसे कोई पुरुष वस्त्र विना शीतकाल की शरदी से आप को बचाया चाहे तो असंभव है क्योंकि श्रीरामजी की दया का अर्थ यह है कि महाराज ने जैसे शरदऋतु की शरदी रची है तैसेही शरदी के दूरकरने को वस्त्र बनाये हैं पर जब तू महाराज की दया के अर्थ को न समझे तब तेरीही मूढ़ता प्रकट है बहुरि तू ऐसेभी न जान कि तेरे पापों करके श्रीराम क्रोधवान् होते हैं और तुझको इसी कारण से सजा देते हैं सो ऐसे नहीं क्योंकि तेरे पापों करके नरकों की अग्नि का बीज यहांही बढ़ताजाता है जैसे कुपथ्य करके शरीर विषे रोग उपज आवताहै सो जिस प्रकार शरीर का रोग वैद्य की अप्रसन्नता कर नहीं उपजता तैसेही परलोक का दण्डभी महाराज के कोप करके नहीं होता पर तेरा चित्त जो स्थूल पदार्थों की अभिलाषा विषे बन्धायमान हुआहै सो यही सर्व दुःखों का बीज है बहुरि जब नरक स्वर्गपर प्रतीति कुछ नहीं तौभी इतना तो जानता है कि अवश्यही मरना है और मृत्यु के समय सर्व भोग तुझसे दूर होजावेंगे ताते तू उनके वियोग करके जलता रहेगा सो तू जेताही स्थूल पदार्थों विषे अधिक प्रीति दृढ़ करेगा तेताही अधिक दुःख को प्राप्त होवेगा ऐसे जानकर सचेत हो और संसार के सुखोंको भली प्रकार देख कि जो उदय अस्त पर्यन्त तेरी आज्ञा बर्ते और सबलोग तुझको दण्डवत् करें तौभी थोड़े दिनों पीछे तू और तेरे पूजनेहारे स्वप्न होजावेंगे और कोई तुझको स्मरण विषे भी न लावेगा जैसे पूर्बले चक्रवर्त्ती राजाओं को कोई जानताही नहीं ताते इस संसार का सुख यद्यपि तुझको कुछ प्राप्तभी होता है तौभी महामलिन और दुःखों के साथ मिलाहुआ है और तू मूढ़ता करके इस के ऊपर अविनाशी सुखको बेचता है जैसे कोई उत्तम रत्न देकर माटी का टूटा बासन लेवे सो महामूढ़ कहावता है तैसेही इस संसार का सुख माटी के बासन की नाईं है और शीघ्रही इसको टूटा जानिये बहुरि जब इसकी प्रीति करके अविनाशी रत्न को खोवेगा तब दीर्घ पश्चात्ताप को देखेगा तात्पर्य यह कि

जिज्ञासु जन सर्वदा ऐसेही मन को झिड़की देतारहे तब पुरुषार्थ करके मन को सीधे मार्ग विषे चलावे और कुमार्ग से वरज राखे ॥

सातवां सर्ग ॥

विचार के निरूपण का वर्णन ॥

ताते ऐसे जान तू कि महापुरुष ने ऐसे कहाहै कि एक वर्ष के भजन से एक घड़ी का विचार उत्तम है और महाराज ने भी अपने वचनों विषे विचारही को विशेष कहाहै सो यद्यपि सब कोई विचार की विशेषता को सुनता और मानता है पर तौभी विचार का अर्थ विरलाही कोई समझता है और इस वार्त्ता को भी कोई नहीं जानता कि विचारने योग्य वस्तु क्या है और विचारने का प्रयोजन क्या है और विचार का फल क्या है ? इसीकारण से ऐसे भेदों का खोलना अत्यन्त प्रमाण हुआ ताते मैं प्रथम विचार की स्तुति करूंगा बहुरि विचार का स्वरूप वर्णन करूंगा तिससे पीछे विचार का प्रयोजन और जिस वस्तु बिषे विचार करना योग्य है तिसको प्रसिद्ध करके कहूंगा (अथ स्तुति विचार की) ताते जान तू कि एकरात्रि विषे महापुरुष भजन करतेहुये रोवनेलगे तब आ ईसाने कहा कि तुम्हारे पाप तो महाराज ने क्षमा किये हैं फिर तुम किस निमित्त रोवते हो तब महापुरुष कहतेभये कि मुझको इस प्रकार महाराज की आज्ञा हुई है कि जेते आकाश और पृथ्वी की उत्पत्ति विषे मैंने आश्चर्य रचे हैं और जिस प्रकार रात्रि दिन की भिन्नता बनाई है सो इनको भलीभांति विचार करके देखो ताते मैं महाराज की कारीगरी को विचार करके विस्मित हुआहूं और रुदन करता हूं इस करके कि जो पुरुष ऐसे वचनों का नित्यप्रति पाठ करे और विचार करके न देखे सो मन्दबुद्धि कहावता है बहुरि ईसा महापुरुष को लोगों ने कहाथा कि तुम्हारे समान और कोई मनुष्य उपजा है तब उन्हों ने कहा कि जिसका बोलना सबही भजन होवे और मौन जिसका विचार संयुक्त होवे और दृष्टि जिसकी भय संयुक्त होवे सो मुझसे भी विशेष है बहुरि महापुरुष ने भी कहा है कि अपने नेत्रों को भी भजन से अप्राप्त न राखो तब प्रीतिमानों ने पूछा कि नेत्रों को किस प्रकार भजन विषे लगाइये बहुरि महापुरुष ने कहा कि भगवत् वाक्य पोथी को पढ़ना और चित्त विषे उसको विचारना बहुरि महाराज की कारीगरी को देखकर विस्मयवान् होनाही नेत्रों का भजन है ताते इसीपर दाराई सन्त ने

कहा है कि इस संसार बिषे विचारसहित बिचरने करके परलोक के दुःखों से मुक्ति होती है और परलोक के विचार करके अनुभवरूपी फल प्राप्त होता है और हृदय सुरजीत होताहै बहुरि एकसन्त एकरात्रि बिषे अपने मन्दिर बिषे स्थित थे और आकाश से नक्षत्रों का आश्चर्य देखकर विचार करते थे और रोवतेथे ऐसे ही मूर्च्छित होकर पड़ोसी के घर में गिरपड़े तब पड़ोसी ने चोर जानकर तलवार पकड़लीनी बहुरि जब उसने उनको पहिंचाना तब पूछनेलगा कि तुमको यहां किसने गिराइ दिया तब उन्हों ने कहा कि मुझको गिरने की खबर कुछ नहीं पर मैं तारामण्डल का आश्चर्य देखकर विस्मित होरहाहूं (अथ प्रकट करना स्वरूप विचार का) ताते जान तू कि बूझ का खोजनाही विचार का अर्थ है इस करके कि जो वस्तु लखी न जावे तिसका पहिंचानना उसके खोजने करके ही होता है सो बूझका खोजना इस भांति करके है कि प्रथम दो प्रकार की समझ को परस्पर इकट्ठा करिये तब उनसे तीसरी बूझ तुरन्त उपज आवती है जैसे स्त्री और पुरुष के मिलाप करके पुत्र का उपजना होताहै तैसेही प्रथम जो दो प्रकार की समझ कही है सो मूलकी नाईं होती है और तीसरी बूझ उसका फल उत्पन्न होताहै बहुरि जब तीसरी बूझ के साथ और बूझ मिलती है तब उनके संयोग करके चौथी बूझ प्रकट होती है इसी प्रकार बूझकी मिलौनी करके विद्या की वृद्धि होती है पर इसी रीतिसे जो बूझको प्राप्त नहीं करसक्ता सो तिसका कारण यह है कि वह पुरुष प्रथम दो प्रकार की बूझ को नहीं जानता सो इसका दृष्टान्त यह है कि जैसे किसी पुरुष के पास पूंजी ही न होवे तब व्यवहार क्योंकर करे बहुरि जो पुरुष प्रथम दो प्रकार की बूझ को जानता भी होवे पर आपुस बिषे उनको मिलाइ न जाने सो तिसका दृष्टान्त यहहै जैसे कोई मनुष्य पूंजी रखता होवे और व्यवहार की विद्या को न जाने तौभी लाभ से अप्राप्त रहता है तैसेही जो पुरुष दोनों बूझों को आपुस बिषे मिलाइ न जाने तब तीसरी बूझ जो उनका फल है सो तिसको पाइ नहीं सक्ता पर इसका बखान करना भी अधिक विस्तार होताहै तैसे मैं संक्षेप करके एक दृष्टान्त वर्णन करताहूं जैसे कोई पुरुष इस संसार के सुखों से परलोक के सुखकी विशेषता को समझाचाहे तब प्रथम इस वार्त्ता को पहिंचाने कि नाशवन्त वस्तु भली है अथवा अविनाशी वस्तु भली है बहुरि योंभी पहिंचाने कि इस संसार का सुख अविनाशी है अथवा परलोक का सुख अविनाशी है ताते

जिसने इन दो मूलों को भलीप्रकार समझाहै तब स्वाभाविकही तीसरी बूझ उपज आवती है कि इस संसार के सुखसे परलोक का सुख विशेषहै अथवा जैसे कोई इस भेद को समझाचाहै कि यह जगत अनादि है अथवा उत्पन्न किया हुआ है तब प्रथम तो यह विचार करे कि यह जगत परिणामी है अथवा एकरस है बहुरि ऐसे जाने कि परिणामी वस्तु अनादि नहीं होती ताते सुगमही तीसरी बूझ यही प्रकट होती है कि यह जगत उत्पन्न किया हुआ है और अनादि नहीं तात्पर्य यह कि बूझ का खोजना दो प्रकार की समझ का प्रथम इकट्ठा करना है सो इस मार्ग बिना विचार की वृद्धि नहीं होती बहुरि यों भी जानना चाहिये कि जैसे घोड़ा और घोड़ी के संयोग से घोड़ा ही होता है और स्त्री पुरुष के मिलाप से मनुष्य उत्पन्न होता है तैसे ही जब प्रथम दो प्रकार की व्यवहारिक बूझ बटोरिये तब तीसरी भी व्यवहार की समझ उपजती है और परमार्थ की बूझ को इकट्ठा करिये तब उसके संयोग विषे परमार्थ का ज्ञान उत्पन्न होताहै (अथ प्रकटकरना प्रयोजन विचार का) ताते जान तू कि इस मनुष्य की उत्पत्ति अज्ञानरूपी अंधेरे में हुई है इसी कारण से अवश्यही इसको प्रकाश की अपेक्षा होती है इस करके कि जब विचाररूपी प्रकाश के साथ मूर्खतारूपी अंधेरे से बाहर निकले तब अपने आत्मधर्म के कार्यों में सावधान होवे और इस भेद को समझे कि मुझ को करणीय क्या है अर्थ यह कि इस संसारमें आसक्त होना भला है अथवा धर्ममार्ग को अङ्गीकार करना भला है बहुरि देहाभिमान विषे बद्धमान होना सुखरूप है अथवा श्रीरामजी की शरण विषे मेरा कल्याण है सो ऐसी पहिंचान विचार के प्रकाश बिना और किसी प्रकार प्राप्त नहीं होती इसीपर महापुरुष ने कहा है कि प्रथम महाराज ने सर्व जीवों को अन्धकार विषे उत्पन्न किया है बहुरि सबों के ऊपर अपना प्रकाश डाला है सो जैसे कोई मनुष्य अंधेरे करके दुःखित होवे और उसको प्रसिद्ध मार्ग दृष्ट न आवे तब वह यत्न करके प्रकाश के निमित्त चकमक पत्थर को टिकोरता है तिससे अग्नि की चिनगारी निकलती हैं तब उसके साथ दीपक जलाय लेता है बहुरि दीपक के प्रकाश करके उस पुरुष की अवस्थाही उलट जाती है और सर्व पदार्थों को भली प्रकार देख लेता है मार्ग और कुमार्ग को भी प्रत्यक्ष पहिंचानता है बहुरि उसी मार्ग विषे चलने लगताहै तैसेही जिज्ञासुजन को चाहिये कि प्रथम दो प्रकार की बूझ को

आपुस विषे मिलावे इस करके कि उसका मिलावनाही चकमक के टिकोरने की नाई है बहुरि उनके मिलाप करके जो तीसरी बूझ उपजती है सो निस्संदेह अग्निवत् है और जब बूझ का प्रकाश उदय होता है तब मनुष्य के चित्त की श्रद्धा उलट जाती है बहुरि श्रद्धा के उलटने करके करतूति भी उलटजाती है जब इसने जाना कि आत्मसुख अविनाशी है और संसार के भोग नाशवन्त हैं तब स्वाभाविकही संसार के भोगों की ओर पीठ देता है और आत्मसुख की ओर सम्मुख होता है ताते प्रसिद्ध हुआ कि विचार विषे तीन प्रयोजन प्रकट हैं प्रथम तो यथार्थ का पहिंचानना १ और दूसरा चित्त की अवस्था का उलटना २ बहुरि तीसरा करतूतों का उलटावना ३ अर्थ यह है कि अपकर्मों को त्यागकर भली करतूति करनी पर उलटावना कर्मों का चित्त की श्रद्धा के अधीन है और चित्त की श्रद्धा यथार्थ की पहिंचान करके उलटती है बहुरि यथार्थ की पहिंचान विचार करके प्राप्त होती है इसी कारण से विचार को सर्व शुभगुणों का मूल और कुञ्जी कहा है (अथ प्रकट करना अवकाश विचार का) ताते जान तू कि विचार के अवकाश अपार हैं इस करके कि प्रथम तो विद्या और बूझ भी अनन्त प्रकार की होती है और विचार सर्वों विषे वर्त्तता है और जिस विचार का सम्बन्ध धर्म के मार्ग के साथ कुछ नहीं तिसके खोलने विषे मेरा प्रयोजन भी कुछ नहीं और जिस विचार का सम्बन्ध धर्महीं के साथ है तिसका भी पारावार कुछ नहीं पायाजाता पर जिज्ञासु के समझाने के निमित्त संक्षेप करके कुछ वर्णन करूंगा सो धर्ममार्ग तिसको कहते हैं जिस मार्ग करके यह मनुष्य श्रीसीताराम जी के दर्शन को प्राप्त होवे ताते इस मनुष्य का विचार अधिक तो श्रीराम विषे चाहिये है अथवा अपने आप विषे चाहिये पर महाराज विषे विचारकरना इस प्रकार है कि प्रथम तो महाराज के स्वरूप और गुणों का विचार करना अथवा उनकी कारीगरी का विचार करना सो आप विषे विचारना यह है प्रथम तो अपने मलिन स्वभावों का विचारना जिन करके इस जीव को महाराज की ओरसे पटल होताहै सो तिनके दूर करनेका उपाय विचारना जैसे मैंने विकार निषेध प्रकरणविषे विस्तारसहित वर्णन किया है अथवा जिन शुभ गुणों करके श्रीरामजूकी प्रसन्नता प्राप्त होती है तिन विषे भी विचारकरना प्रमाण है ताते प्रसिद्ध हुआ कि धर्ममार्ग विषे चार स्थान विचार के प्रकट हैं सो

इनका दृष्टान्त यह है कि जैसे किसी प्रेमी का विचार और चिन्तन प्रियतम से बाह्य कदाचित् नहीं होता और जिसका चिन्तन प्रियतम बिना और किसी पदार्थ विषे फुरने लगे तब जानिये कि उसका प्रेमही निर्बल है क्योंकि जब प्रेम की प्रबलता होती है तब और किसी वस्तु की सुरति नहीं रहती ताते प्रेमी पुरुष का विचार और संकल्प अधिक तो प्रियतम के दर्शन और सुन्दरता विषे रहता है अथवा उसकी लीला और गुणों का चिन्तन करता रहता है और यद्यपि उसकी सुरति अपने विषे भी फुरती है तौभी ऐसेही गुणों का स्मरण करता है जिन करके प्रियतम की प्रसन्नता और रीझ प्राप्त होवे इसी कारण से उन गुणों को प्राप्त किया चाहता है अथवा ऐसे अवगुणों का विचार भी करता है जिन करके प्रियतम का वियोग और अप्रसन्नता होती है ताते उन को दूर किया चाहताहै तात्पर्य यह कि यद्यपि प्रेमी पुरुष को विचार के स्थान चारही हैं पर तौभी चारों का मूल प्रियतम और प्रेमी दोनों का अवकाश मुख्य है तैसेही भगवत् और भक्तों के प्रेम का भी मार्ग यही है (अथ प्रथम अवकाश विचार का) ताते जान तू कि प्रथम तो प्रीतिमान् को यही विचार करना योग्य है कि मेरे विषे बुरे स्वभाव और बुरी करतूति कौन हैं? ताते विचार करके आप को उनसे शुद्ध करे सो एक पाप स्थूल है १ और एक पाप सूक्ष्म है २ सो यद्यपि यह भी अमित हैं जो गन नहीं सकते तौभी जेते अपकर्म शरीर और इन्द्रियों के साथ होते हैं तिनको स्थूलपाप वर्णन किया है और मन के स्वभाव मलिन सबही सूक्ष्म पाप कहे हैं सो एक २ पाप के विचार विषे भी तीन प्रकार का बल वर्तता है प्रथम यह कि अमुक स्वभाव अथवा कर्म बुरा है व भला है इस करके कि यह वार्ता भी विचार बिना जान नहीं सकता १ और दूसरा प्रकार यह है कि जिस क्रिया और स्वभाव को बुरा जाना तब इसभांति विचार करे कि अमुक अवगुण अथवा अपकर्म मेरे विषे है व नहीं क्योंकि मन के स्वभावोंको भी दृढ़ विचार बिना पहिचान नहीं सक्ता २ बहुरि तीसरा प्रकार विचार के बल का यह है कि जब अपने अवगुण को निश्चय किया तब उसके दूर करने का उपायकरे ३ ऐसेही जिज्ञासुजन नित्यप्रति प्रातसमय एकत्र होकर इस विचार विषे सावधान होवे प्रथम तो स्थूलपापों का विचार इस प्रकार किया चाहिये कि एक २ इन्द्रिय की क्रिया को भिन्न २ विचारे सो रसना का विचार

इस भांति करे कि बोलना तो मुझे अवश्यही होवेगा पर किसी प्रकार झूंठ और निन्दा से रहित हूजिये तो भला है ऐसेही जब देखिये कि मेरी जीविका अशुद्ध है तब उसके त्यागने का उपाय विचारे इसी प्रकार सर्व इन्द्रियों के कर्मों को भिन्न २ स्मरण करे बहुरि जेते भजन के नियम और भली करतूति हैं तिन में दृढ़ विचार सहित सावधान होवे और ऐसे जाने कि यह रसना मुझको भजन के निमित्त और मिष्ट बोलने के अर्थ महाराज ने दीनी है ताते चाहिये कि रसना को भजन विषे लगावों और सर्व मनुष्यों के साथ मीठा बोलों और नेत्र इस निमित्त दिये हैं कि महाराज की कारीगरी को देखकर उस कारीगर को पहिंचानों अथवा भाव संयुक्त सन्तजनों का दर्शन करों और पापकर्मियों को ग्लानि की दृष्टि साथ देखूं ताते मुझको उनकी संगति का प्रवेश न होवे तब नेत्र की उत्पत्ति भी फल को प्राप्तहोवे और महाराज ने धन को जीवों के सुख के निमित्त रचाहै ताते चाहिये कि मैं धन को अर्थियों के अर्थ लगाऊं और यद्यपि मुझको भी इस वस्तु की अपेक्षा अवश्यही है तो भी चाहिये कि पुरुषार्थ करके अपने अर्थ का त्याग करूं ऐसेही नित्यप्रति जिज्ञासुजन को विचार करना प्रमाण है इस करके कि कदापि एक घड़ी के विचार विषे ऐसा शुद्ध संकल्प इसको उपज आवे जो उस करके सब आयुष् के पापों से रहित होजावे और पराभक्ति का अधिकार होवे इसी कारण से महापुरुष ने कहा है कि सर्व आयुष् पर्यन्तके भजन से एक घड़ी का विचार विशेष है अर्थ यह कि विचार का लाभ इसको सर्वदा सुखदायी और सहायक होता है बहुरि जब स्थूलपापों का विचार करचुके और बाह्य के शुभ कर्मों का विचार भी करलेवे तब हृदय के सूक्ष्म स्वभावों की ओर दृष्टिकरे कि मेरे चित्त में कौन २ मलिन वासना है बहुरि जेते धैर्य सन्तोष आदिक मोक्षदायक शुभकर्म हैं सो तिनको प्राप्त होने का उपाय विचारे पर ऐसे संपूर्ण गुणों और अवगुणों का बखान भी अपार है ताते मैं कछुक संक्षेप करके कहताहूं कि कृपणता, अभिमान, अहंकार, दम्भ, ईर्षा, क्रोध, आहार की अधिकता, व्यर्थ बोलना, धन और मान की प्रीति अजानता कठोर स्वभाव आदिक विकारों को विचार करके दूर किया चाहिये ऐसेही पापों का त्याग और दुःख विषे धैर्य करना और महाराज के उपकारों का धन्यवाद करना बहुरि महाराजकी भय और आशा की समानता विषे स्थित होना और माया के पदार्थों से विरक्त होना

भजन विषे निष्कामता करनी सर्वजीवों के साथ कोमल स्वभाव रखना एकता और भरोसा महाराज की प्रीति प्रेम सन्तोष आदिक जेते शुभगुण हैं सो सबकी प्राप्ति विषे विचारही का बल अधिक वर्तता है पर यह विचार तिसके हृदय विषे उपजता है जिसने ऐसे शुभगुणों के भेदों को भली प्रकार समझा होवे जैसे मैंने इसी मोक्षदायक प्रकरण विषे कहा है ताते जिज्ञासु को चाहिये कि शुभ और अशुभ गुणों के नाम अपने पास लिखराखे बहुरि जब एक अवगुण को दूर करचुके तब दूसरे के जीतने में दृढ़ होवे और जब एक गुण को प्राप्त करलेवे तब दूसरे गुण के पावने का पुरुषार्थ करे पर किसी पुरुष पर कोई स्वभाव प्रबल होता है किसी पर कोई बलवान् होता है इसी कारण से चाहिये कि प्रथम प्रबल स्वभाव के दूर करने का यत्न करे जैसे कोई विद्यावान् वैराग्यसंयुक्त होवे तब उसको मान की अभिलाषा का दूर करना विशेष है इस करके कि विद्या और वैराग्य की प्राप्ति करके मान का हेतु अवश्यही प्रकट हो आवता है बहुरि मान के हेतु करके किसी का वचन नहीं सहसक्ता और अपनी विशेषता को लखाया चाहता है तब चित्त विषे क्रोध और ईर्षा का अंकुर उपजने लगताहै सो यद्यपि ऐसे स्वभाव महासूक्ष्मरूप हैं पर तौभी निस्संदेह भागों की हीनता का बीज है ताते विद्यावान् को चाहिये कि नित्यप्रति मानही के दूर करने का विचार करे और जगत् की स्तुति निन्दासे विरक्त होकर समतापद की प्रीति विषे दृढ़ होवे इस करके प्रसिद्धहुआ कि अपने अवगुणों और शुभगुणों का विचार करना भी अमित है सो वचन करके संपूर्ण नहीं कहसक्के १ (अथ द्वितीय अवकाश) ताते जान तू कि विचार का अवकाश दूसरा भगवत् है सो एक तो श्रीरामजू के शुद्ध स्वरूपका विचारहै और दूसरा श्रीरामजूकी विचित्ररचना और शक्ति का विचारनाहै सो यद्यपि उत्तम विचार और चिन्तन श्रीसीतारामजी महाराज के सुन्दर गौर श्यामस्वरूप और गुणों का होताहै पर यह जो अल्पबुद्धि जीव हैं सो महाराज के स्वरूप का विचार कर नहीं सक्के ताते धर्मशास्त्र विषे स्वरूप का विचार वर्जित कियाहै सो महाराज के स्वरूप का विचार कुछ गुह्यता के कारण कठिन नहीं पर उसका विचारना इस करके कठिन है कि जीवके बुद्धिरूपी नेत्र महामन्द हैं और महाराज का स्वरूप परम प्रकाशवान् है ताते उसको देख नहीं सक्के और मूर्च्छा को प्राप्त होते हैं जैसे चिमगोदर की दृष्टि की मन्दता करके सूर्य के प्रकाश

विषे आड़ नहीं होसक्ती बहुरि जब सूर्य का प्रकाश अस्त होताहै तब रात्रि विषे तारामण्डल के किंचित् प्रकाश करके नेत्रों को खोलती है तैसेही देहाभिमानी मनुष्य भी महाराज के शुद्ध स्वरूप को देख नहीं सक्ते तब उसका विचार क्योंकर करें पर जो सत्पुरुष हैं सो उत्तम अवस्थावाले हैं और तिन्हों ने प्रकटही सुन्दर स्वरूप को देखाहै पर सदा एकरस वहभी नहीं देखसक्ते और उनकी बुद्धिभी थकित होजाती है जैसे यह मनुष्य सूर्य को भली प्रकार देखसक्ते हैं पर अधिक देखने करके इनकी भी दृष्टि मन्द होजाती है तैसेही महाराज की छवि अपार के विचारने विषे भी यही भय होताहै विस्मय और आश्चर्य करके बावला होजाता है इसी कारण से जिस प्रकार सन्तजन महाराज के सर्वगुणों का भेद जानते हैं सो इतर जीवों को खोलकर सुनावतेही नहीं और महाराज ने भी उनको यह आज्ञा कीन्हीं है कि सर्वजीवों को अधिकार के अनुकूल उपदेश करो और जिस प्रकार उनकी बुद्धि महाराज के कुछ भेदको समझसके तैसेही समझावो ताते ऐसे कहो कि महाराज अन्तर्यामी हैं और सबकुछ देखते, सुनते, बोलते हैं बहुरि जो कुछ किया चाहते हैं सो करलेते हैं तात्पर्य,यह कि अल्पबुद्धि जीव इतना भी इस निमित्त समझते हैं कि इन विषे भी सुनना, बोलना, देखना कुछ पायाजाता है पर इनसे जब इस प्रकार कहिये कि महाराज का बोलना मनुष्यों की नाईं नहीं क्योंकि उनका वचन शब्द और अक्षरों से रहित अखण्ड है तब इस वार्त्ता को नहीं समझसक्ते अथवा जब ऐसे कहिये कि महाराज का स्वरूप मनुष्यों की नाईं नहीं इस करके कि महाराज का न कोई कारण है न वह किसी के कारण हैं बहुरि न किसी स्थान के ऊपर स्थित हैं न किसी स्थान के मध्य में रहते हैं और न किसी दिशा विषे कहसक्ते हैं बहुरि जगत् से न्यारेभी नहीं और जगत् के साथ कुछ सम्बन्ध भी नहीं रखते ऐसेही संसार से बाह्य भी नहीं और संसार विषेभी नहीं सो जब यह अल्पबुद्धि जीव ऐसे सूक्ष्म वचन सुनते हैं तब इनकी पहली प्रतीति भी नष्ट होजाती है ताते भगवतही का नतकार करनेलगते हैं इस करके कि महाराज को भी अपनी नाईं समझा चाहते हैं और उनकी बड़ाई को जानतेही नहीं क्योंकि यद्यपि महाराज को सब से बड़ा कहते हैं तौभी चित्त विषे किसी बड़े भूपति की नाईं समझते हैं और ऐसे जानते हैं कि परमेश्वर भी भूपों की नाईं सिंहासन पर बैठकर सृष्टि का कार्य करता होगा और योंभी निस्संदेह

जानते हैं कि भगवत् के भी मनुष्यों के समान स्थूल शरीर, हाथ, पांव, शीश होवेगा इस करके कि जबहमारे हाथ पांव न होवें तब हम अङ्गहीन और दुःखीहोते हैं तैसेही जब परमेश्वर के शरीर नेत्र आदिक इन्द्रिय न होवें तब वहभी अङ्गहीन रहता है सो ऐसी स्थूलबुद्धि से भगवत् रक्षाकरे इस करके कि जब माखी के हृदय विषे ऐसीही बूझ होती है तब वह भी इस प्रकार कहती है कि जैसे मेरे पांव और पंख हैं तैसेही महाराज के भी पंख होवेंगे क्योंकि मैं तो इन करके सुख से इच्छाचारी उड़ती हूं और जब मेरा उत्पन्न करनेहारा ऐसा स्वेच्छित न होवे तब यह अयोग्य वार्त्ता होती है तैसेही यह मनुष्य भी महाराज के ऊपर अपना अनुमान रखते हैं इसी कारण से धर्मशास्त्र विषे निर्गुण स्वरूप के विचार से वर्जा है और सन्तजनों ने भी इस प्रकार प्रसिद्ध नहीं कहा कि महाराज ! इस संसार से व्यतिरिक्तहै अथवा मिला हुआहै ताते उन्होंने भी इतना ही वर्णन कियाहै कि महाराज के स्वरूप की नाईं और कोई वस्तु ही नहीं जिस करके उसको समझाय सकिये पर वह परेश महाराज सब कुछ देखने और सुनने और जाननेहारा है और समर्थ है सो यद्यपि ऐसे कहा है तौभी इस जगत् में जिस प्रकार देखना सुनना जानना महाराज का है तिसका भेद प्रसिद्ध वर्णन नहीं किया इस करके कि स्थूलबुद्धि मनुष्य ऐसे भेदों को समझ नहीं सक्ते तात्पर्य यह कि परात्पर स्वरूप के विचारने का अधिकारी कोई विरला सन्त ही होताहै और इतर जीवों की बुद्धि उसके स्वरूप में पहुँच नहीं सक्ती ताते सबही जीवों का अधिकार यह है कि महाराज की विचित्र रचना का विचार करके उसकी बड़ाई और समर्थता को पहिंचानें क्योंकि जेते पदार्थ स्थूल सूक्ष्म उत्पन्न हुये हैं सो महाराज ही के प्रकाश का प्रतिबिम्ब हैं पर इसका दृष्टान्त यहहै जैसे कोई पुरुष दृष्टि की मन्दता करके सूर्य को देख न सके तब चाहिये कि उसकी धूप को देखकर उसके तेज की अधिकता को पहिंचाने तैसेही रचना की विचित्रता का विचारना भी महाराज की बड़ाई को लखावता है (अथ तृतीय अवकाशनिरूपण) ताते जान तू कि सब सृष्टि महाराज ही की रचना है और सबही आश्चर्यरूप है सो जब विचार करके देखिये तब सब पृथ्वी और आकाश के जेते अणु हैं ते सब अपने उत्पन्न करनेहारे की महिमा को लखावते हैं और कहते हैं कि ऐसी समर्थता और ऐसी परमविद्या परमेश्वरही को शोभती है और उसकी स्तुति ऐसी अपार है कि जो

सातों समुद्र स्याही होवे और सब वनस्पति लेखनी होवें और पृथ्वी आकाश विषे जेते जीव हैं सो लिखनेलगें और आयुष्भी उनकी अमित होवे तौभी महाराजकी आश्चर्यताका अन्त कदाचित् नहीं आवता पर सर्व सृष्टि भी महाराज ने दो प्रकार की रची है सो एक सूक्ष्म है और एक स्थूल है बहुरि सूक्ष्म सृष्टि जो जीवशक्ति है सो तिसका विचार नहीं होसक्ता और जो सृष्टि स्थूल कही है वह भी दो प्रकार की रचना है एक तो हमारी दृष्टि से अगोचर है जैसे देवता और उनके स्थान और भूत प्रेतादिक जो जीव हैं सो इनका विचारना भी महाकठिन है ताते दूसरी सृष्टि जो हमारी दृष्टि विषे आवती है तिसका मैं कुछ वर्णन करता हूं सो देखने में आकाश और पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र आवते हैं बहुरि पृथ्वी के ऊपर जो पहाड़ और वनस्पति और नदी और नगर और मनुष्य आदि जेते जीव हैं सो सबही आश्चर्यरूप बनाये हैं बहुरि आकाश विषे जो बादर और वर्फ और ओला और बिजली और इन्द्रधनुष् आदिक जेती रचनाहै सो सबों विषे विचारका बल वर्तता है इस करके कि सर्व पदार्थों को महाराज ने कौतुकरूप रचा है ताते मैं संक्षेप करके कछुक इनका वर्णन करूंगा क्योंकि यह सब पदार्थ महाराज की शक्ति को लखावनेहारे हैं और तुझको इस प्रकार आज्ञा हुई है कि तू मेरी रचना को विचार की दृष्टि के साथ सर्वदा देख और मेरी बड़ाई को पहिंचानकर विस्मित हो पर प्रथम तो महाआश्चर्यरूप भगवत् ने तुझको बनाया है और तेरे समान तुझको और कोई निकट भी नहीं सो जब तू आपको विचारे तब मेरी समर्थता को और बड़ाई को तुरन्तही पहिंचान लेवेगा ताते तुझको प्रथम तो अपनी आदिका विचार करना प्रमाण है कि मैं इस संसार विषे कहां से आया हूं सो जब विचार करके देखिये तो रज और वीर्यही तेरी उत्पत्ति का कारणहै बहुरि क्रम करके मांस का पूतरा होता है और बढ़ता जाताहै तिससे पीछे उसी मांस विषे भिन्न२ अङ्ग उपजते हैं जैसे मांस, त्वचा, नाड़ी, मद, अस्थि, केश उत्पन्नहोते हैं बहुरि तेरे अङ्गों का आकार भिन्न२ भांति रचा है जैसे शीश, हाथ, पांव, अंगुरी, नासिका, कान, दांत और नेत्र बनाये हैं और केते और अङ्ग तेरे शरीर के भीतर रचे हैं जैसे उदर, नाभि, हृदय और अनेक इसकी नाईं जो अङ्ग हैं सो सबका आकार और गुण और मर्याद भिन्न२ करके रची है बहुरि एक२ अङ्ग विषे अनेक सम्बन्ध मिलाये हैं जैसे नेत्र कि देखने में इनका आकार थोड़ाही भासता है सो तिनको

सात परदे मिलाकर बनायाहै और एक २ परदे का भिन्न २ गुणहै सो जब एक परदे को कुछ खेद पहुँचता है तब तेरी दृष्टि मन्द होजाती है पर जब नेत्रोंही की आश्चर्यता को विस्तार करके कहिये तो केते पत्र और पोथी लिखेजावें बहुरि जब तू अपने शरीर के अस्थियों की ओर देखे तब यह भी बड़े आश्चर्यरूप हैं प्रथम तो शरीर की दृढ़ता इन्हीं करके होती है और जल की बूंद से ऐसे कठोर अस्थि क्योंकर रचे हैं बहुरि इनको भिन्न २ मर्याद सहित उपजाया है और भिन्न २ गुणों के हेतु स्थित किये हैं बहुरि अस्थियों को शरीर का खम्भा बनाया है और अङ्ग उनके ऊपर ठहराये हैं और जब सारे शरीर विषे एकही हाड़ होता तब यह मनुष्य नवने विषे दुःखी होता और जब भिन्न होते तब खड़ा न हो सक्ता ताते पीठ और ग्रीवा और गोड़ों के हाड़ों को मोहरेदार उत्पन्न किया है और एक दूसरे विषे मिलाय राखे हैं इस करके कि यह पुरुष नवने और चलने और खड़े होने को समर्थ होवे बहुरि अस्थियों के मोहरेपर नाड़ी लपेटीहैं और उनको भली प्रकार दृढ़ किया है सो एकही शीश को पचपन अस्थि मिलाकर बनाया है ऐसेही केते दांतों के शीश तीक्ष्ण किये हैं और केतों के शीश चौड़े बनाये हैं ताते एक दांत अनाज को काट डालते हैं और एक निकालके पीसडालते हैं बहुरि शरीर विषे तीन सरोवर रचे हैं सो शीशरूपी सरोवर से नाड़ी के प्रवाह कन्धों विषे पसरते हैं और कन्धों के मार्ग से सर्व शरीर में प्रवेश करते हैं ताते इन्द्रियों को बल पहुँचताहै और अपने २ कार्यों को सावधान होती हैं ऐसे ही दूसरा सरोवर जठर है सो तिससे नाड़ी के मार्गकर सर्व इन्द्रियों को आहार पहुँचताहै और तीसरा सरोवर हृदय स्थान है सो इनकी नाड़ियों करके सर्व शरीर सजीव होता है ऐसेही तू अपने शरीर के एक २ अङ्ग को विचार करके देख कि महाराज ने इनको कैसी युक्ति कर रचा है और इनमें कैसे २ भेद और गुण राखे हैं जैसे यह नेत्र कैसे कौतुकरूप रचे हैं और धूर की रक्षा के निमित्त इनके ऊपर प्याली रखी है सो इस विषे भी बड़ा आश्चर्य यह है कि देखने में नेत्रों का आकार अल्पमात्र भासताहै और पृथ्वी आकाश पर्यन्त सर्व पदार्थ इनकी दृष्टि विषे समाइ जाते हैं ऐसे ही श्रवणों विषे कड़ुवा जल राखाहै इस करके कि इन में कोई कीड़ा प्रवेश न करजावे बहुरि इन का आकार सीपकी नाईं रचाहै ताते शब्द को इकट्ठा करके भीतर पहुँचाइ देतेहैं पर जब ऐसेही मुख, हाथ और पांव

अथवा और अङ्गों की आश्चर्यता का बखान करिये तो बड़ा विस्तार होता है तात्पर्य यह कि जब किसी प्रकार तुझ को ऐसे विचार का मार्ग खुले तब तू उत्पन्न करनेहारे महाराज की बड़ाई और समर्थता और दया और उसकी बूझ को भली प्रकार पहिंचाने क्योंकि महाराज ने नखशिख पर्यन्त आश्चर्यरूपही रचा है पर जब तू किसी मनुष्य की लिखी हुई मूर्त्ति को देखता है तब उसकी सुन्दरता देखकर विस्मयवन्त होता है और लिखनेहारे की स्तुति करताहै बहुरि ऐसे भी जानता है कि महाराज ने वीर्यही की बूंद से तेरे शरीर बिषे कैसी अनूप चित्रकारी रची है और यह भी बड़ा आश्चर्य है कि शरीर के अङ्गों की चित्रकारी का चितेरा और लिखनि दृष्टि नहीं आवती पर तू भगवत् की बड़ाई को विचारकर आश्चर्यवान् नहीं होता बहुरि उसकी परमबूझ और पूर्ण समर्थता को देखकर तू बावला नहीं होता और उसकी परम दया को भी तू कदाचित् नहीं पहिंचानता क्योंकि जब महाराज ने गर्भ बिषे तुझको आहार का अधिकारी देखा और ऐसे भी जाना कि जो यहां मुख इसका खुलता है तो इसके मुख बिषे रुधिर प्रवेश करेगा ताते इसको दुःख होवेगा इस कारण से ऐसे विषम स्थान बिषे तुझको नाभिमार्ग से आहार पहुँचाया और पूर्ण अनुग्रह के साथ तेरी प्रतिपाल कीनी है बहुरि जब तू माता के गर्भ से बाहर निकला तब महाराज ने नाभि के मार्ग को तत्कालही मूंदादिया और तेरे मुख को आहार के निमित्त खोलादिया और तिसपरभी तेरे शरीरकी सूक्ष्मता देखकर तेरी माताके स्तनों बिषे दूध उत्पन्न किया और उसको तेरा आहार बनाया बहुरि स्तनों का शीश इस प्रकार छोटा किया कि तू उसको मुख में डालकर सुखसे ही चूसलेवे और छिद्र उनका अत्यन्त सूक्ष्म बनाया इस करके कि इकट्ठा दूध का प्रवाह तुझको खेद न देवे और थोड़ा २ तेरे कण्ठ बिषे चलाजावे बहुरि तेरी माता के उदर बिषे ऐसा धोबी स्थित किया जो सर्वदा रुधिर को श्वेत दूध करके भेजता है और तेरी माता के चित्त बिषे ऐसी प्रीति उत्पन्न कीनी है कि जब तू एक घड़ी भी भूखा रहताहै तब उसके हृदयका विश्राम दूर होजाताहै बहुरि जबलग तू दूध पीवनेहीका अधिकारी था तबलग तेरे दांत उत्पन्न नहीं किये इस करके कि अजानता सहित जननी के स्तनों को काट न डारें और जब तेरा देह अनाज का अधिकारी हुआ तब समय पाइकर आपही दांत उपज आवते हैं ताते

तू कठोर आहारोंका भी भक्षण करलेताहै पर यह जो तेरी मूर्खता और नेत्रोंकी हीनताहै सो इसकी मर्याद भी कुछ पाई नहीं जाती इस करके कि यद्यपि एती वार्त्ताको तू समझता और प्रत्यक्ष देखता है तौभी उत्पन्न करनेहारे महाराज की बड़ाई को पहिचानकर विस्मय को नहीं पावता बहुरि उसकी दया और अधिक सुन्दरता को विचारकर उसके साथ तू प्रीतिही नहीं करता ताते जो पुरुष इस प्रकार श्रीरामजू की रचना को अपने विषे न देखे सो महा अचेत और पशुओं की नाईं बुद्धिहीन हैं और इस मनुष्य विषे जो श्रीरामजी ने शुद्ध बुद्धि का अधिकार राखा है सो तिसको उसने व्यर्थ खोया बहुरि जो आहार और लड़ाई विना और कुछ नहीं जानता सो निस्संदेह ज्ञानरूपी बाग के तमाशे से अप्राप्त रहता है ताते जिज्ञासु जन के समझने को विचार का वर्णन इतनाही बहुत है इस करके कि जब एक मनुष्योंही की आश्चर्यता का बखान करिये तब जेता कुछ मैंने कहा है सो तिससे भी लाखगुणा अधिक है बहुरि ऐसेही महाराज ने धरती भी कौतुकरूप रची है और इसी धरतीपर और भी अनेक आश्चर्य उत्पन्न किये हैं सो जब तू अपने आपका विचार करचुके तब चाहिये कि धरती के आश्चर्यों का विचार करे सो श्रीमहाराज ने इस प्रकार धरती को तेरे निमित्त कैसा दीर्घ बिछौना बिछाया है कि तू जिस दिशा विषे चलाजावे तिसीका अन्त नहीं पावता बहुरि इस धरती को पहाड़रूपी मेखों के साथ दृढ़ करके ठहराया है और महाकठोर पत्थरों से प्रवाह प्रकटाये हैं कि भली प्रकार सर्वदा पृथ्वी पर चलते रहते हैं सो वही प्रवाह इस प्रकार धैर्य से बाहर निकलते हैं कि जब एकही बार उछल पड़ते तब धरती को डुबाइलेते ताते उनको कठिन पत्थरों के तले ठहराइ राखा है ऐसेही तू भलीभांति विचारकर देख कि यह मलिन माटी वसन्त ऋतु विषे किस प्रकार प्रफुल्लित होती है और मेघों की वर्षा के साथ क्योंकर सजीव होजाती है कि इसी अंधेरी माटी विषे अनन्त प्रकार के रङ्गीन फूल उपजते हैं क्योंकि भिन्न भिन्नही फूल हैं और भिन्न भिन्न ही उनके गुण और रङ्ग हैं और एक दूसरे से अतिसुन्दर हैं ऐसेही जब वृक्षों की ओर देखिये तब उनका भी रूप और सुगन्ध और फल और गुण न्यारेही न्यारे रचे हैं बहुरि जिस घास को तू कुछ वस्तुही नहीं जानता सो घास तृणों विषे भी अनन्त गुण और लाभ उत्पन्न किये हैं और सबों के भिन्न२ रस हैं एक कड़वे हैं एक मीठे हैं एक तीक्ष्ण

हैं और एक रोगों को उत्पन्न करते हैं और एक दुःखों को दूर करनेहारे हैं ऐसेही एक तृण शरीर के जीवनरूप हैं और एक महाविषरूप हैं किन्हीं का स्वभाव शीतल है किन्हीं का उष्णदायक स्वभाव है बहुरि एक बाईरोग को बढ़ावते हैं और एक दूर कर डालते हैं ऐसेही एक निद्रा को बढ़ावते हैं एक नींद को क्षीण करलेते हैं एक प्रसन्नता उपजावते हैं और एक शोकवान् करते हैं बहुरि एक घास पशुओं का आहार बनाये हैं और एक तृणों को पक्षियों का आहार कियाहै और एक मृगों की जीविका रचे हैं तात्पर्य यह कि वनस्पति की जातिही प्रथम तो अगणित हैं बहुरि एक एक वृक्ष तृण फूलों विषे असंख्य गुण राखे हैं ताते जब तू एकचित्त होकर इनका विचार करे तब महाराज की पूर्ण समर्थता को प्रसिद्ध पहिंचाने अथवा उसकी बड़ाई विषे तेरी बुद्धि लीन होजावे ऐसेही श्रीरामजी ने जो केते उत्तम पदार्थ पहाड़ोंविषे उत्पन्न किये हैं सो तिनका भी बखान नहीं करसकते जैसे चांदी, सोना, हीरा, लाल, पन्ना आदिक जो मनुष्यों का शृङ्गार हैं सो सबों की खानि पर्वतों विषे राखी है बहुरि लोहा और तांबा और कली आदिक धातु जो बासनों के निमित्त रची हैं सो इनकी उत्पत्ति का कारण भी पहाड़ हैं ऐसेही गन्धक, हरतार, शिंगरफ आदिक जो अनेक गुणदायक पदार्थ हैं सो यह भी पहाड़ों विषे प्रकट किये हैं पर यह लवण जिसको तू सब से नीच जानता है सो सर्व भोजनों का स्वाद इसी करके होता है ताते जिस देश विषे एक लवणही न होवे तब उस देश विषे सबही व्यञ्जन रसहीन होजावें और लोगों को रोग बढ़जावे इस करके कि लवण भी केते रोगों का नाश करता है इस प्रकार तू विचार करके श्रीरामजी की दया को भलीभांति समझ कि तेरे निमित्त प्रथम तो नाना प्रकार के भोजन रचे हैं बहुरि उनके स्वाद और गुण के निमित्त जल के अंश से लवण उत्पन्न किया है सो इनका बखान करना भी अपार है पर इस पृथ्वी के ऊपर अनेक प्रकार के जीव उपजाये हैं सो यह भी महाआश्चर्यरूप हैं एक उड़ते हैं और एक पांवों से चलते हैं एक तिर्य्ग्योनि हैं कि उनका चलना उर और उदर के साथ होता है बहुरि केतों के दो २ चरण हैं केते चार चरण रखते हैं ऐसेही केते चौबीस चरणों करके चलते हैं बहुरि जब तू पक्षियों और पृथ्वी के कीटों की ओर ध्यान करके देखे तब इनका भी भिन्न २ रूप है और न्यारी २ चाल है और एक दूसरे से सुन्दर बनाये हैं और जो किसी

को अपेक्षा थी सो सबही दीनी है बहुरि सबों को अपने २ आहार का मार्ग दिखाया है और अपने २ पुत्रों की प्रतिपाल सिखाई है और अपने घोंसला और घर बनावने की बूझ दीनी है ताते तू मकोड़ेही की ओर दृष्टि करके देख जो समय को पहिचानकर अपने आहार को क्योंकर इकट्ठा करता है और अपने बिल बिषे अनाज के कण रखता है जो धरती बिषे इसका अंकुर न होवे ऐसेही मकरी की ओर जब तू भली प्रकार देखे तब जाने कि वह अपने गृह को क्यों-कर रचलेती है और अपने मुख के थूक का सूत बनावती है और मन्दिर के कोन ढूंढ़कर उसी सूत का ताना बाना करती है बहुरि उसी घर बिषे अपने बालकों को रखती है और माखी को पकड़ने के निमित्त आप उसके कोने बिषे छिप बैठती है बहुरि जब माखी को अचानकही पकड़लेती है तब सब ओरसे उसको तार के सूत के साथ लपेटलेती है इस करके कि किसी प्रकार माखी निकल न जावे ऐसेही माखियों को पकड़कर सदैव अपना उदर पूर्ण करती है बहुरि जब भृङ्गी माखीही की ओर दृष्टि करिये तब देखिये कि यह माखी भी अपना घर कैसा अनूप बनावती है तात्पर्य यह कि महाराज ने अपनी दया करके कीटों बिषे भी ऐसी उत्तम बूझ और अनुभव राखी है कि उसका वर्णन कुछ नहीं किया जाता जैसे मच्छर को समझाया है कि शरीर का रुधिरही तेरा आहार है ताते उसका डङ्क तीक्ष्ण और सूक्ष्म है और भीतर से खाली रचा है सो जब शरीर बिषे उसी डङ्क को लगावता है तब तुरतही रुधिरही को खैंचलेता है बहुरि उसको ऐसा चपल बनायाहै कि जब कोई उसको पकड़ाचाहे तब शीघ्रही लखि लेता है और भाग जाताहै बहुरि तुरन्तही फिर आवताहै ताते जो इस मच्छर के बुद्धि और रसना होती तो अपने उत्पन्न करनेहारे स्वामी की एती स्तुति करता कि सब लोग सुनकर आश्चर्यवान् होते पर जब विचार की दृष्टि के साथ देखिये तब उसकी अवस्थाही महाराज की महिमा को स्वतः लखावती है सो ऐसे आश्चर्य जीवभी अनन्तही ने रचे हैं ताते इतनी समर्थता भी किसी मनुष्य बिषे पाई नहीं जाती जो लाखकोटि आश्चर्यों बिषे एक आश्चर्य को भी पहिचाने अथवा एक आश्चर्य का वर्णन करे पर तेरे चित्त बिषे इतना विचार भी नहीं उपजता कि सुन्दर आकार और उत्तम अङ्गोंसहित जो नाना प्रकार के यह जीव हैं सो सब आप करके उत्पन्न हुयेहैं कि तैंने उनको बनाया है कि तेरा और उनका उत्पन्न

करनेहारा एक वही महाराज है ताते महाराज की शक्ति वचन से अगोचर है सो यद्यपि असंख्य पदार्थ उसकी महिमा को सर्वदा प्रसिद्ध आपही लखावते हैं पर उसने अपनी माया करके इस मनुष्य के नेत्रों को मन्द करडाला है जो ऐसे आश्चर्यों को नहीं देखसक्ने और इस जीव की बुद्धि भी ऐसी अचेत कर राखी है कि रञ्चकमात्र भी अद्भुत रचना का विचार नहीं करती यद्यपि नेत्रों के साथ नानाप्रकारके कौतुक देखता है और श्रवणों करके अनेक प्रकार की स्तुति सुनता है तौभी जिस प्रकार श्रीरामजू की महिमा जानने योग्य है तैसे नहीं जानसक्ता ताते ऐसे अल्पबुद्धि जीवों का सुनना और देखना निस्संदेह पशुओं की नाईं है क्योंकि महाराज ने क़लम काग़ज़ विना अनेक भांति के आश्चर्यरूप अक्षर लिखे हैं तिनको नहीं देखसक्ने जैसे यह मकोड़ा छोटाही कीड़ा है सो जब तू इसी की ओर भली प्रकार ध्यान करे तो उसकी अवस्थारूपी रसना ही सर्वदा इस प्रकार कहती है कि हे मूर्ख, मनुष्य! जब कोई चितेरा पुरुष भीतपर मूर्ति लिखता है तब तू उसको देखकर लिखनेहारे की विद्या और चतुराई को भलीभांति समझता है और विस्मित होता है पर जब तू एकचित्त होकर मेरी ही ओर दृष्टि करे तब भगवत् की सम्पूर्ण समर्थता और पूर्ण विद्या को पहिंचाने इस करके कि यद्यपि मेरा आकार देखने विषे अतिछोटा है पर कृपानिधान महाराज ने मेरे एतेही शरीर विषे किस प्रकार भिन्न अङ्ग रचे हैं जैसे हृदय, उदर, शीश, हाथ, पांव, नेत्र, श्रवण, रसना और आहार के पचने का स्थान और मल के गिरने की ठौर इत्यादिक सबही सामग्री मुझको दीनी है बहुरि मेरे शरीर विषे चपलता राखी है और तीन बन्द स्थित किये हैं सो तीनों को आपस में मिलाइ राखा है और मेरी कटि में कमरबन्द पहराया है और मेरा जामा श्याम बनाया है सो यद्यपि तू अपने चित्त विषे ऐसा अनुमान रखता है कि मैं और सबही जीवों में विशेष हूं पर जब विचार करके देखे तब तू निस्संदेह मेरा टहलुवा है इस करके कि तू अनेक यत्नों के साथ अनाजों को बोवता और परिपक्व करता है बहुरि इकट्ठा करके दुराइ रखता है और मेरे हृदय विषे महाराज ने ऐसी शक्ति राखी है कि मैं सुगन्ध लेकर तुरन्तही धरती के मार्ग से उसी अनाज को ढूंढ़ लेताहूं सो तेरे पास संपूर्ण वर्ष का अनाज नहीं रहता और मैं वर्ष भरकी जी-विका कररखता हूं बहुरि तुझको वर्षा और बाढ़ की खबर कुछ नहीं होती ताते

तेरे अनाज के ढेर भीजते हैं और प्रवाह विषे बहजाते हैं और मुझको भगवत् अचानकही मेघ की खबर लखाइ देता है ताते मैं आगेही अपने अनाज को उठायलेता हूं इसी कारण से मैं अपने स्वामी का सर्वदा धन्यवाद करतारहता हूं कि मुझ ऐसे नीचपर कृपादृष्टि कीनी है और तुझ ऐसे उत्तम को मेरा टहलुवा बनाया है ऐसेही सूक्ष्म स्थूल स्थावर जङ्गम जेते जीव हैं सो अपनी अवस्था की रसना के साथ सर्वदाही महाराज की स्तुति करते हैं बहुरि पृथ्वी और आकाश के अणु भी सदैवही श्रीरामजू की महिमा का ढंढोरा देते हैं पर यह मनुष्य अचेतता करके ढंढोरे को कदाचित् सुनतेही नहीं बहुरि समुद्र विषे जो आश्चर्यरूप रचना रची है सो यह भी संख्या से परेहै क्योंकि जेती नदियां और प्रवाह धरती पर चलते हैं सो सबही समुद्र के अङ्गहैं और यह धरती भी समुद्र विषे टापूकी नाईं है तौ चाहिये कि तू समुद्रों की आश्चर्यता का भली प्रकार विचार करे इस करके कि समुद्रों विषे धरती से भी विशेष आश्चर्य उत्पन्न किये हैं और जेते जीव इस धरती पर प्रकट हैं तेते जल में भी उनकी नाईं विद्यमान हैं पर जल विषे ऐसेभी अनेक जीव हैं जिनकी नाईं धरतीपर जीव उत्पन्न नहीं हुये बहुरि समुद्रों विषे एक ऐसे सूक्ष्मजीव रचे हैं जो दृष्टिही नहीं आवते और एक ऐसे स्थूल हैं कि उनकी पीठको बरेती जानकर जहाजों के लोग जाइ उतरते हैं सो इसी समुद्रों की रचना विषे विद्यावानों ने केतेही ग्रन्थ रचे हैं ताते इनका भी संपूर्ण विस्तार नहीं कहसक्ते पर तू एकचित्त होकर देख कि समुद्र विषे ही ऐसे जीव बनाये हैं कि उनका सीप ही शरीर है सो जब मेघ का समय होताहै तब वह समय उनके चित्त विषे वहां ही भास आवता है ताते समुद्र से बाहर निकलकर मुख को खोलते हैं बहुरि मेघ की बूंद को लेकर मुख को मूंद लेते हैं और समुद्र के नीचे जाइ ठहरते हैं सो इसी बूंद को अपने अन्तर वीर्य की नाईं पालते हैं बहुरि कुछ काल के पीछे वही उत्तम मोती होते हैं सो उनहीं का पहिरावा मनुष्य पहरते हैं ऐसेही समुद्रों विषे एक पत्थर होते हैं सो बेल की नाईं उनका गुच्छा उपजता है और नित्य प्रति बढ़ताजाता है तिससे मूंगारूपी फल उत्पन्न होता है बहुरि और भी नाना प्रकार के रत्न जो समुद्रों विषे रचे हैं सो वह भी एक दूसरे से कौतुकरूप हैं और भिन्न २ गुण रखते हैं ऐसे ही समुद्रों विषे जहाजों का जो चलनाहै और जिस

प्रकार महाराज ने जहाजों के चलनेके निमित्त खेवटों को सीधे और उलटे पवन की बूझ दीनी है और जिस प्रकार नक्षत्र की विद्या उनको सिखाई है जो समुद्रों विषे जहाजों का चलना तारामण्डल के आश्रय होता है सो यह भी बड़ा आश्चर्य है क्योंकि उस ठौर विषे जल विना और कुछ चिह्न नहीं सूझता और वह जहाज देश देशान्तरों विषे सीधेही चले जाते हैं पर जब एक जलतत्त्वही को भली प्रकार विचार कर देखिये तब इसका रूप और निर्मलता और स्वाद और सम्बन्ध भी आश्चर्यरूप है क्योंकि जेता जल इकट्ठा होताजावे सो किसी प्रकार इसका सम्बन्ध तोड़ा नहीं टूटता बहुरि चर और अचरों का जीवनरूप है ताते जब किसीको तृषा के समय यह जल हाथ न आवे तब सर्व सम्पदा देकर भी पानी को पान किया चाहता है बहुरि जब वही जल शरीर विषे अटक जावे तो भी सर्व सामग्री देकर उसको बाहर निकाला चाहता है ऐसे ही पवन और मेघमण्डल की रचना भी अद्भुतरूप है जैसे मेघ, आकाश विषे जो यह पवन सदैव चलता रहता है सो यहभी समुद्रों की नाईं पड़ा उछलता है और इसका स्वरूप ऐसा है कि नेत्रों करके देखा नहीं जाता सो यहभी शरीरधारी जीवों का जीवनरूप है इस करके कि अनाज और जल की अभिलाषा किसी एक समय विषे होती है पर जब एक पलकपर्यन्त इसके प्राण रोंकेजावें तब निस्संदेह उसी समय मरने लगता है सो तुमको इस वार्त्ता की कुछ खबरही नहीं ताते इसका बखान करना भी मर्याद से रहित है पर तू भलीप्रकार विचार करके देख कि इसी मण्डल विषे बादल और बरफ़ और गरज और बिजली आदिक कैसे कौतुक बनाये हैं जैसे यह बादल अचानकही इकट्ठे मिलकर आकाश को आच्छादित करलेते हैं सो इनका उपजना कबहूं समुद्रों से होता है और कबहूं पहाड़ों से उपज आवते हैं अथवा कबहूं केवल आकाशही से प्रकट होते हैं ताते जिन स्थानों विषे जलकी अधिक चाह होती है तहां धैर्य से एक २ बूंद बर्षावते हैं सो जिस २ जीव और जिस २ खेती अथवा वनस्पति में जल पहुँचना होता है तब महाराज की आज्ञानुसार वहांही जल को पहुँचावते हैं और वनस्पति के फलों को हरा करते हैं सो उन्हीं फलों को सब कोई सर्वदा भक्षण करते हैं पर अचेतता करके महाराज की ऐसी रचना को कबहूं नहीं विचार देखते और उसकी संपूर्ण दया कोई नहीं पहिचानता बहुरि जब सबही

लोग मिलकर मेघ की बूंदों को गननेलगें तो किसी प्रकार इनका अन्त नहीं पासके और एक ऐसे देशहैं कि उनमें बरफ़ ही बरसताहै बहुरि बरफ़ को भी जीवों के प्रतिपाल के अर्थ बड़ी युक्ति से बनाया है इस करके कि जब केवल मेघों की वर्षा होवे तब वह जल इकट्ठाही बहजावे और खेतियों को पहुँच न सके ताते महाराज उसी जल को शरदी की प्रबलता के साथ बरफ़ बना लेताहै बहुरि उसी बरफ़ को सँवार करके पहाड़ों विषे रखता है सो ज्यों २ उष्णता की ऋतु आवती हैं त्यों २ वही बरफ़ समय पाकर गलता है ताते झरने और जल के प्रवाह हो चलते हैं सो देश देशान्तरोंपर्यन्त जीवों के कार्यों को सिद्ध करते हैं तात्पर्य यह कि महाराज ने इस बरफ़ही विषे इतनी दया प्रकट कीनीहै सो ऐसेही सर्व पदार्थों विषे उसकी दया भरपूर है ताते पृथ्वी और आकाश के जेते अणु हैं सो सबही महाराज अपने विचारके अनुसार गुण और प्रयोजन के निमित्त उत्पन्न किये हैं इसीपर महाराजने भी कहा है कि मैंने पृथ्वी और आकाशादिक सर्व सृष्टि को अपनी बूझ की नेतसाथ उत्पन्न किया है पर इस भेद को कोई नहीं जानसक्ता बहुरि तारामण्डल और देवतों और उनके स्थानों को भी ऐसा आश्चर्यरूप बनायाहै कि उनके निकट पृथ्वी और समुद्रों की रचना निस्संदेह तुच्छमात्र है ताते महाराज ने तुझको बारम्बार यही आज्ञा कीनी है कि तू तारामण्डल और नक्षत्रों का विचार करके मेरी समर्थता को पहिंचाने क्योंकि जब तू मेरी विचित्ररचना का विचार न करे और बूझ विना नक्षत्रों और आकाश की नीलता को देखतारहे तब यह देखना तेरा पशुओं की नाईं होता है पर तेरी तो ऐसी मन्दबुद्धि है कि अपने शरीर के आश्चर्यों की ओरही विचारकर नहीं देखता तब आकाश के आश्चर्यों को क्योंकर पहिंचाने ताते जिज्ञासुजन को इस प्रकार प्रमाण है कि शनैःशनैः विचार करके अपनी बुद्धि को बढ़ावे प्रथम तो अपने शरीर के आश्चर्यों का विचार करे बहुरि धरती पर जो नाना प्रकार के जीव हैं तिनके आश्चर्यों को विचार की दृष्टि सहित देखे तिससे पीछे वनस्पति और पहाड़ों की रचना जो अद्भुतरूप है तिनकी ओर भली प्रकार चित्त देवे बहुरि समुद्रों की रचना के विचार विषे सावधान होवे इससे उपरान्त मेघमण्डल के कौतुकों का विचार करे ऐसेही पुरियों और नक्षत्रों की आश्चर्यता को भली भाँति समझे बहुरि आकारवन्त जेते पदार्थ हैं सो तिनसे उल्लङ्घित होकर निरा-

कार तत्त्वों का विचारकरे तब ऐसी युक्ति करके श्रीराघवजी के स्वरूप को विचारने का अधिकारी होताहै पर प्रथम रचना के विचार बिषे ग्रहों और नक्षत्रों का विचारना इस प्रकार है कि महाराज ने इस ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति और स्थिति और संहार के निमित्त आश्चर्यरूप देवता और ग्रह नक्षत्र रचे हैं और द्वादश राशि को उपजाया है सो सबों की मूर्ति और रङ्ग और स्वभाव और स्थान भिन्न २ बनाये हैं और भिन्न २ क्रिया बिषे वही स्थित किये हैं बहुरि आकाश बिषे सबों की न्यारी २ गति है ताते जिन्हों का ऐसा तीक्ष्ण वेग है जो एक मास बिषे संपूर्ण आकाश की प्रदक्षिणा करलेते हैं बहुरि एक वर्ष पर्यन्त और एक बारहवर्ष पर्यन्त और एक तीस वर्षपर्यन्त ऐसेही एक इससे भी अधिक कालपर्यन्त आकाश की चारों फेर फिर आवते हैं सो इस विद्या की आश्चर्यता का भी पारावार कुछ नहीं पाया जाता इस करके कि यद्यपि तू इस धरतीही के कौतुकों को देखकर आश्चर्यवान् होता है इससे तू और सुन और महाराज ने आकाश बिषे इससे भी अनन्त गुण अधिक कौतुक रचे हैं क्योंकि जब एक सूर्यही के आकार और इसके प्रकाश की मर्याद का विचार करिये तब इसी बिषे हमारी बुद्धि थकित होजाती है बहुरि जब इस वार्त्ता का विचार करिये कि यह सूर्य एक क्षण बिषे केते लक्षयोजनों को लांघ जाते हैं तब इसका जानना भी बुद्धि बिषे समाय नहीं सक्ता ताते इतनाही जानना चाहिये है कि जब इस सूर्य के चलने और मर्याद को समझनाहीं कठिन है तब आकाश के विस्तार को क्योंकर समझा जावे और किस प्रकार वर्णन करिये सो यद्यपि यह आकाश ऐसा अपार है तौ भी महाराज ने अपनी शक्ति करके तेरे नेत्रों बिषे अल्परूप ही दिखाया है तात्पर्य यह कि इस प्रकार रचना का विचार करके तू श्रीरामजूकी बड़ाई और पूर्ण ऐश्वर्यको पहिंचाने पर महाराज की शक्ति ऐसी अपार है कि जेती कुछ विद्या हम को महाराज ने कृपा कीनी सो जब उसीके अनुसार हम कथन करें तो बहुत काल बीतजावे और पूर्ण न होवे और हमारी बुद्धि विद्यावानों और ऋषियों के निकट कुछ वस्तुही नहीं ऐसेही वेत्ताओं और महापुरुषों की बूझ ब्रह्मादिकों के निकट तुच्छरूप है बहुरि विद्यावानों और सर्व देवतों और ऋषि महापुरुषों और ब्रह्मा विष्णु आदिक ईश्वरों और सर्व सृष्टि का जेता ज्ञान है सो श्रीसीतारामजू की बूझके निकट अज्ञानता के समानही निस्संदेह है

तातें महाराजही धन्य हैं जिन्होंने सर्व जीवों को एती बूझ कृपा की है और फिर सबों के मस्तकपर अजानता का दाग़ लगाया है पर यह जो यथाबुद्धि संक्षेप करके मैंने विचार का वर्णन किया है सो इसका प्रयोजन यह है कि तू अपनी अचेतता को प्रसिद्ध पहिंचाने इस करके कि जब तू किसी राजा के घरकी सुन्दरता को देखता है तब आश्चर्यवान् होकर चिरकालपर्यन्त उसकी स्तुति करता रहताहै पर सर्वदा महाराज के घरही विषे तेरा निवास है और इसको देखकर तुझको कदाचित् आश्चर्य नहीं आवता सो यह ब्रह्माण्डरूपी घर कैसा अनुपम और विशाल है कि जिस विषे धरतीरूपी बिछौना बिछाया है बहुरि इस मन्दिर की छत आकाश है सो तिसको स्तम्भों बिना बनाया है और खजाने के स्थान पहाड़ हैं और रत्नों के डब्बे समुद्र नदी हैं और चर अचर जीव इस घर की सामग्री हैं चन्द्र सूर्य और तारामण्डल प्रकाश करनेहारे दीपक हैं पर तू ऐसे घर की आश्चर्यता से इस निमित्त अचेत है कि यह घर बड़ा है और तेरे नेत्र महामन्द हैं तातें तेरी दृष्टि विषे इसकी बड़ाई और सुन्दरता समाय नहीं सकती सो इसका दृष्टान्त यह है जैसे राजा के घर विषे किसी कीड़े मकोड़े का घर होवै तब उसको अपनी खोड़ बिना और कुछ नहीं सूझता तातें राजमहल की सुन्दरता और राज्य की बड़ाई को वह पिपीलिका कुछ नहीं जानती तैसेही जब तू भी मकोड़े अर्थात् चींटी की अवस्था को प्राप्तहुआ चाहता है तब इसी प्रकार शरीर के खान पान की चिन्ता विषे मग्न रहु और जब तू आप को मनुष्य जानता है तब विचार को अङ्गीकार करके ज्ञानरूपी बाग़ की सैर कर और बुद्धिरूपी नेत्रों को खोलकर महाराज की विचित्र रचना को पहिंचान तब श्रीरामजू के स्वरूप की आश्चर्यता विषे मग्न और विस्मित होजावे॥

आठवां सर्ग॥

भरोसा और एकता के निरूपण में॥

तातें जान तू कि भरोसा सर्वगुणों से विशेष है और श्रीरामजू के निकटवर्त्तियों की अवस्था है पर भरोसे की विद्याका पहिंचानना महाकठिन है और सूक्ष्म है सो इसके समझनेकी कठिनाई का कारण यह है कि जब यह पुरुष किसी मनुष्य अथवा देवता अथवा और किसी जीव जन्तुको श्रीराम बिना कर्मों का कर्त्ता देखे तब जानिये कि राघवजूकी एकता को उसने भली प्रकार नहीं

समझा पर जब ऐसेही निश्चय करे कि सब कुछ करन करावनहारा एक महाराज है तब धर्मशास्त्रों विषे पुण्य पाप का जो वर्णन किया है सो ऐसे जानने करके वह वचन व्यर्थ होते हैं बहुरि जब सर्व पदार्थों को गुण और अवगुणों का कारण न देखे तब पदार्थों की पहिंचाननेहारी बुद्धि और समझ सब मिथ्या होती है और जब श्रीराम विना और किसी पदार्थ के गुण अवगुण पर भरोसा करे तब निस्संदेह एकता खण्डित होती है ताते जब बुद्धि और शास्त्र और एकता सहित भरोसे को भली प्रकार समझिये जो किसी की खण्डिता न होवे तब इस प्रकार भरोसे का समझना महाउत्तम है सो गूढ़ से गूढ़ है इसी कारण से सबकोई इस विद्या को पहिंचान नहीं सक्ता ताते मैं प्रथम भरोसे की विशेषता वर्णन करूंगा बहुरि उसका स्वरूप कहूंगा और तिससे उपरान्त भरोसे की अवस्था और करतूति वर्णन करूंगा (अथ प्रकट करनी स्तुति भरोसे की) ताते ऐसे जान तू कि महाराज ने सर्व जीवों को भरोसाही करणीय कहाहै और धर्मका मूल भरोसा ही वर्णन किया है और यों भी कहाहै कि भरोसेवालेही मेरे प्रियतम हैं इसीपर महापुरुष ने भी कहाहै कि मैंने ध्यान विषे केते सहस्र पुरुष इस प्रकार देखे जो कष्ट और साधना विना सुख सेही मुक्तपद को प्राप्त हुये तब मैंने पूछा कि यह पुरुष कौन हैं तब आकाशवाणी हुई कि जिन्होंने मन्त्र यन्त्र और टोनेपर प्रतीति नहीं कीनी और सर्वथा श्रीराम पर भरोसा राखा है सो यह पुरुष वही हैं बहुरि योंभी कहा है कि जिस प्रकार महाराजपर भरोसा करने योग्य है सो जब तुम ऐसेही प्रतीति राखो तब यत्न विनाही तुम्हारी जीविका तुमको पहुँचरहे जैसे पक्षी नित्य प्रति भूखे उठ धावते हैं और रात्रि को तृप्त होकर शयन कररहते हैं और यों भी कहा है कि जो पुरुष अपने चित्त विषे एक श्रीरामही की टेक रखता है तिसकी सर्व सम्पदा श्रीरामही होतेहैं और अचिन्त्यही महाराज उसको आशा और तृष्णा से रहित जीविका पहुँचावता है बहुरि जो पुरुष संसार के पदार्थों की टेक रखता है तब महाराज उसको पदार्थ के आश्रयही छोड़ देता है इसीपर एक वार्त्ता है कि एक सन्त भरोसेवाले को जब अग्नि के कुण्ड विषे सन्दूक में डालकर डालतेभये तब वह सन्त कहनेलगा कि श्रीरामजू की सहायता परम सुखदायक है ताते मुझको उसी की आशा है सो अजहूं अग्निकुण्ड विषे प्राप्त न हुआ था तब मार्ग में एक देवता ने आयकर ऐसे कहा कि तुम कुछ चाहते

हो तब उन्हों ने कहा कि मैं तुझसे तो कुछ नहीं चाहता तात्पर्य यह कि उन सन्त ने श्रीरामही को सहायक कहा था सो इसी वचन के निर्वाहकरके स्तुति योग्य हुआ बहुरि एक सन्त को आकाशवाणी हुई थी कि हे साधो! जो पुरुष एकचित्त होकर मेराही भरोसा करे तब यद्यपि पृथ्वी आकाश के सर्व जीव उस के साथ विरुद्ध करें तौभी मैं उसको कुछ खेद नहीं पहुँचने देता इसीपर एक अनुरागी ने कहा है कि एकबार बिच्छू ने मेरे हाथको डसा तब मेरी माता ने श्रीरामदुहाई देकर मुझको कहा कि तू हाथ को बाहर निकाल जो इसके ऊपर मन्त्र पढ़िये तब मैंने दूसरे हाथ को निकाला और उसीके ऊपर मन्त्री ने मन्त्र पढ़ा इस करके कि मैंने महापुरुष के वचन को सुना था कि भरोसेवाले पुरुष टोने और मन्त्रों पर प्रतीति नहीं रखते इसीपर एक सन्त वैराग्यवान् ने कहाहै कि मैंने एक तपस्वी से पूछा था कि तू आहार कहांसे खावता है तब तपस्वी कहता भया कि मैं इस वार्त्ता को नहीं जानता ताते तू जीविका देनेहारे भगवन्तही से पूछ कि मुझको कहां से जीविका देताहै बहुरि एक भजनवान् से किसी ने पूछा था कि तू सारा दिन तो भजन विषे व्यतीत करता है ताते तेरी उदरपूर्त्ति क्योंकर होती है तब उसने मुख और दांतों की ओर सैनकर कहा कि जिसने चाकी ब-नाई है सोई अनाज को लावता है बहुरि एक प्रीतिमान् ने एक सन्त से पूछा था कि मैं कौनसे नगर विषे जायरहूं तब उसने कहा कि तू अमुकनगर विषे जायरह बहुरि उस प्रीतिमान् ने पूछा कि वहां मेरी जीविका क्योंकर होवेगी तब सन्त ने कहा कि जीवोंके हृदयपर प्रतीति की हीनता और संसार अधिक प्रबल हो रहाहै ताते उपदेश को अङ्गीकार नहीं करते (अथ प्रकट करना स्वरूप एकता का इस निमित्त कि भरोसे की नींव एकता के ऊपरही दृढ़ होती है) ताते जान तू कि भरोसा इस मनुष्य के हृदयही की उत्तम अवस्था है और उत्तमधर्म का फल है सो यद्यपि धर्मके द्वार अनन्त हैं पर भरोसा सब से विशेष है सो भरोसा तबहीं दृढ़ होता है जब इस मनुष्य के हृदय विषे दो प्रकार की प्रतीति दृढ़ होवे एक तो श्रीरामजू की एकता को भली प्रकार समझना और उसी के ऊपर प्र-तीति करनी १ बहुरि महाराज को परम कृपालु दयालु और उदार जानना २ सो एकता का बखान करनाही अमित है और एकता की विद्या भी और सब विद्याओं का अन्त है पर जेती कुछ एकता भरोसेकी दृढ़ता के निमित्त चाहती

है सो मैं तिसकाही कुछ वखान करताहूं ताते जान तू कि एकता चार प्रकारकी है सो एक तो फलरूप है १ और एक फल का रस है २ बहुरि तीसरी एकता त्वचारूप है ३ और चौथी त्वचाकी भी त्वचा है ४ ताते प्रसिद्ध हुआ कि दो प्रकार की एकता फलरूप है और दो प्रकार की एकता त्वचावत् है जैसे पिस्ते और बादाम की दो त्वचा हैं और दो फल होते हैं सो एकफल गिरी का नाम है और दूसरा जो गिरी का रस निकलता है सो फल का भी फल और साररूप है ताते प्रथम एकता यह है कि मुख से एक श्रीसीतारामही को सब का मूल और समर्थ और कर्त्ता कहना और हृदय विषे प्रतीति कुछ नहीं रखनी सो यह एकता पाखण्डियों की है १ बहुरि दूसरी एकता यह है कि देखादेखी करके हृदय विषे कुछ प्रतीति करनी अथवा पण्डितों की नाईं विद्या की युक्तियों करके हृदय विषे प्रतीति रखनी २ बहुरि तीसरी एकता यह है कि हृदय के नेत्रोंके साथ प्रत्यक्ष देखे जो सबों का मूल एक श्रीरामही हैं और यथार्थ की दृष्टि करके समर्थ और कर्त्ता वही हैं और सब पराधीन और उनके प्रेरेहुये चलते हैं सो जब ऐसे ज्ञान का प्रकाश इस मनुष्य के हृदय विषे उपजता है तब यह वार्त्ता उसको प्रसिद्ध दृष्ट आवती है पर यह अवस्था पण्डितों और संसारीजीवों की नाईं नहीं होती काहेसे कि वह प्रतीति वचनों की युक्ति और देखादेखी करके होती है और तीसरी एकता केवल हृदय का प्रकाश है और ज्यों का त्यों दर्शन है सो यथार्थ दर्शन और वचनों की प्रतीति विषे बड़ा भेद है जैसे कोई पुरुष इस प्रकार प्रतीति करे कि अमुक पुरुष अपने गृह विषे निस्संदेह है इस करके कि मैंने अमुक पुरुष से सुना है सो यह संसारीजीवों की प्रतीति की नाईं है जो माता पिता से सुनकर श्रीराघवजी को एक मानते हैं बहुरि विद्यावानों की प्रतीति ऐसी है जैसे कोई पुरुष किसी पुरुष के द्वारपर घोड़े और टहलुवे को प्रत्यक्ष देखे तब इस युक्ति करके प्रतीतिकरे कि वह पुरुष भी निस्संदेह गृह विषे होवेगा और तीसरी विचारवानों की एकता इसप्रकार है जैसे कोई पुरुष घरवाले मनुष्यको प्रकट जाइ देखे ताते इस तीनप्रकार की प्रतीति विषे बड़ाही भेद है पर यद्यपि यह तीसरी एकता महाउत्तम अवस्था है तोभी नानात्वदृष्टि विषे दूर नहीं होती इस करके कि प्रेरक को भिन्न जानता है और सृष्टि को भिन्न जानता है ताते यह भी प्रकट द्वैतरूपहै ३ बहुरि चौथी एकता यह है कि सबको एकही देखे और भिन्नता कुछ न राखे सो

इस एकता विषे द्वैत का अंश कुछ नहीं रहता ताते सन्तजनों ने इस अवस्था को निरहंकारपद कहा है इसीपर एक वार्त्ता है कि एक ज्ञानवान् पुरुष ने एक भरोसवान् को वन विषे फिरता देखा तब उससे पूछता भया कि तू क्या सर्वथा वन का अटन करता है तब उस भरोसवान् ने कहा कि मैं निराश वृत्ति के साथ अटन करके भरोसे को दृढ़ किया चाहताहूं बहुरि ज्ञानवान् ने कहा कि जब तेरी सर्व आयुष् उदरपूर्त्ति विषे व्यतीत हुई तब निरहंकार पदविषे स्थित कब होवेगा ताते प्रसिद्धहुआ कि एकता चारप्रकार है सो एक पाखण्डियों की एकता बादाम की हरित त्वचावत् है सो किसी कार्य में नहीं आवती ताते उस विषे इतना प्रयोजन है कि दूसरी त्वचा के परिपक्व होनेके निमित्त सब्ज त्वचा भी चाहिये है तैसेही पाखण्डियों की एकतासे भी और कुछ गुण नहीं उपजता पर उसविषे इतनाही कार्य है कि धर्मशास्त्रवाले तिसको मार नहीं डालते बहुरि दूसरी जो बादाम की त्वचा होती है सो सर्वदा गिरी के ऊपर रहती है ताते गिरीविषे कटुता प्रवेश नहीं करती सो यद्यपि इस दूसरी त्वचा का गुण प्रकट है तौभी गिरी के स्वाद साथ कुछ निकटता नहीं रखती तैसेही विद्यावानों की एकता और कर्मकाण्डियों की प्रतीति यद्यपि नरकों की अग्नि से बचावती है तौभी विचारवानों के आनन्द से रहित है बहुरि यद्यपि एक तीसरी एकता बादामों की गिरीवत् अधिक स्वादी है तौ भी जब उसका रस निकाल लीजिये तब गिरी भी फोकट रहजाती है तैसेही तीसरी एकता भी द्वैतदृष्टि से रहित नहीं होती ताते चौथी ही एकता पूर्ण पद है इस करके कि चौथे पदवाला सबको एकही देखता है और एकही मानता है बहुरि आपभी उसी एकता विषे लीन होजाताहै और जब तू इस प्रकार प्रश्न करे कि यह वार्त्ता मेरी समझ में नहीं आती ताते मुझसे खोल कर कहिये कि धरती आकाशादिक जेती कुछ सृष्टिहै सो सबही भिन्न २ रूपहै ताते सबको एकरूप क्योंकर समझिये? सो इसका उत्तर यह है कि पाखण्डियों और विद्यावानों की एकता तो प्रकटही युक्ति करके समझ सकते हैं पर तीसरी और चौथी एकता का समझना कठिन है सो चौथी एकता भरोसे के साथ कुछ सम्बन्ध नहीं रखती ताते मैं तीसरी एकताही को खोलकर कहूंगा इस करके कि जिसको चौथी एकता की बूझ प्राप्त न हुई होवे तिसको बखान करके सुनाना भी कुछ लाभदायक नहीं होता पर अब इस ठौर विषे जो वचन आनपहुँचा है ताते मैं

संक्षेप करके चौथी एकता का भी कुछ वखान करताहूं कि यद्यपि बहुत पदार्थ भिन्न २ रूप और भिन्न २ क्रियासंयुक्त होते हैं पर विचारवान् परस्पर उनका सम्बन्ध देखकर एकही स्वरूप जानताहै जैसे मनुष्य के शरीर विषे त्वचा, मांस, अस्थि, हाथ, पांव आदिक और भी अनेक अङ्ग होते हैं पर विचार की दृष्टि करके उसको मनुष्य एकही कहते हैं ताते मनुष्य को देखनेहारा पुरुष ऐसेही कहता है कि मैंने अमुक पुरुष को देखा है और उसके अङ्गों को स्मरण विषे भी नहीं लावता तैसेही पूर्णज्ञान की अवस्था भी इसी प्रकार है कि ज्ञानी पुरुष यथार्थ की दृष्टि विषे सर्व पदार्थों को एकरूपही देखता है इस करके कि धरती, आकाश और नक्षत्र आदिक जेती कुछ सृष्टि है सो एकही शरीर की नाई है और शरीर के अङ्गों की नाई सर्व पदार्थ परस्पर सम्बन्ध रखते हैं पर इन सर्व पदार्थों की एकता भी एक भाव करके समझनी योग्य है और सर्व प्रकार एकता नहीं होसक्ती जैसे शरीर के सर्व कर्मों विषे एक जीवही की सत्ता वर्त्तमान है पर शरीर को सर्व जीव के साथ एकता नहीं कहीजाती सो इस भेद को मन्दबुद्धि मनुष्य समझ नहीं सक्ते जैसे भगवन्त ने भी कहाहै कि मनुष्य को अपने शरीर की नाईं बनाया है इसी कारण से मैं इस वचन को गुह्यही राखाचाहता हूं कि ऐसे वचनों विषे अल्पबुद्धि जीवों का मन उलटा भ्रामिक होजाता है ताते तीसरी एकता जो भरोसे की दृढ़ नींव है तिसका समझना इस प्रकार है कि सूर्य, चन्द्रमा, तारे, पवन और बादल आदिक जेते पदार्थ हैं सब एक पुरुष के अधीन हैं जैसे लिखारी के हाथ में क़लम पराधीन है कि आप करके हलने के योग्य कुछ नहीं ताते जैसे क़लम का हलना चलना आप करके जानना अयोग्य है तैसेही किसी पदार्थ अथवा किसी मनुष्य की करतूति भी आप करके जानना अयोग्य है इसकरके कि मनुष्य तो अपने आप करके महाअधीन और प्रेरा हुआ वर्त्तता है जैसे मैंने पीछे भी कुछ वर्णन किया है कि जीविका कर्म बल के आश्रय है और बल चाह के अधीन है बहुरि चाह का उपजना और न उपजना जीवके अधीन नहीं ताते प्रसिद्ध हुआ कि यह मनुष्य केवल पराधीन है पर तू इस वार्त्ता को तब समझेगा जब मनुष्य के सर्व करतूतों को भिन्न २ करके कहिये सो सबही कर्म तीन प्रकार के प्रकट हैं प्रथम तो स्वभाव के कर्म हैं जैसे नदी जो मनुष्य को डुबाय लेतीहै सो यह उसका स्वाभाविक कर्म कहावता

है तैसेही मनुष्य का भी यह आदि स्वभाव है कि जब जलविषे चरण राखे तब नीचेही को चलाजाता है बहुरि दूसरा कर्म अवश्यही कहावता है जैसे श्वासों का निकलना सो श्वास भी यद्यपि श्रद्धासंयुक्त निकलते हैं तौभी अपने बलकरके रोंके नहीं जासकते २ बहुरि तीसरे कर्म इच्छाचारी हैं जैसे बोलना और चलना अर्थ यह कि जब चाहे तब बोलना चलना न होवे ३ पर स्वाभाविकी कर्म तो प्रकटही पराधीन समझा जाताहै कि मनुष्य का डूबना और नदी का डुबावना इन दोनों की चाहकर नहीं होता बहुरि जब भलीप्रकार विचार करके देखिये तब आवश्यक कर्मभी पराधीन हैं इस करके कि श्वासों के निकलने के बिषे इस जीव की ऐसी दृढ़ श्रद्धा उत्पन्न कीनी है कि वह किसी प्रकार रोंके नहीं जासकते जैसे किसी मनुष्य के नेत्रों की ओर सुई सम्मुख करके कोई डरावे तब यद्यपि ऐसे चाहे कि मेरे नेत्र खुलेरहें तौभी अवश्यही मूंदे जाते हैं इस करके कि भगवत् ने नेत्रोंविषे ऐसेही दृढ़श्रद्धा राखी है ताते इन दोनों प्रकार के कर्मों बिषे इस मनुष्य की पराधीनता प्रकट हुई बहुरि तीसरे जो इच्छाचारी कर्म हैं जैसे बोलना और चलना सो इन बिषे पराधीनता समझनी अति कठिन है इस करके कि जब चाहे तबहीं बोलता चलताहै ताते इसको पराधीन क्यों कहिये सो इसका उत्तर यहहै कि चाह तबहीं उत्पन्न होतीहै जब प्रथम बुद्धि आज्ञा करे और जिस कर्म बिषे अधिक भलाई दिखावे तब शीघ्रही उस बिषे चाह उपजती है बहुरि इन्द्रियां हलने लगती हैं जैसे सुई को देखकर तुरतही नेत्र मूंद जाते हैं सो नेत्रों का मूंदना बुद्धि बिषे सर्वदा भला भासता है ताते यह वार्त्ता अधिक निश्चय होरही है इसी कारण से इस कर्म का नाम आवश्यक कहा है कि इस बात बिषे विचारने की अपेक्षा कुछ नहीं होती जैसे कोई पुरुष किसी को लाठी लेकर मारनेलगे तब तुरतही उससे भागा चाहता है पर जब उसको मन्दिर के ऊपर वह पुरुष मारताहोवे तब लाठी के भय करके ऊंचे मन्दिर से छाल नहीं भरता और जब मन्दिर की उंचाई थोड़ी होवे तब तुरतही नीचे कूद पड़ताहै तात्पर्य यह कि जब लाठी का दुःख अधिक देखता है तब नीचे कूदताहै और जब कूदने की चोट का दुःख अधिक देखता है तब उसके पांव ऊपरही बन्द होरहते हैं ताते प्रसिद्ध हुआ कि इन्द्रियां श्रद्धा के अधीन हैं और श्रद्धा बुद्धि की आज्ञा के वशीकार है इसी कारण से जब बुद्धि करके किसी कर्म बिषे भलाई देखता है तब तुरतही उस कर्म

की श्रद्धा उपज आवती है अन्यथा नहीं उपजती जैसे बहुत से मनुष्य अपने पास सर्व शस्त्र रखते हैं तो भी अपने आपको कोई नहीं मार सकता ताते जान तू कि यद्यपि श्रद्धा बुद्धि के अधीन है पर जब भलीभांति देखिये तब बुद्धि भी पराधीन है इस करके कि बुद्धिरूपी दर्पण है सो तिस विषे भलाई और बुराई स्वाभाविकही भास आवती है इसी कारण से अपना मरना भला नहीं भासता पर जब ऐसेही पीड़ा करके दुःखी होवे तब मरना भी सुगम भास आवता है ताते इस कर्म को इच्छाचारी कहते हैं सो ऐसी करतूति बुद्धि की आज्ञा के अधीन होती है पर जब सूक्ष्म दृष्टि करके देखिये तब बुद्धि का पहिंचानना और श्वासों का निकालना और नदी विषे डूबना आदि जो तीनों कर्म हैं सो सबही स्वभाव के कर्म हैं स्वभाव का अर्थ यह है कि स्वतः प्रकृतिकर सिद्ध होते हैं ताते नदी विषे डूबनाभी मनुष्य की स्वतः प्रकृति है और श्वासों का निकालना भी इसका स्वतः स्वभाव है तैसेही बुद्धिरूपी दर्पण विषे भी भलाई बुराई का भासना बुद्धि की स्वतःप्रकृति है ऐसेही सर्व पदार्थों का सम्बन्ध परस्पर मिला हुआ है जैसे जंजीर विषे कुण्डियां होती हैं सो यह पदार्थ भी अगणित हैं ताते सबों का बखान नहीं किया जाता पर इस मनुष्य विषे बुद्धि का बल जो रखा है सो यह भी जंजीर की नाईं एक कुण्डीवत् है इसी कारण से यह मनुष्य बुद्धि और बलके स्थान विषे आपको कर्ता जानता है पर तोभी यह बड़ी मूर्खता है क्योंकि इस मनुष्य का और बुद्धि बल का इतनाही सम्बन्ध है कि श्रीरामजू ने इस मनुष्य को बुद्धि बल का स्थान बनाया है जैसे वृक्ष को हलने का स्थान बनाया है पर वृक्ष का जो हलना है सो बुद्धि और श्रद्धा और बलकर नहीं होता ताते वृक्ष को मनुष्य की नाईं नहीं करते पर महाराज के बल विषे वृक्ष और मनुष्य दोनों पराधीन हैं इस करके कि महाराज का बल मनुष्य की नाईं पराधीन कदाचित् नहीं ताते प्रसिद्ध हुआ कि मनुष्य वृक्ष की नाईं जड़ भी नहीं और श्रीरामजी की नाईं स्वाधीन भी नहीं ताते मनुष्य को दोनों का मध्य कहा है तात्पर्य यह कि यद्यपि यह मनुष्य कर्मकर्त्ता दृष्टि आवता है तोभी इसकी बुद्धि और श्रद्धा अपने आश्रय नहीं बहुरि जब तू इस प्रकार प्रश्न करे कि जब इसके हाथ कुछ नहीं तब पाप पुण्य किस निमित्त है और सन्तजनों का आवना किस निमित्त है और धर्मशास्त्र किस निमित्त है ? तब इसका उत्तर यह है जान

तू कि एकता यह शास्त्रों के बीच है और शास्त्र एकता बिषे है इसके बीच अल्प-बुद्धि बहुत बूड़ते हैं और इस बूड़ने से वही बचता है जो पानी के ऊपर चले और जो पानीपर चल न सके तो तैरना जाने और बहुत इसप्रकार भी बचे हैं जो अपने को इस नदी बिषे न डालें तब डूबते नहीं और अल्पबुद्धि इसभेद को जानते नहीं उनपर दया करनी यही है कि उनको किनारे राखिये तब वह अचानक न डूबें और जो एकता की नदी बिषे डूबे हैं तिनमें बहुत से ऐसे हैं कि वह तैरना नहीं जानते और समझभी ऐसी नहीं जो तैरना सीखें और अपने अभिमान करके किसी से पूछाभी नहीं ताते डूब जाते हैं और ऐसे जानते हैं कि हमारे हाथ कुछ नहीं सब कुछ वही करताहै जिसके लेखमें बुराई लिखी है सो यत्नकर उसको उलटाय नहीं सक्ता और जिसके लेख में भलाई लिखी है सो यत्न करने की उसको अपेक्षा कुछ नहीं होती सो इस प्रकार समझना सबी भूल है और अज्ञानता है और विनाश इसका है और मार्ग से भूलना है और तात्पर्य इसका पहिंचानना ऐसा नहीं जो पोथियों बिषे बखान करिये पर वचन जो यहां आय पहुँचा तब इतना कहना प्रमाण है जान तू कि यह जो तैंने कहा कि पुण्य और पाप किस निमित्त हैं? तिसका उत्तर यह है जान तू कि पुण्य पाप इस निमित्त नहीं कि तैंने एक करतूति किया और किसी को तेरे ऊपर क्रोध आया तब उस कर्म के अनुसार तुझको उसने दण्ड दिया अथवा तेरे ऊपर प्रसन्न हुआ और प्रसन्नता के अनुसार कृपा करी सो इन दोनों बातों से भगवत् न्यारा है पर ज्यों वात, पित्त, कफ करके शरीर बिषे रोग बढ़े सो जब औषध किया और औषध का बल पाया तब अरोगता उत्पन्नभई तैसे जब काम क्रोध ने तेरे ऊपर बल पाया और तू उनके अधीन हुआ तिस करके अग्नि उत्पन्न हुई सो उसने तेरे हृदय बिषे प्रवेशकिया सो तेरे विनाश का कारण है सो इसी पर महापुरुष ने भी कहा है कि जिस क्रोध को तैंने अपने ऊपर प्रबलकिया है सो अग्निरूप है और जिस प्रकार बुद्धि के प्रकाश की प्रबलता काम क्रोध की अग्नि को निवृत्तकरदेती है तैसेही धर्मका प्रकाश नरक की अग्नि को निवृत्त करता है इसी प्रकार अग्नि नरक के प्रीतिमान् के धर्म का प्रकाश सों पुकार करती है और भागजाती है जैसे मच्छर पवन से भागजाता है इसी प्रकार काम क्रोधादिक की अग्नि बुद्धि के प्रकाश सों भागजाती है तात्पर्य यह कि तेरेही

बिषे भला बुरा उत्पन्न होताहै और तू उसीके अनुसार पड़ा भोगताहै इसी प्रकार भगवत ने भी कहाहै कि तुम्हारे कर्मानुसार सुख दुःख होताहै सो नरक की अग्नि का बीज काम और क्रोध है सो तेरे अन्तःकरण बिषे होता है सो जब तेरे प्रति साक्षात्कार होता तब इस बात को प्रकट जानता जैसे तू बिषको अङ्गीकार करे तब तुझको रोग उत्पन्न होताहै सो किसीके क्रोध करके तेरा विनाश नहीं हुआ तैसे ही पापकर्म और भोग बुद्धि को नाश करते हैं सो बुद्धि का नाश तेरी भागों की हीनता का कारण है सो यह हृदय की अग्नि है बाहर की स्थूल अग्नि नहीं जैसे चुम्बक पत्थर लोहेको खैंच लेताहै सो किसीके क्रोध करके नहीं तैसेही बुराई भलाई की करतूति इसी प्रकार समझ लीजिये बहुरि खोलने करके विस्तार होताहै यह उत्तर तेरे प्रश्न का है कि पाप पुण्य किस निमित्त है? अब इसका उत्तर सुन जो तैंने पूछा था कि धर्मशास्त्र किस निमित्त है और सन्तजनों का आवना किस निमित्त है? सो तिसका उत्तर यह है कि तू जान कि यहभी सर्व समर्थ महाराज की करुणा की प्रबलता और जबरदस्ती है जो बरबस के जीवों को शुभमार्ग में लगायकर नरक से बचाय रखते हैं और सुखबिषे प्रवेश करावते हैं इसी प्रकार भगवत् ने भी कहाहै कि दण्ड करके तुम्हारी रक्षाकरी गई है इसी पर महापुरुषने भी कहा है कि पतङ्गकी नाईं तुम आपको अग्नि बिषे डालतेहो और मैं तुमको पकड़ २ रखता हूं सो यह जंजीर भगवतकी है तिसकी एककुण्डी सन्तजनों के वचन हैं सो तिन वचनों के अनुसार तेरे बिषे समझ उत्पन्न होती है तिस करके मार्ग कुमार्ग पहिंचाना जाताहै सो उन वचनों के प्रताप करके बुद्धि की काई उतर जाती है तब तुमको यह समझ प्राप्त होती है कि परलोक मार्ग बिषे चलना इस संसार के कार्यों से विशेष है तब इस करके तेरे हृदय बिषे परलोक मार्ग चलने की श्रद्धा उत्पन्न होती है सो इस श्रद्धा करके तू करतूति बिषे सावधान होता है क्योंकि करतूति श्रद्धा के अधीन है सो इस जंजीर में बांधकर तुझको नरक से बचायकर उत्तम लोकबिषे बरबस प्रवेश करावते हैं तिसपर दृष्टान्त यह है कि सन्त अजापालक हैं और दाहिन ओर हरी दूब है और बामदिशि सिंह और गढ़ा है सो अजापाल गढ़ेके आगे खड़ा होकर लाठी हलावताहै जो बायें ओर घास के निकट जावे और गढ़ा और सिंह से इनकी रक्षा होवे सो सन्तजनों का आवना इस निमित्त हुआहै और यह जो तुमने प्रश्न किया था कि जिनके लेखबिषे बुराई लिखी

है तब उसका पुरुषार्थ करना व्यर्थ है सो यह वचन एक प्रकार तो सत्य है और दूसरे प्रकार मिथ्या है सो यह वचन तेरी नतकार का कारण है सो यह चिह्न उसका है जिसका भाग्यहीन होनाहै सो तिसके हृदयविषे ऐसी समझ आन उत्पन्न होती है जो भले कर्म विषे उद्यम नहीं करता जैसे जो कोई खेती नहीं बोवता वह नहीं लुनता जैसे जिस पुरुष की मृत्यु भूखेमरने करके लिखी है वह ऐसे समझता है कि जब मेरे कर्मविषे भूख करके मरना लिखाहै तब मुझको भोजन पावने करके क्या लाभ होवेगा? ताते भोजन नहीं करता सो मृतक होताहै और जिसके भाग्य में निर्धनता की आज्ञा हुई है तब उसके हृदय विषे यही आन उपजती है कि खेती बोवने करके मुझको क्या लाभ होवेगा? ताते बीज नहीं बोवता सो इसी करके निर्धनही रहता है और जिसके लेख विषे धन संपदा लिखी है वह व्यवहार और खेती और भोजन विषे उद्यम करताहै ताते जाना जाताहै कि जो भगवत् ने किया है सो व्यर्थ नहीं किया सो भगवत् ने जैसे २ कार्य जिस निमित्त उत्पन्न किये हैं सो उसीके सम्बन्ध करके सिद्ध होते हैं अन्यथा नहीं होते इसी पर भगवत् ने भी कहा है कि तुम अपने हृदय के स्वभाव और करतूति की ओर देखो कि किस प्रकार वर्त्तते हैं इसी करतूति के अनुसार अपनी भलाई बुराई अन्त की बांचलेवो जब तुमको विद्या पढ़ने की अभिलाषा आन उपजे तब जान कि तेरे भागों का लक्षण है पर जब विद्या संपूर्ण यत्न करके पढ़े और जब तेरे लेख में मूर्खता लिखी है तब तेरे हृदय विषे इस प्रकार आन उपजती है कि विद्या करके मुझको क्या लाभ होवेगा? ताते अपनी मूर्खता और अज्ञानकी पत्री बांचले तात्पर्य यह कि काम परलोक का भी इसी प्रकार है जैसे इस संसार के कार्य हैं जब इस प्रकार समझा तब यह तीनों संशय तेरे निवृत्त होते हैं और एकता ठहरजाती है तब जानाजाता है कि बीज बुद्धि और शास्त्र और एकता विषे भेद कुछ नहीं पर जब तेरे बुद्धि के नेत्र खुलें सो इससे अधिक इस ग्रन्थ विषे इस वार्त्ता का खोलना प्रमाण नहीं (अथ प्रकट करना धर्म के दूसरे लक्षण का जो भरोसे की नींव है) ताते जान तू कि पीछे जो कहा है कि भरोसा दो निश्चय का फल है एक एकता श्रीरामजू की सो तिसका निर्णय आगे कियागया और दूसरा यह कि तू यह निश्चय लावे कि उत्पन्न करनेहारा वही एक महाराज है और सब उसी के आश्रय हैं और सब पर दयालु और कृपालु और जाननेहारा है

दया और कृपा उसकी सर्वजीव चींटी और मच्छर पर्यन्त पर अपार है तहां इस मनुष्य की क्या वार्त्ता है सीतारामजू की दया माता और पिता जैसे पुत्रपर करते हैं तिससे भी अधिक है इसीपर महापुरुषने भी कहा है कि सीतारामजूकी दया माता और पिता से भी अधिक है और योंभी जान तू कि यह जगत् और इस जगत् विषे जो उत्पन्न हुये हैं सो सब को पूर्ण और सुन्दर और अपने अनुभव करके ऐसा महाराज ने बनाया है जो और प्रकार न बनताथा अर्थात् जो जैसे बनाया सो उसी प्रकार चाहिये था और योंभी जान कि महाराज ने अपनी दया करके कुछ दुराय नहीं राखा जैसे उत्पन्न किया है तैसेही बनना था जो सर्व बुद्धिमानों की बुद्धि बटुरकर कहे और विचार करे कि इस जगत् विषे एकबाल और मच्छर के पंख समान इस प्रकार न होना चाहियेथा जिस प्रकार अब है अर्थात् कुछ वृद्ध अथवा घाट होता अथवा सुन्दर अथवा बुरा होता तो ऐसी कोई वस्तु नहीं पावेंगे और जानेंगे कि जैसे बनना चाहिये था तैसाही है जो वस्तु कुरूप है सो पूर्णता उसकी कुरूपता विषेही है जो कुरूप न होती तो खोटी होती बहुरि रचना की विचित्रता न रहती क्योंकि जो कुरूपता न होती तब सुन्दरता की विशेषता न होती और सुन्दरता का स्वाद भी किसी को न आवता और जो नीचता न होती तब संपूर्णता न होती तब संपूर्णता अपनी का स्वाद न आवता सो पूर्ण और नीच एक दूसरे की अपेक्षा करके जाना जाताहै जैसे पिता न होता तब पुत्र न होता सो एक दूसरेके संयोग कर जानाजाता है जब ऐसे न होवे तब भलाई और बुराई न रहे यह वार्त्ता जगत् के लोगों से गुह्य भली है पर यह वार्त्ता भी जान कि जो कुछ महाराजने किया है सो भलाई इसी में है जैसे कुछ बनना योग्य था तैसेही महाराज ने किया है जो कुछ जगत् विषे रोग और अधीनता और पाप और मनमुखता और नाश होना और घटना और दर्द जो कुछ महाराज ने किया है सो उसी विषे प्रयोजन था बहुरि जो महाराज ने किया सो प्रयोजन बिना नहीं किया जिसको निर्द्धन उत्पन्न किया सो भलाई उसकी उसी में थी और जो उसको धन प्राप्त होता तब उस विषे उसकी हानि होती और जिसको धनवान् किया है सो उसकी भलाई इसी विषे थी पर यह भी एक दरिया एकता के दरिया ताईं अपार है सो इस विषे बहुत डूबे हैं सो इस भेद का खोलना भी प्रमाण नहीं जो इसका निर्णय करिये

तब बहुत विस्तार होता है पर तात्पर्य इसका यह है कि मनुष्य को इसपर प्रतीति चाहिये कि भरोसा इसी पर सिद्ध होताहै (अथ प्रकट करना रूप भरोसे का) ताते जान तू कि भरोसा अवस्था हृदय कीहै सो भरोसा फल दो धर्म का है एक श्रीरामजू की एकता पर प्रतीति दृढ़ करनी और दूसरे उनकी दया का निश्चय लावना इन दोनों पर दृढ़ विश्वास रखने का फल भरोसा है और यह विश्वास हृदय की एक उत्तम अवस्था है तिसका भाव यह कि जैसे कोई अपना कार्य किसी बुद्धिमान् को सौंप देताहै तब उसपर प्रतीति रखताहै तैसेही महाराज पर प्रतीति यह चाहिये कि अपनी जीविका पर दृष्टि न राखे जब कोई प्रकट सम्बन्धजीविका का न देखे तबहृदय विषे शोकवान् न होवे दृढ़ प्रतीति श्रीरामपर राखे कि मेरी जीविका श्रीसीताराम विश्वम्भरजी पहुँचावेंगे सो इसका दृष्टान्त यह कि जैसे किसी मनुष्य ने छल करके इसपर राजद्वार में झूठा दावाकिया होवे तब इसने किसी बुद्धिमान् को अपना वकील किया जो दावे छलवाले को दूरकरे पर जब तीनलक्षण उस वकील में पायेजावें तब उसपर प्रतीति करताहै और निर्भय होता है सो तीनलक्षण यह हैं एक उस दावेवालेके छल और इसके हवाल का ज्ञाता होवे १ दूसरा बलवान् होवे और वाचालशक्ति विशेष रखता होवे कि जो वार्त्ताजाने सो भली प्रकार निडर होकर कहे २ तीसरा इसपर दयालु होवे भला चाहनेहारा होवे ३ जब यह तीन लक्षण उस विषे संपूर्ण जानता है तब उस पर दृढ़ प्रतीति करता है पर अपनी सयानप चतुराई दूर करता है इसी प्रकार जिसने जाना कि श्रीसीतारामजी के आश्रय सब कुछही है और कर्त्ता और कोई दूसरा नहीं बहुरि जानकारी और बलभी संपूर्ण उन विषे पायाजाताहै और दयालु कृपालु भी उनके समान कोई नहीं तब हृदय करके श्रीसीतारामजी पर दृढ़ प्रतीति करताहै तब अपनी चतुराई और सयानप छोड़देता है और इस प्रकार जानता है कि जीविका मेरी जितनी श्रीरामजू ने लिखी है सो समय पायकर मुझको प्राप्त होवेगी और और भी जो मेरे कार्य हैं सो महाराज की दया के साथ पूर्ण होवेंगे सो यद्यपि हृदय विषे यह प्रतीति महाराज पर रखता है पर तौ भी करतूति द्वारा ऐसा बल नहीं होता कि जो दृढ़ प्रतीति करके और बल करके श्रीरामजू को ऐसा समर्थ और दयालु जानकर निर्भय होवे कुछ संशय हृदयविषे आन होता है सो इसके बल की हीनता है जैसे कोई मृतक मनुष्य को देखकर

उसके साथ अकेला शयन नहीं करता यद्यपि जानताहै कि यह जड़ है पर तौ भी भय करता है तैसेही भरोसवान् को हृदय की प्रतीति भी दृढ़ होवे और बल करतूति विषे भी दृढ़ होवे तब विक्षेपता हृदय की दूर होवे और हृदय सुखी होवे जबलग प्रतीति और सुख संपूर्ण न होवे तबलग भरोसवान् संपूर्ण नहीं होता सो अर्थ भरोसे का यह है कि प्रतीति श्रीसीतारामजू पर सर्वकार्यों विषे होवे जैसे एक सन्त दृढ़ भरोसवान् हुये हैं सो उन्होंने कहा है कि हे महाराज ! मुझको निश्चय तो है पर हृदय भी विश्राम पावे सो प्रथम हृदय विषे विश्राम इन्द्रियों और संकल्प के अधीन होता है पर जब दृढ़ होकर अन्तर साक्षात्कार होता है तब संशय कोई नहीं रहता सहजही हृदय विश्रामी होता है (अथ प्रकट करने पद भरोसे के) ताते जान तू कि भरोसा तीन प्रकार का है प्रथम यह कि जैसे किसी ने अपने दावेवाले के अर्थ अपना वकील किया सो वह उस वकील पर विश्वास करता है और निर्भय होताहै १ और दूसरा भरोसा यह है जैसे बालक की अवस्था होती है कि जो कुछ उस बालक को प्राप्त होताहै सो माता के विना इतर से नहीं जानता जब भूख उसको लगती है तौभी माता को पुकारता है और और जो तृषा लगती है तौभी माताकी ओर जाताहै सो यह भरोसा ऐसा है जो अपने भरोसे की भी खबर नहीं रखता काहेसे कि उसी माताविषे लीन रहता है और प्रथम भरोसेवाले को अपनी खबर रहती है और यत्न करके अपने को भरोसे पर रखताहै २ और तीसरा भरोसा यह है कि अवस्था उसकी मृतक की नाईं होती है सो मृतक आपकर कुछ नहीं करता उसकी क्रिया और जीव करते हैं तैसे यह तीसरे भरोसेवाला अपने को मृतक जानता है और श्रीराघवजूकी आज्ञा जिस विधि उसको चलावती है तिसही विधि चलताहै और अपनी फुरना उसको कुछ नहीं रहती सो जब कोई कार्य उसको आन होवे तब याचना भी महाराज से कुछ नहीं करता सो उस बालक की नाईं नहीं जो अवसर विषे माता को बुलावता है सो यह ऐसे बालक की नाईं है जैसे बालक जाने कि जब मैं माता को न बुलाऊं तौ भी मेरे पास आप आवेगी तैसे यह भरोसेवाला तीसरा जानताहै कि जब मैं याचना न करूं तौभी श्रीजानकीनाथ सर्वप्रकार मेरा प्रतिपाल करेंगे इस तीसरे भरोसे विषे अपना पुरुषार्थ कुछ नहीं और प्रथम भरोसे विषे अपना पुरुषार्थ होताहै जैसे वकील के गुण को और स्वभाव को जानताहै तैसेही

कार्य और पदार्थों में यत्न करके लगता है जैसे यह जानता है कि जबलग मैं वकील के समीप न जाऊंगा तबलग वह वकील मेरे निमित्त न झगड़ेगा तब अवश्यही उसके निकट जाताहै तिससे पीछे यह चिन्ता करताहै कि देखिये वह वकील कैसे करताहै तैसेही यह प्रथम भरोसेवाला व्यवहार और खेती आदिक क्रिया करताहै तब यह जानताहै कि यह भी संयोग श्रीसीताराम महाराजने बनाये हैं और बुद्धि भी महाराज ने दीनी हैं ताते इसका त्याग नहीं करता पर भरोसवान् कहावताहै क्योंकि खेती आदिक व्यवहार जो कुछ करता है तिस विषे यों जानताहै कि जब महाराज चाहेंगे तब लाभ होवेगा और जब न चाहेंगे तब न होवेगा जो कुछ करतूति यह करताहै सो सबही श्रीसीतारामजी की ओर से जानताहै सो इसीपर सन्तजनों ने कहाहै कि सब महाराजके अधीन है और उन की प्रेरणा विना कुछ नहीं होता और बलभी महाराज का है सो इस वचन का तात्पर्य यह है कि भरोसवान् अपनी बुद्धि और बल श्रीसीतारामजी के अधीन जानताहै अपने आश्रय कुछ नहीं जानता सो जब स्थूल पदार्थों से इसकी दृष्टि उठी तब श्रीराम विना और किसीको कुछ नहीं जानता तब वह भरोसवान् होता है पर उत्तम पद भरोसे का यह है जैसे एक सन्त से किसी जिज्ञासु ने पूछा था कि भरोसा क्या है तब उन्होंने कहा कि तुमको कैसे भासता है तब उस जिज्ञासु ने कहा कि आगे सन्तजनों ने कहा है कि जो इसके दहिने और बायें ओर सर्प होवे तौभी भय न पावे तब उन सन्त ने कहा कि यह बात तो तुच्छ ऐसीहै और जब सर्व नरकियों को नरक विषे दुःखी देखे और स्वर्गविषे स्वर्गवालों को सुखी देखे तब इसके हृदय विषे कुछ भेद फुरे तो वह भरोसवान् नहीं होता सो तात्पर्य यह कि भरोसवान् को ऐसे जानना प्रमाण है कि जो कुछ श्रीराम करते सोई पूरा है अपनी चिन्तवन कोई न फुरे सो यह भरोसा महाउत्तम है और एक भरोसवान् सर्पकी बांबीपर चरण रखकर शयनकर रहा था सो उसके हृदय विषे सर्प का भय कुछ न था श्रीसीताराम की ओर से सब कुछ जानता था सो यह भरोसा उस जिज्ञासु के वचन का है पर जैसा भरोसा उन ज्ञानवान् सन्त ने कहा है सो बहुत दुर्लभ है सो उस उत्तम भरोसवान् को ऐसे निश्चय होता है कि महाराज दयालु कृपालु और सर्वज्ञ हैं और न्याय करनेहारे हैं ताते नरक का दुःख और स्वर्ग का सुख देखकर उसके हृदय विषे कछु भेद नहीं फुरता वह जानता है कि

रामजी ने सब कुछ पूरा किया है (अथ प्रकट करना करतूति भरोसवानों का) ताते जान तू कि सब शुभगुण जो धर्म के मार्ग बिषे हैं सो तीन बातों के आश्रय हैं एक समझ है १ और दूसरी हृदय की अवस्था है २ और तीसरी करतूति है ३ सो मैंने पीछे बूझ और अवस्था का निर्णय किया है अब करतूतिका निर्णय करता हूं कि केते ऐसेभी कहते हैं कि भरोसा तब होता है जब सर्व करतूति अपने श्रीसीतारामजी को अर्पिदेवे और आप कुछ करतूति न करे व्यवहार भी न करे और दूसरे दिन का संचय न करे और सर्प बिच्छू और सिंहादिकों से भी न भागे जब रोग इसपर आवे तब औषधभी न करे सो जिन्हों ने ऐसे समझा है वह सब भूले हैं क्योंकि भरोसे की नींव शास्त्र के अनुकूल है और यह वार्त्ता शास्त्र के विपर्ययहै ताते भरोसा वही विशेषहै जो शास्त्र के अनुसार होवे सो इस मनुष्य का इख्तियार इन चार वार्त्ता पर है एक उत्पन्न करना धन का १ दूसरे रक्षाकरनी धनकी २ तीसरा निबृत्तकरना दुःख का ३ चौथे जिसके सम्बन्ध करके दुःख पहुँचने का भय होइ तिससे बचना ४ सो भरोसा इन सब बिषे भिन्न २ होता है ताते इसका निर्णय अब कहता हूं (अथ प्रथम प्रकरण प्रकट करना व्यवहार बिषे धन के उत्पन्न करने का) सो यह भी तीन प्रकार का है प्रथम यहहै कि जिस प्रकार महाराजने कार्यों बिषे मर्याद राखी है और वह अवश्यमेव उसी बिधि से होते हैं तिन मर्यादों को जानकर उसके विपर्यय बर्त्तना यह भरोसा नहीं मूर्खता है जैसे कोई भोजन न खावे और कहे कि मेरे मुख बिषे आपही आपड़ेगा और इसको भरोसा जाने तब यह मूर्खताहै अथवा जैसे कोई विवाह न करे और कहे कि विना स्त्री के मिलाप मेरे पुत्र होवे सो यह भरोसा नहीं मूर्खता है क्योंकि जिस कार्य के सम्बन्ध के साथ भगवत् ने कार्य राखा है सो उसी सम्बन्ध क साथ होताहै अन्यथा नहीं होता सो करतूति के द्वारे ऐसे हैं सो भरोसा समझ और हृदय की अवस्था कर होताहै करतूति कर नहा होता सो समझ यह है जो जाने कि हाथ और अनाज और बल और मुख और दांत सबही श्रीरामजी ने उत्पन्न किये हैं और अवस्था यह कि विश्वास हृदय का श्रीसीतारामजी की दया पर राखे अनाज और हाथों पर न राखे क्योंकि हाथ तो रोग करके लुञ्ज भी होजाते हैं और अनाज कोई दूसरा हरलेसक्ताहै ताते सर्वदा अपनी दृष्टि श्रीरामजीकी दयापर राखे अपने बुद्धिबल

की ओर न राखे सो प्रथम प्रकरण जो कहाथा कि जिस कार्य के गुण जिस प्रकार महाराजने राखे हैं वह अवश्यमेव उसी प्रकार होते हैं सो यह बखान तो भया १ अब दूसरा प्रकार यह है कि वह अवश्यमेव भी नहीं पर उनके निकट हैं कि उस विना कार्य सिद्ध नहीं होता और कभी होइभी जाता है जैसे महापुरुष ने खर्च तोशा संगलेना मुसाफ़िरी विषे राखा है पर भरोसा उन्हों ने भगवतही पर राखा है क्योंकि उत्पन्नकरनेहारा तोशे और और कार्यों का महाराजही है ताते तोशे पर भरोसा न राखे पर विना तोशेके बनविषे जाना अधिकता भरोसे की है और उसी की नाईं नहीं जो भोजन न करे और तृप्त हुआ चाहे क्योंकि यह भरोसा नहीं औरजो विना तोशेके बनविषे जावे सो यह अधिकार उसका है जिस विषे यहदो लक्षण होवें प्रथम यह कि जिसने ऐसा शरीर को साधाहोवे जो सातदिन पर्यन्त भोजन न करे तौभी इतने पर धैर्य करसके और दूसरा जो कन्दमूल फलपर भी शरीर का निर्वाह करलेवे सो जब ऐसे होवे तब यह वार्त्ता प्रकट है कि कन्दमूल फल बनविषे अवश्य होता है और किसी ठौर अनाज भी होता है जैसे एक भरोसवान् का यही स्वभाव था कि इकल्लेही बनविषे अटन करते थे और तोशा पास कुछ न रखतेथे पर एकसुई और जेवड़ी और जलपात्र पास रखते थे क्योंकि यह अवश्य चाहिये हैं और वहां बनविषे नहीं होते ताते भरोसा इनके त्यागविषे नहीं होता भरोसा यह है कि हृदय की प्रतीति श्रीसीतारामजी पर राखे पर किसी ऐसे विषम स्थान अथवा पहाड़ की कन्दरा विषे जब जाइरहे जहां घासभी न होवे और और भी कुछ खानेकी वस्तु न होवे और ऐसे कहे कि मैं यहां भरोसा कर बैठताहूं सो यह मूर्खताहै और अपना नाश करनाहै ताते जिस प्रकार श्रीरामजी ने नेतराखी है तिसको भली प्रकार समझा नहीं सो यह भरोसा उसकी नाईं है जो अपना वकील कार्य को करे और यह जानता होवे कि मेरे समीप रहे विना वह कार्य न करेगा और फिर उसके निकट न जावे तब कार्य नहीं होता जैसे एक त्यागी नगर को छोड़कर पहाड़ की कन्दरा विषे जाइ बैठाथा और भरोसा किया कि भगवत् मुझ को यहांहीं भोजन पहुँचाइ देवेगा सो सात दिन भूखेही उसको बीतगये पर उसको प्राप्त कुछ न भया तब एक महापुरुषको आकाशबाणी भई कि तू इस त्यागी को जाइ कह कि मैं अपनी दुहाई करके कहता हूं कि जबलग तू नगर बिषे न जावेगा तबलग तुझको मैं भोजन न

देऊंगा सो यह वार्त्ता जब महापुरुष ने उसको कही तब वह वहां से उठकर नगर विषे आया तब सबकोई उसको भोजन ले आये तब उसके हृदय विषे संशय उत्पन्न हुआ कि यह क्या कारण हुआ तब उस महापुरुष को फिर आकाश-वाणी भई कि तू उस त्यागी को कह कि तू अपने त्यागकर मेरी नेतको विपर्यय किया चाहता है सो यह तो न करूंगा और मैं इस वार्त्ता को प्रियतम रखता हूं जो मेरे जीवों के सम्बन्ध द्वारे किसी को कुछ मिलता रहे सो यह वार्त्ता उससे भी विशेष प्रियतम है जो मैं अपनी शक्ति करके किसी के सम्बन्ध द्वारे विना देवों तैसे ही जब नगरविषे गुप्त हो बैठे और घर का द्वार बन्दकरे और भरोसा करे तब यहभी प्रमाण नहीं क्योंकि अपना नाश करताहै यह भरोसा नहीं ताते जो कार्य अवश्यही करने होते हैं उनका त्याग न करे पर जो द्वार बन्द न करे और भरोसा करके गृहविषे बैठे तो प्रमाणहै पर सर्वथा अपनी दृष्टि द्वारकी ओर न राखे कि अब कोई ले आवताहै और सर्वथा अपना हृदय लोगों की ओर न राखे भगवत् की ओर हृदय राखे और अपना समय भजन विषे व्यतीत करे ताते जब स्थूल सम्बन्ध दूर हुये तब निश्चय राखे कि जीविका भी उसकी बन्द न होवेगी सो यह वार्ता ऐसेही है जैसे सन्तजनोंने कहाहै कि जब यह मनुष्य अपनी प्रारब्ध से भागता है तब प्रारब्ध इसको इसके पीछे धावती है और जब श्रीराघवजू से याचना करताहै तब महाराज कहतेहैं कि हे मूर्ख! जब मैंने तुझ को उत्पन्न किया है तब क्या भोजन न देऊंगा सो जब ऐसे जाना तब जिस प्रकार महाराज की नेत है वह मार्ग भी न छोड़े और विना भगवत्के योंभी न जाने कि इसी सम्बन्ध करके कार्य होवेगा ताते भरोसा श्रीसीतारामजी पर राखे और सम्बन्धों का त्यागभी न करे ताते सर्वसृष्टि श्रीरामही की दात भोगती है पर केते अपमान के साथ याचना करके पावतेहैं और केते दुःखके साथ भोगते हैं जैसे व्यवहार करनेहारे और केते और यत्न और उद्यम करके जैसे कृत्य करने हारे और केते यत्न विना सूखे नहीं पावते हैं जैसे वैष्णव रामानुरागी सो वह श्रीरामही की ओर से जानते हैं और किसी मनुष्य की ओर से नहीं जानते २ और तीसरा प्रकार यह है जो अवश्यही भी नहीं और अवश्यही के निकट भी नहीं सो अपने यत्न और चतुराई करके जाने यह प्रमाण नहीं सो यद्यपि भरोसवान् व्यवहार करता है पर तो भी भरोसा महाराज ही पर होता है अपनी

चतुराई और व्यवहार पर नहीं होता सो ऐसेही महापुरुष ने भी कहा है कि भरोसवान् मन्त्र और टोने सगुन अपसगुन पर प्रतीति नहीं रखता सो ऐसे तो नहीं कहा कि व्यवहार न करो और नगर को छोड़कर बन बिषे जाइ रहो सो भरोसे के पद तीन हैं प्रथम यह है जैसे एक भरोसवान् सन्त तोशे बिना बन बिषे अटन करते थे सो यह भरोसा उत्तम है पर यह भरोसे का चिह्न ऐसे होता है कि भरोसवान् भूखारहे अथवा घास पात खाइलेवे और यहभी जब प्राप्त न होवे तब मृत्यु का भय उसके हृदय में न होवे और ऐसे जाने कि मृत्यु होना ही मेरी भलाई है क्योंकि केते पुरुष ऐसे भी होते हैं जो तोशा खर्च पासरखते हैं पर वह खर्च उनका कोई चोर हरलेता है और वह मृत होजाते हैं पर यह वार्त्ता कभी दैवयोग से होती है ताते इससे बचना प्रमाण नहीं दूसरा पद भरोसे का यह है जो व्यवहार भी नहीं करता और बन बिषे भी नहीं जाता नगर बिषेही रहताहै पर दृष्टि अपनी श्रीरामजी की दया पर रखता है लोगों पर नहीं रखता तीसरा पद यह है जो व्यवहार के निमित्त परदेशको जावे और जिस प्रकार सन्तजनों ने व्यवहार करना कहा है तिसी प्रकार करे और अपनी चतुराई और यत्न का आश्रय न करे अपनी जीविका बिषे बहुत चतुराई और यत्नकरे तौ भरोसवान् नहीं होता पर व्यवहार का त्यागना भी भरोसे की युक्ति नहीं इसी पर एक वार्त्ता है कि एक भरोसवान् था पर व्यवहार का त्याग न करता था सो जब सर्व प्रीतिमानों का मुखिया महन्त होता भया तब भी वस्त्र लेकर बाजार बिषे आया तब सब ने मिलकर कहा कि ऐसे तो प्रमाण नहीं जो तुम महन्त होकर बाजार बिषे व्यवहार करने को जावो तब उन्होंने कहा कि जब मैंने अपने सम्बन्धियों की सुधि न ली तब और किसीकी रक्षा क्योंकर करूंगा ? तब सबने यही काम किया कि जिस धन का कोई वारिस न होवे उस करके उनके सम्बन्धियों की प्रतिपाल राखी तब वह महन्त सर्व आयुष् के अवसानतक सुखी होकर प्रीतिमानों की रक्षा करतेभये सो भरोसा यह है कि अपने अर्थ धन की तृष्णा न करे जो कुछ लाभ हानि होवे सो श्रीरामही की ओर से जाने और धन अपना और मनुष्यों के धन से प्रियतम न राखे तात्पर्य यह है कि भरोसा विना वैराग्य सिद्ध नहीं होता और भरोसे विना वैराग्य सिद्ध होता है जैसे एक सन्त भरोसवान् ने कहा कि बीस वर्ष मैंने अपने भरोसे को गुप्त राखा है सो

नित्य प्रति तीन रुपये व्यवहार बिषे उत्पन्न करताथा पर एक पैसा अपने निमित्त खर्च न करता सब रामहेत दे डालताथा सो एक ज्ञानवान् सन्त उनके होते भरोसे का वचन कहते थे क्योंकि यह आपही उत्तम भरोसवान् हैं बहुरि एक महन्त बड़े स्थानोंपर बैठते हैं और अपने चेला शिष्य बाहर परदेशों विषे भेजते हैं सो यह भरोसा तुच्छ है और निर्बल है पर जब कोई भरोसवान् व्यवहार करे तब उसकी युक्तियां बहुत हैं पर जब आकाशवृत्ति होइ बैठे और अपने शिष्य सेवक को भी किसी के पास न भेजे तब यह भरोसे के निकट है पर जब जिस स्थान पर बैठता है वह स्थान विख्यात हो जावे तब यह भी बाजार की नाईं होताहै तात्पर्य यह कि उसके चित्त की वृत्ति उस पर ठहर जाती है पर जब चित्तकी वृत्ति उसपर न ठहरे तब यह भरोसा व्यवहारवाले की नाईं होताहै तात्पर्य यह कि दृष्टि इसकी श्रीरामजी पर होवे और लोगों पर न होनी चाहिये और और किसी कारण पर भी न होवे कारण कि महाकारण श्रीराम पर होवे जैसे एक भरोसवान् ने कहाहै कि एकवार वनबिषे एक ऐश्वर्य-वान् साधु मुझको आमिले और मेरे संग रहने में राजी थे पर मैंने उनके संग का त्यागकिया इस कारण करके मत मेरे हृदयबिषे उस ऐश्वर्यवान् का भरोसा होजावे तब मेरा भरोसा श्रीरामपर न रहेगा जैसे एक बुद्धिमान् साधु ने एक मजूर के पास कुछ क्रिया कराई थी तब अपने सेवक से कहा कि इसको कुछ अधिक मजूरीदेवो जब वह देनेलगा तब उसने न लीनी बहुरि जब वह मजूर गृहसे बाहर आया तब उन्होंने अपने सेवक से कहा कि अब उसके पास ले जावो अब लेलेवेगा तब सेवक ने पूछा कि वह अब क्यों लेवेगा? तब उन्होंने कहा कि आगे उसने अपने हृदय बिषे लेने की अभिलाषा करीथी और अब उसके हृदय बिषे लेनेकी मंशा नहीं तातें अब लेवेगा तात्पर्य यह कि व्यवहार बिषे भरोसा ऐसा होवे कि अपने धन और सामग्री पर प्रतीति न राखे सो जब इसकी सामग्री चोर लेजावे तब शोकवान् न होवे और श्रीरामजूकी दया करके जाने कि जब श्रीराम चाहेंगे तब और संयोगकर आन प्राप्त होवेगा और जब न प्राप्त होगा तौभी मेरी भलाई इसी में होवेगी जिसमें श्रीरामजू की आज्ञाहै (अथ प्रकट करना उपाय इस भरोसे की अवस्था आवनेका) तातें जान तू कि जब धन और सामग्री किसीकी चोर लेजावे अथवा और संयोग कर नष्ट होजावे तब

हृदय उसका स्थिर रहे सो यह भरोसा दुर्लभ और उत्तम है पर यह वार्ता अन-होनी भी नहीं इसी कारण करके जो प्रतीति और निश्चय श्रीरामजू की पूर्ण कृपा और दया और समर्थपर राखे और जानलेवे कि बहुत मनुष्यों को धन सम्पदा बिना महाराज प्रतिपाल करते हैं और बहुत धनवान् ऐसे हैं कि उनको वही धन नाशता का कारण होताहै ताते मेरी भलाई इसी बिषे है जैसे महापुरुष ने भी कहाहै कि मनुष्य रात्रि बिषे किसी कार्य का संकल्प करते हैं और नाश होना उनका उस कार्य बिषे है तब श्रीरामजू अपनी दया करके उसके कार्य को सिद्ध नहीं करते तब वह पुरुष शोकवान् होताहै कि यह कार्य क्यों न हुआ और पड़ोसियोंपर बुरा अनुमान करताहै कि उन्होंने किसी के आगे चुगली कीनी होवेगी सो यह केवल दया श्रीरघुनाथजू की थीं जो उसका कार्य न हुआ जैसे एक प्रीतिमान् ने कहाहै कि जब मैं प्रभातसमय उठताहूं तब जानताहूं कि निर्धनताई अथवा धन होवे सो इसी बिषे मेरी भलाई है जैसे श्रीरघुनाथजू की आज्ञाहै और निर्धनताई का भय और बुराई का अनुमान यह मन का स्वभाव है सो इसी पर महाराज ने भी कहाहै कि मन निर्धनताई का वैरी है और विश्वास का स्वरूप यह है कि श्रीसीतारामजी की कृपापर दृष्टिराखे और पूर्ण समझ यह है कि जिसने समझा कि जीविका हमारी विशेष करके ऐसे गुह्यमार्ग पर आवती है जिसको कोई जान नहीं सक्ता बहुरि गुह्यमार्ग पर भी विश्वास न राखे श्री-सीतारामजी का जो उस मार्ग के कर्ता और कारण हैं आसरा राखे क्योंकि इस की जीविका के ज़ामिन वही हैं इसीपर एक वार्ता है कि एक भजनवान् एक शुभस्थान बिषे आरहा था तब उस स्थान के टहलुवे ने कहा कि तुम अपनी जीविका के निमित्त कुछ व्यवहार करलो तो भलाई है तब भजनवान् ने कहा कि एक पड़ोसी नें हमारे साथ वचन किया है कि दो रोटी नित्य प्रति मैं तुमको भेजूंगा तब टहलुवे ने कहा कि जो यह वार्ता है तो तुमको व्यवहार का कुछ प्रयोजन नहीं तब भजनवान् ने कहा कि तू इस हरिमन्दिर का अधिकार किसी और को समर्पण करदेवे तो भला है तू इस अधिकार योग्य नहीं क्योंकि तेरी दृष्टि बिषे उस पड़ोसी का वचन महाराज विश्वम्भर के सर्व विश्वप्रतिपालन वचन से विशेष पुष्ट हुआ बहुरि एक मुखिया ने एक भजनी से पूछा कि तेरी जीविका कहां से है ? तब उस भजनवान् ने कहा कि जेता भजन का नियम

मैंने तुम्हारे संग किया है सो सब व्यर्थ होगया ताते फेर आदि से करलेऊं क्योंकि तुमको महाराज की विश्वम्भर विरदावलीपर प्रतीति नहीं लौकिक सम्बन्ध पर दृष्टि है सो जिसने यह बात सत्य प्रतीति जानी है तिनको संशय होता ही नहीं और उनको प्रत्यक्ष परीक्षा हुई है कि जहांसे कुछ आश न रखते थे तहां से उनको सब कुछ प्राप्त भया है सो विश्वास उनका महाराज के इस वचन पर है जो महाराज ने कहा है कि धरती पर जेते जीव हैं तिनको जीविका मैं पहुँ-चावता हूं इसी पर एक और वार्ता है कि एक प्रीतिमान् से किसी ने पूछा कि तुमने अमुक वैराग्यवान् सन्त की संगतिकरी तिन विषे कौन आश्चर्य गुण देखा तब उसने कहा कि एकबार मार्ग विषे उनके संग था सो मार्ग में बहुत भूखे रहे जब नगर विषे जा पहुँचे तब उन्होंने कहा कि तुम भूख करके बहुत आतुर हुये हो तब मैंने कहा कि जी ऐसेही है जैसे आपने कहा है हम भूख करके बहुत निर्बल हुये हैं तब सन्तने कहा कि एक कागज और मसी लेआवो तब मैं ले आया तब उन्हों ने कागज़ पर श्रीरामनाम लिखा और योंभी लिखा कि हमारा प्रयोजन सर्व समय विषे आपही हैं और कहना भी आपही के पास है सो मैं स्तुति और धन्यवाद करनेहारा और आपका नामजापक हूं और आप जनप्रतिपालक हैं पर मैं भूखा प्यासा और नग्न हूं सो स्तुति और धन्यवाद करना और स्मरण यह तीन मेरे कर्म हैं और आहार जल वस्त्र देना आपका धर्महै सो मैं तो अपने करतूति विषे सावधान हूं आपभी अपने दानी धर्म विषे सावधान हूजिये सो यह कागज लिखकर मुझको दिया और कहा कि श्रीराम विना अपना हृदय और ओर न राखो पर जो मनुष्य प्रथम तुमको मिले उसी को यह कागज देना तब मैं वहां से बाहर आया और एक विजातीय सवार मुझको मिला तब मैंने वह कागज़ उसको दिया सो उस सवार ने कागज़ को पढ़ा और रुदन करनेलगा और कहनेलगा कि इसका लिखनेहारा कहां है तब मैंने कहा कि अमुक स्थान विषे बैठे हैं तब उस सवार ने एक थैली मोहर की मुझको दीनी तब मैं उन सन्त के निकट लेआया और सब वार्ता कहदीनी तब उन्होंने कहा कि यह थैली यहांहीं रखदो और खर्च न करो कि इसका देने-हारा अब यहां आवेगा तब उसी समय वह सवार तहां आया और उनके चरणों पर गिरपड़ा और चेला हुआ तब सन्त ने मुझसे कहा कि यह थैली लेजावो

और अपने कार्य में लगावो पर आप अङ्गीकार कुछ न किया और एक और वार्ता है कि एक प्रीतिमान् ने कहा है कि एक स्थान विषे मैं दश दिन पर्यन्त भूखाही रहा तब बहुत निर्बल हुआ और वहां से उठकर बाहर आया तब एक फल सूखा भूमि में पड़ाहुआ देखा तब मैंने चाहा कि यह लेलेवों तब मेरे हृदय विषे यही भ्रान्ति फुरा कि दश दिन भूखा रहा और अब यह सूखा फल तुझको मिला सो तेरी प्रारब्ध यही थी तब मैं उसको त्यागकर उसी स्थान पर आ बैठा तब एक मनुष्य वहां आया और बादाम और पिस्ते और मिसरी अँगोछा भराहुआ मेरे आगे आनिराखा और कहनेलगा कि मैं जहाज़ विषे था तब बहुत पवन वहां चला सो मैंने प्रसाद बोला और नियम किया कि प्रथम जो कोई अतिथि मुझको मिलेगा तब मैं उसको देऊंगा सो यह वही प्रसाद है तब मैंने आहारमात्र लेलिया और बाकी उसीको फेर दिया तब मैं अपने आपको समझावने लगा कि प्रारब्ध में तो तेरी यह मेवा महाराज ने रचीथी ताते पवन को समुद्र विषे जीविका पहुँचानेकी आज्ञाभई जो यहां लेआया और तू भूला और ओरसे ढूंढ़ताहै सो समझना ऐसी वार्ता का प्रतीति को दृढ़ करता है (अथ प्रकट करना भरोसा गृहस्थी का) ताते जान तू कि गृहस्थी को यह प्रमाण नहीं कि वन विषे जावे और व्यवहार का त्यागकरे क्योंकि यह भरोसा गृहस्थी का तीसरा पद है सो व्यवहार करना आगे भी कहा है जैसे एक सांचे पुरुषने कहाहै कि भरोसे के अर्थ दो वार्ता चाहिये एक यह कि भूखपर धैर्य करसके और जो कुछ प्राप्तहोवे उसीपर प्रसन्नरहे चाहे घासही प्राप्तहोवे १ और दूसरा यह कि प्रतीति ऐसी होवे कि जो प्रारब्ध मेरी भूख है और मृत्यु है तो भलाई मेरी इसी विषे होवेगी २ सो पूर्ण भरोसे का वही अधिकारी है जिस विषे यह दोनों गुण होवें पर सम्बन्धियों को ऐसे राख नहीं सक्ता और जब विचारकर देखिये तो इसका मनही कलत्री के समान दृढ़ता रहित है सो जब देखे कि भूख सहने का बल मेरे विषे नहीं और आतुरताई लेआवता है तब व्यवहार का त्याग करना प्रमाण नहीं यद्यपि गृहस्थवाले सम्बन्धी भी भूख को सहसकें तौभी व्यवहार का त्याग प्रमाण नहीं पर जब किसीको विश्वास पूर्ण होवे और वैराग्य विषे लगा रहे और व्यवहार न करे तौभी उसकी प्रारब्ध पहुँच रहती है जैसे बालक माता के उदर विषे कुछ व्यवहार नहीं करता तब भी नाभि के द्वारे उसको आहार

पहुँचताहै जब उदर से बाहर आवता है तब माता के स्तनों से उसको दूध मिलता है जब उससे बड़ा होता है और आहार खाने लगता है तब दांत उसके प्रकट होते हैं जब माता पिता उसके मृत्यु होते हैं और वह बालक अकेला रहता है तब और मनुष्यों के हृदय बिषे श्रीरामजी दया डालदेते हैं आगे दया करनेहारी एक माता थी अब अनेक मनुष्य उसपर दया करते हैं जब बड़ा होता है तब आपही कार्य करने को समर्थ होता है तब इस बिषे यही श्रद्धा और बल महाराज देते हैं जो अपना प्रतिपाल आप करने लगता है जैसे आगे माता इतना प्रतिपाल करती थी तैसेही आप अपनी खबर लेता है जब अपना प्रतिपाल करने से रहित होता है और व्यवहार का भी त्याग करता है और श्रीराम की ओर इसका हृदय आवता है तब सर्व जीवों के हृदय बिषे इसके ऊपर दया महाराज डाल देते हैं सो सब यही जानते हैं कि यह श्रीरघुनन्दनजी से परचा हुआ है ताते जो कुछ उत्तम वस्तु होइ सो इनको दीजिये और इनकी सेवा करनी प्रमाण है सो आगे एक अपने ऊपर दया करता था अब सर्व जीव इसके ऊपर दया करते हैं पर जब यह विकारों बिषे लगता है और व्यवहार करने को समर्थ होकर व्यवहार नहीं करता तब इसपर दया किसीको नहीं आवती तब ऐसे पुरुष को व्यवहार का त्याग करके भरोसा करना प्रमाण नहीं जब अपने मनके साथ मिला हुआ है तब अपनी जीविका की खबर भी लेनी आपही को प्रमाण है ताते जब यह मनुष्य अपना हृदय महाराज की ओर ले आवता है और अपने प्रतिपाल से रहित होता है तब श्रीराघवजू सर्वजीवों को इस पर दयालु कर देते हैं इसी करके कोई वैरागी भूख कर मृत्यु नहीं हुआ सो जिसने यह बात विचार देखी है कि श्रीरामजी ने लोक और परलोक बिषे किस प्रकार सूत्र राखे हैं और कैसे संपूर्ण बनाये हैं तब अवश्यही इस वचन पर दृढ़ प्रतीति होती है जैसे महाराज ने कहा है कि सर्व जीवों का प्रतिपाल मैं करनेहारा हूं बहुरि यह समझ लेता है कि महाराज ने ऐसी सुन्दर रचना बनाई है जो कोई तबाह नहीं रहजाता और जो कोई तबाह और बिरथ रहता है तब उसी बिषे उसकी भलाई होती है इस कारण कर नहीं कि उसने व्यवहार का त्याग किया क्योंकि केते पुरुषों के पास धन भी अधिक होता है और व्यवहार भी करते हैं पर धन भी उनका नाश होजाता है और वह भी मृत्यु होजाते हैं इसीपर एक साधुजन ने कहा है कि

यह वार्ता मुझपर प्रकट है कि जो सारा नगर मेरा कुटुम्ब होजावे और एकदाना अनाज का एक मोहर को मिले तौभी मुझको भय कुछ नहीं क्योंकि प्रतिपाल करनेहारे श्रीसीतारामजी हैं इसीपर एक और भरोसवान् ने कहा है कि जो आकाश लोहे का होइ और पृथ्वी तांबे के साथ जड़ीजावे तौभी जीविका का भय कुछ नहीं सो महाराज जिस मार्ग चाहेंगे तिस मार्ग से जीविका पहुँचावेंगे बहुरि एक ज्ञानवान् सन्त के पास केते लोग आये और कहने लगे कि हम अपनी जीविका ढूंढें अथवा न ढूंढें तब उन्होंने कहा जो तुम जानते हो कि जीविका हमारी अमुक स्थान विषे है तो वहां ढूंढो बहुरि पूछा कि महाराज से अपनी जीविका मांगें तब उन्हों ने कहा कि जब महाराज भूलगये होवें तब तुम सुरति करावो बहुरि पूछा कि भरोसा करें और देखें कि क्योंकर करेगा तब उन्होंने कहा कि भरोसा परीक्षा साथ करना भला नहीं बहुरि उन्होंने पूछा कि भला फिर उपाय क्या है ? तब सन्तजी ने कहा है कि उपाय का त्याग करना ही उपाय है तात्पर्य यह कि प्रतिपालक श्रीरामही को जानना प्रमाण है (अथ दूसरापद भरोसे का संचय करने और रक्षा करने में) ताते जान तू कि एक वर्ष स अधिक खर्च के हेतु जिसने धन संचय किया तब वह भरोसे से गिरजाता है क्योंकि गुह्यभेद महाराज के कौन नहीं जानता भया प्रकट स्थूलता पर दृष्टि राखी पर जब प्रयोजनमात्र पर संतोष करे कि आहार एता जो भोजन करलेवे और वस्त्र इतना जो नग्नता को ढांकलेवे तब वह भरोसे पर दृढ़ हुआ पर जब चालीस दिन का सञ्चय राखे तौभी भरोसा दूर नहीं होता और एक सन्त ने कहा है कि सञ्चय करना भरोसे की झुठाई है एक और सन्त ने कहा है कि चालीसदिन से अधिक सञ्चय करे तौभी भरोसा नहीं जाता पर आसरा उस सञ्चय पर न राखे और एक प्रीतिमान् ने कहा है कि मैं एक उत्तम वैराग्यवान् के पास था वहां एक सन्त उनके दर्शन को आया तब उन वैरागी ने मुझसे कहा कि तुम उत्तम भोजन लेआवो तब मैं लेआया बहुरि वह सन्त और वैराग्यवान् दोनों मिलकर भोजन करनेलगे सो यह बात मुझको आश्चर्यवत् भई कि उन वैराग्यवान् ने आगे कबहूं ऐसे न कहा था जो ऐसा उत्तम भोजन लेआवो और प्रसाद भी किसीके साथ मिलकर न पावते थे जब भोजन करचुके तब प्रसाद जो बच रहाथा सो उन सन्त ने सब लेलिया और

चलेगये तब मुझको और भी आश्चर्य आया कि विना पूछे लेजाना कैसे प्रमाण है? तब उन वैराग्यवान् ने कहा कि यह उत्तम सन्तजनहैं और दूसरे तेरे मिलनेको आये थे ताते हम को यही सीखदीनी कि जिसका भरोसा दृढ़ हुआ है तिसको सञ्चय करनाभी कुछ हानि नहीं तात्पर्य यह कि मूल भरोसे का नैराशता है सो अपने निमित्त संचय न राखे और जब संचय राखे तब ऐसे जाने कि यह धन और पदार्थ श्रीसीतारामजी के भंडार विषे हैं और उन संचय पर भरोसा न राखे तब भरोसा इसका जाता नहीं सो यह वार्त्ता उसका अधिकार है जो इकल्ला ही होवे और जो गृहस्थी होवे और वह वर्षाशन राखे तब उसका भरोसा जाता नहीं पर जब वर्ष से अधिक सञ्चय राखे तब भरोसा दूर होजाता है जैसे महापुरुष भी अपने कुटुम्बियों के निमित्त एक वर्ष का सञ्चय करदेते थे और अपने निमित्त दूसरे वेलेका भी न रखतेथे और जो रखते तो उनको कुछ घटता भी नहीं कि होना न होना धन सम्पदा का उनको एक समान था पर और जीवों के समझाने के निमित्त ऐसे करतेथे सो एकबार महापुरुष के मिलापी का शरीर छूटा था तब पीछे उसके वस्त्र में से दो रुपये निकले तब महापुरुष ने कहा कि दो दाग इसके मस्तकपर देवो सो यह वार्त्ता दो प्रकार कर समझी जाती है एकतो वह लोगों को छल करके आपको इकल्लाही दिखावता था ताते सञ्चय के सम्बन्ध करके इतना दण्ड देना प्रमाण हुआ और दूसरा यह कि जब छल भी न किया होवेगा तब भी सञ्चय करने कर उसको परलोक विषे घटती होवेगी जैसे दागदेना मुख पर सुन्दरता को घटाता है बहुरि एक और प्रीतिमान् का शरीर छूटाथा तब महापुरुष ने कहा कि परलोक विषे इसका मुख पूर्णमासी के चन्द्रमा की नाईं होवेगा पर जब एक अवगुण इस विषे न होता तब सूर्यकी नाईं इसका प्रकाश होता बहुरि लोगों ने पूछा कि वह अवगुण कौन था तब महापुरुष ने कहा कि वस्त्र अपने एक वर्ष के दूसरे वर्ष निमित्त रखता था सो यह उसके निश्चय की कसर है पर यह वार्त्ता प्रमाण है कि जो बासन नित्य प्रति चाहिये तिनको रखछोड़े और अनाज और वस्त्र तो वर्ष उपरान्त और भी आवते हैं और यह नित्यप्रति कार्यवाले बासन आदिक नित्यनवीन नहीं पैदा होते सो यह नेत भगवत् ने रची है तिसका त्यागना प्रमाण नहीं पर वस्त्र जाड़ेके गरमी विषे काम नहीं आवते तब इनका रखना बुद्धि के निश्चय की निर्बलताहै अब ऐसे जान तू

कि जब कोई ऐसाहोवे कि संचय विना उसके हृदय विषे आतुरता होवे और और लोगों की आश राखे तब उसको संचय रखना प्रमाण है क्योंकि जब भजन स्मरण विषे चित्त ठहरे नहीं तब कुछ प्रयोजनमात्र जीविका का सम्बन्ध राखे तो भला है इस करके कि प्रयोजन सर्व शुभ गुणों का यह है कि हृदय श्रीरामजूकी ओर राखे एक ऐसे पुरुष होते हैं जो धन का संचय उनको बन्धमानी और विक्षेपता का हेतु होताहै और निर्द्धनताई विषे एकाग्रचित्त रहते हैं सो यह मनुष्य विशेष हैं और एक ऐसे पुरुष हैं कि विना संचय के उनका चित्त ठहरता नहीं तिनको प्रयोजनमात्र संचय प्रमाणहै पर जब अधिक राजसी विषे हृदय होजावे तब वह प्रीतिमान् नहीं कहावता (अथ तीसरा पद भरोसे का विघ्न के दूर करने में) ताते जान तू कि जो सम्बन्ध अवश्यही है सो तिसका त्यागना भरोसा नहीं होता और शस्त्र रखना जो शत्रुको दूरकरे तब यह भी प्रमाणहै जैसे शरद्ऋतुविषे वस्त्र पहिरे चाहे मार्ग चलने करके वस्त्र पहिरे तब भी प्रमाण है पर जब ऐसे करे कि वस्त्र न पहिरे और भोजन अधिक करलेवे कि मार्ग विषे शरदी न व्यापेगी सो यह प्रमाण नहीं और भरोसा नहीं कहाजाता क्योंकि जिस प्रकार भगवत् ने प्रकट सम्बन्ध राखे हैं तिनका त्याग करना प्रमाण नहीं जैसे एक जङ्गली पुरुष महापुरुषके पास आया तब महापुरुषने कहा कि तुम्हारा ऊंट कहांहै तब उस ने कहा कि भरोसा करके जङ्गल में छोड़ दिया है तब महापुरुष ने कहा कि पांव बांधकर भरोसा कर पर जब किसीको किसी मनुष्य से कष्ट पहुँचे तब तिसका सहनाही भरोसा हैजैसे भगवत् नेभी कहा है कि जब किसी मनुष्य से तुमको दुःख पहुँचे तब भरोसा करकेउसके दुःखको सहना प्रमाण है पर जब कोई दुःख सिंह अथवा सर्प करके आन होवे तब उससे दूर होना प्रमाणहै पर जब शस्त्र शत्रु के निवृत्तकरने निमित्त राखे तौभी आसरा शस्त्रोंपर न राखे जैसे ताला द्वार को लगावे तो ताले पर प्रतीति न राखे श्रीरामही पर राखे क्योंकि केते ताले तोड़कर भी चोर वस्तु को लेजाते हैं सो भरोसवान् का लक्षण यह है कि जब घरसे चोर सामग्री लेजावे तब आज्ञा श्रीरामजूकी जानकर प्रसन्न होवे जब घरके दरवाजे को ताला देवे तब हृदय विषे ऐसे कहे कि हे महाराज! मैंने ताला इस निमित्त नहीं दिया कि तेरी आज्ञा से विपर्यय होवे और जो तेरी आज्ञा में मेरा धन सामग्री किसी और की जीविका है तौभी मैं प्रसन्न हूं क्योंकि हमारा भला इसी में होगा

जैसे तैंने चाहा होवे पर जब ताला देजावे और फिर घर आवे और देखे कि गृह का द्वार खुला हुआ है और सामग्री नहीं रही और इस करके शोकवान् होवे तब जाने कि मेरा भरोसा पूर्ण नहीं यह भी मनका छल था पर जब गृह की सामग्री जावे और मुख से कुछ किसीके आगे न कहे तो सन्तोषवानों विषे होताहै भरोसवान् नहीं होता बहुरि जब मुखसे भी कुछ कहनेलगे और चोर को ढूंढ़करे तब संतोष और भरोसा दोनों से गिरता है सो जब जानलेवे कि मैं न भरोसवान् हूं न धैर्य संतोषवान् हूं तब यह गुण तो होता है कि चोरके सम्बन्ध करके अनहोता अभिमानी नहीं होता बहुरि जब कोई ऐसे प्रश्नकरे कि जो इसको उस धन की कुछ चाह न होती तो घर का ताला न देता सो जब रक्षा और चाह उस धनकी इसको थी तब वस्तु के जाने करके शोकवान् क्योंकर न होवे तब इसका उत्तर यह है कि श्रीराघवजू ने इसको धन दिया है सो जबतक इसके पासरहे तबतक यह जाने कि भलाई मेरी इसी धन में है क्योंकि महाराज ने मेरी भलाई के निमित्त मुझको दिया है और जब धनजावे तब जाने कि भलाई मेरी इसीविषे महाराज ने जानी है ताते महाराज ने लेलिया है ताते दोनों अवस्था विषे प्रसन्न रहे और प्रतीति दृढ़ राखे कि श्रीराम जो कुछ करते हैं जिस विषे मेरी भलाई होती है सो यह वार्त्ता महाराजही भली प्रकार जानते हैं मैं नहीं जानता तिसपर दृष्टान्तहै यह जैसे कोई रोगी होवे और पिता इस का वैद्य और इसपर अतिदयालु होवे सो जब बलदायक आहार इसको देवे तौभी प्रसन्न होकर खाता है और जानता है कि उसने मुझको आरोग्य जाना है तब बलदायक आहार दिया है और जब ऐसा आहार न देवे तब यों जाने कि इसने रोगी जानकर नहीं दिया सो जब इस प्रकार प्रतीति दृढ़ न होवे तब यह भरोसा नहीं ऐसेही व्यर्थ वचन कहता है (अथ युक्ति भरोसेकी) ताते जान तू भरोसवान् को पद ६ युक्ति चाहिये प्रथम यह कि अपने गृह का दरवाजा जो बन्दकरे तो बहुत जंजीर और ताले न लगावे और पड़ोसियों से भी बहुत न कहे कि तुम सुरत रखना सहजरीति से ताला देलेवे जैसे एक भरोसवान् गृह के कपाट को धागा बांध जातेथे और कहतेथे कि जो कूकुर का भय न होता तौ मैं धागा भी न बांधता १ दूसरी युक्ति यह कि कोई वस्तु अधिक मोलवाली गृह में न राखे जो चोर को उसकी अभिलाषा होवे एक भरोसवान् के पास किसी

धनी ने कुछ रुपये भेजेथे तब उन्होंने न लिये और कहनेलगे कि इस धन करके मन विषे संकल्प यह होता है कि चोर लेजावेगा और जब चोर लेजावे तब पाप विषे पड़ता है ताते मैं ऐसे नहीं चाहता यह वार्त्ता एक और सन्तने सुनी तब कहने लगे कि यह वार्त्ता इनकी निर्बलता भरोसे की है क्योंकि वह वैराग्य-वान् थे जब चोर लेजाता तब क्या भय उनको था सो यह वार्त्ता उत्तम भरोसे की है २ बहुरि तीसरी युक्ति यह है कि जब गृहसे बाहर निकले तब यह अंशा राखे कि जब चोर लेजावे और फेर न देवे तब मैंने उसको कृपाकिया क्योंकि जब वह चोर अर्थी है तब उसका अर्थ पूर्णहुआ और जो धनवान् है तौभी यह भलाई हुई कि औरों का धन उसने न लिया ताते धन हमारा औरों पर वारा सो यह वार्त्ता बड़ी दयालुता की है चोरपर भी और औरों पर भी ताते आज्ञा महाराज की तो अवश्यही होनीथी पर इसको अपनी भावना के अनुसार बड़ा लाभ हुआ कि एक दाम का सहस्र फल होता है इसीपर महापुरुष ने कहा है कि जब कोई भगवत् के अर्थ शीश देने युद्धविषे जावे तब आगे उसका शरीर छूटे अथवा रहे पर उसको वह भावना का फल होताहै क्योंकि उसकी भावना शीश देनेकी थी ३ बहुरि चौथी युक्ति यह कि जब इसका धन जावे तब शोक न करे और जाने कि मेरा भला इसी में था जब ऐसे कहे कि "श्रीरामार्पणं" तब उसकी ढूंढ़भी न करे और वह जब फेर देवे तौभी अङ्गीकार न करे जब अङ्गीकार करे तब भी वस्तु इसीकी थी ताते दोष उसको न लगेगा पर भरोसा के पद में फेर लेना शोभित नहीं है जैसे एक सन्तकी गऊ चोर चुरा लेगये तब उन्होंने ढूंढ़करी पर कहीं दृष्ट न आया तब कहनेलगे कि भगवत् निमित्त हुआ और भजन करने लगे बहुरि किसी पुरुष ने आन कहा कि गऊ तुम्हारी अमुक स्थान में है तब उठखड़ेहुये बहुरि विचार कर कहनेलगे कि मैं भूला हूं क्योंकि मैंतो भगवत् निमित्त कियाथा ताते अब मैं काहेको जाताहूं ताते जाना त्यागदिया बहुरि एक प्रीतिमान् ने कहा है कि मैंने अनुभव ध्यान विषे अपने एक प्रियतम को स्वर्ग विषे देखा कि शोकवान् है तब मैंने उनसे पूछा कि तुम शोकवान् क्यों हो? तब उन्हों ने कहा कि यह शोक मेरा अमिट है इस निमित्त कि प्रथम स्वर्ग में उत्तम स्थान मुझको देवतों ने दिखाये थे जिन से ऊंचा और कोई न था जब मैं वहां जानेलगा तब मुझको जाने न दिया

क्योंकि यह स्थान उसको प्राप्त होताहै जो अपने वचनों का निर्वाहभी करता है सो तैंने अपने वचन का निर्वाह नहीं किया अर्थात् तुमने कोई पदार्थ भगवत् अर्थ कहाथा सो फेर उसको अङ्गीकार किया सो जब तुम अङ्गीकार न करते तब तुमको स्थान यहां मिलता बहुरि एक और मनुष्य की थैली रुपयों की सोवते में किसी ने लेलीथी जब वह जागा तब ढूंढ़नेलगा जब न पाई तब एक भजनवान् से कहनेलगा कि तुम थैली हमारी लेआयेहो तब वह भजनवान् उसको अपने गृह में लेआये और उससे पूछा कि तेरा धन केताथा सो जेता उसने कहा तेताही दे दिया जब वह वहां से लेकर बाहर ले आया तब किसीने कहा कि थैली तुम्हारी तुम्हारे मित्र ने हांसी करके लेलीथी तब वह पुरुष वह रुपये भजनवान् के पास फेर लाया तब उस भजनवान् ने अङ्गीकार न किये और कहने लगे कि मैंने तो श्रीराम निछावर कहकर दिये थे तातें मैं नहीं फेरसक्ता बहुरि उस पुरुष ने कहा कि मेरी थैली मिलगई अब मैं तुमसे दराड क्योंकर लूं अन्तको दोनोंने अङ्गीकार न किये वह थैली अर्थियों को बांट दीनी इसी प्रकार जब कुछ भोजन किसी अर्थी के निमित्त किया होवे और उस के पास लेजावे सो जब वह अर्थी वहांसे चलाजावे तब वह भोजन अपने गृह में फेरलाना प्रमाण नहीं किसी और अर्थी को देदेवे ४ बहुरि पांचवीं युक्ति यह कि जिसने इसका धन सामग्री हरलिया होवे तिसके निमित्त शाप न देवे कि शाप देनेसे भरोसा और वैराग्य दोनों नष्ट होजाते हैं इसीपर एक वार्त्ता है कि एक साधु की एक दूध की गाय किसीने चुरायलीथी तब वह साधु कहनेलगे कि गऊ को जब चोरलिये जाते थे तब मैंने देखाथा तब लोगों ने पूछा कि तुमने उनको क्यों न बरजा ? तब उस साधु ने कहा कि मैं उसकाल भजन के रस में मग्न था तातें मैंने कुछ न कहा यह सुनकर चोर को बुरी अशीस देने लगे तब साधुने कहा कि तुम उसको बुरा वचन न कहो क्योंकि मैंने उसको बख़शा है बहुरि लोगों ने कहा कि तुम ऐसे तामसी पुरुष को शाप देने नहीं देते तब साधु ने कहा कि उसने अपने ऊपर अन्याय किया है मेरे ऊपर तो नहीं किया उसको अपनी बुराईही बहुत है हम उसको क्या कहें इसी पर महापुरुष ने भी कहा है कि जो अपने शत्रु को शाप देता है तब अपनी भलाई का बदला ले लेता है ५ छठीयुक्ति यह कि जब हृदय बिषे शोक लेआवे तो उस चोर के

निमित्त शोककरे कि यह बुराई जो उससे हुई है इस पाप करके उसको दण्ड होवेगा बहुरि धन्यवादकरे कि मेरे धन सामग्री को दूसरेने लियाहै मैंने तो किसी का कुछ नहीं लिया ताते मेरे धनबिषे यह विघ्न हुआ है मेरे धर्म बिषे तो विघ्न नहीं हुआ ताते जब किसीसे इसका पाप होजावे और यह हृदयविषे क्लेश न करे कि इससे बुराभया है परलोक बिषे दण्ड का भागी होवेगा तब वह लोगों पर दया के देश से भिन्न होगया इसीपर एकवार्त्ता है कि एक साधु का वस्त्र किसी ने चोराया था तब वह साधु रुदन करनेलगा तब किसीने पूछा कि तुम वस्त्र के निमित्त रोवतेहो तब साधुने कहा कि मुझको चोरपर दया आवती है कि जब वह परलोक विषे जावेगा तब उससे पूछेंगे सो वह क्या उत्तर देवेगा ? (अथ चौथापद भरोसे का औषध करना और विघ्नकर्त्ता का टारना) सो यह भी तीन प्रकार का है प्रथम यह कि अवश्यमेव है जैसे भूखका निवृत्तकरना भोजनकर होता है और तृषा का निवृत्तकरना जल करके होताहै और जब अग्नि लागे तब उसपर जल डारना सो इनका त्यागना भरोसा नहीं होता यह बात प्रमाण है १ दूसरा यह जो अवश्यही भी न होवे और अवश्यही के निकट कदाचित् किंचित् होइ जैसे मन्त्र यन्त्र और टोना होता है सो इनका त्यागनाही भरोसा है २ और तीसरा इनके मध्य है जैसे फ़स्दकरावना और जुलाब लेना और गरमी के रोग की औषध शरद करनी और शरदी के रोगकी गरम करनी सो इनका त्यागना प्रमाण नहीं और इनका करना युक्ति भरोसे को भी नहीं केते अवसर बिषे न करने से करना विशेष है और केते समय बिषे न करना विशेष है इसी पर महापुरुष की साक्षी है सो कहनी और करनी करके है सो कहनी यह है कि उन्होंने कहा था कि हे जीवो ! श्रीरामजी की रचीहुई औषध को अवश्य करो क्योंकि कालमृत्यु के विना ऐसा कोई रोग नहीं जिसकी औषध न होइ पर कोई जानता है कोई नहीं जानता तब लोगों ने पूछा कि औषध और मन्त्र श्रीरामजू की आज्ञा को दूर करसक्ते हैं तब महापुरुष ने कहा कि यह भी रामरजाय से हैं और रुधिर का विकार बढ़ावना यह भी तुम्हारा नाश करनेहारा है महाराज की आज्ञा से यह वार्त्ता अप्रमाण नहीं रुधिर का निकालना और सर्प को दूर करना अथवा अग्नि का निवृत्त करना सो इत्यादिक इसके विनाश करनेहारे हैं सो इनका न करना यह भरोसा नहीं कहावता इसीपर एक मिलापी

से महापुरुष ने कहाथा कि रुधिर अपना निकालो और एक और की आंखों को दर्दथा तिसको कहा कि खजूर न खावो और शरद आहारखावो और रहीन उनकी यह थी कि अञ्जन नेत्रों विषे नित्यप्रति डालते थे और प्रतिवर्ष रुधिरभी निकलवावते थे और जुलाब भी करते थे और जब हाथ पांव शीश को कुछ खेद होता तब औषध करते थे इसी पर एक वार्त्ता है कि एकसन्त के कुछ रोग होता भया तब लोगों ने कहा कि अमुक औषध इसरोग की है और आगे हमने भी किया है तुम करो तब सन्त ने कहा कि मैं औषध नहीं करता जब वह रोग अधिक हुआ तब लोगों ने कहा कि औषध इसकी प्रकट है तुम करो तब सन्तने कहा कि चाहे यह रोग हमको रहे पर दवाई न करेंगे तब उस सन्तको भगवत्की आकाशवाणी हुई कि मैं अपनी दुहाई करके कहताहूं कि जबलग तू औषध न करेगा तबलग यह रोग निवृत्त न होवेगा सो उस सन्त ने औषध किया और रोग दूर होतभया तब उस सन्त के हृदय विषे कुछ संशय आया तब आकाश-वाणी हुई कि इन वनस्पतियों विषे जो मैंने शक्ति राखी है और इन औषधों में गुण राखे हैं सो तू अपने भरोसे करके दूर किया चाहता है और एक साधु ने-महाराज के आगे प्रार्थना करीथी कि मेरा शरीर निर्बल है तब उसको आकाश-वाणी हुई कि दूध घी आदिक बलदायक आहार खावो सो तात्पर्य यह कि औषध करना रोग को निवृत्त करनाहै जैसे भूख और तृषा के निवृत्त करने को जल और अनाज है तैसेही औषधभी है पर हृदय की प्रतीति श्रीरामहीपर राखे और एक और सन्त ने महाराज के आगे विनती करीथी कि रोग और अरो-गता किसकी प्रेरणा से होते हैं तब आज्ञाहुई कि दोनों मेरी ही ओरसे हैं बहुरि प्रार्थना करी कि फिर वैद्य किसकाम आवता है तब आज्ञा हुई कि औषध करके उनकी जीविका इसी प्रकार रची है और मेरे जीवों को धैर्य देते हैं सो भरोसा इस विषे हृदय की समझ और अवस्था करके होता है कि हृदय की प्रतीति श्रीरघुनन्दनजी पर राखे औषधों पर न राखे क्योंकि केते लोग औषध भी खाते हैं और मृत्यु होते हैं पर दाग का करना भरोसा गिराय देता है और दाग लगा-वना किसी रोग की निवृत्ति के निमित्त प्रमाण भी नहीं क्योंकि दाग करके खेद बहुत होताहै और रुधिर कढ़ावने और औषध खाने की नाईं नहीं (अथ प्रकट करना इसका कि केते अवसरों विषे औषध न खाना भी प्रमाण है और

महापुरुष के वचन और करतूति से विपर्यय भी नहीं) ताते जान तू कि केते सन्तजनों ने औषध भी नहीं करी है पर जब कोई इसप्रकार कहे कि जो औषध न करना प्रमाण होता तो महापुरुष औषध न करते सो उन्होंने तो औषध किया है तब इसका उत्तर यह है कि औषध न करना षट् कारणों कर होताहै प्रथम यह कि जिसने यह बात प्रत्यक्ष जानी है कि मृत्यु मेरी निकट आई है तब वह औषध नहीं खाता जैसे एक सन्त रोगी हुआ था तब लोगों ने कहा कि वैद्य को क्यों नहीं बुलावते तब उन्होंने कहा कि वैद्य मुझको जानता है सो इसका प्रयोजन यह कि मरना अपना उन्हों ने जाना था कि निकट आयाहै १ दूसरा प्रकार यह कि जो रोगी जन परलोक मार्ग के भयविषे हृदय को लगाये होता है ताते औषध की ओर हृदय नहीं देता इसी पर वार्त्ताहै कि एक साधुको रोग के समय विषे किसी ने रोवते देखकर पूछा कि तुम क्यों रोवतेहो और तुम्हारी चाह क्या है ? तब उन्होंने कहा कि श्रीसीतारामजी की दया चाहता हूं बहुरि लोगों ने कहा कि वैद्य को बुलाइये तब उन्होंने कहा कि वैद्य नेही मुझ को रोगी किया है और एक और साधु की आंखों को पीड़ा थी तब लोगोंने कहा कि औषध नहीं करते तब उन्हों ने कहा कि औषध से उत्तम एक क्रिया विषे लगा हूं सो इसका दृष्टान्त यह कि जैसे किसी को राजा के निकट पकड़कर ले जावें और उसको राजा की बहुत ताड़ना का भय होवे बहुरि उस अवसर विषे कोई उसको कहे कि भोजन करले तब वह पुरुष कहताहै कि मुझको भोजन की रुचि क्योंकर होवे जो मुझको ताड़ना होती है सो यह कहना उसका यथार्थ है तैसेही जो पुरुष परलोक के भय विषे रहते हैं तिनको औषध करना भूलजाताहै बहुरि एक सन्त से किसी ने पूछा कि आहार तुम्हारा क्या है ? तब उन्होंने कहा कि श्रीरामनाम स्मरण मेरा आहार है बहुरि लोगों ने कहा कि हम तुम्हारा बल पूछते हैं तब उन्हों ने कहा कि श्रीरघुनन्दन के रूप अनूप का विचार हमारा बल है बहुरि लोगों ने कहा कि हम अन्न का आहार पूछते हैं तब उन्होंने कहा कि यह वार्त्ता श्रीराघवजू सर्व विश्वंभर पर राखो २ तीसरा प्रकार यह कि रोग बहुत दिनोंका होवे और रोगी जानता होवे कि औषध खाने विषे संशय है कि रोग दूरहोवे अथवा न होवे क्योंकि वैद्यक का ज्ञाताभी नहीं जैसे एक अनुरागीको रोगहुआ और उसने चाहा कि औषध करूं पर यह विचार

उपजा कि आगे भी केतोंने रोग के औषध किये हैं और उनके शरीर छूट गये ताते मैं काहेको औषध करूं सो प्रत्यक्ष बात पर उनकी दृष्टि थी ३ चौथा प्रकार यह कि रामानुरागी इस प्रकार नहीं चाहता कि रोग मेरा निवृत्त होवे क्योंकि रोग करके मुझको लाभ होवेगा और दूसरे मेरे धैर्यकी परीक्षा होवेगी इसी पर महापुरुष ने भी कहाहै कि श्रीरघुनाथजू अपने दासों को रोग विषे परखा चाहते हैं जैसे स्वर्ण को अग्नि विषे परखते हैं सो जो सोना खरा होता है वह निर्मल होताहै और जो खोटा होताहै वह काला होजाता है तैसेही सच्चा अनुरागी रोग के अवसर से भलीभांति निर्मल होइ निकलता है और कच्चा श्रीरामजी को उलहना देताहै जैसे एक साधु औरों को रोगकी औषध बतावते थे और आप औषध न खाते थे और कहते थे कि बैठकर भजन करना रोगसहित मुझको प्रियतम है जो अरोग होकर खड़ा होकर भजन करूं ४ पञ्चम प्रकार यह है जो कोई जाने कि मैंने पाप बहुत किये हैं और यह रोग मेरे पापों का पुरश्चरण होताहै तब वह औषध नहीं करता जैसे महापुरुष ने भी कहाहै कि रोग जो मनुष्य को आवता है सो इसके पाप दूर करताहै और यह शुद्ध होताहै जैसे बिजली निर्मल होती है इसीपर एक साधु ने कहाहै कि जिसके ऊपर रोगआवे और वह प्रसन्न न होवे तब जानिये कि इस वार्त्ता को इसने भली प्रकार नहीं जानाहै कि रोग करके मेरे पाप क्षय होते हैं इसी पर एक सन्त ने एक रोगी को देखा और महाराज से प्रार्थनाकरी कि हे स्वामिन्! इसके ऊपर दया क्यों नहीं करते? तब आकाशवाणी हुई कि इसके ऊपर यही मेरी दया है जो रोग करके इसके पाप क्षीण होतेजाते हैं और इसका पद उत्तम होताजाताहै ५ छठा प्रकार यह कि रोगी यों जाने जो शरीर की अरोगता करके विषयों का सुख और अचेतता होती है और मनमुखता श्रीरघुनन्दनजू से होतीहै और रोग करके मुझसे अचेतता दूर होतीहै ताते मेरा हृदय श्रीसीतारामजी की ओर रहताहै और जिसका श्रीरघुनाथजी भला चाहते हैं तिसको रोगों के संग सचेत करते हैं इसीपर सन्तजनों ने कहाहै कि अनुरागी जन तीन वार्ता से खाली नहीं होते एक निर्द्धनताई १ दूसरे रोग २ तीसरे अपमान ३ जैसे महापुरुष ने भी कहाहै कि महाराज ने यों कहाहै कि निर्द्धनताई और रोग मेरा बन्धनहै सो मैं यह बन्धन उसीको डालताहूं जिस को मैं प्यारा होताहूं ताते अरोगता पापों का

कारण है और रोग विषे इस जीवकी भलाई है इसी पर एक साधु ने किसीसे पूछाथा कि तुम्हारा क्या हाल है ? तब उसने कहा कि कुशल है तब सन्त ने कहा कि कुशल सुख तब होताहै जिस दिन पाप न होवे और जब पाप करिये तब कैसा सुख है और एक राजा ने जो आप को ईश्वर कहा तिसका यही कारण था कि चारसौ वर्ष की उसकी आयुष् हुईथी और उसको कोई रोग भी न हुआ ताते आप को ईश्वर माननेलगा पर जब एक क्षणभी उसको रोग होता तब ऐसा अभिमानी न होता सो जब यह मनुष्य एक दोबार रोगी होता है और पापों का त्याग नहीं करता तब इसको धर्मराज कहते हैं कि हे अचेत ! मैंने तुझको रोगरूपी संदेशा भेजाथा और तैंने न सुना इसीपर एक सन्तजनों ने कहा है कि हरिभक्त चालीसदिन विषे इतनी बातों से खाली न होवे शोक अथवा रोग अथवा भय अथवा कोई धन का विघ्न इनचारों मेंसे कोई होवे तौ भला है इसी पर वार्त्ता है कि एक दिन महापुरुष के पास कोई रोग की चर्चा चलावतेथे तब एक मनुष्य ने कहा कि यह कैसी वार्त्ता है हमतो रोग को जानते भी नहीं तब महापुरुष ने कहा कि मुझसे दूर होवो और कहनेलगे कि जो किसी नारकी को देखना होवे तो इसकी ओर देखो एक दिन महापुरुषकी स्त्री ने महापुरुषसे पूछा कि स्वामीजी ! जो पुरुष श्रीरामहेतु शीश अर्पे उसके पद को भी कोई पावताहै तब महापुरुष ने कहा कि जो पुरुष एक दिन विषे बीसबार मृत्युको चित्तमें लावे सो उस पदको पावता है सो इस वार्त्ता को रोगी ही चित्त करता है यह संशय नहीं (अथ षट् कारण औषध न करने के) सो बहुत पुरुषों ने इन षट् कारणों कर औषध नहीं किया और महापुरुष इन षट् वार्त्ता से उल्लंघित हुयेथे ताते औषध इसकारण से करतेथे कि और लोगभी इसी भांति वर्तें तात्पर्य यह कि प्रत्यक्ष उपाधियों का त्याग करना भरोसे को खण्डित नहीं करता एक महापुरुष के प्रियतम थे सो किसी देशको गमन करतेभये तब आगे किसीने कहा कि इसदेशविषे रोग बहुतहैं और लोग बहुत मृत्यु होतेहैं तब किसी ने कहा कि जाइये भगवत् की आज्ञा में भय न करिये और किसी ने कहा कि न जाइये तब महापुरुष के प्रियतम ने कहा भगवत् की आज्ञा करकेही भगवत् की आज्ञा से भागना प्रमाण है तब और एक प्रीतिमान् से पूछा कि तुमने महापुरुष का सत्संग बहुत कियाहै तुम उनका सम्मत इस विषे सुनावो तब उन प्रीतिमान् ने कहा कि

एकदिन महापुरुष ने ऐसे कहाथा कि जो एक जङ्गलविषे हरीघास होवे और एक सूखा जङ्गल होवे तब हरे तृणों के जङ्गल विषे पशुवों को चरवाहा लेजाता है सो ऐसेही प्रमाण है सूखे जङ्गल विषे लेजाना प्रमाण नहीं और महापुरुष ने ऐसेभी कहा है कि जहां रोग करके बहुत मृत होते होवें तहां जाना प्रमाण नहीं परन्तु जब आगे से वहां रहाहोवे तब वहां से भागना प्रमाण नहीं यह सुनकर उस प्रीतिमान् ने कहा कि भलाहुआ जो मेरी समझ भी महापुरुष के कहने के अनुसार हुई और विपर्यय न हुई तब यही सब नें प्रमाण किया कि वहां न जाइये पर यह जो कहा है कि जहां अधिक मृत होते होवें और रोग की अधिकता होवे और यह भी आगे से वहां रहता होवे तब वहां से छोड़ न जावे सो इस कारण करके कहा है कि जब यह वहां से छोड़ जावेगा तब और लोगों की खबर कब न लेवेगा और उस देश की हवा भी इसविषे प्रवेश करजाती है तब भागना व्यर्थ है बहुरि जहां जावेगा तहां भी रोग फैलजावेगा ताते वहां से छोड़जाना प्रमाण नहीं इस करके कि जिस प्रकार रण से भागने में अपर योद्धाओं और घायलों का मन टूटजाता है तैसेही यहां रोगियों का मनभी टूट जाता है कि अब हमारा टहल करनेहारा भी कोई नहीं रहा ताते रोगियों का मरण अवश्यही होता है और भागनेवाले का मृत्यु से बचना संशय विषे है ताते जान तू कि रोग को प्रकट न कहना यह लक्षण भरोसे का है और रोगको प्रसिद्ध करना प्रमाण नहीं पर किसी प्रयोजन करके प्रमाण है जैसे वैद्य के आगे रोगकी व्यथा कहनी अथवा अपनी दीनता कहनी जो अभिमान और मनकी प्रबलता को घटावे जैसे एक रोगी प्रीतिमान् से लोगों ने पूछा कि आप के कुशल है तब उन्होंने कहा कि नहीं तब वह लोग विस्मित भये तब उन प्रीतिमान् ने कहा कि भगवत् के साथ अपना बल दिखाना प्रमाण नहीं ताते उन्हीं को ऐसे कहना प्रमाण है जो होते बल अपनी दीनता करते थे इसी कारण से श्रीरघुनन्दनजू से प्रार्थना करते थे कि हे महाराज! मुझको अपनी दया करके ऐसा धैर्य दीजे जो दुःख और अपमान को सहूं इसीपर महापुरुष ने कहा है कि भगवत् से कुशल क्षेम मांगो दुःख न मांगो सो ऐसेही कारण करके रोग का प्रकट करना प्रमाण है पर जब ऐसा कारण न होवे तब कहना प्रमाण नहीं पर जब कहे तब भी श्रीराघवजू पर ग्लानि न राखे पर अपने गुह्य रखना विशेष

है क्योंकि कहने बिषे अवश्यही अधिक कुछ कह बैठता है और लोग जान लेते हैं कि यह गिल्ला करता है ताते शरद श्वास निकालना भी प्रमाण नहीं यह भी ग्लानि होती है बहुरि श्रीरामानुरागी ऐसे हुए हैं कि जब रोगी होते थे तब गृह का द्वार बन्द करलेते थे कि पूछने कोई न आवे ॥

नवांसर्ग ॥

प्रीति प्रेम और श्रीरामजीकी आज्ञा के मानने का वर्णन ॥

ऐसे जान तू कि भगवद्भक्ति सर्व अवस्थाओं से उत्तम अवस्था है और सर्व शुभगुणों का फल यही है क्योंकि पापों का त्यागना इस निमित्त कहा है कि इस करके हृदय शुद्ध होता है और श्रीरामभक्ति बिषे दृढ़ होता है जैसे त्याग और वैराग्य और सन्तोष और भय और और जो इनकी नाईं सर्व शुभगुण हैं सो इन करके श्रीरामभक्ति का अधिकारी होता है बहुरि प्रेम और श्रीरामजू की आज्ञा माननी भक्ति का फल है ताते इस पुरुष की पूर्णताई यह है कि इसके हृदय बिषे श्रीरामजूकी प्रीति प्रबल होवे और अवर किसी पदार्थकी प्रीति न रहे और जब ऐसी प्रबल प्रीति को प्राप्त न होसके तब चाहिये कि और पदार्थों की प्रीतिसे श्रीरामप्रीति अधिक होवे पर श्रीरामप्रीति का पहिंचानना ऐसा कठिन है कि प्रवर्ती पण्डित श्रीरामजू की प्रीतिको पहिंचानतेही नहीं और यों कहते हैं कि प्रीति उसके साथ होती है जिसका रूप मनुष्य की नाईं होवे अन्यथा नहीं होती ताते वह पण्डित इस प्रकार कहते हैं कि श्रीरामजी की प्रीति का अर्थ यह है कि श्रीरामजू की आज्ञा माननी सो जिसका निश्चय ऐसा होवे तब जानिये कि उसको धर्म के मूल की बूझ नहीं ताते इसका बखान करना अधिक प्रमाण है इसी कारण करके प्रथम सन्तजनों के वचनों की साक्षीसंयुक्त श्रीरामजू की प्रीति प्रमाण कहूंगा बहुरि प्रीति का रूप और उसके लक्षण कहूंगा (अथ प्रकट करनी स्तुति प्रीति की) ताते जान तू कि सर्व सन्तों का मत यही है कि श्रीरघुनन्दनजू के साथ प्रीति करनी अधिक प्रमाण है और इसी पर महाराज ने भी कहा है कि जो पुरुष मेरे साथ प्रीति करते हैं तब मैं भी उनके साथ प्रीति करता हूं और महापुरुष ने भी कहा है कि सर्व जीवों का धर्म तब दृढ़ होताहै जब सकल पदार्थों से अधिक श्रीरघुनन्दन के साथ प्रीतिकरे और महाराज ने भी ताड़ना करके कहा है कि जबलग माता पिता पुत्र धन व्यवहार मन्दिर और अवर सर्वसामग्री साथ

तुम्हारी प्रीति है तब निस्संदेह जानो कि परमदुःख को प्राप्त होवोगे और एक पुरुषने महापुरुषसे कहा था कि मैं महाराज और महाराजके प्रियतमों को प्रियतम रखता हूं तब उन्होंने कहा जो तू अपने ऊपर दुःख को आया जान और एक वार्त्ता है कि एक सन्तका जीव लेने को भगवत् दूत आये तब उन्होंने कहा कि कभी तुमने देखा है कि किसी प्रियतम का जीव किसी प्रियतम ने लिया होवे तब सन्त को आकाशवाणी हुई कि तैंने कभी देखा है जो प्रियतम के दर्शन को कोई प्रियतम नहीं चाहता और अपना जीव प्रियतम से प्यारा कर रखता है यह सुनकर सन्त ने दूतों से कहा कि अब मैं प्रसन्न हूं मेरा जीव शीघ्र निकाल लो और महापुरुष भी इस प्रकार प्रार्थना करते थे कि हे महाराज ! मुझ को अपनी प्रीति देवो और अपने प्रियतमों की प्रीति भी मुझको प्राप्त करो और जिस पदार्थ करके मैं तेरे निकट होऊं सो तिस पदार्थकी प्रीति भी मुझको देवो और जैसे ग्रीष्मऋतु बिषे प्यासे पुरुष को जल के साथ प्रीति होती है सो तिससे भी अधिक आपकी प्रीति मेरे हृदय बिषे प्रबल होवे बहुरि एक जङ्गली पुरुष महापुरुष के निकट आकर पूछनेलगा कि हे महाराज के प्यारे ! परलोक का समय कब आवेगा तब महापुरुष ने कहा कि परलोक का तोशा तेरे पास क्या है तब उसने कहा कि जप तप तो मैंने बहुत नहीं किया पर मैं महाराज को और उसके प्यारों को प्यारा रखता हूं बहुरि महापुरुष ने कहा कि इस लोक बिषे जिसके साथ किसीकी प्रीति है सो परलोक बिषे उसीको प्राप्त होवेगा और एक और सन्त ने कहाहै कि जिस पुरुष ने केवल श्रीसीतारामजू की प्रीति का रस चाखा है सो सर्व संसार से मुक्त होता है और जगत् के मिलाप को विरस जानकर त्याग करता है और उसका आपा महाराज की प्रीति बिषे लीन होता है और ऐसेही एक और महात्मा ने कहाहै कि जिस पुरुष ने श्रीराम को पहिचाना है उसकी प्रीति श्रीराम के साथही होती है और जिस पुरुष ने माया को छलरूप जाना है उसने माया का त्याग किया है और जिज्ञासु जबलग महाराज से अचेत नहीं होता तबलग स्थूल पदार्थों बिषे प्रसन्न होता है और जब माया के छलों को विचार करके देखताहै कि इनसे रहित होना कठिन है तब शोकवान् होताहै और एक महापुरुष एक सभा बिषे जाय पहुँचे और उनके शरीर बहुत क्षीण देखते भये तब उनसे पूछा कि तुम ऐसे निर्बल क्यों हुये हो

तब उन्होंने कहा कि हम नरकों के भय करके निर्बलहुये हैं बहुरि उन महापुरुष ने कहा कि निस्संदेह महाराज तुमको नरकों से बचावेगा तब आगे और सभा विषे गये और उनको उन्होंसे भी अधिक निर्बल देखा बहुरि उनसे पूछतेभये कि तुम ऐसी क्षीणताको किस निमित्त प्राप्त हुए हो तब उन्होंने कहा कि हम स्वर्ग की इच्छा करके क्षीणहुये हैं बहुरि उन महापुरुष ने कहा कि भगवत् तुम को निस्संदेह स्वर्ग के सुख देवेगा तब आगे एक और संगति विषे गये और इनके शरीर को उन दोनोंसे भी अधिक क्षीण देखतेभये पर मस्तक तिनका प्रकाश करके दर्पणवत् महाउज्ज्वल था बहुरि उनसे पूछनेलगे कि तुम इस अवस्था में क्योंकर प्राप्तहुये हो तब उन्होंने कहा कि हम श्रीरामजी की प्रीति करके क्षीणहुये हैं बहुरि वह महापुरुष उनके पास बैठगये और कहनेलगे कि तुम महाराज के निकटवर्त्ती हो और मुझको महाराज ने तुम्हारी संगति करनी कही है और सिरीसन्त ने कहा है कि जो जिसके पन्थ और मत विषे होवेगा सो परलोक विषे उसीके नाम से बुलाया जावेगा और जो केवल श्रीरघुनन्दन के प्रियतम हैं तिनको श्रीरघुनन्दनके प्यारे कहकर बुलावेंगे तब वह श्रीरघुनन्दन जन चित चन्दनजू के निकट आवेंगे और उनका हृदय प्रसन्नता करके निर्मल होवेगा और महाराज ने कहाहै कि मैं तुमको सब प्रकार प्रियतम रखता हूं तातें चाहिये तुमभी मेरेही साथ प्रीति करो (अथ प्रकटकरना रूप प्रीति का) तातें जान तू कि यह शुद्ध निर्विकार अमायिक स्वरूप की प्रीति ऐसी कठिनहै कि केते पुरुषों ने इसका नतकार किया है और कहते हैं कि भगवत् के साथ प्रीति करनी असंभव है तातें इसका खोलना अधिक प्रमाण है सो यद्यपि इसमें बहुत सूक्ष्म वचन चलेंगे जो सब किसीको समझने कठिन हैं पर मैं दृष्टान्त के साथ ऐसे प्रसिद्ध करूंगा कि जो कोई इसमें हृदय देवे तब सुगमही समझलेवे तातें प्रथम प्रीतिका मूल पहिंचानना चाहिये कि क्या है सो अर्थ यह है कि जो पदार्थ इस पुरुष को इष्ट होता है तिसविषे चित्तकी वृत्ति को खैंचहोती है और वही खैंच जब दृढ़ होती है तब उसीको प्रेम कहते हैं और विप्रीति का अर्थ यह है कि जो पदार्थ अनिष्ट होताहै तिसमें चित्त की वृत्ति ग्लानि पकड़ती है और जिस पदार्थ विषे खैंच और ग्लानि कुछ न होवे तहां प्रीति और विप्रीति का रूप प्रकट कुछ नहीं होता पर यों भी जानना चाहिये कि इष्ट और अनिष्ट

क्या है ? ताते जान तू कि तीन प्रकार के सर्व पदार्थ हैं सो एक ऐसे हैं कि वह पदार्थ तेरे स्वभाव के अनुसार हैं और तेरे चित्त की वृत्ति उनको चाहती है सो तिसको इष्ट कहते हैं १ और दूसरे इस प्रकार हैं कि वह तेरे स्वभाव के विपर्यय हैं सो तिनको अनिष्ट कहते हैं २ और जो पदार्थ तेरे स्वभाव के अनुसार और विपर्यय न होवें सो तिसको इष्ट और अनिष्ट नहीं कहते ३ ताते योंभी जानना चाहिये कि प्रथम तबलग पदार्थ का तुझको इष्ट और अनिष्ट नहीं भासता जबलग उसकी जान तुझको प्राप्त न होवे और सर्व पदार्थों की जान बुद्धि और इन्द्रियों करके होती है सो इन्द्रिय पांच हैं और एक २ इन्द्रिय का भिन्न २ विषय है सो अपने विषयों की प्रीति रखती हैं अर्थ यह कि चित्त को उसविषे खैंच होती है जैसे नेत्रों का बिषय सुन्दर रूप है और नाना प्रकार के फूल और और जो इसकी नाईं हैं सो अवश्यही नेत्रों को प्रियतम लगते हैं और रसना का विषय स्वाद है और श्रवणों का विषय राग और नाद है और नासिका का विषय सुगन्ध है और त्वचा का विषय स्पर्श है सो यह सब पदार्थ इन्द्रियोंके इष्ट हैं और चित्तको खैंचनेहारे हैं पर यह सकल पदार्थ पशुओंको भी प्राप्त होते हैं और मुख्य इन्द्रिय बुद्धि है सो केवल मनुष्य के हृदय बिषे होती है और उसी बुद्धि को प्रकाश अथवा बूझ और जान कहते हैं सो यह एकही वस्तु के नाम हैं और इसी बूझ करके मनुष्य पशुओंसे बिशेष है सो तिस बूझ की भी एक विषय है और उसको वोही विषय प्रियतम है जैसे इन्द्रियों को अपनी २ विषय प्रियतम हैं ताते जो मनुष्य पशुओं की नाईं बूझसे अचेत है और पञ्च इन्द्रियों के विषय विना और कुछ नहीं समझता वह पुरुष बूझ का बिषय जो भजन का आनन्द है तिसको नहीं समझता और इसको यह प्रतीति भी नहीं होती कि भजन करके परमानन्द को प्राप्त होते हैं और जिस पुरुष की बुद्धि उज्ज्वल होती है और पशुओं के स्वभाव से भिन्न होता है सो बुद्धि के नेत्रों करके श्रीजानकीजीवनजू की सुन्दरताई के देखने को प्रियतम रखता है और उनकी समर्थताई और सर्वगुणों को पहिंचानता है और जैसे यह नेत्र सुन्दररूप और बागीचे और तालों को देखकर प्रसन्न होते हैं तैसेही बुद्धिमान् पुरुष महाराज के अगोचर स्वरूप की सुन्दरताई को प्रियतम अधिक इससे भी रखते हैं क्योंकि जिसको श्रीरघुनन्दनजू का स्वरूप प्रकट होजाता है तिसको सर्व इन्द्रियों

के रस विरस होजाते हैं (अथ प्रकट करना कारण प्रीति के उत्पन्न होने का) ताते जान तू कि पांच कारण करके प्रीति प्रकट होती है सो प्रथम कारण यह है कि यह पुरुष अपने आप को विशेष प्रियतम रखता है और अपनी बड़ाई को भी प्रियतम रखता है और किसी प्रकार अपनी नाशता को नहीं चाहता और सदैव अपनी स्थिरता को चाहता है सो अपनी स्थिरता को इस कारण करके प्रियतम रखता है कि प्रीति उसके साथ होती है जो पदार्थ इसके स्वभावानुसार होताहै और कोई पदार्थ इसको अपने जीवने और अपने गुणों की पूर्णता के समान प्रियतम नहीं और कोई पदार्थ अपने नाश और अपने गुणों की नाश के समान विरोधी नहीं ताते इससे अपने पुत्रको भी प्रियतम रखता है कि पुत्र का होना भी अपने होनेकी समान जानता है क्योंकि यह पुरुष सदैव काल अपने होनेको समर्थ नहीं होसक्ता ताते जो पदार्थ इसके साथ सम्बन्ध रखता है सो तिसके होनेको अपनी स्थिरता मानता है ताते भली प्रकार देखिये तो सर्वथा आपहीको प्रियतम रखता है और सकल सम्बन्धियों को भी इस करके प्रियतम रखता है कि उनको भी अपने अङ्गों की नाईं जानताहै १ और दूसरा कारण यह है कि जो कोई उपकार इसके साथ करताहै तिसको भी प्रियतम रखता है इसी पर सन्तजनों ने कहा है कि यह मनुष्य उपकार करनेहारे का दास होजाता है और महापुरुष ने भी महाराज के आगे प्रार्थना करी थी कि हे स्वामिन्! किसी नीच का उपकार मेरे ऊपर न होवे तो भला है क्योंकि उस विषे मेरा चित्त बन्धायमान होवेगा और उपकार करके जो मनुष्य किसीको प्रियतम रखते हैं सो विचार करके देखिये तो यहभी अपने साथ प्रीति होती है और उपकार उसको कहते हैं कि जिस प्रकार इस पुरुष को सुख प्राप्तहोवे सोई उपकार है जैसे यह पुरुष अपनी अरोगता को अपनेही निमित्त चाहता है ताते वैद्यको भी प्रियतम रखता है २ और तीसरा कारण यह है जिसका स्वभाव भला होता है सो वह पुरुषभी अवश्यही प्रियतम लगता है यद्यपि इसके साथ कुछ उपकारभी न करे तौभी प्रियतम भासता है जैसे कोई राजा को पश्चिमदिशा विषे सुनिये कि बुद्धिमान् और न्यायकरनेहारा है और सर्व लोगों को सुख देनेहारा है तब स्वाभाविक ही उसकी भलाई सुनकर चित्तको प्रियतम लगताहै यद्यपि जानता है कि मुझको पश्चिम दिशा विषे जानाही नहीं और उसकी भलाई और उपकार को मुझे

देखनाही नहीं तब भी चित्तको प्यारा लगता है ३ बहुरि चौथा कारण यह है कि जो मनुष्य सुन्दर होताहै सो वह भी अवश्यही चित्त को प्यारा लगताहै सो किसी प्रयोजन के अर्थ प्यारा नहीं लगता पर उसकी जो सुन्दरताई है सो आपही चित्तको खैंचती है और योंभी प्रमाण है कि रूपका देखना केवल कामादिक भोगोंके निमित्त नहीं होता क्योंकि जैसे ताल और बागीचे को देखकर प्रियतम रखता है सो उस बिषे स्पर्श के भोगों का प्रयोजन नहीं केवल नेत्रों को उसके देखने बिषे प्रसन्नता होती है क्योंकि यह सुन्दरताई भी नेत्रों को प्रियतम है ताते जब इस पुरुष को श्रीजानकीवल्लभजू का रूप बुद्धि बिषे प्रत्यक्ष भासे तब निस्संदेह जाना जाताहै कि उनको अधिकही प्रियतम राखे और श्रीजानकी-जीवनजूके स्वरूपकी सुन्दरताई को मैं अपनी बुद्धि के अनुसार कुछ बर्णन करूंगा ४ और पांचवां कारण यह है कि जिसको किसीके साथ कुछ सम्बन्ध होता है सो वह भी प्रियतम लगताहै क्योंकि जिसके साथ चित्तकी बृत्ति और स्वभाव मिलजाता है तब निस्संदेह प्रियतम भासता है यद्यपि रूपवान् भी न होवे पर यह सम्बन्ध जो मैंने कहाहै सो इस प्रकार होताहै जैसे बालकके साथ बालक की प्रीति होती है और बजारी के साथ बजारी की प्रीति होती है और विद्यावान् की प्रीति विद्यावान् के साथ होतीहै सो यह प्रकट है पर एक ऐसा भी सम्बन्ध होताहै जो आदि उत्पत्ति बिषे शरीर के उत्पन्न होने से आगेही होताहै सो वह प्रकट जाना नहीं जाता सो ऐसेही महापुरुषने भी कहाहै कि शरीरसे आगेही जीवोंका आपस बिषे सम्बन्ध है और बिरोध भी होता है सो जिसका सम्बन्ध आदि उत्पत्तिबिषे जिसके साथ होताहै तिसके साथ भी अवश्यही प्रीति होतीहै सो सूक्ष्म सम्बन्ध इसीका नाम है (अथ प्रकट करना अर्थ सुन्दरताई का) कि सुन्दरताई क्या है? ताते जान तू कि जिस पुरुष की बुद्धि पशुओं की नाईं होतीहै और नेत्रों की इन्द्रियों के बिना और कोई मार्ग नहीं समझता सो वह यही कहताहै कि सुन्दरताई इसीका नाम है कि जिसके बदनका रङ्ग गौर और उज्ज्वल होवे और सर्व अङ्ग उसके समान और सुन्दर होवें तब उसीको सुन्दर कहते हैं और इससे अन्यथा सुन्दरताई कुछ सिद्ध नहीं होती सो इस बिषे यही प्रसिद्ध होताहै कि जहां रङ्ग और आकार न होवे तहां सुन्दरताई भी नहीं होती सो यह उनका कहना अ-योग्यहै क्योंकि सभी बुद्धिमान् यों कहते हैं कि यह लिखित सुन्दर है अथवा

घोड़ा सुन्दर है अथवा घर और बाग़ सुन्दर है और असुक नगर और सराय सुन्दर है ताते सुन्दरताई का अर्थ यों जानाजाता है कि जो पदार्थ की पूर्णताई और कार्य है सो उस पदार्थ बिषे सम्पूर्ण पाया जावे तब उसको सुन्दर कहते हैं जैसे अक्षरों की सुन्दरताई यह है कि वह अक्षर सम और शुद्ध होवें सो यह निस्संदेह है कि अक्षरों की सुन्दरताई और घर की सुन्दरताई को देखने करके नेत्रों को प्रसन्नता होतीहै और यह भी प्रसिद्ध है कि सर्व पदार्थों की सुन्दरताई और पूर्णताई भिन्न २ होती है ताते सुन्दर पदार्थ वही कहावताहै जो सर्व अङ्गों से परिपूर्ण होवे सो इस करके प्रकट हुआ कि सुन्दरताई केवल मुख के रङ्गपर नहीं पर यह जो बाग़ और घर और अक्षरों का मैंने दृष्टान्त दिया है सो सभी पदार्थ साकार हैं ताते स्थूल नेत्रों करके दीख सक्ते हैं सो जब कोई इसको प्रमाण भी करे और फिर यह प्रश्नकरे कि जिस पदार्थ को नेत्रों करके देखा न जावे सो वह पदार्थ किस प्रकार सुन्दर होता है सो यह मूर्खता है क्योंकि बुद्धिमान् यों भी कहते हैं कि असुकपुरुष का स्वभाव बहुत सुन्दरहै और विद्या भी वैराग्यसंयुक्त अधिक सुन्दर होतीहै और शूरता उदारतासहित बहुत सुन्दर होती है और निर्लोभता और संयम सर्व पदार्थों से अति सुन्दर है और और भी इस की नाईं जो सर्व शुभगुण हैं सो तिनको स्थूल नेत्रोंकर देखा नहीं जाता और बुद्धि के नेत्रों करके देखसक्ते हैं सो यही बखान आगे भी कहाहै कि सुन्दरताई दो प्रकार की है एक स्थूल दूसरी सूक्ष्म; सो भले स्वभाव की सुन्दरता सूक्ष्म कहावती है और चित्त को यह भी प्रियतम लगती हैं सो युक्ति इसकी यह है कि बहुत लोगों की प्रीति पिछले महात्माओं में हुई है और ऐसी प्रीति कि उनकी प्रतीति और प्रीति में शरीर और धन को निछावर करते हैं सो यह प्रीति उनके शरीर की सुन्दरता के निमित्त नहीं होती क्योंकि इन्होंने उनके शरीर को देखाभी नहीं और उनका आकार गुप्त होगया है ताते यह प्रीति उनके हृदय की सुन्दरताई विद्या और वैराग्य और शुभगुणकी है और इसी कारण से आचार्यों और अवतारों को धर्मवान् पुरुष प्रियतम रखते हैं ताते जो कोई किसी महापुरुष के साथ प्रीति करता है सो उसकी दृष्टि उनके शरीर की ओर कुछ नहीं होती क्योंकि उसकी भावना उनके गुणों की ओर होती है सो विद्या और सचाई जो महापुरुषोंके अङ्ग हैं सो कदाचित् उनसे दूर नहीं होते सो यह बात प्रसिद्ध है

कि इन लक्षणों का रङ्ग और आकार कुछ नहीं और उनकी प्रीति उत्तम पुरुषों को निस्संदेह होती है ऐसेही सर्व स्वभावों का रङ्गरूप कुछ नहीं और अर्थ विषे प्रियतम भासते भी यही हैं क्योंकि शरीर की त्वचा और मांस तो प्रीति के अधिकारी ही नहीं ताते जो बुद्धिमान् पुरुष होता है सो सूक्ष्म सुन्दरताई का नतकार नहीं करता और स्थूल सुन्दरताई को विरस जानता है और हृदय की सुन्दरताई को अधिक प्रियतम रखता है क्योंकि जो एक पुरुष की प्रीति काग़ज़ की मूर्ति के साथ होवे और एक और पुरुष की प्रीति किसी सन्तजन के साथ होवे तब इस प्रीति और उस प्रीतिमें बड़ा भेद है और योंभी है कि जब कोई पुरुष किसी मुयेहुये मनुष्य की बड़ाई करने लगता है तब उसके नेत्र और मुख की स्तुति नहीं करता उसकी उदारता और विद्या और शूरता और धैर्य को स्मरण करके स्तुति करता है और जब किसी की निन्दा करता है तब उसके शरीर की कुरूपता का वर्णन नहीं करता इसीकारण से महापुरुष के प्रियतमों को सब कोई प्रियतम रखता है और जो मनमुख उनके विरोधी हुये हैं तिनको बुरा जानते हैं ताते यह प्रसिद्ध हुआ कि सुन्दरताई दो प्रकार की है एक सूक्ष्म है और दूसरी स्थूल है सो सूक्ष्म सुन्दरताई स्थूलरूप से भी अधिक सुन्दर है पर जो बुद्धिमान् पुरुष है तिसकी प्रीति अन्तरीय सूक्ष्मस्वरूप विषेही होती है (अथ प्रकट करना इसका कि सर्वप्रकार प्रीति करने योग्य श्रीसीतारामजी ही हैं) ताते जान तू कि जो विचारकर देखिये तो श्रीजानकीजीवन विना प्रीति करने का अधिकारी कोई नहीं और जो कोई किसी और पदार्थ के साथ प्रीति करता है तो मूर्खता है पर जब इस पुरुष की प्रीति श्रीराम निमित्त सन्तजनों के साथ होवे तो यहभी महाराजही की प्रीति होती है क्योंकि जिसके साथ किसीकी प्रीति होती है तब उसके प्रियतम और संदेशे देनेहारे को भी प्रियतम रखता है ताते विद्यावानों और वैरागियों के साथ प्रीति करनी सो यह भी प्रीति श्रीरघुनन्दन साथ होती है और यह जो आगे कहा था कि प्रीति करने के अधिकारी श्रीराघवजू ही हैं सो तुझको तब प्रत्यक्ष होवेगा जब तू प्रथम प्रीति के कारणों को विचारकर देखेगा सो प्रीति का प्रथम कारण यहहै कि मनुष्य अपने आपको अधिक प्रियतम रखता है और अपनी पूर्णताई को भी चाहता है सो इस कारण करके प्रमाण है कि अवश्यही श्रीरघुनन्दन साथ ही प्रीति करे क्योंकि इसका होना और इसके

अङ्गों की पूर्णताई महाराज की सत्ताकर होती है कि जब श्रीराघवजू अपनी दया करके इस जीव की रक्षा न करें तब एक क्षण भी इसका रहना नहीं होता और जो प्रथम अपनी दया करके इसको उत्पन्नही न करते तब इसका उपजनाही न होता और जब इसके अङ्ग और गुणोंको अपनी दया के साथ प्रकटही न करते तब महानीच से नीच होता ताते यह बड़ा आश्चर्य है कि जो कोई पुरुष ग्रीष्म-ऋतु विषे उष्णता से भागकर वृक्ष की छाया को प्रियतम राखे और वृक्ष को प्रियतम न राखे और यों न जाने कि वृक्ष की छाया वृक्षही कर होती है सो मूर्ख है सो जैसे वृक्ष की छाया वृक्ष के आश्रित है तैसेही इस जीव की स्थिति और इसके गुणों की स्थिति श्रीराम के अधीन है ताते जो पुरुष अपने आपको प्रियतम राखे तो श्रीराम को क्योंकर प्रियतम न राखे पर जबलग इस वार्त्ता को न समझे तबलग उसके साथ प्रीति क्योंकर करे? ताते जो मनुष्य मूर्ख है सो श्रीरघुनाथजू को प्रियतम नहीं रखता क्योंकि श्रीरघुनाथजू की प्रीति भी श्रीरघुनाथजू के पहिंचानने का फल है १ बहुरि दूसरा कारण प्रीति का यह है कि जब कोई पुरुष इसके साथ कुछ उपकार करता है तब उसको भी प्रियतम रखता है सो इस कारण करके भी श्रीरघुनन्दन विना किसी और को प्रियतम रखना भी मूर्खता है क्योंकि जबलग इसके ऊपर श्रीरघुनन्दन की दया न होवे तबलग कोई पुरुष इसके साथ उपकार नहीं करसक्ता और जेते उपकार श्रीरघुनाथजू ने अपने जीवों पर किये हैं सो अगणित हैं और महाराज के उपकारों का बखान कछुक मैंने धन्यवाद के अध्याय विषे कहाहै ताते जब कोई उपकार भगवत् विना तू किसी आनकी ओर से देखे तब यहभी मूर्खताहै क्योंकि जबलग श्रीरामजी की प्रेरणा मनुष्य के हृदय विषे नहीं होती तबलग तुझको कोई पुरुष कुछ दे नहीं सक्ता सो श्रीरामप्रेरणा यह है कि प्रथमही मनुष्य के हृदय विषे इस लोक अथवा परलोक की श्रद्धा उत्पन्न होती है और जानता है कि देनेही विषे मेरा भला है तब अपनी भलाईके निमित्त तुझको देताहै सो विचारकर देखिये तब वह आपको देता है और उसने तुझको अपनी भलाई का वसीला बनाया है और वोही पदार्थ जो उसने तुझको दियाहै सो भगवतही ने दिया क्योंकि हृदय का प्रेरक भगवत् है और भगवत् का देना किसी प्रयोजन के निमित्त नहीं होता २ और तीसरा कारण प्रीति का यह है कि जो कोई पुरुष भले स्वभावसंयुक्त होता

है तब वहभी प्रियतम लगताहै यद्यपि योंभी जानता है कि मेरे साथ कुछ उपकार भी नहीं करेगा जैसे कोई राजा पश्चिमदिशा विषे दयावान् और न्याय करनेहारा सुनिये तब स्वाभाविकही चित्त को प्रियतम लगता है यद्यपि यों भी जानता है कि मैं उसको देखूंगा भी नहीं और उसकी भलाई के साथ मेरा कुछ सम्बन्ध नहीं पर तौभी प्रियतम लगताहै सो इस कारण करकेभी श्रीराम बिना किसी और साथ प्रीति करना मूर्खता है क्योंकि श्रीराम बिना भलाई करनेहारा और कोई नहीं जो कोई जगत् विषे भलाई करता है सो श्रीराम की प्रेरणा कर करता है और विचारकर देखिये तो इस मनुष्य के हाथही कुछ नहीं और श्रीरघुनन्दनजू के ऐसे उपकार हैं कि प्रथम सर्व जीवों को उत्पन्न किया और जो कुछ जिस किसीको चाहिये था सो दिया यद्यपि किसी किसी पदार्थ विषे करतूति का कुछ प्रयोजन न था और केवल सुन्दरताई ही उस विषे थी पर अपनी दया करके ऐसेभी पदार्थ बहुत दिये हैं और भगवत् के उपकारों को यह पुरुष तब समझता है जब प्रथम धरती और आकाश और वनस्पति और सर्वजीव और जो २ आश्चर्य रचना हैं सो तिनको देखे और विचार करे तब जाने कि भगवत् ने ऐसे उपकार किये हैं ३ बहुरि चौथा कारण प्रीति का सुन्दरताई है सो हृदय की सुन्दरताई उत्तम कही है और इस करके भी अवश्यही प्रीति होती है जैसे कोई पुरुष महापुरुष और उनके प्रियतमों को प्रियतम राखे सो यह प्रीति उनके हृदय की सुन्दरताई और गुणों की होती है सो हृदय की सुन्दरताई तीन लक्षणों करके सम्पूर्ण होती है प्रथम सुन्दरताई विद्या की होतीहै सो विद्या और विद्यावान् पुरुष अधिक सुन्दर होता है ताते जेती जेती विद्या विशेष होती है तेतीही सुन्दरताई अधिक होती है सो सर्वविद्या के जानने से भगवत् के जानने की विद्या अधिक विशेष है और यह विद्या वेदान्तियों और सन्तजनों और उनके वचनों विषे भरपूर है बहुरि आकाश धरती और इस लोक और परलोक विषेभी भरपूर है ताते महापुरुषों और जिज्ञासुओं की विशेषता इस कारण कर है कि उनको इस विद्याका अनुभव है और दूसरा लक्षण सुन्दरताई का बल है सो सन्तजनों का बल ऐसा है कि उसी बल करके अपने मन को शुद्ध करते हैं और और जीवों के मन शुद्ध करने को भी समर्थ होते हैं और व्यवहार और परमार्थ विषे धैर्य और बल साथ बर्तते हैं बहुरि तीसरा लक्षण हृदय की सुन्दरताई का

निर्लेपता है कि वह सन्तजन विकारों और अवगुणों से रहित हैं सो यही लक्षण उनके महासुन्दर हैं ताते यह लक्षण जिसविषे अधिक होते हैं सो वह पुरुष अधिक सुन्दर होता है और उसके साथ अधिक प्रीति लगती है ताते तू अब इन लक्षणों विषे विचारकर देख कि सर्वप्रकार प्रीति करने के अधिकारी श्रीरघुनन्दन स्वामीही विशेष हैं क्योंकि यह सम्पूर्ण लक्षण उनहीं विषे हैं और इस वार्त्ता को अल्पबुद्धि भी जानते हैं कि मनुष्यों और देवतों की सम्पूर्ण विद्या जो है सो श्रीरघुनाथजू की विद्याके निकट सबही अविद्या है और इसीपर महाराज ने भी कहाहै कि मैंने तुमको अल्पमात्रही विद्या दीनी है ताते जब सबही पण्डित इकट्ठे होवें और भगवत् की जो आश्चर्यरूप विद्या माखी और चींटी की उत्पत्ति विषे प्रकट हुई है सो तिसको पहिंचानना चाहें तौभी समर्थ नहीं होसक्के और यद्यपि कुछ जानतेभी हैं तौभी श्रीरामही का जनाया जानते हैं बहुरि सर्व जगत् की जो विद्याहै सो सबही गिनती और मृत्यु विषे है और श्रीरामजी की जो विद्या है सो सर्वप्रकार गिनती और मृत्यु से रहित है और जगत् की सर्वविद्या उन्हीं के आश्रित है और उनकी विद्या जगत् के आश्रित नहीं बहुरि जब तू बल की ओर देखे तो बल भी अधिक सुन्दर है जो केते भगवद्भक्तों को बल करकेही प्रियतम रखते हैं और केते भक्तों को न्याय करके प्रियतम रखते हैं जैसे भीमसेन और महाराज युधिष्ठिरादिक हुये हैं सो न्याय भी बल करके होता है पर सर्व जीवों का बल भी श्रीरघुनाथजू के निकट कुछ वस्तु नहीं क्योंकि सबही पराधीन हैं और इन विषे भी एता बल है जेता जिस किसीको महाराज ने दिया है बहुरि सबों को ऐसा निर्बल बनाया है कि जब माखी इनसे कुछ लेजावे तब फिर उससे लेनेको समर्थ नहीं होते और श्रीरघुनाथजू का बल बेअन्त और अपार है क्योंकि धरती और आकाश और जेता कुछ इनके विषे है जैसे देवता और मनुष्य और पशु पक्षी भूत प्रेतादिक जो हैं सो सबही श्रीरघुनाथजू के बल का प्रतिबिम्ब हैं ताते जो कोई पुरुष बलके अर्थ श्रीराम बिना किसीको प्रियतम राखे तौ भी अयोग्य है बहुरि जब निर्लेपता और शुद्धता की ओर दृष्टि करे तौ भी यह मनुष्य सब दोषों से रहित कब होसक्ता है क्योंकि प्रथम तो इस विषे यह नीचता है कि यह उत्पन्न किया हुआहै और अपने आप कर स्थित नहीं बहुरि अपने अन्तर से भी मूर्ख है तब और किसीको कब पहिंचान सक्ता

है क्योंकि जब एक नाड़ी इसके शीश बिषे विपर्यय होजावे तब बावरा होजाताहै और इस दुःख के कारणों को भी नहीं पहिंचान सक्ता यद्यपि इस रोग की औषध इस मनुष्य के निकटही धरी होवे तौभी नहीं जानसक्ता ताते जब इस मनुष्य की निर्बलता और मूर्खता का विचार करिये तब गिनती बिषे कुछ नहीं आवता बहुरि विद्या और बल इस जीव का कुछ अल्पमात्रही भासता है यद्यपि सिद्ध और आचार्य होवे तौभी पराधीन है ताते सर्व दोषों से रहित एक श्रीरामही हैं क्योंकि उनकी विद्या अमित है और उनको मूर्खता का मैल कदाचित् स्पर्श नहीं करसक्ता और उनका बल भी अपार है क्योंकि चौदहों लोक उनहीं के बल बिषे स्थित हैं और जब सर्व ब्रह्माण्डों को नाश करें तौभी उनकी साहबी और ऐश्वर्य बड़ाई की हीनता कुछ नहीं होती बहुरि जब और लक्ष ब्रह्माण्डोंको उत्पन्न किया चाहें तो एक क्षण बिषे सर्व ब्रह्माण्डों के उत्पन्न करने को समर्थ हैं और उनकी बड़ाई एक रञ्चक भी इनको उत्पन्न करने करके कुछ अधिक नहीं होती क्योंकि श्रीरघुनाथजी के स्वरूप बिषे ऊनता और अधिकता का प्रवेश कदाचित् नहीं होता इसी कारण करके कि महाराज सर्व दोषों से निर्लेप हैं और सत्यस्वरूप हैं और उनके स्वरूप और गुण बिषे नाशता का प्रवेश कदाचित् नहीं ताते अकस्मात् भी उनकी बड़ाई की हानि नहीं होसक्ती इसी कारण से कहा है कि जो पुरुष किसी और के साथ श्रीराम बिना प्रीति करताहै और श्रीराम को प्रियतम नहीं रखता सो महामूर्ख है ताते जो प्रीति उपकार करके होती है सो तिससे भी उनके स्वरूप की प्रीति अधिक उत्तम है क्योंकि उपकार की प्रीति कबहूं बढ़ती और कबहूं घटजाती है और जो श्रीरघुनाथजू के स्वरूप को पहिंचानकर प्रीति होती है सो सदैव एकरस रहती है इसी कारण कर एक महात्मा को आकाशबाणी हुई थी कि मुझको वही पुरुष प्रियतम लगता है जिसकी प्रीति भय और आशाकर न होवे और केवल मेरा भजन इसी निमित्त करे कि मेरी बड़ाई को जानकर सम्मुख होवे और महाराज ने योंभी कहा है कि ऐसा बुरा पुरुष और कौन है जो नरकों के भय और स्वर्ग की आशा करके मेरा भजन करे क्योंकि जब मैं नरक स्वर्गको उत्पन्न न करता तो भजन करने का अधिकारी न होता ४ बहुरि पांचवां कारण प्रीति का सम्बन्ध है सो श्रीरामजी के साथ इस जीवका निस्संदेह सम्बन्ध है जैसे महाराज

ने भी कहाहै कि यह सब जीव मेरी आज्ञा और इच्छा है अर्थ यह कि जैसे राजा का हुक्म राजा से भिन्न नहीं होता तैसेही जीव मुझसे भिन्न नहीं सो इस वचन करके जीव ईश का सम्बन्ध प्रसिद्ध हुआ और महाराज ने योंभी कहा है कि मैंने इस मनुष्य को अपने रूप के अनुसार उत्पन्न किया है सो यह भी उसी सम्बन्ध की ओर लक्ष है और योंभी कहाहै कि जब यह पुरुष अधिक प्रेम करके मेरे विषे लीन होताहै तब वह मेरा प्रियतम होता है बहुरि उसके श्रवण और नेत्र और रसनाभी मैंहीं होताहूं ऐसेही एक महापुरुष को भी महाराज ने कहाथा कि जब मैं रोगी हुआ था तब तू मुझको पूछनेको भी न आया बहुरि उन महापुरुष ने प्रार्थना करी कि हे महाराज! तू तो सर्व जगत् का ईश्वर है तुझको रोग क्योंकर हुआ? तब महाराज ने कहा कि मेरा अमुक भक्त जो रोगी हुआ था सो मानों मैंही रोगी था ताते जब तू उसकी ओर पूछने को जाता तब यह मेरा ही पूछना था क्योंकि मुझमें और मेरे भक्तों में कुछ भेद नहीं वह मेरेही स्वरूप हैं पर इस सम्बन्ध का बखान कुछ आगे भी कहाहै और सम्पूर्ण भेद ईश्वर जीव के सम्बन्ध का इस ग्रन्थ विषे कहा नहीं जाता क्योंकि सब कोई इस वचन के समझने का बल नहीं रखता और केते जिज्ञासु इस वचन को विपर्यय समझ कर मार्गविषे गिरपड़े हैं जैसे कोई पुरुष योंही समझते हैं कि जैसे हमारे शरीर का आकार है तैसेही महाराज भी शरीरवन्त साकार होवेगा ताते वह सम्बन्ध का अर्थ योंही समझते हैं बहुरि एक और पुरुष इसप्रकार कहते हैं कि जैसे हम चैतन्यस्वरूप हैं तैसेही भगवत् भी चैतन्यरूप है ताते जीवात्मा और परमात्मा की एकता वर्णन करते हैं सो यह भी उनका समझना अयोग्य है क्योंकि भगवत् आकार से विलक्षण है और जीव की नाईं मलिन और पराधीन भी नहीं बहुरि मेरे कहनेका प्रयोजन यह है कि जैसे पांच कारण प्रीति के मैंने कहे हैं सो तिनको जब तैंने भलीप्रकार पहिंचाना तब इस करके यही सिद्ध हुआ कि भगवत् के विना किसी औरसे प्रीति करना मूर्खताहै और जो पुरुष भगवत् की प्रीति का नतकार करते हैं और कहते हैं कि प्रीति उसीके साथ लगती है जो इस मनुष्य की नाईं आकारवन्त स्थूल होवे सो भगवत् इस मनुष्य की नाईं आकारवन्त नहीं और शुद्ध सूक्ष्मरूप है ताते भगवत् के साथ प्रीति होनी असंभव है और प्रीति का अर्थ यही है कि भगवत् की आज्ञा माननी सो ऐसे जो पण्डित हैं और

इस प्रीति के भेदको नहीं समझते सो तिनकी बुद्धिकी हीनता प्रत्यक्ष है क्योंकि वह पुरुष स्त्रीआदिकों की प्रीति से और प्रीति समझ नहीं सके सो यह वार्त्ता निस्संदेह है कि ऐसी स्थूल कामादिक प्रीति तबहीं सिद्ध होती हैं जो आपस विषे एक दूसरे की नाईं होते हैं पर जिस प्रीति का मैंने बखान किया है सो त्रिगुणातीत अमायिक स्वरूप की सुन्दरताई और पूर्णताई की प्रीति है और यह प्रीति स्थूल शरीर के आकार और सम्बन्ध से रहित है क्योंकि जिस पुरुष की प्रीति किसी सन्त के साथ होतीहै सो इस कारण कर नहीं होती कि मेरेही नाईं उस सन्तका शीश और मुख और हाथ पांव है ताते इस प्रीतिका सम्बन्धभी सूक्ष्म है कि जैसे यह पुरुष चैतन्य और बुद्धिमन्त और श्रद्धा करनेहारा है तैसेही वह सन्त भी इन लक्षणों संयुक्त है पर सन्तजनों विषे यह सबही लक्षण सम्पूर्ण हैं और इतर जीवों विषे कुछ अल्पमात्र हैं सो जब विचार करिये तब वस्तु का सम्बन्ध प्रसिद्ध है और गुणों की अधिकता और ऊनता विषे भेद भी बहुत है ताते यही गुण जिस विषे अधिक होते हैं सो तिसके साथ प्रीति भी निस्संदेह अधिक होती है पर प्रीति का कारण जो सम्बन्ध है सो सर्व जीवों और सन्तजनों और भगवत् विषे प्रसिद्धहै क्योंकि चैतन्यता और विद्या एकही वस्तु है सो इस सम्बन्ध को सब कोई प्रमाण करताहै यद्यपि इस वचन के अर्थ को ज्यों का त्यों नहीं समझते सो जैसे महाराज ने कहा है कि मनुष्य को मैंने अपने स्वरूप की नाईं उत्पन्न कियाहै सो अर्थ सम्बन्ध का यही है पर इसका भेद समझना कठिन है (अथ प्रकट करना इसका कि कोई सुख श्रीरामरूप दर्शन के आनन्द के समान नहीं) ताते जान तू कि सब कोई मुख से योंही कहता है कि श्रीरामरूप दर्शन विषे जैसा आनन्द है सो तैसा आनन्द और कोई नहीं पर जब कोई इसी वचन के अर्थ को अपने हृदय विषे ढूंढ़े कि जिसका दर्शन किसी दिशा विषे न होवे और उसका रङ्गरूप भी कुछ न होवे तिसके दर्शन विषे आनन्द किस प्रकार होताहै ? जब इस वार्त्ता का विचार करे तब उनके हृदय विषे ऐसे दर्शन और आनन्द का स्वरूप कुछ गुप्त नहीं भासता पर यद्यपि मुखसे भी सब कोई योंही प्रमाण करता है क्योंकि यह वचन धर्मशास्त्र विषे भी प्रसिद्ध है पर उनके हृदय विषे इस दर्शन की प्रीति कुछ नहीं और प्रीति उनकी इस कारण कर नहीं होती कि जिस पदार्थ की जान नहीं होती तिसके साथ प्रीति भी

नहीं लगती सो यद्यपि ऐसे भेद का बखान करना बहुत कठिन है पर तौभी मैं अपनी बुद्धिअनुसार कुछ वर्णन करूंगा सो इस वचन का भेद चार प्रकार कर समझसक्ते हैं सो प्रथम यह है कि इस मनुष्य के हृदयविषे ज्ञान और बूझ करके प्रसन्नता और आनन्द होता है यद्यपि उस प्रसन्नता में नेत्र और और सर्व इन्द्रियों को कुछ सुख नहीं प्राप्त होता पर वह सुख केवल इसके हृदय में होता है १ और दूसरा प्रकार यह है कि प्रसन्नता इसको बूझ और विद्याकर होती है सो तिसका रस सर्व इन्द्रियों के रस से अधिक है २ बहुरि तीसरा प्रकार यह है कि सर्व पदार्थों की बूझसे भगवत् की पहिंचान का रस विशेष है ३ और चौथा प्रकार यह है कि भगवत् की पहिंचान से भगवत् के दर्शन का आनन्द और रहस्य अधिक है सो जब तैंने इस चार प्रकार के भेद को समझा तब तुझको यह अर्थ प्रसिद्ध होवेगा कि श्रीरामजी के दर्शन के समान और पदार्थ कोई नहीं पर प्रथम प्रकार यही है कि प्रसन्नता हृदय की बूझ और विद्याकर होती है सो ऐसे जान तू कि हृदय का आनन्द विद्या से होता है सो सर्व इन्द्रियों से विलक्षण है क्योंकि इस मनुष्य विषे बहुत स्वाद उत्पन्न किये हैं सो सबही अपने अपने प्रयोजन को ग्रहण करते हैं और प्रियतम लगते हैं जैसे क्रोध को शत्रुओं के जीतने और प्रबलता के निमित्त उत्पन्न किया है सो क्रोध को शत्रु के जीतने ही बिषे रस है ऐसेही नेत्र और श्रवण और सर्व इन्द्रियों के विषे भिन्न २ हैं जैसे कामादिकों का रस क्रोध के रस से भिन्न है और योंभी है कि सर्व इन्द्रियों के रस एक समान नहीं कोई अति प्रबल है कोई उससे निर्बल है जैसे नेत्रों के विषे जो सुन्दरताई है सो नासिका के विषे सुगन्ध के रस से अति प्रबल है तैसेही मनुष्य के हृदय विषे बुद्धि और विद्या भी भगवत् ने उत्पन्न कीनी है सो उसका रूप संकल्प और इन्द्रियों विषे नहीं आवता और जैसे इन्द्रियों को स्थूल विषयों के ग्रहण करने को उत्पन्न कियाहै तैसेही बुद्धि को सूक्ष्म पदार्थों के समझने को उत्पन्न किया है और उसी बुद्धिकरके योंभी जानताहै कि यह जगत् उत्पन्न किया हुआ है और इस जगत् का उत्पन्न करनेहारा ईश्वर समर्थ है और सबका वेत्ता है इस प्रकार बुद्धि करके श्रीरामजू के अवगुणों और आश्चर्यताको पहिंचानता है सो यह सबही गुण ऐसे सूक्ष्म हैं कि इनका रूप संकल्प और इन्द्रियों विषे नहीं आवता और बुद्धिही इनको पहिंचानती है और बुद्धि ही करके वाणी की

अनुभव होती है और व्यवहार की सिद्धता भी बुद्धि कर होती है और और भी सूक्ष्म विद्या बुद्धिही के आश्रित है और बुद्धि को इन सबों विषे रस उत्पन्न होता है और जब कोई नीच पदार्थ की विद्या करके इसकी स्तुति करता है तब प्रसन्न होता है और जब कोई कहता है कि इस विद्या को अमुक पुरुष नहीं जानता तब शोकवान् होता है सो इसका कारण यह है कि यह पुरुष विद्याही को अपनी पूर्णताई जानता है जैसे कोई पुरुष आपस विषे शतरंज खेलते होवें और यह उनके पास जाय बैठे और वह पुरुष इसको शतरंज की चाल बताने से बरजे तब आपको बतावने से राख नहीं सक्ता सो यद्यपि शतरंज की विद्या अतिनीच है तौभी इसकी प्रसन्नता और स्वाद विषे परवश होकर उनको बतावने लगता है और अपनी बड़ाई किया चाहताहै सो विद्या करके बड़ाई और प्रसन्नता क्योंकर न करे कि विद्या श्रीराघवजू का लक्षण है ताते इस मनुष्य को विद्या के समान और कुछ बड़ाई नहीं होती कि विद्या श्रीरामजी का लक्षण है ताते इस वचन के अर्थ करके तैंने प्रसिद्ध जाना कि इस मनुष्य के हृदय को सूक्ष्म पदार्थों की विद्या करके आनन्द होताहै और यह आनन्द नेत्र और श्रवणादिक इन्द्रियों से भिन्न है १ बहुरि दूसरा प्रकार यह है कि विद्या और बूझ का जो आनन्द है सो इन्द्रियों के रससे अति प्रबल है जैसे किसी पुरुष को शतरंज खेलने का स्वभाव होवे सो वह पुरुष उस खेलविषे ऐसा मग्न होता है कि जब उसको कोई कहे कि तू भोजनकर तब वह पुरुष भोजन की ओर सुरति नहीं करता उसी खेल विषे लीन होजाताहै ताते प्रसिद्ध हुआ कि उस पुरुष को भोजन के रससे शतरंज का खेलना अधिक प्रियतम है इसी कारण से भोजन का त्याग करता है और शतरंज के खेलने का त्याग नहीं करसक्ता सो प्रबलता और निर्बलता तबहीं पहिंचानी जाती है जब दोनों पदार्थ इकट्ठे आइहोते हैं तब जो पदार्थ निर्बल होताहै तिसका त्याग करना सुगम होताहै और जिस पदार्थ का रस प्रबल होता है तिसको अङ्गीकार करताहै ताते जान तू कि जो पुरुष बुद्धिमान् और व्यवहार विषे चतुर होताहै सो इन्द्रियों के रसों से मान का रस तिसको अधिक होताहै क्योंकि जब कोई उस को कहे कि चाहे तू मिष्टान्नादिक भोजनकर अथवा इस का त्याग करके अपने शत्रु के जीतने का उपायकर तब तेरी जीत होवेगी और तुझको बड़ाई प्राप्त होवेगी तब वह पुरुष मिष्टान्नादिकों का त्याग करताहै और

अपनी बड़ाई के निमित्त शत्रु के जीतने का उपाय करताहै और जब यों न करे तब जानिये कि उसकी बुद्धि अल्प है ताते जिस पुरुष को भोजन के रसकी भी तृष्णा होवे तब भी निस्सन्देह भोजन के रससे मान और बड़ाई को अधिक प्रियतम रखताहै सो इसी कारण से जाना जाता है कि रसना के स्वाद से मान का स्वाद प्रबल है ऐसेही विद्यावान् को विद्या व्यवहार की और वैद्यक और धर्मशास्त्र की विद्या और और जो सर्व विद्याहैं सो इन विषे उसको अधिक रस प्राप्त होताहै पर जब उसकी विद्या सम्पूर्ण होवे तब सर्व भोगों और मानादिक से भी विद्याके रसको अधिक प्रियतम रखताहै पर जबलग सम्पूर्ण विद्याका वेत्ता न होवे और विद्या की बड़ाई को भलीप्रकार न जाने तबलग विद्याके रहस्य को नहीं पावता इस करके प्रसिद्ध हुआ कि विद्या और बूझका आनन्द उस पुरुष को प्रबल होताहै जिसकी बुद्धि उज्ज्वल होती है और जिसको दोनों पदार्थ का ज्ञान होताहै सो इस वार्त्ताको वोही समझता है पर जैसे बालक मान के रस से खेलने के रस को अधिक प्रियतम रखता है तब इस करके हमको कुछ यह संशय नहीं होता कि खेलने का रस अधिक है और मान का रस अल्प है क्योंकि ऐसे जानना उस बालकही की बुद्धि की नीचता है और उसने मान के रस को भली प्रकार नहीं जाना और जब उसको भी मान के रस की पहिंचान होती है तब खेलने का त्याग करके मान और बड़ाई को अङ्गीकार करताहै २ बहुरि तीसरा प्रकार यह है कि और सर्व पदार्थोंकी विद्या से श्रीराम स्वरूप का पहिंचानना महाउत्तम है क्योंकि जब तैंने भलीप्रकार जाना कि विद्या और बूझ आनन्ददायक है तब इस वार्त्ता विषेभी संशय नहीं कि कोई विद्या नीच होती है और कोई उससे विशेष होतीहै क्योंकि जैसा कोई पदार्थ होताहै तैसीही उसकी विद्या होती है ताते जो नीच पदार्थ है सो तिसकी विद्याभी नीच है और जो उत्तम पदार्थ होताहै तिसकी विद्याभी उत्तम होती है जैसे शतरंज की गोटें के रखने से शतरंज खेलने की विद्या विशेष है और जैसे खेती और दरजी की विद्या से राजकाज और प्रधानी की विद्या निस्संदेह विशेषहै तैसेही धर्मशास्त्र के अर्थ की विद्या कोष व्याकरण की विद्यासे विशेषहै और जैसे बाजारी की विद्या से वजीरी की विद्या और उसके भेद का समझना विशेषहै ऐसेही राज्य के भेद का जानना वजीरी के भेदसे उत्तमहै ताते जेता एक जानने योग्य पदार्थ उत्तम होता

है तेताही उसकी जानविषे आनन्द अधिक होताहै इसी कारणसे तू विचार करके देख कि सर्व सृष्टि विषे श्रीरामजू से इतर कौन पदार्थ विशेष और सुन्दर और पूर्ण है क्योंकि श्रीरामजू कैसे हैं जो सर्व सुन्दरताई और पूर्णताई के उत्पन्न करने-हारे हैं और जैसी बादशाही श्रीरामजूकीहै तैसा बादशाह और कौनहै बहुरि धरती और आकाश और इसलोक और परलोक को जिस प्रकार श्रीरामजी ने स्थित कियाहै सो ऐसा समर्थ और कोई नहीं और श्रीरघुनाथजू के दरबार सदृश सुन्दर और विशेष और कौन दरबार है ताते ऐसे श्रीरघुनाथजू के दर्शन और दरबार के समान किसी और का दरबार कब होताहै पर जिस पुरुष की बुद्धि के नेत्र उज्ज्वल होतेहैं सो इस दर्शन को वोही देखताहै और ऐसे महाराजके भेद जानने न किसी और राजा का भेद जानने से और उसके गुण और उसकी ईश्वरताई के भेदों का समझना सर्व पदार्थों की विद्यासे अधिक विशेषहै क्योंकि रामरूपी ऐसा परम पदार्थ है कि उसके समान जानने योग्य और पदार्थ कोई नहीं और और पदार्थों से श्रीरामजी को विशेष कहना भी अयोग्य है क्योंकि ऐसा पदार्थ कौनहै जिसकी उपमा श्रीरघुनन्दन के साथ कहिये और फिर श्रीरघुनन्दन को विशेष कहिये सो ऐसा कहना भी श्रीरामजी की बड़ाई के निकट हीनता होती है ताते ऐसे कहनाभी अयोग्य है इसीकारण से जिन पुरुषों ने श्रीरामजी को पहिं-चाना है सो इस जगतविषे भी श्रीसाकेतधाम विषे सदैव बैठे हैं और उनका हृदयही साकेतरूप है सो कैसाहै कि इस धरती और आकाश से भी विशाल है क्योंकि यह धरती और आकाश मृत्यु विषे है पर जिस स्थान और जिस हृदय-रूपी बागविषे रामानुरागी बिचरते हैं सो अमिट है और इस बाग के फल भी सर्व ऋतुविषे अटूट और अशोक हैं क्योंकि वह फल उसी हृदय के गुण हैं और और जो स्थूल पदार्थ हैं सो सबही हृदय से बाहर हैं और अपना आपाही इसके अति निकट है ताते ज्ञानवान् पुरुषों के फलों को कोई विघ्न दूर नहीं करसक्ता बहुरि जेता किसीको ज्ञान अधिक होताहै तेताही उसको आनन्द अधिक होता है और ज्ञानरूप ऐसा स्वर्ग है कि वह स्थान कदाचित् संकुचित नहीं होता ३ बहुरि चौथा प्रकार यह है कि श्रीरामचन्द्र के स्वरूप के ज्ञान से श्रीरामरूप दर्शन का आनन्द बहुत विशेष है ताते जान तू कि जानना दो प्रकार का होता है सो एक यह है कि उसका रूप और आकार मनोराज विषे मूर्तिमान् स्थूल

भासता है और दूसरा यह है कि उसको बुद्धिही पहिंचानती है पर उसका आकार संकल्प विषे नहीं आवता जैसे श्रीरामचन्द्रजी की सुन्दरताई है और जेते उनके गुण हैं सो बुद्धिही कर अनुभव होते हैं बहुरि इस जीव के भी केते स्वभाव ऐसे हैं कि उनका कुछ आकार नहीं जैसे बल और विद्या और श्रद्धा सो यह सबही अनूप हैं बहुरि क्रोध काम और हर्ष शोक सो यह सब आकार से रहित हैं ताते इनका रूप संकल्प विषे नहीं आवता बहुरि जो पदार्थ आकारवन्त होता है सो प्रथम तो वह पदार्थ मन के संकल्प विषे प्रत्यक्ष भासता है जैसे तू किसी पुरुष को ध्यान विषे देखे तब तू जानताहै कि मैं इसको देखताहूं सो यह देखना संकल्पमात्र होताहै ताते अल्प है और सम्पूर्ण नहीं होताहै बहुरि दूसरा यह है कि जिस पदार्थ को नेत्रों कर देखताहै सो यह देखना अति प्रत्यक्ष है और सम्पूर्ण है इसी कारण से प्रियतम के ध्यान से प्रियतम के दर्शनविषे अधिक आनन्द होताहै सो इस कारण कर नहीं कि ध्यान विषे उसका रूप कुछ और था और देखने विषे कुछ और है अथवा सुन्दरताई अधिक हुई है पर इस का प्रयोजन यह है कि ध्यान में उसका रूप संकल्पमात्र था और देखने विषे अतिप्रकट होताहै जैसे कोई अपने प्रियतम को प्रभातसमय देखे और फिर उस को दिनके प्रकाश विषे देखे तब उससे अधिक आनन्द को प्राप्त होताहै सो इस कारण कर नहीं कि प्रभात विषे कुछ और रूप था और प्रकाश विषे कुछ और रूप हुआ है पर इस विषे प्रकटता ही का भेद होताहै तैसेही जिस पदार्थ का रूप संकल्प विषे नहीं आवता और बुद्धिही कर पहिंचाना जाताहै सो तिसका पावना भी दो प्रकार से होताहै एक ज्ञान कहावता है और दूसरा दर्शन कहावता है सो जैसे ध्यान और प्रकट देखने विषे भेद है तैसेही ज्ञान और दर्शन विषे भेद होताहै और जैसे नेत्रों की पलकों कर दर्शन विषे पटल होताहै पर ध्यान विषे कुछ पलकों का परदा नहीं होता तैसेही यह पांच तत्त्व का जो शरीर है और इस शरीर के साथ जीव का सम्बन्ध है और इसी करके इन्द्रियों के रसों करके आसक्त है सो यह देहाभिमान श्रीरामदर्शन विषे पटलहै और उस के जानने विषे पटल नहीं ताते जबलग इस जीव का देह और मान दूर न होवे तबलग श्रीरामरूप दर्शन को प्राप्त नहीं होता इसी कारण से एक महापुरुष को आकाशवाणी हुई थी कि देह के अभिमान संयुक्त तू मुझको न देख सकेगा ताते

प्रसिद्ध हुआ कि जैसे ध्यान के देखने से प्रत्यक्ष का देखना विशेष है तैसेही श्रीरामजी के पहिचानने से दर्शन बिषे आनन्द अधिक है तातें जान तू कि मूल दर्शन का ज्ञानही है पर देहाभिमान के दूर हुये वह ज्ञानही ऐसी सम्पूर्णता को प्राप्त होताहै कि वह ज्ञानादि अवस्था के ज्ञान की नाई ही नहीं भासता जैसे शरीर की उत्पत्ति बीज करके होती है पर मनुष्य के शरीर और बीज का स्वरूप एक सरीखा नहीं होता बहुरि जैसे बीज से वृक्ष होताहै पर बीज की नाई वृक्ष का स्वरूप नहीं होता तदपि वह बीज ही सम्पूर्णताई को प्राप्त होताहै तब वृक्ष कहावताहै तैसेही जब वह ज्ञान सम्पूर्ण होताहै तब वह दर्शन कहावता है क्योंकि जिस पदार्थ की सम्पूर्णता प्राप्त होती है सो दर्शन भी उसीका नाम है ताते ज्यों का त्यों समझना दर्शन है सो इसी कारण से श्रीरामदर्शन किसी दिशा बिषे नहीं पायाजाता जैसे बूझ और ज्ञानभी स्थूल दिशा से विलक्षण है तैसेही उन का दर्शन भी दिशा और स्थान से रहित है पर दर्शन का मूल ज्ञानही है ताते जिस पुरुष को ज्ञान कुछ नहीं तिसको श्रीरामदर्शन बिषेभी बड़ा पटल है और उसको दर्शन कदाचित् नहीं प्राप्त होता जैसे बीज के विना खेती उत्पन्न नहीं होती और जिसको सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त हुआ है सो तिसको सम्पूर्ण दर्शन प्राप्त हुआ है पर इस दर्शन के बिषे सबही पुरुष समान नहीं होते क्योंकि जिसको ज्ञान अधिक है तिसको दर्शन का आनन्द भी अधिक है और जिसको ज्ञान अल्प है तिसको दर्शनानन्द भी अल्प है इसीपर महाराज ने भी कहाहै कि मैं सब लोगों को उनके अधिकार प्रति दर्शन दिखाऊंगा और केवल दर्शन सन्तजनों को देऊंगा सो इसका तात्पर्य यहहै कि बीज दर्शन का ज्ञान है सो ज्ञान सन्तों के हृदय में होताहै ताते उनको शुद्ध सच्चिदानन्द विग्रह का दर्शन प्रकट होताहै और इतरजीवों को ऐसा दर्शन नहीं होता क्योंकि उनमें ज्ञानरूपी बीज नहीं मिलता इसी पर महापुरुषने भी कहाहै कि अमुक प्रीतिमान् की विशेषता बहुत भजन, तप और व्रतोंकर नहीं पर उनकी विशेषता बूझ से है और वह बूझही ज्ञानरूप है ताते सर्वजीवों को जो भगवत् का दर्शन अपने अपने अधिकार प्रति होताहै सो तिसका दृष्टान्त यह है कि जैसे बहुत दर्पण होवें और कोई मलिन होवे कोई उज्ज्वल होवे और कोई अति उज्ज्वल होवे और कोई अतिमलिन होवे सो यद्यपि उन बिषे एकही स्वरूप का प्रतिबिम्ब भासता है तौ

भी उसका आकार भिन्न २ दिखाई देताहै क्योंकि जो दर्पण सीधा होताहै तिस विषे सीधाही आकार भासता है और जो दर्पण टेढ़ा होताहै तिसमें सुन्दररूपभी कुरूप भासता है जैसे तरवार की दीर्घता विषे सुन्दर मुख का आकार भी दीर्घ दृष्टि आवता है तैसेही परलोक विषे जिस पुरुषका हृदयरूपी दर्पण मलिन और टेढ़ा होताहै तब उसको निस्संदेह सुखदायक पदार्थ भी दुःखदायक भासता है ताते ऐसे ज्ञान तू कि श्रीरामरूप दर्शन विषे जैसा आनन्द सन्तजनों को होता है सो इतर जीवों को प्राप्त नहीं होताहै और जैसा रहस्य विद्यावानों को होता है तैसा विद्याहीन जीवोंको नहीं होता बहुरि जैसा सुख विद्यावान् वैरागी और प्रेमी को प्राप्त होता है सो इतर विद्यावानों को नहीं होता ताते जिस पुरुष ने श्रीराम को पहिंचाना है और श्रीरामही के साथ जिसकी अधिक प्रीति है बहुरि जिसने श्रीरामजी को पहिंचाना और प्रीति उसकी अल्प है सो इन दोनों के आनन्द विषे बड़ा भेद होताहै यद्यपि उनको दर्शन देखने विषे समानता है तौ भी उनके आनन्द विषे समानता नहीं सो यह भेद सुखविषे है दर्शन विषे नहीं क्योंकि रूप एकही है बहुरि दर्शन का बीज ज्ञान है और ज्ञानरूपी बीज दोनों को है सो तिसका दृष्टान्त यह है कि जैसे दो पुरुष होवें और दोनों की दृष्टि समान होवे सो किसी सुन्दर पुरुष को देखें पर उनमें इतना भेद होवे कि एक पुरुष उसको अधिक प्रीति के साथ देखे और दूसरे पुरुष की प्रीति थोड़ी होवे तब उनके देखने विषे भेद कुछ नहीं होता पर आनन्द विषे बड़ा भेद होता है ताते प्रसिद्ध हुआ कि प्रेम साथ देखनेहारे पुरुष को आनन्द अधिक होता है और जो पुरुष प्रीति से रहित है सो तिसको ऐसा आनन्द नहीं प्राप्त होता सो इसका तात्पर्य यह है कि केवल ज्ञान करके भी जीव को उत्तम भागों की सम्पूर्णता नहीं प्राप्त होती ताते जब प्रेम और ज्ञान दोनों होवें तब उत्तम भागों को प्राप्त होताहै और प्रेम की प्रबलता तब होती है जब प्रथम इस मनुष्य के हृदय से माया की प्रीति संपूर्ण दूर होवे ताते श्रीरघुपतिचरण की प्रीति वैराग्य बिना सिद्ध नहीं होती इसीकारण करके ज्ञानी वैरागी को आनन्द अधिक होता है बहुरि जब कोई इस प्रकार प्रश्न करे कि जो दर्शन का आनन्द भी ज्ञान के आनन्द की नाईं है तब यह आनन्द कुछ अधिक नहीं भासता सो उसका उत्तर यह है कि इस प्रकार प्रश्न तू तबलग करता है जबलग तैंने ज्ञान के आनन्द

को जाना नहीं है और केतेही वचन शास्त्रों के पढ़कर अथवा सीखकर कण्ठ किये हैं सो इसीको तैंने ज्ञान जानाहै ताते इस करके तुझको वह आनन्द प्राप्त न होवेगा किसी प्रकार जैसे कोई पुरुष आटेको भिगोयकर खावे और चाहे कि इस करके मुझको मिठाई का स्वाद आवे तब कदाचित् मिठाई के स्वाद को प्राप्त नहीं होता और जिस पुरुष को ज्ञान का रस ज्योंका त्यों आया है तब उसकोइस जगत् विषे ऐसा आनन्द होताहै कि उस आनन्द को स्वर्ग के सुख से अधिक प्रियतम रखताहै सो यद्यपि ज्ञान का सुख ऐसा है कि उसके समान और सुख कोई नहीं पर तौ भी श्रीरामरूप के दर्शन का आनन्द ऐसा अमित है कि उसके निकट ज्ञान का आनन्द भी तुच्छही भासताहै पर इस वचन का भेद दृष्टान्त विना प्रकट नहीं समझसक्ते ताते इसका दृष्टान्त यहहै जैसे किसी सुन्दर पुरुष के साथ किसीकी प्रीति अधिक होवे और प्रभात समय अपने प्रियतम को देखे अजहूं सूर्य का प्रकाश प्रकट न हुआ होवे बहुरि उस देखनेहारे पुरुष को बिच्छू और माखियां भी डसती होवें और उसी समय विषे किसी के भय करके डरता भी होवे और किसी और कार्य की चिन्ताभी करताहोवे तब यह वार्त्ता निस्संदेह है कि जहां एते विघ्न इकट्ठे होवें तब उस प्रेमी पुरुष को अपने प्रियतम के दर्शन का सुख सम्पूर्ण प्राप्त नहीं होता पर जब अचानकही सूर्य उदय होवें और प्रकाश अधिक प्रकट होवे बहुरि जिसके भय करके डरताथा सो तिसका भयभी दूरहोवे और किसी कार्य की चिन्ताभी न होवे बहुरि बिच्छू और माखी का डसना भी दूर होजावे तब निस्संदेह उस प्रेमी पुरुष को अपने प्रियतम के दर्शन का आनन्द अति अधिक होताहै सो उस पूर्व देखने की नाईं नहीं होता और विघ्नों के दूर हुये वह आनन्द सम्पूर्णता को प्राप्त होता है तैसेही यह पुरुष जबलग देह के अभिमान विषे बँधा रहताहै तबलग इतने विघ्न इस जीव को लगेहुये हैं कि ज्ञान की अल्पज्ञता अँधेरे की नाईं है अथवा परदे की नाईं है बहुरि बिच्छू और मक्खियों का डसनाभी इन्द्रियों के रसों की खैंच है और सदैवकाल शरीर की नाशता का भय रहता है और नाना प्रकार के शोक और दुःख चित्त को विक्षेपता देनेहारे हैं और सर्वदा आहार के उत्पत्ति की चिन्ता रहती है पर जब इस जीव का देहाभिमान नष्ट होताहै तब यह परदे सबही दूर होजाते हैं और उस दर्शन की प्रीति सम्पूर्णता को प्राप्त होती है और प्रकाश के प्रकट होने करके वह अँधेरा

भी दूर होजाता है बहुरि माया के व्यवहार की विक्षेपता भी नाश होजाती है इसी कारण करके वह दर्शन का आनन्द अधिकता को प्राप्त होताहै और जैसे उस देहाभिमान विषे ज्ञान का आनन्द अल्प था तैसेही देहाभिमान के दूर हुये वह आनन्द सम्पूर्ण होताहै जैसे अनाज की सुगन्धका सुख भूखे पुरुष को कुछ अल्पही होताहै तैसेही वह ज्ञान जबलग देहाभिमान युक्त होता है तबलग उस का आनन्द अल्पमात्र होता है और देहाभिमान के दूर हुये वह ज्ञानही दर्शन-रूप होता है और उसका आनन्द भी अति अधिक होता है बहुरि जब तू इस प्रकार प्रश्न करे कि तुम तो ज्ञानही की सम्पूर्णताई को दर्शन कहतेहो सो ज्ञान हृदय बिषे होताहै और दर्शन का देखना नेत्रों के बिषे होताहै ताते ज्ञान और दर्शन की एकता क्योंकर जानिये तब ऐसे जान तू कि दर्शन का नाम दर्शन इस करके कहते हैं कि जिस पदार्थ का स्वरूप संकल्प बिषे दृढ़ होताहै सो द-र्शन बिषे उसकी प्रकट प्राप्ति होती है ताते उसको दर्शन कहते हैं इसी कारण कर प्रसिद्ध हुआ कि सम्पूर्ण प्राप्ति का नाम दर्शन है और नेत्रों के देखने कर दर्शन नहीं कहावता जैसे कोई पुरुष फूल अथवा बीनको देखे पर जबलग उसकी सुगन्ध न लेवे और बीन के शब्द को श्रवण न करे तबलग सुगन्ध और राग के दर्शन को प्राप्त नहीं होता अर्थ यह कि यद्यपि उनको नेत्रों कर देखता भी है तौभी उसके रहस्य को प्राप्त नहीं होता ताते यह निस्संदेह है कि श्रीरामचन्द्रजी जब दर्शन का देखना मस्तक बिषे उत्पन्न करते तौ भी उसको दर्शन ही कहते ताते केवल नेत्रों करके देखने ही को दर्शन समझना भी बुद्धि की हीनता है पर यद्यपि दर्शन के अर्थ को तू नेत्रों का देखनाही समझता है तौ भी तुझको ऐसी प्रतीति चाहिये कि श्रीरामदर्शन भी परलोक बिषे नेत्रों कर प्रकट दृष्ट आवेगा पर वह नेत्र इन स्थूल नेत्रों की नाईं न होवेंगे क्योंकि यह शरीर के नेत्र स्थूलदृष्टि विना नहीं देखसक्ते और वह सूक्ष्मनेत्र ऐसे हैं कि उन का देखना दिशा और स्थान से रहित है पर इससे अधिक ऐसे वचनकी चर्चा और बखान करना अयोग्य है क्योंकि सब किसीकी बुद्धि ऐसे भेद को समझ नहीं सक्ती जैसे सुन्दर चित्रकारी की क्रिया बन्दर से नहीं होसक्ती बहुरि यद्यपि कोई पुरुष विद्यावान् भी होवे और वह कर्मकाण्ड और व्याकरण और और बिषे चतुर होवे तब ऐसे सूक्ष्मवचनों में उसकी बुद्धि का पहुँचना भी कठिन

होता है और जो परिडत नाना प्रकार के वचनों के निर्णय करनेहारे हैं सो ऐसे भेद को वहभी नहीं पायसक्के क्योंकि यह प्रकृति परिडत संसारी जीवों के धर्म के कोतवाल हैं अर्थ यह कि पाप पुण्य और नरक स्वर्ग का निश्चय संसारी जीवों के हृदय में दृढ़ करावते हैं और जो मनमति लम्पट मनमुख हैं तिनके विघ्न को यह परिडत ही दूर करते हैं और चर्चा करके उनके मत को खण्डन करते हैं पर यह ज्ञान की जो वार्त्ता है सो तिसका मार्गही भिन्न है और इसके समझने-हारे ज्ञानवान् पुरुष दुर्लभ हैं ताते इस वचन का वखान करना ऐसे ग्रन्थ में थोड़ाही प्रमाण है इसी कारण करके मैंने इसको यहां सम्पूर्ण किया है बहुरि जब तू इस प्रकार प्रश्नकरे कि तुमने तो ज्ञान और दर्शन के आनन्द की ऐसी विशेषता कही है कि इस सुख के निकट स्वर्ग के सुख भी तुच्छमात्र होजाते हैं सो इस वचन का अर्थ मेरे हृदय में प्रत्यक्ष नहीं भासता और यद्यपि इसी अर्थ में सन्तजनों के वचन बहुत हैं पर मेरी बुद्धि ऐसे सूक्ष्म भेद को समझ नहीं सक्की और यह संशय उत्पन्न होता है कि ऐसा सुख कौन होवेगा जिस सुखके आगे स्वर्ग का सुख भी विरस होजाता है और जबलग यह संशय दूर न होवे तबलग हृदय की प्रतीति और निश्चय भी दृढ़ नहीं होती सो तिसका उत्तर यह है कि इस वचन के अर्थ का भेद तीन प्रकार करके तेरी बुद्धि में प्रत्यक्ष भासेगा सो प्रथम यह है कि तब तुझको यह अर्थ प्रकट भासेगा जब तू बहुतबार भली प्रकार इन वचनों के अर्थ का जो हमने कहाहै तिसका मनन और विचार करेगा क्योंकि जो वचन एकही बार श्रवण कियाजाता है तब वह चित्त में नहीं ठहरता ताते बारम्बार इस वचन का विचार करना प्रमाण है बहुरि दूसरा उपाय यह है कि मनुष्य में सभी स्वाद इकट्ठे नहीं उत्पन्न किये ताते अपने २ समय अनुसार प्रकट होते हैं जैसे बालक को प्रथम आहारही की तृष्णा होती है और आहार से इतर किसी पदार्थ को नहीं जानता बहुरि जब सात वर्ष का होताहै तब उसको खेलने की तृष्णा उत्पन्न होती है और उसी खेलने के रस में ऐसा लीन होता है कि आहार का स्मरण भी नहीं करता बहुरि जब दशबर्ष का होता है तब उसको शृङ्गार और सुन्दर वस्त्रों की अभिलाषा उत्पन्न होती है और सुन्दर-ताई के स्वाद करके खेलनेका भी त्याग करताहै बहुरि जब यौवन अवस्था को प्राप्त होताहै तब कामादिक भोगों की प्रबलता होती है और काम की अभिलाषा

विषे ऐसा मग्न होता है कि उस करके आहार और खेलने और शृङ्गार की अभिलाषा नष्ट होजाती है बहुरि जब बीस वर्ष का होताहै तब इस मनुष्य विषे मान और बड़ाई की तृष्णा उत्पन्न होती है सो इस मान बड़ाई का स्वाद ऐसा है जो माया के सर्वपदार्थों विषे प्रबल है जैसे प्रभु के वचनों विषे भी आया है कि इस संसार विषे इस जीव को इतनाही प्राप्त होता है जो खेल और सुन्दरताई और मान और सम्पदा और दुर्वासना सो इस संसार विषे यही पदार्थ है पर जब यह पुरुष माया के पदार्थों करके मलिन और रोगी और आसक्त न होवे तब इससे पीछे सर्व जगत् के उत्पन्न करनेहारे जो भगवत् हैं सो तिनकी विद्या और उनके ज्ञान का आनन्द इस जीव को प्रकट होताहै सो भगवत् के जाननेका रहस्य ऐसा है कि जैसे मान के स्वाद विषे सर्वपदार्थ माया के लीन होजाते हैं तैसेही भगवत् के पहिंचानने के आनन्द विषे मान और बड़ाईका आनन्द भी विरस होजाता है और यह वार्त्ता प्रसिद्ध है कि स्वर्ग विषे भी आहार और रूप के सुख से अधिक और सुख कोई नहीं क्योंकि उहां भी बागों विषे क्रीड़ा करते हैं और उनके फलों का आहार करते हैं और फूल जल और और सुन्दर मन्दिरों को देखकर प्रसन्न होते हैं सो यह सभी भोग इस संसार विषे मानके भोग की अभिलाषा के निकट तुच्छरूप होजाते हैं ताते ज्ञान के आनन्द विषे स्वर्ग के भोगों का विस्मरण कैसे कठिन होगा क्योंकि मान की तृष्णा करके यह मनुष्य ऐसा कठिन तप करते हैं कि प्रथम एकान्त ठौर विषे अपना बन्दीखाना बनाते हैं अर्थ यह कि कभी बाहर नहीं निकलते बहुरि नित्यप्रति एकही दानेका आहार करते हैं और सर्वरात्रि जागरण करते हैं यद्यपि ऐसा तप करते हैं कि सर्वभोगों का त्याग करते हैं पर तौ भी मान का त्याग नहीं करसक्ते ताते प्रसिद्ध हुआ कि स्वर्ग के सुख जो इन्द्रियादिक भोग हैं सो इससे मान और बड़ाई के सुख को अधिक प्रियतम रखतेहैं सो जैसे ऐश्वर्य और मान की अभिलाषा इन्द्रियादिक भोगों के रस को विरसकर डारती है तैसेही ज्ञान के रस करके ऐश्वर्य और मानका रस भी विरस होजाता है सो यह सभी वार्त्ता तेरी बुद्धि विषे निस्संदेह प्रत्यक्ष भासती है क्योंकि इन मानादिक रसों को तू भली प्रकार जानता है पर बालक की बुद्धि विषे जो मानके रस का स्वाद नहीं भासता ताते वह मान के रस की प्रतीति भी नहीं करसक्ता और अब तू बालक को मान और बड़ाई के रस को

लखाया चाहे तो जबलग उसकी बुद्धि बिषे आपही उसका स्वाद न भासे तब-लग उसे वचन करके लखाना कठिन होताहै तैसेही जबलग तुझको ज्ञान के आनन्द का स्वरूप प्रत्यक्ष न भासे तबलग ज्ञानवान् भी अपने वचनों करके तुझको समझाय नहीं सक्ता जैसे तू बालक को समझाने बिषे समर्थ नहीं हो-सक्ता २ बहुरि तीसरा उपाय यह है कि जब तू ज्ञानवानों की अवस्थाको देखे और उनके वचनों को श्रवण करे और उनसे प्रश्नोत्तर करके अपने संशय को दूर करे तब तेरे चित्त बिषे इस वचन का अर्थ अवश्यही प्रकट होवेगा जैसे नपुंसक पुरुष कामादिक भोगों के रस को आप कर नहीं जानता पर जब कामी पुरुषों को देखताहै कि वह अपनी सर्वसामग्री इसी भोग की प्रबलता बिषे खर्चते हैं तब उसको भी इतना भासने लगताहै कि इन कामादिक भोगों का रस महा-प्रबल है तैसेही जब तू ज्ञानवानों की अवस्था को देखे और उनके परमानन्द को पहिंचाने तब तुझको भी ऐसी प्रतीति दृढ़ होजावेगी कि उनके हृदय में निस्संदेह बड़ा सुख है इसीपर राबियाबाई की वार्त्ता है कि उनको किसी पुरुष ने कहाथा कि स्वर्गको चाहती हो तब उन्होंने कहा कि मेरी प्रीति घरवाले के साथ है ताते मैं घर को नहीं चाहती अर्थ यह कि मुझको प्रीति भगवत् की है इस कारण से मैं स्वर्गरूपी घर को नहीं चाहती बहुरि दाराई सन्त ने भी कहा है कि श्रीरामजी के ऐसे प्रियतम हैं कि उनको स्वर्गकी आशा और नरकों का भय आसक्त नहीं कर सक्ता पर इसलोक के सुख तो अल्पमात्र हैं तब उन बिषे आसक्त क्योंकर होवें इसी कारण से सर्व वासना को दूर करके श्रीरघुपतिचरण प्रीति बिषे मग्न रहते हैं बहुरि एक और सन्त को भी किसी प्रियतम ने कहा था कि तुमको सर्व संसार और माया से जो वैराग्य प्राप्त हुआ है और एकान्त ठौर में भजन बिषे जो स्थित हुये हो सो तिसका कारण क्या है तात्पर्य यह कि तुम को काल का भय स्मरण बिषे आया है अथवा नरकों का भय है अथवा स्वर्गकी आशा है सो इसका उत्तर मुझसे कहो तब सन्त ने कहा कि काल का भय क्या है और नरकों का भय क्या है और स्वर्गकी असल क्या है पर एक ऐसा परेश प्रभु है कि यह लोक और परलोक उसीके हाथ बिषे हैं सो जब तू उसकी प्रीति का रस चाखे तब यह सभी डर और आशा विस्मरण होजावे और जब तुझको उसकी पहिंचान होवे तब इन सब पदार्थों से तू लज्जावान् होवेगा बहुरि

एक और महात्मा को किसी ने स्वप्न विषे देखा था तब उसने पूछा कि अमुक सन्त की गति परलोक विषे क्योंकर हुई है तब उन्होंने कहा कि अबहीं मैं उसको स्वर्गविषे अमृतफलों का आहार करते देख आया हूं बहुरि उस पुरुष ने पूछा कि तुम्हारी अवस्था क्योंकर है तब उन्होंने कहा कि श्रीरामजी मेरे हृदय के अन्तर्यामी हैं सो जब महाराज ने जाना कि इसको स्वर्गके खान पान की अभिलाषा कुछ नहीं तब महाराज ने अपनी दया करके मुझको दर्शन दिया और एक और सन्त ने भी कहा है कि मैंने स्वप्न विषे स्वर्ग को देखा था और उस स्वर्ग विषे बहुतलोग भोगों को भोगते देखे तब मैं एक और पुरुष को देखा कि वह शुद्धस्थान विषे बैठा है और नेत्र उसके खुले हुये हैं और मतवारे की नाईं स्थित है तब मैंने स्वर्गवासियों से पूछा कि यह पुरुष कौन है तब उन्होंने कहा कि यह मारूफजी हैं सो यह ऐसे महापुरुष हैं कि इन्होंने नरक की भय और स्वर्ग की आशा करके श्रीरामचन्द्र जू का भजन नहीं किया और निष्काम होकर श्रीरामनामस्मरण विषे दृढ़ हुये हैं तो इनको श्रीराम जू का दर्शन हुआ है और स्वर्गके भोगों से विरक्तचित्त हैं बहुरि दाराईसन्त ने भी कहा है कि जो कोई पुरुष इसलोक विषे अपने शरीर के भोगों के साथ परचा हुआ है सो परलोक विषे भी शरीर के भोगों विषे आसक्त रहेगा और जो पुरुष इसलोक विषे श्रीरामभजन के साथ परचा है सो परलोक विषे श्रीरामजी के दर्शन सुख वर्षन को प्राप्त होवेगा बहुरि एक और सन्तने भी कहा है कि एकबार मैंने बायजीदजी को देखाथा कि वह सन्ध्याकाल से लेकर प्रभात समय पर्यन्त चरणों के भार बैठरहे और ध्यान विषे नेत्रों को मूंद लिया बहुरि धरती पर मस्तक टेककर उठ खड़े हुये और प्रार्थना करनेलगे कि हे महाराज! जिन पुरुषों ने आपका भजन किया है तब उनको आपने सिद्धता का बल दिया है ताते वह पुरुष जलों पर सूखेही तरजाते हैं और आकाश विषे उड़ने लगते हैं पर मैं इन सर्व सिद्धियों से आपकी रक्षा चाहताहूं बहुरि एक ऐसे पुरुष हुये हैं कि उनको दबेहुये खजाने मिले हैं और एक ऐसे हुये हैं कि वह एकही रात्रि विषे सहस्रयोजनों के मार्ग को लांघ गये हैं और इसी सिद्धता विषे प्रसन्न हुये हैं पर मैं इनसे भी रक्षा चाहताहूं तब इतना कहकर बायजीदजी ने अपनी पीठ की ओर देखा और मुझ को देखकर कहनेलगे कि तू यहांहीं बैठा था तब मैंने कहा कि हां स्वामीजी मैं

यहांहीं बैठा था बहुरि उन्होंने कहा कि कब का बैठा है तब मैंने कहा कि जी मुझको यहां बैठे बहुत चिरकाल हुआ और मैंने योंभी कहा कि हे स्वामीजी! अपनी अवस्था का बखान कुछ मुझको भी सुनावो तब उन्होंने कहा और कि तेरे अधिकार अनुसार मैं कछुक वर्णन करताहूं बहुरि कहनेलगे कि मैं एकबार आकाशबिषे देवतों के स्थानों में गया था तब वहां स्वर्ग वैकुण्ठादिक सर्व लोकों को देखता भया और वहां मुझको आकाशवाणी हुई कि जिस पदार्थ की तुझको इच्छा होवे सो अब मांग लेवो तब मैं तुझको वही पदार्थ देऊं बहुरि मैंने प्रार्थनाकरी कि हे दीनदयालो! तेरे विना मुझको किसी पदार्थकी इच्छा नहीं तब स्वामी ने कहा कि तू मेरा ही दास है बहुरि एक महात्मा का एक जिज्ञासु था सो वह हृदय की एकाग्रता बिषे लीन रहता था तब एकबार महात्मा ने कहा कि उस जिज्ञासु को कि तू बायजीदजी का दर्शनकरे तो भला है बहुरि उसने कहा कि मैं अपनेही हृदयबिषे परचा हुआहूं तब महात्मा ने उसको केतीवार फेर भी कहा कि तुझको उनका दर्शन करना अधिक प्रमाण है बहुरि उसने कहा कि मैं उनकेभी स्वामीको नित्यप्रति देखताहूं ताते मुझको उनके देखने की इच्छा क्योंकर होवे बहुरि महात्मा ने उसको कहा कि जो तू एकबार उनका दर्शनकरे तो सत्तर बार प्रभु के देखने से उनका दर्शन तुझको विशेष है तब वह जिज्ञासु आश्चर्यवान् होकर कहनेलगा कि हे स्वामीजी! तुमने यह वचन किस प्रकार कहा तब उन्होंने कहा कि हे भाई! अब जो तू प्रभु को देखता है सो अपने अधिकार प्रति देखता है और जब तू उनके निकट जावेगा तब तू प्रभु को उनकी अवस्था के अनुसार देखेगा तब जिज्ञासु ने इस वचन को समझकर कहा कि हे स्वामीजी! तुमभी मेरे साथ चलो तब वहां जाकर उनका दर्शन करें बहुरि दोनों गुरु शिष्य बायजीदजी के पास गये तब बायजीद जङ्गल बिषे गये थे बहुरि जब अपने गृह बिषे आये और उस जिज्ञासुने उनको देखा तब बायजीद को देखतेही उस जिज्ञासु ने कहा कि भले आये हो बहुरि इतना कहकर उस जिज्ञासु का शरीर छूटगया तब उसके गुरुने कहा कि हे महापुरुषजी! तुमने इस जिज्ञासु को एकही दृष्टिकर समाप्त किया तब उन्हों ने कहा कि यह साँचा जिज्ञासु था और इसके हृदय बिषे एक गुह्यभेद था सो वह भेद इसको आप करके खुलता न था और जब मुझको इसने देखा तब वह भेद इसको प्रकट हुआ है पर इसके हृदय

विषे उस भेद के रखलेनेका वल न था ताते शरीर छूटगया और वायजीदजी ने यों भी कहाहै कि यद्यपि बड़े महापुरुषों के समान भरोसा और प्रार्थना और दिव्यता तुझको मिले तौ भी चाहिये कि तू श्रीराम विना और किसी पदार्थ को अङ्गीकार न करे क्योंकि ज्ञानवानों की अवस्था इससे भी परे है इसीपर एक वार्त्ता है कि वायजीदजी से एक प्रीतिमान् ने कहा कि मुझको तीसवर्ष इसी प्रकार वीते हैं जो रात्रि विषे भजन करताहूं और दिनको व्रत रखता हूं पर जैसे ज्ञान के वचन तुम कहतेहो सो मुझको इनकी समझ कुछ प्रकट नहीं भासती तव उन्होंने कहा कि जव तू तीनसै वर्ष पर्यन्त ऐसाही कठिन तप करे तव भी हमारे वचनों के भेद को समझ न सकेगा वहुरि उस पुरुष ने कहा कि मैं इस भेद को किसकारण कर न समझ सकूंगा तव उन्हों ने कहा कि तुझको अपने मान और अहंकार का पटल है वहुरि उस पुरुष ने पूछा कि इसका उपाय क्या है तव उन्हों ने कहा कि तू इसका उपाय न कर सकेगा वहुरि उसने कहा कि तुम दया करके मुझको बतावो तव मैं उपाय करूंगा तव उन्हों ने कहा कि प्रथम तू अपनी डाढ़ी को दूर कर और नग्न होकर अखरोटों का थैला गले में डार ले और वाजार विषे जाकर कह कि जो कोई वालक मुझको एक मुष्टिका मारे तो मैं उसको एक अखरोट देऊंगा वहुरि राजसभा के पण्डितों के आगे इसी प्रकार कहे तव तेरे अहंकार का पटल दूर होवेगा वहुरि जव यह वचन उस पुरुषने सुना तव कहनेलगा कि इससे भगवान् रक्षाकरे तुमने यह वचन कैसा कहा? तव वायजीद उसको कहनेलगे कि यह वचन जो तैंने कहा है सो इस करके तू मनमुख हुआ है क्योंकि यद्यपि मुखसे तू यों कहता है कि भगवन्त जो निर्लेप है सो मेरी रक्षाकरे पर इसी कहने विषे तू अपनी बड़ाई को चाहताहै ताते तू मनमुख है वहुरि उस पुरुष ने कहा कि तुम मुझको कुछ और उपाय कहो तो मैं करूंगा और यह जो तुमने आगे कहाहै सो मुझसे हो नहीं सक्ता तव उन्होंने कहा कि औषध तेरा यहीहै वहुरि उसने कहा कि यह तो मुझ से नहीं होसक्ता तव उन्होंने कहा कि मैंने तो तुझको प्रथम ही कहाथा कि तेरा जो उपाय है सो तू न करसकेगा पर वायजीद ने यह उपाय उसको इस कारण कर कहाथा कि वह पुरुष मान और बड़ाई की अभिलाषा विषे आसक्त था और उसको मानही का रोग था ताते निर्मोण होना उसका औषध था और एक महा-

पुरुष को आकाशवाणी हुई थी कि जिस मनुष्य के हृदय बिषे लोक और परलोक का अभिलाषा नहीं देखता हूं तब उसके हृदय बिषे मैं अपनी प्रीति को रखताहूं और सर्व प्रकार उसकी रक्षा करता हूं बहुरि एक महात्मा ने महाराज के आगे प्रार्थना करी थी कि हे प्रभो ! तू भलीप्रकार जानता है कि जैसे अपनी प्रीति और भजन का रहस्य तैंने मुझको अपनी दया से दिया है तिससे स्वर्ग के सुखों का मोल मच्छर के पर की समान भी नहीं लगता बहुरि राबियाबाई से भी किसी पुरुष ने पूछा था कि तुम महापुरुष को प्रियतम रखती हो तब उन्होंने कहा कि ऐसा पुरुष कौन है जो महापुरुष को प्रियतम न राखे पर मुझ को भगवत् की प्रीति ने ऐसा लीन किया है कि और किसीकी प्रीति मेरे हृदय में नहीं रही और एक और महापुरुष से लोगों ने पूछा था कि उत्तम करतूति कौन है तब उन्होंने कहा कि श्रीरामजी की प्रीति और उनकी आज्ञा में प्रसन्न रहना सो उत्तम करतूति यही है पर तात्पर्य यह है कि सन्तजनों की साक्षियां भी ऐसी बहुत हैं पर उनकी अवस्था करके जानाजाता है कि स्वर्ग के सुख से श्रीरघुनन्दनजू की प्रीति और तिनकी पहिंचान का आनन्द अधिक होता है ताते चाहिये कि तू ऐसे वचनों का विचार करे तब तुझ को भी इस वचन का अर्थ प्रत्यक्ष भासे (अथ प्रकट करना इसका कि श्रीरामजी की पहिंचान किसकारण छिपीहुई है) ताते जान तू कि जिस पदार्थ की पहिंचान कठिन होती है सो दो कारणों कर होती है सो प्रथम यह है कि जो पदार्थ अति गुह्य होता है तिसको पहिंचान नहीं सक्के १ और दूसरा कारण यह है कि जो पदार्थ अति प्रकट और अधिक प्रकाशवान् होताहै तब उसको भी नेत्रों कर देख नहीं सक्के जैसे चिमगोदर सूर्यको देख नहीं सक्का बहुरि जब रात्रि का समय होताहै तब नेत्र को खोल कर देखता है सो तिसका कारण यह है कि दिन बिषे सूर्य का प्रकाश अधिक होताहै और चिमगोदर की दृष्टि मन्द है ताते अन्धकार बिषे नेत्रों को खोलकर देखता है तैसेही भगवत् के पहिंचानने की कठिनाई भी अति प्रकटता करके है कि भगवत् अति प्रकाशवान् और अति प्रत्यक्ष है ताते बुद्धिरूपी नेत्र उसको देख नहीं सक्के और श्रीरामजी का प्रकाश और उनकी प्रकटता इस प्रकार जानी जाती है कि जैसे तू किसीके सुन्दर अक्षर देखे अथवा किसी वस्त्र को सिला हुआ देखे तब तू निस्संदेह दरजी की विद्या को और श्रद्धा

को सुगमही पहिंचान लेताहै और कारीगरी की क्रिया को देखकर उसकी विद्या प्रत्यक्ष भास आवती है तैसेही श्रीरामजी जब इस जगत् विषे एकही पक्षी अथवा एकही वृक्ष उत्पन्न करते तब जो कोई उसको देखता सो निस्संदेह उसके उत्पन्न करनेहारे महाराज की बूझ और समर्थताई और बड़ाई को सुगमही पहिंचानता क्योंकि यह महाराज की रचना ऐसी है जो वस्त्र और अक्षरों की रचना के समान नहीं इसकारण से कि वस्त्र और अक्षरों की कारीगरी आरम्भ और सामग्री और यत्नकर सिद्ध होती है और यह धरती और आकाश और पशु वृक्ष और पर्वत और अवर जो इसकी नाईं सृष्टि है और जो कुछ मनके संकल्प विषे आवता है सो सभी महाराज की कारीगरी है और इस कारीगरी को महाराज ने आरम्भ और यत्न विनाही उत्पन्न किया है ताते यह सभी पदार्थ महाराज की बड़ाई के लखावनेहारे हैं और यद्यपि एते पदार्थ लखावनेहारे भी हैं तौ भी अति प्रकटता करके उसका पहिंचानना गुह्य होरहा है क्योंकि जब एक पदार्थ महाराज ने उत्पन्न किये होते और एक और पदार्थ किसी और ने बनाये होते तब निस्संदेह महाराज की बड़ाई को पहिंचानसक्ते पर जब सर्व सृष्टि का उत्पन्न करनेहारा महाराजही है इसी कारण कर लखा नहीं जाता और इसका दृष्टान्त यह है कि जैसे सूर्य के समान इस जगत् विषे और कोई पदार्थ प्रकाशवान् नहीं क्योंकि सर्व पदार्थों को सूर्यही लखावता है पर जब यह सूर्य भी रात्रि के समय अस्त न होता अथवा मेघों के आवरण विषे सूर्यको पटल न होता तब कोई मनुष्य इस प्रकाश को सूर्य के आश्रय न जानता और यों जानते कि यह सबही रङ्ग आप करके प्रकाशे हुये हैं पर सब कोई जो रङ्गों के लखावनेहारे प्रकाश को पहिंचानता है सो इसकारण करके जानते हैं कि रात्रिके समय सभी रङ्ग छिपजाते हैं और प्रकाश बिना कोई रङ्ग दीख नहीं सक्ता ताते जानाजाता है कि रङ्ग भिन्न है और प्रकाश भिन्न है सो प्रकाश का लखना अन्धकार होताहै क्योंकि विरोधी पदार्थ को विरोध करकेही लखा जाता है तैसेही सर्व जगत् का उत्पन्न करनेहारा जो भगवन्त है सो वहभी किसी काल विषे सूर्यकी नाईं जब अलोप होजाता अथवा नाशता को भास होता तब धरती और आकाश भी नष्ट होजाते तब इस करके सब कोई भगवत् को सुगमही पहिंचान लेता पर वह भगवन्त जो नाशता और आवरणादिक से रहित है और सर्व पदार्थ उसीको लखावनेहारे हैं और सर्वदा

उसका प्रकाश अखण्ड है ताते अधिक प्रकाश करके छिप रहा है बहुरि यों भी है कि बालअवस्था से लेकर जब तेरे विषे कुछ बुद्धिही न थी तबसे तू सर्व सृष्टि को देखता है और सृष्टि के उत्पन्न करनेहारे को बुद्धिही करके पहिंचान सक्ते हैं सो बुद्धिके आगेही सृष्टि के देखने में तेरे नेत्रों की वृत्ति दृढ़ होगई और स्वाभाविक होगया है ताते नाना प्रकार के चरित्र देखकर भी तुझको आश्चर्य नहीं भासता बहुरि जब अचानक किसी अपूर्व पक्षी अथवा वृक्ष को तू देखता है तब जानता है कि इसका उत्पन्न करनेहारा ईश्वर समर्थ है और तू यों कहताहै कि जिसने इसको बनाया है सो उस महाराज की महिमा अपार है और उस अपूर्व आश्चर्यको देखकर भगवत् की कारीगरी तुझको प्रत्यक्ष भास आवती है ताते जिस पुरुष की बुद्धि के नेत्रकी दृष्टि उज्ज्वल है सो सर्व पदार्थों को आश्चर्यरूपही देखता है और भगवत् की कारीगरी को पहिंचानता है और अपनी वासना करके किसी पदार्थ को नहीं देखता जैसे कोई पुरुष सुन्दर अक्षरों को देखे तब वह पुरुष जो विद्याहीन होताहै तौ मसी और कागज़ को देखताहै और जो विद्यावान् होता है तो सुन्दर अक्षरों को देखकर लिखनेहारे की कारीगरी को पहिंचानता है और वाणी करके वाणी के बनानेहारे की विद्याको समझता है तैसेही जो बुद्धिमान् पुरुष है सो सर्व पदार्थों विषे भगवत् की सत्ता को देखता है और जो पुरुष बुद्धि से हीन है सो इस संसार को अपनी वासना और तृष्णायुक्त देखता है और बुद्धिमान् पुरुष इस प्रकार जानता है कि कोई पदार्थ भगवत् की सत्ता से भिन्न नहीं ताते उसको सब कुछ आश्चर्यही भासता है इस कारण कर सबही पदार्थ भगवत् की बड़ाई और समर्थताई को प्रकट लखावते हैं ताते इस जगत् विषे भगवत् के समान और कोई पदार्थ प्रकाशमान और उज्ज्वल नहीं पर यह जीव अपनी बुद्धि की हीनता करके उसको पहिंचान नहीं सक्ते (अथ प्रकटकरना उपाय प्रीति के प्राप्त होने का) ताते जान तू कि भगवत् की प्रीति सर्वपदों से उत्तमपद है और उसके प्राप्त होने का उपाय समझना अति प्रमाण है सो इस प्रीति के उपजने का दृष्टान्त यह है कि जैसे कोई पुरुष किसी सुन्दर पुरुष के साथ प्रीति किया चाहे तब इसका उपाय यह है कि प्रथम अपने प्रियतम विना और सर्व पदार्थों से विरक्तहोवे बहुरि उसी प्रियतम को सर्वदा प्रीति संयुक्त देखतारहे और उसके सर्वअङ्गों के देखने की अभिलाषा को बढ़ावे ताते जेती २ उसकी सुन्दरताई

को देखता है तेतीही उसके हृदय बिषे प्रीति दृढ़ होतीजाती है सो जब वह पुरुष इस प्रीति के स्वभाव बिषे दृढ़ होताहै तब निस्संदेह उसको प्रीति की अधिकता होती है तैसेही श्रीरामजी की प्रीति का उपाय भी यही है कि प्रथम माया के सर्वरसों से विरक्त होवे क्योंकि महाराज की प्रीति बिषे माया की प्रीति पटल डालती है सो माया की प्रीति का दूर करना ऐसे है जैसे किसान कण्टकों को दूर करके धरती को शुद्ध करता है बहुरि इससे पीछे रामजी की पहिंचान को ग्रहण करे क्योंकि जबलग यह पुरुष रामजी को नहीं पहिंचानता तबलग इसको श्रीरघुनन्दनजू की प्रीति भी नहीं होती ताते यह वार्त्ता प्रसिद्ध है कि हृदय सुन्दरताई और पूर्णताई आपही चित्त को खैंचती है और प्रियतम है सो जब यह पुरुष उसको पहिंचानता है तब निस्संदेह उसको प्रियतम रखता है जैसे कोई पुरुष किसी महात्मा की विशेषता को जाने तब अवश्यही उसके साथ प्रीति करता है क्योंकि उसमें शुभ गुणों की सुन्दरताई को प्रकट देखता है ताते उसको प्रीति स्वाभाविकही दृढ़ होती है तैसेही जब यह पुरुष श्रीरामजी को पहिंचानता है तब सहजही प्रीति उत्पन्न होती है सो यह पहिंचानना बीज की नाईं होता है बहुरि चाहिये कि सर्वकाल श्रीरामभजन में स्थित होवे सो भजन बिषे स्थित होना जल सींचने की नाईं है सो योंभी है कि जो कोइ किसी का अधिक स्मरण करता है तब इस करके भी प्रीति अधिक होती है ताते जान तू कि यद्यपि सात्त्विकी मनुष्यों के हृदय बिषे महाराज की प्रीति अवश्य होती है पर सबको समान नहीं किसीको अल्प किसीको अधिक होती है सो अधिकता और अल्पता का भेद तीन कारण कर होता है सो इसका प्रथम कारण यह है कि जिसका चित्त माया के व्यवहार बिषे अधिक पसरा हुआ है तब उसको श्रीरामचरण प्रीति थोड़ी होती है क्योंकि एक पदार्थ की प्रीति दूसरे पदार्थ की प्रीति को मन्द करती है १ बहुरि दूसरा कारण यह है कि पहिंचान बिषे भी भेद होता है जैसे कोई पुरुष विद्याहीन होवे तब वह पण्डितों को इतनाही पहिंचानता है कि अमुक पण्डित बहुत पढ़ाहुआ है और जो आपभी विद्यावान् होवे सो उस पण्डित के नाना प्रकार की विद्या को पहिंचानता है और उस पण्डित के साथ जिसकी प्रीति होती है तब वह उसके हृदयके गुणों को भी पहिंचानता है और शुभ गुणों की सुन्दरताई को देखकर अधिक प्रियतम रखता है

तैसेही जो पुरुष श्रीरामजी को भलीप्रकार पहिंचानता है तब उसके साथ प्रीति भी अधिकही करता है २ बहुरि तीसरा कारण यह है कि भजन स्मरण करके जो रहस्य प्राप्त होता है सो उस बिषे भी बड़ा भेद होता है क्योंकि कोई पुरुष भजन की सावधानता बिषे दृढ़ होता है और कोई अल्प दृढ़ होता है ३ ताते जान तू कि प्रीति की अधिकता और अल्पता का भेद इन तीन कारणों कर होता है पर जिस जीव की प्रीति रामजी के साथ कुछ नहीं होती तब जाना जाता है कि उसने रामचन्द्रजी को पहिंचानाही नहीं पर जैसे शरीर की सुन्दरताई चित्त को खैंचती है तैसेही गुणों की सुन्दरताई को जो पुरुष देखता है तब उसको अवश्यही प्रीति प्रकट होती है ताते यह प्रीति भी श्रीराम सर्वदिव्य भव्य गुणसागर की पहिंचान का फलहै और रामजी की पहिंचान का प्राप्त होना भी दो कारणों कर होताहै सो एक योगीजनों का मार्ग है कि वह प्रथम तप करते हैं बहुरि भजन करके हृदय को शुद्ध और एकत्र रखते हैं और आप को और सर्वपदार्थों को विस्मरण करते हैं इससे पीछे उनके हृदय बिषे ऐसी अवस्था प्रकट होती है कि उस करके श्रीरामजी की बड़ाई को प्रत्यक्ष देखते हैं पर इस मार्ग का दृष्टान्त ऐसे है जैसे कोई बधिक फांसी को पसारे तब उस फन्द बिषे मृगपक्षी फँसता है अथवा नहीं भी फँसता अथवा मूस उस फांसी बिषे आन फँसताहै अथवा बाजभी प्राप्त होता है तैसेही जो मार्ग की साधना बिषे भी अवस्था का बड़ा भेद होताहै जैसे किसी का वचन फुरने लगता है किसीको वृद्धता का बल होताहै किसीको पूर्णज्ञान भी होताहै १ दूसरा मार्ग विचार का है सो सत्संग और ब्रह्मविद्या कर प्राप्त होताहै और श्रीरामजी की विचित्र रचना का विचार करना इसका मूल है बहुरि श्रीरघुनन्दन जनचित्तचन्दन के अङ्ग और उनके स्वरूप का विचार प्रकट होताहै तब श्रीरामजी की पूर्णताई और बड़ाईको प्रत्यक्ष देखता है सो इस विचार की विद्या का अन्त नहीं पर बुद्धिमान् पुरुष इस को सुगमही प्राप्त होता है और इस मार्ग बिषे ज्ञानवान् सद्गुरु की सहायता चाहता है पर जिस पुरुष की बुद्धि नीच होवे और हृदय उसका मलिन होवे तब वह ऐसे मार्ग बिषे नहीं पहुँच सक्ताहै सो यह विचार की विद्या फन्द बिछाने की नाईं नहीं ताते इसका दृष्टान्त यह है कि जैसे कोई पुरुष व्यवहार अथवा खेती करे अथवा कुछ और मँजूरी करे तब इस करके निस्संदेह लाभ को

पावताहै पर जब कोई अकस्मात् विघ्न पहुंचजावे तब हानि भी होती है तौभी इस व्यवहार विषे लाभ की प्राप्ति अधिक है और हानि होना अकस्मात् है ताते विचारही का मार्ग विशेष कहा है और जब कोई पुरुष विचार विना श्रीरामजी की प्रीति को प्राप्तहुआ चाहे सो यह भी असंभव है और विचार की प्राप्ति भी इन दोनों मार्ग विना सिद्ध नहीं होती २ और जो कोई यों जाने कि रामजी की प्रीति विना परलोक विषे मैं सुखी होऊंगा सो यह मूर्खता है क्योंकि यह पुरुष रामजी की प्रीति विना परलोक विषे सुख को प्राप्त नहीं होता सो इसका कारण यह है कि रामजी के निकट पहुँचनेही का नाम परलोक है ताते जिस पुरुष की प्रीति आगेही किसी पदार्थ के साथ होती है सो यद्यपि अकस्मात् किसी के संयोग करके उस पदार्थ से दूर भी रहताहै तौभी उसके चित्त विषे वोही प्रीति दृढ़ रहती है बहुरि जब उस पदार्थ को प्राप्त होताहै तब स्वाभाविकही परमानन्द को पावताहै और उत्तम भक्ति इसी का नाम है पर जब आगेही उस पदार्थ के साथ जिसकी प्रीति कुछ नहीं होती तब तिसको उस पदार्थ की प्राप्ति विषे सुखभी कुछ नहीं प्राप्त होता और जब प्रीति अल्प होती है तब उसकी प्राप्ति विषे सुखभी अल्पमात्र होताहै ताते प्रसिद्ध हुआ कि परलोक की भलाई और सुख इस जीव को प्रीति के अनुसार होताहै और भगवान् रक्षाकरे इससे कि जब इस मनुष्य का हृदय ऐसा मलिन होजावे जो श्रीराम से इतर पदार्थों के साथ इसकी प्रीति होवे और सर्वथा चित्त की वृत्ति स्थूलता विषे पसरजावे तब वह पुरुष निस्संदेह परलोक विषे परमदुःख को प्राप्त होताहै और जिस पदार्थ को पाकर गुरुमुख प्रसन्नता को पावते हैं सो उसी पदार्थ को मनमुखी जब पावताहै तब प्रीति की हीनता करके वह निस्संदेह दुःखी होताहै सो इसका दृष्टान्त यह है कि जैसे कोई चाण्डाल बाजार विषे गन्धी के निकट आया और सुगन्ध की अधिकता करके मूर्च्छित होकर गिरपड़ा तब वह गन्धी उसके चैतन्य करने के निमित्त उस चाण्डाल पर सुगन्धें गुलाबजल आदिक डालनेलगा पर वह चाण्डाल सुगन्ध करके अधिक मूर्च्छित हुआ तब अचानकही एक और चाण्डाल वहां आवता भया और उसने इस वृत्तान्त को पहिंचाना तब वह विष्ठा को भिगोकर उस मूर्च्छित चाण्डाल को सुंघावनेलगा तब वह चाण्डाल शीघ्रही जाग उठा और कहनेलगा कि यह भली सुगन्ध है तैसेही जिस पुरुष की प्रीति माया

के साथ अधिक दृढ़ हुई है और वह सर्वथा मायाही को प्रियतम जानताहै सो उस चाण्डाल की नाईं है क्योंकि जैसे चाण्डाल का स्वभाव दुर्गन्धता के साथ दृढ़ था और गन्धियों के बाजार बिषे उसको दुर्गन्ध प्राप्त न भई ताते मूर्च्छा को प्राप्तहुआ तैसेही परलोक बिषे भी इस जीव को माया का सुख कोई न होवेगा ताते जो कुछ परलोक बिषे इस जीव को प्राप्तहोता है सो वह मनमुख के स्वभाव से विरोधी होताहै इसी कारण से परलोक बिषे विषयी पुरुष महादुःखी होताहै अर्थ यह कि परलोक भी चैतन्यता के प्रकट होनेका नाम है इसी चैतन्यता बिषे भगवत् का स्वरूप भी प्रकट होता है ताते बड़भागी पुरुष वही है जिसकी प्रीति इसलोक बिषेही रामजी के साथ दृढ़ हुई है और जिसका चित्त चैतन्य पुरुष के साथ सम्बन्धी हुआ है सो धन्य है क्योंकि सर्व तप और भजनों का प्रयोजन श्रीरघुपति चरण प्रीति है और सम्बन्ध भी प्रीतिका नाम है इसीपर महाराज ने भी कहा है कि जो उत्तम पुरुष हैं सो निस्संदेह परम शुद्धताही को प्राप्त होते हैं और जेते पापकर्म और माया के भोग हैं सो श्रीरामप्रीति के सम्बन्ध बिषे विरोधी हैं जैसे महाराज नेभी कहाहै कि जिस पुरुष की प्रीति बुराई के साथ होती है सो अवश्यही बुराई को ही प्राप्त होताहै ताते जिन पुरुषों के बुद्धिरूपी नेत्र खुले हैं सो इस भेदको प्रत्यक्ष देखते हैं औरसन्तजनों के हृदय की निर्मलताई को प्रकटही पहिंचानते हैं और यद्यपि वह सन्तजन अपना बल और ऐश्वर्य नहीं दिखावते तौभी बुद्धिमान् पुरुष उनके हृदय की शुद्धता को हस्तामलकवत् देखते हैं जैसे कोई पुरुष वैद्यकविद्याका वेत्ता होताहै सो सुगमही वैद्यको पहिंचान लेता है और जो पुरुष पाखण्ड करके आपको वैद्य किया चाहताहै सो उसको भी विद्यावान् पहिंचान लेताहै कि यह पाखण्डीहै तैसेही सन्तजन और दम्भी को बुद्धिमान् पुरुष प्रकटही पहिंचान लेताहै और योंभी चाहिये कि जबलग इस जीवके बुद्धिरूपी नेत्र खुले न होवें तबलग सन्तजनोंके वचन औरअवस्था अनुसार पहिंचाने और प्रतीति करे पर जबलग इस जीव की दृष्टि बल और ऐश्वर्य पर होती है तबलग जिस बिषे सिद्धता का बल कुछ देखता है उसीको सन्त जानता है सो यह अयोग्य है क्योंकि सिद्धता का बल सन्तजनों को भी होताहै और बरदान करके अथवा जादू करके भी होताहै सो इस भेद का समझना हृदय की शुद्धता विना कठिनहै ताते यह परीक्षाही झूंठी है (अथ प्रकट करने लक्षण प्रीति के)

ताते जान तू कि श्रीरामजी की प्रीतिरूपी रत्न महादुर्लभ है और अभिमान करना अयोग्य है क्योंकि श्रीरामजी की प्रीति के भी सात लक्षण हैं ताते चाहिये कि यह मनुष्य वह सात लक्षण अपने हृदय में दृढ़ करे सो प्रथम यह है कि प्रीतिमान् पुरुष काल के भय करके कदाचित् नहीं डरता क्योंकि शरीर के मृत्युहोने करके वह जानता है कि मुझको अपने प्रियतम का दर्शन होवेगा ताते प्रेमी पुरुष सर्वदा प्रियतम का दर्शनही चाहता है इसीपर महापुरुष ने भी कहाहै कि जो पुरुष श्रीरामजी के दर्शन को चाहताहै सो तिसको श्रीरामजी भी चाहते हैं और एक हरिजन ने किसी तपस्वी से पूछाथा कि तुम मृत्यु को प्रियतम रखतेहो तब वह तपस्वी मौन कररहा बहुरि उसको हरिजन ने कहा कि जब तुझको सांची प्रीति होती तब तू निस्संदेह मृत्युको प्रियतम रखता पर इस विषे इतना भेद है कि प्रीतिमान् पुरुष मृत्यु होने से ग्लानि नहीं करता पर मृत्यु की शीघ्रता से ग्लानि करता है क्योंकि उसको परलोक मार्ग का तोशा बनावने की अधिक अभिलाषा होतीहै ताते कछुक काल जीवनेको भी चाहताहै पर इसकी परीक्षा यह कि ऐसा पुरुष परलोकही के कार्यविषे अतिदृढ़ होताहै और कदाचित् अचेत नहीं होता १ बहुरि दूसरा लक्षण प्रीति का यह है कि जिस पदार्थ विषे रामजी की प्रसन्नता और निकटता प्राप्त होती है सो प्रीतिमान् पुरुष उसी को अङ्गीकार करताहै और जिस पदार्थ करके रामजी से वियोग होताहै तब उसको त्याग करता है पर ऐसी अवस्था उस पुरुषकी होतीहै जिसकी सम्पूर्ण प्रीति श्रीरामजी के साथ होती है पर जिस पुरुष से अकस्मात् कुछ पाप भी होजावे तब उसको सर्वथा प्रीति से हीनभी नहीं कहाजाता पर यों कहाजाता है कि उसको सम्पूर्ण प्रीति नहीं इसी पर एक सन्तने कहा है कि जब कोई पुरुष तुझसे पूछे कि तू प्रीतिमान् है तब तुझको मौन करनीही भली है क्योंकि जब तू ऐसे कहे कि मैं रामजी को प्रियतम नहीं रखता तब मनमुखता होती है और जब तू कहे कि मैं प्रीतिमान् हूं तब प्रीतिमानों के लक्षणों को प्राप्त होना कठिनहै २ बहुरि तीसरा लक्षण यह है कि प्रीतिमान् का हृदय सर्वदाही भजनके रसविषे लीन होता है और यत्न विनाही भजन विषे स्थित रहताहै सो यह वार्त्ता प्रसिद्ध है कि जिस के साथ किसी की प्रीति होती है तब स्वाभाविकही उसका स्मरण करताहै और जब सम्पूर्ण प्रीति होती है तब प्रियतम को कदाचित् विस्मरण नहीं करता और

जब यों होवे कि यत्न करके मनको भजन विषे लगावे तब जानिये इसकी प्रीति किसी और पदार्थ के साथ अधिक है और श्रीरामजी के साथ अल्प है पर श्रीरामजी को प्रियतम रखता है ताते चाहता है कि मेरी प्रीति श्रीरामजी के साथ दृढ़ होवे ३ और चौथा लक्षण यह है कि सन्तजन और उनके वचनों विषे प्रीति करे और जिसके साथ कुछ अपने प्रियतम का सम्बन्ध होवे तब उसको भी प्रियतम राखे इसी कारण कर कहाहै कि जब इसकी प्रीति श्रीरामजी के साथ सम्पूर्ण होती है तब सर्वजीवों को प्रियतम रखता है और जानता है कि यह सबही जीव मेरे स्वामी के उत्पन्न किये हुये हैं ताते सर्वसृष्टि को भाव संयुक्त देखता है जैसे किसी मनुष्य के साथ किसी की प्रीति होती है सो अपने प्रियतम की वाणी और उनके अक्षरों को प्रियतम रखताहै तैसेही प्रीतिमान् पुरुष सर्व सृष्टि को प्रियतम रखताहै ४ बहुरि पांचवां लक्षण यहहै कि प्रीतिमान् पुरुष को एकान्त और प्रार्थना की अधिक अभिलाष होती है और चाहता है कि जो रात्रि का समय आवे तो भलाहै क्योंकि रात्रि विषे व्यवहार की विक्षेपता दूर होती है और केवल एकान्त करके भजन विषे दृढ़ होसक्ता है और जबलग जगत् के मिलाप को रात्रि के एकान्तसे प्रियतम राखे तब जानिये कि इसकी प्रीति मन्दहै इसीपर दाऊदजी को आकाशवाणी हुईथी कि जो पुरुष अपने को प्रीतिमान् कहता और रात्रिविषे निद्रा करके सोइ रहताहै सो झूठा है क्योंकि प्रीतिमान् पुरुष अपने प्रियतम के दर्शन का त्याग कैसे करसक्ता है ताते जो कोई मुझको ढूंढ़ता है तब मैं उसीके निकटहूं और एक महापुरुष ने प्रार्थनाकरी थी कि हे महाराज ! तुझको कहां ढूंढूं तब आकाशवाणी हुई कि जब तेरे हृदयविषे ढूंढ़ने की मंशा दृढ़हुई तब तैंने निस्संदेह मुझको पाया और महाराज ने योंभी एक अनुरागी से कहा है कि जगत् विषे तू किसी के साथ प्रीति न कर तब मुझसे दूर न होवे क्योंकि दो पुरुष मुझसे निस्संदेह दूर होते हैं एक वह जो पुण्य के फलकी सिद्धता को शीघ्र ही प्राप्तहुआ चाहे और जब उस फल की प्राप्ति विषे कुछ ढीलहोजावे तब पुण्य कर्मका त्यागकरे और दूसरा वह जो मुझको बिसार कर शरीर के सुखों विषे मगन होइरहे तब मैं भी उसको बिसार देताहूं ताते वह जगत् विषेही दुःखी रहताहै इस करके प्रसिद्ध हुआ कि जब सम्पूर्ण प्रीति होती है तब किसी और पदार्थकी अभिलाषा नहीं रहती इसीपर एक वार्त्ता है कि एक तपस्वी था सो जिस वृक्षके

ऊपर पक्षी शब्द करतेथे तब उस वृक्ष के नीचे जाकर भजन करनेलगा तब महाराज ने उस तपस्वी को कहा कि अब तेरी सुरति पक्षियों के शब्द की ओर गई है ताते तू अपने पद से गिरा है और जबलग इस वृक्षको त्याग न करेगा तबलग किसी प्रकार उस पद को न पहुंचेगा और केते सन्तजनों की अवस्था भजन और विनय प्रार्थना बिषे ऐसी दृढ़ हुई है कि जब उनके घरमें अग्निलगी तौभी उन्हों ने नहीं जाना और किसी और सन्तजन के चरण बिषे कुछ रोग था सो जब वह सन्त भजन बिषे स्थितहुआ तब वैद्यों ने उसका चरण काटलिया और उस सन्त को पीड़ा की कुछ खबर न भई ५ बहुरि छठा लक्षण भी प्रीति का यह है कि प्रीतिमान् को भजन करना सुगम होताहै और कुछ यत्न और आलस उसको नहीं रहता इसी पर एक सन्त ने कहाहै कि जब मैंने भजन किया तब प्रथम बीस वर्ष पर्यन्त मुझको यत्न करना होतारहा बहुरि अब बीस वर्ष हुये हैं तब से भजन करनाही मुझको सुखरूप हुआहै तात्पर्य यह कि जब रामजी की प्रीति सम्पूर्ण होती है तब श्रीरामभजनही इस पुरुष को सर्वथा सुखरूप भासता है और कोई पदार्थ सुखदायक नहीं भासता और कठिनता भी दूर होजाती है ६ बहुरि सातवां लक्षण यह है कि प्रीतिमान् पुरुष का मिलाप और सम्बन्ध सात्त्विकी मनुष्यों के साथ होताहै और सर्व जीवोंपर दयादृष्टि रखताहै और कुसंगियों का संग कदाचित् नहीं करता जैसे किसी सन्त ने महाराज से बिनती करके पूछा था कि हे महाराज! तेरे प्यारे सन्तजन कैसे हैं? तब महाराज ने उसको आज्ञाकरी कि जैसे बालक की प्रीति माता के साथ होतीहै तैसेही जिसकी प्रीति मेरे साथ है और जैसे पक्षी अपने घोसले में विश्राम पावताहै तैसेही जो पुरुष मेरे भजन बिषे विश्रामी होताहै और जैसे सिंह निर्भय होकर किसीके ऊपर कोप करताहै तैसेही कुसंगियों की ओर जिनको निर्भय कोपदृष्टि होती है सो ऐसे पुरुष मुझको महाप्रियतम हैं ७ इसीप्रकार और भी प्रीति के लक्षण अनेक हैं पर जिस को सम्पूर्ण प्रीति होती है तिसके हृदय बिषे सम्पूर्णही लक्षण स्थित आइ होते हैं और जिसके बिषे कुछ लक्षण होते हैं और कुछ नहीं होते तब जानिये कि उसकी प्रीतिही अल्प है (अथ प्रकट करना रूप प्रेम और उत्कण्ठा का) ताते जान तू कि जो पुरुष प्रीति को प्रमाण नहीं करते सो प्रेम और उत्कण्ठा को भी नहीं मानते और महाराज ने इस प्रकार प्रसिद्ध कहाहै कि उत्तम पुरुषों की

चाह और प्रेम मेरेही साथ अधिक है और मैं उनको उससे भी अधिक चाहताहूं ताते प्रेम का अर्थ अवश्यही पहिंचानना चाहिये सो प्रीतिही प्रेम और उत्कण्ठा का अङ्गहै इसीकारण से जिस पुरुष को प्रीति कुछ नहीं होती तिसको प्रेम और उत्कण्ठा भी नहीं होती और जो पुरुष अपने प्रियतम को प्रकट देखता है तब वहां भी प्रेम और उत्कण्ठा का स्वरूप प्रत्यक्ष दिखाई नहीं देता और समाप्त होजाता है ताते प्रेम का स्वरूप वहांहीं प्रकट भासता है जहां वह पदार्थ एक प्रकार कर प्रसिद्ध होवे और एक भावकरके वोही पदार्थ गुप्तहोवे जैसे प्रियतम का देखना ध्यान बिषे प्रकट होताहै और नेत्रों से दूर होताहै तब प्रेमी पुरुष ऐसेही चाहता है कि जिस प्रियतम को मैं ध्यान बिषे देखताहूं सो उसका दर्शन भी मैं किसी प्रकार नेत्रों साथ देखूं तब मुझको प्रियतम की सम्पूर्ण प्राप्ति होवे सो इसी खैंचका नाम उत्कण्ठा और प्रेम है बहुरि तैसे ही जान तू कि जबलग इस जीव का सम्बन्ध शरीर के साथ है तबलग संपूर्ण प्रेम को प्राप्त नहीं होता क्योंकि यद्यपि बुद्धि करके श्रीरामजी को पहिंचानता है तो भी दर्शन से दूर है ताते प्रसिद्ध हुआ कि प्रेम की सम्पूर्णता देहाभिमान के दूर हुये से प्राप्त होतीहै और एक और भाव करके देखिये तो देहाभिमान के दूर हुये भी प्रेम का अङ्ग कदा-चित् नहीं आता क्योंकि देहाभिमान का आवरण ऐसा वर्णन किया है जैसे कोई अपने प्रियतम को महीनवस्त्र के परदे बिषे देखे अथवा प्रभात समय देखे सो देहाभिमान बिषे महाराज को पहिंचानना ऐसेही होता है अर्थ यह कि य-द्यपि देखता भी है तो भी अति प्रत्यक्ष नहीं देखता सो देहाभिमान के दूर हुये से यह परदा तो दूर होजाताहै पर एक भाव करके प्रेम और उत्कण्ठा की अ-धिकता रहती है जैसे प्रेमी पुरुष ने प्रियतम का मुख देखा होवे और उसके और अङ्ग न देखे होवें और योंभी जानता होवे कि मेरे प्रियतम के सर्व अङ्ग सुन्दर हैं तब उसको सर्व अङ्गोंके देखने की अभिलाषा रहती है तैसेही चैतन्यरूप जो श्रीरामजी हैं सो तिनका कुछ अन्त नहीं ताते जो कोई उनको बहुतही पहिं-चानताहै तौभी उनकी सम्पूर्णता को पाय नहीं सक्ता क्योंकि श्रीरामरूप अपार है और मर्याद से रहित है ताते प्रसिद्ध हुआ कि जब उनको सम्पूर्ण पहिंचाना नहीं जाता तब सम्पूर्ण देखना भी नहीं होसक्ता इसी कारण करके कहा है कि यह जीव स्थूल देश बिषे भी और सूक्ष्म देश बिषे भी श्रीरामजी के सम्पूर्ण भेद

को जान नहीं सक्ता पर यों है कि जेता सूक्ष्मदेश विषे महाराज के दर्शन को अधिक देखता है तेताही अधिक आनन्द को पावता है सो उनका दर्शन वे अन्त है पर जेता किसीने देखा है तिसके चित्त की वृत्ति उसी दर्शन विषे लीन रहे तब इसी का नाम मिलाप है और जेता देखना शेष रहता है सो जब चित्त की वृत्ति उसी अभिलाषा विषे होवे तब इसीका नाम प्रेम और उत्कण्ठा है ताते प्रकट हुआ कि इसलोक और परलोक विषे उत्कण्ठा और मिलाप का अन्त कबहूं नहीं आता पर यह जीव परलोकविषे जो देखताहै सो श्रीरामरूप के प्रकाश को देखता है तौभी दर्शन की सम्पूर्णताई को चाहताही रहता है पर यह वार्त्ता निस्संदेह है कि श्रीरामही अपने आपको ज्योंका त्यों जानताहै और और ऐसा कोई समर्थ नहीं जो श्रीरामस्वरूप को सम्पूर्ण जानसके और जब सम्पूर्ण पहिंचाननाही कठिन है तब उसको पहुँच नहींसक्ता पर वहां सन्तजनों की अवस्था ऐसी होती है कि उनको सदा सर्वदा दर्शन की अधिकता खुलती जाती है सो इसीकारण करके आत्मसुख को अपार कहाहै कि उसका पार कभी नहीं आता और बढ़ताही जाताहै सो जब वह सुख ऐसा न होता तब उसकी मर्याद होती और कुछ काल के पीछे आनन्द न भासता क्योंकि जो आनन्द मर्याद विषे होता है तब उसके साथ चित्तकी वृत्ति वही स्वभाव को पकड़ जातीहै ताते वह आनन्द नहीं भासता और आनन्द तबहीं लग भासता है जब उसकी अवस्था बढ़ती जाती है सो आत्मसुख ऐसाहै कि उसका आनन्द सदाही नूतन है और बढ़ता जाता है बहुरि जब इस वचन के निर्णय विषे तैंने मिलाप और प्रेमके अर्थ को समझा कि प्राप्त वस्तु की प्रसन्नता का नाम मिलाप है और शेष वस्तु की अभिलाषा का नाम प्रेम और उत्कण्ठा है तब ऐसे जान तू कि प्रेमीपुरुष इसलोक और परलोक विषे मिलाप और उत्कण्ठा विषेही रहते हैं इसी पर प्रभूनें दाऊद जी को कहाथा कि हे दाऊद! यह संदेशा मेरा जीवों को पहुँचावो कि जो मेरे साथ प्रीति करते हैं मैंभी उनको प्रियतम रखताहूं और मैं उनही का संगीहूं जो एकान्त विषे मेरेही साथ स्थित होते हैं और मैं उनकाही मित्र हूं जो निर्वासना होकर मेरेही भजन विषे परचते हैं और मेरे प्यारे वही हैं जिन्होंने मेरे प्यार करके और सब कुछ विस्मरण किया है और जो मेरे आज्ञाकारी हैं मैंभी उनका आज्ञाकारी हूं ताते जिस पुरुष ने मुझको प्रियतम किया है सो निस्संदेह मैंने उसको

प्रियतम और विशेष किया है और जो कोई मुझको ढूंढ़ता है सो अवश्यही पावताहै और जो पुरुष किसी और पदार्थ को ढूंढ़ता है सो मुझको नहीं पाय सक्ता ताते तुमको चाहिये कि जिस माया के कार्यों विषे तुम आसक्त हुए हो और छलेगये हो सो इसका त्याग करके अपना मुख मेरी ओर ले आवो और मेरेही साथ प्यार करो तब मुझको भी प्यारे होवो और जेते मेरे प्रियतम हैं सो उनको मैंने अपने प्रकाश से उत्पन्न कियाहै और अपने ही तेजसे उनको मैंने पाला है बहुरि किसी और सन्तको भी आकाशवाणी हुईथी कि जिनकी प्रीति मेरे साथ है मैंभी उनहीको प्रियतम रखता हूं और जो मुझको चाहते हैं मैं भी उनको चाहता हूं और जो मेरा स्मरण करते हैं मैं भी उनका स्मरण करता हूं और जिनकी दृष्टि मेरी ओर है मैंभी उनकी ओर देखताहूं पर तू भी जब उनही के मार्ग चलेगा तब मेरा प्यारा होवेगा और जब विपरीत मार्ग विषे चलेगा तब मुझ से विमुख होवेगा सो इसी प्रकार के वचन प्रीति और प्रेमके निर्णय विषे बहुत आये हैं ताते इतनाही बखान बहुत है (अथ प्रकटकरना अर्थ रजाय का और विशेषता रजाय मानने की) ताते जान तू कि श्रीरामजी की आज्ञा मानना उत्तमपद है और और अवस्था इसके समान विशेष नहीं क्योंकि यद्यपि प्रीति की अवस्था भी महाउत्तम है पर महाराज की आज्ञा मानना सांची ही प्रीति का फलहै इसीपर महापुरुष ने भी कहाहै कि श्रीरघुनाथजू के प्राप्त होने का परमद्वारा यही है जो श्रीमहाराज की आज्ञा माननी और परमसुख का द्वारा भी यही है बहुरि महापुरुष ने किसी से पूछा था कि तुम्हारे धर्मका चिह्न कौन है तब उन्होंने कहा कि हम दुःख विषे सन्तोष करते हैं और सुख में धन्यवाद करतेहैं और सर्वकाल विषे महाराजकी आज्ञापर प्रसन्न रहते हैं तब महापुरुषने उन से कहा कि तुम बुद्धिमान् हो और विद्यावान् हो और सन्तजनों के निकटवर्ती हो और योंभी कहाहै कि परलोक विषे एक मनुष्य ऐसे होवेंगे जो परमसुखके स्थानों विषे आनन्दवान् होवेंगे और उनको दण्ड ताड़ना न होवेगी बहुरि उनसे देवता पूछेंगे कि तुम ऐसी अवस्था को क्योंकर प्राप्त हुये हो तब वह कहेंगे कि हम ने दो करतूति किये हैं सो एक यह कि हम एकान्त विषे भी श्रीरामजी का भय करके पापकर्म का त्याग करते थे और दूसरा यह कि जैसी हमारी प्रारब्ध रामजीने रची थी सो हम उसी विषे प्रसन्न रहते थे तब देवता कहेंगे कि तुम

ऐसेही सुख के अधिकारी हो और धन्य हो बहुरि एक महापुरुष ने महाराज के आगे प्रार्थना करीथी कि हे महाराज! तू किस करतूति करके प्रसन्न होताहै तब हम वोही करतूति करके तुझको प्रसन्न करें तब आकाशबाणी हुई कि जब तुम मेरी आज्ञा बिषे प्रसन्न होवोगे तब मैं भी तुम्हारे ऊपर प्रसन्न होऊंगा और दाऊदजी को भी आकाशबाणीहुई थी कि जो मेरे सन्तजन हैं सो किसी माया के पदार्थ का शोक नहीं करते इसी कारण से उनके भजन की प्रसन्नता कदाचित् खण्डित नहीं होती ताते हे दाऊद! मेरा प्रियतम वही है जिसका हृदय अपने आप बिषे स्थित हुआ है और किसी पदार्थ करके उसको शोक और मोह नहीं होता बहुरि महापुरुष ने भी कहाहै कि महाराज ने इस प्रकार अपने वचनों बिषे कहाहै कि मैं ऐसा ईश्वर समर्थ हूं कि मुझ ऐसा और दूसरा कोई समर्थ नहीं ताते जो मनुष्य दुःख बिषे सन्तोष नहीं करता और सुख बिषे मेरा धन्यवाद नहीं करता और मेरी आज्ञा बिषे प्रसन्न नहीं रहता तब उसको चाहिये कि वह अपना ईश्वर कोई और ढूंढ़े और योंभी कहाहै कि मैंने सर्वकार्यों की नेत रची है और सब कुछ समझ करके दृढ़ कियाहै और सर्व बिषे मेरी आज्ञा वर्तमान है ताते जो कोई मेरे किये पर प्रसन्न है तब उनपर मैंभी प्रसन्न हूं और जो कोई पुरुष मेरे किये पर प्रसन्न नहीं रहता तब मैं भी उस पर अप्रसन्न होता हूं अर्थ यह कि वह मुझको दुःखदायक समझता है ताते दुःखी रहता है और महाराज ने योंभी कहा है कि भला और बुरा सब मैंने ही उत्पन्न किया है पर जिस पुरुष की भलाई बिषे प्रीति है सो सुखी रहता है और जिस मनुष्य को बुराई करनी सुगम भासती है और मेरी आज्ञा से विमुख है सो अभागी है और एक सन्त के ऊपर बीसवर्षपर्यन्त भूख और निर्धनताई का दुःख अधिक रहा था और जब कुछ महाराज से मांगता था तौभी उसको प्राप्त न होताथा बहुरि उसको आकाशवाणी हुई कि जब आदिही जगत् को मैंने उपजाया था तब तेरी प्रारब्ध इसी प्रकार रची थी सो अब तू चाहता है कि मैं तेरे निमित्त अपनी नेत को विपर्यय करूं और तेरी चाहके अनुसार तुझको सुखी करूं और जिसप्रकार मेरी आज्ञा है सो व्यर्थ होवे ताते मैं अपनी दुहाई करके कहता हूं कि जो तैंने मेरी आज्ञा से विमुख होकर कुछ और चाह करी तब तुझको अपने पद से गिराइदूंगा बहुरि उस सन्त ने कहा है कि बीसवर्षपर्यन्त मैं महापुरुष की टहलबिषे

रहाथा पर उन्होंने मुझको ताड़ना करके कबहूं न कहा कि अमुक कार्य तैंने किस निमित्त किया है और अमुक कार्य क्यों न किया पर जब कोई मुझको दुखाता और मैं भी उसके साथ कुछ विवाद करता तब मुझको ताड़ना करके कहते कि जब तू श्रीरामाज्ञा को पहिंचानता तब अपने शत्रु के साथ विवाद न करता और मौन कर रहता बहुरि दाऊदजी को भी आकाशवाणी हुई थी कि हे दाऊद! एक तेरी चाह है और एक मेरी चाह है पर कार्य वही सिद्ध होताहै जिसको मैं सिद्ध करताहूं ताते जब तू अपना आपा समर्पण करेगा तब सुखी होवेगा और जब मेरी आज्ञा से विपर्यय होवेगा तब अपनी चाह बिषे दुःखी होवेगा बहुरि एक और सन्तका वचनहै कि जैसी नेत महाराजने रचीहै सो मैंभी उसी विषे प्रसन्न हूं और सर्वदा दृष्टि मेरी उसकी आज्ञा विषेही रहती है बहुरि जब उन सन्त के कुछ रोग उत्पन्नहुआ तब लोगोंने पूछा कि तुम क्या चाहतेहो तब उन्होंने कहा कि मैं वोही चाहताहूं जो कुछ महाराज चाहता है और एक और सन्त ने भी कहाहै कि जो कार्य प्रभुने किया होवे सो तिस बिषे जब अभाव करूं तब इस विमुखता से मुझको विष खाना सुगम भासता है बहुरि किसी तपस्वी ने चिरकालपर्यन्त तप कियाथा तब बहुत कालके पीछे उसको आकाशवाणीहुई कि तुझको अमुक बाई का दर्शन करना विशेष है तब वह तपस्वी उस बाई के निकट गया और चाहनेलगा कि मैं इसका भजन और तप देखूं सो तपस्वी ने रात्रि विषे कुछ उसकी जाग्रत भी न देखी और दिनको व्रतभी न देखा तब उस से पूछनेलगे कि तुम्हारी करतूति क्या है तब बाईने कहा कि मेरी करतूति यही है जैसी तैंने देखी है बहुरि तपस्वी ने बहुत बिनती करके पूछा तब बाईने कहा कि मेरा एक यह भी स्वभाव है कि जब मुझको कुछ रोग और कष्ट होताहै तब मैं अरोगता के सुख को नहीं चाहती और जब धूप बिषे होती हूं तब मैं छाया की अभिलाषा नहीं करती और जब छाया बिषे होती हूं तब धूप को नहीं चाहती और जिस प्रकार श्रीजानकीनाथ की आज्ञा होती है तब मैं उसी में प्रसन्न रहती हूं बहुरि उस तपस्वी ने दण्डवत् करके कहा कि यह तुम्हारा स्वभाव महाउत्तम है (अथ प्रकटकरना अर्थ महाराज की आज्ञा माननेका) ताते जान तू कि केते पुरुष इस प्रकार भी कहते हैं कि दुःख में प्रसन्न होना असम्भव है क्योंकि दुःख में सन्तोष तो करसक्तेहैं पर दुःख में प्रसन्न होना बुद्धि में नहीं आता यह उनका

कहना प्रमाण नहीं क्योंकि जब इस पुरुष की प्रीति सम्पूर्ण होती है तब दो प्रकारसे दुःख में प्रसन्नता होती है सो प्रथम यह है कि प्रेमीपुरुष प्रेम में ऐसा लीन होता है कि उसको दुःख की सुधि ही नहीं रहती जैसे युद्ध में शूरमा पुरुष ऐसा अचेत होताहै कि यद्यपि युद्ध में उसका घायलशरीर होताहै तौभी वह पीड़ाको जानता नहीं और उसके चित्त की वृत्ति शत्रुके जीतने में मग्न होजाती है बहुरि जब उस चोट घाव को देखताहै तब जानता है कि मैं घायल हुआहूं और जब कोई धन की तृष्णा करके किसी कार्यमें दौड़ता है और उसके चरण में कांटा प्रवेश कर जाताहै तब उसको भी नहीं जानता और यहभी प्रसिद्ध है कि व्यवहार की अधिकता विषे भूख प्यास नहीं भासती ताते प्रकट हुआ कि जब स्थूलशरीर और व्यवहार की प्रीति विषे एते दुःखों का भान नहीं रहता तब श्रीरामजी की प्रीति और प्रेम विषे दुःखों का न जानना क्योंकर असंभव होताहै क्योंकि इस स्थूलरूप की सुन्दरताई से दिव्यरूप की सुन्दरताई का देखना महाविशेष है और यह जो शरीर है सो मलमूत्र का घर है और चर्म करके लपेटा हुआ है और इसको देखनेहारे नेत्र भी क्षणभंगुर हैं और जिस बुद्धिरूपी नेत्रों करके दिव्यस्वरूप की सुन्दरताई देखसक्ता है सो दृष्टि महासूक्ष्म और उज्ज्वल है और यह जो स्थूल नेत्र हैं सो इनकी दृष्टि विपरीत है क्योंकि बड़ेको छोटा देखते हैं और छोटे को बड़ा देखते हैं बहुरि जो वस्तु दूर होती है सो निकट भासती है और जो निकट है सो दूर भासते हैं ताते प्रसिद्ध हुआ कि स्थूलरूप का देखना तुच्छमात्र सुख है और सूक्ष्म सुन्दरताई का देखना परमानन्द स्वरूप है इसीकारण से ऐसे आनन्द विषे दुःख का विस्मरण होना कठिन नहीं १ बहुरि दूसरा प्रकार यह है कि यद्यपि प्रेमीपुरुष को कुछ दुःखभी लगता है तदपि वह ऐसे जानता है कि मेरे प्रियतम की आज्ञा इसी प्रकारहै ताते उसका हृदय प्रसन्न होजाताहै और उस दुःख को दुःख नहीं जानता जैसे कोई मित्र अपने मित्र का रुधिर कढ़ावे अथवा कड़ुवी औषध खवावे तब वह औषध खानेहारा कुछ खेद नहीं मानता और भलाही जानता है तैसेही जो पुरुष श्रीरामजी की आज्ञा को पहिंचानता है सो निर्धनताई और और दुःख करके शोकवान् नहीं होता जैसे तृष्णावान् पुरुष व्यवहार के निमित्त बड़े २ दुःखों को खैंचता है पर धन की आशा करके उसको दुःख नहीं जानताहै तैसेही जिज्ञासु अनुरागी भी जब ऐसे जानता है कि महाराज की आज्ञा

को प्रसन्न होकर मानने विषे महाराज प्रसन्न होताहै तब उसकी प्रसन्नता के निमित्त दुःख को दुःख नहीं जानता सो बहुत सन्तजन इस अवस्थाको प्राप्त हुये हैं जैसे एक बाई की वार्त्ता आगेभी कही है कि वह गिरपड़ी थी और उसके पांव के अँगूठे का नख उतर गया था तब वह हँसने लगी बहुरि लोगों ने उससे पूछा कि तुमको दुःख नहीं प्राप्तहुआ तब उसने कहा कि दुःख विषे प्रसन्न होनेका फल जो है सो तिसकी आशा करके मुझको दुःख नहीं भासा बहुरि एक सन्त के कुछ रोग था और उसका उपाय न करता था तब किसीने कहा कि तुम रोग का उपचार क्यों नहीं करते तब उन्हों ने कहा कि हे भाई! तू नहीं जानता कि अपने प्रियतम की चोट करके दुःख और पीड़ा नहीं होती बहुरि जुनेदसन्तने भी कहा है कि मैंने अपने सद्गुरु से यह वार्त्ता पूछी थी कि हे स्वामीजी! शरीर के दुःख विषे प्रेमी पुरुष भी दुःखी होताहै तब उन्हों ने कहा कि प्रेमी दुःखी नहीं होता बहुरि मैंने पूछा कि जब उसको तरवार की चोट लगे तब क्योंकर कहताहै तब उन्होंने कहा कि एकतरवारकी चोट क्याहै जो उसके सत्तर चोटलागें तोभी उसको दुःख नहीं भासता और एक सन्त ने ऐसे कहा है कि जो कुछ रामजी चाहते हैं मैं भी वोही चाहता हूं ताते जब मुझको महानरक में डारें तोभी मैं प्रसन्नहूं और उस नरकही में भला जानताहूं बहुरि एक और महात्मा ने कहा है कि किसी मनुष्य से कुछ अवज्ञा हुई थी तब लोगों ने उसको सहस्र लाठी मारीं और उसने पुकार न करी तब मैंने उससे पूछा कि तैंने पुकार क्यों न करी बहुरि उसने कहा कि जब वह लोग मुझको लाठी मारते थे तब मेरा प्रियतम मेरे सम्मुख खड़ा हुआ था और मेरी ओर देखता था और मेरी दृष्टि भी उसीके ओर थी ताते मुझको पुकार करनी भूल गई तब मैंने उस पुरुष को कहा कि अवतो तेरी प्रीति स्थूल मनुष्य के साथ है पर जो सर्व सौन्दर्यसागर श्रीरघुनन्दन महाराज के रूप अनूप की छविछटा को देखता तब क्या करता बहुरि इतना सुनकर ऊंची पुकार करके हाय करी और शरीर छोड़ दिया बहुरि उन्हीं महात्मा ने कहा है कि प्रथम अवस्था विषे मैं वनमें गया था और वहां जाकर भजन विषे दृढ़ हुआ बहुरि मैंने एक पुरुष को देखा कि वह बावरे की नाईं धरती पर पड़ा हुआ था और चींटी उसके मांस को काटती थीं तब मैंने दया करके उसका शीश अपनी गोद में लिया बहुरि जब वह चैतन्य हुआ तब कहने लगा कि तू ऐसी फजूली करके मेरे और स्वामी

विषे परदा क्यों डालता है और यह वार्त्ता तो प्रसिद्ध है कि मिश्रनगर की स्त्रियों ने जब यूसफ को देखा तो उनकी सुंदरताई को देखकर नींबू के बदले अपनी अंगुरियां काटडालीं और उनको पीड़ा की खबर न भई बहुरि जब उस नगर विषे दुर्भिक्ष पड़ा था तब नगर के लोग जब भूखे होतेथे तब यूसफजी को आय देखते थे और उनको भूख भूलजाती थी सो यह तो स्थूलरूप की मग्नताई भी ऐसी प्रबल है पर जिसने परमशोभासागर श्रीजानकीवरजी की सुन्दरताई को देखा है सो उसको दुःख का विस्मरण होना क्या आश्चर्य है इसी पर एक वार्त्ता है कि एक पुरुष वन विषे रहता था और सर्वदा योंही कहता था कि सर्व प्रकार श्रीरामजी की आज्ञा विषेही कुशल है बहुरि उनके घर विषे एक कूकुर था सो रात्रि विषे चोर से रक्षा करता था और एक वृषभ था सो उनका भार उठावता था और एक पक्षी था सो उनको जगावता था बहुरि अचानकही सिंह ने आकर वृषभ को मारडाला तब उन्होंने कहा कि इसी विषे भला होवेगा बहुरि कूकुर ने पक्षी को मारडाला और वह कूकुर भी मरगया तबभी उन्होंने कहा कि इसी विषे भला होवेगा पर स्त्री उनकी शोक करके कहनेलगी कि तुम यह कैसा वचन कहतेहो तब भी उन्होंने कहा कि इसी विषे कुशल होगी सो जब दूसरा दिन हुआ तब क्या देखते हैं कि उनके निकट जो गांव थे सो सब ही चोरों ने लूटलिये और ग्रामवासियों को मारडाला तब उन्होंने अपनी स्त्री से कहा कि जब कूकुर और वृषभ हमारे घर विषे होते और रात्रि को बोलते तब निस्संदेह शब्द सुनकर चोर हमारे निकट आकर लूटलेजाते और प्राणभी न बचते ताते सर्वप्रकार भगवत् भला करता है पर कोई जान नहीं सक्ता बहुरि ऐसे भी जान तू कि केते पुरुष इस प्रकार भी कहते हैं कि महाराज की आज्ञा मानने का अर्थ यह है कि महाराज के आगे प्रार्थना और याचना भी न करे और पापकर्म को देखकर ग्लानि न करे क्योंकि यह भी भगवत् की आज्ञा करके होते हैं बहुरि जिस नगर में पाप और क्लेश और कुछ दुःख की अधिकता होवे तब उसका त्यागभी न करे क्योंकि इसमें श्रीरामजी की आज्ञा से विमुखता होती है सो यह उनका कहना बड़ी मूर्खता है क्योंकि महापुरुष भी महाराज के आगे प्रार्थना करते थे और यों कहते थे कि प्रार्थना करना भी उत्तम भजन है सो इसका कारण यह है कि प्रार्थना में कोमलता और दीनता और नम्रता

और चित्तकी एकाग्रता और निरभिमानता प्रकट होती है सो यह सबही सात्त्विकी गुण हैं बहुरि जैसे तृषा दूर करने के निमित्त जल पीवे अथवा भूख के निमित्त भोजन करे अथवा शीत के निमित्त वस्त्र पहरे तब इस करके श्रीरामजी की आज्ञा से विमुखता नहीं होती है तैसेही महाराज के आगे प्रार्थना करने से आज्ञा मानने का स्वरूप खण्डित नहीं होता क्योंकि जिस कार्य के साथ जिस जिस पदार्थ का सम्बन्ध श्रीरामजी ने रचाहै सो तिससे विपर्यय कर्म करनाही आज्ञा से विमुखता होती है इस कारण से कि कार्य और कारण का सम्बन्ध महाराजकी आज्ञा करके हुआ है पर पापकर्म विषे जब प्रसन्न होकर बर्ते और इसको महाराज की आज्ञा जाने तब यह अयोग्य है क्योंकि पापकर्मों से महाराज ने वर्जित कियाहै और यों कहा है कि जो पुरुष किसीको पापकर्मकी आज्ञा देवे तब वह भी पापका भागी होताहै और यद्यपि पापकर्म भी श्रीरामजीने ही उत्पन्न किये हैं पर तौभी पापकर्म का मुख दो ओर होताहै सो एक महाराज की ओर है और दूसरा मुख जीव की ओर है पर जीवकी ओर जो कर्म का मुख कहाहै सो यह है कि कर्म जीवही के पुरुषार्थ और श्रद्धा करके सिद्ध होताहै बहुरि भगवत् की ओर कर्म का मुख इस प्रकार कहा है कि शुभ और अशुभ कर्म श्रीरामजी की आज्ञा और नेतकरके रचे हुये हैं ताते इस प्रकार कहिये तो प्रमाण है कि यह संसार पापकर्मों से रहित नहीं होसक्ता क्योंकि संसार को भगवत् ने इसी प्रकार गुण दोष मिश्रित रचाहै पर जब जीवकी ओर दृष्टि करिये कि कर्मका सम्बन्ध जीव के पुरुषार्थ के साथ होताहै तब यों जानना चाहिये कि यह जीव पापकर्म करके बिमुख होताहै और भगवत् के कोप को देखता है ताते पापकरना भगवत् की आज्ञा नहीं और पापका त्याग करना आज्ञा से विमुखता भी नहीं क्योंकि जो कर्मका सम्बन्ध आगे वर्णन किया है कि ईश्वर की आज्ञा और जीव के पुरुषार्थ करके कर्म सिद्ध होताहै इसका दृष्टान्त यह है कि जैसे कोई इस पुरुष का शत्रु होवे और इसके शत्रु का भी शत्रु होवे तब उस के मरने बिषे इस पुरुष को एक प्रकार कर शोक होताहै और एक भाव से प्रसन्न होताहै सो जैसे उस शत्रु का मरना दोऊ ओर सम्बन्ध रखताहै तैसेही कर्मोंका सम्बन्ध भी दोऊ ओर होताहै ताते पापकर्मों का त्यागकरना अवश्यही प्रमाण है ऐसेही जिस नगर बिषे पापकी अधिकता होवे तब उसका भी त्यागकरना

योग्य है क्योंकि पाप करके जो विघ्न आवता है तिसका भी प्रवेश होजाता है ताते जिस ठौर बिषे अचानकही नेत्र परस्त्री की ओर जापड़ें तब उस ठौरका भी त्याग करना प्रमाण है सो इस करके श्रीरामजी की आज्ञासे विमुखता नहीं होती तैसेही जिस नगर विषे क्लेश और दुर्भिक्ष होवे तब उसका त्याग करना भी योग्य है पर जिस ठौर विषे रोग की अधिकता होगई होवे तब उसका त्याग करना सन्त जनोंने विवर्जित कियाहै क्योंकि जब अरोगी पुरुष रोगियों को त्याग जावेंगे तब वह रोगी मृत्यु को प्राप्त होवेंगे ताते जिस जिसप्रकार श्रीरामजी की नेत हुई है सो उसी प्रकार बर्तना चाहिये है और आज्ञा मानने का अर्थ भी यही है कि सर्वप्रकार श्रीरामजी की आज्ञा को पहिंचानकर चित्तकी प्रसन्नता बिषे दृढ़ होवे और उसीमें अपनी भलाई जाने जैसे एक महापुरुषने किसी पुरुष को देखा था कि आंधर और लुञ्ज और पंगुल पड़ाहुआ था और कहता था कि श्रीरामजी का धन्यवाद है जिसने सर्व दुःखों से मेरी रक्षा करी तब उन महापुरुष ने उससे कहा कि ऐसा कौन दुःखहै जो तुझको नहीं प्राप्त हुआ बहुरि उसने कहा कि जिस मनुष्य को धन्यवाद की बूझ कुछ नहीं तब उससे मैं अधिक सुखी हूं बहुरि उन महापुरुष ने उसके नेत्र और शरीर कोभी सुन्दर और अरोग करदिया और एक प्रीतिमान् को विमुखोंने बन्दीखाने बिषे कर दियाथा सो जब उनके मित्र मिलने को आये तब उन्होंने परीक्षा के निमित्त उनको पत्थर मारे तब वह भाग गये बहुरि उन्होंने कहा कि तुम झूंठे मित्र हो क्योंकि मित्रके दुःख बिषे मित्रको दुःख नहीं भासता ॥

इति श्रीपारसभागेमोक्षदायकंनामचतुर्थप्रकरणंसमाप्तम् ॥ ४ ॥

इति पारसभागः सम्पूर्तिमगादिति शम् ॥